'श्रीहनुमान-अङ्क'की विषय-सूची

चित्र-सूची

श्रीरामभक्त हनुमान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सीतारामपदाम्बुजे मधुपवद् यन्मानसं लीयते सीतारामगुणावली निशि दिवा यज्जिह्वया पीयते ।
सीतारामविचित्ररूपमनिशं यच्चक्षुषोर्भूषणं सीतारामसुनामधामनिरतं तं मारुतिं सम्भजे ॥
(श्रीरामायणरसायन)

वर्ष ४९ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२००, जनवरी १९७५ { संख्या १ पूर्ण संख्या ५७८

'रघुपतिप्रियभक्तं नमामि'

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥
(श्रीरामचरितमानस ५ । श्लो० ३)

जो अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन (को ध्वंस करने) के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी और श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त हैं, उन पवनपुत्र श्रीहनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ ।

वेदोंमें श्रीहनुमच्चिन्तन

ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो राम प्रचोदयात्।
ॐ अञ्जनीजाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि तन्नो हनुमान् प्रचोदयात्॥
(मन्त्रमहो॰ गायत्रीमन्त्र)

ॐ तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारुचित्रम्।
पदं यद् विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥
(ऋक्संहिता ५।३।३)

प्रकृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं वर्णं निरिणीते अस्य तम्।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना॥
(ऋक्संहिता ९।७१।२)

इषुर्न धन्वन् प्रतिधीयते मतिर्वत्सो न मातुरुपसर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते॥
(ऋक्संहिता ९।६९।१)

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः॥
(ऋक्संहिता ९।७२।५)

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम्॥
(ऋक्संहिता १०।५३।७)

उपो मति पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान्द्रप्सः परिवारमर्षति॥
(साम॰ ११।३।१।६)

श्रीहनुमानजीका त्रिकाल-स्मरण

श्रीहनुमानजीके अत्यन्त श्रद्धालु उपासकोंको चाहिये कि वे तीनों काल श्रीहनुमानजीका स्मरण-ध्यान करें। किंतु यदि ऐसा सम्भव न हो तो प्रातः या सायंकाल ही त्रैकालिक ध्यान पूजन एक साथ भी कर सकते हैं। ध्यानके श्लोक भावार्थसहित यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१)

प्रातः स्मरामि हनुमन्तमनन्तवीर्यं
श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजचञ्चरीकम्।
लङ्कापुरीदहननन्दितदेववृन्दं
सर्वार्थसिद्धिसदनं प्रथितप्रभावम्॥

जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके भ्रमर हैं, जिन्होंने लङ्कापुरीको दग्ध करके देवगणको आनन्द प्रदान किया है, जो सम्पूर्ण अर्थसिद्धियोंके आगार और लोकविश्रुत प्रभावशाली हैं, उन अनन्त पराक्रमशाली हनुमानजीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

(२)

माध्यं नमामि वृजिनार्णवतारणैका-
धारं शरण्यमुदितानुपमप्रभावम्।
सीताऽऽधिसिन्धुपरिशोषणकर्मदक्षं
वन्दारुकल्पतरुमव्ययमाञ्जनेयम्॥

जो भवसागरसे उद्धार करनेके एकमात्र साधन और शरणागतके पालक हैं, जिनका अनुपम प्रभाव लोकविख्यात है, जो सीताजीकी मानसिक पीडारूपी सिन्धुके शोषण-कार्यमें परम प्रवीण और वन्दना करनेवालोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, उन अविनाशी अञ्जनानन्दन हनुमानजीको मैं मध्याह्नकालमें प्रणाम करता हूँ।

(३)

सायं भजामि शरणोपस्मृताखिलार्ति-
पुञ्जप्रणाशननिधौ प्रथितप्रतापम्।
अक्षान्तकं सकलराक्षसवंशधूम-
केतुं प्रमोदितविदेहसुतं दयालुम्॥

शरणागतोंके सम्पूर्ण दुःखसमूहका विनाश करनेमें जिनका प्रताप लोकप्रसिद्ध है, जो अक्षकुमारका वध करनेवाले और समस्त राक्षसवंशके लिये धूमकेतु (अग्नि अथवा केतु ग्रहके तुल्य संहारक) हैं एवं जिन्होंने विदेहनन्दिनी सीताजीको आनन्द प्रदान किया है, उन दयालु हनुमानजीका मैं सायंकाल भजन करता हूँ।

वेदोंमें श्रीहनुमच्चिन्तन

ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो राम प्रचोदयात् ।
ॐ अञ्जनीजाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि तन्नो हनुमान् प्रचोदयात् ॥
(मन्त्रमहा० गायत्री-मन्त्र)

ॐ तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारुचित्रम् ।
पदं यद् विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥
(ऋक्संहिता ५ । ३ । ३)

प्रकृष्टिहेव शूप एति रोरुवदसुर्यं वर्णं निरिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥
(ऋक्संहिता ९ । ७१ । २)

इषुर्न धन्वन् प्रतिधीयते मतिर्वत्सो न मातुरुपसर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥
(ऋक्संहिता । ६९ । १)

नृ बाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून् त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ॥
(ऋक्संहिता ९ । ७२ । ५)

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥
(ऋक्संहिता १० । ५३ । ७)

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमान सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान्द्रप्सः परिवारमर्षति ॥
(साम० ११ । ३ । १ । २)

श्रीहनुमानजीका त्रिकाल-स्मरण

श्रीहनुमानजीके अत्यन्त श्रद्धालु उपासकोंको चाहिये कि वे तीनों काल श्रीहनुमानजीका स्मरण ध्यान करें। किंतु यदि ऐसा सम्भव न हो तो प्रातः या सायंकाल ही त्रैकालिक ध्यान पूजा एक साथ भी कर सकते हैं। ध्यानके श्लोक भावार्थसहित यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१)

प्रातः स्मरामि हनुमन्तमनन्तवीर्यं
श्रीरामचन्द्रचरणाम्बुजचञ्चरीकम् ।
लङ्कापुरीदहननन्दितदेववृन्दं
सर्वार्थसिद्धिसदनं प्रथितप्रभावम् ॥

जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके भ्रमर हैं, जिन्होंने लङ्कापुरीका दग्ध करके देवगणको आनन्द प्रदान किया है, जो सम्पूर्ण अर्थसिद्धियोंके आगार और लोकविश्रुत प्रभावशाली हैं, उन अनन्त पराक्रमशाली हनुमानजीका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ।

(२)

माध्यं नमामि वृजिनार्णवतारणैका-
धारं शरण्यमुदितानुपमप्रभावम् ।
सीताऽऽधिसिन्धुपरिशोषणकर्मदक्षं
वन्दारुकल्पतरुमव्ययमाञ्जनेयम् ॥

जो भवसागरसे उद्धार करनेके एकमात्र साधन और शरणागतके पालक हैं, जिनका अनुपम प्रभाव सुविख्यात है, जो सीताजीकी मानसिक पीडारूपी सिन्धुके शोषण-कार्यमें परम प्रवीण और वन्दना करनेवालोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, उन अविनाशी अञ्जनानन्दन हनुमानजीको मैं मध्याह्नकालमें प्रणाम करता हूँ।

(३)

सायं भजामि शरणोपसृताखिलार्ति
पुञ्जप्रणाशनविधौ प्रथितप्रतापम् ।
अक्षान्तकं सकलराक्षसवंशधूम
केतुं प्रमोदितविदेहसुतं दयालुम् ॥

शरणागतोंके सम्पूर्ण दुःखसमूहका विनाश करनेमें जिनका प्रताप लोकप्रसिद्ध है, जो अक्षकुमारका वध करनेवाले और समस्त राक्षसवंशके लिये धूमकेतु (अग्नि अथवा केतु ग्रहके तुल्य संहारक) हैं एवं जिन्होंने विदेहनन्दिनी सीताजीको आनन्द प्रदान किया है, उन दयालु हनुमानजीका मैं सायंकाल भजन करता हूँ।

विभीषणकृत हनुमत्स्तोत्रम्

(अनुवादक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्री साहित्यकेसरी)

नमो हनुमते तुभ्यं नमो मारुतसूनवे।
नमः श्रीरामभक्ताय श्यामास्याय च ते नमः ॥ १ ॥

हनुमान् ! आपको नमस्कार है। मारुतनन्दन ! आपको प्रणाम है। श्रीरामभक्त ! आपको अभिवादन है। आपके मुखका वर्ण श्याम है, आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे।
लङ्काविदाहनार्थाय हेलासागरतारिणे ॥ २ ॥

आप सुग्रीवके साथ (भगवान् श्रीरामकी) मैत्रीके स्थापक और लङ्काको भस्म कर देनेके अभिप्रायसे खेल-ही-खेलमें महासागरको लाँघ जानेवाले हैं, आप वानर वीरको प्रणाम है ॥ २ ॥

सीताशोकविनाशाय राममुद्राधराय च।
रावणान्तकुलच्छेदकारिणे ते नमो नमः ॥ ३ ॥

आप श्रीरामकी मुद्रिकाको धारण करनेवाले, सीताजीके शोकके निवारक और रावणके कुलके संहारकर्ता हैं, आपको बारबार अभिवादन है ॥ ३ ॥

मेघनादमखध्वंसकारिणे ते नमो नमः।
अशोकवनविध्वंसकारिणे भयहारिणे ॥ ४ ॥

आप अशोकवनको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेवाले और मेघनादके यज्ञके विध्वंसकर्ता हैं, आप भयहारीको पुनः पुनः नमस्कार है ॥ ४ ॥

वायुपुत्राय वीराय आकाशोदरगामिने।
वनपालशिरश्छेदलङ्काप्रासादभञ्जिने ॥ ५ ॥
ज्वलत्कनकवर्णाय दीर्घलाङ्गूलधारिणे।
सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः ॥ ६ ॥

आप वायुके पुत्र, श्रेष्ठ वीर, आकाशके मध्य विचरण करनेवाले और अशोकवनके रक्षकोंका सिर-उच्छेदन करके लंकाकी अट्टालिकाओंको तोड़-फोड़ डालनेवाले हैं। आपकी शरीर-कान्ति प्रज्वलित सुवर्ण-सी है, आपकी पूँछ लंबी है और आप सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके विजय-प्रदाता हैं, आप श्रीरामदूतको प्रणाम है ॥ ५-६ ॥

अक्षस्य वधकर्त्रे च ब्रह्मपाशनिवारिणे।
लक्ष्मणाङ्गमहाशक्तिघातक्षतविनाशिने ॥ ७ ॥
रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय च ते नमः।
ऋक्षवानरवीरौघप्राणदाय नमो नमः ॥ ८ ॥

आप अक्षकुमारके वधकर्ता, ब्रह्मपाशके निवारक, लक्ष्मणजीके शरीरमें महाशक्तिके आघातसे उत्पन्न घावके विनाशक, राक्षस, शत्रु एवं भूतोंके संहारकर्ता तथा रीछ एवं वानरवीरोंके समुदायके लिये जीवन-दाता हैं, आपको बारबार अभिवादन है ॥ ७-८ ॥

परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्रघ्नाय ते नमः।
विषघ्नाय द्विषघ्नाय ज्वरघ्नाय च ते नमः ॥ ९ ॥

आप अस्त्र-शस्त्रके विनाशक तथा शत्रुओंके सैन्य-बलका मर्दन करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। विष, शत्रु और ज्वरके नाशक आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥

महाभयरिपुघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे।
परप्रेरितमन्त्राणां यन्त्राणां स्तम्भकारिणे ॥ १० ॥
पयःपाषाणतरणकारणाय नमो नमः।

आप महान् भयङ्कर शत्रुओंके संहारक, भक्तोंके एकमात्र रक्षक, दूसरोंद्वारा प्रेरित मन्त्र-यन्त्रोंको स्तम्भित कर देनेवाले और समुद्र-ऊपर शिलाखण्डोंके तैरनेमें कारणस्वरूप हैं, आपको पुनः-पुनः अभिवादन है ॥ १०½ ॥

बालार्कमण्डलग्रासकारिणे भवतारिणे ॥ ११ ॥
नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च।
रिपुमायाविनाशाय रामाज्ञालोकरक्षिणे ॥ १२ ॥
प्रतिग्रामस्थितायाथ रक्षोभूतवधार्थिने।
करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः ॥ १३ ॥

आप बाल-सूर्य मण्डलको ग्रास-कर्ता और भवसागर से तारनेवाले हैं, आपका स्वरूप महान् भयङ्कर है आप नख और दाँतोंको ही आयुधरूपमें धारण करते हैं तथा शत्रुओंकी मायाके विनाशक और श्रीरामकी आज्ञासे लोकोंके पालनकर्ता हैं राक्षसों एवं भूतोंका वध करना ही आपका प्रयोजन है, प्रत्येक ग्राममें आप मूर्तरूपमें स्थित

है, विशाल पर्वत और वृक्ष ही आपके गात्र हैं, आपको नमस्कार है ॥ ११–१३ ॥

बालैकब्रह्मचर्याय रुद्रमूर्तिधराय च ।
विहंगमाय सर्वाय वज्रदेहाय ते नमः ॥१४॥

आप एकमात्र बाल-ब्रह्मचारी, रुद्र-रूपमें अवतरित और आकाशचारी हैं, आपका शरीर वज्रके समान कठोर है, आप सर्वस्वरूपको प्रणाम है ॥ १४ ॥

कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च ।
दक्षिणाशाभास्कराय शतचन्द्रोदयात्मने ॥१५॥
कृत्याक्षतव्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च ।
स्वाम्याज्ञापार्थसंग्रामसंख्ये संजयधारिणे ॥१६॥
भक्तान्तदिव्यवादेषु संग्रामे जयदायिने ।
किल्किलाबुबुकोच्चारघोरशब्दकराय च ॥१७॥
सर्पाग्निव्याधिसंस्तम्भकारिणे वनचारिणे ।
सदा वनफलाहारसंतृप्ताय विशेषतः ॥१८॥
महार्णवशिलाबद्धसेतुबन्धाय ते नमः ।

कौपीन ही आपका वस्त्र है, आप निरन्तर श्रीराम भक्तिमें निरत रहते हैं, दक्षिण दिशाको प्रकाशित करनेके लिये आप सूर्य-सदृश हैं, सैकड़ों चन्द्रोदयकी-सी आपकी शरीर-कान्ति है, आप कृत्याद्वारा किये गये आघातकी व्यथाके नाशक, सम्पूर्ण कष्टोंके निवारक, स्वामीकी आज्ञासे पृथापुत्र अर्जुनके संग्राममें मैत्रीभावके प्रसारक, विजयशाली, भक्तोंके अन्तिम दिव्य वाद विवाद तथा संग्राममें विजय-प्रदाता, 'किल्किला' एवं 'बुबुक'के उच्चारणपूर्वक भीषण शब्द करनेवाले, सर्प, अग्नि और व्याधिके स्तम्भक, वनचारी, सदा जंगली फलोंके आहारसे विशेषरूपसे संतुष्ट और महासागरपर शिलाखण्डोंद्वारा सेतुके निर्माण-कर्ता हैं, आपको नमस्कार है ॥ १५–१८½ ॥

वादे विवादे संग्रामे भये घोरे महावने ॥१९॥
सिंहव्याघ्रादिचौरेभ्यः स्तोत्रपाठाद् भयं न हि ।

इस स्तोत्रका पाठ करनेसे वाद विवाद, संग्राम, घोर भय एवं महावनमें सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं तथा चोरोंसे भय नहीं प्राप्त होता ॥ १९½ ॥

दिव्ये भूतभये व्याधौ विषे स्थावरजङ्गमे ॥२०॥
राजशस्त्रभये चोग्रे तथा ग्रहभयेषु च ।
जले सर्पे महावृष्टौ दुर्भिक्षे प्राणसम्प्लवे ॥२१॥
पठेत् स्तोत्रं प्रमुच्येत भयेभ्यः सर्वतो नरः ।
तस्य क्वापि भयं नास्ति हनुमत्स्तवपाठतः ॥२२॥

यदि मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करे तो वह दैविक तथा भौतिक भय, व्याधि, स्थावर-जंगमसम्बन्धी विष, राजाका भयंकर शस्त्र भय, ग्रहोंका भय, जल, सर्प, महावृष्टि, दुर्भिक्ष तथा प्राण-संकट आदि सभी प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है। इस हनुमत्स्तोत्रके पाठसे उसे कहीं भी भयकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २०–२२ ॥

सर्वदा वै त्रिकालं च पठनीयमिमं स्तवम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥२३॥

नित्य प्रति तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न, संध्या) इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये । ऐसा करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है । इस विषयमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २३ ॥

विभीषणकृतं स्तोत्रं तार्क्ष्येण समुदीरितम् ।
ये पठिष्यन्ति भक्त्या वै सिद्धयस्तत्करे स्थिताः ॥२४॥

विभीषणद्वारा किये गये इस स्तोत्रका गरुडने सम्यक् प्रकारसे पाठ किया था । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेंगे, समस्त सिद्धियाँ उनके करतलगत हो जायँगी ॥ २४ ॥

इति श्रीसुदर्शनसंहितायां विभीषणगरुडसंवादे विभीषणकृतं हनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

इस प्रकार श्रीसुदर्शन-संहितामें विभीषण-गरुड-संवादमें विभीषणद्वारा किया हुआ हनुमत्स्तोत्र पूर्ण हुआ ॥

श्रीमदाद्यशंकराचार्यकृत श्रीहनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रम्

वीताखिलविषयेच्छं जातानन्दाश्रुपुलकमत्यच्छम् ।
सीतापतिदूताद्यं वातात्मजमद्य भावये हृद्यम् ॥ १ ॥
तरुणारुणमुखकमलं करुणारसपूरपूरितापाङ्गम् ।
सञ्जीवनमाशासे मञ्जुलमहिमानमञ्जनाभाग्यम् ॥ २ ॥
शम्बरवैरिशरातिगमम्बुजदलविपुललोचनोदारम् ।
कम्बुगलमनिलदिष्टं बिम्बज्वलितोष्ठमेकमवलम्बे ॥ ३ ॥
दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः ।
दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भातु हनुमतो मूर्तिः ॥ ४ ॥
वानरनिकराध्यक्षं दानवकुलकुमुदरविकरसदृक्षम् ।
दीनजनावनदीक्षं पवनतपःपाकपुञ्जमद्राक्षम् ॥ ५ ॥
एतत् पवनसुतस्य स्तोत्रं यः पठति पञ्चरत्नाख्यम् ।
चिरमिह निखिलान् भोगान् भुक्त्वा श्रीरामभक्तिभाग् भवति ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यकृतं हनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रम् ॥

जिनके हृदयसे समस्त विषयोंकी इच्छा दूर हो गयी है, (श्रीरामके प्रेममें विभोर हो जानेके कारण) जिनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू और शरीरमें रोमाञ्च हो रहे हैं, जो अत्यन्त निर्मल हैं, सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके प्रधान दूत हैं, मेरे हृदयको प्रिय लगनेवाले उन पवनकुमार हनुमान्जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥ बाल रविके समान जिनका मुखकमल लाल है, करुणारसके समूहसे जिनके लोचनकोर भरे हुए हैं, जिनकी महिमा मनोहारिणी है, जो अञ्जनाके सौभाग्य हैं, जीवनदान देनेवाले उन हनुमान्जीसे मुझे बड़ी आशा है ॥ २ ॥ जो कामदेवके बाणोंको जीत चुके हैं, जिनके कमलदलके समान विशाल एवं उदार लोचन हैं, जिनका शङ्खके समान कण्ठ और बिम्बफलके समान अरुण ओष्ठ हैं, जो पवनके सौभाग्य हैं, एकमात्र उन हनुमान्जीकी ही मैं शरण लेता हूँ ॥ ३ ॥ जिन्होंने सीताजीका कष्ट दूर किया और श्रीरामचन्द्रजीके ऐश्वर्यकी स्फूर्तिको प्रकट किया, दशवदन रावणकी कीर्तिको मिटानेवाली वह हनुमान्जीकी मूर्ति मेरे सामने प्रकट हो ॥ ४ ॥ जो वानरसेनाके अध्यक्ष हैं, दानवकुलरूपी कुमुदोंके लिये सूर्यकी किरणोंके समान हैं, जिन्होंने दीनजनोंकी रक्षाकी दीक्षा ले रखी है, पवनदेवकी तपस्याके परिणामपुञ्ज उन हनुमान्जीका मैंने दर्शन किया ॥ ५ ॥ पवनकुमार श्रीहनुमान्जीके इस पञ्चरत्ननामक स्तोत्रका जो पाठ करता है, वह इस लोकमें चिरकालतक समस्त भोगोंको भोगकर श्रीरामभक्तिका भागी होता है ॥ ६ ॥

सकष्टमोचनस्तोत्रम्

(ब्रह्मलीन काशीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दसरस्वतीविरचित)

सिन्दूरपूररुचिरो बलवीर्यसिन्धुर्बुद्धिप्रभावनिधिरद्भुतवैभवश्रीः ।
दीनार्तिदावदहनो वरदो वरेण्य सङ्कष्टमोचनविभुस्तनुतां शुभं नः ॥ १ ॥

जो सिन्दूर-लेपनसे सुन्दर देहयुक्त, बलवीर्यके सागर, बुद्धि-प्रभावके आकर और अद्भुत ऐश्वर्यके धाम हैं, जो दीनोंके दुःखोंका नाश करनेके लिये दारुण दावानलके समान हैं तथा जो वरदान-तत्पर, सर्वकामपूरक, सङ्कटघटाविदारक और सर्वव्यापी हैं, वे सङ्कटमोचन प्रभु हम लोगोंके लिये मङ्गलकारी हों ॥ १ ॥

सोत्साहलङ्घितमहार्णवपौरुषश्रीर्लङ्कापुरीप्रदहनप्रथितप्रभावः ।
घोराहवप्रमथितारिचमूप्रवीरः प्राभञ्जनिर्जयति मर्कटसार्वभौमः ॥ २ ॥

उन वानरराज-चक्रवर्तीकी जय हो, जो उत्साहपूर्वक महासिन्धुको लाँघ गये, जिनकी पुरुषार्थ-लक्ष्मी देदीप्यमान है, लङ्कानगरीके दहनसे जिनकी प्रभाव-प्रभा दिग्दिगन्तव्यापी है और जो घोर राम-रावण-युद्धमें शत्रु-सेनाका मथन करनेमें महान् वीर तथा प्रभञ्जन-पवनको आनन्द देनेवाले—पवनकुमार हैं ॥ २ ॥

द्रोणाचलानयनवर्णितभव्यभूतिः श्रीरामलक्ष्मणसहायकचक्रवर्ती ।
काशीस्थदक्षिणविराजितसौधमल्लः श्रीमारुतिर्विजयते भगवान् महेशः ॥ ३ ॥

जो संजीवनीके लिये द्रोणगिरिको ही उठा लाये थे, जो सुन्दर भव्य विभूतिसम्पन्न, श्रीराम-लक्ष्मणके सेवक सहायकोंमें चक्रवर्तिशिरोमणि और मल्लवीर काशीपुरीके दक्षिण भाग स्थित दिव्य भवनमें विराजमान हैं, ऐसे महेश—रुद्रावतार भगवान् मारुतिकी जय हो ॥ ३ ॥

नूनं स्मृतोऽपि दयते भजतां कपीन्द्रः सम्पूजितो दिशति वाञ्छितसिद्धिवृद्धिम् ।
सम्मोदकप्रिय उपैति परं प्रहर्षं रामायणश्रवणतः पठतां शरण्यः ॥ ४ ॥

ये वानरराज स्मरणमात्रसे भक्तोंपर दया करनेवाले हैं और विधिपूर्वक सम्पूजित होनेपर सभी मनोरथोंकी तथा सुख समृद्धिकी पूर्ति-वृद्धि करनेवाले हैं। ये मोदक (लड्डू)-प्रिय अथवा भक्तोंको विशेष मुदित करनेवाले हैं। रामायण-श्रवणसे उन्हें परम हर्ष प्राप्त होता है और ये पाठकोंकी पूर्णतया रक्षा करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

श्रीभारतप्रवरयुद्धरथोद्धतश्रीः पार्थैककेतनकरालविशालमूर्तिः ।
उच्चैर्घनाघनघटाविकटाट्टहासः श्रीकृष्णपक्षभरणः शरणं ममास्तु ॥ ५ ॥

महाभारत-महायुद्धमें रथपर जिनकी शोभा समुन्नत हुई है, पृथानन्दन अर्जुनके रथकेतुपर जिनकी विकराल विशाल मूर्ति विराजमान है, घनघोर मेघ-घटाके गम्भीर गर्जनके समान जिनका विकट अट्टहास है, ऐसे श्रीकृष्णपक्ष (पाण्डव-सैन्य)-के पोषक (अद्भुत चन्द्र) मेरे शरणदाता हों ॥ ५ ॥

जङ्घालजङ्घ उपमातिविदूरवेगो मुष्टिप्रहारपरिमूर्च्छितराक्षसेन्द्रः ।
श्रीरामकीर्तितपराक्रमणोद्भवश्रीः प्राकम्पनिर्विभुरुदञ्चतु भूतये नः ॥ ६ ॥

उन विशाल जङ्घावाले श्रीहनुमानका वेग उपमासे रहित—अनुपम है, जिनकी मुष्टिके प्रहारसे राक्षसराज मूर्च्छित हो गया था, जिनके पराक्रमकी अद्भुत श्रीका कीर्तन स्वयं भगवान् श्रीराम करते हैं, ऐसे प्रकम्पन (—नन्दन, सर्वव्यापक श्रीहनुमान हमें विभूति प्रदान करनेके लिये तत्पर हों ॥ ६ ॥

सीतार्तिदारणपटुः प्रबलः प्रतापी श्रीराघवेन्द्रपरिरम्भवरप्रसादः।
वर्णीश्वरः सविधिशिक्षितकालनेमिः पञ्चाननोऽपनयतां विपदोऽधिदेशम्॥ ७॥

सीताके शोक-संतापके विनाशमें निपुण, प्रबल प्रतापी श्रीहनुमान भगवान् श्रीराघवेन्द्रके आलिङ्गनरूप दिव्य वर प्रसादसे सम्पन्न हैं। जो वर्णियों—ब्रह्मचारियोंके शिरोमणि तथा कपट-साधु कालनेमिको विधिवत् शिक्षा देनेवाले हैं, वे पञ्चमुख हनुमानजी हमारी विपत्तियोंका सर्वथा अपसारण (दूर) करें॥ ७॥

उद्यद्भानुसहस्रसंनिभतनुः पीताम्बरालंकृतः
प्रोज्ज्वालानलदीप्यमाननयनो निष्पिष्टरक्षोगणः।
संवर्तोद्यतवारिदोद्धतरवः प्रोच्चैर्गदाविभ्रमः
श्रीमान् मारुतनन्दनः प्रतिदिनं ध्येयो विपद्भञ्जनः॥ ८॥

जिनका श्रीविग्रह उदीयमान सहस्र सूर्यके सदृश अरुण तथा पीताम्बरसे सुशोभित है, जिनके नेत्र अत्यन्त प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त हैं, जो राक्षस-समूहको विध्वस्त या पीस देनेवाले हैं, प्रलयकालीन मेघ-गर्जनाके तुल्य जिनकी घोर गर्जना है, जिनके मुद्गर (गदा)का भ्रमण अतिशय दिव्य है, ऐसे शोभा-प्रभा-सम्पन्न मारुतनन्दन विपद्विभञ्जन श्रीहनुमानजीका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये॥ ८॥

रक्षःपिशाचभयनाशनमामयाधिप्रोच्चैर्ज्वरापहरणं दमनं रिपूणाम्।
सम्पत्तिपुत्रकरणं विजयप्रदानं संकष्टमोचनविभोः स्तवनं नराणाम्॥ ९॥

संकटमोचन प्रभु श्रीहनुमानजीका स्तवन (गुण-गान) मानवमात्रके लिये राक्षस-पिशाच (भूत-प्रेत)के भयका विनाशक, आधि-व्याधि शोक-संताप-ज्वर-दाहादिका प्रशमन करनेवाला, शत्रु-दमन, पुत्र-सम्पत्तिका दाता एवं विजय प्रदान करनेवाला है॥ ९॥

दारिद्र्यदुःखदहनं विजयं विवादे कल्याणसाधनममङ्गलवारणं च।
दाम्पत्यदीर्घसुखसर्वमनोरथाप्तिं श्रीमारुतेः स्तवशतावृतिरातनोति॥ १०॥

श्रीमारुतनन्दनकी इस स्तुतिका सौ बार पाठ करनेसे दरिद्रता और दुःखोंका दहन, वाद-विवादमें विजय-प्राप्ति, समस्त कल्याण-मङ्गलोंकी प्राप्ति तथा अमङ्गलोंकी निवृत्ति, दम्पतियोंमें दीर्घकालव्यापी सुख-प्राप्ति तथा सभी मनोरथोंकी पूर्ति होती है॥ १०॥

स्तोत्रं य एतदनुवासरमस्तकामः श्रीमारुतिं समनुचिन्त्य पठेत् सुधीरः।
तस्मै प्रसादसुमुखो वरवानरेन्द्रः साक्षात्कृतो भवति शाश्वतिकः सहायः॥ ११॥

जो कोई निष्कलीन धीर मानव निष्काम भावसे श्रीमारुतनन्दनका निरन्तर चिन्तन करते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है उसके समक्ष प्रसादसुमुख—परमसौम्य वानरेन्द्र श्रीहनुमानजी साक्षात् प्रकट होते हैं और नित्य उसकी सहायता करते हैं॥ ११॥

संकष्टमोचनस्तोत्रं शंकराचार्यभिक्षुणा।
महेश्वरेण रचितं मारुतेश्चरणेऽर्पितम्॥ १२॥

भिक्षु (संन्यासी) शंकराचार्य श्रीमहेश्वर (स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती महाराज)ने इस संकष्टमोचनस्तोत्रकी रचना की है और वे इसे श्रीमारुतिके चरणोंमें समर्पित कर रहे हैं॥ १२॥

श्रीहनुमानजीकी वीरता

(रचयिता—साहित्याचार्य पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

(१)

'रामकी कृपासे पार उदधि अपार हुआ,
दर्शसे तुम्हारे अम्ब ! जीवन सफल ये।
दानवों सहित नष्ट भ्रष्ट कर दूँ, जो कहो
पस्त कर दूँ मैं अभी लंकाके महल ये।
भूख भी लगी है, जोश रोष भी बढ़ा है देख—
गाज रहे सैनिक दशाननके खल ये।
आज कुछ कौतुक दिखाना चाहता हूँ इन्हें,
खाना चाहता हूँ वाटिकाके पके फल ये' ॥

(२)

पाकर इशारा पारावार-सी बढ़ी है शक्ति,
वज्र-से कठोर अंग-अंग हुए जंगीके।
पस्त हुई हिम्मत, प्रभावहीन त्रस्त दैत्य,
भाव देख विकट अड़ीले अड़भंगीके।
भाग चले बागसे अभागे भीरु रक्षक जो,
त्यागे तन, आगे जो बढ़े थे रणरंगीके।
हाड़ हिले रिपुके, पहाड़ फटने-से लगे,
सुनके दहाड़ महावीर बजरंगीके ॥

(३)

खा-खा फल मधुर, प्रशाखा और शाखा तोड़,
मत्त गजराज-से विराज रहे वनमें।
शुंड-से विटपके लँगूरमें द्रुमोंके झुंड
वेगसे लपेटके उखाड़ लेते छनमें।
क्रुद्ध कर धाये जो समूह थे, पठाया उन्हें
रुष्ट मुष्टिकासे मार यमके सदनमें।
मारुतिकी मारसे कुमार वीर अक्षय भी
क्षीण हो धरा पै पड़ा प्राण त्याग रनमें ॥

(४)

आया जो, सफाया हुआ उसका निमेषमें ही,
चारों ओर रुंड मुंड बिखरे विशेष थे।
विटप उजाड़े हुए वनके पड़े थे, मानो
लंकामयी बालाके उखाड़े हुए केश थे।
पावोंकी धमकसे धरा थी धँसने-सी लगी,
भारसे अपार अकुलाने लगे शेष थे।
क्रुद्ध आञ्जनेय युद्ध ताण्डव मचाने लगे,
रावण-कुमारके लिये जो मारकेश थे ॥

(५)

राक्षसोंके क्षयकी प्रथम भूमिका-सी यहाँ
घाटी यह युद्धकी समुद्घाटिका हुई।
अंग-अंग भंजित पिशाच नाच-नाच गिरे,
रक्त-राशि-रंजित धराकी शाटिका हुई।
वीर बजरंगीके प्रहारसे क्षणोंमें यहाँ
असुर-संहारकी अनोखी नाटिका हुई।
वैरी-वनिताओंके सशोक क्रन्दनोंसे व्याप्त
शोकवाटिका-सी थी अशोकवाटिका हुई ॥

मन्त्रात्मक श्रीमारुतिस्तोत्रम्

ॐ नमो वायुपुत्राय भीमरूपाय धीमते।
नमस्ते रामदूताय कामरूपाय श्रीमते ॥ १ ॥
मोहशोकविनाशाय सीताशोकविनाशिने।
भग्नाशोकवनायास्तु दग्धलङ्काय वाग्मिने ॥ २ ॥

ॐ भयंकर रूपधारी बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान्‌को नमस्कार है। जो स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, मोह एवं शोकके विनाशक, सीताजीके शोकके निवारक, अशोकवाटिकाके विध्वंसक, लंकाको भस्म करनेवाले और कुशल वक्ता हैं, उन श्रीमान् रामदूतको नमस्कार है ॥ १-२ ॥

गतिनिर्जितवाताय लक्ष्मणप्राणदाय च।
वनौकसां वरिष्ठाय वशिने वनवासिने ॥ ३ ॥
तत्त्वज्ञानसुधासिन्धुनिमग्नाय महीयसे।
आञ्जनेयाय शूराय सुग्रीवसचिवाय ते ॥ ४ ॥

जिन्होंने अपने वेगसे वायुको भी जीत लिया है, जो लक्ष्मणके प्राणदाता, वानरोंमें श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, वनमें निवास करनेवाले, तत्त्वज्ञानरूपी सुधासिन्धुमें निमग्न, महान् ऐश्वर्यशाली और सुग्रीवके सचिव हैं, उन शूरवीर अञ्जनानन्दनको प्रणाम है ॥ ३-४ ॥

जन्ममृत्युभयघ्नाय सर्वक्लेशहराय च।
नेदिष्ठाय प्रेतभूतपिशाचभयहारिणे ॥ ५ ॥
यातनानाशनायास्तु नमो मर्कटरूपिणे।
यक्षराक्षसशार्दूलसर्पवृश्चिकभीहृते ॥ ६ ॥

जो जन्म-मृत्युरूपी भयके विनाशक, सम्पूर्ण कष्टोंके विनाशक, (भगवान् श्रीरामके) परम निकटवर्ती, भूत, प्रेत और पिशाचके भयके निवारक, पीड़ाके नाशक और यक्ष, राक्षस, सिंह, सर्प एवं बिच्छूके भयको मिटा देनेवाले हैं, उन वानररूपधारी हनुमान्‌जीको अभिवादन है ॥ ५-६ ॥

महाबलाय वीराय चिरञ्जीविन उद्धते।
हारिणे वज्रदेहाय चोल्लङ्घितमहाब्धये ॥ ७ ॥
बलिनामग्रगण्याय नमो नः पाहि मारुते।

जो महासागरको पार करनेवाले, अहंकारियोंके गर्वहारी, चिरजीवी और बलवानोंमें अग्रगण्य हैं, जिनका शरीर वज्र-सरीखा कठोर है, उन महाबली वीरवर हनुमान्‌जीको नमस्कार है। मारुतनन्दन ! हमारी रक्षा कीजिये ॥ ७½ ॥

लाभदोऽसि त्वमेवाशु हनुमन् राक्षसान्तक ॥ ८ ॥
यशो जयं च मे देहि शत्रून् नाशय नाशय।

राक्षसोंके विनाशक हनुमान् ! आप शीघ्र ही लाभ प्रदान करनेवाले हैं, अतः मुझे यश और विजय प्रदान कीजिये तथा मेरे शत्रुओंका समूल नाश कर दीजिये ॥ ८½ ॥

स्वाश्रितानामभयदं य एवं स्तौति मारुतिम्।
हानिः कुतो भवेत्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस प्रकार अपने आश्रित जनोंके लिये अभय-प्रदाता हनुमान्‌जीका स्तवन करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है। भला, उसकी हानि हो ही कैसे सकती है ? ॥ ९ ॥

इति श्री[illegible]श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीकृतं मारुतिस्तोत्रम् ॥

—प्र

श्रीहनुमत्-गाथा

(रचयिता—प० श्रीरामजी पाण्डेय, बी० ए०, काव्यरत्न)

(१)

देव ! वाणी, मन हमारे जल रहे संतापमें।
आज दोनों हों प्रतिष्ठित, हों समाहित आपमें॥
लेखनी लिपिबद्ध कर दे आपके यश-गानको।
शान्ति पाऊँ, शान्ति दूँ, प्रत्येक मनको, कानको॥

(२)

एक दिन ब्रह्मादि पहुँचे शम्भुके कैलासपर।
शम्भु ध्यानारूढ़ थे चैतन्यके आकाशपर॥
वेद मन्त्रोंसे सभी वे प्रार्थना करने लगे।
शब्दसे आकाशके भी कानको भरने लगे॥

(३)

शम्भु भी व्युत्थित हुए, की रीति शिष्टाचारकी।
आगमनका हेतु पूछा, प्रीति की कर्तारकी॥
दीन-से बोले विधाता, 'देव ! उस दिन विष्णुने।
प्रार्थना सुन ली हमारी दनुजके विजिगिष्णुने॥

(४)

आपके अनुरोधसे वादा किया अवतारका।
प्रण किया कुलके सहित दशकण्ठके संहारका॥
हम निजी अज्ञानसे फिर भी प्रभो ! भयभीत हैं।
दीखते लक्षण सभी अनुमानसे विपरीत हैं॥

(५)

आप भी सहयोगको हरिके सहित अवतार लें।
धर्मके उद्धारके अधिकारका कुछ भार लें'॥
शैलजा संकोचमें थीं शम्भुकी मुस्कानसे।
देवतागण देखते थे यह सभी हैरान-से॥

(६)

मन उमाका ताड़कर जगदीशने उत्तर दिया।
देवगण, ब्रह्मा, उमा-सबको प्रफुल्लित कर दिया॥
'विष्णु-सेवक भूमिभार-निवारकी है कामना।
पार्वतीको साथ लेनेकी नहीं सम्भावना॥

(७)

अस्तु, अपना अंश ही मैं दे सकूँगा आपको।
जो अलं भू-पाप-दानव-वंशके संतापको॥
पार्वती सूक्ष्मांश रूपा शक्तिभूता पासमें।
सन्निहित निर्दोष होंगी वीर राघव-दासमें'॥

(८)

देवगण ब्रह्मा-सहित कृतकृत्य होकर चल पड़े।
शिव शिवानी-नेत्र हरिको याद करते ढल पड़े॥
शम्भुने इसके लिये अपनी अपरिमित आयुको।
कायको अनुमान कर रोका तपनको, वायुको॥

(९)

दे उन्हें निर्देश अति संक्षेपसे संकेतसे।
दी विदाई प्रेमसे अवगत करा अभिप्रेतसे॥
आप हो संलग्न तपमें शैलजाके साथमें।
व्यापिनी ऊर्जा समेटी शीघ्र अपने हाथमें॥

(१०)

यक्ष था अभिशप्त होकर केसरी वानर बना।
अप्सरा शापा उर्मीकी प्रेयसी थी अञ्जना॥
स्वर्णगिरिके शिखरपर आनन्दसे रहने लगे।
प्रान्तका शासन सफल वे शान्तिसे करने लगे॥

(११)

भव भवानीकी निरन्तर कर रहे आराधना।
पूर्ण द्वादश वर्ष थे, मनमें न कोई कामना॥
सुखद पावसका महीना व्योम मेघाच्छन्न था।
और वसुधातल चतुर्दिक् शस्यसे सम्पन्न था॥

(१२)

पूर्ण थे नो मास, मंगल-ग्रह सभी एकत्र थे।
मांगलिक लक्षण सुशोभित दीखते सर्वत्र थे॥
प्रसव-पीड़ाके बिना अद्भुत गुणोंके बालको।
अञ्जना जन्मा रही थी राक्षसोंके कालको॥

मन्त्रात्मक श्रीमारुतिस्तोत्रम्

ॐ नमो वायुपुत्राय भीमरूपाय धीमते।
नमस्ते रामदूताय कामरूपाय श्रीमते ॥ १ ॥
मोहशोकविनाशाय सीताशोकविनाशिने।
भग्नाशोकवनायास्तु दग्धलङ्काय वाग्मिने ॥ २ ॥

ॐ भयंकर रूपधारी बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमानको नमस्कार है। जो स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, मोह एवं शोकके विनाशक, सीताजीके शोकके निवारक, अशोकवनके विध्वंसक, लङ्काको भस्म करनेवाले और कुशल वक्ता हैं, उन श्रीमान् रामदूतको नमस्कार है ॥ १२ ॥

गतिनिर्जितवाताय लक्ष्मणप्राणदाय च।
वनौकसां वरिष्ठाय वशिने वनवासिने ॥ ३ ॥
तत्त्वज्ञानसुधासिन्धुनिमग्नाय महीयसे।
आञ्जनेयाय शूराय सुग्रीवसचिवाय ते ॥ ४ ॥

जिन्होंने अपने वेगसे वायुको भी जीत लिया है, जो लक्ष्मणके प्राणदाता, वंदरोंमें श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, वनमें निवास करनेवाले, तत्त्वज्ञानरूपी सुधा-सिन्धुमें निमग्न, महान् ऐश्वर्यशाली और सुग्रीवके सचिव हैं, उन शूरवीर अञ्जनानन्दनको प्रणाम है ॥ ३४ ॥

जन्ममृत्युभयघ्नाय सर्वक्लेशहराय च।
नेदिष्ठाय प्रेतभूतपिशाचभयहारिणे ॥ ५ ॥
यातनानाशनायास्तु नमो मर्कटरूपिणे।
यक्षराक्षसशार्दूलसर्पवृश्चिकभीहृते ॥ ६ ॥

जो जन्म-मृत्युरूपी भयके विध्वंसक, सम्पूर्ण कष्टोंके विनाशक, (भगवान् श्रीरामके) परम निकटवर्ती, भूत, प्रेत और पिशाचके भयके निवारक, पीडाके नाशक और यक्ष, राक्षस, सिंह, सर्प एवं बिच्छूके भयको मिटा देनेवाले हैं, उन बंदररूपधारी हनुमानजीको अभिवादन है ॥ ५६ ॥

महाबलाय वीराय चिरजीविन उद्धते।
हारिणे वज्रदेहाय चोल्लङ्घितमहाब्धये ॥ ७ ॥
बलिनामग्रगण्याय नमो नः पाहि मारुते।

जो महासागरको लाँघ जानेवाले, अहंकारियोंके गर्वहारी, चिरजीवी और बलवानोंमें अग्रगण्य हैं, जिनका शरीर वज्र-सरीखा कठोर है, उन महाबली वीरवर हनुमानजीको नमस्कार है। मारुतनन्दन ! हमारी रक्षा कीजिये ॥ ७½ ॥

लाभदोऽसि त्वमेवाशु हनुमन् राक्षसान्तक ॥ ८ ॥
यशो जयं च मे देहि शत्रून् नाशय नाशय।

राक्षसोंके लिये कालस्वरूप हनुमान ! आप शीघ्र ही लाभ प्रदान करनेवाले हैं, अतः मुझे यश और विजय प्रदान कीजिये तथा मेरे शत्रुओंका सर्वथा नाश कर दीजिये ॥ ८½ ॥

स्वाश्रितानामभयदं य एवं स्तौति मारुतिम्।
हानिः कुतो भवेत्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस प्रकार अपने आश्रित जनोंके लिये अभय प्रदाता हनुमानजीका स्तवन करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है। भला, उसकी हानि हो ही कैसे सकती है ! ॥ ९ ॥

इति श्रीहृत्पुण्डरीकाधिष्ठितश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीकृतं मारुतिस्तोत्रम् ॥

—शुक्ल

श्रीहनुमत्-गाथा

(रचयिता—पं० श्रीरामजी पाण्डेय, बी० ए०, काव्यरत्न)

(१)

देव ! वाणी, मन हमारे जल रहे संतापमें।
आज दोनों हों प्रतिष्ठित, हों समाहित आपमें॥
लेखनी लिपियद्ध कर दे आपके यश-गानको।
शान्ति पाऊँ, शान्ति दूँ, प्रत्येक मनको, कानको॥

(२)

एक दिन ब्रह्मादि पहुँचे शम्भुके कैलासपर।
शम्भु ध्यानारूढ़ थे चैतन्यके आकाशपर॥
वेद मन्त्रोंसे सभी वे प्रार्थना करने लगे।
शब्दसे आकाशके भी कानको भरने लगे॥

(३)

शम्भु भी व्युत्थित हुए, की रीति शिष्टाचारकी।
आगमनका हेतु पूछा प्रीति की कर्तारकी॥
दीन-से बोले विधाता, देव ! उस दिन विष्णुने।
प्रार्थना सुन ली हमारी दनुजके विजिगिष्णुने॥

(४)

आपके अनुरोधसे वादा किया अवतारका।
प्रण किया कुलके सहित दशकन्धके संहारका॥
हम निजी अज्ञानसे फिर भी प्रभो ! भयभीत हैं।
दीखते लक्षण सभी अनुमानसे विपरीत हैं॥

(५)

आप भी सहयोगको हरिके सहित अवतार लें।
धर्मके उद्धारके अधिकारका कुछ भार लें'॥
शैलजा सकोचमें थीं शम्भुकी मुस्कानसे।
देवतागण देखते थे यह सभी हैरान-से॥

(६)

मन उमाका ताडकर जगदीशने उत्तर दिया।
देवगण, ब्रह्मा, उमा-सबको प्रफुल्लित कर दिया॥
'विष्णु-सेवक भूमिका निर्वाहकी है कामना।
पार्वतीको साथ लेनेकी नहीं सम्भावना॥

(७)

अस्तु अपना अंश ही मैं दे सकूँगा आपको।
जो अलं भू-पाप-दानव-वंशके संतापको॥
पावती सूक्ष्मांश रूपा शक्तिभूता पासमें।
सन्निहित निर्दोष होंगी वीर राघव-दासमें'॥

(८)

देवगण ब्रह्मा-सहित कृतकृत्य होकर चल पड़े।
शिव शिवानी-नेत्र हरिकी याद करते ढल पड़े॥
शम्भुने इसके लिये अपनी अपेक्षित अणुको।
कायको अनुमान कर रोका तपनको, वायुको॥

(९)

दे उन्हें निर्देश अति संक्षेपसे सकेतसे।
दी विदाई प्रेमसे अवगत करा अभिप्रेतसे॥
आप हो संलग्न तपमें शैलजाके साथमें।
व्यापिनी ऊर्जा समेटी शीघ्र अपने हाथमें॥

(१०)

यक्ष था अभिशप्त होकर केसरी वानर बना।
अप्सरा शप्ता उन्हींकी प्रेयसी थीं अञ्जना॥
स्वर्णगिरिके शिखरपर आनन्दसे रहने लगे।
प्रान्तका शासन सफल वे शान्तिसे करने लगे॥

(११)

भव भवानीकी निरन्तर कर रहे आराधना।
पूर्ण द्वादश वर्ष थे, मनमें न कोई कामना॥
सुखद पावसका महीना व्योम मेघाच्छन्न था।
और वसुधातल चतुर्दिक् शस्यसे सम्पन्न था॥

(१२)

पूर्ण थे नौ मास, मंगल-ग्रह सभी एकत्र थे।
मांगलिक लक्षण सुशोभित दीखते सर्वत्र थे॥
प्रसव-पीड़ाके बिना अद्भुत गुणोंके
जन्मा रही थी राममाँके

(१३)

शम्भुने, पवमानने, पतिने उसे दर्शन दिये।
देवगणने हर्षसे नभसे सुमन वर्षण किये ॥
चन्द्रमाकी भाँति वह बालक सतत बढ़ने लगा।
वर्ण सब पढ़ने लगा, आयुष्यपर चढ़ने लगा ॥

(१४)

एक दिन वह सो रहा था, माँ गयी बाहर कहीं।
जागकर रोने लगा आहारको पाकर नहीं ॥
उदय-गिरिसे अंशुमाली त्यों लगे थे झाँकने।
नित्यकी ही भाँति रथको जा रहे थे हाँकने ॥

(१५)

मित्रने आकृति बनायी जानकर अतिरञ्जिनी।
द्रवित नीलम सिन्धुमें कलधौत कोमल कञ्जिनी ॥
बिम्बको अनुपम अलौकिक फल समझ अनुमानसे।
उत्प्लवन शिशुने किया हुंकार करि जी जानसे ॥

(१६)

चिर प्रतिश्रुत वृत्तका मनमें सहज अनुमान कर।
सूर्यने सूक्ष्मांशका शिशुमें दिया आधान कर ॥
तीन महती शक्तियोंका भार बालक बन गया।
विश्वके आधारका आधार बालक बन गया ॥

(१७)

भू-गुरुत्वाकर्ष-कक्षा पारकर चलने लगा।
तीव्र तापन-तापसे प्रत्यङ्ग ज्यों जलने लगा ॥
वायुने आश्चर्यसे, भयसे, सुशीतस्पर्शसे।
पुत्रको अपने सम्हाला मुग्धभाव-विमर्शसे ॥

(१८)

शाम्भवी माया ! उसी दिन राहु ग्रसने आ गया।
गगनमें रवि-वर्णको पीताभ करके छा गया ॥
लीलया लाङ्गूलधरने लील डाला लालको।
राहुने देखा सभय दुर्दान्त उद्धृत बालको ॥

(१९)

कौन है यह बाल, जिसका मुख गगन-सा हो गया
पिण्ड भीमाकार, जिसमें वह तपन सा खो गया
लौटकर देवेन्द्रसे सारी कहानी दी सुना
इन्द्रका अभिमान मानो बढ़ गया अस्सीगुना

(२०)

इन्द्र बोले क्रोधसे, 'राहो ! तुम्हारे धड़ नहीं
केतुके धड़ है, नहीं सिर, तदपि कोरे जड़ नहीं
फिर तुम्हारे अर्ध भोजन-पान होना चाहिये.
लोकमें अमृतप्रतिष्ठा ध्यान होना चाहिये ॥

(२१)

देख जो वैरी तुम्हारा शत्रु मेरा घोर है।
दूसरेका स्वत्व हरता, क्यों नहीं वह चोर है ॥
देवता, मानव, असुर हो, अन्य प्राणी धन्य हो।
शौर्य त्रिभुवन धन्य हो, प्रख्यात वीरम्मन्य हो ॥

(२२)

अस्थि-निर्मित वज्र मेरा देख, राहो ! वह चला।
मृत्यु-पारावारमें निस्सार वह तृण बह चला ॥
हा अरे ! यह क्या हुआ, स्वयमेव पवि निस्सार है।
आजतक अन्यर्थ था, वह वज्र अब बेकार है ॥

(२३)

भस्म करके वाम हनु वह आप ही मुरझा गया।
एक जटिल प्रहेलिकामें वह मुझे उलझा गया ॥
दौड़कर जाओ, विधातासे कहो इस वृत्तको।
दण्ड देनेका उपक्रम वे करें दुर्वृत्तको' ॥

(२४)

इन्द्रपर झपटा, उसे ले भीत ऐरावत गिरा।
राहुपर लपका, डरा वह इन्द्रके अभिमुख फिरा ॥
शून्यमें सुस्थिर खड़ा था काँपता आहत सिरा।
दूसरा वह रवि-सुमन नक्षत्र मण्डलसे गिरा ॥

(२५)

पुष्प वर्षा बीच बालकको उठा पवमानने।
केसरीको दे दिया उस मेरु गिरिके सामने॥
वायुके उपचारसे यह बाल सद्य प्राप्त था।
जदपि इस हित अञ्जनाका क्षीर ही पर्याप्त था॥

(२६)

वायु फिर भी क्षुब्ध थे सुरेन्द्रके व्यवहारसे।
या अलौकिक-वृत्तके माया बहुल व्यापार से॥
रोक ली क्षणभर उन्होंने शक्ति निज सजीवनी।
रवि-सहित भी सृष्टि निर्व्यापार हो अन्धी बनी॥

(२७)

भानु भी अत्यन्त लघु शिशुके अपरिमित तेजसे।
हो गये हतबुद्धि-से, निष्प्राण-से, निस्तेज-से॥
देवगणने आ यहाँ पूछा सकल वृत्तान्तको।
कर दिया सकेत रविने काष्ठ मौन कृतान्तको॥

(२८)

सूर्य बतलाने लगे, जब आ गये कुछ होशमें।
बाल था या काल था, मुख व्याप्त अगणित कोशमें॥
सूक्ष्म-वपु धारी पवनसे गुप्त था रक्षित हुआ।
लक्षणोंसे शम्भुसे बल-प्राप्त-सा लक्षित हुआ॥

(२९)

वे सभी आये, जहाँ थी स्वर्णगिरिकी वह गुहा।
आवरण घनतम बना था छा रही हिमकी कुहा॥
उन्मना थे केसरी, थी अञ्जना अवनत मुखी।
शान्त मुद्रा शिव किये थे, वायु भी अति ही दुखी॥

(३०)

प्रमुदिता पर पार्वती परिणामको पहचानकर।
भ्रमकी आगम्यमाना कीर्तिका अनुमान कर॥
देवगण थे बोलते वरदानकी वचनावली।
सारगर्भित शब्दमय अनुरागमय रचनावली॥

(३१)

शक्तियाँ अपनी उसे दीं सर्वदेवोंने तभी।
काम आयेंगी किसी दिन रामजीके वे सभी॥
सर्वदा संसारकी दावाग्निमें सन्तप्तको।
शान्ति देंगी प्राण देकर जीव विषयासक्तको॥

(३२)

सूर्यने विद्या-विनयमें अन्यतम शिशुको किया।
इन्द्रने अमरत्वका वरदान बालकको दिया॥
वरुणने अवगाहिता दी, अग्निने निर्दाहता।
ईशने दी ईशिता, गति वायुने अन्याहता॥

(३३)

यक्षपतिने सम्पदा दी, शैलजाने भक्ति दी।
वेदने प्रागल्भ्य, यमने पाशमोचन शक्ति दी॥
साथ ही की देवगणने घोषणा वरदानकी।
तुष्टिप्रद होगी हमें आराधना हनुमानकी॥

(३४)

देव दानव यक्ष किंनर नाग या गन्धर्वमें।
मर्त्य मानव सिद्ध प्रेत पिशाच निशिचर सर्वमें॥
पशु-विहग चर-अचर तीनों काल त्रिभुवनमें कहीं।
केसरी-सुतके यथा हरि भक्त हो सकता नहीं॥

(३५)

अञ्जना सुर नर सभीकी पूज्य जननी वन्द्य है।
आजसे तव किम्पुरुषकी जाति सृष्टि-अनिन्द्य है॥
धन्य है यह दक्षिणापथ भूमि, जिसमें जात हो।
कौन भारतमें कहे, त्रैलोक्यमें विख्यात हो॥

हमारे हनुमानजी

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी शारदापीठाधीश्वर स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका शुभाशीर्वाद)

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥

इस पवित्र भारतभूमिपर जन्म प्राप्त प्रत्येक धर्माभिमानी व्यक्ति श्रीमद्रामायणको अवश्य जानता है, साथ ही वह उसके प्रतिपाद्य मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी जीवनी भी न्यूनाधिकरूपसे जानता ही है। वह पवित्र ग्रन्थ हमारा मार्गदर्शक है। श्रीरामजीकी जीवनी हमारे लिये आदर्श है। हमारे सारे उत्तम संस्कार और आचरणोंपर रामायणका प्रभाव है ही।

हमारी माताएँ बचपनमें ही हमें श्रीराम-कथा सुनाती हैं। कीर्तनमण्डलियाँ भी श्रीरामजीके भजन गाकर लोगोंको आनन्द-सागरमें निमग्न कर देती हैं। कथावाचक भी श्रीरामकथा कहते-सुनाते हुए अपने एवं सभी श्रोताओंके जीवन-स्तरको ऊँचा करने-करानेके प्रयत्नमें सफल होते हैं। एक ही रामायणमें माता-पिता, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, सहोदर-बन्धु, राजा-प्रजा एवं स्वामी-सेवक—इन सबको अपने एवं दूसरोंके प्रति कर्तव्यताके लिये जो कुछ भावना होता है, मिल जाता है। यद्यपि श्रीरामायणके प्रधान नायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ही हैं, तथापि इसमें सुन्दरकाण्डमें आगे तो श्रीरामभक्त हनुमानजीकी ही जीवनी—चरित्रचित्रण अधिक विस्तारसे देखनेको मिलता है। रामायणमें कुल सात काण्ड हैं। उसके चौथे किष्किन्धाकाण्डके आरम्भमें ही श्रीहनुमानजी आते हैं। वहाँपर उनके गुणोंका अच्छा परिचय मिलता है।

श्रीरामचन्द्रजी स्वयं कहते हैं—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
(वा० रा० ४।३।२८)

ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेदकी शिक्षा पाये बिना कोई भी व्यक्ति इस प्रकार वार्तालाप नहीं कर सकता—इतनी श्रेष्ठ सम्भाषणकुशलता नहीं प्राप्त कर सकता। तात्पर्य यह कि श्रीहनुमानजी समस्त विद्याओंके पारंगत हैं।

इस प्रकार किष्किन्धाकाण्डसे लेकर युद्धकाण्डके अन्ततक वर्णित श्रीरामचन्द्रजीके पट्टाभिषेकतक प्रायः प्रत्येक प्रकरणमें श्रीहनुमानजी प्रधानरूपसे विराजते हैं। इनकी कथाके बिना रामायण अधूरी ही रह जाती। इन्हें हम श्रीरुद्रका अवतार मानते हैं और 'रुद्रमूर्तये नमः' कहकर इनकी पूजा भी करते हैं। इनके स्मरणसे बुद्धि, बल, यश, धीरता, निर्भयता, आरोग्य, सुदृढ़ता और वाक्पटुता भी प्राप्त होती है—

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता।
सुदार्ढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत्॥
(आनन्दरा० मनोहर० १३।१६)

भगवदवतारस्वरूप श्रीहनुमानजीकी स्वतन्त्र उपासना पद्धति भी है। उसके अनुसार अनुष्ठान करनेसे इष्ट प्राप्ति होती है और आत्मा तर जाती है। 'कल्याण'के इस विशेषाङ्क तथा अन्य अङ्कोंमें भी वह पाठकोंका देखनेको मिलेगी।

श्रीरामभक्त हनुमानजीके मन्दिर भी हमारे भारतमें प्रायः सभी गाँवोंमें हैं। श्रीहनुमानजीकी सपर्या कर आप सब कृतार्थ हों, यही हमारी शुभ कामना है।

'तौ हनुमत कहाऊँ'

हौं प्रभु जू को आयसु पाऊँ।
अबहीं जाइ, उपारि लंक गढ़, उदधि पार लै आऊँ॥
अबहीं जम्बूद्वीप इहाँ तैं, लै लंका पहुँचाऊँ।
सोखि समुद्र उतारौं कपि-दल, छिनक विलम्ब न लाऊँ॥
अब आवैं रघुबीर जीति दल, तौ हनुमत कहाऊँ।
'सूरदास' सुभ पुरी अजोध्या, राघव सुयस बसाऊँ॥
(सूर-रामचरितावली १११)

श्रीहनुमत्तत्त्व

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पश्चिमाम्नाय द्वारकाशारदापीठाधीश्वर
श्रीमदभिनवसच्चिदानन्दतीर्थस्वामीजी महाराजका प्रसाद)

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

हमारे सनातनधर्ममें अनेक उपास्य देवता हैं। स्मार्तोपासनामें पञ्चदेवोपासना प्रसिद्ध है ही, किंतु इन सभी उपास्य देवोंमें यदि किसीको ब्रह्मचर्यका मूर्तिमान् स्वरूप कहा जा सकता है तो वे हैं हमारे श्रीहनुमानजी ही। अतः सम्यक् ब्रह्मचर्य परिपालन, शत्रु निग्रह, काम विजय, कार्य सिद्धि आदिकी दृष्टिसे ये रुद्रावतार श्रीहनुमानजी अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। उपासना पद्धतिकी जानकारीके लिये तो रामायणस्थ हनुमच्चरित्रका अवलोकन परमावश्यक है क्योंकि दास्य भक्तिके लिये हनुमानजी ही प्रमुख उदाहरण हैं। जैसा पद्यावलीके इस ६३ वें श्लोकमें कहा गया है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥

स्वयं वानर होनेपर भी दास्य-भक्तिके प्रतापसे भगवान् श्रीरामचन्द्रके प्रिय दास होते हुए भी आप देवता बन गये। यह सिद्धि दूसरा कोई कपिपति नहीं प्राप्त कर सका।

श्रीहनुमानजीका आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-पालनका आदर्श सर्वथा अद्वितीय है। इतिहासमें इसका ऐसा अन्य श्रेष्ठ उदाहरण कहीं नहीं मिलता। अदर्शन, अस्पर्शन, अस्मरण, असंकल्प आदि सामान्य ब्रह्मचर्यके आठ अङ्ग निर्दिष्ट हैं। किंतु इसके मूलमें एतदर्थ योग-वेदान्तादिके स्वाध्यायद्वारा दिव्य ज्ञान, वैराग्य एवं अभ्यास भी आवश्यक होते हैं तथा जन्मान्तरीय स्थिति भी देखी जाती है। इन सभी दृष्टियोंसे साधनसम्पन्न रुद्रावतार श्रीहनुमानजीने आजन्म ब्रह्मचर्यके परिपालनद्वारा अपनेको अपरिमित शक्तिशाली बनाकर श्रीरामायण-कथाको भी अमर बना दिया। इसमें लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है।

तथापि श्रीहनुमानजीकी उपासना 'उग्र' कही गयी है, अतः साधकको तत्सम्बन्धी आभिचारिक (मारण, मोहन आदि) उपासनाएँ नहीं करनी चाहिये। अस्तु, हम उन्हें सादर नमस्कार करते हुए इस निबन्धका उपसंहार करते हैं—

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥

महाबलवान् भगवान् हनुमान

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पूर्वाम्नाय जगन्नाथपुरीक्षेत्रस्थ गोवर्धनपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज)

अञ्जनीपुत्र, पवनसुत, शंकरसुवन, केसरीनन्दन आदि पद संतशिरोमणि, कविशिरोमणि, भक्तशिरोमणि, कलि-पावनावतार श्रीतुलसीदासजीने महाबलवान् भगवान् श्रीहनुमानजीके लिये प्रयुक्त किये हैं। लोगोंको भ्रम होता है कि एक साथ ये इतने व्यक्तियोंके पुत्र कैसे कहे गये ? किंतु वस्तुस्थितिपर विचार करें तो सब सुव्यवस्थित ही है। भगवान् भूतभाव विश्वनाथ शंकरके अवतार होनेके कारण ये शंकरसुवन हैं। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इस शास्त्र-वचनानुसार वानरराज केसरीके औरस पुत्र होनेके कारण इन्हें केसरीनन्दन कहना सर्वथा सुसङ्गत ही है। पुञ्जिकस्थला नामकी अप्सरा शापभ्रष्ट होकर कामरूप वानरीके रूपमें अवतरित हुई। एक बार वह मनुष्यरूपमें दिव्यातिदिव्य वस्त्राभूषणसे सुसज्जित हो पर्वतपर विचरण कर रही थी। वायुदेवने एक झपाटेमें उसकी ओर वहन किया। उसने तुरत कहा—'कौन मुझ पतिव्रताका स्पर्श करके अपने पवनात्वको आमन्त्रित कर पतनके घोर गर्तमें गिरानेको लालायित हो रहा है?' सर्वप्राण वायुदेव बोले—'देवि! ऐसी बात नहीं है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायक अशरणशरण अकारणकरुण करुणावरुणालय निर्गुण निराकार भगवान् भूभारापहरणार्थ मानवरूप धारणकर रावणादि असुरोंका कदन करनेके लिये अवतरित हो रहे हैं। मैं उनकी सेवाके लिये तुम्हारे उदरमें पुत्ररूपमें आना चाहता हूँ, कृपया क्षमा करें।' बस, पवनसुत और अञ्जनीपुत्र रूपसे इनकी विख्यातिका यही कारण है।

इन सब बातोंपर विश्वास न करनेवाले सज्जनोंसे भी इतना मान लेनेकी आशा तो हमें रखनी ही चाहिये कि श्रीहनुमानजी महाराजके रूपमें एक निखरा हुआ व्यक्तित्व सबके सामने आता है। एक अकेला व्यक्ति रावण-जैसे विश्वविजयी शत्रुके घरमें घुसकर अपना ध्येय पूर्ण करनेके बाद शत्रुसमुदायसे घिरा होनेपर भी निर्भीक रूपसे ललकार कर अपने स्वामीका जय-जयकार करता हुआ कहता है—'खबरदार! मेरा सामना करनेकी थोड़ी-सी भी चेष्टा विनाशक सिद्ध होगी। मैं उन स्वामीका सेवक हूँ, जो स्वयं अति बलवान् हैं और जिनके अनुज भी वैसे ही हैं। वानरराज सुग्रीव उनके सेवक बन चुके हैं, जिनके बल-पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं। फिर मैं उन स्वामीका सेवक हूँ, जिन्हें संसारमें कठिन-से-कठिन कार्य करनेमें भी कोई क्लेश नहीं होता। मैं स्वयं भी वह हनुमान हूँ, जिसके शरीरपर इन्द्रका वज्र भी कुछ प्रभाव न डाल सका। समस्त संसार भी शत्रु बनकर अपनी सेनाएँ मेरे सामने भेज दे तो मैं उनका विनाश करके ही छोड़ूँगा। याद रखो, मैं वायुदेवका पुत्र होनेके कारण उतना ही बलवान् भी हूँ।' 'अजी, और कहीं यह डींग हाँको, पता भी है—यह रावणकी लङ्का है, जिससे सभी देव-दानव-मानव डरते हैं।' 'होगी, हमें इसकी चिन्ता नहीं। एक क्या हजारों रावण भी अकेले मेरे सामने नहीं टिक सकते।' 'रावणके पास तोप, टैंक, मशीनगन, एटमबम, हाइड्रोजन बम, राकेट आदि हैं, तुम्हारे पास तो कुछ नहीं।' 'ये सब-के-सब धरे ही रह जायँगे। जब मैं पर्वतों, पर्वत शिलाओं, वृक्षों-महावृक्षोंसे प्रहार करने लगूँगा तो सृष्टि उलट-पलट हो जायगी। तुमसे जो करते बने, करो। मैं इस सोनेकी लङ्काको तहस-नहस कर, रावणके देखते-देखते जगन्माता जानकीके चरणोंमें प्रणाम कर, अपना काम पूरा करके चला जाऊँगा और तुम सभी हाथ मलते और पछताते ही रह जाओगे।'

कहना न होगा कि महाबलवान् भगवान् हनुमानने ये सब-की-सब प्रतिज्ञाएँ एकाकी, असहाय और अस्त्रबल, शस्त्रबल, सैन्यबल एवं संघटनबलसे शून्य होते हुए भी केवल बुद्धिबल और बाहुबलके आधारपर परिपूर्ण कीं। इष्टदेव भगवान् चन्द्रमौलीश्वर और भगवती त्रिपुरसुन्दरीके चरणोंमें हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इस संकटके समय राष्ट्रमें सर्वत्र एवं जन-जनमें भगवान् हनुमान-जैसी भावना और कार्य-क्षमता उत्पन्न हो।

वर्तमान कालमें श्रीहनुमदुपासनाकी आवश्यकता

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य उत्तराम्नाय बदरीक्षेत्रस्थ ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीशान्तानन्द सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद)

आज भारतमें अर्थ-कामके धर्म-नियन्त्रित न होनेसे अमर्यादित एषणाएँ पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हो रही हैं। आबाल-वृद्ध नर-नारी कामाचार, अभक्ष्यभक्षण आदि प्रवृत्तियोंमें फँसकर—विमोहित होकर व्यक्ति, समाज, देश एवं राष्ट्रके प्रति अपने कर्तव्यसे परिभ्रष्ट हो रहे हैं। जहाँ थोड़ी बहुत धार्मिकता एवं आध्यात्मिकताके अंश विद्यमान भी हैं, वहाँ भी उनके आवरणमें दम्भ, पाखण्ड आदि दुष्प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं। इस विषम विमोहक दुःस्थितिमें अञ्जनी नन्दन, केसरी-कुमार बालब्रह्मचारी श्रीहनुमानजीकी उपासना परमावश्यक है, क्योंकि उनके चरित्रसे हमें ब्रह्मचर्य व्रत-पालन, चरित्र-रक्षण, बल-बुद्धिका विकास, अपने इष्ट भगवान् श्रीरामके प्रति अभिमानरहित दास्य भाव आदि गुणोंकी शिक्षा प्राप्त होती है।

‘देवो भूत्वा देवं यजेत्’—यह उपासनाका मुख्य सिद्धान्त है और इसका ‘उप’ अर्थात् समीप, ‘आसना’ अर्थात् स्थित होना अर्थ है। जिस उपासनाद्वारा अपने इष्टदेवमें उनकी गुण धर्म रूप शक्तियोंमें सामीप्य-सम्बन्ध स्थापित होकर तदाकारता हो जाय, अभेद-सम्बन्ध हो जाय, यही उसका तात्पर्य एवं उद्देश्य है।

आजकी इस विषम परिस्थितिमें मनुष्यमात्रके लिये, विशेषतया युवकों एवं बालकोंके लिये भगवान् हनुमानकी उपासना अत्यन्त आवश्यक है। हनुमानजी बुद्धि-बल-वीर्य प्रदान करके भक्तोंकी रक्षा करते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि उनके नामोच्चारणमात्रसे ही भाग जाते हैं और उनके स्मरणमात्रसे अनेक रोगोंका प्रशमन होता है। मानसिक दुर्बलताओंके संघर्षमें उनसे सहायता प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसीदासजीको श्रीरामके दर्शनमें उन्हींसे सहायता प्राप्त हुई थी। वे आज भी जहाँ श्रीराम-कथा होती है, वहाँ पहुँचते हैं और मस्तक झुकाकर, रोमाञ्च-कण्टकित होकर, नेत्रोंमें अश्रु भरकर श्रीराम कथाका सादर श्रवण करते हैं। इस प्रकार वे भगवद्भक्तोंमें अव्यक्तरूपसे उपस्थित होकर उनकी भक्ति भावनाओंका पोषण करते हैं। आज भी अधिकांश भक्तोंको उनके अनुग्रहका प्रसाद मिलता है। अतः उनकी कृपाकी उपलब्धिके लिये शास्त्रोंमें प्रतिपादित उपासना-पद्धतिके अनुसार, जिसमें श्रीहनुमदुपासना विस्तारसे वर्णित है, उपासनामें संलग्न होनेसे अनेकों प्रकारकी लौकिक-पारलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। भारतको समुन्नत बनानेके लिये भौतिक क्षेत्रमें भी अनेकों कार्य किये जा रहे हैं, किंतु जितना आध्यात्मिक पक्षपर बल दिया जाना चाहिये, उतना नहीं दिया जा रहा है। फलतः भौतिक समृद्धि मनुष्यके लिये वरदान न बनकर अभिशाप होने जा रही है। ऐसी परिस्थितिमें राष्ट्रको जिस आदर्शकी आवश्यकता है, वह मूर्तिमान् होकर हनुमच्चरित्रमें उपलब्ध होता है। हनुमानजी भगवत्तत्त्वविज्ञान, पराभक्ति और सेवाके ज्वलन्त उदाहरण हैं। विचारोंकी उत्तमताके साथ भगवदनुरक्ति और सेवा व्यक्तित्वके पूर्ण विकासकी द्योतक हैं, जो हनुमानजीके चरित्रमें देखी जा सकती हैं। भारतके भटकते हुए नवयुवकोंको हनुमानजीसे बहुत बड़ी प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

हनुमानजी बालब्रह्मचारी हैं। उनके ध्यान एवं ब्रह्मचर्यानुष्ठानसे निर्मल अन्तःकरणमें भक्तिका समुदय भली प्रकार होता है। हनुमानजीके चरित्रमें शक्तिसंचय, उसका सदुपयोग, भगवद्भक्ति, निरभिमानिता आदिका पूर्ण विकास होनेके कारण उनकी आराधनासे इन गुणोंकी उपलब्धि साधक युवकों एवं बालकोंको भी हो सकेगी।

महामनाकी हार्दिक इच्छा

श्रीमहावीरजी मनके समान वेगवाले और शक्तिशाली हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि उनका दर्शन लोगोंको गली-गलीमें हो। मुहल्ले मुहल्लेमें श्रीहनुमानजीकी मूर्ति स्थापित करके लोगोंको दिखलायी जाय। जगह-जगह अखाड़े हों, जहाँ इनकी मूर्तियाँ स्थापित की जायँ।

—महामना पं०

सर्वगुणसम्पन्न श्रीहनुमान

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य ऊर्ध्वाम्नाय काशी-सुमेरुपीठाधीश्वर स्वामी श्रीशङ्करानन्द सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद)

समस्त भारतमें अञ्जनीनन्दन पवनतनय श्रीहनुमानजीका महत्त्व पूजा एवं उपासनाकी दृष्टिसे अप्रतिम है। श्रीहनुमानजीके उपासक, पूजक न केवल सनातनधर्मावलम्बी ही हैं, अपितु अन्य मतावलम्बी भी हैं। कतिपय ऐसे व्यक्तियोंसे मेरा सुपरिचय है, जो हनुमानजीके अनन्य उपासक हैं, यद्यपि उनका सम्बन्ध मूलतः जैनमत तथा आर्यसमाजसे है। शाक्त, शैव आदि सम्प्रदायोंके लोग भी श्रीहनुमानजीकी पूजा-अर्चना श्रद्धासे करते हैं। शास्त्रका सिद्धान्त है कि 'कार्यं कारणमन्तरेण नोत्पद्यते' अर्थात् कोई भी कार्य कारणके बिना उत्पन्न नहीं होता। अतः श्रीहनुमानजीकी इस महती लोकप्रियताके मूलमें निश्चितरूपसे कोई प्रबल कारण छिपा हुआ है।

संस्कृत-वाङ्मयमें श्रीहनुमानजीकी कीर्तिवैजयन्ती सर्वत्र फहरा रही है। इन्हें शिवका अवतार माना जाता है। उत्सव एवं मत-सम्बन्धी प्रायः सभी निबन्धकग्रन्थोंमें, विशेषतः वायुपुराणमें इनके विषयमें स्पष्टरूपसे यह वचन प्राप्त होता है—

> आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे च मारुतिः।
> मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः॥

अर्थात् आश्विन (चान्द्रमास—कार्तिक)के कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्वाती नक्षत्र और मेष लग्नमें माता अञ्जनाके गर्भसे स्वयं भगवान् शंकर ही प्रकट हुए।

किसीके व्यक्तित्व, स्वभाव, बल, पौरुष आदिका परिचय प्राप्त करनेके लिये उसके विषयमें स्वयंका कथन, तत्कालीन व्यक्तियोंका वर्णन, उसके विरोधियोंके कथन आदि प्रधान साधन माने जाते हैं। इस दृष्टिसे हमें श्रीहनुमानजीके विषयमें विचार करनेपर उनका लोकोत्तर एवं दिव्य स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

ऋक्षराज जाम्बवान्‌जी कहते हैं—

> हनूमन् हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि।
> रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च॥
> पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव।
> विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते॥
> बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव।
> विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे॥
> (वा० रा० ४।६६।३,६,७)

'हनुमानजी! तुम वानरराज सुग्रीवके तुल्य हो। यही नहीं, प्रत्युत तेज तथा बलमें तुम श्रीरामचन्द्रजी और श्रीलक्ष्मणजीके समान हो। गरुड़जीके दोनों पंखोंमें जितना बल है, तुम्हारी दोनों भुजाओंमें भी उतना ही बल और पराक्रम है। अतः तुम्हारा विक्रम एवं वेग भी उनसे किसी प्रकार कम नहीं है। वानरश्रेष्ठ! तुम्हारा बल, बुद्धि, तेज तथा सत्त्व (उत्साह) समस्त प्राणियोंसे विशिष्ट अर्थात् अधिक है। फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते?'

श्रीजाम्बवान्‌के उपर्युक्त वचन श्रीहनुमानजीके बल, बुद्धि, तेज और सत्त्वके विषयमें कितना महत्त्वपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं।

वानरराज सुग्रीव हनुमानजीसे कहते हैं—

> न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये।
> नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव॥
> सासुराः सगन्धर्वाः सनागनरदेवताः।
> विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः॥
> गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे।
> पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः॥
> तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते।
> तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥
> त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
> देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥
> (वा० रा० ४।४४।१—७)

'वानरश्रेष्ठ! मैं देखता हूँ कि भूमि, अन्तरिक्ष, आकाश, अमरालय अथवा जलमें भी तुम्हारी गतिका अवरोध नहीं है। तुम असुर, गन्धर्व, नाग, नर, देवता, सागर और पर्वतोंसहित समस्त लोकोंको जानते हो। वीर महाकपे! गति, वेग, तेज और फुर्ती—ये सभी सद्गुण तुममें अपने महापराक्रमी पिता वायुके ही समान हैं। तुम्हारे समान इस पृथ्वीपर दूसरा कोई तेजस्वी नहीं है। अतएव

वीर ! ऐसा प्रयत्न करो जिससे सीताका (शीघ्र) पता लग जाय। नीतिशास्त्रविशारद हनुमान ! तुममें बल, बुद्धि, विक्रम तथा देश एवं कालका अनुसरण और नीतिका ज्ञान भी पूर्णरूपसे है ।'

महर्षि अगस्त्यसे भगवान् श्रीराघवेन्द्र कहते हैं—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च ।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥
दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् ।
समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥
धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा ।
दृष्टा सम्भाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा ॥
सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किंकरा रावणात्मजः ।
एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ॥
भूयो बन्धाद् विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ।
लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनेव मेदिनी ॥
न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥
एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥
हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा ।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत् ॥
(वा० रा० ७ । ३५ । २—१०)

'यद्यपि वाली और रावणमें अतुल बल था, तथापि मेरी समझमें ये दोनों भी हनुमानजीके समान न थे। शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, प्राज्ञता, नीतिपूर्वक कार्य करनेकी क्षमता, पराक्रम तथा प्रभाव—इन सभी सद्गुणोंने हनुमानजीके भीतर घर कर रखा है। सीताके अन्वेषणमें तत्पर वानरी-सेना समुद्रको देखकर जब विकल हो रही थी, तब महावीर हनुमानने उसे आश्वासन दिया तथा वे सौ योजन समुद्रको लाँघ गये। पुनः लङ्कापुरीकी अधिष्ठात्री राक्षसीको परास्तकर उन्होंने रावणके अन्तःपुरको देखा, सीताका पता लगाया, उनसे वार्तालाप करके उन्हें ढाढ़स बँधाया। पुनः वीर हनुमानने अकेले ही रावणके सेनापतियों, मन्त्रिपुत्रों, किंकरोंका तथा रावण-पुत्र अक्षकुमारका वध किया । पश्चात् ब्रह्मास्त्रके बन्धनसे छूटकर उन्होंने रावणसे वार्तालाप करते हुए उसे फटकारा और अग्नि जैसे पार्थिव पदार्थोंको जलाती है, उसी प्रकार लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया। युद्धके समय हनुमानजीने जो अद्वितीय पराक्रमके कार्य किये, वैसे काल, इन्द्र, विष्णु तथा कुबेरके भी नहीं सुने जाते। इन्हींके बाहुबलसे मैंने लङ्का, सीता, लक्ष्मण, राज्य, मित्र और बान्धवोंको प्राप्त किया है। अधिक क्या कहूँ, यदि वानराधिपति सुग्रीवके मित्र श्रीहनुमानजी न होते, उनकी सहायता मुझे न मिलती तो सीताका पता भी कौन लगा सकता था ?'

श्रीहनुमानजी लङ्कामें रावणके अन्तःपुरमें जाकर वहाँके दृश्यको देखनेके अनन्तर विचार करते हैं—

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ।
* * * *
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते ॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥
(वा० रा० ५ । ११ । ३८ ३९, ४१ ४२)

'रावणके अन्तःपुरमें प्रसुप्त स्त्रियोंका मैंने दर्शन किया। कहीं यह कार्य मेरे धर्मका लोप तो न कर देगा इत्यादि ? पुनः स्वयं ही इसका समाधान करते हुए वे कहते हैं कि यद्यपि मैंने रावणकी स्त्रियोंका दर्शन किया है, तथापि मेरे मनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है। समस्त इन्द्रियोंकी शुभाशुभ-प्रवृत्तिमें मन ही कारण होता है और मेरा यह मन सर्वथा विकारशून्य रहा है, अतः धर्मलोपका यहाँ कोई प्रसङ्ग नहीं है।' इस उक्ति से श्रीहनुमानजी परमयोगी सिद्ध होते हैं।

रावण भी कहता है—

न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रतितर्कयन् ।
(वा० रा० ५ । ४६ । ९)

''उसके अद्भुत पराक्रमको जानते हुए मैं उसे वानर मात्र नहीं मान सकता।' उसे इन्द्र आदिने अपने तपोबलसे हमारे विनाशके लिये वानररूप बनाया होगा।

लोग उसका अपमान न करना, क्योंकि यह अत्यन्त वीर एवं पराक्रमशाली है। मैंने वाली, सुग्रीव आदिको भी देखा है, परंतु उन सबकी इस वानरकी गति, तेज, पराक्रम, मति, बल, उत्साह आदिमें तुलना नहीं की जा सकती।

महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम्।

(वा० रा० ५। ४६। १४)

'यह वानररूपमें निश्चित ही कोई महाबलशाली अलौकिक पौरुषसम्पन्न प्राणी है।" इस प्रकार रावण-जैसा दुर्दान्त शत्रु हनुमानजीसे आन्तरिक रूपसे भयाक्रान्त हो जाता है। इसलिये श्रीहनुमानजीकी दिव्यतामें कोई संशय का स्थान ही नहीं हो सकता।

'रामरहस्योपनिषद्'के आधारपर श्रीहनुमानजी ब्रह्म ज्ञानियोंमें सर्वोत्तम ज्ञानीके रूपमें उपलब्ध होते हैं—

सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्तथा।
प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हनुमन्तमथाब्रुवन्॥
वायुपुत्र महाबाहो किं तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम्।
पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि॥
चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु विद्यास्वाध्यात्मिकेऽपि च।
सर्वेषु विद्यादानेषु विघ्नसूर्येशशक्तिषु।
एतेषु मध्ये किं तत्त्वं कथय त्वं महाबल॥

(१। १-४)

"ऋषिगण, प्रह्लाद आदि विष्णुभक्त तथा योगियों एवं ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादि भी श्रीहनुमानजीके पास आकर जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करते हैं—'महाबाहु वायुपुत्र! अठारह पुराणों, अठारह स्मृतियों, चारों वेदों, छहों शास्त्रों, सभी विद्याओं तथा आध्यात्मिक शास्त्रमें ब्रह्मवादियोंका तत्त्व क्या है? अर्थात् ब्रह्मवादी किस तत्त्वको यथार्थ सत्य मानते या ब्रह्मरूपसे समझते हैं। सम्पूर्ण विद्याओंके दानमें तथा गणेश, सूर्य, शिव और शक्ति—इनमें यथार्थ तत्त्व क्या है? महाबली हनुमानजी! हम सबपर अनुग्रह करके आप उस तत्त्वका कथन कीजिये।"

इस प्रकार सनकादि-जैसे ब्रह्मज्ञानियोंका जिज्ञासु रूपसे श्रीहनुमानजीसे तत्त्वविषयक प्रश्न करना तथा उनके द्वारा उपदेश दिया जाना स्पष्टतया श्रीहनुमानजीकी तत्त्वदर्शिताका परिचायक है। इसी सब कारणसे संतशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीरामचरित मानसके सुन्दरकाण्डमें श्रीहनुमानजीकी वन्दना करते हुए उनके उपर्युक्त गुणगणविशिष्ट स्वरूपका वर्णन करते हैं—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

प्रसन्नता तथा आनन्दका विषय यह है कि श्रीहनुमानजी आज भी हम सबकी आराधनाके आधार पर हमारे कष्टोंको दूर करते हैं, हम सबकी चित्तवृत्तिको दैवी शक्तिकी ओर उन्मुख करते हैं एवं अपनी अदृश्य प्रेरणासे भगवान्‌में श्रद्धा एवं भक्तिका स्रोत प्रवाहित करते हैं।

भगवान् श्रीरामने स्पष्ट शब्दोंमें श्रीहनुमानजीसे कहा है—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।

(वा० रा० ७। १०८। ३३½)

'वानरराज! जबतक लोकमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।'

श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामकी आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य करते हुए कहते हैं—

यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

(वा० रा० ७। १०८। ३७½)

'भगवन्! जबतक संसारमें आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ भूमण्डलपर अवस्थित रहूँगा।'

श्रीमारुतिका महत्त्व

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद)

श्रीमद्रामायण एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जो मानव-जीवनके लिये धर्मशास्त्रोंकी तरह ही धर्मका प्रबोध करता है। इसमें कई पात्र प्रतिबिम्बित होते हैं—जैसे लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विश्वामित्र, सुग्रीव, विभीषण आदि। किंतु श्रीराम और माता सीता इसके प्रधान पात्र हैं। इन दोनोंके द्वारा श्रीहनुमानजी प्रधान बने हैं। अञ्जनादेवीके पुत्र होनेके कारण इनका नाम 'आञ्जनेय' पड़ा। मरुतका अर्थ है—वायु। मरुतका पुत्र होनेके कारण इन्हें 'मारुति' भी कहा जाता है। श्रीरामके अवतारको पूर्ण एवं सफल बनानेके लिये रामायणमें श्रीहनुमान ही प्रधान पात्र परिलक्षित होते हैं। ये रामायणके एक ऐसे महान् पात्र हैं, जिन्होंने भगवान् श्रीरामका सायी हुई सीताका संदेश दिया तथा रावणके संहार-कार्यमें भी उनकी पूर्ण सहायता की। श्रीमारुति-पात्रके विना रामायण रामायण ही नहीं रहती। श्रीहनुमानजी केवल शारीरिक बल-सम्पन्न ही नहीं, अपितु बुद्धि-बलसम्पन्न भी हैं। यदि उनका बल शरीरतक ही सीमित रहता तो उनके जीवनमें केवल युद्ध-ही-युद्ध रह जाता। हनुमानजी बुद्धि-बलसम्पन्न, चतुर, प्रतिभावान् और समर्थ हैं, जो समय और संदर्भके अनुसार भाषण कर अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ—सीतामाताकी खोजमें अशोक-वनमें पहुँच कर अपने आगमनका समाचार व्यक्त करनेके लिये उन्होंने जिस बौद्धिक प्रणालीका उपयोग किया, वही इसके लिये प्रबल प्रमाण है।

ऐसे महाबली और पर्वततक उखाड़ लानेवाले हनुमान जी अपने स्वामी श्रीरामके सम्मुख हाथ जोड़कर नतमस्तक हो केवल भक्तिभावसे ही विद्यमान रहते हैं। उन्होंने श्रीराम भद्रकी तन और मनसे जो महान् सेवा की, उसके प्रतिफलके रूपमें देनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी-जैसे महान् दानीके पास भी कुछ नहीं था।

जो निःस्वार्थभावसे सेवा करते हैं, उनके मनकी पवित्रता होती है और साथ-ही-साथ उन्हें आत्माका साक्षात्कार भी होता है। यही उसका प्रतिफल है। इसीलिये जो निरन्तर आत्माका साक्षात्कार करके अहर्निश श्रीरामके ध्यानमें मग्न रहते हैं, वे चिरंजीवी होते हैं। हनुमानजीके विषयमें श्रीमदाद्य शंकराचार्यने 'हनुमत्पञ्चरत्न'के नामसे पाँच श्लोक रचे हैं, जिनमें एक नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

> दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः ।
> दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भातु हनुमतो मूर्तिः ॥

अर्थात् 'श्रीराम-नाम'के स्मरणकी महिमासे ही हनुमानजीने माता सीताका दुःख दूर किया, श्रीराम-महिमाको व्यक्त किया, श्रीरामके वैभवको प्रकट किया, श्रीराम-नाम-जपकी महिमासे समुद्रको पार किया और अन्तमें लङ्का प्रवेशके समय समुद्रपर पुल बाँधकर सुगमतासे सेनाके साथ लङ्कामें भी प्रवेश किया तथा रावणकी कीर्तिपताकाका ध्वस्त किया। ऐसे हनुमानजीका श्रीविग्रह मेरे सामने सुशोभित हो।

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण घटनाओंके आधारपर हमें श्रीराम नाम-स्मरणकी महिमा स्पष्टरूपसे विदित होती है। साधारणतया तो उपासक जिन जिन मूर्तियोंकी उपासना करते हैं, उन-उनके नाम-जप या अनुष्ठानसे तत्सम्बन्धित देवताओंका साक्षात्कार कर लेते हैं। किंतु हनुमानजीकी बात अलग है, उन्हें 'श्रीराम-नाम'के अतिरिक्त अन्य कोई जप प्रसन्न नहीं कर सकता, श्रीराम-मन्त्र ही उनके लिये सर्वस्व है। इस महान् महिमाके कारण ही उन्होंने दशकण्ठका यश मिटा दिया था। हमारी भी यही कामना है कि ऐसे महिमापूर्ण हनुमानजी सदैव हमारे सम्मुख विद्यमान हों। साथ ही यह भी हमारी आकाङ्क्षा है कि सभी सज्जन इस प्रकारकी प्रार्थना करें और अपने जीवनमें हनुमानजीका साक्षात्कार कर लेनेका अहो भाग्य प्राप्त करें। आप किसी एक देवताकी आराधना द्वारा तो एक ही फल प्राप्त कर सकते हैं, किंतु श्रीहनुमानजीकी आराधनाद्वारा तो आप बुद्धि, बल, कीर्ति, धीरता, निर्भीकता, आरोग्य, सुदृढता और वाक्पटुता आदि सभी फल प्राप्त कर सकते हैं—

> बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता ।
> सुदार्ढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत् ॥
> (आनन्दरा० मनोहर० ८)

श्रीहनुमदुपासनामें सावधानी

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य बदरीक्षेत्रस्थ उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज),

घरमें नित्यप्रति श्रीहनुमानजी महाराजकी पूजा करनेसे भूत-प्रेत नहीं सताते। उनके नाममें अमोघ शक्ति है।

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महावीर जब नाम सुनावै॥

श्रीहनुमानजी महाराजको जो भी प्रसाद चढ़ाया जाय, वह शुद्ध घीमें शुद्धतापूर्वक घरपर बनाया हुआ होना चाहिये। यदि ऐसे प्रसादकी व्यवस्था न हो सके तो भोग लगाये ही नहीं। इसी प्रकार हनुमानजी महाराजको शुद्ध कूपजल अथवा गङ्गाजलसे स्नान कराना चाहिये। श्रीहनुमानजीका मन्दिर बनवानेके साथ ही कुआँ अवश्य बनवाना चाहिये, जिससे उपासक स्नानादि कार्य शुद्धतापू[र्वक] कर सके तथा देव-पूजनका कार्य पवित्रतापूर्वक सम्प[न्न] हो सके।

श्रीहनुमानजीके मन्दिरके पुजारीको सदाचारी हो[ना] चाहिये। शुद्ध सिन्दूर और शुद्ध घी आदिसे श्रीहनुमा[नजी] महाराजका चोला चढ़ानेका विधान है। मन्दिरमें श्रीरा[म-नाम] के पाठसे हनुमानजी बड़े प्रसन्न होते हैं। प्रत्येक मङ्ग[लवार] और शनिवारको दर्शन करनेसे तथा हनुमानचालीसाका [पाठ] करनेसे साधकका परम कल्याण होता है।

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदास[जी])

श्रीराम-भक्तिकी सजीव मूर्ति—श्रीहनुमान

(अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

परात्पर पूर्णब्रह्म श्रीरामका अवतार चतुर्व्यूहात्मक मात्र न होकर पञ्चायतन-रूपमें भी शास्त्रोंमें वर्णित है। एक ही ब्रह्मविभूति जहाँ चतुर्धा विभक्त होकर आविर्भूत हुई, वहाँ उसी परिवारके अनन्य भक्त श्रीहनुमान भी हैं। तत्कालीन विश्वमें अतुल, अलौकिक, दिव्य आनन्दामृतसिन्धुमें प्रफुल्लित श्रीराम-सरोजके दिव्यातिदिव्य सौरभके सहजोन्मत्त भ्रमर दो ही हुए—एक श्रीभरत और दूसरे श्रीहनुमान। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें श्रीरामने हनुमानजीको कहा—'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना।' (मानस ४।२।३½), 'तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई।' (ह० चा०)।

श्रीहनुमान श्रीराम-भक्तोंके परमाधार, रक्षक और श्रीराम मिलनके अग्रदूत हैं। श्रीराम-भक्तको श्रीहनुमानजीसे सदैव प्रेम, आश्रय और सन्देह सदा प्राप्त होती है। महावीर हनुमानजीके वचनमें ही नहीं, किंतु उनके वास्तविक जीवनमें भी कोई अहम्मन्य तत्त्व नहीं था। सहज सरल निरभिमान श्रीहनुमानके—

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥

(हनुमन्नाटक ६।[...]

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥

(मानस ५। ३३। १½

—शब्दोंमें कितनी अहंकारशून्यता है, [...] उनके अपने जीवनमें ही नहीं, अपितु उनके कृपाकटाक्ष[...] भी असम्भवको सम्भव बनानेकी सामर्थ्य है। इ[स] विषयमें स्वयं राम आम्रानन्द ये वचन प्रमाण हैं—

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

(मानस ४। २९। ३½

मृतकको जीवन-दान देना श्रीहनुमानजीके लिये अ[ति] सामान्य बात है। श्रीलक्ष्मणजीके जीवनकी तथा उनके द्वार[ा] प्रभु श्रीरामकी भी तुष्टिके निमित्त श्रीहनुमान ही हैं। स्व[यं] भगवान् श्रीराम अगस्त्यजीके समक्ष मुक्तकण्ठसे उनक[ी] प्रशंसा करते नहीं अघाते—

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥

(वा० रा० ७। ३५।[...]

शूरवीरता, दक्षता, बल, धैर्य, विद्वत्ता, नीतिज्ञ[ता ...]

राक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्गुणोंने हनुमानजीके भीतर
र कर रखा है।

समस्त जगत्के लोगोंके लिये—'सागर सागरोपम'
—सागर अपनी उपमा आप ही है।' यह
नन्वय है, पर हनुमानजीके लिये वही वारीश सिन्धु
क गोखुरके समान सर्वथा नगण्य है। राक्षस समस्त
देव-दानव-मानवके लिये भीमकाय, भीमकर्मा और भीम-
दर्शन हैं, परन्तु श्रीहनुमानजीके लिये तो वे केवल मच्छरसे
री हैं। वे कहते हैं—

सबद्धस्तैस्तु परितो विधमे राक्षस बलम्।
क्षम हन्तु समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम्॥
* * *
सर्वेषामेव पर्याप्ता राक्षसानामहं युधि।
(वा० रा० ५। ५२।११)

'चारों ओरसे राक्षसी सेनासे घिरा हुआ मैं राक्षसोंके
बलका पूर्णतया मर्दन कर सकता हूँ तथा सहस्रों राक्षसोंका
स्वेच्छया वध कर सकता हूँ। मैं अकेला ही युद्धमें उन सभी
राक्षसोंके लिये पर्याप्त हूँ।'

स्वय रावण भी लंका-दाहके समय श्रीहनुमानजीकी
रौद्र—विकराल मूर्ति देखकर वितर्क करता है—

वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा
साक्षाद् यमो वा वरुणोऽनिलो वा।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो
न वानरोऽयं स्वयमेव कालः॥
(वा० रा० ५।५४।३५)

'यह देवराज वज्रधर महेन्द्र भले हो सकता है, साक्षात्
यम, वरुण, पवन अथवा विश्वको भस्म करनेके लिये
संवर्ताग्नि, सूर्य, कुबेर या चन्द्र अथवा साक्षात् काल
ही विश्वसंहारार्थ प्रकट हुआ हो सकता है, किंतु निश्चय
ही यह वानर तो नहीं है।'

इस प्रकार श्रीरामचरित्रकी अनुपम महामालाके रत्न
श्रीहनुमानजी हैं। अग्नि-बीज 'र'को विस्तृतकर श्रीराम-विरोधी
राक्षस-सेना और उनकी स्वर्णमयी लङ्कापुरीको भस्म करने और
श्रीराम-भक्तोंके दुःख-शोक, दीनता-दारिद्र्य, आधि-व्याधि,
संताप तथा अशान्ति प्रकारको ज्ञानाग्निद्वारा छिन्न भिन्न कर
देनेके कारण श्रीहनुमान श्रीराम-नामके 'र' बीजके प्रतीक हैं। अतः
उनकी भक्ति, वीरता और अनन्यताका सार रामायण-महामाला
के अद्वितीय, अनुपम रत्नके रूपमें अङ्कित किया गया है—

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥

'सिन्धुको गोखुरके समान लाँघ जानेवाले, राक्षसोंको
मच्छर-तुल्य मसल देनेवाले, परमानन्दकन्द श्रीमदयोध्याचन्द्र
कौसल्या-नन्दवर्धन-दशरथनन्दन श्रीराम-सुधारस-मन्दाकिनी
मुक्तमालके महारत्न श्रीहनुमानजीको सहस्रशः, लक्षशः, कोटिशः
प्रणाम है।'

श्रीमहावीर महिमा

[१]

जय जय श्रीहनुमन्त, कृपानिधि कृति अनन्त के।
प्रबल बुद्धि बलवन्त, जो पकै दस दिगन्त के॥
अरुन रंग सो तरुन, अंग तात्त्विक तरंग सों।
निकट बीर बजरंग, अचल अच्युत अभंग सों॥
हे प्रभु 'द्विजेश' मैं भजि तुम्हें, भय भंजन के काम सों।
जेहि तें वो पद अभिराम प्रद, पेखि सु करत प्रनाम सों॥

[२]

जिन अद्भुत अद्वितीय तीय बिनु अनुज तनुज के।
सुर मनुजहिं सुमतीय, नेकु नहिं भीत दनुज के॥
अजानि जननि सों जन्य, मन्य मारुत मन रंजन।
रंजन भुज आजानु, भानु भक्षक जिमि व्यंजन॥
अवलोकि 'द्विजेश' त्रिलोक जेहिं, है तिहुँ काल प्रमान इमि।
भूतो न भविष्यत अस कोऊ वर्तमान हनुमान जिमि॥

श्रीराम-भक्त हनुमानजी

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

श्रीसुदर्शनचक्रावतार आदि सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र स्वनिर्मित 'वेदान्त-कामधेनु' ('वेदान्त दशश्लोकी') नामक ग्रन्थके नवम श्लोकमें कहते हैं—

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते
यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा ।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः
सा चोत्तमा साधनरूपिका परा ॥

अर्थात् सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अनन्तानन्त श्रीसमलङ्कृतानन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी कृपा उसी भक्तपर होती है, जिसमें दीनता, नम्रता, सरलता आदि भाव हों और भगवान्‌की कृपासे ही उस भक्तके चित्तमें भगवद्विषयक परम अनुराग प्रकट होता है। उस प्रेमानुरागको ही 'परा' एवं 'साध्य' भक्तिके नामसे भी निर्दिष्ट किया गया है।

इसी परा (प्रेमलक्षणा-साध्य) भक्तिसे सम्पन्न श्री राममक्त हनुमानजी उपयुक्त दैन्यादि-भवगुण-सम्पन्नताके कारण नवधा भक्तिमें दास्य भावके सर्वश्रेष्ठ प्रथम भक्त माने जाते हैं। यथा—

केशवार्जुनयोः सख्यं सख्यं सुग्रीवरामयोः ।
सख्यं कृष्णसुदाम्नः स्याद् दास्यं रामहनूमतोः ॥

इसी प्रकार नवधा भक्तिके एक-एक अङ्गके प्रधान प्रधान भक्तोंकी नामावलीके एक श्लोकमें भी बताया गया है। जैसे—

अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः ।

अर्थात् भक्तिके दास्य-अङ्गमें कपिपति श्रीहनुमानजीका ही नाम प्रधान है।

भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत भक्तिसुधा संदोह श्रीमद्भागवतमहापुराणके पञ्चम स्कन्धमें जहाँ वर्षोंका वर्णन आया है, वहाँ किस खण्डमें भगवान् किस रूपसे विराजमान हैं और उनका मुख्य भक्त किस प्रकार उनकी स्तुति करता है—इसका भी कथन है।

१९वें अध्यायके प्रारम्भमें ही भागवत श्रीशुकमुनि परम भागवत राजर्षि श्रीपरीक्षित्‌जीसे कह रहे हैं—

'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥ २ ॥ ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥

"राजन्! किम्पुरुषवर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई आदिपुरुष सीताहृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंकी संनिधिके परम रसिक महाभागवत श्रीहनुमानजी अन्य किन्नरगणोंके सहित अविचल भक्तिभावसे उनकी उपासना करते हैं। वहाँ अन्य गन्धर्वोंके साथ आर्ष्टिषेण उनके स्वामी भगवान् श्रीरामकी परमकल्याणमयी गुणगाथा गाते रहते हैं और श्रीहनुमानजी उसे सुनते हैं तथा स्वयं भी इस मन्त्रका जप करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं—'हम ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं। आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयमशील, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं, ऐसे महापुरुष भगवान् श्रीरामको हमारा बारंबार नमस्कार है।'"

श्रीराम भक्त हनुमानके जीवनमें अभिमानका तो लेशमात्र भी नहीं है। जब ये माता श्रीजानकीजीकी सुध लेकर आये और भगवान्‌से मिले, तब भगवान् श्रीरामने उनसे पूछा—

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
(मानस ५ । ३२ । ६)

'हनुमानजी! बताओ, रावणके द्वारा सुरक्षित लंका और उसके बड़े बाँके किलेको तुमने किस प्रकार जलाया?'

तब श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामको प्रसन्नमन जान अभिमानरहित वचन बोले—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥
(मानस ५ । ३३ । ४-५)

'प्रभो ! बंदरका केवल एकमात्र यही पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोनेकी नगरी जलायी और राक्षसगणोंको मारकर अशोक-वनका विध्वंस किया, यह तो केवल आपका ही प्रताप एवं प्रसाद है। नाथ ! इसमें मेरे सामर्थ्यकी कोई बात नहीं है।'

सेवकको अपने स्वामीके गुण-गौरव एवं बल-पुरुषार्थ आदिपर पूर्ण भरोसा रखते हुए सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि मैं ऐसे स्वामीका सेवक हूँ, कहीं मेरे कारण उनके गुण-गौरवपर किसी प्रकारकी आँच न आ जाय, ऐसा अभिमान तो सेवकोंको होना ही चाहिये। जैसे—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस ३। ११। ११)

श्रीहनुमानजीका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं है। वे केवल अपने प्रभुकी सेवा एवं प्रसन्नतामें ही प्रसन्नता मानते हैं। ठीक ही है, सच्चा भक्त तो प्रभुकी प्रसन्नतामें ही अपनी प्रसन्नता मानता है। इसीको तत्सुख-सुखित्वभाव कहा जाता है। यही सर्वोत्कृष्ट भक्तका लक्षण है।

श्रीहनुमान-स्तुति

(पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका प्रसाद)

श्रीहनुमानजीकी स्तुतिसे सम्बन्धित बारह नाम हैं, जिनके द्वारा उनकी स्तुति की जाती है। ये नाम निम्नलिखित श्लोकोंमें वर्णित हैं—

हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥
एवं द्वादश नामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः।
स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत्॥
तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत्।
राजद्वारे गह्वरे च भयं नास्ति कदाचन॥

(आनन्दरामायण ८। १३। ८-११)

उनका एक नाम तो हनुमान् है ही, दूसरा अञ्जनी सूनु, तीसरा वायुपुत्र, चौथा महाबल, पाँचवाँ रामेष्ट (रामजीके प्रिय), छठा फाल्गुनसख (अर्जुनके मित्र), सातवाँ पिङ्गाक्ष (भूरे नेत्रवाले), आठवाँ अमितविक्रम, नवाँ उदधिक्रमण (समुद्रको अतिक्रमण करनेवाले), दसवाँ सीताशोकविनाशन (सीताजीके शोकको नाश करनेवाले), ग्यारहवाँ लक्ष्मणप्राणदाता (लक्ष्मणको संजीवनी बूटीद्वारा जीवित करनेवाले) और बारहवाँ नाम है— दशग्रीवदर्पहा (रावणके घमंडको दूर करनेवाले)। ये बारह नाम श्रीहनुमानजीके गुणोंके द्योतक हैं। श्रीराम और सीताके प्रति जो सेवा-कार्य उनके द्वारा हुए हैं, उन सबकी ओर इन्हीं नामोंद्वारा संकेत हो जाता है और यही श्रीहनुमानकी स्तुति है। इस स्तुतिसे मिलनेवाले अनेकों लाभ ऊपरके श्लोकोंमें वर्णित हैं।

सेनानायक श्रीहनुमानके इन बारह नामोंका जो रात्रिमें सोनेके समय या प्रातःकाल उठनेपर अथवा यात्रारम्भके समय पाठ करता है, उस व्यक्तिके समस्त भय दूर हो जाते हैं। वह व्यक्ति युद्धके मैदानमें, राज दरबारमें या भीषण संकट जहाँ-कहीं भी हो, उसे कोई भय नहीं होता। इसलिये श्रीहनुमानको 'संकटमोचन' भी कहा जाता है।

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

इस श्लोकमें भी श्रीहनुमानजीकी प्रशंसा है, जिन्होंने लीलासे ही समुद्रके जलको लाँघा और सीताजीके शोकरूपी अग्निको अपने साथ ले जाकर लंकाको जला दिया। ऐसे महावीर हनुमानको मैं हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।

प्रेषक—रामकृष्णप्रसाद एडवोकेट

यद्यपि नाथ बहु अवगुन मोरें । सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें ॥
(४।२।४५,२;१।१)

कितना प्रेम और दैन्यभाव है! इसके बाद विनयपूर्वक सुग्रीवकी परिस्थिति बतलाकर दोनों भाइयोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर वे सुग्रीवके पास ले आते हैं। वहाँ दोनों ओरकी सब बातें सुनाकर अग्निदेवकी साक्षीमें श्रीराम और सुग्रीवकी मित्रता करा देते हैं। वालिका वध करके भगवान् श्रीराम भाई लक्ष्मणके सहित प्रवर्षण पर्वतपर निवास कर वर्षा ऋतुका समय व्यतीत करते हैं। उधर सुग्रीव राज्य, ऐश्वर्य और स्त्री आदिके मिल जानेसे भोगोंमें फँसकर भगवान्‌के कार्यको भूल जाते हैं। यह देखकर श्रीहनुमानजी राजनीतिके अनुसार सुग्रीवको भगवान्‌के कार्यकी स्मृति दिलाते हैं और उनकी आज्ञा लेकर वानरोंको बुलानेके लिये देश-देशान्तरोंमें दूत भेजते हैं। कैसी बुद्धिमानी है!

इसके बाद जब श्रीसीताजीकी खोजके लिये सब दिशाओंमें वानरोंको भेजनेकी बातचीत हो रही थी, उस समयका वर्णन श्रीवाल्मीकीय रामायणमें देखनेसे मालूम होता है कि सुग्रीवका श्रीहनुमानजीपर कितना भरोसा और विश्वास था तथा भगवान् श्रीरामको भी उनकी कार्यकुशलतापर कितना विश्वास था। वहाँ श्रीरामके सामने ही सुग्रीव हनुमानसे कहते हैं—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये ।
नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव ॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः ।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे ।
पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः ॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते ।
तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः ।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥
(४।४४।३-७)

'कपिश्रेष्ठ! तुम्हारी गतिका अवरोध न पृथ्वीमें, न अन्तरिक्षमें, न आकाशमें और न देवलोकमें अथवा जलमें ही देखा जाता है। देवता, असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य और इनके सहित उन-उनके समस्त लोकोंका समुद्र और पर्वतों सहित तुम्हें भलीभाँति ज्ञान है। महाकपे! तुम्हारी गति, वेग, तेज और फुर्ती—तुम्हारे महान् बलशाली पिता वायुके समान हैं। वीर! इस भूमण्डलपर कोई भी प्राणी तेजमें तुम्हारी समानता करनेवाला न कभी हुआ और न है। अतः जिस प्रकार सीता मिल सके, यह उपाय तुम्हीं सोचकर बताओ। हनुमान! तुम नीति-शास्त्रके पण्डित हो, बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण और नीतिपूर्ण बर्ताव—ये सब एक साथ तुममें पाये जाते हैं।'

इस प्रकार सुग्रीवकी बातें सुनकर भगवान् श्रीराम हनुमानजीकी ओर देखकर अपना कार्य सिद्ध हुआ ही समझने लगे। उन्होंने मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने नामके अक्षरोंसे युक्त एक अँगूठी हनुमानजीके हाथमें देकर कहा—

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नानुपश्यति ॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः ।
सुग्रीवस्य च संदेशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥
(४।४४।१३-१४)

'कपिश्रेष्ठ! इस चिह्नके द्वारा जनकनन्दिनी सीताको यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पाससे ही गये हो। तब वह निर्भय होकर तुम्हारी ओर देख सकेगी। वीरवर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य और पराक्रम तथा सुग्रीवका संदेश मुझे इस बातकी सूचना दे रहे हैं कि तुम्हारेद्वारा इस कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी।'

अध्यात्मरामायणमें भी प्रायः इसी प्रकार श्रीरामने हनुमानजीके गुणोंकी प्रशंसा की है। वहाँ सहिदानीके रूपमें अपनी मुद्रिका देकर भगवान् श्रीराम हनुमानजीसे कहते हैं—

अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम ।
जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव ॥
(४।६।२९)

'कपिश्रेष्ठ! इस कार्यमें केवल तुम्हीं समर्थ हो। मैं तुम्हारा समस्त पराक्रम भलीभाँति जानता हूँ। अच्छा, जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणकारक हो।'

इसके बाद जब जाम्बवान् और अङ्गद आदि वानरोंके साथ हनुमानजी श्रीसीताजीकी खोज करते-करते समुद्रके किनारे पहुँचते हैं और श्रीसीताका अनुसंधान न मिलनेके कारण शोकाकुल होकर सब वहीं अनशन व्रत लेकर बैठ जाते हैं, तब पक्षिराज सम्पातिसे

पता लगता है कि सौ योजन समुद्रके पार लङ्कापुरीमें राक्षसराज रावण रहता है, वहाँ अपनी अशोक-वाटिकामें उसने सीताको छिपा रखा है। तब सब वानर एक जगह बैठकर परस्पर समुद्र लाँघनेका विचार करने लगे। अङ्गदके पूछनेपर सभीने अपनी-अपनी सामर्थ्यका परिचय दिया, परंतु श्रीहनुमानजी चुप साधे बैठे ही रहे। ऐसी निरभिमानता है। यह प्रसङ्ग श्रीवाल्मीकीय रामायणमें बड़ा ही रोचक और विस्तृत है। यहाँ जाम्बवान्‌ने श्रीहनुमानजीकी बुद्धि, बल, तेज, पराक्रम, विद्या और वीरताका बड़ा ही विचित्र चित्रण किया है। वे वचन हैं—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि॥
* * *
रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च।
* * *
गरुत्मानिव विख्यात उत्तमः सर्वपक्षिणाम्॥
* * *
पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव।
विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे॥
(४।६६।२-७)

'सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा वानर-जगत्‌के अद्वितीय वीर हनुमान्! तुम क्यों एकान्तमें आकर चुप साधे बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं? तुम तो तेज और बलमें श्रीराम और लक्ष्मणके समान हो। सम्पूर्ण पक्षियोंमें श्रेष्ठ विनतापुत्र महाबली गरुड़के समान विख्यात हो। उनकी पाँखोंमें जो बल, तेज तथा पराक्रम है, वही तुम्हारी इन भुजाओंमें भी है। वानरश्रेष्ठ! तुम्हारे अंदर समस्त प्राणियोंसे बढ़कर बल, बुद्धि, तेज और धैर्य है। फिर तुम अपना स्वरूप क्यों नहीं पहचानते?'

इसके बाद जाम्बवान् उनके जन्मकी कथा सुनाते हैं तथा बाल्यावस्थाके पराक्रम और वरदानकी बात कहकर उनके अपनी शक्ति दिखाते हुए अन्तमें कहते हैं—

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव॥
विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे।
विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव॥
(४।६६।३६।३७)

'वानरश्रेष्ठ हनुमान्! उठो और इस महासागरको लाँघ जाओ। जो तुम्हारी गति है, वह सभी प्राणियोंसे बढ़कर है। सभी वानर चिन्तामें पड़े हैं और तुम इनकी उपेक्षा करते हो, यह क्या बात है? तुम्हारा वेग महान् है। जैसे भगवान् विष्णुने (पृथ्वीको नापनेके लिये) तीन डग भरे थीं, उसी प्रकार तुम छलाँग मारकर समुद्रके उस पार चले जाओ।' इतना सुनते ही श्रीहनुमानजी तुरंत ही समुद्र लाँघनेके लिये अपना शरीर बढ़ाने लगे।

रामचरितमानसमें भी इसी आशयका वर्णन है। वे अङ्गदको धैर्य देनेके बाद जाम्बवान् हनुमानजीसे कहते हैं-

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥
कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
(४।३०।२-४)

अध्यात्मरामायणमें भी प्रायः इसी तरहका वर्णन है। इसके सिवा पर्वताकार रूप धारण करनेके अनन्तर वहाँ श्रीहनुमानजी कहते हैं—

लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात्॥
रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम्।
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना॥
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्।
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम्॥
(४।९।२२—२४)

'वानरो! मैं समुद्रको लाँघकर लङ्काको भस्म कर डालूँगा और रावणको कुलसहित मारकर श्रीजनकनन्दिनीको ले आऊँगा। अथवा कहो तो रावणके गलेमें रस्सी डालकर तथा लङ्काको त्रिकूट-पर्वतसहित बायें हाथपर उठाकर भगवान् श्रीरामके आगे डाल दूँ। या शुभलक्षणा श्रीजानकीको केवल देखकर ही (रामके पास) चला आऊँ।'

कितना आत्मबल है! इसपर जाम्बवान्‌ने कहा—'वीर! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा भामिनी जानकीको जीती-जागती देखकर ही चले आओ।'

समुद्रको लाँघनेके लिये तैयार होकर आपने वानरोंसे
वचन कहे हैं, उनसे यह पता चलता है कि आपका
श्रीराम-नामपर बड़ा ही दृढ़ विश्वास था। आप भगवान्
श्रीरामके गुण, प्रभाव और तत्त्वको भलीभाँति जानते थे
तथा श्रीराममें आपका अनिर्वचनीय प्रेम था। अध्यात्मरामायण
में यह प्रसङ्ग इस प्रकार है—

पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा ॥
अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः ।
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम् ।
प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत् स्मरन् ॥
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम् ।
किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः ॥
तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम् ।

(५ । १ । २–६)

'समस्त वानरो! तुम सभी लोग भगवान् श्रीरामद्वारा
छोड़े हुए अमोघ बाणकी भाँति आकाशमार्गसे जाते हुए
मुझे देखो। मैं आज ही श्रीरामप्रिया जनकनन्दिनी श्रीसीताजी
के दर्शन करूँगा। निश्चय ही मैं कृतकृत्य हो चुका,
कृतकृत्य हो चुका अब मैं फिर श्रीरघुनाथजीका दर्शन
करूँगा। प्राण निकलनेके समय जिनके नामका एक बार
स्मरण करनेसे ही मनुष्य अपार संसार-सागरको पारकर उनके
परमधामको चला जाता है, उन्हीं भगवान् श्रीरामका दूत,
उनके हाथकी मुद्रिका लिये हुए, हृदयमें उन्हींका ध्यान
करता हुआ मैं यदि इस छोटे-से समुद्रको लाँघ जाऊँ तो
इसमें आश्चर्य ही क्या है।'

समुद्र लाँघनेके लिये श्रीहनुमानजीने जो भयानक रूप
धारण किया था, उसका वर्णन वाल्मीकीय रामायणमें
विस्तारपूर्वक है। यहाँ उसका दिग्दर्शनमात्र कराया जाता
है। वहाँ लिखा है—

ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥
निष्प्रमाणशरीरः सँल्लिलङ्घयिषुरर्णवम् ।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥
स चचालाचलश्चाशु मुहूर्तं कपिपीडितः ।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥
समुत्पतति वेगात् तु वेगात् ते नगरोहिणः ।
तमूरुवेगोन्मथिता सालाश्चान्ये नगोत्तमाः ।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥

(५ । १ । १०–१२, ४८)

'जिस प्रकार पूर्णिमाके दिन समुद्र बढ़ता है, उसी
प्रकार भगवान् श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके लिये हनुमान
बढ़ने लगे। समुद्र लाँघनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरको
बेहद बढ़ा लिया और अपनी भुजाओं एवं चरणोंसे उस
पर्वतको दबाया तो वह हनुमानजीके द्वारा ताड़ित हुआ पर्वत
तुरंत काँप उठा और मुहूर्तभर काँपता ही रहा। उसपर उगे
हुए वृक्षोंके समस्त फूल झड़ गये। जब उन्होंने उछाल
मारी, तब पर्वतपर उगे हुए साल तथा दूसरे वृक्ष इधर
उधर गिर गये। उनकी जाँघोंके वेगसे टूटे हुए वृक्ष इस
प्रकार उनके पीछे चले, जैसे राजाके पीछे सेना चलती है।'

इसके अतिरिक्त वहाँपर श्रीहनुमानजीके स्वरूपका मनोहर
भाषामें बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। वहाँ लिखा
है कि उस समय श्रीहनुमानजीकी दस योजन चौड़ी और
तीस योजन लंबी परछाईं वेगके कारण समुद्रमें बड़ी सुन्दर
जान पड़ती थी। वे परम तेजस्वी, महाकाय कपिवर
आकाशमें आलम्बनहीन पंखवाले पर्वतकी भाँति जान पड़ते
थे। इससे उनकी लंबाई-चौड़ाईके विस्तारका कुछ पता
चलता है।

यह देखकर मैनाक-पर्वत उनसे विश्राम लेनेके लिये
अनेक प्रकारसे प्रार्थना करता है, परंतु भगवान् श्रीरामका
कार्य पूरा किये बिना आपको विश्राम कहाँ! आप उसे
केवल स्पर्श करके ही आगे बढ़ जाते हैं।

रामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता ॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना ॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ॥

(५ । १ । ४५, १)

सुरसाको अपने बुद्धि-बलका परिचय देकर आगे जाते
जाते जब समुद्रपर आपकी दृष्टि पड़ती है, तब क्या देखते
हैं कि एक विशालकाय प्राणी समुद्रके ऊपर पड़ा हुआ
है। उस विकरालवदना राक्षसीको देखकर वे सोचने लगे—
'कपिराज सुग्रीवने जिस महापराक्रमी छायाग्राही
जीवकी बात कही थी, वह निःसंदेह यही है।'
करके उन्होंने अपने शरीरको बढ़ाया।
बढ़ता देखकर सिंहिका भी अपना

हनुमानजीकी ओर दौड़ी । तब हनुमानजी छोटा रूप बनाकर उसके मुखमें घुस गये और अपने नखोंसे उसके गर्भस्थलको फाड़ डाला । इस प्रकार कुशलता और धैर्य पूर्वक उसे मारकर फिर वे पहलेकी भाँति ही आगे बढ़ गये । कैसा विचित्र बुद्धि-कौशल, धैर्य और साहस है !

इस प्रकार समुद्रको पार करके आप त्रिकूट पर्वतपर जा उतरे । बिना विश्राम सौ योजनके समुद्रको लाँघनेपर भी आपके शरीरमें किसी प्रकारकी थकावट नहीं आयी । वहाँसे उन्होंने भलीभाँति लंकाका निरीक्षण किया । फिर लंकाके समीप जाकर उसके भीतर प्रवेश करनेके विषयमें भली भाँति विचार करके अन्तमें यह निश्चय किया कि रात्रिके समय छोटा रूप बनाकर इसमें प्रवेश करना ठीक होगा । इसके बाद सन्ध्याकालमें जब आप छोटा-सा रूप धारण करके लंकापुरीमें प्रवेश करने लगे, तब द्वारपर लंकापुरीकी अधिष्ठात्री लंकिनी राक्षसीने उनको देख लिया । उसने श्रीहनुमानजीको डाँट फटकार कर उन्हें लात मारी, तब आपने अपने बायें हाथका एक घूँसा उसके शरीरपर जमा दिया । उसके लगते ही वह रुधिर वमन करती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी, फिर उठकर ब्रह्माजीको बातका स्मरण करके हनुमानजीकी स्तुति करने लगी और अन्तमें बोली—

> धन्याहमप्यत्र चिराय राघव
> 　　स्मृतिर्ममासीद् भवपाशमोचिनी ।
> तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो　मम
> 　　प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥
> 　　　　　　(अध्यात्म० ५ । १ । ५७)

'आज मैं भी धन्य हूँ, बहुत दिनोंके बाद मुझे संसार बन्धनका नाश करनेवाली श्रीरघुनाथजीकी स्मृति प्राप्त हुई तथा उनके भक्तका अति दुर्लभ सङ्ग भी मिला । वे दशरथ पुत्र श्रीराम सदा ही मेरे हृदयमें प्रसन्नतापूर्वक निवास करें ।'

रामचरितमानसमें यह प्रसङ्ग इस प्रकार है—हनुमानजी के प्रहारसे व्याकुल होकर गिर पड़नेके बाद सावधान होकर लंकिनी कहती है—

> तात मोर अति पुन्य बहूता । देखेउँ नयन राम कर दूता ॥
> 　तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
> 　तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥
> 　　　　　　(५ । ४ । ३ । ४)

इसके बाद हनुमानजी छोटा-सा रूप धारण कर लंकापुरीमें सीताजीकी खोज करते करते बहुत-से राक्षसोंके घरोंमें घूमफिरकर रावणके महलमें जाते हैं । वहाँ रावणके महलकी स्त्रियाँ देखते-देखते पुष्पक-विमानके आश्चर्ययुक्त ढंग देखते हैं । इसके बाद जिस समय उन्होंने सीताको पहचानने के लिये रावणके महलमें उसकी स्त्रियोंको देखकर अपने मनकी स्थितिका वर्णन किया है, उसे देखनेसे यह पता चलता है कि आपकी ब्रह्मचर्य निष्ठा कितनी ऊँची थी परस्त्री-दर्शनको आप कितना बुरा समझते थे और आप कितना सुन्दर विशुद्ध भाव था । वाल्मीकीय रामायणकी कथा है कि जब हनुमानजीने रावणके महलका कोना कोना छान डाला, परन्तु उन्हें जानकी कहीं दिखायी नहीं पड़ी तो उस समय सीताको खोजनेके उद्देश्यसे स्त्रियोंका देखते देखते उनके मनमें धर्म-भयसे शङ्का उत्पन्न हुई । वे सोचने लगे, 'इस प्रकार अन्तःपुरमें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखना तो मेरे धर्मको एकदम नष्ट कर देगा परंतु इन परस्त्रियोंको मैंने कामबुद्धिसे नहीं देखा है । इस दृश्यसे मेरे मनमें तनिक भी विकार नहीं हुआ । समस्त इन्द्रियोंकी अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों-का कारण मन ही है और मेरा मन सर्वथा शुद्ध एवं निर्विकार है । इसके अतिरिक्त सीताजीको दूसरे स्थानमें मैं खोज भी नहीं सकता । स्त्रियोंको ढूँढ़ने समय उन्हें स्त्रियोंके ही बीचमें ढूँढ़ना पड़ता है'—इत्यादि । ऐसे सुन्दर विचार और ऐसा विशुद्ध भाव आपके ही उपयुक्त है ।

पाठकोंको इससे विशेष शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और विकट परिस्थितियोंमें भी अपने मनमें किसी प्रकारका भी विकार नहीं आने देना चाहिये । वाल्मीकीय रामायणमें सीताकी खोजका बड़ा ही विचित्र और विस्तृत वर्णन है । यहाँ उसमेंसे थोड़ा ही अंश ले प्रसङ्गका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है ।

रामचरितमानसमें लिखा है कि सीताको खोजनेके लिये लंकामें घूमते-घूमते हनुमानजीकी दृष्टि एक सुन्दर भवनपर पड़ती है, जिसपर भगवान् श्रीरामके आयुध अङ्कित किये हुए हैं । उसके पीछे उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं । यह देखकर आप सोचने लगते हैं कि यहाँ तो राक्षसोंका ही निवास है, यहाँ सज्जन पुरुष क्यों निवास करने लगे । उसी समय विभीषण जाग उठते हैं और बार-बार श्रीरामनामका उच्चारण करते हैं । यह देखकर हनुमानजीने सोचा कि निश्चय यह कोई भगवान्‌का भक्त है, इससे अवश्य पहचान करनी चाहिये क्योंकि साधुसे कभी कार्यकी हानि नहीं हो सकती ।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए । सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई । बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई । मोरें हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी । आयहु मोहि करन बड़भागी ॥

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

(५ । ६ । १४, ६)

भगवान्‌के भक्तोंमें परस्पर स्वाभाविक प्रेम कैसा होना चाहिये, इसका यहाँ बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। विभीषण कहते हैं—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता । बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ॥

(५ । ७ । १२)

तब हनुमानजी कहते हैं—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना । कपि चंचल सबहीं बिधि हीना ॥

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर ।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी । फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा । पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा ॥

(५ । ७ । १४, ७, ८ । १)

कितना सुन्दर दैन्यभाव, अतुलित विश्वास और अनन्य भगवत्प्रेम है! इसके बाद विभीषणसे पता समाचार पाकर हनुमानजी अशोक-वाटिकामें जाकर श्रीसीताजीको देखते हैं और मन-ही-मन उनको प्रणाम करते हैं।

अशोक-वाटिकामें जाकर श्रीसीताजीसे मिलनेके लिये हनुमानजीने कितनी बुद्धिमानी और युक्तियोंसे काम लिया है, इसका वाल्मीकीय रामायणमें बहुत विस्तृत वर्णन है। वहाँ लिखा है कि बहुत तरहकी युक्तियाँ लगाकर सीताजीसे मिलनेका उपाय सोचते-सोचते अन्तमें हनुमानजी बड़ी सावधानीके साथ एक सघन वृक्षके पत्तोंमें छिपकर बैठ जाते हैं। वहींसे सब ओर दृष्टि घुमाकर देखते हैं। देखते-देखते उनकी दृष्टि सीतापर पड़ती है। उन्हें देखकर बहुत-से चिह्नोंद्वारा अनुमान लगाकर वे यह निश्चय करते हैं कि ये ही जनकनन्दिनी सीता हैं। वहाँ उन्होंने सीताके वदन वदन और स्वभावका बड़ा ही विचित्र चित्रण किया है। वे सीताजीके गहनोंको देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि भगवान् श्रीरामने सीताजीके अङ्गोंमें जिन जिन आभूषणोंकी चर्चा की थी, व सभी इनके अङ्गोंमें दिखायी देते हैं। इनमें केवल वे ही नहीं दिखलायी दे रहे हैं, जो इन्होंने ऋष्यमूकपर्वतपर गिरा दिये थे।

इसी प्रकार उनके रूप और गुणोंको देखकर बड़ी बुद्धिमानीसे उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि निःसन्देह ये ही सीताजी हैं। यह निश्चय हो जानेपर उनको श्रीसीताजीके दुःखसे बड़ा दुःख हुआ और वे मन-ही-मन बहुत विलाप करने लगे।

इसके बाद सीतासे किस प्रकार बातचीत करनी चाहिये, किस समय और कैसे मिलना चाहिये, किस प्रकार उन्हें विश्वास दिलाना चाहिये कि मैं श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ—इस विषयपर भी आपने बड़ी विचारकुशलता प्रकट की है। ठीक उसी समय रावण बहुत-सी राक्षसियोंको साथ लेकर वहाँ पहुँच जाता है। वह सीताको अनेक प्रकारसे भय दिखलाकर अपने अधीन करनेकी चेष्टा करता है, पर वे किसी तरह भी अपने निश्चयसे विचलित नहीं होतीं। अन्तमें रावण चला जाता है। तब उसके आज्ञानुसार राक्षसियाँ अनेक प्रकारसे सीताको भय दिखलाती हैं। उसी समय त्रिजटा नामकी राक्षसी अपने स्वप्नकी बात कहकर सीताको धैर्य देती है और उसकी बातें सुनकर वे घोर राक्षसियाँ भी शान्त हो जाती हैं। सीता विरहसे व्याकुल होकर विलाप करने लग जाती हैं।

तब हनुमानजी सीतासे मिलनेका उपयुक्त अवसर देखकर अपने पूर्व निश्चित विचारके अनुसार श्रीरामकी कथाका वर्णन करने लग जाते हैं। श्रीरघुनाथजीका आद्योपान्त समस्त चरित्र सुनकर सीताको बड़ा विस्मय हुआ। अध्यात्मरामायण में लिखा है कि अन्तमें उन्होंने सोचा कि यह स्वप्न या भ्रम तो नहीं है। ऐसा विचार करके वे कहने लगीं—

येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम्।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः ॥

(५ । ३ । १८)

'जिन्होंने मेरे कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले वचन सुनाये, वे प्रियभाषी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों।'

ये वचन सुनकर आप माता सीताके सामने बड़ी विनयके साथ खड़े हो जाते हैं और हाथ

प्रणाम करती हैं। अकस्मात् एक वानरको अपने सामने खड़ा देखकर सीताके मनमें यह शङ्का होती है कि कहीं रावण तो मुझे छलनेके लिये नहीं आ गया है। यह सोचकर वे नीचेकी ओर मुख किये हुए ही बैठी रहती हैं। रामचरितमानसमें उस समय श्रीहनुमानजीके वचन इस प्रकार हैं—

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥
(५।१३।५)

इसके बाद श्रीजानकीजीके पूछनेपर उन्होंने जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवके साथ भगवान् श्रीरामकी मित्रता हुई, वह सारी कथा विस्तारपूर्वक सुना दी तथा श्रीराम और लक्ष्मणके शारीरिक चिह्नोंका एवं उनके गुण और स्वभावका भी वर्णन किया। ये सब बातें सुनकर जानकीजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसङ्गका वर्णन श्रीवाल्मीकीय रामायणमें बड़ा विस्तृत और रोचक है।

रामचरितमानसमें श्रीतुलसीदासजीने बहुत ही संक्षेपमें इस प्रकार कहा है—

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी॥
(५।१३; १४।१)

इसके बाद महापराक्रमी पवनकुमार हनुमानजीने सीताजीको भगवान् श्रीरामकी दी हुई अँगूठी दी, जिसे लेकर वे इतनी प्रसन्न हुईं, मानो स्वयं भगवान् श्रीराम ही मिल गये हों।

उस समय वे हनुमानजीसे कहती हैं—

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥
बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥
(५।१४।१-४)

इस प्रकार सीताको विरह-व्याकुल देखकर हनुमानजी कहते हैं—

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥

रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥
(५।१४।४; १४)

इसके बाद बड़ी बुद्धिमानीके साथ श्रीरामके प्रेम और विरह-व्याकुलताकी बात श्रीहनुमानजीने माता सीताको सुनायी और अन्तमें कहा कि श्रीरामचन्द्रजीने कहा है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
(५।१५।२

इस प्रकार श्रीरामका प्रेमपूर्ण संदेश सुनकर सीता प्रेममग्न हो गयीं। उन्हें अपने शरीरका भी ज्ञान नहीं रहा। हनुमानजी फिर कहते हैं—

उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥
(५।१५।५; १५)

ये सब बातें सुनकर जब जानकीजीने यह कहा कि 'सब वानर तो तुम्हारे ही जैसे होंगे, राक्षसगण बड़े भयानक और विकराल हैं। इन सबको तुमलोग कैसे जीत सकोगे, मेरे मनमें यह संदेह हो रहा है।' यह सुनकर हनुमानजीने अपना भयानक पर्वताकार रूप सीताको दिखलाकर अपना छिपा हुआ प्रभाव प्रकट कर दिया। उसे देखते ही उनके मनमें विश्वास हो गया।

सीताने प्रसन्न होकर हनुमानजीको बहुत-से वरदान दिये। साथ ही यह भी कहा कि भगवान् श्रीराम तुमपर कृपा करेंगे। यह बात सुनते ही हनुमानजी प्रेममग्न हो गये और बार-बार चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़, यह कहा—

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥
(५।१७।१)

इससे यह प्रकट होता है कि हनुमानजीका श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें कितना गूढ़ प्रेम है।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि बातों ही बातोंमें सीताजीने यह पूछा कि 'वानर-सेनाके सहित श्रीराम इस बड़े भारी समुद्रको पार कर यहाँ कैसे आ सकेंगे?' तब—

हनूमानाह मे स्कन्धावारूढौ पुरुषर्षभौ ।
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥
विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ॥

(५ । १ । ४७-४८)

हनुमानने कहा—'वे दोनों नरश्रेष्ठ मेरे कंधोंपर चढ़कर आ जायँगे और समस्त सेनाके सहित वानरराज सुग्रीव भी आकाशमार्गसे क्षणमात्रमें ही इस महासमुद्रसे पार होकर आ जायँगे ।'

इस प्रसङ्गसे भी हनुमानजीके बल, शौर्य और साहसका परिचय मिलता है । इसके बाद माता सीतासे आज्ञा लेकर अशोक-वाटिकामें फल खाकर श्रीहनुमानजीने अपने स्वामी श्रीरामका विशेष कार्य करनेकी इच्छासे अशोक-वाटिकाके वृक्षोंको तहस-नहस करके समस्त वाटिकाको विध्वंस कर दिया । यह समाचार पाकर रावणने अपनी बड़ी भारी सेनाके साथ अक्षकुमारको भेजा । उन सबके साथ हनुमानजीका बड़ा भयंकर संग्राम हुआ । बड़ी वीरता और युद्ध-कौशलसे उन्होंने अनायास ही जम्बुमाली, मन्त्रीके सात पुत्रों, पाँच सेनापतियों और अक्षकुमारको मार डाला । इस युद्धके प्रसङ्गसे श्रीहनुमानजीका अतुलित बल-पौरुष और युद्ध-कौशल स्पष्ट व्यक्त होता है । श्रीवाल्मीकीय रामायणमें इसका बड़ा सुन्दर वर्णन है । श्रीहनुमानजीके अतुलित पराक्रमका चित्र खींचते हुए वहाँ लिखा है—

तलेनाभ्यहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित् परंतप ।
मुष्टिभिश्चाहनत् कांश्चिन्नखैः कांश्चिद् व्यदारयत् ॥
प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि ।
केचित्तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥

(५ । ४५ । १२-१३)

'हनुमानजीने उन राक्षसोंमेंसे किन्हींको थप्पड़से मारकर गिरा दिया, कितनोंको पैरोंसे कुचल डाला, कइयोंका मुक्कोंसे काम तमाम कर दिया और बहुतोंको नखोंसे फाड़ डाला । कुछको छातीसे रगड़कर उनका कचूमर निकाल दिया तो किन्हीं-किन्हींको दोनों जाँघोंसे दबोचकर पीस डाला । कितने ही राक्षस तो उनकी भयानक गर्जनासे ही वहीं पृथ्वीपर गिर पड़े'—इत्यादि ।

जब बचे-खुचे राक्षसोंसे रावणको यह समाचार मिला कि मन्त्रीके सातों पुत्र और प्रधान-प्रधान प्राय सभी राक्षस मारे गये, पाँचों सेनापति तथा अक्षकुमार भी मारा गया, तब उसने इन्द्रजित्‌को उत्साहित करके हनुमानजीको पकड़ लानेके लिये भेजा । मेघनाद और हनुमानजीका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ । अन्तमें जब उसने श्रीहनुमानजीको बाँधनेके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा, तब ब्रह्माजीका सम्मान रखनेके लिये वे उससे बँध गये । उन्होंने सोचा कि राक्षसोंद्वारा पकड़े जानेमें भी मेरा लाभ ही है, क्योंकि इससे मुझे राक्षसराज रावणके साथ बातचीत करनेका अवसर मिलेगा । यह सोचकर वे निश्चेष्ट हो गये । तब राक्षसोंने नाना प्रकारके रस्सोंसे हनुमानजीको अच्छी प्रकार बाँध लिया । ऐसा करनेसे ब्रह्मास्त्रका प्रभाव नहीं रहा । इस प्रकार ब्रह्मास्त्रसे मुक्त हो जानेपर भी परम चतुर हनुमानजीने ऐसा बर्ताव किया मानो इस बातको वे जानते ही न हों ।

अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि इसके बाद हनुमानजी रावणकी सभामें लाये गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने समस्त सभाके बीचमें बड़ी सज-धजके साथ राजसिंहासनपर बैठे हुए रावणको देखा । हनुमानजीको देखकर रावणको मन-ही-मन बड़ी चिन्ता हुई । वह सोचने लगा कि यह भयंकर वानर कौन है ? क्या साक्षात् शिवजीके गण भगवान् नन्दीश्वर ही तो वानरका रूप धारण कर नहीं आ गये हैं ? इस प्रकार बहुत-सा तर्क-वितर्क करनेके बाद रावणने प्रहस्तसे कहा—

प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः
किमत्र कार्यं कुत एव वानरः ।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं
हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात् ॥

(५ । ४ । ५)

'प्रहस्त ! इस वानरसे पूछो, यह यहाँ क्यों आया है ? इसका क्या काम है ? यह आया कहाँसे है ? तथा इसने मेरा समस्त बगीचा क्यों नष्ट कर डाला ? और मेरे राक्षस वीरोंको बलात्कारसे क्यों मार डाला ?'

प्रहस्तने श्रीहनुमानजीसे सारी बातें सत्य-सत्य कहनेके लिये अनुरोध किया, तब आपने राजनीतिके अनुसार उत्तर दिया । मनमें भगवान्‌का स्मरण करके वे कहने लगे—

शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे
रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः ।
यस्याखिलेशस्य हृताधुना त्वया
भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः ॥

(५ ।

आन दंड कछु करिअ गोसाँई । सबहीं कहा मंत्र भल भाई ॥
(५ । २४ । ४)

यह सुनकर रावणने कहा—

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥
पूँछहीन बानर तहँ जाइहि । तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई । देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥
(५ । २४, २५ । १)

अध्यात्मरामायणमें लिखा है—यह सुनकर श्रीहनुमानजीने मन-ही-मन सोचा कि अब काम बन गया । उधर राक्षसोंने रावणकी आज्ञा पाकर तुरत ही हनुमानजीकी पूँछपर बहुत से वस्त्र घी और तेलमें भिगो भिगोकर बाँध दिये । पूँछके अग्रभागमें थोड़ी आग लगा दी और शहरमें फिराकर एवं ढोंडी पिटवाकर लोगोंको सुनाने लगे कि 'यह चोर है, इसलिये इसे यह दण्ड दिया गया है ।' कुछ दूर जानेपर हनुमानजीने अपने शरीरको सङ्कुचित कर तुरत ही समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर पर्वताकार रूप धारण कर लिया और समस्त लंका जला डाली ।

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः ।
ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ॥
हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः ।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ॥
(५ । ४ । ४२, ४३)

'एक घरसे दूसरे घरपर छलाँग मारते हुए श्रीहनुमानजीने अपनी जलती हुई बड़ी पूँछसे अटारी, महल और तोरणों सहित समस्त लंकाको जला दिया । उस समय "हा तात !" "हा पुत्र !," "हा नाथ !"—इस प्रकार चिल्लाती हुई दैत्योंकी स्त्रियाँ चारों ओर फैल गयीं और महलोंके शिखरोंपर भी चढ़ गयीं ।'

रामचरितमानसमें लिखा है—

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं । भईं सभीत निसाचर नारीं ॥
❀ ❀ ❀ ❀
जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥
❀ ❀ ❀ ❀
उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥
पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि ।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥
(५ । २५ । ५, २६ । ४, २६)

इस प्रकार श्रीजानकीजीके पास पहुँचकर श्रीहनुमानजीने उन्हें प्रणाम किया और लौटकर श्रीरामके पास जानेके लिये आज्ञा माँगी । तब माता सीताने कहा कि 'हनुमान ! तुम्हें देखकर मैं अपने दुःखको कुछ भूल गयी थी, अब तुम भी जा रहे हो तो बताओ, अब मैं भगवान् श्रीरामकी कथा सुने बिना कैसे रह सकूँगी ?' अध्यात्मरामायणमें उस समय श्रीहनुमानजीके वचन इस प्रकार हैं—

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः ।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि ॥
(५ । ५ । ६)

'देवी जानकी ! यदि ऐसी बात है और आप स्वीकार करें तो मेरे कंधेपर चढ़ जाइये, मैं एक क्षणमें ही आपको श्रीरामसे मिला दूँगा ।'

वाल्मीकीय रामायणमें और भी विस्तृत वर्णन है । वहाँ हनुमानजीके इस प्रस्तावपर श्रीजनकनन्दिनी कहती हैं—'हनुमान ! मैं स्वेच्छासे किसी पुरुषको कैसे स्पर्श कर सकती हूँ । श्रीरामजी वानरोंके साथ यहाँ आकर रावणको युद्धमें मारकर मुझे ले जायँ, इसीमें उनकी शोभा है । इसलिये तुम जाओ, मैं किसी तरह कुछ दिन और प्राण धारण करूँगी ।'

इसके बाद रामचरितमानसमें हनुमानजीके वचन इस प्रकार हैं—

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
(५ । २७ । १)

तब सीताने अपनी चूडामणि हनुमानको दी । उसे पाकर हनुमानजी बड़े प्रसन्न हुए । उसके बाद सीताने वह सब प्रसङ्ग भी हनुमानजीको सुनाया, जिस प्रकार जयन्तने कौएका रूप धारण करके चोंच मारी थी और भगवान् श्रीरामने उसपर क्रोध किया था ।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी सीताका संदेश लेकर, उनको प्रणाम करके वहाँसे लौटे । उनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंकी बड़ी उतावली हो रही थी । इसलिये वे बड़े वेगसे पहाड़पर चढ़ रहे थे । उस समय उनके पैरोंकी धमकसे पर्वतकी शिलाएँ चूर-चूर होती जा रही थीं । सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़कर श्रीहनुमानजीने अपना शरीर बढ़ाया और समुद्रसे पार होकर उत्तरी [illegible] जानेका विचार किया । पर्वतसे उछलकर वे

संकीर्तन-रत श्रीहनुमान

'रामके भक्त ही लौं जीत्यो माँग्यो अपनो'

[पृष्ठ ११९

त अपनी प्रिय चूडामणि मुझे दी। पहले चित्रकूटपर कके साथ जो घटना हुई थी, यह सब सुनायी तथा तोंमें जल भरकर कहा कि श्रीरघुनाथजीसे मेरी कुशल ना और लक्ष्मणसे कहना—'कुलनन्दन! मैंने पहले तुमसे कुछ कठोर वचन कहे थे, उन अज्ञानवश कहे हुए नोंके लिये मुझे क्षमा करना तथा जिस प्रकार श्रीरघुनाथजी पा करके मेरा उद्धार करें, वैसी चेष्टा करना।' उनका ह सँदेसा लेकर उनका भेजा हुआ मैं आपके पास चला ाया। आते समय मैंने रावणकी प्यारी अशोक-वाटिका जाड़ दी तथा एक क्षणमें ही बहुत-से राक्षस मार डाले। वणके पुत्र अक्षकुमारको भी मारा और रावणसे वलापकर लङ्काको सब ओरसे जलाकर फिर तुरंत ैं यहाँ चला आया।"

श्रीहनुमानजीसे सीताके सब समाचार सुनकर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—

हनूमस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणि॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम्॥
साश्रुनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः।
(५।५।६०—६२)

"वायुनन्दन हनुमान! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओंसे भी होना कठिन है। मैं इसके बदलेमें तुम्हारा क्या उपकार करूँ, यह नहीं जानता। मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूँ।' यह कहकर रघुश्रेष्ठ श्रीरामने वानरश्रेष्ठ हनुमानको खींचकर गाढ़ आलिङ्गन किया। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे प्रेममें मग्न हो गये।"

श्रीहनुमानजीके बल, पराक्रम, कार्यकौशल, साहस और पवित्र प्रेमका इस प्रकरणमें सभी रामायणोंमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है।

ऋग्वेदमें श्रीरामदूत श्रीहनुमान

(वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज, उदासीन)

शिवं स तनुतां रामो यस्य दूतं महाबलम्।
स्तौति वायुसुतं श्रीरमग्निमित्यादिका श्रुतिः॥

"'अग्निम्' इत्यादि श्रुति जिनके महाबली दूत वीरवर पवनकुमार हनुमानजीकी स्तुति करती है, वे श्रीराम मङ्गलका विस्तार करें।"

भगवत्प्राप्तिके साधनभूत ज्ञान-कर्मादिमें यद्यपि भगवद्भक्तिकी श्रेष्ठता सुस्पष्ट प्रतिपादित है, किंतु भगवद्भक्तोंकी भक्तिश्री महिमाका स्थान सुनिश्चित रूपसे सर्वोपरि है। स्वयं भगवान्‌का कथन है—'मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः।' (लघुभागवतामृत) लोकमें भी पुत्रके सम्मानसे पिताका सुप्रसन्न होना सर्वानुभूत है।

सन् १९६९में 'वेदोपदेशचन्द्रिका'के मुद्रणकालमें इसी भावनावश भक्तप्रवर हनुमानजीके सम्बन्धमें मैंने वेदोंपर दृष्टि दौड़ायी तो उस समय मेरी समझमें केवल ऋग्वेदका प्रथम मन्त्र ही हनुमच्चरित्रका निर्देशक प्रतीत हुआ, जो 'वेदोपदेशचन्द्रिका'के पृ० ८९ पर संस्कृत चान्द्रभाष्य तथा हिंदी अनुवादके साथ छप चुका है।

पर इस समय तो श्रीरामके अतिप्रिय भक्त श्रीहनुमानजीकी विशेष अनुकम्पासे मन्त्रोंकी बात तो एक ओर रही, पूरे सूक्त-के-सूक्त ही हनुमच्चरित्रके प्रतिपादक प्रतिभासित हो रहे हैं। यहाँ यथामति उन वैदिक सूक्तों तथा तदन्तर्गत मन्त्रोंका अभिप्राय देनेका प्रयास किया जा रहा है—

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥
(ऋ० १।१२।१)

'अग्निम्' अग्रणी, वानराग्रणी, वायुपुत्रको अथवा दैत्य-दाव-दहन (दैत्य-वनके दाहक अग्नि) को, 'अस्य यज्ञस्य दूतम्' ध्यानकी परिपाक दशामें भक्तोंके समक्ष उपस्थित अथवा जनकल्याणके लक्ष्यसे धराधामपर अयोध्यामें अवतीर्ण 'यज्ञो वै विष्णुः'—(शतपथब्राह्मण १।१।२)—इस श्रुतिके अनुसार 'यज्ञस्य' विष्णुके अर्थात् दशरथनन्दन श्रीरामके दूतको, 'सुक्रतुम्'—शोभनकर्माणम्, जिस वीराग्रणी महानुभावने प्रभु श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये समुद्रोल्लङ्घन, सीता-अन्वेषण, युद्धभूमिमें मूर्च्छित लक्ष्मणके पुनर्जीवनके लिये सजीवनी ओषधिके उद्गम-स्थान द्रोणाद्रिके समानयन आदि लोकोत्तर अद्भुत पराक्रम किये, उन श्रीहनुमानजीको

१ वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः। (वा० रा० ५।३६।२)

—इस वचनके अनुसार देवोंको परोक्ष शब्दद्वारा वस्तुका निर्देश अत्यन्त प्रिय है। अतएव भगवान् वेदमें श्रीहनुमानजी 'हन्मन' शब्दद्वारा निर्दिष्ट हुए हैं।

निम्ननिर्दिष्ट मन्त्रके अवलोकनसे यह विषय और भी स्पष्ट हो जायगा—

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥*

(ऋक्० १। ३३। ११)

भोक्ता जीवके भाग्य अन्न व्रीहि-यवादि निष्पत्तिके निमित्त मेघोंद्वारा जलकी वृष्टि होती है। मेघोंमें जल कहाँसे आया, इस शङ्काका समाधान वेदमें दो समुद्र मानकर किया गया है। ऋग्वेदके दो मन्त्रों (१०।९८।५, ६)-में उत्तर एवं अधर दो समुद्र माने गये हैं—उत्तर—उत्कृष्ट, दिव्य, उपरिस्थित एवं अधर—निकृष्ट, अधोवर्ति पार्थिव समुद्र। ये दोनों समुद्र परस्पर एक दूसरेकी वृद्धिमें सहकारी हैं। मेघके उदरमें स्थित जलराशिरूप समुद्रको अन्तरिक्ष या अन्तरिक्षस्थित समुद्रकी संज्ञा दी गयी है। उससे वृष्टिधाराके द्वारा गिराया गया जल निर्झरों और महानदियोंका निर्माण करता है। ये निर्झर महानदियोंमें मिलते हैं और महानदियाँ अन्तत समुद्रमें मिलकर पार्थिव जलराशिको बढ़ाती हैं। सूर्यकी किरणें पार्थिव समुद्रकी जलराशिको आकृष्ट कर दिव्य समुद्रकी जलराशिकी वृद्धिका कारण बनती हैं। अतः मानना होगा कि पार्थिव समुद्रकी तरह दिव्य समुद्रमें भी अगाध जल वर्तमान है। वह इतना अधिक गम्भीर है कि उसे नौकाओंकी सहायतासे ही पार किया जा सकता है। 'नाव्य' पदका प्रयोग गम्भीरताको सूचित कर रहा है। उस अन्तरिक्षमें स्थित गम्भीर जलराशि—समुद्रके मध्य वर्तमान श्रीहनुमान अभिवृद्ध हुए, उन्होंने विशालाकृति धारण कर ली। निष्कर्ष यह कि वह अन्तरिक्षस्थित गम्भीर जलराशि भी श्रीहनुमानको डुबानेमें असमर्थ रही।

तात्पर्य यह कि जलराशिमें रहनेपर भी साधारण प्राणियोंकी तरह वे डूबकर मरे नहीं, अपितु उसमें विशालाकृति धारणकर सहर्ष विचरण करते रहे और यह प्रयास करने लगे कि इन्द्रके ऐरावतको पकड़कर भक्षण किया जाय। इन्द्रने जो उन्हें भगानेका प्रयास किया तो वे भागनेके स्थानपर उलटे लगातार इन्द्रको सताने लगे। अन्तमें चिढ़कर क्रुद्ध इन्द्रने अवसर पाते ही उनपर वज्रका प्रहार कर दिया। श्रीहनुमानजी मनके समान शीघ्र गतिसे इन्द्रके साथ-साथ चलते रहे। उनकी चेष्टा यही रही कि किसी तरह इन्द्रके वाहन ऐरावतको भोज्य बनाया जाय। अत 'हन्मना'—हनुमानसे पीड़ित होनेके कारण उन्हें विवश होकर उनपर वज्र प्रहार करना पड़ा। ज्ञातव्य है कि वेदमें (जैसे ऋक्० २।२८।२ में) 'महिम्ना'की जगह वर्ण विलोपसे निष्पन्न 'मह्ना' शब्द प्रयुक्त हुआ है, ठीक उसी तरह 'हनुमता' इस तृतीयान्त पदके स्थानमें 'हन्मना' पदका प्रयोग हुआ है। कारण,

---

* आप' जलानि, अस्य जीवस्य भोक्तु 'स्वधाम्' देववद्योपभ्यापिन व्रीहियवादिरूपमन्नम् 'अनु' अनुलक्ष्य—उद्दिश्य व्रीहियवादिनिष्पत्त्यर्थम् 'अक्षरन्' पर्जन्याद् वृष्टा अभवन्, तदुक्त गीतायां 'पर्जन्यादन्नसम्भवः' इति (३। १४)। अयमभिसंधि—द्वौ समुद्रौ वर्तेते तत्रैक पार्थिवो जलराशिलक्षण द्वितीयो मघान्तरस्थितजलसमूहलक्षणोऽन्तरिक्षाख्यस्तत्र स्थितो वा। तावन्योन्यस्योपकुर्वाते। अन्तरिक्षस्थ समुद्र पर्जन्यविमुक्तसततजलधारानिर्मितनिर्झरमहानद्यादिक्रमेण पार्थिव समुद्रं वर्धयति। पार्थिव समुद्रश्च रविरश्म्याकृष्टस्वजलराशिना द्वितीयमन्तरिक्षस्थ समुद्रम्। आहतुश्च मन्त्रवर्णौ—'स उत्तरस्मादधर समुद्रम्' ॥ 'अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्' ॥ (ऋग्० १०। ९८। ५, ६) उत्तराधरौ समुद्रौ पार्थिवदिव्यसमुद्रौ स्फुट निर्दिशत। तथा च पार्थिवसमुद्र इवान्तरिक्षेऽपि समुद्रो विद्यते। पार्थिवस्येव तस्य जलराशिरुत्कर्षेणागाधो गम्भीर तस्मात् स वारिसमूहो नाभिरेव तरितुं शक्य इति। 'नाव्यानाम्' पूर्वोक्तहेतो नौभिस्तरितुं योग्यानां दिव्यसमुद्रस्थानामपां मध्येऽन्त असौ हनुमान् 'अवर्धत' अभिवृद्धो बभूव। नासौ जलराशिस्त निमज्जयितु शशाकेत्यर्थ। 'द्यून अभि' बलेन दानमानान् दीप्यातिरेकसमृद्धान् महाबलिनो राहुभास्करैरावणान् अभिलक्ष्य पतत फल मत्वा भक्षयितुं जिघृक्षन्तम् असौ हनुमन्तम् ओजिष्ठेन अतिबलवता सध्रीचीनेन तान् गृहीत्वा भोक्तुं सहगच्छता मनसा मनस्तुल्यवेगेन 'हन्मना' हनुमता। अत्र उकारलोपस्तकारस्य नकारश्च छान्दस। देवानां परोक्षप्रियत्वाद्धनुमतेत्यनुक्त्वा तथोक्ति, निविद्ध इति शेष। समस्वन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान (ऋग्० ४। १८। ९) इति मन्त्रवर्णात्। 'इन्द्र' तत्वादितत्वात् क्रुद्ध सदन् वज्रं प्रजहार। कथेयं वाल्मीकिरामायणे (उ० का० ३५ तमे सर्गे) सरष्टव्या।

ऋग्वेदका विशेष परिशीलन करनेपर और भी पता चला कि वेदमें प्रयुक्त 'अपां नपात्' शब्दका असाधारण प्रतिपाद्य देव हनुमान ही हैं। वे स्वतन्त्र एवं अल्पस्तुत देव हैं। इनके दो सूक्त हैं—ऋ० २।३५ तथा ऋ० १०।३०। इन सूक्तोंमें 'अपां नपात्' शब्द बहुश: प्रयुक्त हैं (ऋ० २।३५, १।३, ७, ९, १०, १३, १०।३०।३४)।

'अपां नपात्' शब्दका अर्थ है—आकाशका नाती—पौत्र। 'अप:' शब्द अन्तरिक्ष, आकाशका वाचक है। निघण्टुमें 'आप:' शब्द अन्तरिक्ष नामोंमें पठित है—'अन्तरिक्षं आकाशं आप:' (१।३।६ ८)।

सृष्टि प्रकरणकी दृष्टिसे भी 'आकाशाद् वायु:' (तै० उ० २।१) श्रुतिके अनुसार आकाशात्मज वायुके तनय भगवान् हनुमान ही हैं। वेदने इसी गूढ अभिप्रायसे उनके लिये 'अपां नपात्' शब्दका प्रयोग किया है। 'अपां नपात्' शब्दकी स्पष्ट व्याख्या भी उसी(३५वें) सूक्तके ११, १४ मन्त्रोंमें क्रमश: 'नप्तुरपां आपो' इन शब्दोंद्वारा की गयी है। १०।३० सूक्तके ३।४ मन्त्रोंमें प्रयुक्त शब्दका स्पष्टीकरण १०।३०के १४वें मन्त्रमें 'अपां नप्त्रा' शब्दसे किया गया है।

निम्न निर्दिष्ट मन्त्रसे इसपर विशेष प्रकाश डाला जाता है—

हिरण्यरूप: स हिरण्यसंदृगपां नपात् सेदु हिरण्यवर्ण:।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥
(ऋक् २।३५।१०)

सायणाचार्यने 'रूप' शब्दका अर्थ शरीर, संदृक् का अर्थ इन्द्रिय तथा 'वर्ण' का अर्थ कान्ति किया है। अत: 'स: वह हिरण्मय शरीरयुक्त तथा हिरण्मय इन्द्रियोंसे सम लंकृत है। 'सेदु—स+इत+उ' निश्चित ही वह स्वर्णके समान कान्तिसे शोभित है। जो 'अपां नपात्' देव है, वह स्वर्णमय स्थान तेजोमय सूर्यमण्डलसे 'परि' उपरि, दूसरे शब्दोंमें स्वर्णमय सूर्यमण्डलके ऊपर निषद्य स्थित (आसीन) होकर 'राजते' शोभित हो रहा है। 'हिरण्यदा' स्वर्णके दाता सम्पन्न भक्त 'अस्मै' इस 'अपां नपात्' देव हनुमानके लिये 'अन्नम्' अन्नोपलक्षित मधुर मोदकादि पदार्थ 'ददति' देते हैं। तात्पर्य, उन्हें मोदकादिका भोग लगाते हैं।

इसी मन्त्रका भाव 'हेमशैलाभदेहम्' शब्दसे गोस्वामी तुलसीदासजीने अभिव्यक्त किया है। धन्य हैं—श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी, जिन्होंने वेद-मन्त्रोंका गहन अध्ययन किया और सूक्ष्म गवेषणासे अवगत भगवान् हनुमानके स्वरूपसे सम्बद्ध विशेषणोंका ललित-पदावलीद्वारा उपर्युक्त श्लोकमें उपन्यास किया। शान देवता भगवान् हनुमानकी ही कृपासे मुझे उनके स्वरूपके प्रतिपादक कतिपय वेद-मन्त्र प्रतिभाषित हुए। वेदार्थभावक यास्क मुनि निरु० १०। ३६में ऋग्वेदकी १।१९।१ ऋचाकी व्याख्यामें बलपूर्वक लिख रहे हैं—'कमन्यं मध्यमदेवमवक्ष्यत्'। इस मन्त्रमें मध्यम देवके अतिरिक्त और किस देवका मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करेगा। अर्थात् ऋग्वेद १।१९ के सभी मन्त्रोंमें 'मरुद्भिरग्न आ गहि' वाक्यसे मध्यमदेव अर्थात् मध्यम-स्थान-वायु सम्बद्ध देवका ही उल्लेख मानना होगा। निरुक्तका सिद्धान्त है कि मुख्यदेव तीन ही हैं, अन्य देव उनके विभूतित परिवार अथवा उन्हींके सम्बन्ध प्रसूत विशेष रूप हैं। अत: इस सूक्तमें मध्यम स्थान वायुदेवके सङ्कल्प प्रसूत वायुपुत्र हनुमान ही 'अग्नि' शब्दसे प्रतिपाद्य हैं।

अन्यत्र अग्नि शब्दका कपिराज हनुमान अर्थ करनेमें किसीको आशङ्का करनेका कदाचित् अवसर है, किंतु ऋग्वेदके १।१ सूक्तमें 'मरुद्भिरग्न आ गहि' इस नवधा प्रयुक्त मन्त्रके अन्तिम वाक्यमें प्रयुक्त 'अग्नि' शब्दका अर्थ मध्यमस्थान वायुसे सम्बद्ध वायुपुत्र हनुमान ही प्रकरणानुसार गृहीत होगा। अतएव निघण्टु ५।४।२३ में अग्नि शब्द पुन: प्रयुक्त हुआ है। पार्थिव अग्निवाचक 'अग्नि' शब्द (निघ० ५।१।१) पहले ही निर्दिष्ट है। अत: यहाँ पार्थिव अग्निके ग्रहणकी आशङ्का शक्य नहीं।

वेदमन्त्रप्रमाणाढ्यो लेखोऽयं हनुमत्पर:।
तत्प्रभावसमुद्भूत: समर्पो तनुतां मुदम् ॥

---

१ अपां नपात् तनूनप्त्रा व्याख्यात (निरु० १०।१८) तनूनपात् (निघ० ५।२।२) (निरु० ८।५) तनू गौका पुत्र दूध, उसका पुत्र आज्य अत: गौ-पौत्र होनेसे 'तनूनपात्' शब्दका अर्थ कात्थक्यके मतमें आज्य है। शाकपूणिके मतमें तनू जलके पुत्र वनस्पति हैं, उनका पुत्र उनसे उत्पन्न अर्थात् जल-पौत्र अग्नि तनूनपात् शब्दका अर्थ है। उसी तरह आकाशपुत्र वायु, वायुके पुत्र ... शब्दके वाच्य हैं।

पिणको जैसा बताया जा रहा है, वह वैसा है, उसका जन्म यद्यपि राक्षस कुलमें हुआ है, पर वह स्वभावसे राक्षस नहीं, महात्मा है, धर्मात्मा है।' हनुमानजी की प्रत्यभिज्ञा शक्तिकी विजय होती है और सब लोग अपने अपने विचार बदलकर उन्हींके साथ हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामजी उनकी प्रत्यभिज्ञा शक्तिकी प्रशंसा करने लगते हैं।

भगवद्भक्तिका स्वरूप एवं माहात्म्य

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जबतक साधकका संसारसे सम्बन्ध रहता है, तबतक उसका भगवान्से सम्बन्ध नहीं होता। संसारसे और देहसे सब प्रकारका सम्बन्ध छोड़कर एकमात्र भगवान्से सम्बन्ध जोड़ लेना, भगवान्के सिवा किसीसे कोई नाता न रखना—यही तो भक्ति है। दो सम्बन्ध एक साथ नहीं रह सकते। लड़की जब पिताके घरसे सर्वथा सम्बन्ध तोड़ देती है, तब पतिके घरसे सम्बन्ध होता है। जब अपने घरका शरीर और संसारसे सम्बन्ध ही नहीं रह जाता, तब कोई वस्तु या परिस्थिति उसके लिये आवश्यक कैसे हो सकती है और वह किसी प्रकारकी कामना कर ही कैसे सकता है। जो वस्तुओंकी कामना करता है, वह तो वास्तवमें उन वस्तुओंका ही भक्त है, ईश्वरका नहीं।

भगवान्में पूर्ण विश्वास और नित्य नया प्रेम हो—इसीका नाम भक्ति है।

० ० ०

साधकको चाहिये कि प्रभुको अपना समझे, उनपर दृढ़ विश्वास करे, विश्वासमें विकल्प न आने दे। शरीर, मन, इन्द्रियाँ और बुद्धिको तथा अपने-आपको पूर्णतया भगवान्के समर्पण करके सब प्रकारसे उनपर निर्भर हो जाय। उनपर पूरा भरोसा करे।

भगवान्पर पूरा भरोसा होनेपर ही समर्पण होता है। समर्पण करनेके बाद जो यह देखना है कि कुछ नयापन आया या नहीं, यही भरोसेकी कमी है।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि मनुष्य संसारपर जितना भरोसा करता है, उतना भगवान्पर नहीं करता। जैसे कहीं जानेवाला यात्री पहलेसे गाड़ीमें अपना स्थान सुरक्षित करा लेता है, तो उसको यह भरोसा रहता है कि ठीक समयपर स्थान अवश्य मिल जायगा, अतः वह निश्चिन्त हो जाता है, यद्यपि उसमें अनेकों विघ्न भी आ सकते हैं। विघ्न असम्भव नहीं है, तो भी उसपर भरोसा कर लेता है। संसारपर भरोसा करके बहुत बार धोखा खाया है एवं भगवान्पर भरोसा करनेवालेको कभी धोखा नहीं हुआ—यह मानते हुए भी मनुष्य भगवान्पर निर्भर नहीं होता, इससे बढ़कर दुःख और आश्चर्य क्या होगा!

मनुष्य स्वयं अलग रहकर अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भगवान्में लगाना चाहता है, यहींसे ही भूल होती है। प्रेमका सम्बन्ध साधकसे है न कि उसके मन, इन्द्रिय और बुद्धिसे। प्रेममार्गमें चलनेवाला पहले तो अपनेको अपने प्रियतमके प्रेमकी लालसा और बादमें प्रेम समझता है, प्रेमी प्रेममें विलीन हो जाता है। प्रेम और प्रेमीमें भिन्नता नहीं रहती। अतः प्रेममार्गके पथिकके जीवनमें भगवान्का प्रेम, भरोसा और कृपा सदा सजीव बने रहने चाहिये, भावकी शिथिलता नहीं होनी चाहिये।

मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो अहंकी विभूतियाँ हैं, उनमें प्रेम नहीं होता। प्रेम अहंमें होना चाहिये, अहंमें प्रेमकी प्रबलता होनेसे मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ—सब उसीमें विलीन हो जाते हैं। वे अहंके भावका विरोध नहीं करते।

साधकको ध्यानपूर्वक इस बातका मनन करना चाहिये कि मैं सचमुच क्या चाहता हूँ। मेरी वास्तविक आवश्यकता क्या है। जिसके न होनेपर साधक रह सकता है, जिसका वियोग अनिवार्य है, वह उसकी आवश्यकता नहीं हो सकती। सच्ची आवश्यकता उसीकी है, जिसके बिना वह नहीं रह सकता, जो कभी उससे अलग नहीं होता। सोचनेपर यदि यह बात हो कि ऐसा तो एकमात्र स्वयं ही हूँ तो विचार करना चाहिये कि क्या

कृपालु श्रीहनुमान

(महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

भक्तराज महावीरकी एक अपूर्व कहानी मैंने कई वर्षों पूर्व एक स्टेशनमास्टरके मुखसे सुनी थी। उनका नाम तो मैं भूल गया हूँ, परंतु घटना याद है, जो इस प्रकार है—

उन स्टेशनमास्टरकी इच्छा हुई कि मैं रामचरितमानसका अध्ययन करूँ। इसलिये एक विद्वान् रामायणीका उन्होंने आचार्यरूपसे ग्रहण किया। प्रथम दिन जब पाठ आरम्भ हुआ तो उन्होंने क्या देखा कि रेलिंगके बाहर एक बंदर बैठा हुआ है। दूसरे दिन फिर रामायण-पाठ चल रहा था, एकाएक वही बंदर आया और रेलिंगके भीतर आकर बैठ गया। क्रमशः प्रतिदिन वह (बंदर) निकट आता चला गया। कुछ दिनोंमें वह आकर स्टेशनमास्टर महाशयकी गोदमें बैठने लग गया। वे भी दिन प्रतिदिन उसकी गतिविधिको परख रहे थे। पाठ आरम्भ होनेपर वह नित्य आता और पाठ-समाप्तिपर चला जाता। अब वह बंदर उन स्टेशनमास्टरके कंधेपर बैठने लगा। नित्य आने जानेसे स्टेशनमास्टर महोदयको भी उस बंदरसे प्रेम-सा हो गया। उन्हें उससे डर नहीं लगता था। तदनन्तर एक दिन रामायण अध्ययनके समय वह बंदर स्टेशनमास्टर महाशयके मस्तकपर चढ़ गया और उनका गाल पकड़कर बैठ गया। भक्त स्टेशनमास्टरके गालोंमें कुछ कसक होने लगी, उन्होंने माथा हिलाया, तब उस बंदरने गालोंकी पकड़को कुछ ढीला कर दिया। यहाँ जबतक रामायण-पाठ होता रहा, उतने दिन तक वे 'वानर' (हनुमान) नित्यप्रति आते रहे। पाठ समाप्तिके पश्चात् फिर किसीने उनका दर्शन नहीं किया।

यह लीला श्रीजानकी मैयाके प्यारे पुत्र, भगवान् यशरूपी तृण-मण्डपके लिये प्रचण्ड दावानलरूप, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य सेवक और हमलोगोंके परम रक्षक श्रीमहावीरजीकी ही है। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है।

(२)

यह बात प्रायः ०० वर्ष पूर्वकी है। एक दिन सन्ध्या समय तेतरिया ग्रामकी ठाकुरबाड़ी (मन्दिर) में एक भीमकाय सज्जन उपस्थित हुए। रात्रिमें भगवान् श्रीवंशीधरका प्रसाद ग्रहण किया। दूसरे दिन प्रातःकाल एक भक्त श्रीमहावीरजीके भोगके लिये एक मन आटा, घी, सूजी, चीनी, आलू आदि लेकर उपस्थित हुआ, क्योंकि श्रीमहावीरजीने कृपा करके उसकी मनौती पूर्ण की थी। इसीलिये उसने प्रसादके लिये यह सामान प्रस्तुत किया था।

पुजारीने आसपासके ग्रामोंके ब्राह्मणोंको प्रसाद पानेके लिये निमन्त्रित किया। मध्याह्नमें आरती होनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजनके लिये बुलाने लगे तो उन्होंने कहा—'पहले नये अतिथिको भोजन कराइये।' उनके कहे अनुसार अतिथि महाराज (वहाँ भोजनार्थ आये हुए एक अपरिचित)को एक मनुष्यके भोजनयोग्य (व्यञ्जन, हलुआ आदि) परोसा गया। उन्होंने वह सब भोजन तुरंत पा लिया। पुनः दो व्यक्तियोंके तृप्त होने योग्य भोजन परोसा गया, उसे भी उन्होंने तुरंत उदरस्थ कर लिया। फिर इस बार हुई तीन-चार व्यक्तियोंके तृप्त होने योग्य भोजन दिया गया। अब तो अन्य ब्राह्मण लोग भी उन अपूर्व भोजनकर्ताका दर्शन करनेके लिये उनके निकट आकर बैठ गये। अतिथि महाराज बिना कुछ बोले उसे भी चट कर गये। इस प्रकार क्रमशः जो कुछ बना था, वह सब उनकी जठराग्निकी आहुतिमें चढ़ा दिया गया। अनुमानतः दो-ढाई सेर प्रसाद शेष बचा, तब वे (अतिथि देव) कहने लगे—'इसे रहने दीजिये, अब आप सब लोग प्रसाद पाइये।'

आचमनके पश्चात् मुखशुद्धिके लिये हरीतकी (हर्रे) ग्रहण करके वे अतिथि महाशय अपने आसनपर जा बैठ गये। उसके बाद वे कब अदृश्य हो गये, यह कोई न जान सका। वे स्वयं महावीर हनुमानजी ही थे, वे ही जिनके उद्देश्यसे यह प्रसाद बनाया गया था, वे ही कृपा करके उसे ग्रहण कर गये।

एकटक उन्हें निहार रहे थे। समुद्रके जल-जन्तु भयभीत होकर समुद्रके तलमें छिप गये। पक्षियोंने आकाशमें उड़ना बंद कर दिया। हनुमानजी बिना विश्राम किये निरन्तर वायुवेगके सदृश समुद्रके ऊपर उड़ते ही जा रहे थे।

हिमालयके पुत्र मैनाकने, जो समुद्रमें छिपा हुआ है, कहा भी, 'हनुमान! तनिक विश्राम कर लो, फिर आगे बढ़ो।'

किंतु उसकी ओर बिना देखे ही हनुमानजीने शीघ्रतापूर्वक चलते-चलते ही कहा—'मैनाक भाई! धन्यवाद! धन्यवाद!! इस कृपाके लिये साधुवाद! श्रीरामचन्द्रजीका कार्य जबतक मैं कर न लूँगा, तबतक मुझे विश्राम कहाँ, आराम कहाँ! मुझे आज्ञा दो, शीघ्र पहुँचना है उस पार।'

सर्पोंकी माता सुरसाको देवताओंने हनुमानजीकी बुद्धि की परीक्षा लेने भेजा। उसने आकर कहा—'ओ वानर! खड़ा रह, मैं तुझे खाऊँगी। बड़ी भूखी हूँ। देवताओंने मेरे लिये तुम्हें ही आहारके निमित्त भेजा है।'

हनुमानजीने कहा—'माँ! मैं शीघ्रतामें हूँ। लौट आऊँ, तब खा लेना।'

उसने कहा—'बातें मत बनाओ। तुम बहुत हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचारी बलवान हो, मैं तुम्हें ही आहार करके संतुष्ट होऊँगी।' बातको अधिक न बढ़ाकर वानर बोले—'अच्छा नहीं मानती है तो फाड़ मुख।' उसने मुख फाड़ा, ये उससे दुगुने बन गये। फिर उसने दुगुना मुख फाड़ा तो ये उससे भी दुगुने बन गये। ऐसे दुगुना-दुगुना बढ़ाते हुए जब उसने अपने मुखको सौ योजन चौड़ा बना लिया, तब ये छोटा-सा रूप बनाकर उसके मुखमें घुस गये। उसके एक प्रकारसे पुनः बन गये और बाहर निकलकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बोले—'माँ! अब तो मैं तुम्हारे उदरमें चला गया, अब आज्ञा दे दो।'

सुरसा इनके बुद्धि-कौशलको देखकर परम प्रमुदित हुई और इन्हें भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देकर चली गयी। ये आगे बढ़ गये।

आगे चलकर एक विघ्न और आ गया। राहुकी माता सिंहिका, जो समुद्रमें ही रहती थी, आकाशमें उड़ने वालोंकी समुद्रमें पड़ती हुई छायाके द्वारा ही उन्हें खींचकर पकड़ लेती और खा जाती। उसने इनकी छायाको भी खींचा। ये उसकी धूर्तता समझ गये और ऐसा कसकर एक मुक्का जमाया कि उसके लगते ही वह परलोक सिधार गयी। हनुमानजी समुद्र-पार पहुँच गये। अब उन्होंने सोचा, इस पर्वताकार शरीरसे लंकामें प्रवेश करना उचित नहीं। समस्त सिद्धियाँ तो सदा इनके सम्मुख समुपस्थित ही रहती थीं। इन्होंने अणिमा सिद्धिके द्वारा अपना बहुत ही छोटा-सा रूप बना लिया।

लंकाकी अधिष्ठात्री देवी, जो सदा ही लंकाकी रक्षा किया करती थी, किसी अपरिचित व्यक्तिको बिना अनुमतिके भीतर प्रविष्ट ही न होने देती थी। बहुत लघु रूप होनेपर भी उसने इन्हें देख लिया और गरजकर बोली—'कौन है तू, जो चोरकी भाँति मेरा तिरस्कार करके लंकामें प्रवेश कर रहा है! सावधान, आगे न बढ़ना। नहीं तो तुझे खा जाऊँगी।'

हनुमानजीने बातको बढ़ाया नहीं। उन्होंने बिना कुछ सोच-समझे उसे कसकर एक ऐसा मुक्का मारा कि वह अचेत होकर गिर पड़ी। तब उसने कहा—'कपिराज! अवश्य ही तुम श्रीरामके दूत हो, अब लंकाका विनाश संनिकट आ गया। ब्रह्माजीने मुझे पूर्वमें ही बता दिया था कि जब तू बंदरके मुष्टिप्रहारसे अचेत हो जायगी, तब समझ जाना कि अब लंकाका विनाश होगा। अतः तुम प्रसन्नतासे भीतर चले जाओ।' इतना सुनते ही रात्रिके समय हनुमानजीने लंकामें प्रवेश किया।

श्रीराम-काज करनेवाले ब्रह्मचारीको सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—तीनों प्रकारकी मायाएँ आकर घेरती हैं और उसे भाँति-भाँतिके प्रलोभन देती हैं। जो इनके फंदेमें फँस जाता है, वह गिर जाता है तथा जो इनपर विजय प्राप्त कर लेता है, वह आगे बढ़ जाता है। सात्त्विक मायाको तो हाथ जोड़ ले, उसका मातृभावसे केवल स्पर्श करके आगे बढ़ जाय। तामस माया आये तो उसे मारकर ही आगे बढ़े। राजस मायाको मारे नहीं, केवल मूर्च्छित करके आगे बढ़ जाय। यही हनुमानजीने किया।

अब उन्हें सीताजीके अन्वेषणकी चिन्ता हुई। पहले उन्हें घुड़साल दिखायी दी। उसमें घुस गये, वहाँ असंख्यों घोड़े बँधे थे। उसमें हनुमानजी चारों ओर घूम-घूमकर सीताजीको खोजने लगे। वहाँ न मिलनेपर हस्तिशाला, गोशाला आदिमें खोजने लगे, फिर सोचने लगे—'मैं भी कैसा पागल हूँ, जो स्त्रीको गोशाला, गजशाला, अश्वशाला तथा दूसरे पशु-स्थानोंमें खोज रहा हूँ। स्त्री तो स्त्रियोंमें

एकटक उन्हें निहार रहे थे । समुद्रके जल-जन्तु भयभीत होकर समुद्रके तलमें छिप गये । पक्षियोंने आकाशमें उड़ना बंद कर दिया । हनुमानजी बिना विश्राम किये निरन्तर वायुवेगके सदृश समुद्रके ऊपर उड़ते ही जा रहे थ ।

हिमालयके पुत्र मैनाकने, जो समुद्रमें छिपा हुआ है, कहा भी, 'हनुमान ! तनिक विश्राम कर लो, फिर आगे बढ़ो ।'

किंतु उसकी ओर बिना देखे ही हनुमानजीने शीघ्रतापूर्वक चलते-चलते ही कहा—'मैनाक भाई ! धन्यवाद ! धन्यवाद !! इस कृपाके लिये साधुवाद ! श्रीरामचन्द्रजीका कार्य जबतक मैं कर न लूँगा, तबतक मुझे विश्राम कहाँ, आराम कहाँ । मुझे आज्ञा दो, शीघ्र पहुँचना है उस पार ।'

सर्पोंकी माता सुरसाको देवताओंने हनुमानजीकी बुद्धि की परीक्षा लेने भेजा । उसने आकर कहा—'ओ वानर ! खड़ा रह, मैं तुझे खाऊँगी । बड़ी भूखी हूँ । देवताओंने मेरे लिये तुम्हें ही आहारके निमित्त भेजा है ।'

हनुमानजीने कहा—'माँ ! मैं शीघ्रतामें हूँ । लौट आऊँ, तब खा लेना ।'

उसने कहा—'बातें मत बनाओ । तुम बहुत हृष्ट-पुष्ट ब्रह्मचारी बलवान् हो, मैं तुम्हें ही आहार करके सन्तुष्ट होऊँगी ।' बातको अधिक न बढ़ाकर वानर बोले—'अच्छा नहीं मानती है तो फाड़ मुख ।' उसने मुख फाड़ा, ये उससे दुगुने बन गये । फिर उसने दुगुना मुख फाड़ा तो ये उससे भी दुगुने बन गये । ऐसे दुगुना-दुगुना बढ़ाते हुए जब उसने अपने मुखको सौ योजन चौड़ा बना लिया, तब ये छोटा-सा रूप बनाकर उसके मुखमें घुस गये । उसके एक प्रकारसे पुत्र बन गये और बाहर निकलकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये । बोले—'माँ ! अब तो मैं तुम्हारे उदरमें चला गया, अब आज्ञा दे दो ।'

सुरसा इनके बुद्धि-कौशलको देखकर परम प्रमुदित हुई और इन्हें भाँति भाँतिके आशीर्वाद देकर चली गयी । ये आगे बढ़ गये ।

आगे चलकर एक विघ्न और आ गया । राहुकी माता सिंहिका, जो समुद्रमें ही रहती थी, आकाशमें उड़ने वालोंकी समुद्रमें पड़ती हुई छायाके द्वारा ही उन्हें खींचकर पकड़ लेती और खा जाती । उसने इनकी छायाको भी खींचा । ये उसकी धूर्तता समझ गये और ऐसा कसकर एक मुक्का जमाया कि उसके लगते ही वह परलोक सिधार गयी । हनुमानजी समुद्र-पार पहुँच गये । अब उन्होंने सोचा, इस पर्वताकार शरीरसे लंकामें प्रवेश करना उचित नहीं । समस्त सिद्धियाँ तो सदा इनके सम्मुख समुपस्थित ही रहती थीं । इन्होंने अणिमा-सिद्धिके द्वारा अपना बहुत ही छोटा-सा रूप बना लिया ।

लंकाकी अधिष्ठात्री देवी, जो सदा ही लंकाकी रक्षा किया करती थी, किसी अपरिचित व्यक्तिको बिना अनुमतिके भीतर प्रविष्ट ही न होने देती थी । बहुत लघु रूप होनेपर भी उसने इन्हें देख लिया और गरजकर बोली—'कौन है तू, जो चोरकी भाँति मेरा तिरस्कार करके लंकामें प्रवेश कर रहा है ? सावधान, आगे न बढ़ना । नहीं तो तुझे खा जाऊँगी ।'

हनुमानजीने बातको बढ़ाया नहीं । उन्होंने बिना कुछ सोचे-समझे उसे कसकर एक ऐसा मुक्का मारा कि वह अचेत होकर गिर पड़ी । तब उसने कहा—'कपिराज ! अवश्य ही तुम श्रीरामके दूत हो, अब लंकाका विनाश सन्निकट आ गया । ब्रह्माजीने मुझे पूर्वमें ही बता दिया था कि जब तू बंदरके मुष्टिप्रहारसे अचेत हो जायगी, तब समझ जाना कि अब लंकाका विनाश होगा । अतः तुम प्रसन्नतासे भीतर चले जाओ ।' इतना सुनते ही रात्रिके समय हनुमानजीने लंकामें प्रवेश किया ।

श्रीराम-काज करनेवाले ब्रह्मचारीको सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—तीनों प्रकारकी मायाएँ आकर घेरती हैं और उसे भाँति भाँतिके प्रलोभन देती हैं । जो इनके फंदेमें फँस जाता है, वह गिर जाता है तथा जो इनपर विजय प्राप्त कर लेता है, वह आगे बढ़ जाता है । सात्त्विक मायाका तो हाथ जोड़ ले, उसका मातृभावसे केवल स्पर्श करके आगे बढ़ जाय । तामस माया आये तो उसे मारकर ही आगे बढ़े । राजस मायाको मारे नहीं, केवल मूर्च्छित करके आगे बढ़ जाय । यही हनुमानजीने किया ।

अब उन्हें सीताजीके अन्वेषणकी चिन्ता हुई । पहले उन्हें घुड़साल दिखायी दी । उसमें घुस गये, वहाँ असंख्यों घोड़े बँधे थे । उसमें हनुमानजी चारों ओर घूम-घूमकर सीताजीको खोजने लगे । वहाँ न मिलनेपर हस्तिशाला, गोशाला आदिमें खोजने लगे, फिर सोचने लगे—'मैं भी कैसा पागल हूँ, जो सीताजीको गोशाला, गजशाला, अश्वशाला तथा दूसरे पशु-स्थानोंमें खोज रहा हूँ । स्त्री तो

संगीत-कोविद श्रीहनुमान

(नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्राचीन कालकी बात है, सुर-मुनि-सेवित कैलास शिखरपर महर्षि गौतमका आश्रम था। वहाँ एक बार पाताललोकसे जगद्विजयी बाणासुर अपने कुलगुरु शुक्राचार्य तथा अपने पूर्वज भक्तशिरोमणि प्रह्लाद, दानवीर बलि एवं दैत्यराज वृषपर्वाके साथ आया और महर्षि गौतमके सम्मान्य अतिथिके रूपमें रहने लगा। एक दिन प्रातःकाल वृषपर्वा शौच-स्नानादि नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर भगवान् शंकरकी पूजा कर रहा था। इतनेमें ही महर्षि गौतमका एक प्रिय शिष्य, जिसका अन्यय नाम शंकरात्मा था और जो अवधूतके वेषमें उन्मत्तकी भाँति विचरता था, विकराल रूप बनाये वहाँ आ पहुँचा और वृषपर्वा तथा उसके सामने रखी हुई शंकरकी मूर्तिके बीचमें आकर खड़ा हो गया। वृषपर्वाको उसका इस प्रकारका उद्दण्ड-सा व्यवहार देखकर बड़ा क्रोध आया। उसने जब देखा कि वह किसी प्रकार नहीं मानता, तब छुपकेसे तलवार निकालकर उसका सिर धड़से अलग कर दिया।

जब महर्षि गौतमको यह समाचार मिला, तब उनको बड़ा दुःख हुआ क्योंकि शंकरात्मा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था। उन्होंने उसके बिना जीवन व्यर्थ समझा और देखते-देखते वृषपर्वाकी आँखोंके सामने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। उन्हें इस प्रकार देह-त्याग करते देखकर शुक्राचार्यसे भी नहीं रहा गया, उन्होंने भी उसी प्रकार अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया और उनकी देखादेखी प्रह्लादादि अन्य दैत्योंने भी वैसा ही किया। बात-की-बातमें ऋषिके आश्रममें शिव-भक्तोंकी लाशोंका ढेर लग गया। यह करुणापूर्ण दृश्य देखकर ऋषि-पत्नी अहल्या हृदयभेदी स्वरसे आर्तनाद करने लगी। उनकी क्रन्दन-ध्वनि भक्तभयहारी भगवान् भूतभावनके कानोंतक पहुँची और उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। वे वायुवेगसे महर्षि गौतमके आश्रमपर पहुँचे। इसी प्रकार गजकी करुण पुकार सुनकर एक बार भगवान् चक्रपाणि भी वैकुण्ठसे पाँव पियादे आतुर होकर दौड़े आये थे। धन्य भक्तवत्सलता! दैवयोगसे ब्रह्माजी तथा विष्णुभगवान् भी उस समय कैलासपर ही उपस्थित थे। उन्हें भी कौतूहलवश शंकरजी अपने साथ लिवा लाये।

भगवान् त्रिलोचनने आश्रममें पहुँचकर अपने कृपाकटाक्षसे ही सबको बात-की-बातमें जिला दिया। तब वे सब खड़े होकर भगवान् मृत्युंजयकी स्तुति करने लगे। भगवान् शंकरने महर्षि गौतमसे कहा—'हम तुम्हारे इस अलौकिक साहस एवं आदर्श त्यागपर अत्यन्त प्रसन्न हैं, वर माँगो।' महर्षि बोले—'प्रभो! आपने यहाँ पधारकर मुझे सदाके लिये कृतार्थ कर दिया। इससे बढ़कर मेरे लिये और कौन-सी वस्तु प्रार्थनीय हो सकती है? मैंने आज सब कुछ पा लिया। मेरे भाग्यकी आज देवतालोग भी सराहना करते हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं चाहता हूँ कि आज आप मेरे यहाँ प्रसाद ग्रहण करें।'

भगवान् तो भावके भूखे हैं। उनकी प्रतिज्ञा है—

> पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
> तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
>
> (श्रीमद्भगवद्गीता ९। २६)

इसी भावके वशीभूत होकर उन्होंने एक दिन श्रीराम रूपमें शबरीके बेर और श्रीकृष्णरूपमें सुदामाके तन्दुलोंका भोग लगाया था। उन्होंने महर्षिकी अविचल और निश्छल प्रीति देखकर उनका निमन्त्रण तुरत स्वीकार कर लिया और साथ ही ब्रह्मा एवं विष्णुको भी महर्षिका आतिथ्य स्वीकार करनेको राजी कर लिया। जबतक इधर भोजनकी तैयारी हो रही थी, तबतक शंकरजी भगवान् विष्णुके साथ चलकर आश्रमके एक सुन्दर भवनमें गये और वहाँ एक सुकोमल शय्यापर लेटकर बहुत देरतक प्रेमालाप करते रहे। इसके अनन्तर वे आश्रम-भूमिमें स्थित एक सुरम्य तड़ागपर जाकर वहाँ जल-क्रीडा करने लगे। रँगीले भोलेबाबा भगवान् श्रीहरिके पद्मदलायत लोचनोंपर कमल-किञ्जल्कमिश्रित जल अञ्जलिके द्वारा फेंकने लगे। भगवान् ने उनके प्रहारको न सह सकनेके कारण अपने दोनों नेत्र मूँद लिये। इतनेमें ही भोलेबाबा मौका पाकर

कठोर सेवक-धर्मके आदर्श श्रीहनुमान

(अनन्तश्री स्वामीजी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

स्वयं भगवान् शंकर अपने प्रियतम आराध्यदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाके लिये अवतार लेना चाहते हैं, स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठा कि सेवा धर्मका निष्ठापूर्वक अनुष्ठान करनेके लिये कौन-सा शरीर उपयोगी रहेगा ! श्रीरामचन्द्र नर-रूपसे प्रकट हो रहे हैं। यदि सेवक भी उन्हींके समान नर होकर प्रकट हो तो जाति, आकार, गुण, धर्म, खान-पान, रहन-सहनमें समानता करनी पड़ेगी। यह सेवा-धर्मके विपरीत है। ऐसा विचार करके शंकरने वानरका शरीर ग्रहण किया। वानरको पकी हुई रसोई या हिंसाजन्य भोजनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे घरकी आवश्यकता नहीं। बिस्तर, शृङ्गार-प्रसाधन आदि अपेक्षित नहीं। कहीं भी कैसे भी काम चल सकता है। हिरण्यगर्भकी समता उनके अनुरागरञ्जित शरीरमें प्रकट है। सदाशिव एवं महाविष्णुका अनुग्रह है। रुद्रकी संहार-शक्ति है। प्राणवायुका बल है। केसरीकी वीतरागता है। अञ्जनाकी शुद्धि है। इस प्रकार सेवा धर्मकी समग्रता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सब देवताओंके वाहन होते हैं, परंतु मारुतनन्दनके लिये उसकी अपेक्षा नहीं है। उनकी सर्वत्र अप्रतिहत गति है। सेवा धर्मकी पूर्णताके लिये यह सब अनिवार्य है।

न केवल श्रीराममद्रकी सेवाके लिये ही किंतु श्रीराममक्तोंकी सेवाके लिये भी वे सर्वत्र, सर्वदा एवं सयथा तत्पर रहते हैं। सीता, लक्ष्मण, भरत, विभीषण, सुग्रीव, वानर भालू और वर्तमान कालके अयोग्य भक्तोंतककी सेवा उनके द्वारा सम्पन्न होती रहती है। किसी भी स्तरके भक्तकी सेवा करनेमें उन्हें कोई संकोच नहीं है। इतना ही नहीं, निम्न-से निम्न कोटिके भक्तोंको उनसे सेवा लेनेमें किसी प्रकारका संकोच न हो, मानो इसी कारण वे वानर-शरीरसे प्रकट होते हैं। लोक-व्यवहारमें ऐसा देखा जाता है कि अन्याय मार्गपर चलनेवाले बेईमान, चोर, लुटेरे भी उनकी शरण ग्रहण करके और उन्हें 'जय सियाराम !' सुनाकर लाभ उठाना चाहते हैं और उठाते हैं। हनुमानजीका शरीर प्रापञ्चिक अथवा भौतिक नहीं है। अनाहत महाध्वनिरूप 'राम-राम'के स्पन्दनसे उनका एक-एक क्षण, एक एक कण एवं मनका एक-एक संकल्प अनुप्राणित है। श्रीरामकी ही सेवात्मक अभिव्यक्ति हैं—अञ्जनानन्दन।

प्रत्यक्षरूपसे की गयी सेवा सबकी पहचानमें आती है, परंतु भक्तका सूक्ष्म दृष्टिकोण परोक्ष-रूपसे भगवान्‌की सेवा करता है। इसका रहस्य यह है कि जबतक सेवक अपनेमें अज्ञान और न्यूनताका भाव धारण नहीं करेगा, तबतक वह अपने स्वामीके ज्ञान और पूर्णताको विश्वविश्रुत बनानेकी सेवा नहीं कर सकता। इसके लिये आप वाल्मीकि रामायणके दो प्रसङ्गोंपर ध्यान दीजिये।

मारुति मौन सेवक हैं। उनमें 'कृति' शब्दका अभाव ही है। ऐसा भी कह सकते हैं कि उनकी 'कृति'में मा-प्रमा (यथार्थ अनुभव) भरपूर है। उनकी रुति-वाणी भी सीताकी वाणी है। उनकी वाणीमें परा पश्यन्तीका सौन्दर्य वैखरीमें भी उतरता है। किष्किन्धा काण्डके प्रारम्भमें भगवान् श्रीरामचन्द्रने स्वयं उनके वाक्य विन्यासकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। वे एक आचार्यके समान लङ्कामें प्रवेश करते हैं। समुद्र उनकी यात्रामें व्यवधान नहीं। उन्हें विश्रामकी आवश्यकता नहीं। माया छायाका विघ्न प्रभावित नहीं कर सकता, स्वर्णलङ्का प्रलोभित नहीं कर सकती। विवेकके समान वे शान्तिमयी सीताको ढूँढ़ निकालते हैं और मानो प्रबल वैराग्याग्निके द्वारा स्वर्ण-लङ्काको भस्म कर देते हैं।

यह सब प्रत्यक्ष एवं भावगर्भित परोक्षरूपसे भगवान्‌की सेवा है। उनकी सेवामयी दृष्टि उस समय पराकाष्ठापर पहुँच जाती है, जब वे सीता माताले प्रार्थना करते हैं कि 'आप हमारी पीठपर बैठ जाइये, मैं अभी आपको श्रीरामके पास ले चलता हूँ। आपका विरह दुःख कुछ क्षणोंमें ही मिट जायगा।' इसके उत्तरमें श्रीजनकनन्दिनी सीताके जो मधुर पातिव्रत्यके उद्‌गार हैं, वे अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। रामायण निर्माणके सम्पूर्ण प्रयोजनका दर्शन यहीं होता है। श्रीजानकीजी कहती हैं कि मैंने अपने जीवनमें जान-बूझकर कभी परपुरुषका स्पर्श नहीं किया है। रावणने बलात् मुझे पकड़कर रथपर बैठाया—यह सही है। परंतु मैं विवश थी। तुम मेरे पुत्र हो तो क्या

पुराणोंमें उल्लेख मिलता है कि बाल्यावस्थामें हनुमानजीका बल अप्रतिभट था। कोई उनके क्रिया कलापमें बाधा नहीं डाल सकता था। चाञ्चल्य जाति सिद्ध था। सूर्यतकको निगल जानेका प्रयास किया। ऋषियोंके लिये आवश्यक फल-मूलदायक वनवृक्षका विध्वंस किया। ऋषियोंने शाप दिया—'तुम्हें अपने बलका विस्मरण हो जाय।' यह शाप नहीं, वरदान है। इसके कारण अपनी सगुणता और सबलता बाधित हो गयी। उपाधिमूलक बलका तिरस्कार हो गया। वे इतने बलिष्ठ होनेपर भी सामान्य वानरके समान रहने लगे। सेवकका बल स्वामीकी सेवाके लिये प्रकट होनेपर ही सार्थक होता है। जब समुद्र-लङ्घनकी आवश्यकता पड़ी, जाम्बवान्ने बलका स्मरण करा दिया, बस क्या था। बात की-बातमें काम पूरा हो गया। श्रीहनुमानजीके मनमें जाम्बवान्के द्वारा उद्वेलित बलमें भी 'यह मेरा बल है'—ऐसी अभिमति नहीं हुई। उनकी दृष्टिमें सब बल स्वामीका बल है, परमेश्वरका बल है। वे न केवल अपने बल-प्रकाशको प्रत्युत रावणादिके बल-प्रकाशको भी भगवान्का ही बल समझते हैं। गोस्वामीजीने रावणके सम्मुख 'जाके बल लवलेस तें' और भगवान् श्रीरामके सम्मुख 'सब प्रताप रघुनाथ' कहकर इसी भावकी अभिव्यञ्जना की है। उनकी अबाधमयी दृष्टिमें अपना आत्मा निर्बल और निर्गुण ही है। विशेषताएँ तो सब परमेश्वरके बलकी ही हैं।

भगवान् श्रीरामभद्रने मारुतिको क्या संदेश देकर सीताके पास भेजा था—यह किसीको ज्ञात नहीं था। यदि यह प्रकट कर दिया जाता कि हनुमानके द्वारा ही संदेश भेजा गया है तो दूसरे वानर अपने कार्यमें उदासीन हो जाते एवं अपनी अयोग्यताका मनन करके सैन्यसमूहमें भी उत्साहहीन हो जाते, परंतु अपने स्वामीके मन्त्रको, संदेश को गुप्त रखनेकी अद्भुत क्षमता महावीरमें देखी गयी। साथ ही स्मृति ऐसी कि करुणानिधान रघुनन्दनका संदेश उन्हींके शब्दोंमें ज्यों-का-त्यों बोला गया—'प्रेमका तत्त्व श्रीरामका मन ही जानता है और वह निरन्तर सीताके पास ही रहता है।' निश्चय ही सेवककी स्मरण-शक्ति कैसी होनी चाहिये, इसका यह एक उत्तम आदर्श है।

सेवकको अपने स्वामीका कार्य सम्पन्न किये बिना स्वयं किसीकी सेवा स्वीकार नहीं करनी चाहिये—यह मैनाकके प्रसङ्गमें स्पष्ट है। 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।'—यह एक अमर वाणी है। नागमाताके मुखसे दुगुना अपने आकारको बनाते जाना और उसका मुँह अतिशय बड़ा हो जानेपर छोटे आकारसे उसमें प्रवेश करके निकल आना—यह बुद्धिकौशल है। स्वर्णलङ्किनीके प्रलोभनमें निर्लोभ और उसके भय प्रदर्शनमें निर्भय, यह सेवाका ही धर्मदर्शन है।

शत्रुकी नगरीमें प्रविष्ट होनेके बाद केवल आज्ञा पालन करके लौट आना—इतना ही सेवाका कर्तव्य नहीं होता। अभीतक शत्रु असावधान है, उसके यन्त्र, मन्त्र तन्त्र गुप्त नहीं रखे गये हैं। हनुमानकी प्रतिभाने उस समय श्रीरामकी विजयके लिये जितने मार्ग थे, सब प्रशस्त कर दिये। यन्त्र ध्वस्त कर दिये, ब्रह्मास्त्र आदिके मन्त्रज्ञान स्पष्ट हो गये, शासनतन्त्र भयभीत हो गया, सैनिकोंके हृदयमें खलबली मच गयी। श्रीरामका एक गुप्तचर इतना प्रभावशाली है तो वे और उनकी सेना कितनी सामर्थ्यशाली होगी? उसकी क्षमताके पारावारको कौन पार कर सकता है। शत्रुओंके हृदयमें इस भयका संचार कर देना बल-बुद्धिनिधान पवननन्दनके ही वशकी बात थी। उनमें प्रतिभाके साथ शान्ति है, बुद्धिके साथ आज्ञापालन है, स्मृतिके साथ गोपन है, बलके साथ नियन्त्रण है, शारीरिक पुष्टिके साथ ब्रह्मचर्य है, साथ ही जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान् श्रीरामचन्द्रकी सेवा है।

श्रीहनुमानजीमें सदाशिवका अनुग्रह, हिरण्यगर्भकी सत्यसंकल्पता, विष्णुकी पालनी शक्ति, ब्रह्मकी समता, रुद्रकी संहारशक्ति एवं अहंकारसे मुक्त ब्रह्मभाव अत्यन्त स्फुट दृश्यमान है। इसीसे उनकी प्रत्येक क्रिया हितभावसे परिपूर्ण है।

> स्वं कर्तव्यं किमपि कलयँल्लोक एष प्रयत्नात्
> नो पारार्थ्यं प्रति घटयते काञ्चन स्वात्मवृत्तिम्।
> यस्तु ध्वस्ताखिलभवमलः प्राप्तसम्पूर्णबोधः
> कृत्यं तस्य स्फुटमिदमियल्लोककर्तव्यमात्रम्॥

जो मनुष्य लोक-व्यवहारमें प्रयत्नपूर्वक अपनी स्वार्थ पूर्तिके कर्तव्योंमें ही संलग्न रहता है, वह परोपकारके लिये अपनी शक्ति-प्रवृत्तियोंका ठीक-ठीक उपयोग नहीं कर सकता। परंतु जिस सत्पुरुषने संसारके सम्पूर्ण मलोंका परित्याग कर दिया है और अपनी पूर्णताका बोध प्राप्त कर लिया है, उसके हृदयमें जिस स्वभावतः जो इच्छाका उदय होता है, वह केवल लोकोपकारकी दृष्टिसे जो कर्तव्य हैं, उन्हींके लिये होता है—यह अत्यन्त स्पष्ट है।

घुसकर तुम्हारा भी स्पर्श नहीं कर सकती। जब मेरे स्वामी समुद्र पार करके आयेंगे, शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे और अपने पौरुषसे मुझे ले जायँगे, तब उनका यश बढ़ेगा। चोरीसे भागकर जानेमें उनकी क्या कीर्ति नहीं रहेगी ?'

सारा रामायण श्रीसीताजीका उदार एवं उदात्त महनीय चरित्र है। यदि हनुमानजी ऐसे प्रसङ्गमें अपनी उच्छ्रङ्खलता अथवा अपने उथले विचार प्रकट न करते तो सीताजीके अमर वचन एवं प्रेमोद्गार हमें कैसे मिल सकते थे। आप सूक्ष्मतासे देखें, इस वचनके द्वारा जनताके हृदयमें जननीके प्रति सद्भावकी कैसी निरतिशय प्रतिष्ठा जमी है और भगवान् श्रीरामचन्द्रके प्रेमाकुल हृदयको कैसा निरुत्तर शान्तिदायी आश्वासन प्राप्त हुआ है, जो किसी दूसरे प्रकारसे प्राप्त नहीं हो सकता था। सच है सीता-राम दोनोंकी ऐसी सेवा हनुमानजीके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था।

अब दूसरा प्रसङ्ग देखें। श्रीसीताजीके हृदयमें कितनी करुणामयी उदात्त एवं उदार वृत्ति है, भगवान श्रीरामके प्रति कितना अगाध एवं अबाध प्रेम-रत्नाकर छलक रहा है, यह श्रीहनुमानजीके कारण ही अभिव्यञ्जना प्राप्त कर सका है। लङ्काविजयके पश्चात् श्रीरामचन्द्रका शुभ सन्देश लेकर केसरीकिशोर अशोकवनमें जाते हैं। यहाँ वे एक ऐसी भूमिका या अभिनय प्रकट करते हैं, जो सचमुच उनके स्वरूपके अनुरूप नहीं है। वे कहते हैं—'माँ! आप आज्ञा दें तो आपको सतानेवाली इन निशाचरियोंको इनके किये का फल चखा दूँ—रौंद दूँ, घसीट दूँ, नोच दूँ, मार डालूँ। केवल आपके संकेतभरका विलम्ब है।' निश्चय ही हनुमानजीके ये वचन श्रीसीताजीके हृदयको निवारणरूपसे प्रकट होनेका अवसर देनेके लिये ही हैं। श्रीजानकी माताके हृदयका यह तात्कालिक उद्गार विश्व मानवके लिये प्रेरणाका शाश्वत स्रोत रहेगा, इसमें संदेह नहीं। वे कहती हैं—'हनुमान! संसारमें ऐसा कौन प्राणी है, जिसने कभी-न-कभी कोई अपराध न किया हो। सभी अपराधी हैं—न कश्चिन्नापराध्यति। मैंने भी लक्ष्मणके प्रति अपराध किया है, तुमने भी लङ्काके निरपराध राक्षस-राक्षसियोंको पीड़ा पहुँचायी है। आर्य पुरुषका कार्य दण्ड देना नहीं है, करुणा करना है—कार्यं कारुण्यमार्येण।' करुणामें पापी-पुण्यात्माका एवं शुभ-अशुभका विचार नहीं होता। तुम जो कुछ करनेके लिये कह रहे हो, इससे न श्रीरामचन्द्रजी या उनके भक्तोंका यश बढ़ेगा।' आञ्जनेय के वचनोंपर आप ध्यान दें। ये करुणा-समुद्रकी उमड़ती हुई लहरें तो हैं ही, भक्तोंके लिये एक मार्ग-निर्देश भी है। उन्हें अपने कर्तव्यका निश्चय करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उससे श्रीरामका और उनके भक्तोंका यश बढ़े। यदि उनके कर्तव्य-निश्चयमें यह दृष्टि नहीं है तो उनके भक्तिभावकी अपूर्णता ही माननी पड़ेगी।

सौन्दर्यकी दृष्टिसे जब हम हनुमानजीको देखते हैं तो शिवस्वरूप हैं, हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ठ हैं, परंतु आकृतिकी ओर देखें तो लोमश शरीर, हाथ-पाँव टेढ़े, चिबुक भी टेढ़ा, रूप लंका-दहनका प्रभाव। उनके प्रत्येक क्रिया-कलापसे श्रीरामका ही महत्त्व प्रकट होता है। वे किसीको अपना भक्त न बनाकर श्रीरामका भक्त बनाते हैं। शृङ्गार-रसकी सेवामें दासी भले ही सौन्दर्य-माधुर्यकी अपेक्षा हो, परंतु दास्य-रसकी सेवामें स्वशरीरके लिये सेवोपयोगी प्रसाधनकी ही अपेक्षा होती है, अधिक नहीं। उनका ब्रह्मचर्य भगवान् श्रीरामचन्द्रके लिये कितना सेवोपयिक है—यह थोड़े ही विचारसे ज्ञात हो जायगा। सीताजीके प्रति प्रेमसन्देशका आदान-प्रदान, रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश और अवधधामके राजमहलमें अनवरत सेवाका अवसर अखण्ड ब्रह्मचर्यके बिना कैसे प्राप्त हो सकता है।

प्रीतिपूर्ण दास्य अथवा प्रेमानुभावरूप सेवामें अपनी जातिका उत्कर्ष बाधक हो जाता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रको सेवाकी आवश्यकता हो और सेवक अपने व्यक्तिगत कर्तव्योंके पालनमें संलग्न हो, स्नान, सन्ध्यावन्दन, नित्यकर्म आदिमें मग्न हो, उसकी ऊँची जातिका अभिमान छोटी-मोटी सेवा करनेमें विघ्न करता हो तो यह सेवकका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। अपने खान-पानके लिये पृथक् व्यवस्था करनी पड़ती हो, यदृच्छया प्राप्त फल-फूल-मूल आदिसे काम न चल जाता हो तो निश्चय ही प्रभुसेवाकी सेवाधारामें अक्षुण्ण प्रवाहमें प्रतिबन्ध आ जायगा। अतएव सेवा-धर्म केवल अनन्य सेवाके लिये होता है, उसमें स्वसेवा नहीं होती, अन्यसेवा भी नहीं होती। स्वामीकी सेवामें जो सहायक सेवा होती है, यह भले ही अपनी हो या परायी, सेवकको स्वीकार है। इसके अतिरिक्त नहीं। श्रीहनुमानजीने उत्कृष्ट जातिके समाश्रयणका परित्याग करके इस भावको स्पष्ट कर दिया।

पुराणोंमें उल्लेख मिलता है कि बाल्यावस्थामें हनुमानजीका बल अप्रतिमट था । कोइ उनके क्रिया कलापमें बाधा नहीं डाल सकता था । बाल्य जाति सिद्ध था । सूर्यतकको निगल जानेका प्रयास किया । ऋषियोंके लिये आवश्यक फल-मूलदायक वनवृक्षका विध्वंस किया । ऋषियोंने शाप दिया—'तुम्हें अपने बलका विस्मरण हो जाय ।' यह शाप नहीं, शानदान है । इसके कारण अपनी सगुणता और सबलता बाधित हो गयी । उपाधिमूलक बलका तिरस्कार हो गया । वे इतने बलिष्ठ होनेपर भी सामान्य वानरके समान रहने लगे । सेवकका बल स्वामीकी सेवाके लिये प्रकट होनेपर ही सार्थक होता है । जब समुद्र-लङ्घनका आवश्यकता पड़ी, जाम्बवान्ने बलका स्मरण करा दिया, बस क्या था । बात-की-बातमें काम पूरा हो गया । श्रीहनुमानजीके मनमें जाम्बवान्के द्वारा उद्वेलित बलमें भी 'यह मेरा बल है'—ऐसी अभिमति नहीं हुई । उनकी दृष्टिमें सब बल स्वामीका बल है, परमेश्वरका बल है । वे न केवल अपने बल-प्रकाशको प्रत्युत रावणादिके बल-प्रकाशको भी भगवान्का ही बल समझते हैं । गोस्वामीजीने रावणके सम्मुख 'जाके बल लवलेस ते' और भगवान् श्रीरामके सम्मुख 'सब प्रताप बल माया' कहकर इसी भावकी अभिव्यञ्जना की है । उनकी अवाधमयी दृष्टिमें अपना आत्मा निर्बल और निगुण ही है । विशेषताएँ तो सब परमेश्वरके बलकी ही हैं ।

भगवान् श्रीरामभद्रने मारुतिका क्या संदेश देकर सीताके पास भेजा था—यह किसीको ज्ञात नहीं था । यदि यह प्रकट कर दिया जाता कि हनुमानके द्वारा ही संदेश भेजा गया है तो दूसरे वानर अपने कार्यमें उदासीन हो जाते एवं अपनी अयोग्यताका मनन करके सैन्यसमूहमें भी उत्साहहीन हो जाते, परंतु अपने स्वामीके मन्त्रको, संदेश को गुप्त रखनेकी अद्भुत क्षमता महावीरमें देखी गयी । साथ ही स्मृति ऐसी कि करुणानिधान रघुनन्दनका संदेश उन्हींके शब्दोंमें ज्यों-का-त्यों बोला गया—'प्रेमका तत्त्व श्रीरामका मन ही जानता है और वह निरन्तर सीताके पास ही रहता है ।' निश्चय ही सेवककी स्मरण-शक्ति कैसी होनी चाहिये, इसका यह एक उत्तम आदर्श है ।

सेवकको अपने स्वामीका कार्य सम्पन्न किये बिना स्वयं किसीका सेवा स्वीकार नहीं करना चाहिये—यह मैनाकके प्रसङ्गमें स्पष्ट है । 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम ।'—यह एक अमर वाणी है । नागमाताके मुखमें [illegible] अपने आकारको बढ़ाते जाना और उसका मुँह [illegible] हो जानेपर छोटे आकारसे उसमें प्रवेश करके निकल [illegible]—यह बुद्धिकौशल है । लङ्किनीके प्रताडनमें [illegible] और उसके भय प्रदर्शनमें निर्भय, यह सेवाका ही [illegible] है ।

शत्रुकी नगरीमें प्रविष्ट होनेके बाद केवल [illegible] पालन करके लौट आना—इतना ही सेवाका [illegible] नहीं होता । अभीतक शत्रु असावधान है, उसके [illegible], [illegible] तन्त्र गुप्त नहीं रखे गये हैं । हनुमानका [illegible] उस समय श्रीरामकी विजयके लिये जितने [illegible] थे, [illegible] कर दिये । यन्त्र ध्वस्त कर दिये, [illegible] स्पष्ट हो गये, शासनतन्त्र भयभीत हो [illegible] हृदयमें खलबली मच गयी । श्रीरामका [illegible] प्रभावशाली है तो वे और उनकी सेना [illegible] होगी ? उसकी क्षमताके पारावारको [illegible] है । शत्रुओंके हृदयमें इस भयका [illegible] बुद्धिनिधान पवननन्दनके ही [illegible] प्रतिभाके साथ शान्ति है, बुद्धि [illegible] है, स्मृतिके साथ गोपन है, बलके साथ [illegible] पुष्टिके साथ ब्रह्मचर्य है, साथ ही [illegible] भगवान् श्रीरामचन्द्रकी सेवा है ।

श्रीहनुमानजीमें सदाशिवका [illegible] सत्यसंकल्पता, विष्णुकी [illegible] समता, रुद्रकी संहारशक्ति [illegible] अत्यन्त स्फुट दृश्यमान है । [illegible] हितभावसे परिपूर्ण है ।

> स्य कर्तव्य किमपि [illegible]
> न्ना पारार्थ्यं प्रति [illegible] ।
> यस्तु त्यक्ताखिलभवसुख [illegible]
> कृत्य तस्य स्फुरति [illegible] ॥

जो मनुष्य लोक-व्यवहारमें [illegible] पूर्तिके कर्तव्योंमें ही संलग्न [illegible] अपनी शक्ति-प्रवृत्तियोंका [illegible] परंतु जिस सत्पुरुषने संसारके [illegible] दिया है और अपनी पूर्णब्रह्म [illegible] हृदयमें निःस्वभावसत्ता [illegible] लोकोपकारकी दृष्टिसे [illegible] यह अत्यन्त स्पष्ट है ।

महान् हनुमान

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती महाराज)

श्रीहनुमानजीकी सेवा भावना और सेवा-परायणता ऐसी अद्भुत थी कि श्रीरामचन्द्रजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीसीताजी तथा सभी अवधवासी उनके ऋणी बन गये। इतना महान् होकर भी हनुमानजी श्रीरामचन्द्र महाराजके समक्ष सदैव निरभिमानताकी मूर्ति ही रहे। उनकी यह निरहंकारिता अनेक स्थलोंपर देखनेमें आती है। जब श्रीहनुमानजी लंकासे श्रीसीताजीका समाचार लेकर लौटे और भगवान् श्रीरामचन्द्रने सब पूछकर तथा जानकर उनके महान् कार्योंकी भूरि-भूरि सराहना प्रारम्भ कर दी, तब दैन्यकी मूर्ति श्रीहनुमानजीने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा—'रघुनाथजी! बंदरका यह यही पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर कूद जाता है। यदि मेरेद्वारा कोई कार्य सम्पन्न हुआ है तो यह सब आपका ही प्रताप है। नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है।' इतना बड़ा कार्य करके भी हनुमानजीके चरित्रमें निरभिमानता पद-पदपर प्रकट हो रही है।

ऐसे निरभिमानी श्रीहनुमानजीके प्रति सभी अवधवासी चिर ऋणी हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रके वनगमनके समय उनसे माता कौसल्या कहती हैं—'बेटा! अयोध्यावासियोंको छोड़कर तुम वन जा रहे हो, परंतु तुम्हारे वनवासकी अवधि जल है और अवधवासी मछलीकी भाँति हैं। इसलिये अवधि बीतनेपर तुरत ही आ जाना अन्यथा मछलीके समान प्रिय-परिजनोंका जीवन असम्भव है।' भगवान् श्रीरामके वनगमनके बाद सब लोग उनके दर्शनके लिये नियम उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखोंको छोड़कर चौदह वर्षोंकी अवधिपर जी रहे हैं—

> राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
> तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥
>
> (मानस २। ३२२)

श्रीरामकी प्रतीक्षा करते-करते चौदह वर्ष व्यतीत होनेको आये। अब चौदहवें वर्षका एक दिन शेष रह गया है। श्रीभरतजी कुशासनपर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे—

> रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
>
> (मानस ७। १। १)

श्रीभरतजीने सोचा कि आज यदि भगवान् नहीं आ[ये] तो अयोध्यावासी मर जायँगे। जल ही नहीं रहेगा [तो] प्रजारूपी मछली कैसे जियेगी? ऐसा सोचकर श्रीभरतजी[ने] स्वयं अपने शरीरका ही सर्वप्रथम त्याग करना उचि[त] समझा। उसी समय श्रीहनुमानजी आकर देख रहे हैं—

> बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
> राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥
>
> (मानस ७। १ ख)

भरतकी स्थिति देखकर हनुमान गद्गद हो गये थे[।] फिर श्रीराम-आगमनका समाचार सुनाकर श्रीहनुमान[जीने] न केवल भरतजीके अपितु सम्पूर्ण अवधवासियोंके जीवन[की] रक्षा की। फिर भगवान् श्रीरामके दर्शनसे स्वाभाविक[ही] सारे अयोध्यावासियोंका मन प्रसन्न हो गया।

जिस प्रकार श्रीभरतजी, माता कौसल्यादि तथा अव[ध]वासीगण श्रीहनुमानजीके ऋणी हैं, उसी प्रकार श्रीराम[जी,] लक्ष्मणजी और सीताजी भी उनके ऋणी हैं। मेघनाद[की] शक्तिद्वारा मूर्च्छित लक्ष्मणका दृश्य अत्यन्त करुण है[।] सुषेण वैद्यकी आज्ञाके अनुसार हनुमानजी संजीवनी-बूटी ल[ेने] गये। उनके लौटनेमें विलम्ब देखकर विलाप करते हु[ए] श्रीरामचन्द्रजीकी दैन्यदशाका वर्णन श्रीगोस्वामीजीने अनो[खे] शब्दोंमें किया है—

> मोपै तो न कछू ह्वै आई।
> ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यो लखन-सो भाई॥
> पुर पितु मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बँटाई।
> ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यौं न प्रान पठाई॥
> जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई।
> सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुतको दरकि दरार न आई॥
> तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई।
> तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई॥
>
> (गीतावली, लंका ६)

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऐसा करुण-विलाप कर रहे थे। उसी समय श्रीहनुमानजी संजीवनी लेकर आ गये और उस बूटीका सेवन करते ही लक्ष्मण उठ बैठे। उ[स] समय भगवान् श्रीरामका हृदय अत्यन्त कृतज्ञतासे भर

इसी प्रकार कृतज्ञ हैं भगवती सीता भी। लङ्का विजयके पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जगज्जननी श्रीसीताजीके पास श्रीहनुमानजीको भेजा। दर्शन एवं प्रणामके उपरान्त श्रीहनुमान श्रीसीताजीसे कहते हैं—'अब आप अपनेको रावणके घरमें वर्तमान समझकर भयभीत मत हों, क्योंकि दशाननको जीतकर भगवान् श्रीरामने लङ्काका सारा ऐश्वर्य विभीषणके अधीन कर दिया है।' ऐसी वाणी सुनकर सीतामाता कहती हैं—'वत्स! इस प्रिय संवादके अनुरूप ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे तुम्हें देकर मैं संतुष्ट हो सकूँ।'—

हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितम्॥
(वा० रा० ६।११३।२०)

श्रीजानकीजीके हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छा गये। वे बार-बार कहती हैं—'हनुमान! मैं तुम्हें क्या दूँ!'—

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
(मानस ६।१०७ छं०)

हनुमानजी-जैसा भाग्यवान् कौन होगा! महान् सेवा किसको ऋणी नहीं बना लेती!

रामायण-महामालाके महारत्न श्रीहनुमान

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्दजी सरस्वती)

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

मारुतात्मज श्रीहनुमान रामायण-महामालाके महारत्न हैं। वस्तुतः श्रीरामचरितका वर्णन हनुमानजीके वर्णनके बिना अपूर्ण ही रह जाता है। वेदवेद्य परात्पर परब्रह्मने जब भक्तानुग्रह-परवश हो दशरथात्मजरूपमें अवतीर्ण होनेका निश्चय कर लिया, तब शाश्वत शब्दब्रह्म वेदराशिने भी अपने इष्टके दुर्लभ लोकोत्तर कल्याण-गुणगणानुगानके लिये प्रचेतामुनिकी संतान प्राचेतस वाल्मीकिद्वारा रामायणात्मक अवतार धारण किया—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

भारतमें निवास करनेवाले प्रायः सभी प्रमुख लेखकों एवं ऋषि-मुनियोंद्वारा श्रीरामकथा-मन्दाकिनीमें अवगाहन किया गया है। अतः वेदसंहिता, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटकादि साहित्यिक कृतियोंमें प्रायः श्रीरामचरितका वर्णन है, किंतु उन सबका मूलस्रोत —वैदिक भाग छोड़कर शेष सबका आधार विश्वकी साहित्य शृङ्खलामें केवल आर्षकृति वाल्मीकीय रामायण आदिकाव्य ही है। रामचरितामृतका प्रवाह व्यास, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, काकभुशुण्डि, शंकर आदि महाविभूतियोंद्वारा पुराण-निगमागममें प्रसिद्ध है, तथापि उन सबमें प्रमुख प्रामाण्य वाल्मीकीय रामायणका ही है। भारत एवं जावा (यवद्वीप), बाली, सुमात्रा तथा सुदूरवर्ती प्राच्य-पाश्चात्य क्षेत्रों—जापान, अमेरिका, चीन, पेरू, मैक्सिको आदि देशोंमें श्रीरामकथा किसी-न-किसी रूपमें अवश्य मिलती है और श्रीरामकथानुसंधान करनेवाले आधुनिक विद्वानोंने उनके तुलनात्मक उद्धरण भी दिये हैं, किंतु उन साहित्यिक अनुसंधानकोंमें कुछ ईसाई पादरी कामिल बुल्के आदिने दूसरे भेदोंके आधारपर कुछ विकृत करने अथवा वाल्मीकीय श्रीरामायणके वर्णनोंको कहीं प्रक्षिप्त, कहीं असङ्गत और अप्रामाणिक कहनेका साहस भी किया है। यह सब मिथ्या प्रयास, दुर्भावनापूर्ण और भारतीय तथा विशेषतः आर्य इतिहासको विकृतरूप देकर ईसाइयतके प्रचारका एक सूत्रपातमात्र है। वस्तुतः किसी देश और किसी भाषाकी श्रीरामकथा आदिकवि वाल्मीकिद्वारा वर्णित श्रीरामकथाकी केवल छायाचित्रमात्र है, उन सबका प्रामाण्याधार केवल वाल्मीकीय रामायण है और जहाँ भी वर्णन-भेद है, वहाँ वह उनकी भ्रान्तिमूलक अथवा दुर्भावना प्रेरित वृत्तिका ही परिचायक माना जायगा। भारतीय साहित्यमें कालिदास, भवभूति, तुलसीदास, रामदास (समर्थ) आदि सभी लेखकोंने वाल्मीकिकी श्रीरामचरितके सम्बन्धमें परम प्रमाण माना है।

इसी प्रकार श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें भी वाल्मीकीय रामायण ही परम प्रमाण है। दूसरे अपना बुद्धिकौशल लगा सकते हैं, परंतु हनुमान कौन हैं, क्या हैं, किस प्रभाव, स्वभाव अथवा योग्यतासे युक्त हैं, इन सबमें तो अन्तिम

आधार महर्षि वाल्मीकिकी भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि समस्त पुंदोषोंसे असस्पृष्ट आर्ष वाणी ही है। अतः वाल्मीकीय रामायण एक महाकाव्यमात्र न होकर इतिहास-ग्रन्थ भी माना गया है। इस सामान्य उपकथनके अनन्तर अब श्रीहनुमानजीका जो चित्र महर्षि वाल्मीकिने दिया है, उसका कुछ अंश साररूपमें अवलोकन करनेका प्रयत्न किया जाता है।

परब्रह्म श्रीरामके मानव अवतारमें अपनी महनीय भूमिका निभानेके लिये अन्य सभी देवताओंके समान श्रीहनुमानजी भी वानर-योनिमें प्रकट हुए हैं। यह वानर-जाति मनुष्यों में आदिवासियोंकी कोई जाति थी। इस सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने किसी संदेहका अवकाश नहीं छोड़ा है। उन्होंने 'वानर' शब्दमात्र न देकर कपि, शाखामृग, प्लवग, प्लवगम, हरि, हर्यक्ष, पिङ्गाक्ष, हरिशार्दूल, प्लवगर्षभ आदि अनेक पर्यायवाची शब्दोंसे लाङ्गूल एवं पुच्छ-युक्त प्राकृत वानरत्वको स्पष्ट कर दिया है तथा पुच्छके विविध रूपों और प्रयोगोंका वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है।

महर्षि वाल्मीकिने प्रायः सर्वत्र श्रीहनुमानकी बुद्धि प्रखरताकी प्रशंसा की है और उन्हें 'बुद्धिमतां वरः' आदि विशेषणोंसे सम्मानित किया है। किंतु भगवान् श्रीरामके प्रथम मिलनमें वास्तविक कपि-रूपको छिपाकर भिक्षु-रूप धारण करनेकी भूलको उन्होंने कह ही डाला—

> कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः।
> भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः॥
> (वा० रा० ४।३।२)

कपि-स्वभावकी शठताको कहे बिना महर्षिसे न रहा गया, जो आगे सब जगह हनुमानजीकी बुद्धिकी प्रशंसा ही करेंगे। इसी भावको गोस्वामी तुलसीदासजीने 'एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदय अग्यान'—इन शब्दोंमें वर्णन किया है। शरण जाते समय भी सर्वान्तरात्मा श्रीरामसे दुराव महर्षिको ठीक न लगा, इसलिये यथावत् वर्णन भी कर दिया। श्रीहनुमानजीको भी इस भूलका अनुभव हुआ और भिक्षु-रूप त्यागकर उन्होंने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया।

> प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
> राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान् नाम वानरः॥
> × × ×
> तस्य मां सचिवं वित्त वानरं पवनात्मजम्॥
> (वा० रा० ४।३।२१-२

वानर शरीरमें रहनेके कारण कभी-कभी वानर धर्म भी प्रस्फुटित हो उठती है। इसके प्रत्यक्ष का वर्णन समय-समयपर वाल्मीकिने किया है। जैसे, लंकामें रावणके अन्तःपुरमें मन्दोदरीको देखकर हनुमानजी को सीता-दर्शनका भ्रमात्मक आनन्द हुआ, तब उनकी कपि प्रकृति फूट पड़ी—

> आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं
> ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम।
> स्तम्भानरोहन् निपपात भूमौ
> निदर्शयन् स्वां प्रकृतिं कपीनाम्॥
> (वा० रा० ५।१०।५४

वानरी प्रकृतिका प्रदर्शन करते हुए उन्होंने जोर-जोर पुच्छको पटकना, चूमना, खिलखिलाना, कूदना, खम्भों चढ़ना आदि आरम्भ किया, किंतु उनकी यह अवस्था कुछ क्षणमें ही शान्त हो गयी—

> अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।
> (वा० रा० ५।११।१)

'ये सीताजी हैं'—ऐसी भ्रमात्मक बुद्धिका त्याग कर श्रीहनुमान अपने स्वाभाविक गाम्भीर्यको प्राप्त हुए। इसी प्रकार जानकीजीका अशोक-वाटिकामें दर्शन करके भी वे चिन्ताग्रस्त हुए। उस समय उनका स्वाभाविक तेज उद्बुद्ध हो चुका था। अतः ऋक्षराज जाम्बवान्के स्तुत्यात्मक उद्बोधनके साथ-साथ हनुमानजी बढ़ते गये। यह केवल मनोवैज्ञानिक प्रभावमात्र नहीं, प्रत्युत अमोघ ऋषि-शापकी निवृत्तिमात्र है, जिसे महर्षि वाल्मीकिने स्पष्ट किया है—

> अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
> न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन॥
> (वा० रा० ७।३५।१६

इसी अमोघ शापके फलस्वरूप हनुमानजी सुग्रीवके साथ वालीके भयसे इधर-उधर भागते रहे। अन्तमें ऋष्यमूक पर्वतपर मतङ्गऋषिद्वारा वालीके शापका स्थान भी सुग्रीवको श्रीहनुमानजीने ही दिलाया, जहाँ श्रीराम मिलनपर्यन्त वे सब निश्चिन्त रहते रहे।

बुद्धि-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, बल-पराक्रम, कार्य-सिद्धिके भण्डार श्रीहनुमानजी पद-पदपर अलौकिकताका परिचय देते रहे।

महारत्न श्रीहनुमानके गुणगणका वर्णन भी महर्षि वाल्मीकिके आधारपर बहुत विस्तृत है। एक सीमित लेखमें अनन्त समुद्रसे कुछ सीकर-कण अथवा कुछ सीपमात्र ही दिये जा सकते हैं।

अग्नि-साक्षिक श्रीराम-मैत्री सुग्रीवके लिये श्रीहनुमानका ही वरदान है। वर्षा ऋतुके चार मास बीतनेपर भी सुग्रीव रुमा और ताराके साथ मधुपानमें लीन रहे। उस समय भी उनका उद्बोधन हनुमानजीने किया। समुद्र-तटपर वानर दलके पहुँचनेसे पूर्व, स्वयंप्रभाके दर्शनके अनन्तर सुग्रीवके विरुद्ध अङ्गदादि वानरोंके प्रलाप करनेपर श्रीहनुमानने ही अङ्गदजीको सामादिक प्रयोगसे मार्ग-दर्शन कराया। किंतु तबतक हनुमान 'न ह्यविदितो देवा भुनक्ति'के सिद्धान्तानुसार अपने वास्तविक स्वरूपसे अपरिचित थे। जब समुद्र-तटपर सम्पातिद्वारा अशोक-वाटिका और सीताका पता बता देनेपर भी वानरदल अपने सामने अनन्त मकर-नक्राकीर्ण वरुणालय सागरको देखकर हतप्रभ हो रहा था, तब जाम्बवान्के द्वारा श्रीहनुमानजीके वास्तविक रूपका उद्बोधन करनेपर हनुमानजी वानर वीरोंसे अपने अद्भुत उत्साहका वर्णन करते हुए कहते हैं—

> यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ॥
> गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ।
> नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ॥
> अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ।
> यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्याम्यकृतश्रमः ॥
> बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ।
> सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ॥
> आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम् ।
>
> (वा० रा० ५।१।३९—४३)

जैसे अमोघ राम-बाण धनुषसे छूटकर लक्ष्यपर पहुँच जाते हैं, वैसे ही मैं रावणपालित लंकामें जाऊँगा। यदि जनकात्मजाको वहाँ न देख पाया तो इसी वेगसे स्वर्गको जाऊँगा। यदि वहाँ भी सीता-दर्शन नहीं हुआ तो राक्षसराज रावणको ही बाँध लाऊँगा अथवा रावणसहित लंकाको ही उखाड़कर ले आऊँगा। किसी भी तरह सब कार्य पूर्ण करके ही सीतासहित आऊँगा।'

लङ्का-प्रवेश, सीतान्वेषण, लङ्का-भ्रमण तथा अशोक-वनका मार्गण—ये सभी अद्भुत साहस एवं सूक्ष्मबुद्धिके परिचायक हैं। परंतु सीता-सम्भाषणकी समस्या सभी समस्याओंसे विकट बतायी गयी है। इस चिन्तनको भी वाल्मीकिने वानर-चिन्तन ही बताया। जानकीजीके दर्शन कर लेनेके पश्चात् सीताजीके प्रति रावणके वचन, उसके बाद जानकी-शोक, राक्षसी-तर्जन तथा सीताद्वारा शरीर-त्यागके प्रयत्न आदिको देखकर श्रीहनुमानजीने अत्यन्त सतर्कता और बुद्धिमानीपूर्वक 'राजा दशरथो नाम' आदि कहते हुए अयोध्याधिपति दशरथके वर्णनसे संक्षिप्त गाथाका आरम्भ कर जानकीजीके हृदयमें परम हर्ष उत्पन्न कर दिया। यहाँतक श्रीहनुमानका सामान्य उद्बोधन था। माँ सीताकी प्रथम परमानन्दमयी दृष्टि शिंशपा (अशोक) वृक्षपर बैठे श्रीहनुमानपर पड़ी— 'ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम्।' यहाँसे उदीयमान सूर्यके समान श्रीहनुमत्सूर्यका वास्तविक उदय आरम्भ हुआ। जानकीजीके मनकी अनेक वैकल्पिक शङ्काओंको शान्त करना, उनके मनमें अपनेको श्रीरामदूत होनेका सत्य विश्वास जमाना, बातचीतके बीच बार-बार जानकीजीका संदेहोद्वेग आना और उनका अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक शान्त करना श्रीहनुमानजीकी कुशाग्रबुद्धिका ही कार्य है। अन्तमें जानकी-कृपापात्र श्रीहनुमान चूडामणि लेकर जानकी-शापाग्निसे राक्षस-समूहको मशक-तुल्य और सिन्धुको गोष्पद-सदृश बना देते हैं।

इस प्रकार उत्तराभिमुख सर्वसिद्ध हनुमान सागर-पार जाकर अङ्गद, जाम्बवान् आदि वानर-समूहका अभिनन्दित कर, उनके सहित श्रीराम-दर्शन कर, प्रथम आनन्दकर वचन 'दृष्टा सीतेति' कहकर, पुनः सब वार्ता सुनाकर श्रीरामको परमाह्लादित करते हैं। श्रीराम स्वयं हनुमानजीके अतुलित बल-पराक्रमसे कृतकृत्य हो जाते हैं—

(यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि वै।

'श्रीहनुमानके पराक्रमसे हम सब और चौदह भुवन उपकृत हैं।') श्रीराम-दर्शनके अग्रदूत, श्रीराम-कृपाके अहैतुक प्रेरक और महर्षि वाल्मीकिके अत्यन्त प्रियपात्र हैं, रामायण महामालाके महारत्न और श्रीरामभक्तोंके अनन्याश्रय हैं। उनके गुणगण-वर्णनका प्रयास आकाश-अवगाहनके समान अनवगाह्य पूरा है। इसमें भी वस्तुतः श्रीहनुमानजीकी कृपा ही सहायक है।

श्रीहनुमानजीका अवतरण

(लेखक—पूज्य श्रीश्रीधराचार्यजी महाराज द्वारिका मठ)

भारतीय शास्त्रोंमें श्रीहनुमानजीको वातात्मज या वायुपुत्र बताया गया है। श्रीमद्रामायणके बालकाण्डमें महर्षि वाल्मीकिने भी ब्रह्माके द्वारा देवताओंको आदेश दिलाया है कि भगवान् श्रीविष्णु आपलोगोंकी प्रार्थनासे मनुष्यरूप धारणकर दशरथके पुत्र होकर रावणका वध करेंगे। सब देवता उनकी सहायताके लिये पृथ्वीपर अपने-अपने अंशसे ऋक्ष, वानर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करें। यहाँ भी केसरी वानरकी स्त्री अञ्जनाके गर्भसे वायुद्वारा हनुमानकी उत्पत्ति बतलायी गयी है। 'स्कन्द' एवं 'भविष्योत्तर' पुराणोंमें भी कथा आती है कि केसरीकी पत्नी अञ्जना अनपत्य दुःखसे दुःखी होकर मतङ्ग ऋषिके पास जाकर रोती हुई कहने लगी—'मुने! मेरे पुत्र नहीं है। आप कृपया पुत्र प्राप्तिका कोई उपाय बतलाइये।' तब मतङ्ग ऋषिने कहा—'पम्पा सरोवरसे पूर्व दिशामें पचास योजनपर नरसिंहाश्रम है। उसकी दक्षिण दिशामें नारायण गिरिपर स्वामितीर्थ है। उससे एक कोश उत्तरमें आकाश गङ्गा तीर्थ है। वहाँ जाकर उसमें स्नान करके द्वादश वर्षतक तप करनेसे तेरे गुणवान् पुत्र उत्पन्न होगा।' मतङ्गके ऐसा कहनेसे वह नारायणाद्रिपर गयी, स्वामिपुष्करिणीमें स्नान किया और अश्वत्थकी प्रदक्षिणा एवं वराह भगवान्को प्रणाम करके आकाशगङ्गातीर्थमें रहनेवाले मुनियों एवं अपने पतिकी आज्ञा लेकर उपवास करती हुई बाह्य भोग छोड़कर तप करने लगी। इस प्रकार तप करते पूरे बारह वर्ष बीत गये, तब वायु देवताने प्रसन्न होकर उसे पुत्र होनेका वरदान दिया। परिणामस्वरूप अञ्जनाने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम मुनियोंने 'हनुमान' रखा।

ब्रह्माण्ड पुराणमें यह प्रसङ्ग कुछ भिन्न प्रकारसे आया है। उसके अनुसार त्रेतायुगमें एक कुञ्जर नामका असुर उत्पन्न हुआ। उसने पुत्र-कामनासे श्रीशिवजीको प्रसन्न करनेके लिये पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए जितेन्द्रिय और निराहार रहकर तप किया। इससे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे दर्शन दिया और कहा—'तू अपनी इच्छानुसार वर माँग ले।' तब केसरीने कहा—'देवदेव! यदि आप संतुष्ट हैं और वर देना चाहते हैं तो मैं एक ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो बलवान्, संग्राममें विजयी महावीर्यवान् एवं महा बुद्धिमान भी हो।' तब श्रीशंकरजी बोले—'मैं तुझे पुत्र तो नहीं दे सकता। कारण, विधाताने तुझे पुत्रसुख नहीं लिखा है। तथापि एक सुन्दरी कन्या दूँगा जिससे तेरी इच्छाके अनुसार महान् बलशाली पुत्र उत्पन्न होगा।' ऐसा कहकर श्रीशंकरजी अन्तर्धान हो गये। वह असुर मनचाहा वर पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

कुछ समय बाद उसके एक लोकविस्मयकारिणी कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम दैत्यराजने अञ्जना रखा। वह कन्या शुक्लपक्षमें चन्द्रकलाकी तरह बढ़ने लगी। पिता पुत्रवत् ही उस कन्यासे प्रेम करता था। वह अपनी समवयस्क लड़कियोंमें जब खेलती थी, तब उसको देखकर उस दैत्यकी आँखें हर्षसे विकसित हो जातीं और वह तृप्तिका अनुभव करता। इस तरह समय बीतता गया। एक बार केसरी नामक वानरने, जो बड़ा पराक्रमी एवं वानरोंमें श्रेष्ठ था, उस कन्याकी याचना की, तब दैत्यराजने बड़ी प्रसन्नतासे उसे वह कन्या दे दी। केसरी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली अञ्जनाके साथ आनन्दसे क्रीड़ा करने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत गया, पर अञ्जनाके कोई पुत्र नहीं हुआ।

एक बार धर्मदेवता पुल्कसी (वन्य नीच स्त्री) का रूप धारणकर वहाँ आये। उनके एक हाथमें था बेंत तथा दूसरे हाथमें थी एक सुतरी। वह स्त्री जोर जोरसे यह आवाज लगा रही थी कि 'किसीको अपने भाग्यके विषयमें प्रश्न करना हो तो करे, उसके भाग्यमें क्या लिखा है, मैं बता दूँगी।' इस प्रकार सबके हाथकी रेखाएँ देखती और उन्हें फल बताती हुई वह अञ्जनाके पास पहुँची, तब अञ्जनाने उसको सुन्दर आसन देकर बैठाया और सुवर्णपात्रमें मौक्तिकरूपी तण्डुल उसके सामने रखकर उसको सभी प्रकारसे संतुष्ट करके पूछा—'देवि! मेरे भाग्यमें पुत्र-सुख है या नहीं? सत्य सत्य कहो। यदि मुझे एक बलवान् पुत्र हो जायगा तो मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार सब कुछ दूँगी।' तब वह पुल्कसी बोली—'तुझे बलवान् पुत्र अवश्य प्राप्त होगा, यह मैं धर्मकी शपथ खाकर कहती हूँ, तू चिन्ता मत कर। किंतु मैं जैसा बताऊँ, उसी प्रकार तू नियमपूर्वक तप कर। श्रीवेङ्कटाचलपर्वत पर सात हजार वर्षतक तप करनेसे तुझे मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त

होगा।' ऐसा कहकर पुल्कसी जैसे आयी थी, वैसे ही चली गयी। अब अञ्जना उसके कथनानुसार वङ्कटाद्रिपर आकाश गङ्गाके पास जाकर, जहाँ बहुत से सिद्ध-महात्मा वास करते थे, केवल वायु भक्षण कर वायुदेवताका ध्यान करती हुई दारुण तप करने लगी।

कुछ दिनों बाद आकाशगङ्गासे यह आकाशवाणी हुई कि 'बेटी! तू चिन्ता मत कर, तेरा भाग्य खुल गया। रावण नामका राक्षस बड़ा दुष्ट होकर सब लोगोंको रुलायेगा, वह सबकी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियोंको हरण करके लायेगा। उसका नाश करनेके लिये भगवान् श्रीहरि रघुकुलमें श्रीरामरूपसे अवतार लेंगे। उनकी सहायता करनेके लिये बड़ा पराक्रमी, बलशाली, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय और अप्रमेय गुणवाला एक तुम्हारा पुत्र भी होगा।' यह आकाशवाणी सुनकर अञ्जना परम प्रसन्न हुई। उसने यह सब वृत्तान्त केसरी दैत्यको बतलाया। वह भी अत्यन्त प्रसन्न होकर पुत्रोत्पत्तिकी प्रतीक्षा करने लगा। अञ्जनाका गर्भ क्रमशः बढ़ने लगा और दस मास पूर्ण होनेपर श्रावण मासकी एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें कमलनयनी अञ्जनाने सूर्योदयके समय कानोंमें कुण्डल और यज्ञोपवीत धारण किये हुए, कौपीन पहने, जिसका रूप, मुख, पूँछ और अधोभाग वानरके समान था, ऐसे सुवर्णके समान रंगवाले सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। हनुमानजीके जन्मकी कथाएँ पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे मिलती हैं। कल्पभेदसे वे सभी सत्य ही हैं। हमें तो भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करनी चाहिये।

—◆—

श्रीहनुमानजीका प्रणव-विज्ञान

(अनन्तश्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज)

यह ऐतिह्य है कि भगवान् श्रीरामके द्वारा श्रीहनुमानजीने 'प्रणव'के जिस अद्भुत विज्ञानका प्रतिपादन किया है, वह आज भी गुरुपरम्पराद्वारा सुरक्षित एवं उपलब्ध है। उन्होंने इस विज्ञानकी प्राप्ति विश्वप्रभव सूर्यनारायणसे की थी।

बुद्धिमतां वरिष्ठ श्रीपवननन्दनके मतानुसार यह विश्व 'वाक्'-तत्त्वका ही परिणाम है, जो दो प्रकारका है—अर्थवाक् और शब्दवाक्। यह प्रणव एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, सार्धत्र्यक्षर और चतुरक्षर-भेदसे अनेक प्रकारका कहा गया है। इसके निर्वचन भी अवति, आप्नोति आदि अनेक धातुओं एवं 'अ उ म्, अ + म्' आदि अनेक अक्षर समुदायोंसे निष्पन्न होते हैं। निर्वचनभेद तथा अक्षर समुदाय-भेदके कारण अर्थ भी अनेक होते हैं। स्थूल सूक्ष्म-परभेदसे भी अनेक अर्थ होते हैं।

शब्दमय 'ओम्'

शब्दमय 'ओम्' एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर भेदसे अनेक प्रकारका है। आञ्जनेयपक्ष भाष्यमें इनमें चतुरक्षर 'प्रणव' 'अ ह् अम्'—इन चार अक्षरोंसे निष्पन्न है। दूसरे शब्दोंमें चतुरक्षर स्फोट 'ओम्' भी चार वर्ण-स्फोटोंमें स्थित है। इसका अर्थ इस प्रकार है—'अ'कारका अर्थ सूक्ष्म (आत्मा) है। 'ह'कारका अर्थ स्थूल (शरीर) अर्थात् प्रकृति है। 'अम्'का अर्थ दोनोंका एकत्र सन्निपात है। 'अ ह् अम्' इस स्थितिमें 'ह्' कारके लुप्त हो जानेसे 'अ उ अम्' स्थिति हो जाती है। गुण एवं पूर्वरूपसे 'ओम्' निष्पन्न होता है। यह एकाक्षरा व्याहृति परमात्माका नाम है—'तस्य वाचकः प्रणवः'। सूक्ष्म परमात्मा एवं स्थूल प्रकृति—दोनोंका एकत्र सन्निवेश 'ओम्' है। प्रकृतिरूप शरीर विशिष्ट परमात्मा ही 'ओम्' शब्दसे वाच्य है, प्रकृति वियुक्त नहीं।

द्व्यक्षर 'ओम्'

द्व्यक्षर, त्र्यक्षर एवं सार्धत्र्यक्षर 'ओम्'के अर्थोंका विश्लेषण इस प्रकार है—जब प्रणव स्थूल अर्थका प्रतिपादन करता है, तब उसमें 'ओ' और 'म्' दो अक्षर माने जाते हैं। इस पक्षमें प्रणवघटक प्रथम अक्षर 'ओ'का अर्थ ओत है। द्वितीय अक्षर 'म'कारका अर्थ मित है। दोनोंके सङ्गतिसे यह स्थूल अर्थ निष्पन्न होता है, जिसमें सब मित पदार्थ ओत हैं एवं जो सब मित (परिमित) पदार्थोंमें ओत है, वह परमात्मा 'ओम्' शब्दसे अभिहित होता है। भगवान् विष्णुसे अन्य जो कुछ भी है, वह मित (परिमित) है। अतः प्रकृति और प्राकृत सब पदार्थ मित हैं। ये मित पदार्थ जिसमें मणिगणोंकी तरह ग्रथित हैं और इन मित पदार्थोंमें जो पुष्करमें परमाणुवत् ओत है, वह परमात्मा 'ओम्' शब्दसे अभिहित है।

त्र्यक्षर 'ओम्'

जब प्रणव सूक्ष्म अर्थका प्रतिपादन करता है, तब उसमें 'अ उ म्' ये तीन अक्षर माने जाते हैं। ये तीनों भगवान्‌की सृष्टि, स्थिति एवं संहारकारिणी शक्तियोंके बोधक हैं। ये तीनों शक्तियाँ भी भगवान् विष्णुकी पूर्णा षाड्गुण्यरूपा एक शक्तिकी अंशरूपा हैं। वेदमें इनके विश्व, तैजस, प्राज्ञ—ये नामान्तर हैं। 'पाञ्चरात्र'-तन्त्रमें इनके संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध—ये नामान्तर हैं। 'अ उ म्' रूप ये तीनों शक्तियाँ जिसमें निवास करती हों, वह परमात्मा 'ओम्' है और 'ओम्'का वाच्य भी है।

प्रणव जब 'पर' अर्थका प्रतिपादन करता है, तब उसमें 'अ और उम्' ये दो अक्षर माने जाते हैं। इनमें अकारका अर्थ है—स्थूल चित्-अचित् विशिष्ट परमात्मा और 'उम्'का अर्थ है—सूक्ष्म चित् अचित् विशिष्ट परमात्मा। स्थूल परमात्मा कार्य है तथा सूक्ष्म परमात्मा कारण है। ये दोनों अभिन्न हैं, यह 'ओम्'का पर अर्थ है।

अर्थरूप 'ओम्'

अर्थरूप 'ओम्'का प्रतिपादन करते हुए 'आञ्जनेय' का विश्लेषण इस प्रकार है—

> इत्थं यथा वाङ्मयोऽयं प्रपञ्चः शब्द ओमिति।
> तथैवार्थो वाङ्मयोऽयं प्रपञ्चो वाच्य ओमिति॥

अर्थात् जैसे वाचक वाङ्मय प्रपञ्च शब्द 'ओम्' है, वैसे ही वाच्य अर्थरूप भी 'ओम्' है। दूसरे शब्दोंमें वाचक शब्दरूप 'ओम्' और वाच्य अर्थरूप 'ओम्'—ये दोनों 'ओम्' हैं। दोनोंका रूप भी अभिन्न है। यथा वाचक 'ओम्' इस एक अक्षर-स्फोटमें 'अ उ म्'—ये तीनों वर्ण स्फोटके अन्तर्गत हैं, वैसे ही 'ओम्' शब्दवाच्य अर्थरूप ईश्वर शारीरिक आत्मा आदिमें भी तीन-तीन कलाएँ अन्तर्भूत हैं। यह अर्थरूप 'ओम्' त्रिविक्रम विष्णु शारीरक जीवात्मा आदि अनेक हैं।

अर्थरूप त्रिविक्रम विष्णुरूप 'ओम्'में क्रमशः तीन मात्राओंका सन्निवेश इस प्रकार है—अ—द्यौ, उ—अन्तरिक्ष, म्—पृथिवी, अर्धमात्रा—विष्णु। सब मिलकर विष्णुरूप 'ॐ' है। अर्थरूप 'वेद'रूप 'ओम्'में प्रणवकी तीन कलाओंका सन्निवेश इस प्रकार है—अ—ऋग्वेद, उ—यजुर्वेद, म्—सामवेद, अर्धमात्रा—अथर्ववेद। सब मिलकर वेदरूप 'ॐ' है।

अध्यात्ममें शारीरिक जीवात्मारूप 'ओम्'में इन कलाओंका सन्निवेश इस प्रकार है—अ—स्थूल देह, उ—सूक्ष्म देह, म्—कारण मनोमय देह, अर्धमात्रा—जीव। सबको मिलाकर अर्थरूप जीवात्मा 'ॐ' है। अन्तमें महामहिम 'प्रणव', उसके विज्ञान और उपासक आञ्जनेय श्रीहनुमान इन तीनोंको पुनः-पुनः प्रणाम और कृतज्ञताके लिये उनकी भाव-मूर्तिका ध्यान इस प्रकार करते हैं—

> आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम्।
> पारिजाततरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम्॥

श्रीहनुमानजीसे विनय

अहो हनुमान मान पैरौ जौ बढ़ायौ जग
राखियै तौ ध्यान आन-बान के निभाव कौ।
कहै 'रत्नाकर' बिसारियै न कानि यह
बिरद सँभारियै कृपाल के कहाव कौ॥
और कौ न गौरि पै परैयै मन ठैयै यहै
आप ही चलैयै नय चाप अपनाव कौ।
करियै निगाह ना गुनाह हूँ कियै पै लाल,
राखियै उछाह निज बाहँ के बसाव कौ॥

महाकवि रत्नाकर

श्रीहनुमानजी और 'ॐ'कार—एक ही तत्त्व

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीश्रीकण्ठजी शर्मा शास्त्री 'चक्रपाणि')

देवताओंकी परोक्ष-वृत्तिद्वारा ही मानव या कोई साधारण जीव दिव्य एवं सात्त्विक सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। सिद्धान्त है कि 'परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः।' (बृ० उ० ४। २। २) 'परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः।' (श्रीमद्भागवत ४। २८। ६५)

जिस प्रकार निराकार ब्रह्मका वाचक साकाररूपके ध्यानसे 'ॐ'कार है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी निज नामकी परोक्षवृत्तिद्वारा ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक ॐकारके प्रतीक हैं। सम्भवतः श्रीतुलसीदासजीने इस गूढ़ भावको ही हृदयमें रखकर 'अंजनिपुत्र पवनसुत नामा'—यह स्तुति विशेषण कहा हो। पुत्र पिताकी आत्मा है—'आत्मा वै जायते पुत्रः' तो पवनसुत पवनसे भिन्न नहीं और पवन प्राण-संज्ञावान् वायुसे अभिन्न है तो ॐ प्राणसे भिन्न नहीं क्योंकि प्राणोपासना सफल है।

'आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम्।' (छा० उ० १। २। १०)

उद्गीथ ॐकार ही है। छा० उ० १। १। १० के शांकरभाष्यमें—'न ओंकारस्य कर्माङ्गत्वमात्रविज्ञानमेव' से उपक्रम कर 'प्रकृतस्य उद्गीथस्य उद्गीथाख्यस्याक्षरस्याथ व्याख्यानं भवति'—तकका पाठ ॐकारकी उद्गीथ-संज्ञामें प्रमाण है।

तान्त्रिक 'वर्णबीजकोश'के सिद्धान्तके अनुसार भी हनुमान्जी और ॐकारमें धर्मसाम्यता निम्ननिर्दिष्ट प्रकारसे सुस्पष्ट है—

'ह' आकाशबीज है, जो आञ्जनेय (हनुमानजी)के नामामें विष्णुतत्त्वका द्योतक है। योगशास्त्रमें आकाश द्रव्यको 'विष्णुपदम्' कहा गया है। यथा—'वियद् विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी' इत्यमरः। इस प्रकार नामका प्रथम अक्षर 'ह'कार विष्णुतत्त्व सिद्ध हुआ, जो ओंकार (अ+उ+म्)के प्रथम भाग अकारमें गर्भित है 'अकारो वासुदेवः स्यात्।'

'नु' यह हनुमानके नामका दूसरा अक्षर है, इसमें 'न'-'उ'कार है, जो शिवतत्त्वका द्योतक है। 'वादिनीनाशनं' उ सम्बोधनमाधवयोः'—इन वचनोंके अनुसार उकार शिव ही सिद्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत पारमहंस्यसंहितामें तो राम ही रुद्र क्रोधसमुद्भव कहकर कार्य-कारणकी अभिन्नताके आधारपर रामको रुद्र और रुद्रको राम सिद्ध कर दिया गया है। इस प्रकार नामका द्वितीय अक्षर 'नु' शिवतत्त्व सिद्ध हुआ।

'मान्' नामके तृतीय भागमें जो 'म' एक भाग है, (क्वचिदेकदेशोऽपि गृह्यते) यह बिन्दुनाद-शून्य अनुस्वारका बोधक है।

तन्त्र-ग्रन्थ 'वर्णबीजप्रकाश-कोश'के अनुसार 'म'कार वर्ण उपस्थका बोधक है। उपस्थ अङ्गके देवता प्रजापति ब्रह्मा हैं। इसलिये 'म'कारका ब्रह्मा-तत्त्व भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार समष्टिशक्तिरूपसे ॐ ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों ही आदि कारण-तत्त्वोंका भी प्रतीक है। निष्कर्ष यह हुआ कि 'ह्-अ, न्-उ, मन्—हनुमान—ओम्' एकतत्त्व सिद्ध हुए।

इस प्रकार हनुमानजीकी उपासना साक्षात् ॐ तत्त्वोपासना होनेसे परब्रह्मकी ही उपासना हुई।

जन्म-मृत्यु तथा सांसारिक वासनाओंकी मूलभूत मायाका विनाश ब्रह्मोपासनाके बिना सम्भव नहीं। उस अचिन्त्य अवाच्य ब्रह्मका ही तो स्वरूप ॐकार है। इसीको दर्शनशास्त्रमें प्रणव नामसे कहा गया है—'तस्य वाचकः प्रणवः।' 'तज्जपस्तदर्थभावनम्।' (योगदर्शन अ० १, सूत्र २७-२८)

शिवपुराणके १७वें अध्यायमें प्रणवका निर्वचन करते हुए बताया गया है कि उक्त शब्दमें दो भाग हैं—एक 'प्र' और दूसरा 'नव'। 'प्र' का अर्थ है—प्रपञ्चपूर्वक, 'नव' का अर्थ है—नूतन ज्ञान देनेवाला। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुति-वाक्योंमें ज्ञानको ही तो ब्रह्म कहा है।

अथवा 'प्र' का भाव है—प्रकृतिसे पैदा होनेवाला संसाररूपी महासागर और 'नव' का भाव है भवसागरसे पार करानेवाली नाव।

आगमें एक और भी भाव निर्देश किया गया है—'प्र' प्रकर्षेण, 'न' अर्थात् 'व' युष्मान् मोक्षम् इति प्रणवः' अर्थात् प्रणव अपने उपासकोंको मोक्षतक पहुँचा देनेवाला है तो श्रीहनुमानजी ही यहाँ कर्ता (प्रभु) हैं।

उक्त प्रणवके दो भेद हैं—सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म ओंकार तो एकाक्षरके रूपमें और स्थूल ओंकार 'नमः शिवाय'—इस पञ्चाक्षर मन्त्रके रूपमें है। इधर श्रीहनुमानजीको शिव अंश सर्वसम्मत माना गया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी हनुमानजीके स्वरूपमें यह झलक दिखायी है—सूक्ष्मरूप धरि सियहि दिखावा। भीम रूप धरि असुर सँहारे। (भीम स्थूल) अस्तु।

इसीको दीर्घ और ह्रस्व प्रणवके रूपसे भी निरुक्त किया गया है। दीर्घ प्रणवमें अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—ये आठ धाम हैं, जो योगीजनोंद्वारा ही साध्य हैं।

इस प्रणवके अ—शिव, उ—शक्ति, म्—दोनोंकी एकता—ये तीन तत्त्व हैं। यह प्रवृत्तिमार्गसे मुक्त होनेके लिये जीव-साधारणका जाप्य है।

इस प्रकार उक्त रहस्यका प्रतिबिम्ब श्रीहनुमानजीमें हमें झलकता है, अर्थात् माया (संसार) की निवृत्ति ज्ञानसे होती है। यह भाव ईशावास्योपनिषद् (१२) में कितने स्पष्ट रूपमें दर्शाया गया है—

'ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः।'

दूसरी ओर जैसे उक्त सिद्धान्तसे ब्रह्मका वाचक ॐ मायाका सहार करके संसार-बन्धनसे मुक्त करता है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी महाराज (जो ॐकारकी साक्षात् मूर्ति हैं) एकाराक्षरीरूपिणी मायापर विजय पाकर परमशान्तस्वरूपिणी ब्रह्मरूपा चिद्रूपात्मिका श्रीसीताजीको प्राप्त करते हैं और श्रीरामको महान् सङ्कटसे बचाते हैं। इस विवेचनसे यह सिद्ध हो गया कि श्रीहनुमान और ओम् एक ही तत्त्व हैं।

रामस्नेही संत-मतमें श्रीहनुमान और सिवरण

(लेखक—श्रीयुत रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य श्रीभगवद्दासजी महाराज शास्त्री आयुर्वेदाचार्य)

जन हरिया है मुगति कूं नीसरणी निज नाम।
चढ़ि धांपरि सू सिंवरिये जो चाहे विसराम॥
हरिसुत हरिप्रिय शिष्यहरि हरिमद-भञ्जन हार।
हरि कुलभूषण भञ्जन हर सुर अरि करणसंहार॥

परमधीर समीरसुत स्वामिधर्मपरायण रघुवीर भक्त महावीर हनुमानजीने पावन चरित्रका स्व-स्वमतानुसार उभान वर्णन किया है, जो वस्तुतः सर्वथा अपार है। कपिवंशावतंस श्रीहनुमानजी अञ्जनीदेवाकी कुक्षिसे अवतीर्ण हुए हैं—

ब्रह्म राम साकार बने नर प्रभ पुरातन चीनौं।
रुद्र होय हनुमंत रूप तब दास भक्ति चित दीनौं॥

भगवान् शिव ही श्रीरामावतारमें श्रीरामजीकी सेवाका लाभ लेने हेतु हनुमान बने। श्रीहनुमानजी जिस प्रकार नामके अभिवदन करते हैं, उसी प्रकार देवाधिदेव भगवान् शिव भी श्रीरामके अनन्य स्मरणयोगी भक्त हैं। वैसे देखा जाय तो नाम-साधना दोनोंको एक ही है। आप दोनों इस सम्प्रदायके आचार्य माने जाते हैं क्योंकि रामनामकी प्राप्ति और उसके स्मरणकी विधि शिवजी और हनुमानजीसे ही इसमें आयी है। जैसा कि गोस्वामीजी लिखते हैं—

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥
इत्यादि— (मानस)

रामस्नेही-सम्प्रदायके आचार्योंकी इनके प्रति भावना और मान्यता—

'प्रथम गुरु शिव जाण नाम पारवती दीधो।'
(श्रीहरिरामदासजी महाराज)

प्रथम नाम महेश शिव लीया। पारवतीको निज सत दीया॥
(श्रीरामदासजी)

ता प्रथम शिव शिव कही जनहीके परसाद।
प्रभ ज्ञान उमा परम परा दासु दादाद॥
(श्रीदयालदासजी)

इस प्रकार शिवजीको प्रथम तारक मन्त्र उपदेष्टा मानते हैं और प्रेमाभक्तिके आचार्य श्रीहनुमानजीमें दासको जो अत्यधिक महत्त्व प्राप्त है उसका भी एक विशेष रहस्य है। इस रामनाममें किन्तु

प्रमाद है, इसका वर्णन किसी संतने इस प्रकार किया है—
'पवन सिस रावणके यहाँ भयभीत अवस्थामें रहकर झाड़ू लगाता है, वहाँ ही उसका पुत्र रावणके महलोंको निर्भय निःशङ्क होकर तोड़ रहा है। यह शक्ति हनुमानजीमें दास भाव होनेसे ही प्राप्त हुई है।'—

> दासातन सबते बड़ो, समश र आवे ओट।
> पिता बुहारे घर आँगणो, सुत ढहावे नवकोट॥
>
> (अज्ञात)

इसी कारण दीक्षा देते समय 'संत' नामके अन्तमें दास पद लगाकर शिष्य बनाते हैं।

अब संत-मतमें कुछ संतोंके भाव मूलरूपमें उद्धत किये जा रहे हैं, जिससे ज्ञात होगा कि वे अपनी दृष्टिमें श्रीहनुमानजी महाराजको किस किस रूपमें देख रहे हैं।

श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजने अपनी रचनाओंमें इनको एक शूर-वीर योद्धाके समान हुंकार (गर्जन) से आसुरी सम्पत्तिको नाश करनेवाला और भक्त-रक्षक माना है—

हनुमन्त हुकार भवतो रहे यों सोखिया पकड़ बावन बीर।

रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य श्रीरामदासजी महाराज अपनी अनुभूत रचना 'भक्तमाल'में इनको भक्त-सहायक मानते हैं—

तुलसीदास रामका प्यारा। आठों पहर मगन मतवारा॥
× × ×। हनुमान हरि चरणां लाया॥

गोस्वामीजीको हनुमानजीकी कृपासे ही श्रीरामजीके दर्शनोंका लाभ हुआ। रामस्नेही मत-मतमें हनुमानजीके विषयमें विशद वर्णन मिलता है—

सनक धर्म अगम योगिन तें रामदूत बनि राख्यो।
कामिनि कनक दुहूँ धूरी करि लेश न चित्त अभिलाख्यो॥
कञ्चन लङ्क कलङ्क समुझि किल दे किलकारि दहायो।
किंकर निज परकीय कामिनी भागत नहिं मन भायो॥
कपि कुञ्जरहि कवच सिध कीनो जरा सहित मन जागी।
अमर भयो कि पुरुष अग्रणी वीर महा बजरंगी॥
पवन पिता तें अधिक पराक्रम अविचल द्रोण उठायो।
एक रजनिमें राम लखन हित उदधि लाँघि तट आयो॥
राज्य विभीषण पाय राम तें लङ्केश्वर पद लीनो।
हार अमोल्य रत्नमय हरिको तबहि निवेदन कीनो॥
सियानाथ वह हार समर्प्यो मारुतिके बिन माग।
देखत मयके निज दाँतन ते भले रत्न जिन भागे॥
वानर केवल जानि विभीषण असुर करी उपहासी।
फोरि फोरि मणिगण किम फेंको विगत ज्ञान वनवासी॥
उत्तर दीनो राम उपासक आतुधान कहा जानो।
राम नाम बिन अङ्कित रावस मणि कङ्कर सम मानो॥
प्रति उत्तर पुनि देत परदान काया राखत कसे।
महावीर तब चीर चम निज अवलोकहु कहि ऐसे॥
साढ़ा तीन कोटि तन सबमें रोमावलि अविरेखी।
राम-राम प्रतिरोम धूपमें दिव्य नाम ध्वनि देखी॥
अक्षय के क्षय कारक अद्भुत अभय राम अराधैं।
सैल सिन्दूर लपेट लगाटो सकल सम्पदा साधैं॥

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराज अपने स्मरण विधानमें सब-सिद्धिप्रद पवनरूपको मुख्य मानते हैं क्योंकि शरीरस्थ वायुके समान रहनेपर ही सभी कार्य सुगमतासे निष्पन्न होते रहते हैं। यदि प्राण, अपान या अन्य वायु कुपित हो जायँ तो साधकको साधना कालमें ही अनेक व्याधियाँ एवं विघ्न आ घेरते हैं। अतः संत सब शरीर-सञ्चारी पवनको ही हनुमान मानकर चलते हैं। पवन चञ्चल, अस्थिर एवं गमनशील है, इसी प्रकार सर्वत्र सञ्चारी हनुमानजी भी चञ्चलत्व-गुणसे युक्त अपनेको स्वीकार करते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबही बिधि हीना॥

इसलिये पवनकी चञ्चलता मिटानेके निमित्त श्रीहनुमानजीकी कृपा अत्यावश्यक है। इनकी कृपासे दसों प्रकारके पवनके दोष (सभी वायु-दोष) मिट जाते हैं। चञ्चलता मिट जानेसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होता है, जिससे नाम स्मरणमें मन स्थिर हो जाता है। साधक साधनासे अपनेको अजर अमर करना चाहता है, वह अमरत्व-शक्ति श्रीहनुमानजीकी कृपासे ही मिल सकती है। यह शक्ति पवनपुत्रको जानकीजीकी कृपाद्वारा प्राप्त है। योगारूढ़ संत भी इसी पवन (प्राण-वायु) को नाम जपसे सरल करके अपनेको अमर कर लेते हैं। यह नाम-जप जब रसना, कण्ठ, हृदय और नाभिसे किया जाता है, तब यह क्रमशः अधम (अधम), मध्य (मध्यम), उत्तम एवं अति उत्तम दशाओंमें रहता रहता है।

> प्रथम राम रसना सुमिर दुतीय कंठ लगाय।
> तृतीय हिरदे ध्यान धरि, चौथे नाभि मिलाय॥

अथ सब उत्तम ग्रंथ घर आनूँ । पाँच अति उत्तम भाख्यानूँ ॥
यह चहुँ भिन्न न्यून आसरमा । रामभक्तिको पावे मरमा ॥
अथ सिवरनसु पुसे कहिये । रसना राम राम छू गहिये ॥
मध सिवरन जो ऐसे भाई । मुख सिवरन हालत रह जाई ॥
उत्तम सिवरन हृदय अस्थानूँ । मे हो माहिं भया धर ध्यानूँ ॥
अथ सब उत्तम सिवर सुजाना । अति उत्तमके मांहि सिलाना ॥
अति उत्तम नाभि अस्थानूँ । मन सफर निरन्तर नहिं ठानूँ ॥
अति उत्तम सिवरन सरबगा । अक्षर एक भया अण भगा ॥

सिवरण भाग मतका तात भरम मसाय ।
हरिरामा हरि चरणा करिये चित्त लगाय ॥

हरि (हनुमान)की कृपासे हरि (श्रीराम)का स्मरण इस विधानसे करनेपर समस्त संसृति भय नष्ट हो जाते हैं । अति उत्तम स्मरणमें तो केवल ररंकारकी ध्वनि सारे शरीरकी रोमावलियोंसे ही अजस्र होने लग जाती है । जब अपान वायु प्राण-वायुसे मिलकर कुम्भकद्वारा निरुद्ध हो जाता है, तब साधकको समाधि लगनेकी अवस्था प्राप्त हो जाती है—

अरधे मिल उरधा पवन निरधा ध्यान समाधि लगंदा है ।

इस प्रकार मनकी गति स्थिर होनेपर पाँचों ही पवन (प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान) वशीभूत हो जाते हैं और साधक ब्रह्मानन्दरूपी अजर प्याला पीने लग जाते हैं—

मनवा थिर पवना पाँचूँ दमना प्याला अजर पीवंदा है ।
हरिजन हरि आपी वेद बखाणी शेष विष्णु ध्यावंदा है ॥

एस आनन्दमें हरिजन भक्त और हरि (हनुमानजी) ही जाते हैं । वेद-पुराण कहते हैं कि जिसके रहस्यको जाननेके लिये शिव, विष्णु सतत ध्यान करते हैं, ऐसे तत्त्वको प्राप्त करनेके लिये साधकका इन्हीं हरि (हनुमानजी)-की कृपासे सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि स्वतः सिद्ध हो जाती है । जीभसे स्मरण करते समय जब मिश्रीके आस्वाद रसनाको प्राप्त होने लग जाता है, तब इसे 'अधम' स्मरण कहते हैं । यह रसनाका स्मरण है । जब भौंरेके गुञ्जार एवं मधुर वंशीकी तानके समान ध्वनि सुनाई पड़ने लगे, तब कण्ठका स्मरण सिद्ध होता है, इसे 'मध्यम' स्मरण कहते हैं । जब प्राणगति हृदयकमलमें स्थिर हो जाती है, तब धम धमकारकी ध्वनिका अनुभव होता है, यह 'हृदय'का स्मरण है । इसे ही 'उत्तम' स्मरणके नामसे पुकारते हैं । नाभिमें जाकर जब प्राणगति स्थिर हो जाता है और प्राण अपानका एक संयोग होनेसे विचित्र प्रकारके नृत्य होने लगते हैं, तब नाभि-स्मरण सिद्ध होता है और इसे 'अति उत्तम' स्मरण कहते हैं ।

मुख्य बात यह है कि 'अति उत्तम' स्मरणमें प्रत्यक्ष रामरूपमें मायारहित रकारकी ध्वनि अबाधगतिसे निकलती रहती है । प्राण-वायु भी कुण्डलिनीका भेदन करता हुआ सहस्रार-चक्रमें पहुँच जाता है, यहाँ दसवें द्वारकी समाधि पूर्ण होती है । यहाँपर जीवका जीवत्व छूट जाता है और वह ब्रह्म-भावको प्राप्त हो जाता है । इसीको 'पराभक्ति' कहते हैं और यही ज्ञानकी चरम सीमा है ।

यह अन्तिम अवस्था 'ज्ञानिनामग्रगण्य' श्रीहनुमानजीकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है ।

बिन्दु मकार इन्दुधर शेखर प्रतिदिन अमृत सु पीव ।
शुभ अक्षरके जाप जोर सें जगत् प्रलय करि जीव ॥

सुमिरणके प्रतापसे ही श्रीहनुमानजी सात चिरजीवियोंमेंसे एक हैं । इस प्रकार रामस्नेही-सम्प्रदायमें हनुमान एवं सिवरण (स्मरण)का अभेद सम्बन्ध माना गया है ।

श्रीहनुमानजीकी दृढ़ निष्ठा

फारि निज वक्षस्थल धीर हनुमान कह्यौ,
देखि लेहु मातु ! खोलि हृदय बताऊँ मैं ।
लखन-समेत सियाराम सुखधाम सदा
आठों जाम मेरे उर वास धरि ध्याऊँ मैं ।
जो पै अजौं काहू के प्रतीति नाहिं होय हियें,
रोम-रोम फारि राम-नाम दिखराऊँ मैं ।
बात ना बनाऊँ, बात साँची करि पाऊँ जी न
बात का बढ़ाऊँ, वातजात ना कहाऊँ मैं ॥

—डा० श्रीरणवीरसिंहजी शक्तावत 'रसिक'

नाथ-सिद्ध-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—महन्त श्रीअवैद्यनाथजी)

नाथ-सम्प्रदायपर विपुल श्रेष्ठ सामग्री प्राचीन ग्रन्थोंमें बिखरी पड़ी है, पर उनका संतोषजनक सूक्ष्म नाथ-समग्र एवं सम्पादन शेष है। उदाहरणार्थ नारदपुराण, उत्तर भाग अध्याय ६९, स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय २६२, भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व आदिमें श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी एवं श्रीगोरक्षनाथजीके प्रादुर्भावकी बड़ी रोचक कथाएँ वर्णित हैं। इनके साथ ही मत्स्यनाथ, ॱननाथ, अवलोकितेश्वर आदि पर्यायवाची नाम भी प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार महर्षि दुर्वासा विरचित 'ललितास्तव' के श्लोक ५६में हनुमानजीके पिता श्रीवायुदेवताके साथ—

> वन्दे तदुत्तरहरित्कोणे वायुं चमूरवरवाहम्।
> कोरक्षितत्त्वबोधान् गोरक्षप्रमुखयोगिनोऽपि मुहुः ॥

—तत्त्वबोधलग्न योगियोंमें श्रीगोरक्षनाथजीका सर्वप्रथम निर्देश किया गया है। योग-सिद्धियोंसे सम्बद्ध होनेके कारण नवनाथोंका भी श्रीहनुमानजीसे सम्बन्ध रहा है। कई बार सम्पर्ष-सी भी चली है। नाथ-सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें हनुमानजीकी जन्म-कथा इस प्रकार मिलती है—

हनुमानजीकी माताका नाम अञ्जनी था। वे केसरी नामक वानरकी पत्नी थीं। केसरी और अञ्जनीने ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर पुत्र-प्राप्तिके लिये शिवजीकी आराधना की।

जब उन्हें कठोर तपस्या करते हुए सात हजार वर्ष व्यतीत हो गये, तब शिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये और अञ्जनीसे कहा—'अञ्जने! कल प्रातःकाल तुम सूर्यनारायणके सम्मुख अञ्जलि बाँधकर खड़ी हो जाना, उस समय तुम्हारी अञ्जलिमें जो कुछ गिरे, उसका सेवन कर लेना। उसके प्रभावसे तुम्हें अत्यन्त तेजस्वी तथा अजर-अमर पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

यह कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। दूसरे दिन प्रातःकाल अञ्जनी सूर्यनारायणके सम्मुख अञ्जलि बाँधकर खड़ी हो गयी। उसी दिन अयोध्यानगरीमें महाराज दशरथने पुत्रेष्टियज्ञ पूरा किया था। यज्ञकी समाप्तिपर अग्निदेवता हवि लेकर प्रकट हुए और उन्हें उस हविके तीन भाग करके तीनों रानियोंको खिला देनेकी आज्ञा प्रदान की। महर्षि वसिष्ठके आदेशानुसार महाराज दशरथने हविको तीन भागोंमें विभक्त करके एक-एक भाग अपनी तीनों रानियों—(१) कौसल्या, (२) कैकेयी और (३) सुमित्राको दे दिया। रानी कैकेयीने जिस समय हविके भागको हाथमें लिया, उसी समय वहाँ एक चील आ पहुँची और झपट्टा मारकर रानी कैकेयीके हाथमें स्थित हविके भागका कुछ अंश अपनी चोंचमें भरकर आकाशमें उड़ गयी।

ऋष्यमूक पर्वतपर, जहाँ अञ्जनी अञ्जलि बाँधे सूर्यनारायणके सम्मुख खड़ी थी, पूर्वोक्त चील अयोध्यासे चलकर वहीं आ पहुँची और उसकी चोंचसे हविका अंश निकलकर अञ्जनीकी अञ्जलिमें जा गिरा।

अञ्जनीने उसे सूर्यनारायणका दिया हुआ प्रसाद समझकर ग्रहण कर लिया। उसीके फलस्वरूप उनके गर्भसे श्रीराम-भक्त हनुमानजीका जन्म हुआ।

नाथ-सम्प्रदायमें हनुमानजीके जन्मके विषयमें दूसरी कथा इस प्रकार प्रचलित है—अञ्जनी गौतम ऋषिकी पुत्री थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। एक बार उसके सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर देवराज इन्द्र कपट-वेष धारण करके उसके समीप जा पहुँचे। गौतम ऋषि उस समय घरपर नहीं थे। कुछ ही देर बाद ऋषि आश्रममें आ पहुँचे। इन्द्र उन्हें आया हुआ जानकर भयभीत हो भाग गये।

इन्द्रको अपनी पुत्रीके घरमेंसे बाहर निकलते हुए देखकर गौतम ऋषिको अञ्जनीपर अत्यन्त क्रोध आया। उन्होंने उसे शाप दे दिया कि 'तू जीवनभर कुमारी (अविवाहिता) ही बनी रहेगी।'

शाप देनेके बाद जब ऋषिने योग-दृष्टिद्वारा सम्पूर्ण घटनापर विचार किया तो अपनी निर्दोष पुत्रीको शाप दिये जानेके कारण उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। अस्तु, उन्होंने शापका निवारण करनेके उद्देश्यसे कहा—'पुत्री! तेरे गर्भसे एक महाप्रतापी पुत्रका जन्म होगा।' इस प्रकार श्रीहनुमानजीका जन्म हुआ।

बड़े होकर हनुमानजीने अनेकों लीला-चरित्र किये, जिनका वर्णन रामायण तथा अन्य अनेक ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक किया गया है।

भक्तशिरोमणि श्रीहनुमानजीकी दास्य-रति

भारतवर्षका यह अनुपम सौभाग्य है कि भगवान्‌के मङ्गलमय अनुग्रहसे इस धरापर वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास, नारद, उद्धव, भरत, शबरी, मीराँ आदि अनेकों ऋषि, संत एवं भक्तजन अनन्तकालसे ज्ञान एवं भक्तिकी पावन गङ्गा बहाते रहे हैं। ऐसी ही महान् विभूतियोंमें भारतीय संस्कृतिके प्राण, भक्तशिरोमणि पवनपुत्र श्रीहनुमानजी का एक विशिष्ट स्थान है। बंदर-जैसी साधारण योनिमें जन्म लेकर अपने अनुकरणीय गुण, आचरण एवं भावों द्वारा श्रीहनुमानजी महाराजने प्राणिमात्रका जो परम हित किया है एवं कर रहे हैं, उससे भूतलवासी युग-युगान्तरतक उऋण नहीं हो सकते। भगवान् श्रीरामजीके प्रति उनकी जो दास्य-भक्ति है, उसका पूरा वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है ? फिर भी अपना समय सार्थक बनानेके लिये कुछ चेष्टा की जा रही है। निश्चय ही उसके मनन एवं अनुशीलनसे मनुष्य अपने जीवनके परम लक्ष्य (*भगवत्प्राप्ति*)को प्राप्त कर सकता है।

अपने-आपको पूर्णतया भगवान्‌के समर्पित कर देना, उनके मनोभाव, प्रेरणा अथवा आज्ञानुसार प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना, उन्हें निरन्तर सुख पहुँचाना और बदलेमें कुछ भी न चाहना—यही भक्तिका स्वरूप है। ये सारी बातें साङ्गोपाङ्ग श्रीहनुमानजीके चरित्रमें स्पष्टरूपसे पायी जाती हैं। वे अपने शरीर, मन, बुद्धि, बल, विवेक, भाव, योग्यता, समय आदिको एकमात्र भगवान्‌का समझकर उन्हें अपने इष्टदेव श्रीराम की सेवामें ही लगाये रहते हैं। वे आत्म-निवेदनद्वारा पूर्णरूपसे भगवत्परायण हैं। 'तत्सुखे सुखित्वम्' अर्थात् भगवान्‌के ही सुखमें अपनेको सुखी मानने अथात् एकमात्र भगवान्‌को सुख पहुँचानेकी भावनासे उनका जीवन ओत प्रोत है।

(भगवान्‌को श्रद्धा-प्रेमपूर्वक सुख पहुँचानेकी भावना को 'रति' कहा है। यह मुख्यरूपसे चार प्रकारकी मानी है—१–दास्य-रति, २–सख्य-रति, ३–वात्सल्य-रति और माधुर्य-रति।

दास्य-रति

वैष्णवाचार्योंके मतसे दास्य-रति ही भगवद्भक्तिका प्रारम्भिक सोपान है। इस रतिमें भक्त अपनेआपको सेवक (दास) एवं अपने इष्टको स्वामी मानकर उनकी सेव्य-सेवक-भावसे सेवा करता है। सच्चा सेवक वह है जिसके मनमें अपनी वस्तु, शरीर, मन, बुद्धि आदिपर न तो अपनापन रह जाता है और न सेवा करनेका लेशमात्र अभिमान ही रहता है, क्योंकि वह तो समझता है कि मैं सेव्यकी ही शक्ति एवं प्रेरणासे उन्हींकी वस्तु उन्हें अर्पण कर रहा हूँ।

सेव्यने सेवा स्वीकार कर ली तो वह अपनेआपको कृतकृत्य मानता है। इतना ही नहीं, अपने इष्टदेवके भक्तोंकी भी सेवाका अवसर मिल जानेपर वह अपना अहोभाग्य समझता है। सेवा करना-मात्र जिनका लक्ष्य है, जिनका जीवन ही सेवामय है, भगवान्‌के ऐसे अनन्य एवं रसिक भक्तोंको सालोक्य[1], सार्ष्टि[2], सामीप्य[3], सारूप्य[4] और सायुज्य[5] मुक्तियाँ भी दी जायँ तो वे उन्हें ग्रहण नहीं करते—

> सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
> दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
> (श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

ऐसे भक्तोंकी तो बस, एक ही अभिलाषा रहती है कि हम ऐसी कौन-सी सेवा करें, जिससे भगवान्‌को परम सुख मिले।

श्रीहनुमानजी प्रभु श्रीरामके मनोभावोंको समझनेमें इतने दक्ष हैं कि भगवान्‌के मनमें संकल्प उदय होनेके पूर्व ही वे आवश्यक व्यवस्था प्रस्तुत कर देते हैं। लंकामें भगवान्‌के प्रवेश करनेके पूर्व ही उन्होंने उनके ठहरने तथा उनके सैन्य शिविरके लिये यथोचित सुरक्षित स्थान आदिकी व्यवस्था कर ली। ये अपनी सेवा-पटुताके द्वारा भगवान्‌को सर्वथा निश्चिन्त बनाये रखते हैं। उदाहरणार्थ—सीताजीका पता लगानेके लिये जाते समय उन्हें केवल सीताका कुशल-समाचार लानेके लिये ही कहा गया था, लंकादहनका कार्य समझ ही नहीं

---

१ भगवान्‌के दिव्यधाममें निवास २ भगवान्‌के समान ऐश्वर्य ३ भगवान्‌की नित्य समीपता ४ भगवान्‌के समान रूप और ५ भगवान्‌के विग्रहमें समा जाना अर्थात् उन्हींमें मिल जाना।

था, किंतु अशोक-वाटिकामें जब वे त्रिजटाका स्वप्न सुनते हैं—

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
(मानस ५। १०। १)

—तब इसे भगवान्‌का संकेत एवं प्रेरणा समझकर प्रत्युत्पन्नमति श्रीमारुति लंका-दहनरूप अनुपम सेवा सम्पन्न कर देते हैं।

सख्य-रति

दास्य-रतिके पश्चात् सख्य-रतिका स्तर प्रारम्भ होता है। जिस रतिमें भक्त और भगवान्‌का परस्पर समताका भाव रहता है, वह सख्य रति कहलाती है। इसमें भी मुख्यरूपसे भगवान्‌को सुख पहुँचानेका ही भाव रहता है। दास्य रतिमें दासको यह संकोच बना ही रहता है कि कहीं स्वामी मुझसे अप्रसन्न न हो जायँ या उनके सामने मुझसे कोई भूल न हो जाय, परंतु सखा भावमें ये दुर्बलताएँ नहीं रहतीं, क्योंकि इसमें सारा संकोच नष्ट होकर मित्रताका भाव दृढ़ बना रहता है, फिर भूलका प्रश्न ही कहाँ! यहाँ तो हम दोनों ही बराबरके हैं—ऐसी मान्यता बद्धमूल हो जाती है। अतः भावात्मक भगवत्सान्निध्य दास्य-रतिकी अपेक्षा भी सख्य-रतिमें अधिक प्राप्त होता है।

श्रीवाल्मीकि-रामायणके 'विभीषण-शरणागति' प्रसङ्गमें श्रीहनुमानजीद्वारा एक बुद्धिमान् सखाकी तरह भगवान् श्रीरामको परामर्श देनेका बड़ा ही सजीव वर्णन हुआ है—

श्रीराघवेन्द्र सरकार वानरोंको सम्बोधित करते हुए उनसे पूछते हैं कि 'विभीषणको अपनाना चाहिये या नहीं'—इस विषयपर आपलोग अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करें। तब सुग्रीव, अङ्गद, शरभ, मैन्द एवं जाम्बवान् आदिने क्रमशः अपने-अपने विचार रखे। सबके पश्चात्—

अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान् सचिवोत्तमः॥
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु।
न वादान्नापि संघर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः॥
वक्ष्यामि वचनं राजन् यथार्थं राम गौरवात्।
(वा० रा० ६। १७। ५०—५२)

"सचिवोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानजनित संस्कारसे युक्त श्रीहनुमानजी श्रवणमधुर, सार्थक, सुन्दर और संक्षिप्त वचन बोले—'महाराज श्रीराम! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा, वह वाद-विवाद या तर्क, स्पर्धा, अधिक बुद्धिमत्ताके अभिमान अथवा किसी प्रकारकी कामनासे नहीं करूँगा। मैं तो कार्यकी गुरुतापर दृष्टि रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही बात कहूँगा।"—और वे कहते हैं कि मेरी समझसे विभीषणको अपना लेना ही उचित जान पड़ता है।

वात्सल्य-रति

इसे सख्य रतिसे उत्कृष्ट माना गया है। वात्सल्य भावमें भक्त अपनेको सखाके समकक्ष नहीं मानते, अपितु माता पिताका शिशुके प्रति जो पालनका भाव होता है, ठीक उसीके अनुरूप वे भगवान्‌की भक्ति करते हैं। नियमतः जहाँ भगवान्‌के प्रति वात्सल्य-भाव होता है, वहाँ उनकी सेवाका भाव होना अनिवार्य है। अतः वात्सल्य-रतिमें दास्य एवं सख्य भाव भी गौण रूपसे अन्तर्निविष्ट हैं। इसी कारण भगवान्‌का पैदल चलना हनुमानजीको किसी प्रकार सह्य नहीं है। जब भी भगवान्‌की कहीं जानेकी इच्छा हुई कि तुरत हनुमानजी उन्हें उसी प्रकार अपने कंधेपर बैठाकर चल पड़ते हैं, जैसे माता पिता अपने बच्चेको गोदमें लेकर चलते हैं। यह सेवापरक वात्सल्य भावका एक अनूठा उदाहरण है।

माधुर्य-रति

भक्ति-शास्त्रोंमें माधुर्य-रतिको वात्सल्य-रतिसे भी श्रेष्ठ माना गया है। इसे कान्ता-रति भी कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं—१-स्वकीया माधुर्य-रति एवं २-परकीया माधुर्य रति। पति-पत्नी भावको स्वकीया माधुर्य-रति कहते हैं। इस रतिमें माता, पिता, भाई, कुल, कुटुम्ब आदि सबको त्यागकर पतिव्रता पत्नी अपने-आपको सब भावसे पतिकी सेवामें अर्पण कर देती है। यहाँतक कि वह अपनी जाति और गोत्रका भी परित्याग करके पतिकी ही जाति एवं गोत्रकी बन जाती है। वह सब प्रकारसे पतिकी ही बनकर उनके सुखमें ही सुखी रहती है और तन, मन, धन, बल, बुद्धि, विवेक आदि सब कुछ पतिके ही अर्पण कर देती है एवं स्वयं पति-परायणा होकर दासीकी भाँति सर्वथा पतिकी सेवा करती है, अतः इसमें दास्य-रतिका भी समावेश है। मित्रके सदृश समानताका भाव रखते हुए वह प्रत्येक कार्यमें पतिको उचित परामर्श देती है, इसलिये इसमें सख्य-रतिका भी सम्मिश्रण है। स्वामीको किसी प्रकार किंचिदपि कष्ट न हो, इस भावसे उनका लालन-पालन करना, सर्दी-गरमीमें यथोचित वस्त्रादिसे उनकी सेवा करना, यथासमय उन्हें भोजनादि कराना एवं सभी प्रकारसे उनके सुख-आरामका ध्यान

रमना—यह वात्सल्य भाव भी इस रतिमें व्याप्त रहता है एवं कान्ता-रति तो यह स्वयं है ही। इस प्रकार माधुर्य प्रेम-रसमें पूर्वकथित सभी रतियोंका समावेश है।

परकीया माधुर्य-रतिको आचार्योंने स्वकीया माधुर्य रतिसे भी श्रेष्ठ माना है। यही सर्वोपरि रति है। यह स्वपरिणीता पत्नीसे भिन्न पराया नारीसे सम्बन्धित होती है। यद्यपि लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे यह भाव अच्छा नहीं है, अपितु अत्यन्त घृणित है, किंतु इस परकीया-रतिसे एक ऐसा भाव लिया गया है, जिससे साधकको आध्यात्मिक जगत्के सर्वोपरि स्तरपर पहुँचनेके लिये प्रेरणा प्राप्त होती है। इस (परकीया भाव) की उत्कृष्टता स्त्री पुरुषके सम्बन्धको लेकर नहीं है, प्रत्युत सुख, सम्बन्ध, मोह-ममता, अनुकूलता, अभिमान आदिको छोड़कर सर्वथा आत्मसमर्पण कर देनेमें है। यद्यपि पतिव्रता पत्नी अपने पतिकी सेवा करती है, तथापि वह निवास-स्थान, वस्त्र, भोजन और बाल-बच्चोंका पालन-पोषण, उनके विवाह एवं समाजमें अपनी यश-प्रतिष्ठा आदि इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अधिकारपूर्वक पतिसे आवश्यक सहयोग चाहती है परंतु परकीया माधुर्य-रतिमें केवल अपने इष्टको सुख देनेकी ही भावना रहती है। वहाँ मान-बड़ाई, पालन-पोषण, घर-परिवार आदि किसी भी स्वार्थकी इच्छा अर्थात् बाह्य वस्तुकी कामना नहीं रह जाती।

उपर्युक्त विवेचनसे स्वार्थ-त्यागके कारण परकीया माधुर्य रतिकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। यद्यपि इहलौकिक परकीया माधुर्य-रतिमें किसी अंशमें किंचित् निज-सुखेच्छा भी रहती है किंतु अध्यात्म-जगत्में जहाँ भक्त भगवान्‌का सम्बन्ध होता है, वहाँ भक्तमें सांसारिक वासनाकी गन्ध भी नहीं रहती। उसे केवल अपने प्रेमास्पद (भगवान्) को सुख पहुँचानेकी ही इच्छा रहती है। उसका अपना कोई स्वार्थ तो क्या, मैंपन भी नहीं रह जाता। ऐसे निष्काम भावके फलस्वरूप परकीया माधुर्य रतिको आचार्योंने सर्वोच्च पद प्रदान किया है।

पूर्ववर्णित सब रतियोंमें एक-दूसरेको तीसरा ऊँचा माना गया है, किंतु इस विषयमें एक बड़ा रहस्यात्मक बात यह है कि साधक जिस रतिके माध्यमसे भगवद्भक्तिमें लगता है, उसमें यदि सम्यक् निष्कामभाव हो जाय तो उसी रतिमें सर्वांगीण परिपूर्णता आ जाती है अर्थात् उस रतिमें किसी अन्य रतिसे किंचिदपि कमी नहीं रह जाती। यद्यपि श्रीहनुमानजीकी भावनामें है तो दास्य-रति, पर वह परकीया माधुर्य-रतिसे किसी भी अर्थमें कम नहीं। श्रीहनुमानजी सदा सेवा करनेके लिये आतुर रहते हैं—

'राम काज करिबे को आतुर।' (हनुमानचालीसा)

हनुमानजी क्षुधातुर (अति भूखा) एवं तृषातुर (अति प्यासा) की तरह सेवाके लिये छटपटाते रहते हैं। परकीया भावकी श्रेष्ठता इसीलिये है कि उसमें अपना कुछ भी स्वार्थ नहीं रहता, फिर भी आंशिक रूपसे निजसुख तो रहती ही है, साथ ही सुखकी रसानुभूति भी होती है। इस अर्थमें हनुमानजी परकीया माधुर्य-रतिको पराकाष्ठाका भी अतिक्रमण कर गये हैं। उनमें श्रीरामकी इस प्रकार सेवा करने एवं उन्हें सुख पहुँचानेके अतिरिक्त अपने लिये कुछ भी इच्छा नहीं है।

दूसरी बात यह है कि लौकिक परकीया-भावका है कितना भी उच्चकोटिका क्यों न हो, अर्थात् उसमें अपने निर्वाहकी कामना सर्वथा न रहनेपर भी उसे अपने शरीरादिके निर्वाहकी आवश्यकता रहती ही है। इसमें इस नायिकाको भोजन-वस्त्र एवं अन्य सुख-सुविधाओंकी व्यवस्था अपने प्रेमास्पदसे नहीं, तो अन्यत्र कहीं-न-कहीं करनी ही पड़ती है। परंतु हनुमानजीने बंदरका शरीर इसीलिये धारण किया कि उन्हें किसीसे कभी भी किंचिन्मात्र आवश्यकता ही न पड़े। न उन्हें कपड़ेकी आवश्यकता है, न भोजनकी, न घरकी और न मान-प्रतिष्ठा यश आदिकी। बंदर तो जंगलमें फल-फूल-पत्ते आदि खाकर एवं पेड़ोंपर रहकर जीवन-निर्वाह कर लेता है। लौकिक परकीया भावमें कौटुम्बिक सम्बन्ध तो रहता ही है परंतु श्रीहनुमानजीका तो एकमात्र भगवान्‌से ही सम्बन्ध है। इस प्रकार उनकी दास्य-रति अत्यन्त निराली है। यह माधुर्य-रतिसे भी ऊँची हो जाती है।

माधुर्य-रतिको परकीया अवस्था-भेदसे दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—(१) संयोगात्मकपरक, (२) वियोगात्मभावपरक। सभी शास्त्र-शास्त्रियों तथा दार्शनिकोंने (लोक-व्यवहारमें भी) संयोग-रतिसे वियोग रतिको श्रेष्ठ एवं उत्तम माना है। श्रीहनुमानजीमें दोनों रतियाँ बड़े विलक्षण रूपसे विद्यमान हैं। संयोग-रतिमें पत्नी सन्निकट रहकर भोजनादिके द्वारा पतिकी सेवा करती है और पतिके प्रवासी हो जानेपर अर्थात् वियोगकालमें उनका स्मरण-चिन्तन करती है। श्रीहनुमानजी संयोगकालमें

भगवान् श्रीरामकी सर्वाङ्गीण सेवा करते हैं तथा वियुक्त होनेपर उनके भजन-चिन्तनमें ही डूबे रहते हैं—उनमें नित्य युक्त रहते हैं। इनके चिन्तनमें भी अद्भुत विलक्षणता है। पतिव्रता पत्नी तो केवल स्मरण-चिन्तन करके ही रह जाती है, परंतु ये तो—

'राम चरित सुनिबे को रसिया' (हनुमानचालीसा)

—भगवान्‌के चरित्र और गुणोंके सुनने और कहनेमें इतना रस लेते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं। इन्होंने ऐसा शरीर धारण कर रखा है और भगवान्‌के साथ सम्बन्ध भी ऐसा जोड़ लिया है कि जहाँ-कहीं, जिस समय भी श्रीराम-कथा होती है, वहाँ ये स्वच्छन्द प्रकट हो जाते हैं और कथा-श्रवणमें अनिर्वचनीय माधुर्य-रसकी अनुभूति करते हैं।

हनुमानजीकी वियोग-रुचि भी निराली ही है। लौकिक अथवा पारमार्थिक पुरुष कहीं भी अपने इष्टका वियोग नहीं चाहते—जैसे पतिव्रता पत्नी पतिका और भक्त भगवान्‌का।

परंतु हनुमानजीकी बात इन सबसे विलक्षण ही है। जब भगवान् स्वधामको पधारने लगे, तब हनुमानजीने यही वरदान माँगा कि 'भगवन्! मुझे (यहीं) पृथ्वी-लोकमें ही निवास करनेकी आज्ञा देनेकी कृपा करें। जबतक आपकी अनपायिनी परमपावनी कथा इस पृथ्वीपर होती रहेगी, तबतक मैं यहाँ रहकर परम प्रेमसे इसका श्रवण करता रहूँगा।'—

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशय॥

(वा० रा० ७।४०।१७)

श्रीहनुमानजीकी दास्य-रति गागरमें सागरके सदृश है, जिससे उनके जीवनका प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित है। समुद्रोल्लङ्घन, लङ्का-दहन, संजीवनी-आनयन, भयंकर राक्षसोंका अवमर्दन आदि सेवामूर्ति श्रीहनुमानजीकी सेवाके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सेवामें वे इतने दत्तचित्त और सावधान हैं कि श्रीरामजीके जँभाई लेनेपर चुटकी बजाने-जैसी छोटी-से-छोटी सेवातकमें भी नहीं चूकते। वास्तवमें हनुमानजीका सेवा-कौशल अतुलनीय है। वे श्रीरामजीके मानस-अन्तरालमें उठनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावोंको भी जान लेते हैं और तुरंत तदनुरूप सेवा उपस्थित कर देते हैं। कब क्या करना, कैसे करना, किससे कैसा व्यवहार करना आदि-आदि जीवनकी छोटी-से-छोटी घटनासे लेकर बड़ी-से-बड़ी घटना—युद्धतक भी उनकी दास्य-रतिके प्रभाव एवं चमत्कारसे अछूते नहीं हैं। उनके सम्पूर्ण जीवन-दर्शनमें दास्य-रति विद्युत्‌की तरह काम करती है। प्रेमाभक्तिमें तो वे विप्रलम्भ-परकीया निष्कामभावकी पराकाष्ठा भी अतिक्रमण कर जाते हैं। लौकिक जगत्‌में उन्हें सर्वसमर्थ, अष्टसिद्धि एवं नवनिधिका दाता माना गया है।

भक्तशिरोमणि श्रीहनुमानजीके कार्यकलाप, आचार-विचार एवं व्यवहार आदि न केवल हिंदू-जातिके प्रत्युत मानवमात्रके लिये परम कल्याणकारी सार हैं, जिनके अध्ययनसे प्रत्येक व्यक्ति अपने लौकिक और पारलौकिक जीवनको सफल कर सकता है। इसीलिये मारुत-नन्दन भारतवासियोंके लिये ऐसे लोकप्रिय इष्टदेव हैं कि उनके अनुयायी भक्त एवं उनके मन्दिर प्राय: काश्मीरसे कन्याकुमारी और द्वारकासे जगन्नाथपुरीतक भारतवर्षके प्रति ग्राम और नगरमें विद्यमान हैं। नेपाल, मलेशिया, इंडोनेशिया, जापान, जावा आदि विदेशोंमें भी श्रीहनुमानजी अत्यन्त लोकप्रिय हैं एवं वहाँ उनकी विभिन्न रूपोंमें पूजा प्रचलित है।

इस प्रकार भारतमें ही नहीं, अपितु विदेशोंमें भी हनुमानजीके मन्दिर हैं, उनकी मूर्तियाँ हैं और उनके चरित्र भी दिखाये जाते हैं। श्रीहनुमानजीका व्यक्तित्व परमोज्ज्वल, लोकोपकारी एवं अद्भुत है। उनके आचार-विचार, भाव, गुण, चरित्र एवं जीवनकी एक-एक घटना मानवमात्रके लिये निःश्रेयस और अभ्युदयका द्वार है। उनके जीवनमें अध्यात्म और व्यवहारका मणि-काञ्चन-संयोग है। हनुमानजीका चरित्र कर्म, भक्ति और ज्ञानकी एक ऐसी बहती हिलती त्रिवेणी है, जिसमें यदि कोई अवगाहन कर ले तो उसका कल्याण निश्चित है।

श्रीहनुमानजीका निष्काम-कर्मयोग या दास्य-रति एक ऐसी रहस्यात्मक चाभी है, जो श्रेय और प्रेयके तालेको बड़ी सुगमतासे खोल देती है। वह इतनी परिपूर्ण, लाभप्रद एवं कल्याणकारी है कि आज भी मानव इस साधनामें परिनिष्ठित होकर सीमाविहीन शान्ति, सन्तोष एवं परमोत्कर्षता प्राप्त कर सकता है।

—स्वामी रामसुखदास

श्रीहनुमत्-साधना

(राष्ट्रगुरु श्री१००८ पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज, श्रीपीताम्बरापीठ, दतिया)

ऋषि, महर्षि, संत एवं भक्तोंने ज्ञान प्राप्तिके लिये अनेक साधन बताये हैं। सभी साधनोंका लक्ष्य ब्रह्मकी प्राप्ति और अज्ञानकी निवृत्ति है। भारतवर्षमें सर्वत्र व्याप्त हनुमत् साधना भी उन्हींमेंसे एक है।

श्रीहनुमानजीकी उपासना मुख्यतः तीन प्रकारकी होती है—१ एकमुखी हनुमानकी, २ पञ्चमुखी हनुमानकी और ३ एकादशमुखी हनुमानकी। इनके मन्त्र, स्तोत्र, कवच आदि भिन्न-भिन्न हैं, जिनको योग्य गुरुसे अधिकार प्राप्त करके साधना करनी चाहिये।

साधना-शास्त्रमें जो स्थान परमात्म-तत्त्वका है, वही स्थान गुरु-तत्त्वका है। बहुत-से साधकोंने गुरु-तत्त्वको साधकके लिये परमात्मासे भी अधिक हितकर बताया है। श्रीहनुमानजीको श्रीरामरहस्योपनिषद्‌में गुरुरूपमें स्वीकार किया गया है। सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार एवं शाण्डिल्य, मुद्गल आदि महर्षियोंने श्रीहनुमानजीसे श्रीराम-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया है, जिसका अनेक प्रकारसे वर्णन प्राप्त होता है तथा श्रीराम-मन्त्रके अनेक प्रकार इस उपनिषद्‌में बताये गये हैं। श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्‌में माण्डूक्य उपनिषद्‌के सभी मन्त्रोंका तात्पर्य शिवत्वमें बताया गया है और वही श्रीराम-तत्त्व है। दोनोंका अभेद है। इस उपनिषद्‌में श्रीराम-तत्त्वकी साधना अद्वैत सिद्धान्तके अनुसार मानी गयी है। जिस प्रकार अद्वैत वेदान्तमें 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्यका अर्थ किया गया है, उसी प्रकार इस उपनिषद्‌में 'रामोऽहम्' महावाक्यका अर्थ किया गया है, जो इस प्रकार है—

> सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
> न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः॥

वर्तमान समयमें प्रचलित श्रीरामानुजके विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय और श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायमें श्रीरामको परमात्मरूपमें मान्य किया गया है। उपर्युक्त मतमें भेदसहित अद्वैत है और जीव परमात्माका अंशस्वरूप माना गया है। श्रीहनुमानजीके अवतारस्वरूप मध्वाचार्यने द्वैतवादका प्रतिपादन किया है।

कबीर, दादू, नानक आदि संतोंने भी श्रीराम-नामके द्वारा निराकार निर्गुण अद्वैत उपासना की है, जिसका समन्वय भी उक्त प्रकारसे ही है। इस प्रकार यह नाम-साधनाकी व्यापकता है और इसके उपदेष्टा गुरु-तत्त्वके रूपमें श्रीहनुमानजी ही हैं, इसलिये अद्वैत मतका बोधक ही हनुमत्-साधना है। श्रीहनुमानजीकी साधनासे लौकिक सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं, जिस (साधना)का जगत्‌के उपकारके लिये महात्मालोग उपयोग करते हैं। कहा भी गया है—

अष्टसिद्धि नवनिधिके दाता। अस बर दीन जानकी माता॥

इसीका अनुसरण करके महात्मा तुलसीदासने रामचरितमानसकी रचना की। समर्थ गुरु श्रीरामदासजीने भी महाराज शिवाजीको हनुमत्-शक्ति प्रदान कर हिंदू धर्मकी रक्षा की थी। वैष्णवधर्ममें जो चतुर्व्यूह-तत्त्व माना गया है, उसीके रूपान्तर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हैं। ऐसे श्रीहनुमत्-स्वरूपका इनके साथ जो अभिन्न योग है, इसका विस्तारसे निरूपण महर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें किया है।

यों संक्षिप्त रूपमें श्रीहनुमत्-साधनाका स्वरूप लिखा गया है। परब्रह्मस्वरूप श्रीराम-तत्त्वका बोध श्रीहनुमानजी द्वारा ही होता है। इसलिये श्रीराम-भक्तोंको भी श्रीहनुमत्-साधना करना अत्यन्त आवश्यक है।*

श्रीरामद्वारा हनुमानजीकी प्रशंसा

> साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुःख हरि और नाम परिहरि नरहरि ठाए हो।
> बानर न होहु तुम मेरे बानरस्व सम बलीमुख सूर बली मुख निज गाए हो॥
> साखा मृग नाहीं बुद्धिबलन के साखामृग कैधौं बेद साखामृग केसव को भाए हो।
> साधु हनुमन्त बलवन्त जसवन्त तुम गए एक काज पै अनेक करि आए हो॥
>
> —महाकवि केशवदास

* श्रीहनुमत्-साधनाका विवरण इसी अङ्कके ४८१वें पृष्ठपर देखना चाहिये।

वेदोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—मानस-तत्त्वान्वेषी प० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व महाविद्वान् श्रीनीलकण्ठ सूरिने वेदोंके कुछ मन्त्रोंका संकलन 'मन्त्र-रामायण'के रूपमें करके उनपर बहुत सुन्दर भाष्य किया है। उस मन्त्र-रामायणमें दो स्थलोंपर संक्षिप्त रूपसे हनुमच्चरित्रका वर्णन है। एक तो लङ्काका चरित्र, जिसका विस्तृत वर्णन दीपवृहणरूप वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डमें है और दूसरा अयोध्यामें देवताओं एवं ऋषियों-मुनियोंके साथ श्रीरामजीने हनुमानजीकी प्रशंसा की है। उन्हीं वेदवर्णित श्रीहनुमच्चरित्रका संक्षिप्त किंतु सरल हिंदी-अनुवाद यहाँ दिया जाता है।

मूल—

देवास आयन् परशूँ रबिभ्रन्
वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्।
निसुद्रुवं दधतो वक्षणासु
यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥ १ ॥
(ऋग्वेद मण्डल० १०, सूक्त २८, मन्त्र ८)

सदर्भ—श्रीसीताजीका सदेश श्रीरामजीके लिये लेकर हनुमानजी रावणके परमप्रिय अशोकवनको उजाड़ने लगे और रखवालोंके रोकनेपर उन्हें मार-पीटकर इतना व्याकुल कर दिया कि जो बचे उनकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी, जिससे उन्होंने समझा कि देवतालोग आकर उपद्रव कर रहे हैं। अत बचे हुए घायल रक्षकगण आकर रावणसे कहने लगे—

अन्वयार्थ—देवास , बहुतसे देवतालोग, आयन्—अशोकवनमें आ गये हैं और वे परशून् अबिभ्रन्—फलोंके परशु आदिको छानकर धारण कर लिये हैं तथा विड्भि वना वृश्चन्त—हमलोगोंके धनादि परिवारसहित अशोकवनको एकदम उजाड़ते हुए अभि आयन्—इधर-उधर चारों ओर खूब घूम रहे हैं। निसुद्रुव वक्षणासु दधत—अत्यन्त गतिमान अग्नि जैसे वनोंका जलाते हुए अनुवश कृपीटम् दहन्ति—... उन्हें पड़े हुए काष्ठादिका जला डालते हैं। तद् ... इसी तरह ये देवगण एक एक पेड़-पूल आदिको नष्ट करते हैं, तब आसपासके पेड़ भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

ऐसा सुनकर रावण विचारने लगा—

मूल—

शश क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात्।
बृहन्तं चिद्दहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवान ॥ २ ॥
(ऋ० १० । २८ । ९)

अन्वयार्थ—शश प्रत्यञ्च क्षुरम्—तुच्छ पशु शशक जैसे तीक्ष्ण धारवाला असिको जगार—निगलनेकी चेष्टा करके अपना ही अन्त करता है अथवा जैसे कोई आरात् लोगेन अद्रिं व्यभेदम्—दूरसे मिट्टीका ढेला मारकर पर्वतको चूर्ण करना चाहता हो, वही दशा मेरी है (इससे ज्ञात होता है कि अपने मरणके लिये ही रावणने सीताजीका हरण किया था।) वयद् वत्स —जैसे तुरतका जन्मा बछड़ा कुछ दिनोंमें ही बढ़कर वृषभ शूशुवान बहुत—बड़ा परिश्रमी बैल बन जाता है, वैसे ही बृहन्तं चित्—अत्यन्त महान् एवं निश्चिन्त चैतन्य-सत्त्व आत्माका परित्याग करके दहते रन्धयानि—तुच्छ शारीरिक सुखके लिये मैं लोगोंको पीड़ा देता हूँ। पीड़ा देते-देते मेरा पाप बहुत बढ़ गया है ॥ २ ॥

मूल—

सुपर्ण इत्था नखमासिषायावरुद्ध परिपद न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥ ३ ॥
(ऋ० १० । २८ । १०)

सदर्भ—यद्यपि रावणको ऐसा उपर्युक्त ज्ञानोदय हुआ था, तथापि तमःप्रधान होनेके कारण क्षणभरमें ही उसका वह ज्ञान तिरोहित—लुप्त हो गया। इससे—

अन्वयार्थ—सुपर्ण—आकाशमें पक्षीके समान विचरनेवाले मायावी रावणने इत्था नखम्—इस प्रकार अनेक यत्न करके न छिद्यो-छेदनभेदनादिना इति नखम्—छेदन भेदन आदिसे कभी भी दुःखी न होनेवाले श्रीहनुमानजीको आसिषाय—बँधवानेके लिये ब्रह्मपाशका प्रयोग कराया, परतु श्रीहनुमानजी अवरुद्ध सिंह न इव) ब्रह्मपाशमें फिर होनेपर भी सिंहके समान—वेदोंमें ... ... अधिकतर ... यहाँ प्रयुक्त हुआ है। परिपदम्—चारों ओर

श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें कुछ प्रश्नोत्तर

(शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

अत्यन्त बलशाली, परम पराक्रमी, जितेन्द्रिय, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य तथा भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त श्रीहनुमानजी का जीवन भारतीय जनताके लिये सदासे प्रेरणादायक रहा है। वे वीरताकी साक्षात् प्रतिमा एवं शक्ति तथा बल-पराक्रमकी जीवित मूर्ति हैं। देश-देशान्तर-विजयिनी भारतीय मल्ल-विद्याके वे ही परमाराध्य इष्ट हैं। आप कभी अखाड़ोंमें जायँ तो वहाँ आपको किसी दीवालके आलेमें या छोटे-मोटे मन्दिरमें प्रतिष्ठित महावीरकी प्रतिमा अवश्य मिलेगी। उनके चरणोंका स्पर्श और नाम-स्मरण करके ही पहलवान अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं। जब भारत-भूपर यवनोंका शासन जोरोंपर था, उस समय प्रातःस्मरणीय श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने हनुमानचालीसा, हनुमानबाहुक, संकटमोचनादि रचनाओं द्वारा निष्प्राण हिंदू-जातिकी नसोंमें प्राण फूँकते हुए स्वयं भी काशीपुरीमें 'संकटमोचन' हनुमानकी स्थापना की और अपने भक्तोंद्वारा भी स्थान-स्थानपर हनुमत्पूजाका प्रचार कराया। औरंगजेबके शासन-कालमें उन्हींके आदर्शपर छत्रपति शिवाजीने दस-दस कोसकी दूरीपर हनुमान मन्दिरकी स्थापना कर उन्हीं मारुतनन्दनके नेतृत्वमें वहाँ अखाड़े और दुर्गोंकी स्थापना की थी। ये ही अखाड़े आगे चलकर हिंदू धर्म-संरक्षणके गढ़ बने और इन्हींकी सहायतासे भारतसे यवन-साम्राज्यका मूलोच्छेद किया जा सका। आज भी आप दक्षिणमें जाइये तो ग्राम-ग्राममें आपको ग्राम-रक्षकके रूपमें श्रीहनुमानजीकी मूर्तियाँ स्थापित हुई मिलेंगी, जिन्हें 'महा मारुति' कहा जाता है। आज भी वहाँ हनुमत्पूजाका बड़ा प्रचार है।

वीरतामें हनुमानजीकी कोई तुलना नहीं। यही कारण है कि भारत-सरकार भी सर्वोत्कृष्ट वीरतापूर्ण कार्यके लिये 'महावीर-चक्र' नामक स्वर्ण-पदक ही प्रदान करती है। महाभारत-रणाङ्गणके सर्वोत्कृष्ट योद्धा अर्जुनने अतुल पराक्रमके कारण ही इन्हें अपने रथकी ध्वजापर स्थान दिया था।

हनुमानजी केवल वीर-वीर ही नहीं हैं, अपितु भगवान् श्रीरामके चरणोंका स्पर्श करता हुआ उनका दिव्य रूप उनकी उत्कट स्वामि-भक्ति, अनन्य निष्ठा और विनयका जीता-जागता चित्र है। उन-जैसी अनन्य संसारमें विरले जनोंको ही प्राप्त होती है। यदि कोई पूर्ण श्रद्धा और विश्वासपूर्वक इनका आश्रय ग्रहण ले तो फिर तुलसीदासजीकी भाँति उसे श्रीरामदर्शन देर नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजीने—

जो यह पढ़े हनुमान चलीसा। होय सिद्धि साखी [illegible]

—जैसी प्रबल उक्ति अपने [illegible] कही है, केवल तुक मिलानेमात्रके लिये नहीं।

(१) नर या वानर ?

हम इन दोनों ही पक्षोंसे पूछना चाहते हैं कि श्रीहनुमानजीके अस्तित्वमें आपके पास क्या प्रमाण है? कहना न होगा कि दोनोंका यही उत्तर हो सकता है—'रामायण'। किंतु जब 'रामायण'के आधारपर ही आप हनुमानजीका होना सिद्ध मानते हैं, तब आप दोनों ही 'अर्धकुक्कुटी' न्यायसे रामायणकी आधी बातको क्यों मानते हैं और आधीको क्यों छोड़ते हैं? पशुभाव माननेवाले पक्षको श्रीवाल्मीकीय रामायणके उन प्रमाणोंको भी तो समझनेका प्रयत्न करना चाहिये, जिनसे हनुमानजीका व्याकरण-वैदुष्य, शुद्ध भाषण-कला-कुशलत्व, बुद्धिमत्ता-वरिष्ठत्व एवं ज्ञानिनामग्रगण्यत्व सिद्ध होता है। जैसे—जब भगवान् श्रीरामको सर्वप्रथम हनुमानजी मिले तो उनकी बातचीतसे प्रभावित होकर भगवान्‌ने एकान्तमें लक्ष्मणसे कहा—

> नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
> बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥
>
> (वा० रा० ४।३।२९)

अर्थात् हे लक्ष्मण! मालूम पड़ता है कि इस व्यक्ति (हनुमान)ने समस्त व्याकरणशास्त्रका पूर्णरूपसे स्वाध्याय किया है, तभी तो इस लंबी-चौड़ी बातचीतके दौरानमें इसने एक भी अपशब्द नहीं कहा।

क्या रामायणके इस सुस्पष्ट वचनकी विद्यमानतामें रामायणमें आस्था रखनेवाला कोई हनुमद्भक्त उन्हें 'कोरे

की' करके मकानोंकी ईंटें उजाड़नेवाले और कपड़ा-लत्ता ठाकर भागनेवाले पशुप्राय लम्बमुँहे बदरोंका किंवा कलमुँहे गूरोंका सजातीय माननेको उद्यत हो सकता है ? फिर आप रामायणके लेखके सर्वथा विपरीत उन्हें पशु माननेका आग्रह क्यों करते हैं ?

इसी प्रकार कथित बुद्धिवादी-पक्षसे भी प्रष्टव्य है कि यदि आप रामायणको कोरा कल्पित उपन्यास ही मानते हैं तो फिर हनुमानजीको रामायणके लेखसे विरुद्ध कुछ-का-कुछ बना डालनेमें अपना बुद्धि-वैभव क्यों खर्च करते हैं ? कल्पित उपन्यासको बुद्धिग्राह्य बनानेसे क्या लाभ होगा ? उसे लकीरके फकीर आस्तिकोंके लिये ज्यों-का-त्यों ही रहने दीजिये और यदि हनुमानजीके अस्तित्वको एक ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार करते हैं तो फिर उनके होनेमें जो रामायण प्रमाण है, वही रामायण उनके स्वरूप और चरित्रके चित्रणमें भी एकमात्र साक्षी है, ऐसी दशामें आप मिथ्या कल्पना क्यों करते हैं ? वाल्मीकिजीने जहाँ उन्हें विशिष्ट पण्डित, राजनीति-धुरंधर और वीरशिरोमणि सिद्ध किया है, वहाँ उनको लोमश और पुच्छधारी भी शतश: प्रमाणोंमें व्यक्त किया है। इसलिये ईमानदारीका तकाजा है कि उक्त दोनों वर्णनोंका समन्वय करके हनुमानजीका स्वरूप स्थिर कीजिये, यही न्याय होगा।

(२) गौरव

हनुमज्जयन्तीके दिन हनुमानजीके पूजन, नाम-संकीर्तन आदिके अतिरिक्त शारीरिक शक्ति प्रदर्शनके खेलोंका आयोजन होना चाहिये। नगरके बालकों एवं युवकोंकी कुश्तियाँ, दौड़, लाठी, तलवार, गदा आदि खेलोंका सामूहिक आयोजन हो और भारतीय इतिहासके इस अद्वितीय वीरकी उज्जीवनी जीवन-गाथा जनसाधारणको समझायी जानी चाहिये। राष्ट्रकी अकर्मण्यता और भीरुताको मिटाकर जनताको शक्तिशाली बनानेके लिये देशमें हनुमज्जयन्ती-जैसे उत्सवोंकी परम आवश्यकता है। उनके-जैसा सदाचार, पराक्रम, अनुशासन और ब्रह्मचर्य किसी भी जाति एवं राष्ट्रके लिये स्थायी गौरवका कारण हो सकता है।

(३) क्या 'बाल समय रवि भक्षि लियो'—ठीक है ?

हनुमानजीके सम्बन्धमें प्राय यह प्रश्न भी किया जाता है कि क्या गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा रचित 'संकट मोचन'-स्तोत्रके अनुसार श्रीहनुमानजी सूर्यको निगल गये थे ? पृथ्वीसे लाखों गुना बड़ा सूर्य किसी प्राणीके मुखमें समा गया था—यह गप्प ही हो सकती है।

उपर्युक्त प्रश्नकर्ता यह बात भूल जाता है कि 'रामायण' के शब्दोंमें श्रीहनुमानजी उन प्रलयंकर शंकरके अवतार थे, जिनके भ्रूभङ्गमात्रसे यह सारा ब्रह्माण्ड पलक-झपकमें भस्मसात् हो जाता है।

जब 'योग-दर्शन'के लेखानुसार मनुष्यकोटिका योगी भी लोकान्तर-गमन, सूर्य-मण्डल-प्रवेश, परकाय-प्रवेश और अपनी देहको यथेच्छ छोटा-बड़ा तथा हल्का-भारी बनानेमें समर्थ हो सकता है तथा सामान्य देव-जाति तो जन्मसे ही उपर्युक्त समस्त सिद्धियोंसे सम्पन्न होती है, फिर प्रलयके अधिष्ठाता शंकरभगवान्‌की शक्तिकी इयत्ताका माप-तौल लगाना अपनी अज्ञता प्रकट करना ही तो है ! इसलिये रामायणके लेखानुसार उनको रुद्रावतार स्वीकार कर लेनेपर यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता।

जैसे श्रीकृष्णावतारमें भगवान्‌ने इन्द्रादि सभी देवताओंका मिथ्या स्वातन्त्र्याभिमान नष्ट करनेके लिये गोवर्धन पूजनादिकी लीलाएँ की थीं, ठीक इसी प्रकार रुद्रावतार श्रीहनुमानजी महाराजने राहुको बलात् हटाकर स्वयं सूर्यके ग्रसनेकी लीला की, इससे सूर्य और राहु दोनोंको ही यह विदित हो गया कि हम सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नहीं हैं, किंतु हमपर भी श्रीमन्नारायणभगवान्‌का अंकुश है। वही एकमात्र 'कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्' समर्थ प्रभु हैं। अन्य सब उनके दास हैं।

इसी काण्डके समय इन्द्रका वज्र-प्रहार और श्रीहनुमानजीके हनुका विकृत होना, पश्चात् वायुके प्रकोपसे समस्त देवगणके प्राणोंका निरोध हो जानेपर सभीका नतमस्तक होना आदि रामायणमें वर्णित है। इस तरह इस एक ही लीलामें रुद्रावतार श्रीहनुमानजीका सर्वदेवातिशायित्व व्यक्त हो जाता है।

पुराणोंमें श्रीमारुति

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम्० ए०, डी० लिट्०, साहित्याचार्य)

पवननन्दन हनुमानजीका चरित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे इतना अनुस्यूत है कि श्रीराम-चर्चाके प्रसङ्गमें मारुति-चर्चा अनिवार्य है। हनुमानजीके चरितका विस्तार तो वाल्मीकीय रामायण तथा तत्सम्बद्ध इतर रामायणोंमें उपलब्ध होता ही है, परंतु पुराण-साहित्य भी उनके चरितका कुछ ऐसा उल्लेख करता है, जो अन्यत्र अप्राप्य ही है। समग्र पुराणोंके विपुल साहित्यके अन्वेषण और अनुशीलनके बिना हनुमानजीके पौराणिक आख्यानका यथार्थ परिचय नहीं मिल सकता। इस छोटे-से लेखमें एक-दो पुराणोंके ही प्रसङ्ग उपस्थित किये जाते हैं।

स्कन्दपुराणका पञ्चम खण्ड 'अवन्तीखण्ड' के नामसे प्रख्यात है। इसके ७९ वें अध्यायमें हनुमानजीके जन्म और पराक्रमकी कथा वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें वर्णित कथाके अनुरूप ही विस्तारसे दी गयी है। यहाँपर भी ऋषियोंके द्वारा प्रदत्त उस शापका उल्लेख है, जिसके कारण हनुमानजी अपने अतुल पराक्रमको भूल जाया करते थे। यदि ऐसा नहीं होता तो क्या वे वालीके अपराधोंको देखते हुए भी उसे मार नहीं डालते। मुनियोंने श्रीरामजीसे इस प्रसङ्गमें कहा था—

> न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतावपि ॥
> अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
> न ज्ञाता हि बलं येन बलिना वालिमर्दने ॥
> (अ० ७९ श्लोक २१ २२)

हनुमानजीके द्वारा अनेक तीर्थोंकी स्थापना और अनेक शिवलिङ्गोंकी प्रतिष्ठाका भी विवरण यहाँ उपलब्ध है, जो सर्वथा नूतन प्रतीत होता है। इस खण्डके ८१ वें अध्यायमें उज्जयिनीमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा 'हनुमत्केश्वर-लिङ्ग' की स्थापनाका प्रसङ्ग है। इस [illegible] के विषयमें कहा गया है कि विभीषणके अभिषेकके अनन्तर हनुमानजी लङ्का गये थे और वहाँसे वे कुबेरद्वारा प्रशस्त और विभीषणद्वारा पूजित [illegible] लिङ्गोंमेंसे एक लिङ्ग अपने साथ लाये थे। इसीकी स्थापना उज्जयिनीमें श्रीरामने की तथा हनुमानजीके नामपर इसे 'हनुमत्केश्वर' नामकी प्राप्ति हुई। हनुमानजीने स्वयं अपने हाथों [illegible] परिमाणनाथ नामक [illegible] तटपर 'हनुमत्केश्वर' लिङ्गकी स्थापना की थी (अ० ८३)। इतना ही नहीं, उन्होंने नर्मदाके ही तीरपर [illegible] नामक तीसरी भी प्रतिष्ठा की थी, जहाँ हम श्रीराम और लक्ष्मणको [illegible] लौटकर दो शिव-लिङ्गोंकी स्थापना करते हुए दे[illegible] (अ० ८४)।

स्कन्दपुराणका तृतीय खण्ड 'ब्रह्मखण्ड' के नामसे [illegible] है। यहाँ 'रामेश्वर लिङ्ग' की स्थापनाके प्रसङ्गमें [illegible] विपुल पराक्रमकी अपूर्व परिणति हमें प्राप्त होती है। [illegible] गया है कि ब्रह्महत्याके मार्जनके लिये श्रीरामने जब रामेश्वर [illegible] प्रतिष्ठाका विचार किया, तब उन्होंने हनुमानजीको शिव-लिङ्ग लानेके लिये भेजा। उन्हें उधर आनेमें [illegible] हुआ और इधर उपयुक्त मुहूर्त आ पहुँचा, तब [illegible] श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके द्वारा निर्मित सैकतलिङ्गकी [illegible] कर दी। कैलासमें शिवजीद्वारा प्रदत्त लिङ्गके [illegible] यहाँकी घटनासे नितान्त दुःखित हुए और शिवजीकी गौरव-रक्षा [illegible] लिये उन्होंने इस कैलासीय लिङ्गकी प्रतिष्ठाको ही उपयु[illegible] समझा। भगवान् शङ्करके इस अपमानसे दुःखित होकर [illegible] 'सैकतलिङ्ग' के उखाड़नेमें लग गये, परंतु यह उनसे [illegible] हुआ। उलटे हनुमानजी गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। [illegible] उनके महनीय गुणोंके कीर्तनसे उनकी निद्रा भङ्ग हुई। [illegible] भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे उन्होंने (रामनाथ-रामेश्वरके उत्तरमें) उस विशिष्ट लिङ्गकी स्थापना की [illegible] उसीके नामसे 'हनुमल्लिङ्ग' कहा जाता है—

> उत्तरे रामनाथस्य लिङ्गं स्वेनाहृतं पुरा।
> आज्ञया रामचन्द्रस्य स्थापयामास वायुजः ॥
> (ब्रह्मखण्ड ४६। ७

इसी संदर्भमें श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीको विशद ज्ञान-उपदेश दिया जिसमें मानव-जीवनकी असारताका [illegible] प्रभावशाली, भावमय तथा आदर्श स्वरूप निर्दिष्ट कि[illegible] गया है। यह वचन वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्ड (सर्ग १०५) के श्रीरामद्वारा भरतके समझानेवाले प्रवचन[illegible] नहीं, प्रत्युत शब्दत भी साम्य रखता है। इस मार्मिक प्रसङ्गके दो-तीन श्लोकोंका उद्धरण यहाँ अप्रासंगिक न होगा। [illegible] यह आदर्श तथा सारपूर्ण शब्दोंमें प्रभावी उदाहरणोंसे जीवनकी निःसारता चित्रित की गयी है—

> अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
> यात्येव यमुना पूर्णा समुद्रमुदकाकुलम् ॥

अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशव ॥

❀ ❀ ❀

यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः ।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः ।
समापन्नः कथं शोचेद् यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥

(वही १९।२०, २०।३०)

इसी ब्रह्मखण्डके १५ वें अध्यायमें दक्षिण समुद्रके मध्यमें गन्धमादन पर्वतपर 'हनुमत्कुण्ड' नामक एक महनीय तीर्थका उल्लेख है, जहाँ 'धर्मसख' नामक राजाने पुत्रीय इष्टिके सम्पादनसे अपनी सौ पत्नियोंसे सौ पुत्रोंको प्राप्त किया था और अन्तमें तप करते हुए स्वर्गलोककी प्राप्ति की थी—

सर्वलोकोपकाराय हनुमान् मारुतात्मजः ।
सर्वतीर्थोत्तमं चक्रे स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥

(१५।२)

हनुमानजी कहीं शङ्करजीके अंशरूपमें और कहीं साक्षात् शङ्करजीके रूपमें वर्णित किये गये हैं। इसके प्रमाणस्वरूप शिवपुराणकी 'शतरुद्रसंहिता'के २०वें अध्यायका अनुशीलन करना चाहिये। वहाँ हनुमानजीकी जन्म-कथाका विशिष्ट उल्लेख है। श्रीरामकार्यकी सिद्धिके लिये शिवजीने स्वयं हनुमानका रूप धारण किया था। दानवोंको मोहमें डालनेके लिये विष्णुने जब मोहिनी रूप धारण किया, तब उस रूपके अलौकिक असामान्य सौन्दर्यपर शिवजी विक्षुब्ध हो गये। उस अन्तःक्षोभसे स्खलित शिववीर्यको सप्तर्षियोंने कानोंके मार्गसे गौतमकी पुत्री अञ्जनाके गर्भमें संक्रान्त कर दिया और इस गर्भसे हनुमानजीका जन्म हुआ। इस प्रकार हनुमानजी शिवजीके वीर्योत्पन्न पुत्र हैं। हनुमानजीके 'शंकरसुवन' होनेकी प्रसिद्धि केवल भारतवर्षतक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत यह बृहत्तर भारतके 'मलय एशिया' देशमें भी फैली है। इसका पूर्ण विवरण वहाँके प्रचलित रामायणमें उपलब्ध होता है। सूर्यको फल मानकर खाना, सूर्यसे सब विद्याएँ सीखना और सूर्यके आदेशपर सुग्रीवकी सेवामें उपस्थित होना—ये समग्र घटनाएँ 'शतरुद्रसंहिता' के, २०वें अध्यायमें विस्तारसे वर्णित हैं।

'बृहद्धर्मपुराण' में वर्णित रामायण-कथा देवी-तत्त्वके द्वारा पूर्णतया प्रभावित हुआ है। इसके १८वें अध्यायमें वर्णन मिलता है कि शिव-पार्वती रावणकी रक्षाके लिये लङ्कामें निवास करते थे। उनके पास देवगण रावणके अत्याचारकी कथा सुनानेके लिये गये। तब सीताके अपमानसे क्षुब्ध होकर पार्वतीने लङ्का छोड़नेकी बात कही। श्रीराम-काजकी सिद्धिके लिये शिवजीने हनुमान बनना स्वीकार किया एवं ब्रह्माने जाम्बवान् तथा धर्मने विभीषणका रूप धारण किया। इस पुराणके २० वें अध्यायमें हनुमानजीके शिवरूप होनेका प्रमाण प्रस्तुत किया गया है। अशोक-वाटिकामें जब हनुमानजीने चण्डिका-मन्दिरको देखा, तब अपनेको शिवजीका रूप बतलाकर देवीसे लङ्का छोड़नेके लिये आग्रह किया। हनुमानजी (शिव) ने अपने विश्वरूपका दर्शन कराया, जिसमें देवीने रावणकी सेनाको संकटमें और श्रीरामकी सेनाको सफलरूपमें देखा। इस प्रकार पौराणिक साक्ष्यपर हनुमानजी शिवजीके साक्षात् अवतार सिद्ध होते हैं। यह 'बृहद्धर्मपुराण' उपपुराणोंके अन्तर्गत माना जाता है। (द्रष्टव्य कलकत्ताके बिब्लिओथिका इंडिकामें प्रकाशित १८९७का संस्करण) यह अनेक तथ्योंके लिये 'महाभागवत'का पूर्णतया अनुसरण करता है (गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई १९१३का संस्करण)। ये दोनों ही ग्रन्थ रामायणके ऊपर देवीके प्रभावके द्योतक हैं।

पुराणोंमें हनुमानजीके विशाल पराक्रमका विशिष्ट विवरण उपलब्ध होता है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'में हनुमानजीने अपने पराक्रमके विषयमें स्वयं गर्जना की है—

मर्कटीडिम्भतुल्यां च लङ्कां पश्यामि सुव्रते ॥
मूत्रतुल्यं समुद्रं च शरावमिति भूतलम् ।
पिपीलिकासङ्घमिव ससैन्यं रावणं तथा ॥

(६२।७५-७६)

'मैं इस विशाल लङ्काको वानरीके बच्चेके समान छोटा समझता हूँ। समुद्रको मूत्रके समान, समग्र पृथ्वीतलको छोटे मृत्पात्र (पुरवा) के सदृश तथा असंख्य सैन्योंसे युक्त रावणको चींटियोंके झुंडके तुल्य मानता हूँ।' हनुमानका यह तथ्य-कथन साहित्यिक सौन्दर्यसे मण्डित है।

'स्कन्दपुराण' का अवन्तीखण्ड कहता है कि हनुमानजीसे बढ़कर जगत्में कोई भी प्राणी नहीं है। किसी भी दृष्टिसे—चाहे पराक्रम, उत्साह, मति और प्रतापको देखें, चाहे सुशीलता, माधुर्य तथा नीतिको परखें, चाहे गाम्भीर्य, चातुर्य,

सुवीर्य और धैर्यपर दृष्टि डालें, हनुमानजीके सदृश इस विशाल ब्रह्माण्डमें कोई प्राणी है ही नहीं। त्रिभुवन महासागर, सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालनेके लिये उद्यत हुए प्रलयंकर अग्नि तथा प्राणियोंका संहार करनेके लिये उठे हुए कालके समान प्रभावशाली इन हनुमानजीके सामने कौन ठहर सकेगा।

> पराक्रमोत्साहमतिप्रतापैः
> सौशील्यमाधुर्यनयादिकैश्च ।
> गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्
> हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥

> ममैव विक्षोभितसागरस्य
> लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य ।
> प्रजां जिहीर्षोरिव चान्तकस्य
> हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥*
> (७१ । ४२ । ४)

भारतीय संस्कृति मारुतनन्दन आञ्जनेय हनुमानजीसे अधिक पराक्रमी व्यक्तिकी कल्पना ही नहीं कर सकती। इसीलिये ही तो बजरंग (वज्राङ्ग) बली हनुमानजीका स्मरण कर भारतीय योद्धा संग्रामके मैदानमें कूदता है और विजयश्रीका आलिङ्गन करता है।

सेवा और आत्मसमर्पणके प्रतीक श्रीहनुमान

(लेखक—आचार्य पं० श्री[illegible]रामप्रसादजी द्विवेदी)

श्रीहनुमान्‌जीका चरित्र सेवा और आत्मसमर्पणका प्रत्यक्ष रूप है। वाल्मीकिरामायणके अनुशीलनसे ज्ञात पड़ता है कि हनुमानजी शास्त्र-मर्मज्ञ और अपूर्व विद्वान् थे। रावणके साथ उनकी वार्ता उनके पाण्डित्य और नीतिशास्त्रके ज्ञानकी परिचायिका है। तुलसीदासजीने उन्हें 'विमल गुण बुद्धि-वारिधि, विधाता' कहा है। इस प्रकार विद्या और बुद्धिके निधान होते हुए भी उन्होंने सर्वात्मना श्रीरामकी सेवामें अपनेको अर्पित कर दिया। उनके अपूर्व शौर्य और अगाध बाहुबलसे बड़े-से-बड़े वीर काँप उठते थे, परंतु यह बल केवल उन दुष्ट व्यक्तियोंके विनाशके लिये प्रयुक्त हुआ, जो अत्याचार और शोषणमें लिप्त थी। वे सदा धर्मपरायण और असहाय प्राणियोंके रक्षक रहे। अतएव ब्रह्मचर्यके वे प्रतीक ही बन गये हैं। इतना बड़ा विद्वान् और बलवान् होकर भी वे सदा विनीत भक्तके रूपमें ही काम करते रहे। अपनी विद्वत्ता और बाहुबलके विषयमें तो वे स्वयं ही अनभिज्ञ बने रहते थे। जाम्बवान्‌जीको उनकी शक्तिकी याद दिलानी पड़ी थी।

भारतीय समाजने हनुमानजीकी पूजा सदा धर्म-रक्षक और असुर-निकन्दनके रूपमें की है। वस्तुतः उनका अवतार ही धर्मरक्षाके लिये हुआ था। जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब साधुओंकी रक्षाके लिये और दुष्टोंका विनाश करनेके लिये भगवान् इस भूतलपर अवतार धारण करते हैं, यही राम-कथा है और इसी कार्यमें पूर्ण सहायक होनेके कारण हनुमानजी सदा पूज्य बने रहे हैं।

वे अखण्ड शक्तिके स्रोत हैं, अशरण-शरण हैं, दीनजनोंके सहाय हैं और दुष्ट लोगोंके काल हैं। तुलसीदासजीने उन्हें 'अघट-घटना-सुघट' और 'सुघट-विघटन-विकट' कहकर उनकी अपरिमेय शक्तिका वर्णन किया है। उनका जीवन समर्पित भक्तका जीवन था। ऐसा कहीं दीखता नहीं कि उनका भी कोई व्यक्तिगत सुख-दुःख था। भगवान्‌का अनन्य भक्त कौन होता है—यह स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीको बताया है—

> सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
> मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥
> (मानस ४ । ३)

संसारमें जो कुछ भी रूप दिखायी दे रहा है, वह भगवान्‌का है और उसकी निरन्तर सेवा भक्तका धर्म है। हनुमानजीके सदृश दूसरा भक्त कोई नहीं है। भगवत्-सेवाका अर्थ है—समस्त विश्वमें व्याप्त भगवान्‌की सेवा करना। इसीलिये साधुजन सदा दूसरोंके दुःखसे दुःखी होते हैं, निःसहायके कष्टसे व्याकुल होते हैं और समस्त चराचरके दुःखसे विचलित होते हैं। भगवान् अखिलात्मा हैं अर्थात् जो कुछ है, सब उन्हींका रूप है—

* ये श्लोक कुछ पाठभेदके साथ वाल्मीकीय रामायण (७ । ३६ । ४४, ४८)में भी आते हैं।

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥
(श्रीमद्भागवत ८ । ७ । ४४)

अर्थात् समस्त जगत्के दुःखसे दुःखी होना अखिलात्मा प्रभुकी परम आराधना है।

हनुमानजी भगवान्के एकनिष्ठ उपासक हैं, इसलिये समस्त जगत्के कष्टको दूर करनेके लिये सदा उद्यत रहते हैं। भारतीय साहित्य और साधनामें ऐसे परोपकारी एकनिष्ठ भगवत्-सेवकका चरित्र दुर्लभ ही है।

जनदेवता श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीकरुणापतिजी त्रिपाठी, उपकुलपति वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी)

हनुमानजीकी पूजा कबसे आरम्भ हुई—यह कहना कठिन है। परंतु इतना निर्भ्रान्तरूपसे कहा जा सकता है कि वाल्मीकि-रामायणमें प्रत्यक्ष और व्यापकरूपसे हनुमानजीका विस्तृत चरिताङ्कन उपलब्ध है। वहाँ जो उनका स्वरूप काव्यायित हुआ है, वह कहाँतक ऐतिहासिक-वास्तविक है और कहाँतक काव्यात्मक एवं काव्यालंकारात्मक है—यह एक भिन्न प्रश्न है। पर श्रीराम-कथापरक काव्योंमें उनका चरित अत्यन्त उदात्त, उज्ज्वल, आदर्श और अनुकरणीय है। उनके अनेक रूप हैं। वे श्रीराम, जानकीजी और लक्ष्मणके ही सेवक नहीं हैं, अपितु भरत-शत्रुघ्नके भी सेवक हैं। वे भक्त हैं और धीर, वीर, बुद्धिमानोंमें अग्रणी तथा रामचतुर हैं। लङ्का-दहनके समान अत्यन्त कठिन कार्यको भी वे अनायास करनेवाले हैं तथा शतयोजनविस्तीर्ण सागरको पार करते हुए असाध्य कर्मको करनेमें समर्थ हैं।

श्रीहनुमानसे सम्बद्ध वाङ्मय

आदिकाव्य वाल्मीकि-रामायणमें हनुमानजीका काव्यात्मक चरित व्यापक-रूपसे अङ्कित हुआ है। उसका आरम्भ किष्किन्धा काण्डसे होता है। सुन्दरकाण्डम उसका अत्यन्त विस्तार है। लङ्काकाण्डमें भी उसका प्रसार है। अन्ततक वह फैला हुआ है। उसके अनन्तर संस्कृतके श्रीरामकाव्यों, नाना रामायणों, पुराणों (जहाँ श्रीरामचरित वर्णित है) एवं नाटकोंमें उसका वर्णन मिलता है। प्राकृत अपभ्रंश काव्यों एवं भारतीय आधुनिक भाषाओंके साहित्यमें भी हनुमानजीका स्वरूप चित्रित हुआ है। इसके अतिरिक्त उपासना-साहित्य, स्तोत्र-साहित्य एवं तान्त्रिक वाङ्मयमें भी हनुमानजीकी पूजा, उपासना तथा तान्त्रिक साधना प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है।*

हनुमानजी केवल श्रीरामोपासकोंके ही देवता नहीं हैं, वे निगमागम पौराणिक और तान्त्रिक देव भी हैं। (जिसमें दक्षिणमार्गीय तन्त्रोपासना और वाममार्गीय तान्त्रिक देवता भी हैं।) साथ-ही-साथ लोकदेवता या जनदेवता भी हैं। जनदेवतासे मेरा तात्पर्य है उन देवताओंसे, जो वैदिक-पौराणिक-तान्त्रिक पूजा-उपासनाके साथ-साथ या उससे बाहर भी लोकमें 'वीर', ग्रामदेवता या लोकपरम्पराके देवतारूपमें पूजित होते हैं। झाड़-फूँक, अभिचार आदिमें उनका पूजन-वन्दन होता है। इनके मन्त्र-तन्त्रको जगाया जाता है और उनके द्वारा असामान्य सिद्धि एवं फलकी प्राप्ति बतायी जाती है। मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे वाराणसीमें मोजूवीर, लहुरावीर, कंकड़हवावीर आदि 'वीर' हैं या उत्तर भारतके बहुत बड़े भागमें मान्यताप्राप्त 'जागते' देवता और सिद्धिकर्ता वीर या अन्य अपदेव हैं, उसी प्रकार हनुमानजीका एक रूप 'वीरोंका वीर', अर्थात् 'महावीर' है। यह एक जनविश्वास है कि उनके नामोच्चारणमात्रको सुनते ही भूत पिशाच, प्रेत, यक्ष आदि

* वाल्मीकिकृत रामायणके अतिरिक्त अग्निरामायण, अध्यात्मरामायण, भुशुण्डिरामायण, आनन्दरामायण, चम्पूरामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, नृसिंहपुराण, ब्रह्माण्डपुराण (हनुमत्सहस्रनाम हनुमत्कवच आदि), लिङ्गपुराण भविष्योत्तर पुराण (हनुमज्जन्मकथा) आदिमें श्रीराम तथा हनुमान-विषयक सामग्रियाँ मिलती हैं। मन्त्र-तन्त्र साहित्यमें भी हनुमदुपासना-साधनाकी बातें मिलती हैं। गरुडतन्त्र मन्त्रमहार्णव, मन्त्र-महोदधि, सुदर्शनसंहिता, अगस्त्यसंहिता आदिमें हनुमानजीकी मन्त्र-तन्त्रोपासनाका वाङ्मय उपलब्ध है। 'बृहज्ज्योतिषार्णव'में तो हनुमदुपासनाध्याय ही है। हनुमदुपनिषद् भी मिलती है। प्राकृत-अपभ्रंश और लोकभाषाओंके श्रीरामकाव्यों एवं ग्रन्थोंमें भी स्तुति, आरती, वन्दना मिलती है। केवल तुलसी-साहित्यमें ही हनुमानजीसे सम्बद्ध प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है।

अनर्थकारक अपदेवता दूर भाग जाते हैं। बचपनमें जब किसी एकान्त निर्जन रात्रिमें भूत-प्रेतादिका डर लगता था, तब हमलोग 'जै हनुमान', 'जै महावीर'का जप करके भयमुक्त हो जाते थे।

जनदेवताकी उपासनामें कोई सामाजिक बन्धन नहीं है। सब लोग सब कालमें सभी जगह लोकदेवताका जप पूजन कर सकते हैं। यह रूप भी लोककी तान्त्रिक या लोकागमिक लोकोपासनाका है। हनुमानजी इस रूपमें भी पूजित-वन्दित और अत्यन्त 'जागता' अर्थात् मान्यताके अनुसार अवश्य फल देनेवाले देवता हैं। यदि कोई शोधार्थी हनुमानजीपर शोध करे तो इस पक्षपर भी पर्याप्त गवेषणाका अवकाश है।

ग्रामदेवताके रूपमें हनुमान-पूजाका एक और रूप भी है, जो अत्यन्त रोचक है। उत्तर भारतके बहुत बड़े भागमें, प्राय गाँव-गाँव एवं नगरके मुहल्ले-मुहल्लेमें हनुमानजीके मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें भक्तलोग प्रेमपूर्वक पूजा-अर्चना करते हैं। स्त्रियाँ अवश्य बहुत-से स्थानोंपर हनुमानजीकी मूर्तियोंका स्पर्श इसलिये नहीं करतीं कि वे बालब्रह्मचारी हैं। घोर जंगलोंमें भी हनुमानजीके मन्दिर मिलते हैं। इन मन्दिरोंका एक बहुत बड़ा सामाजिक महत्त्व भी है। गाँवों और नगरोंके अनेक हनुमान-मन्दिरोंके साथ-साथ व्यायामशालाएँ और अखाड़े हैं, जहाँ आस-पासके युवक और उत्साही जन एकत्र होकर व्यायाम तथा कुश्ती लड़नेका अभ्यास करते हैं।

तुलसीदासजीका योगदान

सम्भवतः वीर-कपिके उपर्युक्त वीर्य-सम्पादनमें रामचरितमानसकार तुलसीदासजीका भी बहुत बड़ा योगदान है। हनुमान-मन्दिर और अखाड़ा—दोनोंका समन्वय कब और कैसे प्रचलित हुआ—यह कहना कठिन है, पर चित्रकूट, अयोध्या और वाराणसीकी किंवदन्तियोंके अनुसार गोस्वामीजीद्वारा स्थापित अनेक हनुमान-मन्दिरोंके साथ व्यायामशालाएँ भी हैं। धीरे-धीरे इनमें कहीं-कहीं ह्रास भी हो गया है। काशीके हनुमानफाटकपर एक हनुमान-मन्दिर है। कहा जाता है कि गोस्वामीजीने काशीमें बारह प्रमुख हनुमान-मन्दिरोंकी स्थापना की थी। उनमें संकटमोचन, हनुमानफाटक और हनुमानघाटके हनुमानजी भी हैं। हनुमानघाटके हनुमानजी बहुत बड़े पहलवान माने जाते हैं। आसीके तुलसीघाटपर स्वामी एक कलाकारकी दूरीपर एक मन्दिर है और इसके साथ कभी बहुत बड़ी व्यायामशाला (अखाड़ा) भी थी। आज भी छोटे पैमानेपर वह है। गोसाईंजीके द्वारा स्थापित अन्य अनेक मन्दिरोंमें भी व्यायामस्थल हैं।

आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्लकी यह कल्पना उचित ही है कि सम्भवतः गोस्वामीजीने लोकरक्षक, आदर्श पुरुष भगवान् मर्यादापुरुषोत्तमरूपको अवतारी मानकर समाजके पुनरुत्थानका कार्य किया। गोस्वामीजीद्वारा कृत यह कार्य शैव और वैष्णवोपासनामें रामानुज-रामानन्द और शंकरकी दर्शनदृष्टिका लोकसुधारक समन्वितरूप है, वहीं दूसरी ओर युगबोध और युगीन-संकटबोधसे प्रेरित जनजीवनमें सामाजिक सांस्कृतिक क्रान्तिका भी प्रयास है। गोस्वामीजीका श्रीराम एवं समाज-चेतनासे अनुप्राणित है। श्रीराम-कथा, श्रीरामचरित एवं श्रीराम भक्तिके माध्यमसे गोस्वामीजीने स्वान्तःसुखकी रचना भी की और लोकहित एवं समाजसेवाका भी कार्य किया।

श्रीरामकी आदर्श पूजा और आदर्श प्रतिष्ठाका गोसाईं जीको पहुँचानेवाले साधनोंमें हनुमानजीका स्थान अनन्य महत्त्वका है। किंवदन्तीके अनुसार श्रीरामरूपका प्रत्यक्ष दर्शन करानेवाले साधनके रूपमें हनुमानजीकी सहायता सर्वोपरि थी। अतः तुलसीदासजीने लोकहितके लिये जनदेवता हनुमानजीकी पूजा, मन्दिर-स्थापना और साथ-साथ व्यायामशालाओंकी स्थापना कराकर संसारमें एक नयी चेतना उत्पन्न की।

जनदेवता

हनुमानजीसे बढ़कर जनदेवता कौन हो सकता है। इनका जीवन श्रीरामके लिये आद्यन्त और ऋषि-मुनियों तथा धर्मपरायण भक्त समाजकी सेवाके निमित्त पूर्णतः समर्पित था। उनके समग्र जीवनमें कहीं भी कोई स्वार्थ नहीं है। वे काम और लोभ, अभिमान और दर्पपर विजय प्राप्त कर चुके थे। लंकादहनके समय रौद्ररसके अवसरपर उनमें क्रोध अवश्य झलक जाता है, पर वह वस्तुतः वीररसका स्थायीभाव उत्साह ही है।

स्वामिसेवा और समाजकल्याणके लिये जैसा आदर्श समर्पित जीवन हनुमानजीका है, वैसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीरामकथा और कालमन्दिरमें उनका स्थान अद्वितीय है। जिस प्रकारसे असम्भव और अकल्पनीय कार्योंका उन्होंने सम्पादन किया, वे अकथनीय हैं। फिर भी वे निरभिमान ही बने रहे, यह उनका सबसे बड़ा गुण है।

वे समझते, जानते और मानते थे कि भगवान्‌की कृपाका ही यह परिणाम था, जो वे असाध्य-सम्पादनसमर्थ हुए। वे उन सबमें अपनी प्रभुता नहीं समझते थे।

यहाँ तथ्य इतना ही है कि हनुमानजीमें अभिमान, स्वार्थ, काम और लोभ—इन सबका लव-लेश भी नहीं है। वे जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, निःस्वार्थ, निष्काम, निर्लोभ और निरभिमान हैं। वे परम भक्त, श्रीरामके अनन्य सेवक, प्रत्युत्पन्नमति और परोपकारकर्ता हैं। वे सभी कष्टों एवं दुःखोंसे छुटकारा दिलानेवाले हैं। वे संकटमोचन, संकटहरण, शत्रुपर विजय एवं रोगोंसे छुटकारा दिलानेवाले और लोगोंमें बल, विद्या, बुद्धि, यश तथा शक्तिको बढ़ानेवाले हैं।

वे अपनी इन्हीं महिमाओं तथा कृपालुता एवं आशुतोषताके कारण जनदेवता बन गये। उनकी तान्त्रिक उपासना जहाँ अत्यन्त कठिन है, वहीं संकटमोचन हनुमानाष्टक और हनुमानचालीसाका पाठ सर्वसिद्धिदायक कहा जाता है। हनुमानजीकी यह लोकप्रचलित उपासना सरल एवं सर्वजनसुलभ है। इसीसे समग्र भारतमें उनकी पूजा उपासनाका इतना प्रचार प्रसार है। निश्चय ही वे हिंदू जनताके जनदेवता हैं। चिरकालतक हिंदू-समाजके कल्याणविधानमें हनुमानजीकी अनुकम्पा हमारा अभ्युदय करती रहेगी।

संकट-हरण श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

कुछ दिन पूर्व वाराणसीमें एक साधु-स्वभावके, सरल तथा निश्छल व्यक्ति रहते थे, जो सिख होते हुए भी पुराने ढगके थे। वे वकालत करते थे। उन महापुरुषका नाम था—सरदार राम नारायणसिंह। वे कितने सिद्ध पुरुष थे, इसका अनुमान इसीसे लग सकता है कि उनके एकमात्र पुत्रको, जो इस समय स्वस्थ, प्रसन्न और पुत्रवान् है—क्षयका भयंकर रोग हो गया। उसके बचनेकी कोई आशा न रही। मैं भी बहुत चिन्तित था। सरदारजीकी परेशानी मुझसे देखी नहीं जाती थी। मैंने अपनी चिन्ता उनसे व्यक्त की। वे मुस्कुराकर बोले, 'मैं इसे स्वस्थ कर लूँगा' इसके लिये मुझे बलि देनी पड़ेगी। मेरी आयु ज्योतिषके अनुसार ६४ वर्षकी है। दो वर्ष वय (उम्र) का बलिदान कर दूँगा।' उन्होंने कौन-सी क्रिया की, यह तो मुझे नहीं मालूम, किंतु मेरे देखते देखते बालक स्वस्थ होने लगा। जब सरदारजीका ६२वाँ वर्ष आया, तब वे मुझसे बोले—'मैं जानेवाला हूँ।' मैंने विश्वास नहीं किया, पर वे सचमुच उसी वर्ष चले गये।

श्रीरामनारायणसिंहका नेपालसे घना सम्बन्ध था। उनके गुरु एक ८५ वर्षीय नेपाली सज्जन थे, जो ८ वर्षोंतक नेपाल सरकारके विदेश-मन्त्री रह चुके थे तथा वाराणसीमें अज्ञात वास कर रहे थे। उनका जीवन अद्भुत चमत्कारोंसे पूर्ण था।

एक दिन हनुमानजीकी चर्चा चली। तन्त्रशास्त्र तथा तान्त्रिक उपासनामें श्रीहनुमानजीका कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह मैंने उन्हींके सत्सङ्गमें सुना। किंतु मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब श्रीरामनारायणसिंहजी बोले—

'श्रीहनुमानजी अभी सदेह हमारे मध्यमें वर्तमान हैं। नेपालके घनघोर जंगलमें साधारण मानवगम्य शरीरसे उनसे कई तपस्वियोंका साक्षात्कार हो चुका है।' और उन्होंने ऐसे साक्षात्कारकी दो घटनाएँ बतलायीं तथा उन सज्जनोंसे परिचय भी करा दिया।

मेरे बहुत आग्रह करनेपर उन सज्जनोंके तथा सिंहजीके साथ नेपाल जानेका कार्यक्रम बना। पर कोई-न-कोई बाधा आती रही और तीसरे वर्ष सिंहजी स्वयं चल बसे।

वाराणसीमें एक सज्जन हैं, जो पहले स्थानीय नगरपालिकामें एक उच्च पदपर थे। उनके गुरु एक सिद्ध पुरुष थे, जिनके आश्चर्यजनक 'तमाशे' हमने स्वयं भी देखे-सुने हैं। आजका पढ़ा लिखा व्यक्ति ऐसी घटनाओंको 'तमाशा' ही कहता है। उनके पास जब कोई अपना बड़ा संकट लेकर आता और वे पसीज जाते, तब इतना ही कहते—'जाओ! माँकी जो इच्छा होगी, वह करेंगी।' और वह काम हो जाता।

एक बार एक स्त्री अपने मरणासन्न बालकको उठाकर उनके सामने रखकर रोने लगी। उसकी कातरता देखकर महात्माजी उद्विग्न हो उठे और कह बैठे—'जाओ, यह ठीक हो जायगा।' वह स्त्री प्रसन्न-वदन अपने स्वस्थ बालकको लेकर चली गयी, पर महात्माजी बहुत व्याकुल होकर तड़पने लगे—छटपटाने लगे। उन्होंने कहा—'सदैव माँकी इच्छासे काम होता था। आज मैं इतना अभिमानी हो गया कि मेरी इच्छासे काम होने लगा। मुझे धिक्कार है। अब मेरा कल्याण इसीमें है कि मैं संसारको छोड़ दूँ।'

श्रीहनुमानजीका साचिव्य

(लेखक—पद्मभूषण पण्डितराज श्रीराजेश्वरजी शास्त्री, द्रविड)

किसी रामायणमें कथा आती है कि हनुमानजी जिस समय लङ्कानगरीमें गये, उस समय रातभर माता सीताजीकी खोज करते हुए प्रातःकाल वे जब विभीषणके मकानके समीपमें जा रहे थे, तब उन्होंने विभीषणको प्रातःस्मरणके प्रसङ्गमें श्रीरामनाम-सङ्कीर्तन करते हुए पाया। फिर उनके घरको भी तुलसी वृक्षोंसे विलसित तथा श्रीरामनामसे अङ्कित देखकर हनुमानजी उसके भीतर गये और विभीषणसे मिले। दोनोंने परस्पर वार्ता हुई और दोनोंने एक-दूसरेको पहचाना। बड़े प्रेमसे विभीषणने उनका सत्कार किया। तदनन्तर कार्यसिद्ध होनेतक वे दोनों दिनमें अपने-अपने कार्यमें लगे रहते और रातमें श्रीराम-चर्चा किया करते थे।

जिस समय विभीषण श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आये, उस समय उनपर विश्वास किया जाय अथवा नहीं, ऐसा विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ। सुग्रीव, अङ्गद, शरभ, जाम्बवान् और मैन्दने अपना-अपना मत व्यक्त किया। राक्षस होनेके कारण उन्हें विभीषणपर विश्वास नहीं हो रहा था। दूसरा पक्ष यह देखता है कि विभीषण धर्मरुचि था। पितामह ब्रह्माजीने रावण और कुम्भकर्णको अभिलषित अमरत्व या इन्द्रत्व नहीं दिया, किंतु विभीषणने केवल धर्मरुचित्वका ही वरदान माँगा, इसी कारण उसे न माँगनेपर भी अमरत्व प्रदान कर दिया। इसलिये विभीषणका धर्मात्मत्व स्थायी था। सुग्रीवसे लेकर मैन्दतक सभी वानरोंको उसका धर्मात्मत्व स्थायी-रूपमें न लक्षित होकर व्यभिचारिभावके ही रूपमें दीख रहा था। किंतु यदि सुग्रीवका कथन निश्चित हो गया होता तो उस समय—

> सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
> अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
> (वा० रा० ६। १८। ३४)

—श्रीरामचन्द्रजीकी यह प्रतिज्ञा असत्य हो जाती और धर्मात्मत्व स्वाभिभावसे सम्पन्न एक विश्वास्य मित्र मारा जाता तथा राजनीतिमें एक अक्षम्य प्रमाद हो गया होता। यह बात अर्थशास्त्रमें 'धर्मार्थयित्नपाशुद्धान् प्रयुञ्जीत'—इस प्रसङ्गमें कही गयी है।

किसीका भी विश्वास प्राप्त करनेके लिये धर्मरुचित्व आवश्यक है—यह बात सुग्रीव आदिकी समझमें नहीं आ रही थी, किंतु हनुमानजीने इसे समझा और उपर्युक्त प्रत्येक मतका खण्डन किया, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी शरणागतिके लिये किसी भी देश अथवा कालकी आवश्यकता नहीं होती। और 'निपुणमपि भर्तारम्'—इस वचनके अनुसार विभीषण विपत्कालमें रावणको स्वयं छोड़कर नहीं आया था, अपितु जब रावणने ही पूर्णरूपसे उसका अपमान किया और उसे निकाल दिया, तभी वह श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया था।

श्रीरामचन्द्रजीने भी हनुमानजीके ही कथनानुसार विभीषणको धर्मरुचि तथा विश्वास्य माना। इसलिये विभीषणके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी मैत्री निभ सकी। यह प्रसङ्ग बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि यदि विभीषण न मिला होता तो लङ्कापर विजय पाना कठिन हो जाता और यदि विभीषण सुग्रीवके वचनके अनुसार मारा गया होता तो क्या स्थिति हुई होती, यह बात लोगोंको समझनी चाहिये।

आज व्यक्तिरूपसे ही उपलब्ध हनुमन्नाटकको देखा जाय तो यह बात अनायास ही ध्यानमें आती है कि हनुमानजीमें वाल्मीकिकी अपेक्षा कवित्वशक्ति भी अधिक थी। उन्होंने अपनी उच्च शक्तिसे विभीषणको पहचाना था। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

> कपिहूँ कुसंग साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
> हानिहुँ अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
> (मानस १। ७। ४)

आज सनातनधर्म हनुमानजीके वचनानुसार कार्योंको देश-कालविपरीत मानेपर भी परम अनुष्ठेय ही है। हनुमानजीने यही दिखलाया है कि ईश्वर-शरणागति युक्त होनेके कारण सर्वदेश-कालमें धर्मकी मान्यता है और यही उचितोदात्त हनुमानजीका वैशिष्ट्य है।

त्रेतायुगमें श्रीहनुमानजीद्वारा अवधी-भाषामें श्रीरामकथाका शुभारम्भ

(लेखक—स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

श्रीराम-कथाके अन्यतम रसिक श्रीहनुमानजी श्रीराम कथा निष्ठाका वर्णन समस्त भारतीय वाङ्मयमें विस्तारसे किया गया है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें श्रीहनुमानजीने भगवान् श्रीरामसे उनके परधामगमनके समय कथा-श्रवणके लिये चिरजीवी होनेका वरदान माँगा था। यह उनकी कथा निष्ठाका परिचायक है—

> यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
> तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशय ॥
> यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन।
> तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नरर्षभ ॥
>
> (वा० रा० ७। ४०। १७-१८)

'वीरवर श्रीरघुनन्दन! जबतक इस पृथ्वीपर श्रीराम कथाका प्रचार रहे, तबतक निस्संदेह मेरे शरीरमें प्राण बसे रहें। नरश्रेष्ठ श्रीराम! आपका जो यह दिव्य चरित्र और कथा है, इसे अप्सराएँ गाकर मुझे सुनाया करें।'

श्रीरघुनन्दन श्रीहनुमानजीका आलिङ्गन करते हुए कहा—'कपिश्रेष्ठ! जबतक मेरी कथा इस लोकमें प्रचलित रहेगी, तबतक तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी तथा तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे ही। जबतक ये लोक बने रहेंगे, तबतक मेरी कथाएँ भी स्थिर रहेंगी।'

दाक्षिणात्य आचार्योंने श्रीहनुमानजीकी इस कथा निष्ठाकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि श्रीरामचन्द्रमें ऐसे अद्भुत गुण थे, जिनसे आकृष्ट होकर हनुमानजी साकेत धामका परित्याग कर आज भी उस कथारसका सेवन कर रहे हैं—

> सोऽयमेव हनुमन् परमां विमुक्तिं
> गुणगणकृष्ट चरितं तव सेवतेऽभी।
>
> (रामस्तव)

श्रीहनुमानजी जहाँ एक ओर असाधारण कथा-रसिक हैं, वहीं असाधारण कथावाचक भी हैं। वास्तवमें श्रीहनुमानजीमें नवधा भक्ति, प्रेमाभक्ति आदि सभी भक्तियोंका पूर्णरूपसे समन्वय है। श्रोताके रूपमें तो श्रीहनुमानजीको भक्तगण अधिक जानते ही हैं, किंतु सुन्दरकाण्डमें जब उन्होंने जगजननी जानकीजीको श्रीराम-कथा सुनायी है, उस समय उनका श्रीरामकथा-गायकरूपमें भी दर्शन होता है। इसी अवसरपर श्रीहनुमानजी अवधी-भाषामें श्रीजनकनन्दिनीको कथा सुनाते हैं।

उस समय श्रीहनुमानजीने विचार किया कि यदि मैं श्रीसीताजीके समक्ष संस्कृत भाषामें वार्तालाप करता हूँ तो रावण जानकर ये मुझसे भयभीत हो जायँगी, अतः मुझे उनके साथ मनुष्यकी भाषामें ही वार्तालाप करना चाहिये।

श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं कि 'मानुषं वाक्यम्'—मनुष्य वाक्यका अर्थ है—कोसलदेशवासी मनुष्यका वचन क्योंकि श्रीजानकीजी इसी भाषासे परिचित हैं—'मानुषं वाक्यस्य मानुषस्य कोसलदेशवर्तिमनुष्यस्य वाक्यमिति विवक्षितम्। तस्य वाक्यस्य देव्या परिचितत्वात्।'

इस वार्तालापको 'रामकीर्तन' कहा गया है—'रामकीर्तनहर्षिता' (५। ३२। १५)। इस प्रकार लोक-भाषा (अवधी-भाषा) में श्रीहनुमानजीने त्रेतायुगमें ही श्रीरामकथाका शुभारम्भ कर दिया था। उसी परम्पराका निर्वाह गोस्वामीजीने भी किया तथा अवधी भाषामें मानसकी रचना की। वैसे तो श्रीहनुमानजीके व्याकरण और शास्त्रोंका ज्ञाता अत्यन्त दुर्लभ है। भगवान् श्रीरामने किष्किन्धाकाण्डमें इनके पाण्डित्यकी महिमाका वर्णन किया है।

उत्तरकाण्डमें भी सूर्यके समीप इनके व्याकरण अध्ययनका वर्णन इनके असाधारण ज्ञानका द्योतक है—(द्रष्टव्य वा० रा० ७। ३६। ४५—४८)।

इस प्रकार ऐसे महान् व्याकरणवेत्ता और विद्वान् होनेपर भी अवधी भाषामें श्रीहनुमानजीने श्रीजनकनन्दिनीको कथा सुनायी—यह वस्तुतः अद्भुत एवं अलौकिक घटना है।

जो लोग मनगढ़न्त कल्पनापर आक्षेप करते हैं, उनको ध्यान रखना चाहिये कि लोक-भाषामें श्रीराम-कथाका शुभारम्भ त्रेतायुगमें ही हो चुका था।

श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें महात्मा गांधीकी निष्ठा

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है सन् १९२७के आरम्भकी।

१९२६के पूरे सालभर गांधीने विश्राम किया साबरमती और वर्धा आश्रममें।

फिर वे निकल पड़े अपने प्रवासपर—देशव्यापी प्रवासपर।

त्रिविध कार्यक्रम—खादी-चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और हिंदू-मुस्लिम-एकता—ही था उनके प्रवासका कारण।

धुआँधार प्रवास चलने लगा।

महाराष्ट्रमें एक दिन उनसे अनुरोध किया गया—व्यायाम-मन्दिरमें मारुतिकी प्रतिष्ठाका।

विद्यार्थी ठहरे गांधीजीको परम प्रिय। देशकी नयी पौध संस्कारवान् बने, चरित्रवान् बने, संयमी बने, स्वस्थ और सबल बने और दीन-दरिद्र देशको ऊपर उठाये—इसके लिये वे कोई बात उठा न रखते। कोई भी ऐसा मौका न चूकते।

* * *

मारुति विग्रहकी स्थापनाके उपरान्त गांधीजी बोले—'बच्चो! तुम जानते हो मारुतिको? मारुतसुत हनुमानजी कौन थे? वे थे वायुके पुत्र।

इन मारुतिकी प्रतिष्ठा हम क्यों करते हैं?

क्या इसीलिये कि वे वीर योद्धा थे?

क्या इसलिये कि उनमें अतुल शरीर-बल था?

उनके-जैसा शरीर-बल हमें भी चाहिये।

पर केवल शरीर-बल हमारा आदर्श नहीं।

शरीर-बल ही हमारा आदर्श होता तो हम रावणकी मूर्तिकी स्थापना न करते?

पर हम रावणके बदले मारुतिकी स्थापना करते हैं। किसलिये?

इसीलिये कि हनुमानजीका शरीर-बल आत्मबलसे सम्पन्न था।

श्रीरामके प्रति हनुमानजीका जो अनन्य प्रेम था, उसीका फल था वह आत्मबल।

इसी आत्मबलकी हम प्रतिष्ठा करते हैं।

आज हमने पाषाणखण्डकी नहीं, भावनाकी प्रतिष्ठा की है।

हम चाहते हैं कि आत्मबलकी इसी भावनाको आदर्श बनाकर हम भी मारुति बनें।

भगवान् हमें मारुतिका-सा शरीर-बल दें।

भगवान् हमें मारुतिका-सा आत्मबल दें।

भगवान् हमें इस आत्मबलकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्य पालनका बल दें।'

* * *

इसी प्रसङ्गकी चर्चा करते हुए गांधीजीने बादमें एक दिन कहा—

हम मारुतिका दर्शन किसलिये करें?

मारुति कौन थे? बंदर थे या क्या थे, मैं नहीं जानता। मैं तो उनकी शक्तिकी, उनकी सेवा भावनाकी पूजा करता हूँ।

मारुति राक्षस नहीं थे। वे इन्द्रजित्की तरह श्रीरामके विरोधी भी नहीं थे। श्रीरामके सेवक थे। ब्रह्मचारी थे। उनमें अपार आत्मबल भरा था। उनमें सेवाकी अपार भावना थी। उसीकी मैं पूजा करता हूँ।

हमें आवश्यकता है इसी आत्मबलकी, इसी सेवा भावनाकी। इसी आत्मबलसे हम भारतमाताकी सेवा करें।

* * *

और एक दिन दरिद्रनारायणकी सेवाके लिये बेचैन गांधी बोले—

मेरे हृदयमें कैसी आग जल रही है, आपको पता है?

हनुमानजीको एक माला मिली थी। उसके दाने तोड़ तोड़कर वे देखने लगे। लोगोंने पूछा—'क्यों करते हो ऐसा?'

बोले—'देखता हूँ, इनमें श्रीराम-नाम है क्या? मुझे ऐसी कोई चीज नहीं चाहिये, जिसमें श्रीराम न हों।'

'सबमें श्रीराम-नाम होता है क्या?'

'मुझमें तो है।'—ऐसा कहते हुए उन्होंने छाती चीरकर दिखा दी। श्रीराम तो वहाँ

उपनिषदोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीबाबूलालजी गुप्त 'श्याम')

श्रीहनुमानजीका वर्णन उपनिषदोंमें भी आया है। यहाँ संक्षिप्तरूपसे कुछ अंश प्रस्तुत किया जा रहा है। रामरहस्योपनिषद्, रामपूर्वतापनीय-उपनिषद् तथा मुक्तिकोपनिषद् आदि अनेक उपनिषदोंमें श्रीहनुमानजीका वर्णन है। जहाँ-जहाँ भगवान् श्रीरामके तत्त्व, रहस्य और महिमाका वर्णन है, वहाँ श्रीहनुमानजीका भी वर्णन आया है। श्रीराम-तत्त्वकी जिज्ञासा और रहस्यके वर्णनमें उनकी प्रधान भूमिका है।

श्रीरामरहस्योपनिषद्में वर्णन मिलता है कि जब सनकादि योगीन्द्र तथा अन्य ऋषि और प्रह्लाद आदि भगवान् विष्णुके भक्तोंने श्रीहनुमानजीसे पूछा कि अठारहों पुराणों, स्मृतियों, चारों वेदों तथा छहों शास्त्रों और अध्यात्मविद्याके ग्रन्थोंमें किस तत्त्वका उपदेश हुआ है तो श्रीहनुमानजीने कहा—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥
(१।६)

अर्थात् श्रीराम ही ब्रह्म हैं, श्रीराम ही परम तपस्वरूप हैं, श्रीराम ही परमतत्त्व हैं और श्रीराम ही तारक ब्रह्म हैं।

इसके पश्चात् ऋषियोंने श्रीरामके अङ्गोंके विषयमें पूछा तथा अन्य प्रश्न भी किये, जिनका उत्तर देते हुए श्रीहनुमानजीने श्रीराम-रहस्यका उद्घाटन किया तथा प्रणव (ॐ) को भी श्रीरामका अङ्ग बतलाया और श्रीरामोपासनाका भी वर्णन किया।

श्रीरामपूर्वोत्तरतापनीय-उपनिषद्में श्रीराम-नामका अर्थ, श्रीरामका स्वरूप, श्रीराम-मन्त्रकी व्याख्या, जप-प्रक्रिया तथा ध्यान आदिके वर्णनके साथ-साथ संक्षिप्त चरित्र तथा पूजा यन्त्रका भी वर्णन किया गया है, जिसमें श्रीहनुमानजीका नाम आया है। यथा—

ततस्तार हनुमानब्धिं लङ्कां समाययौ॥
सीतां दृष्ट्वासुरान् हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम्।
आगत्य रामेण सह न्यवेदयत तत्त्वतः॥
(४। २५-२६)

'अर्थात् तब हनुमानजी समुद्रको लाँघकर लङ्कामें गये, वहाँ उन्होंने सीताजीका दर्शन कर, असुरोंका वध कर, लङ्कामें आग लगा कर तथा श्रीरामके पास लौटकर सब समाचार यथावत् सुनाया। संक्षिप्त चरित्रका वर्णन करके आगे जहाँ षट्कोणका अनुसरण करके आवरण-पूजाके लिये यन्त्रस्थ देवताओंका वर्णन किया गया है, वहाँ भी उनका वर्णन आया है कि श्रीरामचन्द्रजीके उत्तर और दक्षिण भागमें क्रमशः शत्रुघ्न और भरतजी स्थित हैं। हनुमानजी श्रोताके रूपमें भगवान् श्रीरामके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हैं। वे भी त्रिकोणके भीतर स्थित हैं।

उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ ततः।
हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणगम्॥
(रामपूर्वोत्तर० ४। १२)

तृतीय आवरणमें भी वर्णन आया है, वहाँ भी श्रीहनुमानजी, सुग्रीव तथा भरत आदिके नाम हैं। यथा—

तृतीयं वायुसूनुं च सुग्रीवं भरतं तथा।
(रामपूर्वोत्तर० ४। १५)

इसके अतिरिक्त मुक्तिकोपनिषद्में जहाँ वेदान्तकी महिमा, उपनिषदोंका वर्णन, मुक्तिके भेद तथा अध्यात्मतत्त्वका वर्णन किया गया है, उसमें श्रीरामजी और श्रीहनुमानका ही संवाद मुख्य रूपसे है, उन्होंने ही सब रहस्य पूछे हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। वहाँका प्रसङ्ग है कि श्रीअयोध्यापुरीमें श्रीरामजी एक बार अपने स्वरूपमें स्थित—समाधिस्थ थे। समाधिसे उत्थान होनेपर श्रीहनुमानजीने श्रीरामजीसे पूछा कि 'मैं आपके स्वरूपको जानना चाहता हूँ, कृपया उसका वर्णन कीजिये।' तब भगवान् श्रीरामने कहा कि 'मेरा स्वरूप वेदान्तमें भलीभाँति प्रतिपादित है, मैं उसका वर्णन करूँगा। मुझ विष्णुके निःश्वाससे विस्तृत चारों वेद उत्पन्न हुए। तिलोंमें तेलकी भाँति वेदान्त उसमें प्रतिष्ठित है।'—

निःश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः।
तिलेषु तैलवद् वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः॥
(मुक्तिको० १।९)

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन चारोंकी अनेकों शाखाएँ हैं और उन शाखाओंकी उपनिषदें भी अनेकों हैं। यथा ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १०९, सामवेदकी १००० तथा अथर्ववेदकी शाखाओंके ५० भेद हैं। इस प्रकार ११८० शाखाएँ हैं तथा प्रत्येक शाखाकी एक-एक उपनिषद् मानी गयी है—

गीतोक्त अनन्य-भक्तिके मूर्तरूप श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीराजेन्द्रजी शर्मा)

गीताकी दृष्टिसे ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग—तीनों ही भगवत्प्राप्तिके साधन हैं। हैं तो तीनों ही स्वतन्त्र, परंतु यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि जिसका कर्मयोग सिद्ध हो गया, उसके ज्ञानयोग और भक्तियोग भी स्वतः सिद्ध हो जायँगे और जिसे ज्ञानयोगसे परमतत्त्वकी प्राप्ति होती है, उसके कर्मयोग और भक्तियोग स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार भक्तिमार्गीके भी ज्ञानयोग और कर्मयोग स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। श्रीहनुमानजी ऐसे ही भक्तियोगी हैं, उनके ज्ञानयोग और कर्मयोग स्वतः सिद्ध हैं।

श्रीहनुमानजीकी यह निश्चित धारणा है कि 'भक्ति स्वतन्त्र है, उसे किसी अवलम्बकी आवश्यकता नहीं है और ज्ञान-विज्ञान सभी उसके अधीन हैं।' इसीलिये उन्होंने ज्ञान-साधनके अधिकारी होते हुए भी अनन्य भक्तिका ही आश्रय लिया। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अनन्य भक्तिका स्वरूप यों दर्शाया है—

> मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
> निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥
> (११ । ५५)

इस श्लोकमें अनन्य-भक्तिके साधन-पञ्चकका निरूपण हुआ है—१-मत्कर्मकृत्—मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करनेवाला हो, २-मत्परमः—मेरे ही परायण हो, ३-मद्भक्तः—मेरे नाम, रूप, गुण, लीलाका भजन करनेवाला मेरा भक्त हो, ४-सङ्गवर्जितः—आसक्ति-रहित हो और ५-सर्वभूतेषु निर्वैरः—सम्पूर्ण भूत प्राणियोंमें वैरभावसे रहित हो। श्रीहनुमानजीमें ये पाँचों गुण पूर्णरूपसे समाहित हैं।

१-'मत्कर्मकृत्'का तात्पर्य है—समस्त कर्मोंको भगवान्के अर्पित कर देना। अर्थात् मन-बुद्धिसे यह निश्चय कर लेना कि 'मैं भगवान्के सर्वथा अर्पित हूँ और मेरे परम प्रापणीय केवल भगवान् ही हैं।' वास्तवमें 'मत्कर्म'से उन कर्मोंकी ओर संकेत किया गया है, जो भगवान्के परायण होकर केवल भगवान्के लिये ही किये जायँ।

मन-बुद्धिसे भगवान्के अर्पित होकर कार्य करनेका अर्थ यही है कि भगवत्कार्य-सम्पादन ही जीवनका चरम लक्ष्य हो जाय। सच्चा भक्त अपना समस्त जीवन ही प्रभुके लिये समर्पित कर देता है। श्रीहनुमानजीके विषयमें तो यह प्रसिद्ध ही है कि उनका अवतरण ही राम-काजके लिये हुआ था—

> राम काज लगि तव अवतारा। (मानस ५ । ३० । ३)

श्रीहनुमानजी प्रतिक्षण अथकरूपसे श्रीरामजीका कार्य सम्पादन करनेमें ही अपनेको सफलजीवी मानते हैं। स्वामीके कार्यकी सिद्धिके लिये उन्हें मान, अपमान, विश्राम अथवा शारीरिक सुख और छोटे-बड़ेकी कोई चिन्ता नहीं रहती। समुद्र-लङ्घनके समय जब जलनिधिने यह इच्छा प्रकट की कि श्रीहनुमानजी मैनाक पर्वतपर विश्राम कर लें तो पवनतनयने विनम्रतापूर्वक कह दिया—

> राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ।
> (मानस ५ । १)

'मुझे श्रम ही कहाँ हुआ, जो मैं विश्राम करूँ? अथवा श्रीरामजीका कार्य किये बिना मुझे विश्राम कहाँ?' 'मत्कर्म' का अनुसरण करनेवाला भक्त 'अपनापन' समाप्त कर देता है।

लङ्कापुरीमें जब मेघनाद श्रीहनुमानजीपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करता है तो वे मूर्च्छित हो जाते हैं और उन्हें नागपाशमें बाँध लिया जाता है। इस प्रसङ्गमें शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

> प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा ।
> (मानस ५ । २० । २)

प्रभुके कार्यके लिये श्रीहनुमानजीने स्वयंको बँधवा लिया। फिर वे रावणसे निरभिमानतापूर्वक कहते हैं—

> मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा ॥
> (मानस ५ । २० । १)

लङ्कासे लौटनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर श्रीहनुमानजीने स्वयं अपने मुँहसे अपनी करनीका बखान नहीं किया, अपितु—

> पवन तनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥
> (मानस ५ । ३० । १)

वानर-समुदायके समक्ष भी वे अपने किसी कार्यका श्रेय नहीं लेना चाहते। वे वानरोंसे भी यही कहते हैं—

४—सङ्गवर्जित—सङ्गसे रहित अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी और पदार्थोंमें आसक्तिरहित होना। भगवान्‌को छोड़कर उसका कहीं और किसीमें किंचिन्मात्र भी प्रेम न हो, यह सङ्गवर्जित है। जो सङ्गवर्जित नहीं है, वह राग-द्वेषसे प्रेरित क्रियाओंमें घुल-मिल जाता है। राग-द्वेषसे ममत्व होता है और यही संसारसे सम्बन्ध जोड़नेवाला है। श्रीहनुमानजीका संसारमें लेशमात्र भी राग नहीं है। उनका ममत्व एकमात्र श्रीरामजीसे है। भक्तिमार्गका यह सिद्धान्त है कि जिसका भगवान्‌में राग होगा, उसका संसारसे द्वेष नहीं होगा। उसकी दृष्टिमें तो परमात्माके सिवा दूसरा कोई प्रेमास्पद है ही नहीं। इस सिद्धान्तके अनुसार श्रीहनुमानजीका भगवान् श्रीरामका अनन्यभक्त होनेके नाते 'सङ्गवर्जित' होना निर्विवाद सिद्ध होता है।

५—सर्वभूतेषु निर्वैरः—समस्त प्राणियोंके प्रति अद्वेषकी भावना रखना—'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्'—यह भक्तिमार्गका अन्तिम साधन है। जैसा ऊपर कहा गया है, संसारमें राग न रहनेसे भगवान्‌में अनन्य प्रेम होता है और रागरहित होनेसे वैर भाव नहीं रहता। इस दृष्टिसे साधन-पञ्चकका अन्तिम साधन—'निर्वैरः सर्वभूतेषु', 'सङ्गवर्जित'के अन्तर्गत ही आ जाता है।

अनन्य भक्तका कहीं राग-द्वेष होता ही नहीं। इसलिये उसके द्वारा किया गया कोई कर्म यदि द्वेषभावसे प्रेरित दृष्टिगत होता है तो यह दर्शकका ही दोष है, क्योंकि जैसे भगवान्‌के सभी कार्य जीवके कल्याणके लिये ही होते हैं, इसी प्रकार उनके अनन्य सेवककी क्रियाएँ भी प्रभु-प्रेरित होनेके कारण जीवोंके कल्याणके लिये ही होती हैं, उनका कोई दूसरा प्रयोजन नहीं होता। भगवान् श्रीरामने जिन राक्षसोंको मारा, उन सभीको 'निज पद' दे दिया। यथा—ताड़का—'दीन आनि तेहि निज पद दीन्हा।' विराध—'देखि दुखी निज धाम पठावा।' खर-दूषण-प्रसङ्ग—'राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।' मारीच—'मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना।' कुम्भकर्ण—'तासु तेज प्रभु बदन समाना।' रावण—'तासु तेज समान प्रभु आनन।' सभी राक्षस—'मुक्त भए छूटे भव बंधन।'

इसी प्रकार जब श्रीहनुमानजीने मकरीको मारा तो वह भी दिव्य यानपर चढ़कर आकाशमें चली गयी और हनुमानजीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई बोली—

कपि तव दरस भइउँ निष्पापा।

इसी प्रसङ्गमें कपट मुनिको श्रीहनुमानजीने अपनी पूँछमें लपेटकर मार डाला, तो उसने भी 'राम राम कहि छाड़ेसि प्राना।' स्मरण है न आपको—'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥' यह श्रीहनुमानजीकी कृपाका ही फल है कि कपट मुनिको भी दुर्लभ गति प्राप्त हुई। सच तो यह है कि अनन्य भक्तमें अपने प्रभुकी शक्ति अवतरित होती है, क्योंकि वह सारे कर्म प्रभुके लिये ही प्रभुकी प्रेरणासे ही करता है, इसलिये वह पाप-पुण्यके जनक कर्तृत्वाभिमानसे सर्वथा रहित होता है।

विभीषण-शरणागतिके प्रसङ्गमें सुग्रीवने विभीषणको रावणका भाई जानकर उसे संदेहास्पद व्यक्ति माना, किंतु श्रीहनुमानजीने तो लंकामें हुए प्रथम परिचयमें भी 'प्रभुके भाई' के प्रति कोई द्वेष भाव नहीं दिखाया, प्रत्युत उसको प्रभुकी शरणमें लाकर उसका कल्याण कर दिया।

इसी प्रकार जब रावणके सम्मुख श्रीहनुमानजीको लाया गया और उनसे अक्षकुमारके मारनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने निर्विकार भावसे यही उत्तर दिया—

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥
(मानस ५।२२।२)

यहाँ भी हनुमानजीका प्रभु-कार्य करनेका ही उद्देश्य है, द्वेष-भावसे अक्षकुमारको मारनेका नहीं। भगवान्‌ने ऐसे अधर्मियोंका नाश करनेके लिये ही तो अवतार लिया था। श्रीहनुमानजी उस अवतार-लीलामें उनके सहायक थे, दास थे, सेवक थे। प्रभुका कार्य करना ही उनके जीवनका लक्ष्य था।

श्रीहनुमानजी सर्वथा निर्वैर थे। जिसका स्वभाव ही परहित-साधन हो, वह किसीसे वैर कैसे कर सकता है? श्रीरामजी और उनके सेवक श्रीहनुमानजीका स्वभाव है—
'हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥'
(मानस)

सच तो यह है कि अनन्य भक्तिके जो पाँच साधन—मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, सङ्गवर्जितः और सर्वभूतेषु निर्वैरः बताये गये हैं, इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय ग्रहण कर लेनेसे शेष चार साधन भी स्वतः सिद्ध हो जाते हैं और भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जाती है। श्रीहनुमानजीके चरित्रका अनुकरण तथा उनका भजन करनेसे श्रीरामजीकी प्राप्ति हो जाती है—'तुम्हरे भजन राम को पावै।'

जीवन-स्रोत श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीरामेश्वरजी त्रिपाठी, पत्रकार)

हनुमानजी श्रीराम-नामको हृदयमें धारणकर समुद्रको पार कर गये। सुरसासे दूना रूप और आकार, फिर अत्यन्त लघु, जैसे पर्वतपर चरण, वह पातालमें, ऐसी स्थिति आयी केवल नामधारणसे। वही नाम साकार हो जाता है, हृदय चीरकर देखा दिया जाता है, जिस समय प्रभु श्रीराम, माँ जानकी प्रत्यक्ष होती हैं—ऐसे रुद्रावतार श्रीहनुमानजी हैं। लंकाधिपति रावण अपने दस सिरोंको काट-काटकर पुष्पकी भाँति श्रीशिवजीकी अर्चनामें भेंट कर चुका था। दस रुद्र उसके वशमें, काल उसकी कोठरीमें, देवता नतमस्तक, परिस्थिति विकट, सृजनकर्ताका उसे वरदान, संहारकर्ता उसके वशमें, पालनकर्ताकी प्रतिज्ञा कि जब भी पृथ्वीपर अभिमानी असुरोंका बोझ बढ़े तो उसे हटाना, इसमें संहार-अधिपतिकी सहायता आवश्यक, इसी हेतु एकादश रुद्रका श्रीहनुमत् रूपावतार।

श्रीहनुमान-चरित एक जीवनदर्शन है, जिसका मनन श्रवण परलोक सुधारनेका अवलम्ब तो है ही, इस जीवनमें सफलताकी एक महत्त्वपूर्ण कुंजी है, जिसके प्रयोगसे जीवन मार्गके सभी बंद द्वार अनायास खुल जाते हैं। सांसारिक जीवनमें आवश्यकता होती है सभीको एक मित्रकी, एक पथप्रदर्शककी, एक सेवककी, चाहे व्यक्ति साधारण हो, असाधारण हो अथवा पुरुषोत्तम हो। ये तीनों आवश्यकताएँ अकेले श्रीहनुमत्-चरितसे पूरी हो जाती हैं।

श्रीहनुमानजी—आदर्श मित्ररूपमें

पम्पापुरनरेश बाली अपने सगे भाईको सत्तासे विच्युत कर अनाश्रित बना देता है। सुग्रीव भाईके डरसे ऋष्यमूकपर्वतकी कन्दरामें निवास करते हैं—निर्वासित जीवन व्यतीत करते हैं, निरन्तर भयपूर्ण स्थितिमें रहते हैं कि पता नहीं कब, किस छद्मवेशमें बालीद्वारा भेजा गया कोई गुप्त शत्रु हत्या कर दे। ऋषिशापवश वह स्वयं तो यहाँ आ नहीं सकता। ऐसी भयपूर्ण मनःस्थितिमें बलशाली श्रीहनुमानजी सत्ताधिपति बालीको, जिसके साथ रहकर प्राप्त सभी सम्भव सुखोंका उपभोग कर सकते थे, त्यागकर कन्दरानिवासी सुग्रीवकी रक्षा करते हैं और मित्रता निभाते हैं। केवल मित्रता निभानेकी इतिश्री इतनेसे ही नहीं, प्रत्युत इससे आगे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामसे उनकी मित्रता भी कराते हैं। सुग्रीवसे मित्रता निभानेके लिये योद्धा श्रीहनुमान विप्र हनुमान बनते हैं, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामसे मिलते हैं। सुग्रीवकी इस शङ्काका निवारण करने-हेतु कि कहीं युगल योद्धाओंके रूपमें बालीद्वारा प्रेषित शत्रु तो नहीं आ रहे हैं। श्रीहनुमान श्रीरामसे मिलते हैं, जब परमात्मा से मिलता है, एकाकार होता है। साधककी साधना सफल होती है, किंतु इतनी ही सफलतासे मित्र श्रीहनुमानको चैन कहाँ, जबतक मित्र दुःखमें, तबतक शान्ति कहाँ। श्रीराम सुग्रीवकी मित्रता, श्रीहनुमानकी प्रेरणा और परिणाम हुआ बालीवध, सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य, भय समाप्त, खोयी हुई सत्ताकी प्राप्ति, मित्रके वास्तविक चरित्रका प्रत्यक्षीकरण श्रीहनुमानद्वारा।

ब्राह्ममुहूर्तकी वेला, अन्तःपुर देखा जा चुका, कोई भवन बाकी न बचा, श्रीहनुमानजी चिन्तित। राम-नाम-उच्चारणके साथ विभीषण जागे, श्रीहनुमान उनसे मिले, हृदय मिला, मित्रता हुई। सुग्रीवकी घटना पुनः दुहरायी गयी। विभीषण लंकाधिपति हुए। आसुरी शक्तियोंका विनाश हुआ। विभीषणने श्रीरामानुशासनमें शासन-सूत्र अन्ततः सँभाला, अर्थात् क्षणिक मैत्रीसे, जो ब्राह्ममुहूर्तमें हुई, श्रीहनुमानने विभीषणको मित्र माना तो श्रीरामसे उन्हें मिलाया, राजा बनाया। इस प्रकार दोको अधिपति बनाया मित्र श्रीहनुमानने, जो दैनिक जीवनमें निरन्तर मित्रके कर्तव्य एवं प्रेरणाके प्रकाशस्तम्भ हैं।

पथ-प्रदर्शक हनुमान

माँ जानकीकी सूचना लाये बिना लौटे तो जीवित नहीं बचोगे—आदेश हुआ राजा सुग्रीवका। समुद्र-तटपर किंकर्तव्यविमूढ़ सभी शोकमग्न। सम्पातिने इतनी सूचना तो दे दी कि लंकामें माँ जानकी हैं। मात्र सूचनासे, बिना निशानी लाये जीवन बचनेकी कोई सम्भावना न थी। जाम्बवान् अपने पूर्व पौरुषके न रहनेसे असहाय, युवराज अङ्गद बालकीके प्रति शङ्कालु, सभी वीर योद्धा शोकमग्न। चेतना हुई, जाम्बवान्के वचन अच्छे लगे, 'जबतक लौट न आऊँ, प्रतीक्षा करो'का मार्ग प्रदर्शित कर समुद्र-लङ्घन किया वीर श्रीहनुमानने और जीवन-पथके प्रदर्शक बने इन सभी वीरोंके। श्रीराम-हनुमानकी गाथाएँ प्रत्यक्ष रहीं त्रेतामें। द्वापरमें भीमके पथप्रदर्शक बने, अहंकार तोड़नेमें जब स्वर्गका मार्ग रोककर बैठ गये, अन्यथा भीम उस मार्गसे

सुतललोकमें जाकर उनके परम प्रिय भक्त प्रह्लादजीके दर्शन करें ।

श्रीनारदजी प्रह्लादजीके पास पहुँचे और उनकी गुण महिमाका गान करते हुए कहने लगे—'प्रह्लादजी ! निश्चय ही आप श्रीभगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त हैं । उनकी जैसी कृपा आपपर है, वैसी और किसीपर भी नहीं है ।' श्रीप्रह्लादजी भला कैसे इस बातका सहन करते !

वस्तुतः भक्ति एवं भगवत्-कृपाका स्वभाव है दैन्य और प्राण है विनम्रता । परम भगवत्-कृपा-प्राप्त होते हुए भी भक्त अपनेको कृपा-वञ्चित मानता है, सदा अतृप्त रहता है कृपा कादम्बिनीके लिये ।

श्रीप्रह्लादजीने अपने सम्बन्धमें श्रीनारदजीकी समस्त धारणाओंका निरसन करते हुए अन्तमें कहा—

निरुपाधिकृपार्द्रचित्त हे मद्दौर्भाग्यनिरूपणेन किम् ।
तव शुम्भजनेन पश्य तत् करुणां किंपुरुषे हनुमति ॥
(बृहद्भागवतामृत १ । ४ । ३७)

'मुनिश्रेष्ठ ! आप निर्हेतुक कृपालु हैं । मैं अपने दुर्भाग्योंका अधिक निरूपण कर आपको दुःखी नहीं करना चाहता । आप किंपुरुषवर्षमें जाकर श्रीहनुमानजीके दर्शन कीजिये ।'

श्रीप्रह्लादजीने आगे कहा—

हनूमांस्तु महाभाग्यस्तत्सेवासुखमन्वभूत् ।
सुबहूनि सहस्राणि वत्सराणामविघ्नकम् ॥
यो बलिष्ठतमो वाक्ये देववृन्दप्रसादतः ।
सम्प्राप्तसद्वरव्रातो जरामरणवर्जितः ॥
(वही १ । ४ । ४१)

'श्रीहनुमानजी ही बड़े भाग्यशाली हैं, उन्होंने भगवान् श्रीराघवेन्द्रके सेवा-सुखका निरन्तर ग्यारह हजार वर्षोंतक निर्विघ्न रूपसे आस्वादन किया है । वे अतिशय बलवान् हैं और देवताओंकी कृपासे अनेक वर प्राप्त कर वे जरा-मरणसे रहित हैं ।'

'नारदजी ! आप विचार कीजिये, श्रीहनुमानजी-जैसा भगवत्-कृपापात्र और कौन हो सकता है ? वे प्रभु श्रीराघवेन्द्रके श्रेष्ठ वाहन हैं । उनकी पूँछ प्रभुके लिये श्वेत छत्रस्थानीय है । उनकी पीठ प्रभुका सुखद आसन है । सच पूछिये तो श्रीरामकी विजयके सम्पादक श्रीहनुमानजी ही हैं । अतः वे ही सब प्रकारसे श्रीभगवान्‌के कृपा-भाजन हैं । यहाँतक कि प्रभुका आज्ञापालन करते हुए वे श्रीराघवेन्द्रके असह्य विरहको भी सहनकर यहाँ पृथ्वीलोकपर विराजते हैं, प्रभुके साथ साकेत लोकमें नहीं गये । केवल इसलिये कि भगवद्विमुख जीवोंको दास्य भक्तिकी शिक्षा प्रदान कर उनका संसारसागरसे निस्तार कर सकें ।'

स्वामिन् कपिपतिर्दास्ये इत्यादिवचनैः स्तुतः ।
प्रसिद्धो महिमा तस्य दास्यमेव प्रभोः कृपा ॥
यदृच्छया लब्धमपि विष्णोर्दाशरथेस्तु यः ।
नैच्छन्मोक्षं विना दास्यं तस्मै हनुमते नमः ॥
(वही १ । ४ । ५१ ५२)

श्रीप्रह्लादजीने फिर कहा—'स्वामिन् ! दास्य भक्तिमें श्रीहनुमानजीकी महिमा प्रसिद्ध है । वे अग्रगण्य हैं । श्रीरामजीसे अनायास मुक्ति प्राप्त कर सकते हुए भी जिन्होंने उनकी दास्य-भक्ति माँगी अथवा दास होना ही स्वीकार किया, मैं उन श्रीहनुमानजीको प्रणाम ही करता हूँ । और अधिक क्या कहूँ ! नारदजी ! मुझसे अधिक उनकी महिमा तो आप ही जानते हैं ।'

श्रीप्रह्लादजीसे श्रीहनुमानजीकी अलौकिक गुणावलि सुनकर श्रीनारदजी किंपुरुषवर्षमें पहुँचे । उस समय श्रीहनुमानजी श्रीराघवेन्द्रकी चरणसेवामें लगे हुए थे । श्रीनारदजी श्रीहनुमानजीके दर्शन करते ही उल्लसित हो उठे और 'जय श्रीराघवेन्द्र', 'जय श्रीलक्ष्मण' कहकर नाचने लगे । श्रीहनुमानजीने उछलकर अपने प्रभु-नाम-कीर्तनकारी श्रीनारदजीको गोदीमें भर लिया । वे परमानन्दित हो उठे ।

श्रीनारदजी बोले—

श्रीमन् भगवतः सत्यं त्वमेव परमप्रियः ।
अहं च सुप्रियोऽभूवमद्य यत्त्वां व्यलोकयम् ॥
(वही १ । ४ । ६१)

'श्रीमन् मारुति ! सत्य ही आप श्रीभगवान्‌के परम प्रिय हो, आप ही उनके परम कृपापात्र हो । मैं भी आपके दर्शन कर आज प्रभुका प्यारा बन गया और श्रीभगवान्‌की कृपाका अनुभव कर रहा हूँ ।'

इस प्रकार श्रीनारदजीने श्रीहनुमानजीकी अनेक प्रकारसे प्रशंसा की, परंतु श्रीहनुमानजीने उसके प्रत्युत्तरमें क्या कहा, इसे पाठकगण श्रीसनातन गोस्वामिपादविरचित—'श्रीबृहद्भागवतामृत'-नामक ग्रन्थ-रत्नमें अध्ययन करें ।

कहीं और निकल जाते कर्तव्यसे च्युत होकर। कलियुग भी श्रीहनुमानके पथप्रदर्शनसे वञ्चित नहीं। घर-घरमें प्रचलित रामचरितमानसके रचनाकारकी इच्छा हुई रामदर्शनकी। पथप्रदर्शक श्रीहनुमान प्रत्यक्ष हुए, तुलसीदासकी सहायता की कि वे भगवान् रामका दर्शन कर सकें, जब वे चूकते ही रहे, तो बाध्य हो श्रीहनुमानको प्रत्यक्षतः कहना पड़ा कि 'तुलसीदास चंदन घिस रहे हो, जिसे रघुवीर ग्रहण कर रहे हैं', तुलसीदासको श्रीराम मिल गये। परिणामतः मानवता को रामचरितमानस मिल गया। जो सम्भव हुआ पथप्रदर्शक श्रीहनुमानके नाते। जीवनके पल-पलमें, प्रत्येक कठिनाईमें, हर कार्यमें निरन्तर सुलभ हैं पथ प्रदर्शनहेतु श्रीहनुमान, केवल विलम्ब है उन्हें पुकारनेमें।

सेवक श्रीहनुमान

भक्तिमार्गमें श्रीहनुमानकी श्रीराममक्ति दासभावकी भक्ति है, जब कि श्रीराम उन्हें भ्रातृभावसे मानते हैं। दासभावकी भक्तिका जो स्वरूप सेवक श्रीहनुमानने प्रस्तुत किया, वह अवर्णनीय है। अकेले लंकामें युद्ध, अक्षकुमार-सहित अगणित योद्धाओंको सुलाते हुए माँ जानकीकी निर्भीकता-सह वापसी, अपने प्रभु श्रीरामके चरणोंमें बैठकर उनकी सेवा करते हुए रावणसे युद्ध, अहिरावणद्वारा छलसे श्रीराम-लक्ष्मणको पाताल ले जाकर बलि देनेके समय अकेले जीवनका मोह छोड़ पाताल-यात्रा, अपने प्रभुके लिये जीवनका जोखिम उठाकर युद्ध और अहिरावणको पराजितकर प्रभुसहित प्रत्यावर्तन किया श्रीहनुमानने।

इस प्रकार श्रीहनुमानजीने एक मित्र, एक पथप्रदर्शक एवं एक सेवकके रूपमें जो मान्यता स्थापित की, उसके हजारवें भागको यदि जीवनमें उतारा जा सके तो निश्चित लौकिक उपलब्धि भी होगी, पारलौकिक तो सुनिश्चित ही है।

श्रीहनुमान-नारद-मिलन

(लेखक—श्रीश्यामकान्तजी हकीम)

देवर्षि श्रीनारद भगवद्भक्तिके आचार्य हैं। भक्तिका प्रचार-प्रसार तथा आचरणद्वारा आदर्श स्थापन कर जागतिक जीवोंको भगवदुन्मुख करना ही इनका एकमात्र ध्येय या लक्ष्य है। इनको भगवान्‌का मन कहकर भी वर्णन किया गया है। जीवका निस्तार करना जैसे श्रीभगवान्‌का सहज स्वभाव या धर्म है, उसी प्रकार उनके मनस्वरूप श्रीनारद भी जीवोंको भगवदुन्मुख करनेमें सतत तत्पर रहकर अबाधगतिसे त्रिभुवनमें विचरण करते रहते हैं।

जैसे श्रीभगवान्‌के अनन्त स्वरूप और अनन्त धाम हैं, उसी प्रकार उनके भक्त भी अनन्त हैं। यह विचारकर एक बार श्रीनारदजीके मनमें कौतुकवश यह जाननेकी तीव्र उत्कण्ठा जाग उठी कि श्रीभगवान्‌का सबसे अधिक प्रिय भक्त या कृपापात्र कौन है? इसी संदर्भमें वे पृथ्वीलोक-स्थित प्रयागनिवासी एक ब्राह्मण भक्तसे मिले, जो श्रीशालग्रामका प्रिय भक्त था। श्रीनारदजीने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'विप्र! आप श्रीभगवान्‌के परम भक्त हैं।' उस ब्राह्मणने अपनी दीनता प्रकट करते हुए निकटवर्ती देशके राजाका परिचय दिया कि वास्तवमें वह राजा ही श्रीभगवान्‌का परम भक्त है। श्रीनारदजी उस राजाके निकट पहुँचे और उसकी प्रशंसा की। परंतु राजाने भी अपनेको भगवत्कृपासे वञ्चित बताकर देवराज इन्द्रको भगवान्‌का पूर्ण कृपापात्र बतलाया।

फिर क्या देर लगती है श्रीनारदजीको! वे तुरंत स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास पहुँचे और बोले—'देवराज! आप धन्य हैं एवं श्रीभगवान्‌के पूर्ण कृपापात्र हैं; क्योंकि श्रीउपेन्द्र भगवान् आपके छोटे भाई बनकर यहाँ विराजमान रहते हैं। समस्त लोकपाल, मुनिगणादि आपकी आज्ञाके वशवर्ती हैं।' श्रीनारदद्वारा अनेक प्रकारकी स्तुति सुनकर इन्द्रने अपने दोषोंकी गाथा कह सुनायी और अपनेको भगवत्-कृपासे वञ्चित बतलाया। इन्द्रने श्रीनारदजीको ब्रह्मलोकमें भेजा और श्रीब्रह्माजीको भगवान्‌का परम कृपापात्र बताया।

श्रीनारदजी ब्रह्माजीके पास पहुँचे। ब्रह्माजीने श्रीमहादेवजीको ही श्रीभगवान्‌का परम प्रिय भक्त बताकर उन्हें शिवलोक भेज दिया। श्रीमहादेवजीने भी अपनेको भगवत्-कृपापात्र नहीं माना और वैकुण्ठवासियोंके भाग्यकी सराहना की। श्रीपार्वतीजीने वैकुण्ठवासियोंमें श्रीलक्ष्मीजीको श्रीभगवान्‌का परम कृपापात्र कहकर वर्णन किया। जब श्रीनारदजी वैकुण्ठ जाने लगे तो महादेवजीने उन्हें बताया कि इस समय श्रीभगवान् भौम द्वारकापुरीमें लीला कर रहे हैं। अतः आप

सुतललोकमें जाकर उनके परम प्रिय भक्त प्रह्लादजीके दर्शन करें।

श्रीनारदजी प्रह्लादजीके पास पहुँचे और उनकी गुण महिमाका गान करते हुए कहने लगे—'प्रह्लादजी! निश्चय ही आप श्रीभगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त हैं। उनकी जैसी कृपा आपपर है, वैसी और किसीपर भी नहीं है।' श्रीप्रह्लादजी भला कैसे इस बातको सहन करते!

वस्तुत भक्ति एवं भगवत्-कृपाका स्वभाव है दैन्य और प्राण है विनम्रता। परम भगवत्-कृपा-प्राप्त होते हुए भी भक्त अपनेको कृपा-वञ्चित मानता है, सदा अतृप्त रहता है कृपा कादम्बिनीके लिये।

श्रीप्रह्लादजीने अपने सम्बन्धमें श्रीनारदजीकी समस्त धारणाओंका निरसन करते हुए अन्तमें कहा—

निरुपाधिकृपाक्लृप्तचित्त हे मद्दौर्भाग्यनिरूपणेन किम्।
तव गुणजनेन पश्य तत् कस्मां किंपुरुषे हनुमति॥
(बृहद्भागवतामृत १। ४। १७)

'मुनिश्रेष्ठ! आप निर्हेतुक कृपालु हैं। मैं अपने दुर्भाग्योंका अधिक निरूपण कर आपको दु खी नहीं करना चाहता। आप किंपुरुषवर्षमें जाकर श्रीहनुमानजीके दर्शन कीजिये।'

श्रीप्रह्लादजीने आगे कहा—

हनूमांस्तु महाभाग्यस्तत्सेवासुखमन्वभूत्।
सुबहूनि सहस्राणि वत्सराणामविघ्नकम्॥
यो बलिष्ठतमो बाल्ये देववृन्दप्रसादतः।
सम्प्राप्तसद्वरमातो जरामरणवर्जितः॥
(वही १। ४। ४१)

'श्रीहनुमानजी ही बड़े भाग्यशाली हैं, उन्होंने भगवान् श्रीराघवेन्द्रके सेवा-सुखका निरन्तर ग्यारह हजार वर्षोंतक निर्विघ्न रूपसे आस्वादन किया है। वे अतिशय बलवान् हैं और देवताओंकी कृपासे अनेक वर प्राप्त कर वे जरा-मरणसे रहित हैं।'

'नारदजी! आप विचार कीजिये, श्रीहनुमानजी-जैसा भगवत्-कृपापात्र और कौन हो सकता है? वे प्रभु श्रीराघवेन्द्रके श्रेष्ठ वाहन हैं। उनकी पूँछ प्रभुके लिये श्वेत छत्रस्थानीय है। उनकी पीठ प्रभुका सुखद आसन है। सच पूछिये तो श्रीरामकी विजयके सम्पादक श्रीहनुमानजी ही हैं। अत वे ही सब प्रकारसे श्रीभगवान्‌के कृपा भाजन हैं। यहाँतक कि प्रभुका आज्ञापालन करते हुए वे श्रीराघवेन्द्रके असह्य विरहको भी सहनकर यहाँ पृथ्वीलोकपर विराजते हैं, प्रभुके साथ साकेत लोकमें नहीं गये। केवल इसलिये कि भगवद्विमुख जीवोंको दास्य-भक्तिकी शिक्षा प्रदान कर उनका संसारसागरसे निस्तार कर सकें।'

स्वामिन् कपिपतिर्दास्य इत्यादिवचनैः खलु।
प्रसिद्धो महिमा तस्य दास्यमेव प्रभोः कृपा॥
यदृच्छया लब्धमपि विष्णोर्दाशरथेस्तु यः।
नैच्छन्मोक्षं विना दास्यं तस्मै हनुमते नमः॥
(वही १। ४। ५१ ५१)

श्रीप्रह्लादजीने फिर कहा—'स्वामिन्! दास्य-भक्तिमें श्रीहनुमानजीकी महिमा प्रसिद्ध है। वे अग्रगण्य हैं। श्रीरामजीसे अनायास मुक्ति प्राप्त कर सकते हुए भी जिन्होंने उनकी दास्य भक्ति माँगी अथवा दास होना ही स्वीकार किया, मैं उन श्रीहनुमानजीको प्रणाम ही करता हूँ। और अधिक क्या कहूँ! नारदजी! मुझसे अधिक उनकी महिमा तो आप ही जानते हैं।'

श्रीप्रह्लादजीसे श्रीहनुमानजीकी अलौकिक गुणावलि सुनकर श्रीनारदजी किंपुरुषवर्षमें पहुँचे। उस समय श्रीहनुमानजी श्रीराघवेन्द्रकी चरणसेवामें लगे हुए थे। श्रीनारदजी श्रीहनुमानजीके दर्शन करते ही उल्लसित हो उठे और 'जय श्रीराघवेन्द्र', 'जय श्रीलक्ष्मण' कहकर नाचने लगे। श्रीहनुमानजीने उछलकर अपने प्रभु-नाम-कीर्तनकारी श्रीनारदजीको गोदीमें भर लिया। वे परमानन्दित हो उठे।

श्रीनारदजी बोले—

श्रीमन् भगवतः सत्यं त्वमेव परमप्रियः।
अहं च तत्प्रियोऽभूवमद्य पश्यामि त्वत्कृपाम्॥
(वही १। ४। ६१)

'श्रीमन् मारुति! सत्य ही आप श्रीभगवान्‌के परम प्रिय हो, आप ही उनके परम कृपापात्र हो। मैं भी आपके दर्शन कर आज प्रभुका प्यारा बन गया और श्रीभगवान्‌की कृपाका अनुभव कर रहा हूँ।'

इस प्रकार श्रीनारदजीने श्रीहनुमानजीकी अनेक प्रकारसे प्रशंसा की, परंतु श्रीहनुमानजीने उसके प्रत्युत्तरमें क्या कहा, उसे पाठकगण श्रीसनातन गोस्वामिपादविरचित—'श्रीबृहद्भागवतामृत'नामक ग्रन्थ-रत्नमें अध्ययन करें।

श्रीरामनाम-रसिक हनुमानजी

(लेखक—श्रीशत्रुघ्नशरणजी)

हमारे श्रीहनुमंतलालजी विशेषरूपसे श्रीराम-नामके कीर्तनपरायण ही रहा करते हैं। नाम-कीर्तन प्रारम्भ करते ही आप प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं। आपके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी झड़ी-सी लग जाती है। सम्पूर्ण श्रीविग्रहके रोंगटे ऐसे सुदीर्घरूपसे खड़े हो जाते हैं—'पुलक सरीर पनस फल जैसा।'

श्रीहनुमत्संहितोक्त निम्नोद्धृत श्लोकमें श्रीहनुमानजी अपनी रसनाको आदेश दे रहे हैं—

हे जिह्वे जानकीजानेर्नाम माधुर्यमण्डितम्।
भजस्व सततं प्रेम्णा चेद्वाञ्छसि हितं स्वकम्॥
जिह्वे श्रीरामसल्लापे विलम्बं कुरुषे कथम्।
वृथा नायाति ते किंचिद्विना श्रीनामसुन्दरम्॥

'हे रसने! यदि तू अपना कल्याण चाहती है तो श्रीजानकी-जीवनका मधुरातिमधुर श्रीराम-नाम सतत प्रेमपूर्वक रटती रह। जिह्वे! श्रीरामनामका उच्चारण करनेमें तू देर क्यों कर रही है? मधुर मनोहर श्रीरामनामके उच्चारण बिना तेरा क्षणमात्र भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये।'

श्रीहनुमानजीका सिद्धान्त है कि जीव चाहे लेटा हो या बैठा हो अथवा खड़ा ही क्यों न हो, जिस किसी भी दशामें श्रीराम-नामका स्मरण करके वह भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हो जाता है।

आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र कुत्र वा।
श्रीरामनाम संस्मृत्य याति तत्परमं पदम्॥

श्रीराम-नामको हनुमानजीने अपना जीवनसर्वस्व मान रखा है—

केवलं रामनामैव सदा मज्जीवनं मुने।
सत्यं वदामि सर्वस्वमिदमेकं सदा मम॥

'मुने! एकमात्र श्रीराम-नाम ही मेरा जीवन है। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि सदा-सर्वदा मेरा एकमात्र सर्वस्व श्रीराम-नाम ही है।'

श्रीहनुमंतलालजीके विशाल हृदयमें श्रीराम-नामका परम-तत्त्व ऐसा जम गया है कि इसकी तुलनामें आप अन्यान्य साधनोंको नगण्य मानते हैं। श्रीआदिरामायणमें सेतुबन्ध प्रसङ्गमें नलनीलको श्रीराम-नामका उपदेश करते हुए आप कह रहे हैं—

एकतः सकला मन्त्रा एकतो ज्ञानकोटयः।
एकतो रामनाम स्यात् तदपि स्यान्न वै समम्॥
देशकालक्रियाज्ञानाद्यनपेक्ष्य स्वरूपतः।
अनन्तकोटिफलदो राममन्त्रो जगत्पतेः॥

अर्थात् तराजूके एक पलड़ेपर सभी महामन्त्रों एवं कोटि-कोटि ज्ञान ध्यानादि साधनोंके फलोंको रख दिया जाय, दूसरे पलड़ेपर केवल श्रीराम-नामको ही रखा जाय तो भी सब मिलकर श्रीराम-नामकी तुलना नहीं कर सकते। श्रीराम-नामकी आराधनामें अन्य साधनोंकी भाँति देश-कालकी पवित्रता एवं अनुष्ठानादि क्रिया और ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती। उच्चारणमात्रसे ही अनन्तकोटि फल प्रदान करनेवाले हैं—श्रीराम-नामरूपी मन्त्र।

श्रीराम-नाम-भजनमें विलक्षणता यह है—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपनें बस करि राखेउ रामू॥

स्वतन्त्र-स्वतन्त्र सर्वेश्वर परम प्रभुको भी वशमें करनेवाले श्रीराम-नामकीर्तनकी बराबरी भला अन्य साधन कैसे कर सकेंगे!

जो सदा स्नेहपूर्वक श्रीरामनाम-जप करते हैं, उनके ऊपर तो हनुमानजी लट्टू हो जाते हैं। उनके लिये आप कल्पवृक्ष बनकर सभी मनोरथोंको सफल करते रहते हैं। आपके ही मुखसे सुन लीजिये—

ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम माङ्गल्यकारणम्।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिनः॥
तेषामर्थे सदा विप्र प्रदाताहं प्रयत्नतः।
ददामि वाञ्छितं नित्यं सर्वदा सौख्यमुत्तमम्॥

'विप्रवर! जो मानव मेरे स्वामी दयासागर श्रीमान् रामचन्द्रजीके मङ्गलकारी नामका सदा प्रेमपूर्वक जप करते हैं, उनके लिये मैं सदा प्रयत्नपूर्वक प्रदाता बना रहता हूँ। मैं नित्य उनकी अभिलाषा-पूर्ति करते हुए उन्हें उत्तम सुख देता रहता हूँ।'

इस प्रकार श्रीहनुमानजी स्वयं तो नाम-कीर्तनमें सदा जागरूक रहते ही हैं, अन्य कीर्तनप्रेमियोंकी भी सदा रक्षा और सहायता करते रहते हैं।

श्रीराम-नामरसिक हनुमानजी

'त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम ॥' (अ० रा० ६ । १६ । १२)

श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य)

तत्त्वतः सम्पूर्ण सृष्टिमें परब्रह्म परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका अस्तित्व नहीं है। स्थावर-जङ्गमरूपमें जो कुछ भी तत्त्व दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सब ब्रह्मके ही प्रतीक हैं। विश्वका विकास उसी ब्रह्मका लीला-विलास है—तदितर कुछ भी नहीं है।[1] उस एक ही अव्यय—सनातन तत्त्वको मेधावीलोग इन्द्र, वरुण, वायु आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे सम्बोधित करते हैं, पर उस परमतत्त्वमें वस्तुतः अनेकता नहीं है।[2] जब कल्पके आदिमें इस परम चैतन्य-तत्त्वने अपनेको एकाकी देखा—अनुभव किया, उसमें सृष्टिके लिये सङ्कल्पोदय हुआ और उसने कामना की—मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ, प्रजासृष्टि करूँ।[3] तब स्वयं ही वह बहुरूप हो गया और सृष्टिक्रम चला[4]। अब प्रश्न यह उठता है कि उस सर्वशक्तिमान्‌को किसी व्यापारकी कामना क्यों हुई; क्योंकि कामना अथवा आकाङ्क्षा तो अभावग्रस्त व्यक्तियोंको ही होना तर्कसंगत है। उस सर्वशक्तिमान् परमतत्त्वको किसी पदार्थकी कामना हो—इस प्रतिपादनमें विरोधाभास लगता है। इसका प्रत्यक्ष समाधान करना न तो साधारण मानव-मस्तिष्कके लिये सम्भव है और न तार्किकके पास इस लोकोत्तर रहस्यको समझनेकी शक्ति ही है, क्योंकि तर्ककी कोई सीमा नहीं है।[5] वह तत्त्व तर्क और मानव-बुद्धिकी पहुँचसे परे है। ब्रह्मके सनातन स्वरूपके निर्धारणके सम्बन्धमें वैदिक उक्ति है—'यह अमृतस्वरूप, मृत्यु और परिवर्तनरूप विकारसे रहित तथा नित्य सत्य परमानन्दघन है। ब्रह्म ही इस सम्पूर्ण सृष्टिमें अपना लीलाभिनय करता हुआ हमारे आगे-पीछे, दाहिने-बायें, ऊपर-नीचे सर्वत्र प्रसरित होकर विभिन्न रूपोंमें अपना अस्तित्व धारण कर रहा है। ब्रह्म ही विश्वका यथार्थ रूप है और वही एकमात्र आराध्य तथा आराधनीय तत्त्व है। इस सम्पूर्ण दृश्यमान विश्व-तत्त्वको साक्षात् ब्रह्मके ही रूपमें अनुभव किये बिना हमारा जीवन कदापि निःश्रेयसमें प्रतिष्ठित हो ही नहीं सकता'।[6] जिससे ये दृश्यमान चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवन धारण करते हैं तथा अन्तमें इस लोकसे प्रयाण करते हुए जिसमें समाविष्ट हो जाते हैं, वही 'ब्रह्म' पदवाच्य है।[7]

जिस प्रकार सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन, वराह, मीन आदि परमात्माके अवतार हैं, उसी प्रकार विश्वके समस्त प्राणी भी अंशी श्रीकृष्णरूप परमेश्वरके ही अवतार हैं। अंश या कलाकी न्यूनाधिकताके अनुपातसे ईश्वर, देवता तथा मनुष्य आदि कोटियोंका विभाजन होता है। इनमें जो लोकोत्तर शक्तिसम्पन्न हुए, वे देवता या ईश्वर-नामसे अभिहित हुए और जो केवल लौकिक बल-बुद्धिसे सम्पन्न हुए, वे मनुष्य आदि जागतिक प्राणी कहलाये। परंतु वासुदेव श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण कलाओंसे परिपूर्ण होकर धराधामपर अवतीर्ण हुए थे।[8] उन्हीं प्रभु श्रीकृष्णकी घोषणा है—'इस देहमें यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और यही प्रकृतिस्थित मन तथा त्वक्, रसना, चक्षुः, कर्ण और नासिका—इन पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षित करता है' अर्थात् यह जीवात्मा परमेश्वरका ही सनातन अंश है—उन्हींका स्वरूप है, परंतु मायाके संयोगसे त्वक् आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों और छठे मनके साथ लिङ्ग शरीर धारणकर संसारमें गमनागमन करता है।[9] इसी प्रकार वैदिक प्रतिपादन भी है—'भगवान्‌के भिन्न-भिन्न रूपोंकी परछाईंके समान आत्मा अस्तित्व धारण करता हुआ

१—(क) सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।१)
(ख) जीवो ब्रह्मैव नापरः। (ग) नेह नानास्ति किंचन। (कठोपनिषद् २।१।११)

२—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद १।१६४।४६)

३—तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति। (छान्दोग्य उ० ६।२।३)

४—तदात्मानं स्वयमकुरुत। (तैत्तिरीय उप० २।७।१)

५—तर्काप्रतिष्ठानात्। (ब्रह्मसूत्र २।१।११)

६—ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥
(मुण्डकोपनिषद् २।२।११)

७—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।
(तैत्तिरीय उप० ३।१।१)

८—एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
(श्रीमद्भागवत १।३।२८)

९—ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥
(गीता १५।७)

इन्हें जन्म दिया। जन्मके समय इनकी अङ्गकान्ति धानके अग्रभागके समान पिङ्गल वर्णकी थी। एक दिन अपनी जननी अञ्जनाकी अनुपस्थितिमें भूखसे व्याकुल होकर ये बालरविको पकड़नेके लिये आकाशमें उछले। अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देखकर वायुदेव भी शीतल होकर इनके पीछे-पीछे चले। इस प्रकार पिताके बलसे उड़ते हुए ये सूर्यके समीप पहुँच गये। संयोगवश उसी दिन राहु भी सूर्यको ग्रहण करना चाहता था। जब सूर्यके रथके ऊपरी भागमें इन्होंने राहुका स्पर्श किया, तब वह भागकर इन्द्रकी शरणमें चला गया और उनसे अपना कष्ट कह सुनाया। राहुकी बात सुनकर इन्द्रने अपने वज्रसे हनुमानपर प्रहार किया, जिससे ये पवनात्मज एक पर्वतपर गिर पड़े और इनकी बायीं ठुड्डी (हनु) टूट गयी। इनके इस प्रकार आहत होते ही वायुदेवने अपनी गति रोककर देवताओंके सहित समस्त जगत्‌को त्रस्त कर दिया और इन्हें लेकर वे एक गुफामें चले गये। तब इन्द्रादि देवताओंसहित ब्रह्माजी उस स्थानपर आये, जहाँ वायुदेव अपने आहत पुत्रको गोदमें लिये बैठे थे। यह दृश्य देखकर ब्रह्माजीको वायुदेवतापर अतिशय दया आयी।[२०] ब्रह्माजीने इन्हें पूर्ण स्वस्थ कर दिया।[२१] पुनः ब्रह्माने देवताओंसे इन्हें वर देनेके लिये कहा। तब इन्द्रने इन्हें अपने वज्रसे अवध्य होनेका वर देते हुए हनुके टूट जानेके कारण इन्हें 'हनुमान' नामसे समाख्यात होनेका वर भी दिया।[२२]

आयुःसीमा

हनुमानजीकी आयुके रहस्यका विवेचन करना एक समस्या है। एसे तो ये अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय—इन आठ चिरजीवियोंमें एकतम हैं[२३] पर हनुमानजीको केवल चिरजीवी कहना पर्याप्त नहीं है—इन्हें नित्यजीवी अथवा अजर-अमर कहना भी असंगत नहीं, क्योंकि लङ्का-विजयके पश्चात् हनुमानजीने एकमात्र श्रीराममें सदाके लिये अपनी निश्चल भक्तिकी याचना की थी और श्रीरामने इन्हें हृदयसे लगाकर कहा था—'कपिश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा। संसारमें मेरी कथा जबतक प्रचलित रहेगी, तबतक तुम्हारी कीर्ति भी अमिट रहेगी और तुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे। तुमने मुझपर जो उपकार किये हैं, उनका बदला मैं नहीं चुका सकता'।[२४] इस प्रकार जब श्रीरामने चिरकालतक संसारमें प्रसन्नचित्त होकर जीवित रहनेका इन्हें आशीर्वाद दिया, तब इन्होंने भगवान्‌से कहा—'जबतक संसारमें आपकी पावन कथाका प्रचार होता रहेगा, तबतक मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ पृथ्वीपर रहूँगा'।[२५] इन्द्रसे भी हनुमानजीको वरदान मिला था कि इनकी मृत्यु तबतक नहीं होगी, जबतक स्वयं इन्हें मृत्युकी इच्छा न होगी।[२६]

एक बार सीताजीके द्वारा दिये गये मणि और रत्नोंसे विभूषित हारको पहनकर हनुमानजी भगवान् श्रीरामके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े थे। भगवान्‌ने इनकी नैष्ठिकी भक्तिके कारण अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'हनुमान! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम जो वर चाहो, माँग लो। जो वर त्रिलोकीमें देवताओंको भी मिलना दुर्लभ है, वह भी मैं तुम्हें अवश्य दूँगा।' तब हनुमानजीने अत्यन्त हर्षित होकर भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रणिपात करके कहा—'प्रभो! आपका नामस्मरण करते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता, अतः मैं निरन्तर आपके नामका स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर स्थित रहूँगा। राजेन्द्र! मेरा मनोवाञ्छित वर यही है कि जबतक संसारमें आपका नाम स्थित रहे, तबतक मेरा शरीर भी विद्यमान रहे।' इसपर भगवान् श्रीरामने कहा—'ऐसा ही होगा, तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। कल्पका अन्त होनेपर तुम्हें मेरे सायुज्यकी प्राप्ति होगी, इसमें संदेह नहीं है'।[२७]

२०—वाल्मीकिरामायण ७। ३५। १४–६५।

२१—वाल्मीकिरामायण ७। ३६। ४।

२२—वाल्मीकिरामायण ७। ३६। ८—१२।

२३—अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
(आनन्दरामायण)

२४—वाल्मीकिरामायण ७। ४०। १५–२४।

२५—यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्॥
(वाल्मीकिरामायण ७। १०८। ३५½)

२६—सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्।
स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो॥
(वाल्मीकिरामायण ४। ६६। २८½)

२७—रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृताञ्जलिमुपस्थितम्।
भक्त्या परमया तुष्ट इदं वचनमब्रवीत्॥
हनूमन्ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय काङ्क्षितम्।
दास्यामि दैवतैरपि यद् दुर्लभं भुवनत्रये॥

भगवान् श्रीरामने श्रीसीताजीका संकेत (भक्तवत्सलता) समझकर जानकीकी ओर देखते हुए कहा—'सुमुखी विदेहनन्दिनि! तुम जिसपर प्रसन्न हो, उसे यह हार दे दो।' तब श्रीसीताजीने श्रीरामजीके समक्ष ही यह हार हनुमानजीको दे दिया। उस हारको पहनकर गौरवान्वित हो हनुमानजी अत्यन्त सुशोभित हुए।[31] श्रीरामजीके समान ही भगवती जानकीजीने भी अपने सच्चे भक्त हनुमानजीको आशीर्वाद देते हुए कहा—'मारुते! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे, वहीं मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण भोग तुम्हारे पास उपस्थित हो जायँगे।' अपने उपास्यके इस प्रकार कहनेपर महामति हनुमानजी अतिशय प्रसन्न हुए और फिर नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरकर वे उन्हें बार बार प्रणाम करते हुए भारी मनसे तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये।[32] श्रीसीताजीकी भक्तवत्सलता तो सीमाको पार कर गयी थी। जब लंकाके दैत्योंने हनुमानजीकी पूँछमें आग लगा दी, तब श्रीसीताजीने अत्यन्त चिन्तातुर होकर अग्निसे प्रार्थना करते हुए कहा—'हे अग्निदेव! यदि मेरी पति-सेवा नैष्ठिकी है, मेरी तपस्या प्रतिष्ठित है और मैंने विशुद्ध पातिव्रत्यका सचमुच पालन किया हो तो आप भक्त हनुमानके लिये शीतल हो जायँ।' अग्निदेव हनुमानजीके पिता वायुके परमसखा होनेके कारण तथा श्रीसीतादेवीकी भी इस प्रार्थनासे परम शीतल हो गये और हनुमानजी पूँछको थोड़ा भी जलने नहीं दिया[33]। ऐसी है श्रीसीतारामकी भक्तवत्सलता।

यौगिक सिद्धियाँ

यौगिक सिद्धियाँ 'अणिमा' आदि आठ प्रकारोंमें सर्वख्यात हैं, यथा—(१) अणिमा, (२) महिमा, (३) गरिमा, (४) लघिमा, (५) प्राप्ति, (६) प्राकाम्य, (७) ईशित्व और (८) वशित्व[34]। परम भक्तियोगी पवनतनय हनुमानजीमें ये आठों सिद्धियाँ सम्यक्तया प्रतिष्ठित थीं। इनमेंसे प्रत्येक सिद्धिका स्वरूप रूप महावीर हनुमानजीके आचरणमें दृष्टिगत होता है।

अणिमा और लघिमा

सागरको पारकर लंकाकी द्वारपालिका 'लंकिनी' निशाचरीको निहत करनेके पश्चात् जनकनन्दिनीके अन्वेषण क्रममें श्रीहनुमानजी गोस्वामी तुलसीदासके मतसे मशकके समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप धारणकर रात्रिमें सारी लंकानगरीका निरीक्षण कर लेते हैं, किंतु अत्यन्त अणु या लघुरूप होनेके कारण वहाँके निवासियोंको उनका कुछ पतातक नहीं चलता। हनुमानजी शत्रुओंके लिये सर्वथा अदृश्य हो गये थे।[35] अशोकवाटिकामें पहुँचकर और शिंशपा (सीसम) वृक्षके पत्तोंमें बैठे-बैठे वे जानकी माताको अपना परिचय देते हुए श्रीरामकी अवस्थाका वर्णन करते हैं।[36]

३१–चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम्।
सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः॥
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी।
अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः॥
रामस्तामाह वैदेहीमिङ्गितज्ञो विलोकयन्।
देवेहि यस्य तुष्टासि देहि तस्मै वराङ्गने॥
हनूमते ददौ हारं पश्यतो राघवस्य च।
तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च॥
(अध्यात्मरा० ६।१६।६–९)

३२–उवाच जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते।
स्थितं त्वामनुगास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया॥
इत्युक्तो मारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यां प्रहृष्टधीः।
आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूयः प्रणम्य तौ॥
इष्टापर्वा तपस्तप्तुं हिमवन्तं महामतिः।
(अध्यात्मरामायण ६।१६।१८½–२०)

३३–यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥
(वाल्मी० रा० ५।५३।२८)
वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः।
न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः॥
(अध्यात्म० ५।४।४६)

३४–अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः॥
(अमरकोष, रामाश्रमी व्याख्या १।१।३४ (१७-१८))

३५–द्र० अध्यात्मरा० ५।१।१।

३६–(क) द्रष्टव्य अध्यात्मरामायण ५।२।१।
(ख) तरु पल्लव महँ रहा लुकाई।
करइ बिचार करौं का भाई॥
(मानस ५।८।२)

वशित्व

वशित्व सिद्धिके प्रतिष्ठित हो जानेपर व्यक्तिमें आत्म तयित्व भी स्वत सिद्ध हो जाता है। हनुमानजी अखण्ड ब्रह्मचारी एवं पूर्ण जितेन्द्रिय थे,[42] अत अतुलित बलशालिता उनमें निरन्तर विद्यमान रहती है।

बल पुरुषार्थ

महामारुतिके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बलकी इयत्ता न थी। वे देव, दानव और मानव आदि समस्त प्राणियोंके लिये अजेय थे। वे कभी किसीसे पराजित नहीं हुए, न कभी आहत ही। यद्यपि एक बार मेघनादने इन्हें बन्धनमें डाल दिया था, परंतु वहाँ इनके बँध जानेका कारण कुछ और ही था। जब मेघनादने इनपर ब्रह्माजीके द्वारा प्रदत्त अस्त्रको चलाया, तब उस ब्रह्मास्त्रका महत्त्व रखनेके लिये ये स्वय उसमें बँध गये थे। यदि ये चाहते तो उस ब्रह्मास्त्रको भी व्यर्थ कर देते, पर ऐसा न करनेमें दो कारण थे—प्रथम यह कि यदि यह अस्त्र विफल हो जाता तो जगत्स्रष्टाकी अपार महिमा मिट जाती[43] और द्वितीय कारण था उस बन्धनके द्वारा दशाननके सम्मुख पहुँच कर उसकी नगरीका दाह करना। हनुमानजीके बुद्धि बल तथा पुरुषार्थका अन्त नहीं। संसारमें उनकी गतिको न तो कोई जान सकता है और न उसकी सीमा ही बाँध सकता है।[44] जाम्बवान्के आदेशपर ये हिमालयसे ओषधियुक्त पर्वतको ही उठा लाये, जिससे उन ओषधियोंके प्रयोगसे मूर्च्छित श्रीराम, लक्ष्मण तथा समस्त वानर पुन स्वस्थ हो गये। तत्पश्चात् ये उस पर्वतको हिमालयपर ही रख भी आये थे।[45] लक्ष्मणजीके मूर्च्छित हो जानेपर जब श्रीराम विलाप करने लगे, तब सुषेणके आदेशानुसार हनुमानजी पुन हिमालयसे ओषधियुक्त पर्वत ले आये और उसकी ओषधियोंके प्रयोगसे लक्ष्मण स्वस्थ हुए।[46] इनका बल अन्तक—कालके समान है, इसी कारण इनके सम्मुख कोई विरोधी टिक नहीं सकता[47]। इन्होंने अनेकानेक राक्षसोंको भी निहत किया था।

तन्त्र-वाङ्मयमें श्रीहनुमान

तन्त्र-वाङ्मयमें भी हनुमानजीका सादर स्मरण किया गया है और वहाँ ये एकमुख, पञ्चमुख तथा एकादशमुखके रूपमें परिवर्णित हैं। सात्त्विक प्रकृतिके होनेपर भी तान्त्रिक उपासना-पद्धतिसे पुरश्चरण किये जानेपर ये शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण—इन षट्कर्मोंमें भी सिद्धि प्रदान करते हैं, पर षट्कर्मोंसे यहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये आन्तरिक शत्रु ही अभिप्रेत हैं, बाहरके सामाजिक शत्रु सम्भवत नहीं। 'बृहज्ज्योतिषार्णवधर्मस्कन्धान्तर्गत हनुमदुपासना' आदि तन्त्रग्रन्थोंमें हनुमत्कवच, स्तोत्र, सहस्रनाम, कल्प, पटल, ध्यान आदि अनेक क्रियाओंके साङ्गोपाङ्ग विवरण मिलते हैं। इनकी कतिपय उपासनापद्धतियाँ ऐसी भी हैं, जिनके पुरश्चरण सिद्ध होनेपर श्रीहनुमानजीके साक्षात् दर्शन अन्य देवताओंके दर्शनोंकी अपेक्षा शीघ्र होते हैं। आपन्न प्रपन्नजनके आकस्मिक भय-संकट इनके स्मरणमात्रसे दूर भाग जाते हैं। आज भी ऐसे अनुभवी साधकोंका समाजमें अभाव नहीं है।

लेखके उपसंहारमें यही ज्ञातव्य है कि भगवान् श्रीरामके एकमात्र सहायभूत हनुमान आदि वानर देवताओंके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण अतुलित पराक्रमी तथा सर्वथा सर्वत्र अजेय थे। त्रेतायुगके चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथके पुत्रेष्टि नामक यज्ञमें आमन्त्रित होकर ब्रह्मा विष्णु, शंकर आदि सम्पूर्ण देवगण उपस्थित हुए थे। देवताओंने ब्रह्मासे रावणके अत्याचारके सम्बन्धमें निवेदन किया। इसपर भगवान् ब्रह्मदेवने कहा कि उन्होंने रावणको देव-दानवोंसे अवध्यताका वर दे रखा है। देवताओंने भगवान् विष्णुसे दशरथके पुत्रके रूपमें जन्म लेकर रावणका वध करनेका निवेदन किया और भगवान् विष्णुने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया।[48] तब ब्रह्माने उन देवताओंसे अप्सराओं और किंनरियोंसे वानरोंके रूपमें अपने समान ही पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करनेके लिये कहा और ब्रह्माके आदेशानुसार देवताओंने वानर-संतान उत्पन्न की।[49] इसी उपक्रममें रुद्रावतार श्रीआञ्जनेयका भी प्राकट्य हुआ।

---

४२ हनुमत्पञ्चरत्नम् १५।

४३-ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार। जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥ (मानस ५। १९)

४४-गतिं हनूमतो लोके को विद्यात् तर्कयेत वा। (वा० रा० ६। । ११)

४५-वा० रा० ६। ७४। ७६।

४६-वा० रा० ६। १०१। ३०।

४७-नाऽस्यास्ति चेव यथा शक्यं हनूमान् ... स्मार्यति कः पुरस्तात्। (वा० रा० ७। ३६। ४८)

४८-वा० रा० १। १५। ४-३१।

४९-वा० रा० १। १७। २-८।

जानेसे 'हनुमान' यह नाम हुआ। 'मतुप्' प्रत्यय अतिशय अर्थमें भी प्रयुक्त होता है। यदि हनुमान उन्हें मनुष्य रूपमें इष्ट होते तो स्वामीजी उन्हें किसी मनुष्य प्रकरणमें रखते, ग्राम्यपशु प्रकरणमें नहीं।

'शिवमहापुराण'में एक विचित्र ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख है, जो इस प्रकार है—एक बार प्रभु शम्भुने श्रीविष्णुका मोहिनी रूप देखा। इससे उनका रेत स्खलित हुआ। उसे ही उन्होंने रामकार्यके लिये प्रयुक्त किया—

> एकस्मिन् समये शम्भुरद्भुतोऽतिकर प्रभु।
> ददर्श मोहिनीरूपं विष्णो स हि वसद्गुण॥
> चक्रे स्व क्षुभित शम्भु कामवाणहतो यथा।
> स्व वीर्यं पातयामास रामकार्येषुमीश्वर॥
>
> (शतरुद्रसं० २० । ३४)

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि वेद दो भागोंमें विभक्त हैं—मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग। ब्राह्मणभागमें अर्थवाद भी रहते हैं। अर्थवादके भी गुणवाद, अनुवाद एव भूतार्थवाद—ये तीन भेद हैं। यह कथा भी भूतार्थवाद है। अर्थवादमें शब्दका अर्थमात्र न लेकर उसका तात्पर्य ही देखना पड़ता है। इस प्रकार इस घटनाका तात्पर्य यह है कि स्त्री शक्ति एक मोहिनी शक्ति है, जिससे यथासम्भव बचकर रहना चाहिये। दूसरी ओर इसका यह भी तात्पर्य है कि महादेवपर भी विष्णुकी मोहिनी शक्तिका प्रभाव पड़ा करता है। यहाँ महादेवको 'प्रभु' शब्दसे कहा गया है। इसलिये प्रभु—

> प्रभु स्वातन्त्र्यमापन्नो यदिच्छति करोति तत्।
> पाणिनेन नदी गङ्गा यमुना च स्थली नदी॥

—स्वतन्त्रेच्छावान् होता है। वह जो चाहे, सो करे। इसमें एक अच्छा उदाहरण भी दिया गया है। संस्कृत-व्याकरणके परमाचार्य श्रीपाणिनिके ('यूस्त्र्याख्यौ नदी' १।४।३) इस सूत्रके अनुसार गङ्गा और यमुना तो 'नदी' नहीं रहतीं, किंतु 'स्थली'—जिसमें पानीकी एक बूँद भी नहीं, वह 'नदी' बन जाती है। इस बातको सर्वसाधारण नहीं जान सकते, किंतु 'नदी' शब्दके मर्मज्ञ वैयाकरण ही जान सकते हैं।

इस प्रकार यहाँ भी वेदों एवं पुराणोंके विद्वान् ही इसका तात्पर्य समझ सकते हैं कि शिव एव विष्णु मनुष्य नहीं थे, देवता एव दिव्य थे। देवताका शुक्र भौतिक नहीं होता, दिव्य होता है, जिसको 'तेजस्' भी कहा गया है। उसकी दिव्यताका वर्णन भी इसी महापुराणमें इस प्रकार प्राप्त होता है—

> तद् वीर्यं स्थापयामासु पत्रे सप्तर्षयश्च ते।
> प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात्॥
> तैर्गौतमसुतायां तद् वीर्यं शम्भोर्महर्षिभि।
> कर्णद्वारा तथाञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम्॥
> ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक्।
> शम्भुर्जज्ञे कपिवनुर्महाबलपराक्रम॥
>
> (३ । २० । ५-७)

उस शुक्र (तेज)को वैज्ञानिक सप्तर्षियोंने गौतमपुत्री, कामरूपिणी केसरीपत्नी अञ्जनामें कर्णद्वारा प्रवाहित किया। वही तेज गर्भाशयमें हनुमानरूपमें प्रकट हो गया।

इस प्रकार भगवान् शिवके महाशक्तिशाली होनेके कारण उनसे उत्पन्न दिव्य वानर शरीरवाले हनुमान भी महाशक्तिमान् हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यही बात उपरिनिर्दिष्ट (३ । २० । ७) श्लोकमें कही गयी है।

फिर वहाँ हनुमानने दिव्य वानर शरीरसे सूर्यके द्वारा सब विद्याओंका अध्ययन अनायास ही कर लिया—

> तदाज्ञया ततो धीर सर्वविद्यामयत्नत।
> सूर्यात् पपाठ स कपिगत्वा नित्यं तदन्तिकम्॥
>
> (३ । २० । ११)

तदनन्तर वे सूर्यकी ही आज्ञासे उनके अंश सुग्रीवके पास रहने लगे—

> सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ।
> मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांश कपिसत्तमः॥
>
> (३ । २० । १२)

रामायणमें श्रीहनुमानकी जो विद्वत्ता बतायी गयी है, वह मनुष्य होनेसे नहीं, दिव्य वानर होनेके कारण ही है। यह आश्चर्यकी बात भी नहीं है, क्योंकि देवता सर्वविद् होते हैं—'विद्वांसो हि देवा' (शतपथब्रा० ३।७।३।१०)। जैसे कोई पुरुष नाटकमें बंदरका पार्ट अदा करे तो उससे वह पुरुषत्व, वह ज्ञान और वह विद्या दूर नहीं जाती, इसी प्रकार देवावतारोंमें भी अभिनयकी बात समझनी चाहिये।

वरदद्वारा सन्तान उत्पन्न कर सकना बताया गया है। साथ ही देवयोनिमें लोकोत्तर शक्ति बतायी गयी है। इस प्रकार कल्पभेदसे श्रीहनुमानजीकी उत्पत्तिमें भेद बताया गया है। इससे उनकी अलौकिक बलशालिता व्यक्त होती है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीहनुमान कोई वनवासी जातिके मनुष्य नहीं थे, रुद्र या उनके भेद वायुदेवके अंश होनेसे वे देवता थे। उन्होंने रामकार्य पूर्ण किया। उनकी उपासनासे बल-बुद्धि आदि प्राप्त हो सकते हैं और होते हैं।

'मंगलमूरति मारुतनंदन'

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

पाठकोंको आश्चर्य अवश्य होता होगा कि जिन श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने 'असुभ होइ जिन्हके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी।' (विनयपत्रिका १६६।९) के नियमानुसार स्वयमेव हनुमानजीसे श्रीरामचरितमानस (५।६।४) में—

'प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥'

—इत्यादि कहा-कहलाया, वे ही 'विनयपत्रिका'में हनुमानजीको—

'जयति मंगलागार'　　(२७।१)

'मंगलमूरति मारुतनंदन। सकल-अमंगल-मूल निकंदन॥
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध बिहारी॥'
(३६।१–२)

—इत्यादि कैसे कह डालते हैं। ऐसी परस्पर विरोधी बातोंपर शङ्का होना स्वाभाविक है। प्रातःकाल मङ्गलस्मरण का विधान है। यों भी प्रत्येक कार्यारम्भमें, विशेषकर स्थिर कार्यादिके प्रारम्भमें 'मङ्गलाद्यप्रयोग च' (या०स्मृ० २।१००।६७) आदिके अनुसार मङ्गल स्मरण आवश्यक तथा उसका अनुष्ठान न करना दोषावह माना गया है। ऐसी दशामें व्यक्ति यही द्विविधामें पड़ जाता है कि वह प्रातःकाल एवं यात्रा, कार्यारम्भ आदिमें अन्य मङ्गल-स्मरणोंके साथ श्रीहनुमानजीका भी स्मरण करे या नहीं। अस्तु, यहाँ संक्षेपमें इसी प्रश्नपर विचार प्रस्तुत करनेका यत्न किया जा रहा है। आरम्भमें 'मङ्गल' शब्द तथा मङ्गल पदार्थपर भी कुछ विचार कर लेनेसे प्रसङ्गको साङ्गोपाङ्ग समझनेमें सहायता मिलेगी, अतः थोड़ा उसपर भी विचार किया जा रहा है।

मङ्गल पदार्थ क्या है?

गत्यर्थक 'मगि' धातुसे 'अलच्' प्रत्यय (उणादि पञ्चमपाद अन्तिम मङ्गलसूत्र) द्वारा 'मङ्गल' शब्द निष्पन्न होता है। पुनः उससे 'यत्' प्रत्यय करनेसे मङ्गल्य एवं 'ष्यञ्' करनेसे 'माङ्गल्य' शब्द बनता है—'कल्याणं मङ्गलं शुभम्।'

मङ्गल्या सितदूर्वायामुमाया पुंसि भूमिजे।
नपुंसकं तु कल्याणे सर्वापद्रक्षणेऽपि च॥
मङ्गल्यः स्यात् त्रायमाणाश्वत्थबिल्वमसूरके।
स्त्रियां शम्यामथ पुष्पीमिसीगुडूचयासु च॥
रोचनायामथो दध्नि क्लीबं शिवकरे त्रिषु।
(मेदिनीकोश २८।१२०, २६।१००-१०१)

मेदिनीकारके इस वचन तथा—

'दधि दूर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला॥'
(मानस ७।२।२½)

'औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥'
(मानस २।५।१)

—इत्यादिके अनुसार दधि, दूर्वा, अक्षत, हरिद्रा, रोली, चन्दन, ताम्बूल, सुपारी, बिल्व, रोचना, ब्राह्मण, राजा, वेश्या, सजल कलश, दीप, आम्रपल्लव, कदलीपत्र, दर्पण, शङ्ख, दर्पण, मङ्गलवाद्य, पुष्प, कन्या एवं पतिव्रता तथा सौभाग्यिनी स्त्री, गौ, मागध-वन्दी, ध्वजा पताका आदि मङ्गल पदार्थ हैं। रघुनन्दनभट्टके 'एकादशी-तत्त्व'में तो तुलसी चारपाको ही 'माङ्गल्य' कहा गया है। किंतु 'रत्नमाला' आदिमें हंस, शिखि, शुक, पिक, चाष आदि पक्षियों एवं अश्व गजादिके घोषको भी 'मङ्गलमय' बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्डके १६वें अध्याय और उसीके श्रीकृष्णजन्मखण्ड, उत्तरार्द्धके ७०वें अध्यायमें एवं मानस, बालकाण्ड ३११।३ ३०३ दोहेतक नकुल, मृगमाला, श्वेत चामर, अश्वत्थ, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु, मीन, शृगाल (लोमड़ी) आदि मङ्गलमय प्राणी-पदार्थोंकी एक बड़ी ही लंबी तालिका प्राप्त होती है।

इन वचनोंसे सिद्ध होता है कि 'वानर'का प्रत्यक्ष या स्वप्नादिमें भी दर्शन अभ्युदयकारी या माङ्गलिक नहीं माना जाता। अतः श्रीगोस्वामीजीका श्रीहनुमानजीद्वारा ही 'प्रात लेइ जो नाम हमारा।' (मानस ५ । ६ । ४) आदि कथन निराधार नहीं है, तथापि उनका 'मंगलमूरति मारुतनंदन' कथन भी निर्मूल या असत्य नहीं है। विचार करनेपर हनुमानजीकी 'मङ्गलसारता'में निम्नलिखित हेतु प्रमुख दीखते हैं।

श्रीहनुमानजीकी मङ्गलमयता

हनुमानजी साक्षात् शिवावतार हैं। भगवान् शिव परम मङ्गलमय हैं ही। 'शिव' शब्दका अर्थ ही परममङ्गल है—

> यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
> सकृत् प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्।
> पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं
> भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥[1]
> (श्रीमद्भा० ४ । ४ । १४)

इस प्रकार साक्षात् देवतारूप तथा महादेवावतार होनेसे श्रीहनुमानजी 'मंगलमूरति' हैं ही। स्वयं श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने भी इस शङ्काका खुलासा—रहस्य-भेदन विनयपत्रिकाके २७वें आदि पदोंमें कर दिया है। यथा—

'जयति मंगलागार, संसारभारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी।' इत्यादि।

अर्थात् जैसे शिवजी अमङ्गलवेशमें भी अमङ्गलहारी एवं समस्त मङ्गलकारी हैं—'असिव बेष सिवधाम कृपाला॥' (मानस १ । ९१ । २); 'भाजु अमंगल मंगल रासी॥' (मानस १ । ७८ । १) इत्यादि, वैसे ही श्रीहनुमानजी सामान्य वानरवेशमें भी मङ्गलागार हैं। आप आश्रितोंके काम-क्रोध-लोभ अज्ञानाश्रित जन्म-मरणरूपी संसारभारको दूरकर परमप्रभुके चरणोंमें पहुँचाकर परम श्रेय—महामङ्गल प्रस्तुत कर देते हैं। इससे बढ़कर मङ्गल और क्या होगा? यह समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल एवं समस्त श्रेय फलोंका भी तो फल है, अतः निस्संदेह श्रीहनुमानजी 'मंगलमूरति' हैं और इसी लिये इन्हें 'मंगलमूरति मारुतनंदन' कहना पूर्णरूपसे सही है।

श्रीत्र्यम्बकराय मखिने वाल्मीकि-रामायणके सुन्दरकाण्डकी टीकामें इसके अतिरिक्त दूसरे-तीसरे कारणोंका भी न्यास किया है। उनके अनुसार हनुमानजीकी सुन्दरता और मङ्गलमयताके ही आधारपर 'सुन्दरकाण्ड'की भी सुन्दरता एवं मङ्गलमयता मानी गयी है। श्रीहनुमानजी सभी प्रकारसे सुन्दर, कल्याणरूप एवं मङ्गलरूप हैं। इसीलिये सुन्दरकाण्डके पाठसे कल्याण होता है। 'सुन्दर'का एक अर्थ 'हनुमान' भी है। इधर श्रीरामप्राण होनेसे तो श्रीहनुमानजी शुद्ध राममय—मङ्गलमय सिद्ध होते ही हैं।

सुन्दरकाण्ड वाल्मीकीय रामायणका प्राण है, किंतु इसमें श्रीहनुमानजी ही सर्वस्व हैं। यदि वे मङ्गलरूप न होते तो सुन्दरकाण्डके पाठसे पूर्ण मङ्गल कैसे होता? सीताका पता लगाना, उन्हें श्रीरामसे मिलाना, धर्मकी स्थापना करना, धर्मोन्मूलक रावणादि राक्षसोंका उन्मूलन, विभीषण-सुग्रीवादिको राज्यदान—ये सभी कार्य परम मङ्गलमय* ही हैं। यावज्जीवन ब्रह्मचर्य धारण, ज्ञानार्जन, रामभक्तोंका श्रेयविस्तार—यही इनका मूल रूप है। इस प्रकार कार्यशुद्धि, ज्ञानशुद्धि, भावशुद्धि, व्यवहार शुद्धि एवं आत्मशुद्धि आदिके शुद्ध विग्रह श्रीहनुमानजी विशुद्ध मङ्गलविग्रह—मङ्गलमूर्ति ही हैं, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। और 'प्रात लेइ' आदि कथनमें इनकी नम्रता एवं निरहंकारिता भी एक हेतु है।

निष्कर्ष एवं उपसंहार

निष्कर्षतः यात्रारम्भ, कार्यारम्भ, प्रातर्मङ्गल आदि रूपमें सर्वत्र श्रीहनुमत्स्मरण परम मङ्गलमय ही है। यह बात श्रीगोस्वामीजीके निम्नलिखित पद्योंसे और भी स्पष्ट हो जाती है—

> सकल काज सुभ समउ भल सगुन सुमंगल जानु।
> कीरति बिजय बिभूति भलि हियँ हनुमानहि आनु॥
> (दोहावली २३२ तथा रामाज्ञाप्रश्न ३ । ४ । १)

> सुमिरत सङ्कट-सोच बिमोचन, मूरति मोद निधान की।
> ⊛ ⊛ ⊛
> तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यान की॥
> (विनयपत्रिका ३० । २, ३)

१-जिन भगवान् शंकरका 'शिव'—यह दो अक्षरोंका नाम अन्य प्रसङ्गोंमें भी मुँहसे निकलनेपर पापनाशक एवं परम मङ्गलकारी होता है, उन्हीं मङ्गलमय पवित्रकीर्ति भगवान् शंकरसे आप (दक्ष प्रजापति) द्वेष करते हैं। उनसे द्वेष करनेवाला तो अमङ्गलरूप ही होता है।

* कहते हैं कि 'विनयपत्रिका'के ३१ से ३६ तकके पदोंका गान 'मंगलमूरति' आदि पदोंकी अनवरत पढ़ाईसे मुक्ति आदि अनेक मङ्गलोंके सिद्ध होनेपर ही गोस्वामीजीने रचना की थी। इस प्रकार यहाँ इनकी मङ्गलमयताका पूर्णतया प्रत्यक्ष अनुभव

जो शक्तियाँ हैं, पवनात्मजमें वे सभी पवनकी अपेक्षा विशेष हैं, अधिक विस्तृत हैं।

रामचरितमानसके पाठकोंको विदित है कि पवनपुत्र हनुमानने रामायणके चार चुने वीरोंपर मुष्टिका-प्रहार किया है। लङ्कानगरीकी अधिष्ठात्री देवी लङ्किनीपर हनुमानजीका प्रथम मुष्टिका प्रहार हुआ है—

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी॥
(मानस ५। ३। २)

लङ्किनीके प्राण-पखेरू न उड़ पायें, इसलिये उसे हलके-से ही मारा, नहीं तो स्त्री-हत्या हो जाती। लङ्किनीने पहले तो हनुमानजीको 'चोर' कहा था, परंतु पीछे जब वह सँभलकर उठी, तब उसने उनके लिये दोनों हाथ जोड़ लिये।

दूसरा मुष्टिका प्रहार मेघनादपर अशोक-वाटिकामें हुआ है। हनुमानजीका यह दूसरा मुक्का घननाद कभी नहीं भूला। देखिये—

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥
(मानस ५। १८। ४-४½)

मुक्का लगते ही मेघनाद मूर्च्छित हो गया, परंतु उसके प्राण बच गये क्योंकि हनुमानजीका मुक्का तो लोगोंको पाठ पढ़ाता है—उनके प्राण नहीं लेता। उसी मेघनादका श्रीरामानुज लक्ष्मणजीसे युद्ध छिड़ा है। दोनोंके बीच हनुमानजी कूद पड़े हैं। वे बार-बार मेघनादको ललकार रहे हैं, पर वह तो भुक्तभोगी है। हनुमानका मुक्का क्या भूल जानेका विषय है? मेघनाद हनुमानके सामने आता ही नहीं।

तीसरा मुक्का रावणानुज कुम्भकर्णको लगा है—

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
(मानस ६। ६४। २½)

किंतु पर्वत और चट्टानोंकी मार तो उस कुम्भकर्णके लिये आकके रूईभरे फलोंकी भाँति निस्सार है उसे पता भी न चला—

' ~ ~ । जिमि गज अर्क फलनि को मारयो॥'
(मानस ६। ६४। ३)

ऐसा भूधराकार शरीरधारी कुम्भकर्ण भी हनुमानजीके मुष्टिका प्रहारसे तिलमिला उठा है, कलबाजी खाता हुआ पृथ्वीपर गिर गया है। पुन उठा तो सही, पर उधर हनुमानजीका मुक्का तैयार था। मुक्का लगा और कुम्भकर्ण भूतलपर चक्कर काटकर पुन गिर पड़ा—

तब मारुत सुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥
(मानस ६। ६४। ४)

चौथा मुक्का रावणको लगा है। पूर्वापेक्षया यह भीषण वज्र मुष्टि प्रहार है। लङ्किनी, घननाद तथा घटकर्णको तो मुष्टिका प्रहार मान लगा है, पर लङ्केशको वज्र-मुष्टिका लगी है—

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
(मानस ६। ८३। १-१½)

हनुमानजीकी इस वज्र-मुष्टिकाने तो लङ्कापति रावणको भी मूर्च्छित कर दिया है। इसपर अब दार्शनिक दृष्टिसे विचार करें। यह मानी हुई बात है कि एक एक अँगुलीका अलग-अलग अपना महत्त्व, प्रभाव और कर्तृत्व है। पाँचोंकी समवेत शक्ति मुष्टिका बन जाती है। मार-पीटमें क्या बच्चे, क्या जवान और क्या बूढ़े—सभी मुक्का-मुक्की कर लेते हैं। सात्त्विक दृष्टिसे ये पाँचों अँगुलियाँ ज्ञानेन्द्रियोंकी प्रतीक हैं। मोड़ देनेसे 'मुष्टिका' बन जाती हैं। अङ्गुष्ठमें अग्नि-तत्त्व, मध्यमामें आकाश-तत्त्व, तर्जनीमें वायु-तत्त्व, अनामिकामें जल-तत्त्व और कनिष्ठिकामें पृथ्वी-तत्त्व स्थित हैं। इन पाँचोंकी समष्टि अर्थात् मुड़कर एकतावद्ध होना ही 'मुष्टिका' है। इसमें बड़ी शक्ति आ जाती है। हाँ, इसमें ब्रह्मचर्यका बल तथा योगज संयम भी अपेक्षित है। रावणको वज्र-मुष्टिका लगी थी। यों तो श्रीबजरङ्गीके मुक्केसे मूर्च्छा चारोंको आयी है।

अवतार-तथ्य और जन्म-तिथि—श्रीहनुमानजी रुद्रावतार हैं। गोस्वामीजीने तो स्पष्ट लिख दिया है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥
जानि राम सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥
(दोहावली १४२-४३)

रुद्रावतारके अतिरिक्त श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामके अंश भी हैं। जिस प्रकार उदार दिनकर-वंशमें [illegible] अवतरित नरावतार हुआ, उसी प्रकार यह

युवती—असुर-नारियोंके मृत देहोंको देखकर भगवान् श्रीरामने दाँतों-तले अँगुली दबा ली। उन्होंने जिज्ञासासे लक्ष्मण, सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान तथा विभीषणकी ओर देखा, पर कहींसे भी कोई उत्तर नहीं मिला। भला, श्रीराम नारी-हत्याको कैसे प्रोत्साहन देते! इतनी स्त्रियाँ मरीं तो कैसे! हनुमानजीको स्वयं पता नहीं। उस मौनको जगज्जननी श्रीसीताने भङ्ग किया। उन्होंने हनुमानजीकी ओर इशारा किया। अब भेद खुला कि हनुमानजीने लङ्कासे लौटते समय महाध्वनि की थी। उसीके परिणामस्वरूप भयभीत गर्भवती रमणियाँ अपने गर्भके साथ ही परलोक सिधार गयीं। ऊपरकी चौपाईका आधार कदाचित् पद्मपुराणकी यही कथा है।

वानर-ऋक्ष-गृध्रका अस्तित्व एवं महत्त्व—आध्यात्मिक दृष्टिसे विवेचनका यह अभिप्राय नहीं कि श्रीहनुमानजीकी भौतिक या जागतिक सत्ता नहीं है, उनकी सत्ता तो त्रिकालाबाधित सत्य है। महर्षि वाल्मीकिने तो उन्हें 'चतुर्वेदी' लिखा है। हनुमानजी चारों वेदके ज्ञाता थे। सम्पूर्ण व्याकरणपर उनका अधिकार था।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥
(वा० रा० ४। ३। २८-२९)

श्रीरामचन्द्रने ऋष्यमूकपर्वतपर श्रीसीताकी खोजमें विचरते हुए लक्ष्मणसे हनुमानजीकी सराहना की है। सचमुच वाणीके अठारह दोषोंमेंसे एक भी दोष हनुमानजीमें नहीं है, ऐसी स्थितिमें उन्हें आजकलका बंदर कैसे माना जा सकता है! कौन-सा बंदर चतुर्वेदी और महावैयाकरण है! इतना ही नहीं, अशोकवाटिकामें माँ सीतासे श्रीहनुमानका वार्तालाप भी एक विवेच्य विषय है—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
(वा० रा० ५। ३०। १८)

'यदि मैं द्विजातियोंके बीच बोली जानेवाली संस्कृत भाषामें बातें करूँगा तो माँ सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी।' ऐसा विचारकर श्रीहनुमानजीने प्राकृत भाषामें, जो स्त्रियों तथा दास-दासियोंमें प्रचलित थी, माँ सीतासे बातचीत की।

पाठक यदि वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका अवलोकन करें तो वाली और सुग्रीवकी राजधानी, राजसभा, नृत्य-संगीतशाला तथा महल-अटारियोंका वर्णन पढ़कर आश्चर्यचकित हो जायँगे। उनकी आर्य—वैदिक संस्कृति थी। वालीकी अन्त्येष्टि क्रियाका वर्णन पढ़कर तो लगता है कि वे पूर्णतः द्विजाति थे।

श्रीजाम्बवन्तजी ब्रह्माके अवतार हैं, सुग्रीवके प्रधान मन्त्री हैं। ये द्वापरतक पाठकोंको मिलते हैं। इन्हींकी कन्या जाम्बवती भगवान् श्रीकृष्णकी आठ पटरानियोंमेंसे एक हैं। साम्ब जाम्बवतीके ही पुत्र हैं। हनुमानजी रुद्रावतार हैं। 'स्कन्दपुराण'में इनकी सिद्धिके लिये कई पुरश्चरण, कई प्रयोग और कई मन्त्र उपलब्ध हैं। एक मन्त्रमें 'रुद्रात्मकाय' शब्द भी आता है। वाली इन्द्रके तथा सुग्रीव सूर्यके अवतार हैं। इसके सिवा अन्य बंदर भी भिन्न-भिन्न देवोंके अवतार हैं।

अन्य पात्रोंमें जटायु एवं सम्पाति भी विचारणीय हैं। क्या इन्हें मात्र गीध कह देना उचित होगा? ये तो भारतके आसमानके रक्षक हैं। इतना ही नहीं, जटायु और सम्पाति उद्भट संस्कृतज्ञ भी हैं, जिनके देहाभिमानका नाश चन्द्रमा ऋषिके तत्त्वोपदेशसे होता है। 'खग' शब्दका प्रयोग भी श्लिष्ट है। 'खग' अर्थात् (खे गच्छतीति) आकाशचारी। इस सम्बन्धमें गोस्वामीजीने भी इशारा किया है—

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥
(मानस ४। २७। १-२)

और महर्षि चन्द्रमाने इनका देहजनित अभिमान छुड़ाया—

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान छड़ावा॥
(मानस ४। २७। ३)

पाठक विचार करें, कौन गीध तत्त्वज्ञान सुनकर देहाभिमान छोड़ देता है! जटायु तो महाराज दशरथके मित्र हैं, पद्मपुराणमें तो वे युद्धमें दशरथके सहायक भी थे। सीताको 'पुत्रि!' सम्बोधन देनेवाला तथा विमानसे सीताको लेकर आकाश-मार्गमें उड़ने रावणको चुनौती देनेवाला क्या कोई मात्र गीध हो सकता है?

पुलस्त्यस्य गतिं रुद्धा तत्र वीक्ष्य निशाचर ।
ददर्श शैलशृङ्गस्थं नन्दिनं वानराकृतिम् ॥
तं दृष्ट्वा मुमुचे हासं नन्दी तं शप्तवांस्ततः ।
गिरावस्मिन् दशग्रीव न्यय प्रयाति शंकर ॥
विमानेन यदा तस्य समीपमुपयास्यसि ।
करोषि चावहास्यं मां तस्मात्तुल्याम्यहं तव ॥
मद्वक्त्रसदृशा घोराः पुलस्त्यस्य प्रजापते ।
उत्पत्स्यन्ति कुले भीमा क्षयाय वानरास्तव ॥

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण १ । २२२ । ५-८)

नन्दीके उपर्युक्त शापमें उनके रुद्रांशका हनुमद्रूपमें प्रकट होनेका संकेत उपलब्ध होता है और इस संकेतका स्पष्टीकरण पुराणोंमें भी मिलता है। नन्दीकी गणना ग्यारहवें रुद्रके रूपमें की गयी है। भगवान् विष्णुके अंशोंसहित श्रीरामरूपमें प्रकट होनेपर उनके कार्यकी सम्पन्नताके लिये नन्दी हनुमानके रूपमें अवतरित हुए—

शिलादतनयो नन्दी शिवस्यानुचरः प्रियः ।
यो वै चैकादशो रुद्रो हनुमान् स महाकपिः ॥
अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः ।

(स्कन्दपुराण, माहेश्वर, केदार० ८ । १००)

उल्लेख है कि शिलाद ऋषिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् शिवने अयोनिज रूपमें नन्दी होकर प्रकट होनेका वचन दिया था

तव पुत्रो भविष्यामि नन्दीनाम्ना त्वयोनिजः ।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता, ६ । ३४)

अब यह तथ्य स्पष्ट है कि नन्दीके रूपमें अवतरित होनेवाले अयोनिज ग्यारहवें रुद्र ही हनुमान हैं। महाराज भोजने स्वरचित 'चम्पूरामायण'में वर्णन किया है कि रावण कुमारपुत्र हनुमानको अपने सम्मुख उपस्थित देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसे कैलास उठानेके अपराधमें नन्दीश्वरने जो शाप दिया था, उसका उसे स्मरण हो आया और उसने समझ लिया कि शिव-पार्षद नन्दी स्वयं वानररूपमें यहाँ आ गये हैं—

सोऽपि प्लवगमभिवीक्ष्य कुमारपुत्र-
　　　　　मित्यावमाणहृदय पिशिताशनेन्द्रः ।
कैलासशैलचलनागसि शापदायी
　　　　　नन्दीश्वरः स्वयमिहागत इत्यमंस्त ॥

(चम्पूरामायण सुन्दर ८८)

महाकवि गिरिधरकृत गुजराती रामायणमें वर्णन है कि केसरीकी पत्नी अञ्जनीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर रुद्रने उसे वर माँगनेके लिये कहा। तब अञ्जनीने उनसे वर माँगा—'आप मुझे तेजस्वी पुत्र प्रदान कीजिये।' भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा—'तुम धन्य हो, तुम्हारे उदरसे ग्यारहवें रुद्र प्रकट होंगे'—

शंकर कहे धन्य अञ्जनी, तने पुत्र मारो नेट।
रुद्र जे अगियारमा, ते प्रगटशे तुज पेट ॥

(गिरिधररामायण, बालकाण्ड १२ । २७)

ठीक इसी समय एक गृध्रीने चरु गिराया। वायुका वेग तेज था, वायुके द्वारा चरु अञ्जनाके हाथमें आ गया। अञ्जनाने शिव-मन्त्रका उच्चारण कर चरु खा लिया—

शिवमन्त्र भणीने अंजनीये भक्ष कीधो तेह।'

(गिरिधररा० बालकाण्ड १२ । ३२)

इस सम्बन्धमें विस्तृत प्रसंग इस प्रकार है कि गृध्री सुवर्चला नामकी अप्सरा थी। नृत्यभङ्गके अपराधमें ब्रह्माने उसको गृध्री होनेका शाप दिया था तथा उसे शापसे मुक्त होनेका उपाय भी बताया था कि 'जब तुम कैकेयीके पायसभाग—पुत्रेष्टियज्ञसे प्राप्त चरु-अंशको अञ्जनपर्वतपर गिरा दोगी, तब तुम्हारी सुगति हो जायगी। अपने भागका चरु खानेमें कैकेयीने कुछ विलम्ब किया। गृध्री उसे छीनकर उड़ गयी। कौसल्या और सुमित्राके एक एक चरु अंशको कैकेयीने ग्रहण किया था। 'आनन्दरामायण'में सुवर्चलाद्वारा चरु लेकर अञ्जनपर्वतपर गिरा देनेका स्पष्ट उल्लेख है—

तस्मात् सा पायसं गृध्राक्षिपदञ्जनपर्वते ।
दिव्यं स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम गुरुमन्दिरम् ॥

(आनन्दरामायण सार० १ । १०७)

उपर्युक्त प्रसङ्गसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तपस्यामें तत्पर अञ्जनाने शंकरके वरदानसे ग्यारहवें रुद्रके रूपमें हनुमानको जन्म दिया। रामचरितके समुद्रमें अवगाहन करानेवाले समर्थ किष्किन्धाके पावनकारी रूप प्रदान किया है और श्रीसीताजीके अन्वेषणमें तत्पर भोगभक्त सम्मुख रुद्रावतार हनुमानके प्रकट होनेका वर्णन किया है। इसका स्पष्ट अर्थ रामचरितमानसके रचनाकार महाकवि आदिकाव्यकार पाठकने अपना प्रसिद्ध कृति मानसअपद और 'मानस अभिमान-दायक'में किया है। 'हनुमन्नाटक' के रचयिताने तो इनका केवल संकेतमात्र किया है। रामाञ्जनेयहनुमान

लङ्काको हनुमानद्वारा जलाते देखकर रावण मनमें सोचता है कि 'यदि पवनकुमार रुद्रके अवतार हैं तो मुझ रुद्रभक्तकी नगरीको क्यों जला रहे हैं ! मैं समझ गया—पिनाकधारी शिव मेरेद्वारा दस मस्तकोंके समर्पणसे प्रसन्न हो गये, पर ग्यारहवें रुद्र प्रसन्न न हो सके। यही कारण है कि रुद्रावतार हनुमानजी लङ्का जला रहे हैं। मैंने पङ्क्तिभेद किया, और पङ्क्तिभेद करना कभी कल्याणप्रद नहीं होता'—

रावण—(स्वगतम्) यद्ययं रुद्रो मारुतिस्तर्हि किमिति रुद्रभक्तस्य मे नगरीं दहति। अहह ज्ञातम्—

तुष्ट पिनाकी दशभि शिरोभि
　　　　स्तुष्टो न चैकादशका हि रुद्र।
अतो हनूमान् दहतीति कोपात्
　　　　पङ्क्तेर्हि भेदो न पुन शिवाय॥
　　　　　　　　　　(हनुमन्नाटक ६। २७)

श्रीरामने कुम्भकर्णके साथ युद्धमें रुद्ररूप हनुमानको देखा। वे महावीर उस समय उग्र नरसिंहके समान लाल-लाल नेत्र किये हुए रणभूमिमें आये—

आलक्षितो रघुवरेण सलक्ष्मणेन
　　　　कालान्तकादिव रिपो परिशङ्कितेन।
स्थाम अगाम हनुमान् समरेऽवतीय
　　　　माहेश उग्रनरसिंह इवारुणाक्ष॥
　　　　　　　　　　(हनुमन्नाटक ११। ३५)

महाराजा रघुराजसिंहने अपनी प्रसिद्ध रचना 'राम रसिकावली'में लिखा है कि 'महेशरूप हनुमानने श्रीसीताजीके शोकरूपी हलाहल विषका पान कर लिया'—

'सीतासोक हलाहल जाना। किय मारुति महेस सहि पाना॥'
　　(रामरसिकावली 'भक्तमाला', मङ्गलाचरण १। १२। ६)

भगवती श्रीसीताने पञ्चाक्षर शिवमन्त्रद्वारा श्रीहनुमानको तृप्त किया था। लङ्कासे वापस आनेपर श्रीसीताजीने एक दिन श्रीहनुमानको प्रसाद ग्रहण करनेके लिये निमन्त्रित किया। वे उनको बार-बार भोजन परोसती गयीं और वे उसे समाप्त करते गये। श्रीसीताजी आश्चर्यचकित हो गयीं। "उन्होंने ध्यानयोगसे समझा कि हनुमान तो साक्षात् गङ्गाधर रुद्र हैं, जो वानररूपमें प्रकट हैं। उन्होंने 'नम शिवाय' मन्त्रका उच्चारण कर भोजन अर्पित किया। श्रीहनुमान तृप्त हो गये"—

ध्यानयोग मा जानकी देखिला सत्वर।
वानररूपेते अवतीर्ण गङ्गाधर॥
　　　*　　　*　　　*
नम शिवाय बले अन्न दिल हनूर माथे॥
　　　　　　　　　　(कृत्तिवासीय रामायण लङ्काकाण्ड)

परब्रह्म रुद्ररूप हनुमानजीकी महिमा उन्हींकी कृपासे समझमें आ पाती है। वे सर्वमङ्गलनिधि, सच्चिदानन्दघन, परब्रह्म परमात्मा हैं। दास्यभक्तिके रसास्वादनके लिये उन्होंने हनुमान रूपमें प्रकट होकर श्रीरामकी सेवा की। वे श्रीराम पदपद्ममकरन्दके मधुकर हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने रुद्ररूप हनुमानकी प्रशंसा की है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥
　　　　　　　　　　(दोहावली १४२)

परब्रह्म रुद्ररूप हनुमानजीके चरित्र, लीला और महिमाका वेद भी पार नहीं पा सकते। श्रीरुद्ररूप हनुमत्तत्त्वका पूर्ण महत्त्वाङ्कन असम्भव न होनेपर भी कठिन अवश्य है। रुद्ररूप श्री हनुमान ॐकारस्वरूप पूर्ण ब्रह्म हैं।

'सुवन समीर को'

सोक मैथिली को हर्यो निहरि असोक-बाग,
　　दूत रघुबीर, भर्यो गुनन गँभीर को।
दाह्यो लंक प्रलै-ज्वाल माला-सी प्रतापधर,
　　अछय कुमारै मार्यो बजरसरीर को॥
परम बिरागी, मिल्यो रच्छक बिभीषन सों
　　'लछिराम' धरनिधर्नी है धर्मधीर को।
जालिम जलधि कूद्यो हनूमान बरबान,
　　सिरमौर साखामृग सुवन समीर को॥
　　　　—महाकवि लछिराम (रामचन्द्रभूषण-३२९)

'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।'

(मानस ७ । ११९ क)

जो बंदर भगवान्के साथ शिशुक्रीडा कर गया था, वही ऋष्यमूकपर्वतपर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। ब्रह्मचारीके रूपमें जब उसने भगवान्से भेंट की, तब एक अपरिचितकी भाँति नहीं, प्रत्युत निम्नलिखितरूपमें—

युवां त्रैलोक्यकर्ताराविति भाति मनो मम ।
युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥
मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया ।
भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च ॥
अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती ।
जगत्स्थितिलयौ सर्गं लीलया कर्तुमुद्यतौ ॥
स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ ।
नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः ॥

(अध्यात्मरा० ४ । १ । १३-१६)

'मेरा मन तो यह कहता है कि आप दोनों त्रिलोकीके रचनेवाले, संसारके कारणभूत, जगन्मय, प्रधान और पुरुष ही हैं। आप मानो पृथ्वीका भार उतारने और भक्तजनोंकी रक्षा करनेके लिये ही लीलावश अपनी मायासे मनुष्यरूप धारण कर विचर रहे हैं। आप साक्षात् परमात्मा ही क्षत्रियकुमारके रूपमें अवतीर्ण होकर पृथ्वीपर घूम रहे हैं। आप लीलासे ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और (दुष्टोंका) नाश करनेमें तत्पर हैं। मेरी बुद्धिमें तो यही आता है कि आप सबके हृदयमें विराजमान, सबके प्रेरक, परमस्वतन्त्र भगवान् नर-नारायण ही इस लोकमें विचर रहे हैं।'

अब इन शब्दोंकी जरा तुलना कीजिये 'मानस'के इन शब्दोंसे—

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार ।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ॥

(मानस ४ । दोहा १)

अपने ही स्वरूपको पाकर अपरिचित कौन बना रहे ? श्रीसीताजीकी खोजके लिये अनेकों योद्धा भेजे गये, परंतु मुद्रिकासहित गुप्त संदेश केवल हनुमानजीको ही दिया गया। लक्ष्मणजीके अचेत होनेपर सुषेण वैद्यको लाने तथा संजीवनी ओषधि लानेका कार्य केवल हनुमानजीको ही सौंपा गया। श्रीराम-लक्ष्मणको अहिरावणके महल (नागलोक)से वापस लानेका कार्य भी हनुमानजीने ही किया। रावण-वधके पश्चात् भगवान्का विजय संदेश लेकर हनुमानजी ही पुनः श्रीसीताजीके पास पहुँचे थे। अयोध्या लौटनेपर भगवान्के आगमनका संदेश भरतजीको कौन दे तो इसके लिये भी हनुमानजी ही परम विश्वस्त दूत दीखे। भगवान्के राज-दरबारमें अपना हृदय चीरकर उसमें भगवान्का साक्षात्कार करानेका काम भी केवल वे ही कर सकते थे। सभी वानरोंके विदा हो जानेपर भी हनुमानजी भगवान्के चरणारविन्दमें सदैवके लिये रहे। लव-कुशसे युद्ध करते समय भी हनुमानजीकी भूमिका सबसे विलक्षण रही। महाभारतके युद्धमें अर्जुनकी पताकाको कौन सँभाले हुए थे ? वे हनुमानजी ही तो थे। आज भी जहाँ कहीं रामायणका पाठ हो रहा हो, यदि हममें देखनेकी शक्ति हो तो वहाँपर हम हनुमानजीको रामचरित सुनते देख सकते हैं, वे 'रामचरित सुनिबे को रसिया' (हनुमानचालीसा) जो ठहरे। इन सब बातोंका यही निष्कर्ष है कि हनुमानजी लीलारूपमें भगवान्के दास भले ही दीख रहे हों, परंतु तत्त्वतः वे अंशस्वरूप ही हैं। उपासना-जगत्में भी वे देवकोटिमें गिने जाते हैं। महादेवजीकी भाँति महावीर भी पञ्चमुख और एकादशमुख माने जाते हैं, वे उन्हींके अवतार जो ठहरे।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको प्रदोषकालमें अञ्जना देवीके गर्भसे हनुमानजीका जन्म हुआ। अतः इस दिन उनकी जयन्ती मनायी जाती है। इस दिन प्रातः उठकर नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर हनुमानजीका विधिवत् पूजन किया जाता है। उनके अप्रतिम आदर्श शौर्य, धैर्य, औदार्य एवं भगवद्भजनसे आप्लावित उनके पावन चरित्रका गान तथा श्रवण किया जाता है। इसके लिये 'रामायण' अथवा 'मानस'का पाठ किया जाता है। उसमें भी सुन्दरकाण्डके पाठका विशेष माहात्म्य है। हनुमानजीकी प्रतिमापर तेल एवं सिन्दूर चढ़ाया जाता है। उनपर फूल केवल वे ही चढ़ाये जाते हैं, जिनके नाम पुरुषवाचक हों, क्योंकि हनुमानजी अखण्ड ब्रह्मचारी जो ठहरे। प्रसादके रूपमें इन्हें चना, गुड़, पूआ, केला, लड्डू, अमरूद आदि चढ़ाये जाते हैं। हनुमानजीकी उपासना हमारे राष्ट्रको सुदृढ़, सुसंगठित एवं सशक्त बनानेके लिये प्रधान साधनस्वरूप है। अतः राष्ट्रका हित इसीमें है कि हनुमानजीको राष्ट्रवीरके रूपमें तथा अञ्जनाके 'पतिव्रत'को पुनः राष्ट्रमाताके रूपमें अपनाया जाय तथा हनुमज्जयन्तीको राष्ट्रीय पर्वका गौरव प्रदान किया जाय, जिससे हमारा भारत देश पुनः सर्वसम्पन्न होकर जगद्गुरुके उच्च पदपर आसीन हो सके।

अपनी 'विनयपत्रिका'में भी गोस्वामीजीने श्रीहनुमानको [रुद्रा]वतार, महादेव, वामदेव, पुरारी आदि नामोंसे सम्बोधित [किय]ा है—

जयति रणधीर रघुवीरहित, देवमणि
रुद्र-अवतार संसार पाता । (२५)
जयति मर्कटाधीश, मृगराज विक्रम,
महादेव, मुद मंगलालय कपाली । (२६)
जयति मंगलागार, संसारभारापहर
वानराकार विग्रह पुरारी । (२७)
सामगायक भक्त-कामदायक, वामदेव,
श्रीराम प्रिय-प्रेमबंधो ॥ (२८)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीहनुमानजी रुद्रावतार हैं, स्वयं शंकर ही हैं। कहीं ऐसी भी कथा आती है कि भगवान् शंकरने एक बार भगवान् श्रीरामसे दास्य सुख प्राप्तिका वरदान माँगा था और यह याचना स्वीकृत भी हुई। उसी सेवा-सुखका आस्वादन करते हुए भक्ति भावनाकी महिमाको दिखलानेके लिये ही भगवान् शंकरका श्रीहनुमानके रूपमें प्राकट्य हुआ।

शंकरसुवन, केसरीनन्दन, पवनतनय, आञ्जनेय नामोंका परिचय

(लेखक— 'श्रीयुगलचरणरजोऽभिलाषी')

पुराणों और इतिहासोंमें श्रीहनुमच्चरित्रका अनेक रूपोंमें [वर्ण]न मिलता है। श्रीहनुमानजी कहीं 'शंकर-सुवन', कहीं [पव]नतनय', कहीं 'केसरीनन्दन', कहीं 'आञ्जनेय' और [कहीं] 'साक्षात् शंकर'के रूपमें वर्णित हैं। कल्प भेद एवं [प्रस]ङ्ग भेदसे ये सभी नाम सत्य हैं। जिस प्रकार भगवान् [श्री]कृष्णको प्रसङ्ग भेदसे वसुदेवनन्दन, नन्द-सुवन, गिरिधारी, [बन]विहारी, वंशीधारी आदि कहा जाता है, वैसे ही रामभक्त [श्री]हनुमानके विषयमें भी समझना चाहिये। श्रीहनुमानजीके [इन] नामोंका आशय समझानेके लिये कतिपय महत्त्वपूर्ण [प्रस]ङ्गोंका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

'रुद्रावतार' श्रीहनुमान

एक बार भगवान् शंकर भगवती सतीके साथ कैलास [पर्व]तपर विराजमान थे। प्रसङ्गवश भगवान् शंकरने सतीसे [क]हा—'प्रिये! जिनके नामोंको रट-रटकर मैं गद्गद होता [रह]ता हूँ, वे ही मेरे प्रभु अवतार धारण करके संसारमें आ [रहे] हैं। सभी देवता उनके साथ अवतार ग्रहण करके उनकी [से]वाका सुयोग प्राप्त करना चाहते हैं, तब मैं ही उससे क्यों [वं]चित रहूँ? मैं भी वहीं चलूँ और उनकी सेवा करके अपनी [सेव]ा-सुखकी लालसा पूर्ण करूँ।'

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सतीने सोचकर [क]हा—'प्रभो! भगवान्‌का अवतार इस बार रावणको [मा]रनेके लिये हो रहा है। रावण आपका अनन्य भक्त है। [य]हाँतक कि उसने अपने सिरोंको काटकर आपको समर्पित किया है। ऐसी स्थितिमें आप उसको मारनेके काममें कैसे सहयोग दे सकते हैं?'

यह सुनकर भगवान् शंकर हँसने लगे। उन्होंने कहा—'देवि! जैसे रावणने मेरी भक्ति की है, वैसे ही उसने मेरे एक अंशकी अवहेलना भी तो की है। तुम जानती ही हो कि मैं ग्यारह स्वरूपोंमें रहता हूँ। जब उसने अपने दस सिर अर्पित कर मेरी पूजा की थी, तब उसने मेरे एक अंशको बिना पूजा किये ही छोड़ दिया था। अब मैं उसी अंशसे उसके विरुद्ध युद्ध करके अपने प्रभुकी सेवा कर सकता हूँ। मैंने वायु देवताके द्वारा अञ्जनाके गर्भसे अवतार लेनेका निश्चय किया है।' यह सुनकर भगवती सती प्रसन्न हो गयीं।

इस प्रकार भगवान् शंकर ही श्रीहनुमानके रूपमें अवतरित हुए, इस तथ्यकी पुष्टि पुराणोंकी आख्यायिकाओंसे होती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी दोहावली (१४२) में लिखा है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

'शंकर-सुवन' श्रीहनुमान

शिवपुराणान्तर्गत श्रीहनुमज्जन्मका संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है—एक समय भगवान् शम्भुको भगवान् विष्णुके मोहिनी रूपका दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय ईश्वरेच्छासे रामकार्यकी सिद्धिहेतु उनका वीर्य स्खलित हो गया। उस

अपनी 'विनयपत्रिका'में भी गोस्वामीजीने श्रीहनुमानको रुद्रावतार, महादेव, वामदेव, पुरारी आदि नामोंसे सम्बोधित किया है—

> जयति रणधीर, रघुवीरहित, देवमणि,
> 　　रुद्र-अवतार संसार पाता । (२५)
> जयति मर्कटाधीश, मृगराज विक्रम,
> 　　महादेव मुद-मंगलालय कपाली । (२६)
> जयति मंगलागार, संसारभारापहर,
> 　　वानराकार विग्रह पुरारी । (२७)
> सामगायक भक्त-कामदायक, वामदेव,
> 　　श्रीराम प्रिय प्रेमबंधो ॥ (२८)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीहनुमानजी रुद्रावतार हैं, स्वयं शंकर ही हैं। कहीं ऐसी भी कथा आती है कि भगवान् शंकरने एक बार भगवान् श्रीरामसे दास्य सुख प्राप्तिका वरदान माँगा था और यह याचना स्वीकृत भी हुई। उसी सेवा-सुखका आस्वादन करते हुए भक्ति भावनाकी महिमाको दिखलानेके लिये ही भगवान् शंकरका श्रीहनुमानके रूपमें प्राकट्य हुआ।

शंकरसुवन, केसरीनन्दन, पवनतनय, आञ्जनेय नामोंका परिचय

(लेखक— 'श्रीयुगलचरणरजोऽभिलाषी')

पुराणों और इतिहासोंमें श्रीहनुमच्चरित्रका अनेक रूपोंमें वर्णन मिलता है। श्रीहनुमानजी कहीं 'शंकर-सुवन', कहीं 'पवनतनय', कहीं 'केसरीनन्दन', कहीं 'आञ्जनेय' और कहीं 'साक्षात् शंकर'के रूपमें वर्णित हैं। कल्पभेद एवं प्रसङ्ग भेदसे ये सभी नाम सत्य हैं। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको प्रसङ्ग-भेदसे वसुदेवनन्दन, नन्द-सुवन, गिरिधारी, रासविहारी, वंशीधारी आदि कहा जाता है, वैसे ही रामभक्त श्रीहनुमानके विषयमें भी समझना चाहिये। श्रीहनुमानजीके इन नामोंका सार्थक्य समझानेके लिये कतिपय रहस्यपूर्ण प्रसङ्गोंका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

'रुद्रावतार' श्रीहनुमान

एक बार भगवान् शंकर भगवती सतीके साथ कैलास पर्वतपर विराजमान थे। प्रसङ्गवश भगवान् शंकरने सतीसे कहा—'प्रिये! जिनके नामोंको रट-रटकर मैं गद्गद होता रहता हूँ, वे ही मेरे प्रभु अवतार धारण करके संसारमें आ रहे हैं। सभी देवता उनके साथ अवतार ग्रहण करके उनकी सेवाका सुयोग प्राप्त करना चाहते हैं, तब मैं ही उससे क्यों वञ्चित रहूँ? मैं भी वहीं चलूँ और उनकी सेवा करके अपनी युग-युगकी लालसा पूर्ण करूँ।'

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सतीने सोचकर कहा—'प्रभो! भगवान्का अवतार इस बार रावणको मारनेके लिये हो रहा है। रावण आपका अनन्य भक्त है। यहाँतक कि उसने अपने सिरोंको काटकर आपको समर्पित किया है। ऐसी स्थितिमें आप उसको मारनेके काममें कैसे सहयोग दे सकते हैं?'

यह सुनकर भगवान् शंकर हँसने लगे। उन्होंने कहा—'देवि! जैसे रावणने मेरी भक्ति की है, वैसे ही उसने मेरे एक अंशकी अवहेलना भी तो की है। तुम जानती ही हो कि मैं ग्यारह स्वरूपोंमें रहता हूँ। जब उसने अपने दस सिर अर्पित कर मेरी पूजा की थी, तब उसने मेरे एक अंशको बिना पूजा किये ही छोड़ दिया था। अब मैं उसी अंशसे उसके विरुद्ध युद्ध करके अपने प्रभुकी सेवा कर सकता हूँ। मैंने वायु देवताके द्वारा अञ्जनाके गर्भसे अवतार लेनेका निश्चय किया है।' यह सुनकर भगवती सती प्रसन्न हो गयीं।

इस प्रकार भगवान् शंकर ही श्रीहनुमानके रूपमें अवतरित हुए, इस तथ्यकी पुष्टि पुराणोंकी आख्यायिकाओंसे होती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी दोहावली (१४२) में लिखा है—

> *जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।*
> *रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥*

'शंकर-सुवन' श्रीहनुमान

शिवपुराणान्तर्गत श्रीहनुमज्जन्मका संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है—एक समय भगवान् शम्भुको भगवान् विष्णुके मोहिनी रूपका दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय इच्छावश रामकार्यकी सिद्धि हेतु उनका वीर्य स्खलित हो गया। उस

श्रीहनुमन्नाम विवेचन

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० आ० एम्०)

परमभागवत श्रीरामके अनन्य भक्त महावीर हनुमानके अनेक गौणपाधिक नाम हैं। ये सभी नाम अपनेमें अनेक रहस्यपूर्ण संकेत छिपाये हुए हैं एवं हनुमानके पृथक्-पृथक् रूपों (व्यक्तित्व)का संकेत करते हैं। इनमेंसे कुछ प्रसिद्ध नामोंकी यथामति विवेचना करनेका प्रयत्न इस लेखमें किया जा रहा है।

हनुमान—यह हनुमानजीका स्वस्वरूपनिर्देशक मुख्य नाम है। इस नामके अतिरिक्त अन्य नाम गुण-कर्मादिकी उपाधिके आश्रित होनेके कारण विशेषण विशिष्ट हैं। वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्मरामायणमें उन्होंने श्रीरामको अपना परिचय 'हनुमान' नामसे ही दिया है। यथा—

'अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान् नाम वानरः ॥'
(वा० रा० ५। ३४। ३८)

'हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ॥'
(वा० रा० ५। ३५। ८१)

अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते ॥
हनूमान् नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसम्भवः ।
(अ० रा० ४। १। ३३-३४)

'रामचरितमानस'के उत्तरकाण्डमें वे भरतजीको भी इसी नामसे अपना परिचय देते हैं—

'मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना ॥'
(मानस ७। १। ४)

नाम और नामीमें अभेद होता है। नाममें नामीका व्यक्तित्व, उसका चरित्र, गुण एवं प्रभाव सूक्ष्मरूपसे अन्तर्हित होते हैं। 'हनुमान'—इस नाममें भी हनुमानजीका सम्पूर्ण व्यक्तित्व, गुण और चरित, पौरुष एवं प्रभाव बीजरूपसे अन्तर्निहित हैं। 'हनुमान' शब्द हिंसा तथा गति अर्थवाली 'हन्' धातुमें 'उ' प्रत्यय और तद्धितीय 'मतुप्' प्रत्यय लगानेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—हनु (दाढ़) वाला।

'मेदिनी-कोश'के अनुसार 'हनु' शब्दके चार अर्थ हैं—वेश्या, मृत्यु, अस्त्र, रोग एवं दोनों कपोलाङ्ग[1]। इनमें 'अस्त्र' एवं 'मृत्यु'—ये दोनों अर्थ 'हन्' धातुके हिंसार्थसे सम्बन्धित हैं। 'अस्त्र'में गत्यर्थ भी सम्मिलित है तथा इस शब्दका धात्वर्थ है—क्षेपण एवं दूरीकरण। अतः 'हनु'के इन दोनों अर्थोंमें 'मतुप्' प्रत्ययके अर्थसे संयुक्त करनेपर 'हनुमान' का अर्थ होता है—अस्त्रवान् एवं मृत्युमान्। ये दोनों अर्थ हनुमानको प्रक्षेपण, प्रहार एवं संहारकी प्रचण्ड शक्तिसे युक्त निर्दिष्ट करते हैं। इन्हीं नामार्थोंके अनुरूप हनुमानजी सर्व सङ्कटहर्ता, सर्वविध भूत प्रेत पिशाच-ग्रहादि-बाधाके निवारक, शत्रु-स्तम्भक एवं असुर-संहारक माने जाते हैं।

हनुमानकी इस अप्रतिम संहार-शक्तिको विचारकर ही महर्षि अगस्त्यने श्रीरामसे कहा था—

प्रवाविविक्षोरिव सागरस्य लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य ।
लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥
(वा० रा० ७। ३६। ४८)

'प्रलयकालमें भूतलको आप्लावित करनेके लिये भूमिके भीतर प्रवेश करनेकी इच्छावाले महासागरके तुल्य, सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालनेके लिये उद्यत हुए संवर्तक अग्नि तुल्य तथा लोकसंहारके लिये उठे हुए कालके समान प्रभावशाली इन हनुमानजीके सामने कौन ठहर सकेगा ?'

त्रैलोक्यविजयी महापराक्रमी रावणकी स्वर्णनगरी लङ्काको अकेले ही भस्मीभूत कर देना उनकी संहारकारिणी शक्तिका स्पष्ट प्रमाण है।

हनुमानमें अन्तर्निहित पराक्रम और प्रहारकी प्रबल प्रचण्ड शक्तिका विचार करके ही प्रदान काल हनुमानको वर देते हुए पवनदेवने कहा था—

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः ।
अजयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुते ॥
रावणोत्सादनार्थानि रामप्रीतिकराणि च ।
रोमहर्षकराण्येष कर्ता कर्माणि संयुगे ॥
(वा० रा० ७। ३६। २१, २५)

१-हनुर्हट्टविलासिन्यां मृत्यावस्त्रे च रुग्भिदाम् ॥
द्वयोः कपोलावयवे हीन सन्धौ तु ना स्त्रियाम् ॥
(मेदिनीकोश)

इनकी विद्याके सम्बन्धमें महर्षि अगस्त्य कहते हैं—

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता
ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात्॥
(वा० रा० ७।३६।४७)

'सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञान तथा तपस्याके अनुष्ठानमें ये देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। नवों व्याकरणोंके सिद्धान्तको जाननेवाले ये हनुमानजी आपकी कृपासे अगले कल्पमें साक्षात् ब्रह्मा होंगे।'

प्रथम भेंटमें ही श्रीराम इनकी शिष्ट, स्निग्ध, परिष्कृत वाणीमें प्रौढ़ एवं विदग्ध सम्भाषणसे बहुत प्रभावित हुए थे तथा लक्ष्मणसे इनके सम्पूर्ण व्याकरण ज्ञान एवं चारों वेदोंके पाण्डित्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी (वा० रा०, कि० का० ३।२८-२९)।

वाल्मीकीय रामायणके अनुसार हनुमानने भगवान् सूर्यसे वेद, व्याकरण, छन्द एवं अन्य सभी शास्त्रोंका अध्ययन किया था।

श्रीहनुमानकी गतिके सम्बन्धमें ब्रह्माजीका वरदान बाल्यकालमें ही मिल चुका है—

कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः।
भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति॥
(वा० रा० ७।३६।२४)

'यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा, इच्छानुसार मन्द या तीव्रगतिसे जा सकेगा एवं इसकी गति कहीं भी रुक नहीं सकेगी। यह कपिश्रेष्ठ बड़ा यशस्वी होगा।'

वायुदेवताने अञ्जनादेवीको वर देते हुए अपने भावी पुत्रके विषयमें कहा था—

लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः॥'
(वा० रा० ४।६६।१९)

'लाँघने और छलाँग मारनेमें यह तुम्हारा पुत्र मेरे ही समान होगा।'

ऋक्षराज जाम्बवान्‌को हनुमानकी इस अतुल गति शक्तिका ज्ञान था। इसलिये जब सभी वानरगण समुद्र लाँघनेकी विकट समस्याको हल न कर सकनेके कारण विषादयुक्त हो रहे थे उस समय ऋक्षराज जाम्बवान्ने हनुमानको ही समुद्र लाँघकर जानकीकी खोज-खबर लानेकी प्रेरणा देते हुए कहा था—

उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव॥
(वा० रा० ४।६६।३६)

'वानरश्रेष्ठ हनुमान! उठो और इस महासागरको लाँघ जाओ, क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियोंसे बढ़कर है।'

स्वयं हनुमान कहते हैं—

मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे।
अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः॥
(वा० रा० ४।६७।२७)

'मैं वेगमें वायुदेवताके समान तथा गतिमें गरुडके समान हूँ। मेरा ऐसा विश्वास है कि मैं इस समय दस हजार योजनतक जा सकता हूँ।'

श्रीहनुमानके वेग एवं गतिकी अपूर्व शक्ति उनके समुद्रोल्लङ्घन तथा लङ्कासे गन्धमादनपर्वतपर जाकर त्वरित गतिसे ओषधिमण्डित पर्वतखण्डको ले आने एवं उसे पुनः प्रत्यस्थापित कर आनेमें प्रत्यक्ष दिखायी देती है।

'हनु' धातुके गत्यर्थमूलक 'प्राप्ति' अर्थकी दृष्टिसे विचार करें तो श्रीरामैकपरायण प्रभु-सेवक हनुमानको किस वस्तुकी प्राप्ति दुर्लभ रही। लङ्का जाकर श्रीजानकीजीका कुशल-समाचार सुनानेपर प्रभुने उनका आलिङ्गन कर अपना सर्वस्व ही उन्हें पुरस्काररूपमें दे दिया—

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥
(वा० रा० ६।१।१३)

लौकिक सिद्धि-प्राप्तिकी दृष्टिसे देखें तो उन्हें चिरजीवित्व एवं सूर्य-चन्द्रकी स्थिति-पर्यन्त स्थायी कीर्ति प्राप्त हुई। 'जबतक लोकमें रामकथा रहेगी, तबतक हनुमान भी जीवित हैं एवं उनकी कीर्ति भी स्थायी है।'

चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका॥
तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरे प्यसवस्तथा।
(वा० रा० ७।४०।२१-२२)

'अध्यात्मरामायणमें भगवती जानकी कहती हैं कि मारुत! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे, वहाँ सभी भोग मेरी आज्ञा—आशीर्वादसे तुम्हें प्राप्त होंगे'—

तत्राह जनकी सीता यत्र कुत्रापि मारुते॥
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया।
(६।१६।१६)

उसी दिन राहु भी सूर्यको ग्रसना चाहता था एवं उनके रथके ऊपरी भागमें बैठा था। हनुमानने जब सूर्यके रथके ऊपरी भागमें स्थित राहुका स्पर्श किया, तब वह डरकर भाग खड़ा हुआ और इन्द्रके पास जा पहुँचा। उसने इन्द्रसे शिकायत की कि उसका आज (अमावस्या)का ग्रास दूसरेको क्यों दिया गया है। उसी समय इन्द्र वज्र लेकर राहुके साथ घटनास्थलपर आये। इधर राहु इन्द्रको छोड़कर सूर्यकी ओर बढ़ा और उधर हनुमान दौड़ते हुए पर्वताकार राहुको बड़ा फल समझकर उसे पकड़नेके लिये उछले। राहु इन्द्रकी दुहाई देते हुए पीछेकी ओर मुड़कर भागा। इन्द्रने उसे अभयदान देते हुए कहा—'डरो मत, मैं अभी इस आक्रमणकारीको मार डालता हूँ।' इसपर हनुमानजी ऐरावतको भी फल समझकर उसे पकड़नेके लिये दौड़े। यह देखकर इन्द्रने अत्यन्त कुपित होकर उनपर अपने वज्रसे प्रहार किया। इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर ये एक पहाड़पर गिर पड़े। वहाँ गिरते समय इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी। इस प्रकार वामहनुके क्षतिग्रस्त होनेके कारण इन्द्रने इनका नाम 'हनुमान' रखा—

> मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हत।
> नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥
>
> (वा० रा० ७ । ३६ । ११)

इन्द्रने पवनदेवसे कहा—'मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु—ठुड्डी टूट गयी है, इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान' होगा।'

इस घटनाके देवलोकमें घटित होनेके कारण यह आधिदैविक कथा है। भौतिक दृष्टिसे इसका तात्पर्य है कि सूर्यके रूपमें आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म तथा ज्ञानप्रकाश, ऐरावतके रूपमें स्वर्गके राजसिक भोग एवं राहुके रूपमें निद्रा प्रमाद विषय-सुखादि तामसिक भोग जीवनके फल हैं। ज्ञान और ब्रह्मकी प्राप्तिमें तामसिक और राजसिक भोग प्रतिबन्धक हैं। इन दोनों प्रतिबन्धोंको जीत लेनेपर भी इन्द्रके रूपमें प्राप्त दैवी सिद्धियाँ तथा सात्त्विक अहंकार ब्रह्म प्राप्तिमें तथा यथार्थ ज्ञानकी उपलब्धिमें बड़े कठोर विघ्न सिद्ध होते हैं। जैसे हनुमानजी रघुनाथ-कृपा हैं, वैसे ही प्रत्येक जीव ईश्वर-अंश होनेसे लघु हनुमान है। प्रत्येक मनुष्यकी ज्ञानकी क्षुधा इतनी तीव्र होनी चाहिये कि वह पृथ्वीसे द्युलोक-पर्यन्त सभी विषयोंको अपनी बुद्धिमें आत्मसात् कर सके। उसमें इतना उत्साह और इतनी सामर्थ्य होनी चाहिये कि वह सीधे ज्ञानके स्रोततक पहुँचकर ज्ञानका साक्षात्कार कर सके। ऐसा करनेमें उसे आकाशकी सीमाको चीरकर द्युलोकतक पहुँचना पड़े तथा ज्ञानामृतको पानेके लिये देवताओंसे भी संघर्ष करना पड़े तो उसे झिझकना नहीं चाहिये। मृत्युलोकमें जाकर नचिकेताद्वारा आचार्य यमसे स्वर्गविद्या और ब्रह्मविद्या सीखनेकी बात तथा सुपर्णद्वारा स्वर्गसे अमृत-कलशको पृथ्वीपर लानेकी कथाएँ उपनिषदों, ब्राह्मणों एवं पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं।

आञ्जनेय—सुव्रता सती अञ्जनादेवीके पुत्र होनेके कारण हनुमानजी 'आञ्जनेय', 'अञ्जनिनन्दन' या 'अञ्जनिसुत' नामोंसे पुकारे जाते हैं। यह नाम उनके आधिदैविक रूपका संकेत देता है। अञ्जना पूर्वजन्ममें 'पुञ्जिकस्थला' नामकी एक श्रेष्ठ अप्सरा थीं। उनका अनुपम सौन्दर्य त्रिलोकीमें विख्यात था। शापवश वे कपियोनिमें आयी थीं।[2] एक बार जब वे मानवीरूप धारणकर सुमेरुशिखरपर विहार कर रही थीं, तभी पवनदेवने उनका मनसा संस्पर्श किया।[3] इस प्रकार वायुदेवताके मानस संकल्प एवं संस्पर्शसे अञ्जनाके क्षेत्रसे हनुमानका अयोनिज जन्म हुआ है। उनकी जन्मकथा सर्वथा दिव्य एवं रहस्यमयी है। उनकी बाल-लीला भी दिव्य ही है।

वस्तुतः परब्रह्मके अंशभूत सभी देवता नित्य एवं चिन्मय हैं। परमात्मा अपनी इच्छा एवं प्रयोजनके अनुसार उनमेंसे कुछको लोकमें अभिव्यक्त करते हैं, कुछको परोक्ष रखते हैं और कुछको अपनेमें ही अन्तर्निहित रखते हैं। अभिव्यक्त शक्तियोंमेंसे कुछ देवशक्तियाँ परमात्माके इच्छानुसार नित्य एवं स्थायी होती हैं तथा कुछ कार्य करके पुनः परब्रह्म-शक्तिमें ही तिरोहित हो जाती हैं। इसी भाँति आञ्जनेय नित्य ब्रह्मरूप हैं, पर उनकी अभिव्यक्ति श्रीरामावतारके समय रावणवधमें सहायता देनेके लिये हुई थी। तबसे वे पुनः इस लोकमें नित्य देवताके रूपमें कार्यरत हैं। श्रीरामचरितमानसके अनुसार हनुमानका प्रभाव चारों युगोंमें स्थायी है।

२–द्रष्टव्य—वा० रा० ४ । ६६ । ८–

३–६०—वा० रा० ४ । ६६ । १७-१८

जीवित हैं तो हम सबके जीवित होनेकी आशा की जा सकती है।'

इसके बाद हनुमान हिमालयसे दिव्य ओषधियुक्त पर्वतखण्डको युद्धभूमिमें लाकर उसकी गन्धसे ही सबको स्वस्थ कर देते हैं। हनुमानद्वारा लङ्काके दहनमें एवं उस भयानक अग्निज्वालासे स्वयं अस्पृष्ट रहनेमें भी उनके आग्नेयात्म होनेका प्रमाण मिलता है। आञ्जनेयकी वन्दनाका यह श्लोक भी उनके अग्निगर्भ-सम्भूत होनेका संकेत देता है—

> उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
> यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
> आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
> नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

'जिन्होंने लीलापूर्वक सिन्धु-सलिलका उल्लङ्घन करके जनकात्मजा सीताकी शोकाग्निको लेकर उसी अग्निसे लङ्काको जला दिया, उन आञ्जनेयको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।'

अब यदि पुञ्जिकस्थला, अञ्जना एवं वायुके वास्तार्थपर विचार करें तो भी देवत्मका, देवशक्तिके अभिव्यक्त होनेका सुन्दर रहस्य उद्घाटित होता है। पुञ्जिकस्थलाका अर्थ है—पुञ्जीभूत भूमि, अर्थात् सम्पूर्ण बिखरी हुई भौतिक चेतनाको एकत्र-संघटित करके एक समन्वयात्मक व्यक्तित्व (one integral being)के रूपमें प्रकट एकतानता एवं एकत्वको प्राप्त हुई भौतिक चेतनाकी सत्ता। 'अञ्जना' शब्द 'अञ्ज्' धातुसे निष्पन्न हुआ है, जिसके अर्थ हैं—व्यक्ति (विवेचन), म्रक्षण (स्निग्धता), कान्ति एवं गति। जो सौन्दर्यसम्पादित अपनी कान्ति एवं गतिसे अभिव्यक्त हो, उसका नाम 'अञ्जना' है। अञ्जना सौन्दर्यकी चेतनामें देवत्वको अभिव्यक्त करनेवाली सक्रिय एवं गतिशील भौतिक चेतनाकी शक्ति है। सुमेरुशिखरपर अञ्जनाका वायुसे सम्पर्क हुआ था। सुमेरु दिव्य चेतनाकी शिखरस्थभूमि है, जहाँ ब्रह्मादि देवोंकी नगरी है। जब सबकी व्यष्टि भौतिक चेतना पुञ्जीभूत एवं एकाग्र होकर देवत्व प्राप्तिके लिये ऊपरकी ओर उठती हुई दैवी चेतनाके उच्चतम शिखरोंका स्पर्श करती है, तब भगवान्‌की सक्रिय वायुरूपा दिव्य शक्ति साधककी चेतनामें दैवी चेतनाके अंशको उतारकर हनुमानके समान भागवत-सेवकके रूपमें दैवी कार्यको सम्पन्न करनेवाले दिव्य भागवत योद्धाको जन्म देती है। साधककी भौतिक चेतनामें दिव्य चेतनाके अवतीर्ण होनेके पश्चात् प्राणोंमें दिव्य स्पर्श-लाभके बाद साधक भगवान्‌का यन्त्र एवं जगत्‌में भगवान्‌के प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला, भगवदेकशरणाश्रित परम दिव्य योद्धा तथा महान् कर्मी बन जाता है।

भगवान् महावीर जब कभी मातृपक्षीय नाम 'आञ्जनेय'से सम्बोधित होते हैं, तब स्वभावतः ही उस नाममें जननी जातिके कष्टको दूर करनेकी या उसकी सेवा करनेकी वृत्ति मुख्यरूपसे संकेतित रहती है। अञ्जनानन्दन या आञ्जनेयसे सम्बन्धित श्लोकोंमें उन्हें विशेषरूपसे जगज्जननी जानकीके शोकका नाशक बताया गया है—

> 'अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।'

संसारमें साधु-सत स्त्रियोंके साथ मातृवत् व्यवहार करते हैं। वे उनका जननीके समान आदर करते हैं तथा उनका हित करनेके लिये सदा सचेष्ट रहते हैं। अतः श्री तुलसीदासजीके शब्दोंमें अञ्जनिपुत्र सतोंके सदा सहायक हैं—

> 'अंजनि पुत्र महाबलदाई। संतन के प्रभु सदा सहाई॥'

इस प्रकार 'आञ्जनेय' नाम हनुमानके देवोंकी पुञ्जीभूत शक्ति, सत्यबल, अग्निशक्ति एवं वायु शक्ति होनेके साथ-साथ परम भागवत योद्धा एवं मातृजाति और संतोंके सेवक तथा सहायक रूपका स्मरण दिलाता है। यह भाव इस श्लोकमें भी ध्वनित है—

> अञ्जनीगर्भसम्भूत कपीन्द्रसचिवोत्तम।
> रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनूमन् रक्ष सर्वदा॥

पवनपुत्र—हनुमान वायुदेवताके मानस औरस पुत्र हैं[13], इसलिये उन्हें 'मारुतात्मज', 'पवनपुत्र', 'वायुनन्दन', 'मारुति' आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वे वायुके अवतार हैं। रामायणमें मैनाकपर्वतने कहा है कि हनुमानकी पूजासे वायुदेवताकी पूजा हो जाती है।[14] वायु जगत्‌के प्राण हैं। देवोंमें सर्वाधिक ओजयुक्त एवं शक्तिसम्पन्न मुख्य हैं।[15]

१३—मरुतस्यौरसः पुत्रः। (वा० रा० ४। ६६। १०)

१४—पू०—वा० रा० ५। १। ११२ १३१

१५—प्राणो वै वायुः॥ (ऐ० ब्रा० २। १। १। १२)

यो वै प्राणः स वायुः॥ (ऐ० आ० ५। १। १। ४)

यहाँ उपासनाके एक रहस्य—नियमका उद्घाटन करना आवश्यक प्रतीत होता है । लौकिक शब्दोंकी भाँति उपासनामें पर्यायवाचित्वका नियम समानार्थमें काम नहीं करता । प्रत्येक देवताकी अनन्त शक्तियाँ एवं रूप होते हैं । उसकी प्रत्येक शक्ति और रूपको अभिव्यक्त करनेवाला एक नाम होता है । किसी एक नामसे देवताकी किसी विशेष शक्ति या रूपका जो बोधन होता है, वह दूसरे किसी नामसे नहीं हो सकता । इसी नियमका अनुसरण करते हुए तैत्तिरीय उपनिषद् (३ । १० । ४)में ब्रह्मके विभिन्न नामोंकी उपासनाका फल दरसाते हुए बताया गया है कि जिस प्रकारके नामसे ब्रह्मकी उपासना की जाती है, उस नामके अर्थके अनुकूल ही उपासकको उसका फल मिलता है ।

इससे यह स्पष्ट है कि एक ही देवताके विभिन्न नामोंमेंसे किसी एक नामसे उस देवताकी उपासना (या जप) किये जानेपर साधकको उस नामार्थके अनुकूल ही ब्रह्मदेवतासे फल प्राप्त होता है ।

शंकर-सुवन—श्रीहनुमानके शंकरपुत्र, रुद्रावतार या रुद्रके अंशसे उत्पन्न होनेके सम्बन्धमें निम्नलिखित भिन्न-भिन्न कथाएँ मिलती हैं—

'आनन्दरामायण'के अनुसार सती साध्वी अञ्जनाने पुत्रप्राप्तिकी कामनासे भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये उग्र तपस्या की । दीर्घकाल बीतनेपर भगवान् शंकर उसके तपसे प्रसन्न होकर प्रकट हुए एवं उसे वरदान माँगनेको कहा । तब अञ्जनाने शंकरके सदृश भोले भक्त, किंतु पवनके समान पराक्रमी पुत्र देनेकी प्रार्थना की । तब शिवजीने कहा कि 'रुद्रगणोंमेंसे ग्यारहवें महारुद्र तुम्हारे पुत्र होंगे । तुम हाथ फैलाकर एवं आँखें बंदकर मेरे ध्यानमें थोड़ी देर खड़ी रहो । थोड़ी देरमें पवनदेव तुम्हारे हाथोंमें प्रसाद रखेंगे । उस प्रसादके खानेसे निश्चय ही रुद्रावतार, परमतेजस्वी, वज्राङ्ग शरीर पुत्ररत्न तुम्हें प्राप्त होगा ।' ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये ।

इसी बीच राजा दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञमें अग्निद्वारा दी गयी यज्ञ-खीरका कुछ अंशको कैकयीके हाथसे एक चील लेकर आकाशमें उड़ गयी । उसी समय भगवत्कृपासे भयंकर आँधी उठी । वह खीर चीलके मुखसे छूटकर वायुद्वारा अञ्जनाकी अञ्जलिमें गिरी । तत्क्षण अञ्जनाने उसे खा लिया । उस खीरके खानेसे वह गर्भवती हुई एवं नौ मास बीतनेपर चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको मङ्गलवारके दिन मङ्गल-वेलामें श्रीहनुमानजीका जन्म हुआ ।'[१७]

'शिवपुराण' (शतरुद्रसंहिता, अ० २०)के अनुसार एक बार भगवान् विष्णुके मोहिनी रूपको देखकर भगवान् शिवके स्खलित हुए वीर्यको सप्तर्षियोंने कानोंके द्वारा अञ्जनाके गर्भमें स्थापित किया, जिससे शंकर-सुवन हनुमानजीका जन्म हुआ ।

'वायुपुराण' एवं 'भविष्यपुराण' (प्रति० ४)में कथाका रूप और ही है । एक बार शिवजीने अपने रौद्र तेजके रूपमें अञ्जनाके पति वानरराज केसरीके मुँहमें प्रवेश किया एवं अञ्जनाके साथ विहार किया । तत्पश्चात् वायुने भी केसरी वानरके शरीरमें प्रविष्ट होकर अञ्जनाके साथ रमण किया । इससे गर्भवती हुई अञ्जनाने वानर-मुखवाले पुत्रको जन्म दिया ।[१८]

उपर्युक्त कथाएँ केवल भौतिक अनर्गल प्रलाप नहीं हैं, ये गूढ आध्यात्मिक एवं दैवी विज्ञानके रहस्योंसे भरी हुई हैं । रहस्यसूत्र इन कथाओंमें विद्यमान हैं । लेखके विस्तार भयसे उन सबकी विवेचना सम्भव नहीं है ।

'विनयपत्रिका' (गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित)के परिशिष्टमें यह संक्षिप्त कथा मिलती है—'एक बार शिवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति की और यह वर माँगा कि 'हे प्रभो ! मैं दास्यभावसे आपकी सेवा करना चाहता हूँ, इसलिये कृपया मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये ।' श्रीरामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा । वही शिवजी श्रीरामावतारमें हनुमानके रूपमें अवतीर्ण होकर श्रीरामके प्रमुख सेवक बने ।''

इस विषयमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका मत है कि 'जिस शरीरके धारण करनेसे श्रीरामसे प्रेम एवं उनकी सेवा हो सके, वही शरीर आदरणीय है—ऐसा ही विचारकर श्रीरामसेवाका रस लेने एवं श्रीरामकी एकनिष्ठ अनन्य भक्तिके आनन्दका अनुभव करनेके लिये भगवान् शंकर रुद्रका देह—श्रीरामके उपास्यका स्वरूप त्यागकर श्रीरामके अनन्य सेवक हनुमान बन गये । (दोहावली १४२ १४३)

विनयपत्रिकाके पदोंमें गोस्वामीजीने हनुमानजीका शंकर

१७—डा० चमनलाल गौतमद्वारा सम्पादित 'मन्त्र-महाविज्ञान', तृतीय खण्ड, पृ० १५७

१८—सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, 'प्राचीन चरित्र कोष', पृ० १०११

अतएव 'आत्मा वै जायते पुत्रः' (पिताकी आत्माका चैतन्यांश ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है) के सिद्धान्तके अनुसार उनमें पिता पवनदेवके सभी गुण एवं शक्तियाँ हैं। स्वयं वायुदेवने अञ्जनादेवीसे उनके भावी पुत्रके गुणोंके सम्बन्धमें कहा था—

मनसास्मि गतो यत् त्वां परिष्वज्य यशस्विनि।
वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति॥
महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः।
लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः॥
(वा०रा० ४। ६६। १८-१९)

'हे यशस्विनि! तुम्हारा आलिङ्गन कर मैंने मानसिक गमन किया है, अतः तुम्हारा पुत्र मेरे समान ही वीर्यवान्, बुद्धि-सम्पन्न, महासत्त्व, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा उछलने-कूदने और चलनेमें मेरे समान ही होगा।'

वायु देवोंके दूत हैं,[15] अतः हनुमानका भी पवनसुतके अवतार श्रीरामका दूत होना सुसंगत है—'राम काज लगि तव अवतारा।' (मानस ४। २९। ३)

पवनपुत्रके नामसे संकेतित इन गुणोंका संकलन गोस्वामी तुलसीदासजीने सुन्दरकाण्डके प्रारम्भमें वायुनन्दन हनुमानकी वन्दनामें कर दिया है—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

'अतुलित बलके भण्डार, स्वर्णगिरि सुमेरुके समान काञ्चन-कान्तियुक्त शरीरवाले, राक्षसरूपी वनको जलानेके लिये अग्निके समान तेजस्वी, ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ, सकलगुण निधान, वानरोंके अधीश्वर, श्रीरामके प्रिय भक्त पवनपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ।'

'एकमुख-हनुमत्कवच'में मारुतात्मजका ध्यान इस रूपमें मिलता है—

उद्यदादित्यसंकाशमुदारभुजविक्रमम्।
कन्दर्पकोटिलावण्यं सर्वविद्याविशारदम्॥
श्रीरामहृदयानन्दं भक्तकल्पमहीरुहम्।
अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये मारुतात्मजम्॥

'उदय होते हुए सूर्यके समान अरुणवर्ण एवं तेजस्वी, प्रचण्ड भुजविक्रमशील, करोड़ों कामदेवोंके सदृश लावण्यसे युक्त, सर्वविद्याविशारद, श्रीरामके हृदयको आनन्द देनेवाले, भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान, अपने दोनों हाथोंमें अभय एवं वरदमुद्रा धारण किये हुए मारुतिका मैं चिन्तन करता हूँ।'

गोस्वामी तुलसीदासजीने पवनकुमारकी वन्दना करते हुए उन्हें संकटहरन, मङ्गलमूर्तिरूप, खल-वन-पावक, ज्ञानघन तथा हृदयमें शर-चापधारी श्रीरामका ध्यान करते हुए वर्णित किया है।

हनुमानके लिये वायुपुत्रका अर्थ बतानेवाले जिन शब्दोंका प्रयोग हुआ है, उनमें वायुके पर्यायवाची उन-उन शब्दोंमें उनके धातुमूलक मूलभावकी ध्वनि मिल जाती है। जैसे—'वा' धातुमूलक 'वातजात' या 'वायुपुत्र' शब्दोंके प्रयोगमें गति, पराक्रम, विद्या, शोकास्वादन, भक्ति आदि गुणोंकी प्रधानता है, 'पू' (पवित्र करना) धातुमूलक 'पवनतनय' और 'पवमाननन्दन' नामोंमें पवित्रता, पावनता या दोषोंके दूरीकरण और पवित्रीकरणकी भावना मुख्य है। 'मरुत्' शब्द मरणार्थक 'मृ' धातुसे बना है। (वायुके बिना या वायुकी वृद्धिमें प्राणियोंका मरण होता है, इसलिये वायुका नाम 'मरुत्' है), अतएव 'मरुत्'के पुत्रके रूपमें मारुतिका जहाँ स्मरण है, वहाँ उनमें प्रक्षोभकारक या संहारक शक्तिकी प्रधानता है। यह बात मारुतिके इस ध्यानपरक श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्॥
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजे॥

'उदय होते हुए करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, जगत्‌को अत्यधिक क्षुब्ध करनेवाले, श्रीरामके चरणोंके ध्यानमें लीन, सुग्रीवादि वानरप्रमुखोंद्वारा पूजित एवं अपने गर्जनासे राक्षसोंको भयभीत करते हुए मारुतिका ध्यान करें।'

वायुर्वै देवानामाशिष्ठः क्षिप्रिष्ठः॥ (मै० २। ५। १)
वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता॥ (तै० सं० २। १। १। १)
१५. न वा उ एतं म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु॥
(तै० आ० ४। ४२। १)

यहाँ उपासनाके एक रहस्य—नियमका उद्घाटन करना आवश्यक प्रतीत होता है । लौकिक शब्दोंकी भाँति उपासनामें पर्यायवाचित्वका नियम समानार्थमें काम नहीं करता । प्रत्येक देवताकी अनन्त शक्तियाँ एवं रूप होते हैं । उसकी प्रत्येक शक्ति और रूपको अभिव्यक्त करनेवाला एक नाम होता है । किसी एक नामसे देवताकी किसी विशेष शक्ति या रूपका जो बोधन होता है, वह दूसरे किसी नामसे नहीं हो सकता । इसी नियमका अनुसरण करते हुए तैत्तिरीय उपनिषद् (३ । १० । ४)में ब्रह्मके विभिन्न नामोंकी उपासनाका फल दरसाते हुए बताया गया है कि जिस प्रकारके नामसे ब्रह्मकी उपासना की जाती है, उस नामके अर्थके अनुकूल ही उपासकको उसका फल मिलता है ।

इससे यह स्पष्ट है कि एक ही देवताके विभिन्न नामोंमेंसे किसी एक नामसे उस देवताकी उपासना (या जप) किये जानेपर साधकको उस नामार्थके अनुकूल ही ब्रह्मदेवतासे फल प्राप्त होता है ।

शंकर-सुवन—श्रीहनुमानके शंकर पुत्र, रुद्रावतार या रुद्रके अंशसे उत्पन्न होनेके सम्बन्धमें निम्नलिखित भिन्न-भिन्न कथाएँ मिलती हैं—

'आनन्दरामायण'के अनुसार सती-साध्वी अञ्जनाने पुत्रप्राप्तिकी कामनासे भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये उग्र तपस्या की । दीर्घकाल बीतनेपर भगवान् शंकर उसके तपसे प्रसन्न होकर प्रकट हुए एवं उसे वरदान माँगनेको कहा । तब अञ्जनाने शंकरसे उदार भोले भक्त, किंतु पवनके समान पराक्रमी पुत्र देनेकी प्रार्थना की । तब शिवजीने कहा कि 'रुद्रगणोंमेंसे ग्यारहवें महारुद्र तुम्हारे पुत्र होंगे । तुम हाथ फैलाकर एवं आँखें बंदकर मेरे ध्यानमें थोड़ी देर खड़ी रहो । थोड़ी देरमें पवनदेव तुम्हारे हाथमें प्रसाद रखेंगे । उस प्रसादके खानेसे निश्चय ही रुद्रावतार, परमतेजस्वी, वज्राङ्ग-शरीर पुत्ररत्न तुम्हें प्राप्त होगा ।' ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये ।

इसी बीच राजा दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञमें अग्निद्वारा दी गयी यज्ञ-खीरके कुछ अंशको कैकेयीके हाथसे एक चील लेकर आकाशमें उड़ गयी । उसी समय भगवत्कृपासे भयंकर आँधी उठी । वह खीर चीलके मुखसे छूटकर वायुद्वारा अञ्जनाकी अञ्जलिमें गिरी । तत्क्षण अञ्जनाने उसे खा लिया । उस खीरके खानेसे वह गर्भवती हुई एवं नौ मास बीतनेपर चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको मङ्गलवारके दिन मङ्गल-वेलामें श्रीहनुमानजीका जन्म हुआ ।[17]

'शिवपुराण' (शतरुद्रसंहिता, अ० २०)के अनुसार एक बार भगवान् विष्णुके मोहिनी रूपको देखकर भगवान् शिवके स्खलित हुए वीर्यको सप्तर्षियोंने कानोंके द्वारा अञ्जनाके गर्भमें स्थापित किया, जिससे शंकर-सुवन हनुमानजीका जन्म हुआ ।

'वायुपुराण' एवं 'भविष्यपुराण' (प्रति० ४)में कथाका रूप और ही है । एक बार शिवजीने अपने रौद्र तेजके रूपमें अञ्जनाके पति वानरराज केसरीके मुँहमें प्रवेश किया एवं अञ्जनाके साथ विहार किया । तत्पश्चात् वायुने भी केसरी वानरके शरीरमें प्रविष्ट होकर अञ्जनाके साथ रमण किया । इससे गर्भवती हुई अञ्जनाने वानर-मुखवाले पुत्रको जन्म दिया ।[18]

उपर्युक्त कथाएँ केवल भौतिक अनर्गल प्रलाप नहीं हैं, वे गूढ़ आध्यात्मिक एवं दैवी विज्ञानके रहस्योंसे भरी हुई हैं । रहस्यसूत्र इन कथाओंमें विद्यमान हैं । लेखके विस्तार भयसे उन सबकी विवेचना सम्भव नहीं है ।

'विनयपत्रिका' (गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित)के परिशिष्टमें यह संक्षिप्त कथा मिलती है—'एक बार शिवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति की और यह वर माँगा कि 'हे प्रभो ! मैं दास्यभावसे आपकी सेवा करना चाहता हूँ, इसलिये कृपया मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये ।' श्रीरामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा । वही शिवजी श्रीरामावतारमें हनुमानके रूपमें अवतीर्ण होकर श्रीरामके प्रमुख सेवक बने ।''

इस विषयमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका मत है कि 'जिस शरीरके धारण करनेसे श्रीरामसे प्रेम एवं उनकी सेवा हो सके, वही शरीर आदरणीय है—ऐसा ही विचारकर श्रीरामसेवाका रस लेने एवं श्रीरामकी एकनिष्ठ अनन्य भक्तिके आनन्दका अनुभव करनेके लिये भगवान् शंकर बदल गए —श्रीरामके उपास्यका स्वरूप त्यागकर श्रीरामके अनन्य सेवक हनुमान बन गये । (दोहावली १४२ १४३)

विनयपत्रिकाके पदोंमें गोस्वामीजीने हनुमानजीको शंकर

१७—डा० चमनलाल गौतमद्वारा सम्पादित 'मन्त्र-महाविज्ञान', द्वितीय खण्ड, पृ० १५७

१८—सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, प्राचीन चरित्र कोश, पृ [illegible]

रूप मानकर 'देवमणि', 'रुद्र-अवतार', 'महादेव', 'पापपङ्कार निग्रह पुरारी', 'रुद्रग्रामणी', 'वामदेव', 'कालाग्नि', 'मन्मथ मथन'—इन नामोंसे सम्बोधित किया है।

सम्मान्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वेङ्कटाचार्यजी हनुमानजीके रुद्रपुत्र होनेकी वैदिक व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—"वेदोंमें आग्नेय प्राण 'शिव' एवं सौम्य प्राण 'शक्ति' शब्दसे अभिहित होता है। इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न सप्तविध प्राण ही 'मरुद्गण' हैं। 'मरुतो रुद्रपुत्रासः'—मरुद्गण रुद्रके पुत्र हैं।[19] ये मरुद्गण भौतिक वायुके जनक हैं, अतः वायु 'मारुत' नामसे कहा जाता है। पुराण विज्ञानके अनुसार अदिति (सूर्यसयुक्ता पृथ्वी)से मरुद्गणकी उत्पत्ति हुई। इन्द्रने अदितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर पहले उस एक गर्भके सात भाग किये। पुनः एक-एक भागके सात-सात खण्ड किये। इस प्रकार मरुतोंकी संख्या उनचास हुई। ये पृथ्वीसे लेकर द्युलोक पर्यन्त बहनेवाली वायुके उनचास प्रकार हैं। इनमेंसे पृथ्वीमें स्थित घनभावापन्न सर्वोदिमप्राण गणपति हैं। विरलभावापन्न सूर्यमें स्थित सर्वान्तिमप्राण महावीर (हनुमान) हैं। मरुद्गणके अन्तर्गत होनेसे ये रुद्रपुत्र हैं। वैज्ञानिक-आगममें हनुमान आञ्जनेयसे अभिन्न हैं।[20]"

इस प्रकार वैदिक दृष्टिसे देखें या पौराणिक कथाकी दृष्टिसे, हनुमानका अञ्जनिपुत्र एवं पवनपुत्र होनेपर शंकरसुवन या रुद्रावतार होना सुतरां उपपन्न हो जाता है। पीछे 'शतपथ ब्राह्मण'के प्रमाणसे हम बता आये हैं कि अञ्जनि मूलतः 'अग्निधेनु' है। वायु विश्वप्राण (cosmic life energy) है। वैदिक परिभाषामें रुद्र अग्नि भी हैं एवं प्राण भी।[21] लोहितार्द्र, शर्व, गिरीश, मन्युमान्, प्रदीप्त, भवप्रद्योत आदि घोर अग्निके नाम हैं। घोर अग्नि ही रुद्र है। रुद्र अग्नि प्रकाशात्मा भी हैं। अतः अग्निवंश एवं प्राणवंशके सम्बन्धसे हनुमान रुद्राश भी हैं।

शंकर-सुवन श्रीहनुमानका रुद्ररूप, श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति, एकनिष्ठ निष्काम सेवा, उनकी स्थिर चित्तता एवं योगी रूपका सन्देश देता है।

केसरीनन्दन—महाकपि केसरी सुमेरु पर्वतपर शासन करते थे।[22] अञ्जना उनकी पत्नी थी। स्मृति ग्रन्थोंमें पतिको 'बीजप्रद' एवं पत्नीको उसका 'क्षेत्र' बताया गया है। पतिके वीर्यको ग्रहणकर संतानको उत्पन्न करनेवाली होनेसे पत्नी क्षेत्ररूपा है। केसरीके क्षेत्र (पत्नी) अञ्जनामें वायुके मानस संकल्प-वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण हनुमान केसरीके भी पुत्र हैं।[23] हनुमानके शब्दोंमें वे उनके क्षेत्रमें निर्दिष्ट किये गये। जब केसरीने गोकर्णतीर्थ-पर्वतपर ऋषियोंकी प्रेरणासे शम्बसादन नामक असुरका वध किया, तब ऋषियोंने उसे पुत्र होनेका आशीर्वाद दिया था। तत्पश्चात् उनकी पत्नी अञ्जनाने वायुद्वारा हनुमानको जन्म दिया था।[25]

श्रीहनुमानकी जन्म कथा दिव्य एवं रहस्यमयी है। केसरीका सुमेरुपर शासन, महाकपित्व एवं कार्य किसी और ही अध्यात्म-तत्त्वकी ओर संकेत करते हैं। कान्तियुक्त सुमेरुपर्वत देवभूमि है, जिसके मध्यमें ब्रह्मा हैं एवं उसके चारों ओर यथास्थान अन्य देवोंके लोक हैं। इस देवलोकपर एवं ब्रह्मा, इन्द्रादि देवोंपर देवोंके परमात्माका ही शासन हो सकता है, सामान्य वानरका नहीं। केसरीका अर्थ है—'के—ब्रह्मणि सरतीति केसरी' अर्थात् जो 'क' रूप आनन्द-ब्रह्ममें नित्य स्वच्छन्द गति विहार करनेवाला हो, उसका नाम 'केसरी' है।[26] इस प्रकार केसरी ब्रह्मका आनन्द-सामर्थ्य है, जो देवोंको भी नियन्त्रित एवं अनुशासित करता है। ब्रह्मका आनन्द ही सृष्टिका आधार है। 'तैत्तिरीय उपनिषद्'के अनुसार 'आनन्दसे ही सभी भूत उत्पन्न होते हैं, उसीमें जीवन धारण करते हैं एवं अन्तमें उसीमें लीन होते हैं'[27]। केसरीनन्दन

१९—शतपथ—वैदिकेय ब्राह्मण पृ० ७७

२०—[illegible] मरुतो [illegible] । (तै० सं० २।१।११); अग्निर्वै रुद्रः । (श० ब्रा० ५।३।१।१०); एष रुद्रो यदग्निः । (मै० १।१।७।११, ऐ० ब्रा० ३।५); यज्ञ वा अस्य (अग्नेः) घोरा तनूर्यद् रुद्रः । (ऐ० सं० २।२।२।१६); रुद्रा वैश्वना अग्ना होरे सर्वे होष्यन्ति । (तै० ब्रा० ४।२।१।१९)

२१—प्राणो [illegible] रुद्राः प्राणाःति । (कठ० ११।५)

२२—ह० —ना० रा० ७।३५।१९

२३—स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः ॥ (वा० रा० ४।६६।२९)

२४—स च देवर्षिभिर्दत्तः पिता मम महाकपिः ॥ (वा० रा० ५।३५।८१)

२५—वा० रा०, सुन्दर ३५।८१—८२, ९०

२६—श्रीमद्भागवतपुराण ५।२१।७

२७—(क) आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ (तै० उ० ३।६)

कल्याण
वर्ष ४९
श्रीहनुमान-अङ्क

पवन-तनयके विभिन्न विशेषण

(लेखक—डा० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भक्तोंका परिगणन करते समय जो नाम मालाके सुमेरुकी भाँति सबसे पहले हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वह है—भक्तराज हनुमान। प्रबल पराक्रमी, जितेन्द्रिय श्रेष्ठ, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य महावीर हनुमानका जीवन भारतीय जनताके लिये सदैव प्रेरणाका स्रोत रहा है। आज भी ये मल्लविद्याके परमाराध्य रूपमें भारतके ग्राम-नगरादिमें प्रतिष्ठित तथा सुपूजित हैं। भारतमें स्थापित किसी भी अखाड़ेमें आप चले जायँ तो वहाँ मूर्ति या भित्ति चित्रके रूपमें श्रीहनुमानजीका श्रीविग्रह अवश्यमेव दृष्टिगोचर होगा। भारतके मल्ल आजके नास्तिक प्राय वातावरणमें भी भगवान् श्रीमहावीरका नाम-स्मरण करके ही अपने कार्य (कुश्ती आदि)में प्रवृत्त होते हैं। हिंदी-साहित्यके भक्तिकालका अध्ययन करनेपर विदित होता है कि जब भारतपर मुस्लिम आक्रान्ताओंके आक्रमण हो रहे थे एवं भारतीय जनता सर्वथा निराश्रित-सी स्थितिमें पहुँच गयी थी—उसके धर्म, देवस्थान आदि कुछ भी सुरक्षित न रह गये थे, उस समय उसके भय-ग्रस्त हृदयको सम्बल प्रदान करनेके लिये संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने लोक-नायकत्वको साधक बनानेके निमित्त 'हनुमान चालीसा', 'संकटमोचन', 'हनुमानबाहुक' आदि श्रीहनुमान चरित्र-परक रचनाओंद्वारा निष्प्राण हिंदू-जातिकी नसोंमें वीरताके ऊष्मल रक्तको प्रवाहित करनेका स्तुत्य अथच सफल प्रयास किया था। यही नहीं, उन्होंने इस प्राण प्रवाही संतका स्थायित्व प्रदान करनेके लिये काशीमें स्वयं संकटमोचन हनुमानकी स्थापना करके अपने अनुयायियों—भक्तोंद्वारा हनुमत्-पूजनकी पद्धति इस दृष्टिसे प्रचलित की थी, जिससे भारतीय हिंदू अपनेको दीन-हीन अथवा निराधार न मानकर इस प्रतीक-स्रोतसे प्रेरणा लेकर अपने कर्तव्य-कर्मके प्रति जागरूक हो जायँ। औरंगजेबके शासन-कालमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके आदर्शपर समर्थ स्वामी श्रीरामदास तथा छत्रपति शिवाजीने दस-दस कोसकी दूरीपर श्रीहनुमान-मन्दिरोंकी स्थापना कर महावीर हनुमानके नामपर अखाड़ों और दुर्गोंकी स्थापना की थी। यही अखाड़े आगे चलकर हिंदू धर्म-रक्षाके केन्द्र बने। आज भी दक्षिणके ग्राम 'ग्राम-मारुति'से अभिमण्डित हैं तथा इस बातके परिचायक हैं कि महावीर हनुमानने किस प्रकार भक्त अनुयायियोंको अनुप्रेरित कर—'स्वधर्मे निधनं श्रेय' (गीता ३।३५)की भावनासे ओत-प्रोत कर हिं[दुओं](हिंदुत्वकी रक्षा की थी।

श्रीहनुमान केवल वीर-वीर ही नहीं हैं, वे वीरोंके अपूर्व स्रोत हैं, जिसके स्पर्शमात्रसे दूसरे भी वीरता [...] अपनी महत्ता प्रतिपादित कर सकते हैं। भगवान् [...] चरणोंका स्पर्श करता हुआ उनका दिव्य रूप उनकी [...] निष्ठा, अप्रतिम स्वामि भक्ति, अनुकरणीय विनम्रता [...] आदर्श ओजस्विताका मूर्तिमान् प्रतीक है। अस्तु।

महावीर हनुमान क्या आधुनिक साधारण [...] यदि ऐसा होता तो भारतीय वाङ्मयमें उनका स्थान [...] रूपमें न होता—

(क) अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।
(मानस ५। श्लो[क])

(ख) मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥
(श्रीरामरक्षास्तो[त्र])

इसके अतिरिक्त भगवान् श्रीरामके श्रीहनुमान[से] हुए वार्तालापसे प्रभावित होकर अपने अनुज लक्ष्म[णसे] कहना—

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥
(वा० रा० ४। ३। [...])

'हे लक्ष्मण ! जान पड़ता है कि इस व्यक्ति (हनुमान)ने समग्र व्याकरण शास्त्रका बहुश अध्ययन किया है। यह कारण है कि हमारे साथ इतनी विस्तृत बातें करते हुए इन्होंने एक भी अपशब्द नहीं कहा है।'—सिद्ध करता है कि श्रीहनुमान एक विशिष्ट नर अर्थात् वानर थे। वैसे तो [...] देखना पिलाते हैं और वह मानवका अनुकरण कर [...]

...न्‌हू' आदि शब्दोंका यथावत् उच्चारण करता है, परंतु आजतक यह पढ़ने या सुननेमें नहीं आया कि किसी बंदरने कभी कुछ पढ़ा या मानवका अनुकरण करते हुए तद्वत् कुछ कहना सीखा हो। परंतु महावीर हनुमान इतने मेधावी थे कि वानर जातिके नायक सुग्रीवने उन्हें अपने प्रधान मन्त्री पदपर अधिष्ठित किया था तथा भगवान् श्रीरामने प्रथम परिचयमें ही उन्हें अपना आत्मीय कहकर सदाके लिये अपना लिया था।

श्रीहनुमानजीका वास्तविक स्वरूप क्या है, इसका किंचित् आभास पूर्वोक्त श्लोकोंसे मिलता है। प्रथम श्लोकमें श्रीहनुमानजीका प्रथम विशेषण है—'अतुलितबलधामम्'। इसके गम्भीरतापूर्वक अनुशीलनसे विदित होता है कि तुलसीदासजी श्रीहनुमानजीको मात्र बलवान् कहकर ही संतुष्ट नहीं थे, बल्कि वे उन्हें बलवान्से भी बढ़कर कुछ और कहना चाहते थे। यही कारण है कि उन्हें 'बलवान्' न कहकर 'बलधाम' अर्थात् बलका भण्डार कहा। यह इसलिये कि श्रीहनुमानजी स्वयं तो बलवान् हैं ही, दूसरोंको बल प्रदान करनेमें समर्थ हैं, अतः यह विशेषण सार्थक है।

दूसरा विशेषण उनकी देहका है—'हेमशैलाभदेहम्'। इसका अर्थ है—*श्रीहनुमानजीकी देह स्वर्णिम शैलकी आभाके* सदृश है। उससे यह भाव परिलक्षित होता है कि श्रीहनुमानजी कठिनाइयोंसे तपकर उसी प्रकार समुज्ज्वल वर्णके अधिपति बने हैं, जैसे स्वर्ण अग्निमें तपकर होता है। इससे स्पष्टतः यह ध्वनित होता है कि यदि व्यक्ति अपने शरीर तथा उसकी कान्तिको स्वर्णिम बनाना चाहता है तो *उसे उसी प्रकार अपनेआपको कठिनाइयोंके तापमें तपाना* चाहिये, जिस प्रकार श्रीहनुमानजीने अपने शरीरको तपाया था तभी उसे बल और ओजकी प्राप्ति होगी।

तीसरा विशेषण है—'दनुजवनकृशानुम्'। इसका सामान्य अर्थ है—राक्षसकुलरूपी वनके लिये अग्निके समान। विशिष्ट अर्थके लिये कहा जा सकता है कि इसका अभिप्राय समदृष्टिसे है। जैसे वनमें प्रज्वलित अग्नि बिना छोटे-बड़े वृक्षका विचार किये सभीको जलाकर भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी भी दनुजवत् कुकर्मकर्ताओंको बिना विचार किये धूलमें मिला देते हैं [illegible] भी वे उसके बाह्य रूप आदिका ध्यान नहीं करते। यही कारण है कि जब साधु वेषधारी रावण कालनेमिने परम ईश्वरभक्तके रूपमें उन्हें भरमानेका प्रयास किया, तब उसे समाप्त कर देनेमें उन्होंने जरा भी विलम्ब न किया। इस प्रकार उन्होंने अपने अनुयायियोंको यह शिक्षा दी कि 'यदि तुम अपने मार्गको निष्कण्टक बनाकर लक्ष्य सिद्धि चाहते हो तो मार्गमें आनेवाली प्रत्येक आपदाको सूक्ष्म दृष्टिसे पहचानकर, विवेक द्वारा उसका परिहार करते आगे बढ़ो और तब देखो सफलता किस प्रकार तुम्हारे मार्गमें पलक-पाँवड़े बिछाती है।' इस प्रकार यह विशेषण भी अन्वर्थक ही है।

चौथा विशेषण है—'ज्ञानिनामग्रगण्यम्'। इसका सामान्य अर्थ है—ज्ञानियोंमें सर्वप्रथम गिननेयोग्य। इसका विशेष अर्थ है—श्रीहनुमानजी इसलिये ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं कि उन्होंने अपने बुद्धिबलसे ही सुरसा, लंकिनी आदि विपदाओंको अपने मार्गसे हटाकर, इतना ही नहीं, उनका आशीर्वाद लेकर सफलता प्राप्त की एवं भगवान् श्रीरामका चिर-सहचर बननेका सौभाग्य प्राप्त किया। अप्रत्यक्ष रूपमें यह विशेषण इस भावको व्यञ्जित करता है कि वही व्यक्ति भगवान्‌के चिर कृपाप्रसादका अधिकारी हो सकता है, जो निज विवेक-बलसे अपने मार्गमें आनेवाले विघ्नोंको न केवल पराभूत करे, अपितु उन्हें इस प्रकार विवश कर दे कि वे उसके बुद्धि-वैभवके सामने नतमस्तक हो उसे हृदयसे आशीर्वाद दें उसकी सर्वाङ्गीण सफलताके लिये।

पाँचवाँ विशेषण है—'सकलगुणनिधानम्'। इसका सामान्य अर्थ है—सम्पूर्ण गुणोंके आगार। विशिष्ट अर्थ है—दुष्टके साथ दुष्टता और सज्जनके साथ सज्जनताका व्यवहार करनेमें प्रवीण। श्रीहनुमानजीके चरित्रके *अध्ययनसे यह सुस्पष्ट है कि वे यथोचित व्यवहारमें कितने* दक्ष थे। इसी दक्षताका परिणाम था कि भगवान् श्रीरामकी अहर्निश सेवाका सौभाग्य ही उन्हें प्राप्त नहीं हुआ, अपितु वे पार्षद प्रमुख बनकर अपनी परम्परामें भी अग्रणी बने।

छठा विशेषण है—'वानराणामधीशम्', अर्थात् वानरोंके प्रभु। सभी जानते हैं कि वानर अत्यन्त चञ्चल होते हैं पलभर भी गम्भीरता बनाये रखना उनके वशकी बात नहीं। ऐसी जातिपर शासन करना किसी सामान्य व्यक्तिके वशकी बात नहीं। उनपर वही व्यक्ति अपना प्रभुत्व जमा सकता है, जो उनकी नस-नससे परिचित हो तथा जो चञ्चलताको गम्भीरतासे उद्दण्डताको नम्रतासे अथवा चञ्चलताको चञ्चलतासे, उद्दण्डताको उद्दण्डतासे दबानेमें समर्थ हो। अतः यह विशेषण भी सार्थक है। श्रीहनुमानजीके

राक्षसोंको मच्छरकी तरह मसल देनेकी शक्तिसे सम्पन्न। 'रामायणमहामालारत्नम्'—इस पदसे ध्वनित होता है कि रामायणरूपी महामाला वीररत्न श्रीहनुमानजीके ओजस्वी कार्योंके बिना सर्वथा अधूरी है, अर्थात् यदि रामायणसे महावीर हनुमानका चरित्र निकाल दिया जाय तो वह उतनी शोभन न रह सकेगी, जितनी आज है।

निम्न श्लोक इससे कुछ और आगे बढ़कर उनकी चारित्रिक विशेषताओंका उद्घाटन करता है—

> अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।
> कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम्॥

'जो अञ्जनाके आनन्दको बढ़ानेवाले, अतिशय वीर, श्रीजानकीजीके शोकके निवारण करनेवाले, अक्षके संहारक तथा लङ्काके लिये भयंकर अर्थात् भयकी सृष्टि करनेवाले हैं, उन वानरराजकी मैं वन्दना करता हूँ।'

इस श्लोकके भावोंपर विशेष विचार करनेपर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने कहा है—'कृत्स्नं रामायणं प्रोक्तं सीतायाश्चरितं महत्।'—अर्थात् उन्होंने सम्पूर्ण रामायणमें भगवती सीताके ही महान् चरित्रका उद्घाटन किया है।' परंतु वह उद्घाटन भी श्रीहनुमानके ही लोकोत्तर कार्योंके माध्यमसे हुआ है, अतः उनकी महत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। उपर्युक्त श्लोकका प्रथम पद है—'अञ्जनानन्दनम्'। इसका भाव है—अञ्जना नामक अपनी माताके आनन्दको बढ़ानेवाले। यह आनन्द केवल दो बातोंसे बढ़ता है—पुत्रकी वीरतासे अथवा पुत्रकी श्रीराम-भक्तिसे, क्योंकि कहा गया है—

> 'पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥'
> (मानस २। ७४। १)

> माइ एसा पूत जण, कै दाता कै सूर।
> नाहिं त रह तू बाँझड़ी, मती गवाँवै नूर॥

—ये दोनों ही बातें महावीर, भक्तप्रवर हनुमानके जीवनमें पद-पदपर दृष्टिगोचर होती हैं।

'वीरम्' शब्दसे ध्वनित होता है कि वे वास्तविक वीर थे। इसीलिये रावणपालित लङ्कामें निःशङ्क प्रविष्ट होकर उन्होंने रावणपुत्र अक्षको कालके गालमें भेज दिया तथा स्वर्णिम लङ्काको अग्निके अर्पण करके स्वयं अक्षत ही बने रहे। इन सारे कार्योंको उन्होंने माताकी अन्वेषण-यात्राके प्रसङ्गमें ही किया था। इसी कारण वे भगवान् श्रीरामका संदेश अतीव कुशलतापूर्वक भगवती सीताको देकर उनका शोक शमन करनेमें सफल हुए थे। इस तरह 'अतुलितबलधामम्' तथा 'जानकीशोकनाशनम्'के साथ 'वीरम्' विशेषण विशेष रहस्यका परिचायक है।

निम्नाङ्कित श्लोक 'मनोजवम्' शब्दकी मनोरम व्याख्या प्रस्तुत करता है—

> उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
> यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
> आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
> नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्॥

'जिन्होंने सिन्धुकी अगाध जलराशिको लीला-ही-लीलामें लाँघकर तथा जनकात्मजाकी शोकाग्निको लेकर उसीसे लङ्काको फूँक डाला, उन आञ्जनेयकी मैं हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ।'

विशेष भावकी दृष्टिसे देखा जाय तो विदित होता है कि 'सलीलम्' शब्द 'उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलम्'के साथ तभी सार्थक होता है, जब मनोजवत्वयुक्त कर्ता हो अन्यथा 'सलीलम्'की सार्थकतामें व्याघात आ जाता है। साथ ही यह तो सभीको ज्ञात है कि जल अग्निका शामक होता है, परंतु श्रीहनुमान उस अथाह जलराशिको लाँघकर जब भगवती सीताके पास पहुँचते हैं, तब उस सामान्य जलसे सीताके शोकजनित दाहको शान्त नहीं करते। अपितु 'मनोजवम्' अर्थात् मनके सदृश वेगवाले अथवा समानगतिक होनेके कारण भगवती जानकीके मनोभावको जानकर दाहसे दाहको शान्त करते हैं। यों भगवती सीताको शान्ति पहुँचानेके निमित्त रावणपालित लङ्काको जलाकर उन्होंने जानकीकी मनःकामना पूरी की। इस प्रकार श्रीहनुमानजीके प्रत्येक विशेषण अन्वर्थक तथा उनके वैशिष्ट्यके परिचायक हैं।

महावीर हनुमानजीकी जिस अप्रतिम गुण-गरिमाका गान स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, भरत, भगवती सीता, भगवान् श्रीकृष्ण, नरावतार अर्जुन आदिने किया है, उसका आकलन इस लघु लेखमें सम्भव नहीं। अतः मैं गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके शब्दोंमें वीरशिरोमणि श्रीहनुमानके चरणोंमें अपनी भाव-सुमनाञ्जलि समर्पित कर इस लेखको समाप्त करता हूँ—

> प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
> जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥
> (मानस १। १७)

आराध्य-चरणोंमें श्रीहनुमान

श्रीहनुमानजीका यह उपदेश भी महत्त्वपूर्ण है—

नैव योज्यो राममन्त्रः केवलं मोक्षसाधकः ।
ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेद् रामसेवकम् ॥
(रामरहस्योपनिषद् ४ । ११)

'स्मरण रहे, लौकिक क्षुद्र कामनाकी पूर्तिके लिये सर्वदा मोक्षसाधक, परम कल्याणप्रदायक श्रीराममन्त्रका आश्रय भूलकर भी नहीं लेना चाहिये। श्रीरामकृपासे मेरेद्वारा ही अभिवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो जायगी। कोई भी सांसारिक काम अटक जाय तो मुझ श्रीरामसेवकका स्मरण करना चाहिये।'

वाञ्छितार्थं प्रदास्यामि भक्तानां राघवस्य तु ।
सर्वदा जागरूकोऽस्मि रामकार्यधुरंधरः ॥
(श्रीरामरहस्योपनिषद् ४ । १२)

'मैं श्रीराघवेन्द्र प्रभुके प्रिय भक्तोंको मनोऽभिवाञ्छित सभी वस्तुएँ प्रदान करता रहता हूँ, मैं भक्तोंकी कामना पूर्ति स्वरूप श्रीरामकार्य करनेके लिये सर्वदा जागरूक हूँ।'

हनुमानजी यह नहीं चाहते कि मेरे रहते हुए मेरे स्वामीको भक्तोंका दुःख देखना पड़े। यदि कोई मेरी उपेक्षा कर मेरे स्वामीको क्षुद्र कामनाके लिये पुकारता है तो मुझे बड़ी वेदना होती है। इसीलिये 'श्रीरामार्चा-पद्धति'में बार-बार यह उपदेश आता है—

रामसिद्धयथरूपोऽयं हनूमान् मारुतात्मजः ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तोषयेद् भक्तकामदम् ।
(२ । १९४०)

'पवनकुमार श्रीहनुमानजी श्रीरामकृपाकी सिद्धिके प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। अतः भक्तोंकी कामना पूर्ति करनेवाले श्रीहनुमानजीको सम्पूर्ण रीतिसे संतुष्ट करना चाहिये।'

एक बार श्रीरामचन्द्रजीने श्रीहनुमानजीसे कहा—'हनुमान! यदि तुम मुझसे कुछ माँगते तो मेरे मनको बड़ा संतोष होता; अतः आज तो हमसे कुछ अवश्य माँग लो।' तब श्रीहनुमानजीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥
(वा० रा० ७ । ४० । १६)

'श्रीरामचन्द्र प्रभो! मेरा परम स्नेह नित्य ही आपके श्रीपादपद्मोंमें प्रतिष्ठित रहे। हे श्रीरघुवीर! आपमें ही मेरी अविचल भक्ति बनी रहे। आपके अतिरिक्त और कहीं मेरा आन्तरिक अनुराग न हो। कृपया यही वरदान दें।'

इस अनन्य निष्ठाको एक अन्य प्रसङ्गमें श्रीहनुमानजीने और अधिक स्पष्ट रूपसे व्यक्त किया है—

रामादन्यं नतश्चेत् पततु शिरसि मे कालदण्डः प्रचण्डो
जिह्वामेतां द्विजिह्वो दशतु रघुपतेर्नामतोऽन्यं जपेच्चेत् ।
कुम्भोलिमामकीना विदलतु हृदयं चिन्तये चेत्ततोऽन्यं
जानाति सर्ववेत्ता सकलहृदिगतो वेत्तु वान्यो न वेत्तु ॥

'श्रीराम-पादारविन्दोंको त्यागकर यदि मेरा मस्तक किसी अन्यके चरणोंपर झुके तो मेरे सिरपर प्रचण्ड कालदण्डका तत्काल प्रहार हो। मेरी जीभ श्रीराम-नामके अतिरिक्त यदि अन्य तुच्छ मन्त्रोंका जप करे तो दो जीभवाला काला भुजङ्ग उसे डस ले। मेरा हृदय श्रीरामचन्द्र प्रभुको भूलकर यदि अन्य किसीका चिन्तन करे तो भयंकर वज्र उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। मैं यह सत्य कहता हूँ अथवा यह औपचारिक चाटुकारिता मात्र ही है, इस बातको सर्वान्तर्यामी आप तो पूर्णरूपसे जानते ही हैं, अन्य कोई जाने अथवा न जाने।' यह है श्रीहनुमानजीकी अनन्य श्रीराम निष्ठा। ऐसे महाभाग दूसरी वस्तु भला, स्वप्नमें भी क्यों चाहेंगे? हाँ, एक बात अवश्य है—आनन्दरूप परात्पर प्रभु श्रीरामके नाम-रूप-लीला धाममें तथा श्रीगीता और श्रीराममें कोई भेद नहीं है, अतएव 'रामचरित सुनिबेको रसिया' होनेके नाते आपने प्रभुसे यह याचना की—

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥
(वा० रा० ७ । ४० । १७)

'हे श्रीरघुवीर! जबतक श्रीराम-कथा इस भूतलको पावन करती रहे, तबतक निस्संदेह (उस मधुरातिमधुर लीला-कथाको श्रवण करनेके लिये) मेरे प्राण इस शरीरमें ही निवास करें।'

इसी भावको सुव्यक्त करते हुए आचार्योंने कहा है—

तादृग् गुणानुभवितं राघवस्य
यस्यायकं चरितमन्यजन्मन्यसुदुर्लभं ।
नाऽनैव हन्त हनुमान् परमो विमुक्तेः
पुरवाक्पुरं चरितं तव सेवते सौ ॥
(सुन्दरसिन्धुरा श्रीरामाज्ञो ९ । ९ । ...)

ही सुने जाते हैं । इन्हींके बाहु-वीर्यसे लङ्का, सीता, लक्ष्मण, विजय, राज्य तथा मित्र-बन्धुजन मुझे पुनः प्राप्त हुए हैं ।' (वा० रा० ७ । ३५ । २-९) ।

भगवती सीताके द्वारा प्रसन्नतासे अमूल्य मणियोंका हार दिये जाते समय भी प्रभु श्रीरामने ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—

तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः ।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥
(वा० रा० ६ । १२८ । ८२)

'तेज, धैर्य, यश, दक्षता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और बुद्धि—ये गुण हनुमानमें नित्य स्थित हैं ।'

एक नहीं, अनेक स्थानोंपर श्रीहनुमानजीके इन गुणोंकी चर्चा है—

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥
(वा० रा० ५ । १ । २०१)

'वानरेन्द्र ! जिस पुरुषमें तुम्हारे समान धैर्य, सूझ-बूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चारों गुण विद्यमान हैं, वह अपने कर्ममें कभी असफल नहीं होता ।'

धीरता, गम्भीरता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, सुशीलता, वीरता, भद्रता, नम्रता, निरभिमानिता आदि अनेक गुणोंसे सम्पन्न हनुमानको तुलसीदासने महर्षि वाल्मीकिके समान विशुद्ध विज्ञानमय कहकर,* सुन्दरकाण्डमें इनकी 'सकलगुणनिधानम्' के उद्घोषसे सादर वन्दना की है—

'सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥'

श्रीहनुमानजीमें सभी गुणोंका अद्भुत समन्वय है । ऐसे निपुण भी हैं वे, जिनमें सभी कार्योंको सम्पन्न करनेकी क्षमता है । यद्यपि प्रभुके सभी भक्त बड़े महिमामय हैं, किंतु श्रीहनुमानजी-जैसा सौभाग्यशाली कोई नहीं है । 'श्रीरामचरितमानस'में इस सम्बन्धमें एक अनुपम प्रसङ्ग प्राप्त होता है । उनकी ऐसी ही विश्वसनीयता, निपुण-बुद्धि-सम्पन्नता तथा श्रीराममें उनके दृढ़ विश्वासको देखकर श्रीसीताजीने उन्हें अमोघ आशीर्वाद दिया है—

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना । होहु तात बल सील निधाना ॥
अजर अमर गुन निधि सुत होहू । करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥
(मानस ५ । १६ । १)

यहाँ श्रीसीताजीने अनेक बातोंके लिये हनुमानजीको आशीर्वाद दिया है—'वे बल-शील-निधान हों, अजर अमर गुणनिधि हों और श्रीरामजी उनपर बहुत छोह करें ।' जब इस प्रकार सभीके द्वारा चाहे जानेवाले सर्वोच्च गुणोंकी प्राप्तिका उन्हें अमोघ आशीर्वाद मिल गया, तब सर्वगुणसम्पन्न होनेसे उन्हें कौन रोक सकता है?, किंतु यहाँ एक बड़ी मार्मिक बात है । प्रारम्भिक पाँच वरदानोंको तो जैसे उन्होंने सुना ही नहीं, सम्भव है, विनम्रता और निरभिमानिताके कारण बल-शील-निधान, गुणनिधि और अजर अमर होने-जैसे वरदान भी उनको बोझ ही मालूम पड़े होंगे, किंतु जैसे ही उन्होंने यह सुना—

'करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥'
(मानस ५ । १६ । २)

—वैसे ही वे वरदान प्राप्तिसे फूल जानेवाले 'अहं'को तलाक देकर, प्रभु प्रेमके अथाह सागरमें डूब गये । ऐसा है, पूर्ण-समर्पित, अहंकार विहीन अद्भुत चरित्र श्रीहनुमानजीका ।

ऐसे ही अन्य अनेक प्रसङ्गोंमें उनकी इस अहं विहीन अद्वितीय चारित्रिक विशेषताका पता चलता है । एक अन्य प्रसङ्ग देखिये । लङ्कासे लौटनेके पश्चात् प्रभुने श्रीहनुमानकी प्रशंसा की—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता । लोचन नीर पुलक अति गाता ॥
(मानस ५ । ३२ । १-४)

पर प्रभुके इन शब्दोंको सुनते ही श्रीहनुमानजी प्रभुके मुखको देखकर, 'त्राहि त्राहि' कहकर उनके चरणोंमें गिर पड़े । उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति तो निमित्तमात्र है भगवान् जिससे जो कुछ चाहते हैं, करा लेते हैं । इसलिये 'रामचरितमानस'में श्रीरामके साथ निरन्तर रहनेतक श्रीहनुमान

* सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥
(मानस बालका० श्लोक ४)

१ निम्नलिखित देवताओंने भी वरदानमें इनको अनेक आभरण प्रदान किये हैं ।

चरित है। जो दास हो सके, वही वीर होता है। हनुमान दास होनेके साथ ही 'अतुलितबलधाम' भी हैं और 'ज्ञानिनामग्रगण्य' होते हुए भी कुशल राजनीतिज्ञ, सेनानायक एवं निपुण दूत भी हैं। आजके दिग्भ्रान्त तथा कलुषितान्तःकरण समाजके उद्धारके लिये ऐसे ही विविध गुणोंसे युक्त भक्तोंकी आवश्यकता है, जो इस धरतीपर पुनः राम-राज्यकी स्थापना कर सकें।

जहाँतक हनुमानके बल और पराक्रमका प्रश्न है, रामायण तथा पुराणोंमें इनके अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं। अतुलबलशाली राक्षसोंसे घिरी हुई लंकाकी अकेले ही यात्रा करना और अपना समस्त दूत-कार्य श्रेष्ठ रीतिसे सम्पन्न कर उसको जला डालना कितना अद्भुत कार्य था! लङ्का-दहन करके जैसे आधी लङ्काई तो उन्होंने पहले ही जीत ली। राक्षस प्रजाका आत्म-प्रत्यय समाप्त कर डाला, प्रजाका अपने सामर्थ्यके ऊपर विश्वास समाप्त हो गया। इस कर्मका प्रभाव इतना शक्तिशाली तथा राक्षसोंको मानसिक आघात पहुँचानेवाला था कि उनका चैतन्य अन्ततक भी तैयार नहीं हो सका। यह शत्रु-राष्ट्रका पूर्णतया तेजोभङ्ग श्रीहनुमानका कितना महत्त्वपूर्ण कार्य है! इस अपूर्व कार्यको भी श्रीहनुमान 'सो सब तव प्रताप रघुराई।' (मानस ५। ३२। ८) कहकर स्वीकार करते हैं।

समुद्र-लङ्घनके समय श्रीहनुमानने जाम्बवन्तसे कहा था—'बताओ, मुझे लङ्कामें जाकर क्या करना होगा? क्या इस समुद्रको यहींसे पी लूँ या लङ्काको उठाकर त्रिकूट पर्वतसहित समुद्रमें फेंक दूँ? उस दुष्ट रावणको पकड़कर कीड़ेकी भाँति पैरोंसे मसल दूँ या तलवारसे राक्षसोंका नाश ही किया दूँ।' (हनुमन्नाटक ६। ५६) इसी प्रकारके विचार उन्होंने शक्ति-प्रहारसे घायल श्रीलक्ष्मणजीके अचेत होनेपर भी व्यक्त किये थे—'प्रभो! आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वर्ग अथवा पातालसे अमृत उठा लाऊँ, चन्द्रमाको पकड़कर श्रीराम-चन्द्रमा इनके मुखमें निचोड़ दूँ, यदि यमराज कुछ गड़बड़ करें तो उन्हें भी पकड़कर चबा जाऊँ, जिससे आजसे कोई मर ही नहीं। सूर्योदय होते ही कुमार न बचेंगे, यदि यह डर है तो सूर्यको ही पकड़कर पातालमें क्यों न बंद कर दूँ, जिससे सूर्यका उदय ही न हो सके'—

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमु वाहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि
कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि॥
(हनुमन्नाटक १३। १६)

ऐसा है उनका अद्भुत पराक्रम और वज्रवत् कल्प! मुष्टि-प्रहारसे रावण तथा कुम्भकर्ण आदिको धराशायी करना, किसीसे भी न उठाये जानेवाले शेषावताररूप श्रीलक्ष्मणको क्षणभरमें रण-प्राङ्गणसे उठाकर श्रीरामके समीप ले आना तथा संजीवनी बूटीके लिये पर्वतको ही उठा लाना आदि प्रसङ्ग उनके अतुल बलके परिचायक हैं। महाभारतमें भी उनके पराक्रमके सूचक अनेक प्रसङ्ग हैं। बुद्धि-कौशलके साथ उनके अतुलित बलकी भी तुलना किसीसे भी नहीं की जा सकती।

सफल और श्रेष्ठ दूतके रूपमें उनकी उपलब्धियाँ विस्मयकारी हैं। उनके द्वारा सम्पादित कार्य अनेक कमनीय तथा चकित कर देनेवाले हैं। इसलिये उनको सामान्य दूतकी श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता। वे सुग्रीवके दूत बने तो श्रीराम-लक्ष्मणके हृदयपर भी उन्होंने अपना अधिकार कर लिया। श्रीरामके दूत बने तो वे श्रीसीतामें जीवन-धारण करनेकी कामना जगानेवाले बन गये। भयभीत, दुःखी, चिन्तित और मृत्युकी कामना करनेवाली श्रीसीताको उन्होंने किस कुशलता और मनोवैज्ञानिक ढंगसे अपनी ओर उन्मुख किया, यह सम्पूर्ण प्रसङ्ग अत्यन्त मार्मिक है। पुनः श्रीरामके दूत बन तो केवल श्रीभरतके ही नहीं, श्रीराम-वियोगमें कृशशरीर अयोध्याकी सम्पूर्ण प्रजाके ही प्राणदाता बन गये।

सीता-खोजके समय समुद्र-पार करते हुए उन्हें पग-पगपर विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। प्रलोभन, बौद्धिक जाल और भयके रूपमें उपस्थित बाधाओंको उन्होंने बुद्धिमत्ता परिश्रमसे सफलतापूर्वक पार करते हुए, अपनी दूरदर्शितासे सूक्ष्म रूप धारणकर लङ्कामें प्रविष्ट हो अद्भुत चातुर्यसे अपने अनेक कार्य सिद्ध किये। वहाँसे लौटनेपर भी हनुमानने लङ्काके दुर्ग, फाटक, सेना-विभाग तथा संक्रम आदिका पूरा विवरण श्रीरामको कह सुनाया, जो उनके लङ्कापर आक्रमण करते समय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ।

संसार-सागरको पार करते समय प्रत्येक व्यक्तिको ऐसी ही अनेक विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ता है। जीवनका मार्ग सर्वत्र ही कँटीला

रूप एक—गुण अनेक

(लेखक—पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, सद्विद्यालङ्कार)

महावीर हनुमानने भगवान् श्रीरामके आदर्श रामराज्यकी स्थापनामें जो सहयोग दिया, वह शतकोटि रामायणोंमें स्वर्णाक्षरोंसे अङ्कित है। पवनकुमारका सर्वोच्च आदर्श था—सच्चे अर्थमें सेवक बनना और उसी आदर्शके लिये उन्होंने अपना तन-मन-सर्वस्व श्रीरामके चरणोंमें समर्पित कर दिया। लङ्काधिपति रावणद्वारा अपहृत श्रीजानकीजीको पुनः प्राप्त करनेमें उन्होंने अपने बहुविध गुणोंका जो परिचय दिया, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए स्वयं श्रीरामने कहा—'तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई'। भला सच्चे सेवकको इससे अधिक और चाहिये भी क्या?

भारतकी सीतास्वरूप भाग्यलक्ष्मी आज समुद्रपार उठायी जा रही है, भारतस्थित अनेकविध आसुरी बल—सुबाहु, मारीच, ताड़का और शूर्पणखाका साक्षात् रूप धारण करके उस सीताको उड़ा ले जानेमें सहयोग प्रदान कर रहे हैं। ऐसे विकट एवं कराल समयमें श्रीमहावीरकी आवश्यकता है।

वैसे तो श्रीहनुमानजी स्वयं भगवान् श्रीशंकरके अवतार होनेसे गुणोंके साक्षात् स्वरूप ही थे, किंतु उनका यह अवतार तो सेवकके रूपमें ही हुआ था। उनके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन होना तो असम्भव है, तथापि सेवकोचित निम्नाङ्कित गुणोंका हम यहाँ यत्किंचित् वर्णन करेंगे, जो मानव-जातिके लिये अनुकरणीय हैं। वे गुण हैं—१—स्वामिभक्ति (भगवद्भक्ति), २—अपूर्व त्याग, ३—ज्ञानकी पूर्णता, ४—निरभिमानिता एवं ५—अद्भुत चातुर्य।

स्वामिभक्ति (भगवद्भक्ति)

श्रीहनुमानजी नवधा भक्तिके प्रकारमें सातवीं दास्य भक्तिके आचार्य माने जाते हैं। स्वामीकी आज्ञापालन ही सेवकका परम धर्म है। वैसे तो श्रीहनुमानजी अवधकी बाल-लीलासे ही भगवान् श्रीरामके सच्चे सेवक थे, किंतु उनका विशेष परिचय हमें तब मिलता है, जब श्रीसीताजीके वियोगमें भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण ऋष्यमूकपर्वतके निकट आते हैं। इधर अपने भाई बालिके भयके कारण सुग्रीव पर्वतके ऊपर अपने अनुचरोंके साथ निवास करते थे। उन्होंने इन अपरिचित वीर पुरुषोंको पहचाननेके लिये श्रीहनुमानजीको भेजा और वे ब्राह्मण बटुका रूप बनाकर वहाँ गये भी—

विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।' (मानस ४।०।३)

श्रीराम-लक्ष्मणके श्याम-गौर शरीर, मनोहर मुखाकृति और सौम्य स्वरूपसे प्रभावित होकर श्रीमहावीरने श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका परिचय पूछा। अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए श्रीरामने कहा—'हम दोनों भाई अवध-नरेश श्रीदशरथजी के पुत्र हैं। मेरा नाम राम है और ये मेरे अनुज लक्ष्मण हैं। सीतादेवीके साथ हमलोग वनमें आये थे, दुर्भाग्यवश कोई राक्षस जनक-नन्दिनीका अपहरण कर लिया। उसीकी खोजमें हम दोनों वन-वनमें फिर रहे हैं।'

इन वचनोंको सुनकर श्रीहनुमानजीकी जो दशा हुई, उसका वर्णन जड़ लेखनी कैसे कर सकती है? माता अञ्जना देवीके मुखसे उन्होंने श्रीरामका वर्णन सुना था और उसी सीता-हरणके प्रसङ्गकी मानो यहाँ पुनरावृत्ति हो रही थी। श्रीशंकरजीने जिनके बालस्वरूपका दर्शन भी करा दिया था, उन्हीं प्रभु श्रीरामको आज किशोरावस्थामें सम्मुख खड़े देखकर भी हनुमानके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। अपने आराध्य देवके दर्शन करके वे अपना वास्तविक रूप छिपा न सके। प्रभु-चरणोंको पाकर भला बाह्याडम्बर कहाँतक टिक सकता है? उन्होंने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया और श्रीरामके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। बाल-सखा एवं अनन्य भक्तको भगवानने अपने हृदयसे लगा लिया। भक्त और भगवान्‌के इस मिलनका भला कौन वर्णन कर सकता है?

फिर क्या था? सुग्रीवके साथ मैत्री हुई और बालिका वध हुआ तथा श्रीसीताजीकी खोजके लिये श्रीहनुमानजीका प्रयाण हुआ। समुद्रोल्लङ्घनकर वे लङ्का पहुँचे और श्रीसीताजीको मुद्रिका प्रदान कर वापस लौटे।

स्वामीकी आज्ञाका पालन ही सेवकका एकमात्र धर्म होता है। लङ्का-प्रवेश, लक्ष्मण-मूर्च्छा, रावण-वध और रामके बाद अयोध्या-लीलामें भी हमें श्रीमहावीरकी अनन्य भक्तिका दर्शन होता है। ऐसा भक्त तो स्वयं भगवान्‌को भी सुखदायी होता है। यही कारण है कि हम आज भी भारतके प्रत्येक स्थानमें श्रीमहावीरके दर्शन करते हैं। इतना ही नहीं, हमें गाँव-गाँवमें छोटे-मोटे रूपमें प्रतिष्ठित श्रीहनुमानजीके दर्शन होते हैं।

आपके संतोष एवं तृप्तिके लिये मैं दूसरा जन्म धारण कर आपका ही अनन्य उपासक 'तुलसी' बनकर आपके ही अनुग्रहसे इस 'महानाटक' ग्रन्थके आधारपर सज्जनहिताय 'रामचरितमानस' नामक अपूर्व ग्रन्थकी रचना करूँगा और अपने उस जीवन-पर्यन्त आपका उपासक बना रहूँगा।" इस प्रकार कहकर श्रीवाल्मीकिजी अपने आश्रमको पधारे।

आजके युगमें 'सेवक' शब्द सस्ता बन गया है। जनताका गला भी उसका सेवक बनकर ही घोंटा जाता है। किंतु सेवा धर्म तो परम गहन है। उसका मूलमन्त्र है—आदर्श त्याग, तप और कठोर धर्माचरण। वातानुकूलित प्रासादोंमें बैठकर, विशाल अट्टालिकाओंमें रहकर 'सेवक' बनना तो 'सेवक' शब्दका अपमान ही करना है। वस्तुतः तन, मन, धन, यश एवं मानका त्याग करनेके बाद ही सच्ची सेवाका अधिकार प्राप्त होता है। श्रीमहावीरके आदर्श त्यागके उदाहरण रामायणमें भरे पड़े हैं।

ज्ञानकी पूर्णता

श्रीहनुमान जैसे 'अतुलितबलधाम' हैं, वैसे ही वे ज्ञानके भी साक्षात् स्वरूप हैं। श्रीरामके मिलन प्रसङ्गके समय श्रीहनुमानजीके गुणोंका परिचय कराते हुए स्वयं श्रीरामजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि "श्रीहनुमानजी 'त्रयी'के ज्ञाता और सम्पूर्ण व्याकरणको जाननेवाले हैं।"

आध्यात्मिक ज्ञानके तो वे मूर्तिमान् स्वरूप ही थे। अन्य रामायणोंसे ज्ञात होता है कि ऋषियोंकी विशाल समाज उन्होंने ब्रह्मज्ञानका उपदेश भी दिया था। उनका ज्ञान केवल मौखिक आडम्बरमात्र नहीं था, वह आचरणद्वारा भी प्रत्यक्ष होता था। एक बारका प्रसङ्ग है कि जब श्रीयुगल सरकार अपने भवनमें विराजमान थे, उसी समय मारुतिजीने आकर उन्हें प्रणाम किया। श्रीरामने विनोदार्थं उनसे प्रश्न किया—'कस्त्वम्?'—तुम कौन हो?' तुरंत ही हनुमानजीने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

> देहदृष्ट्या तु दासोऽस्मि जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
> वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

'प्रभो! देहदृष्टिसे तो मैं आपका दास हूँ, जीवदृष्टिसे विचारसे आपका अंश हूँ और तत्त्वदृष्टिसे देखनेपर वस्तुतः जो आप हैं, वही मैं हूँ—ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।'

क्यों न हो, जो ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी श्रीजनकनन्दिनीका कृपापात्र है और जो ज्ञानस्वरूप सदाशिवके अवतार हैं, वे ही 'ज्ञानिनामग्रगण्यम्' भी हैं।

निरभिमानित्व

'अभिमानं सुरापानम्' कहकर शास्त्रकारोंने अभिमानको सुरापानके समान त्याज्य माना है। श्रीहनुमानजीमें लेशमात्र भी अभिमान नहीं था। निरभिमानित्व भक्तिके मार्गमें भूषणस्वरूप है—भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणकारणम्।—भक्तोंकी दीनता ही भगवत्संतोषका कारण कही गयी है।' लङ्का दहनके पश्चात् वहाँसे वापस आनेपर श्रीरामने पवनकुमारकी प्रशंसा करते हुए उनसे पूछा—

> कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
>
> ×　　　×　　　×
>
> नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
>
> (मानस ५। ३२। २½, ४)

भला, अपने स्वामीद्वारा की हुई प्रशंसा निरभिमान सेवक श्रीमारुतिको कैसे अच्छी लगती? अपनी प्रशंसाका श्रवण ही तो अभिमान उत्पन्न करा देता है। अतः श्रीहनुमानजीने उत्तर दिया—

> 'सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥'
>
> (मानस ५। ३२। ४½)

यदि यहाँ कोई स्वार्थी सेवक होता तो वह स्वयं भी उसीके साथ साथ अपनी प्रशंसाके गीत गाने लगता। किंतु श्रीहनुमानजी तो जानते ही थे कि 'इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः।'—स्वयं (प्रशंसा सुननेसे या) अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा करनेसे तो स्वर्गाधिपति इन्द्र भी लघुताको प्राप्त हो जाते हैं।' अतः वे बोले—

> ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
> तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥
>
> (मानस ५। ३३)

हनुमानजीके इसी निरभिमानित्व-महागुणको देखकर स्वयं भगवान् श्रीराम बोल उठे—'कपिवर! तुम्हारे किये हुए अनेक उपकारोंमेंसे एक-एक उपकारके बदले यदि मैं अपना प्राण अर्पण कर दूँ तो भी शेष उपकारोंका ऋण तो मेरे जिम्मे रह ही जाता है। अतः तुम्हारे ऋणसे मैं किसी प्रकार उऋण नहीं हो सकता।'

श्रीहनुमानजीकी साधना और सिद्धि

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

साधनकी परिणति अथवा पूर्ति कामनारहित हो जानेमें और उपासनाकी सिद्धि उपास्यके निकट नित्य आसन (निवास) प्राप्त कर लेनेमें है। स्वार्थरहित सेवा ही सफलताका मूलमन्त्र है। इस कसौटीपर जो भी खरा उतरता है, उसीकी अनुभूति, उसीकी अभिव्यक्ति और उसीकी कृति समाजका सच्चा मार्गदर्शन कर सकती है। इसीलिये कामनारहित उपासनारत होकर और सेवाका व्रत लेकर कार्य करनेवाले श्रीहनुमानजीकी जय-जयकारोंकी प्रतिध्वनि आज भी हमलोगोंको चारों ओर सुननेको मिलती है।

साधनाके द्वारा जिसने अपने अङ्ग प्रत्यङ्गोंको वज्राङ्ग बना लिया है, उपासनाके द्वारा जिसका हृदय निर्मल—विमल हो चुका है और सेवाके द्वारा जिन्होंने समस्त ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति कर ली है, ऐसा सदाचार एवं सद्विचार-समन्वित राजदूत अथवा रामदूत ही भारतकी अपहृत शान्तिरूपी सीताकी खोज कर सकता है और उसे वापस ला सकता है।

महावीर होनेपर भी जिसको किंचिन्मात्र अपने बलका अभिमान नहीं, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य होनेपर भी जो परम विनीत है तथा पर्वताकार होते हुए—बड़प्पनकी सर्वोच्च सीमापर पहुँच करके भी जो रामकार्य अथवा राष्ट्रकार्य करनेके लिये अपने व्यक्तित्वको मशक समान अत्यन्त छोटा बनानेमें जरा भी हिचक नहीं करता, ऐसे ही साधकका आदर्श चरित्र आजके दानवत्वका दमन कर हमारे नरत्वको नारायणत्वकी ओर ले जा सकता है।

जो बढ़ते हुए लोभरूपी सुरसाके मुखमें प्रवेश करके भी उसके वशमें नहीं हो सके, जिन्होंने कामकी प्रतिमूर्ति सिंहिका निशिचरीके अनेक प्रयास करनेपर भी उसके मायावी रूप लावण्य-सौन्दर्यकी ओर दृष्टितक नहीं डाली और जो क्रोध रूपिणी लंकिनीके बार-बार ललकारनेपर भी उत्तेजित न होकर धैर्यपूर्वक सामान्य मुष्टिक प्रहारद्वारा उसके 'अहंकार' नाश (शमन) कर सके, उन्हीं लोभ, काम और क्रोधके विजेता श्रीहनुमानजीने अपने गन्तव्य मार्गको कभी अवरुद्ध नहीं होने दिया। वे जल, थल अथवा आकाश मार्गसे जब, जहाँ, जिस कार्यके उद्देश्यसे गये, उसे पूरा करके ही लौटे। आकाशमें व्यवधान डालनेवाली सुरसा, जलके भीतरसे आकर्षित करनेवाली सिंहिका और थलपर विघ्न पहुँचानेवाली लंकिनी—इन तीनोंके ही मनोरथ उनके सामने विफल हुए। अहंकारियोंका मान-मर्दन करनेके कारण ही तो आप 'हनुमान' कहे जाते हैं।

स्वार्थरहित सेवाके पथपर बढ़ते ही भयानक और विपरीत शक्तियाँ भी अनुकूल कार्य करने लग जाती हैं। तभी तो हनुमानजीके लिये विषने अमृतका, शत्रुने मित्रका, समुद्रने गो-पदका और अग्निने अपनी दाहकता छोड़कर शीतलताका रूप धारण कर उनके कार्यमें सहयोग किया। विषधर सर्पोंकी माता सुरसा अमृतोपम आशीर्वाद देकर गयी, शत्रुका सगा भाई विभीषण सहजसे 'रामदास' बन गया, अगाध और अपार समुद्र गो-पद-जलकी भाँति लाँघा जा सका और धधकती हुई अग्निको अपनी पूँछमें बाँधकर हनुमानजी लंकाको जला सके।

अनिच्छित होते हुए भी सच्चे साधककी सेवाके लिये सिद्धियाँ अपने-आप सदैव तैयार रहती हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—इन अष्ट सिद्धियोंने रामकार्य सम्पादनमें हनुमानजीको सहायता देनेके उद्देश्यसे होड़ लगा रखी थी। लघुरूप धारण करनेमें अणिमा, विशाल रूप धारण करनेमें महिमा, गुरु (अधिक भारवाला) बननेमें गरिमा, विशाल होते हुए भी हल्कापन लानेमें लघिमा, अलभ्य वस्तु उपलब्ध करने-करानेमें प्राप्ति, रामकार्यके लक्ष्यको पूरा करनेमें प्राकाम्य, निर्भयता लानेमें ईशित्व तथा किसीको भी वशमें कर लेनेमें वशित्व-नामकी सिद्धियोंने हनुमानजीकी सतत सहायता की।

वैसे तो सम्पूर्ण संसार पञ्चतत्त्वोंके वशमें है, किंतु राम-कार्य अथवा राष्ट्र-कार्यके लिये सर्वस्व-समर्पण करनेकी दृढ़ भावना रखनेवाला साधक इन पञ्चतत्त्वोंको अपने वशमें कर लेता है। वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि तथा जल—इन सभीने हनुमानजीको समयोचित योगदान दिया। पवनदेवने उनचास पवन चलाकर, आकाशने हनुमानजीकी गर्जनाके स्वरको और अधिक गम्भीर एवं भयानक बनाकर, पृथ्वीने देहकी गुरुताको ग्रहण करके, अग्निने हनुमानजीकी

श्रीहनुमानजीकी साधना और सिद्धि

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

साधनकी परिणति अथवा पूर्ति कामनारहित हो जानेमें और उपासनाकी सिद्धि उपास्यके निकट नित्य आसन (निवास) प्राप्त कर लेनेमें है। स्वार्थरहित सेवा ही सफलताका मूलमन्त्र है। इस कसौटीपर जो भी खरा उतरता है, उसीकी अनुभूति, उसीकी अभिव्यक्ति और उसीकी कृति समाजका सच्चा मार्गदर्शन कर सकती है। इसीलिये कामनारहित उपासनारत होकर और सेवाका व्रत लेकर कार्य करनेवाले श्रीहनुमानजीकी जय-जयकारोंकी प्रतिध्वनि आज भी हमलोगोंको चारों ओर सुननेको मिलती है।

साधनाके द्वारा जिसने अपने अङ्ग प्रत्यङ्गोंको वज्राङ्ग बना लिया है, उपासनाके द्वारा जिसका हृदय निर्मल—विमल हो चुका है और सेवाके द्वारा जिन्होंने समस्त ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति कर ली है, ऐसा सदाचार एवं सद्विचार-समन्वित राजदूत अथवा रामदूत ही भारतकी अपहृत शान्तिरूपी सीताकी खोज कर सकता है और उसे वापस ला सकता है।

महावीर होनेपर भी जिसको किंचिन्मात्र अपने बलका अभिमान नहीं, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य होनेपर भी जो परम विनीत है तथा पर्वताकार होते हुए—बड़प्पनकी सर्वोच्च सीमापर पहुँच करके भी जो रामकार्य अथवा राष्ट्रकार्य करनेके लिये अपने व्यक्तित्वको मशक समान अत्यन्त छोटा बनानेमें जरा भी हिचक नहीं करता, ऐसे ही साधकका आदर्श चरित्र आसुरी दानवत्वका दमन कर हमारे नरत्वको नारायणत्वकी ओर ले जा सकता है।

जो बढ़ते हुए लोभरूपी सुरसाके मुखमें प्रवेश करके भी उसके वशमें नहीं हो सके, जिन्होंने कामकी प्रतिमूर्ति सिंहिका निशिचरीके अनेक प्रयास करनेपर भी उसके मायावी रूप लावण्य-सौन्दर्यकी ओर दृष्टितक नहीं डाली और जो क्रोध रूपिणी लंकिनीके लगातार ललकारनेपर भी उत्तेजित न होकर धैर्यपूर्वक सामान्य मुष्टिक प्रहारद्वारा उसके अहंकारका नाश (दमन) कर सके, उन्हीं लोभ, काम और क्रोधके विजेता श्रीहनुमानजीने अपने गन्तव्य मार्गको कभी अवरुद्ध नहीं होने दिया। वे जल, थल अथवा आकाश मार्गसे जब, जहाँ, जिस कार्यके उद्देश्यसे गये, उसे पूरा करके ही लौटे। आकाशमें व्यवधान डालनेवाली सुरसा, जलके भीतरसे आकर्षित करनेवाली सिंहिका और थलपर विघ्न पहुँचानेवाली लंकिनी—इन तीनोंके ही मनोरथ उनके सामने विफल हुए। अहंकारियोंका मान मर्दन करनेके कारण ही तो आप 'हनुमान' कहे जाते हैं।

स्वार्थरहित सेवाके पथपर चलते ही भयानक और विपरीत शक्तियाँ भी अनुकूल कार्य करने लग जाती हैं। तभी तो हनुमानजीके लिये विषने अमृतका, शत्रुने मित्रका, समुद्रने गो-पदका और अग्निने अपनी दाहकता छोड़कर शीतलताका रूप धारण कर उनके कार्यमें सहयोग किया। विषधर सर्पोंकी माता सुरसा अमृतोपम आशीर्वाद देकर गयी, शत्रुका सगा भाई विभीषण रावणसे 'रामदास' बन गया, अगाध और अपार समुद्र गो-पद-जलकी भाँति लाँघा जा सका और धधकती हुई अग्निको अपनी पूँछमें बाँधकर हनुमानजी लंकाको जला सके।

अनिच्छित होते हुए भी सच्चे साधककी सेवाके लिये सिद्धियाँ अपने-आप सदैव तैयार रहती हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—इन अष्ट सिद्धियोंने रामकार्य सम्पादनमें हनुमानजीको सहायता देनेके उद्देश्यसे होड़ लगा रखी थी। लघुरूप धारण करनेमें अणिमा, विशाल रूप धारण करनेमें महिमा, गुरु (अधिक भारवाला) बननेमें गरिमा, विशाल होते हुए भी हलकापन लानेमें लघिमा, अलभ्य वस्तु उपलब्ध करने-करानेमें प्राप्ति, राम-कार्यके लक्ष्यको पूरा करनेमें प्राकाम्य, निर्भयता लानेमें ईशित्व तथा किसीको भी वशमें कर लेनेमें वशित्व-नामकी सिद्धियोंने हनुमानजीकी स्वतः सहायता की।

वैसे तो सम्पूर्ण चराचर पञ्चतत्त्वोंके वशमें है, किंतु राम-कार्य अथवा राष्ट्र-कार्यके लिये सर्वस्व-समर्पण करनेकी दृढ़ भावना रखनेवाला साधक इन पञ्चतत्त्वोंको अपने वशमें कर लेता है। वायु, आकाश, पृथ्वी, अग्नि तथा जल—इन सभीने हनुमानजीको समयोचित योगदान दिया। पवनदेवने उनचास पवन चलाकर, आकाशने हनुमानजीकी गर्जनाके स्वरको और अधिक गम्भीर एवं भयानक बनाकर, पृथ्वीने देहकी गरुताको हल्का करके, अग्निने हनुमानजीकी

और उनकी प्रभावशालिनी वाक्‌शक्तिकी प्रशंसा जिनके द्वारा की गयी है, उनके लिये स्वयं वाल्मीकि लिख गये हैं—'रामो द्विर्नाभिभाषते ।—श्रीराम दो प्रकारकी बातें नहीं कहते ।' श्रीरामके इस कथनमें किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति नहीं खोजी जा सकती ।

मन, कर्म और वाणीकी एकता

हनुमानजी स्वयं महामनस्वी व्यक्ति थे । उनका मन जितना पवित्र और सबल था, उतने ही उनके कर्म भी पवित्र और सबल थे । उनका मन और उनके कर्म जिस प्रकार पवित्र और सबल थे, उसी प्रकार उनकी वाणी नितान्त निष्कपट, यथार्थ और ओजस्विनी थी । इस प्रकार शुद्ध मन, शुद्ध कर्म और शुद्ध वाग्बलवाले श्रीहनुमान सदैव सत्यके ही पक्षधर बने रहे और उसी सत्यमें एकाकार होकर वे उसके लिये प्रत्येक संकट झेलनेको तत्पर रहते थे । इसके प्रमाणके लिये वाल्मीकीय रामायणका महान् आधार हमारे सम्मुख आज भी विद्यमान है ।

श्रीहनुमान आजके युगके लोगोंकी भाँति उगते सूर्यके पुजारी नहीं थे । उनको वालीके बल, प्रताप, ऐश्वर्य और राज्यसे कोई प्रयोजन न था । वे उन सुग्रीवके साथ थे, जिनके पक्षमें सत्यको छोड़कर और कुछ था ही नहीं । श्रीहनुमानमें ऐसी क्षमता थी कि वे धर्म और सत्यके पक्षका तथा अधर्म और असत्यके पक्षका अन्तर तुरंत समझ लेते थे और तत्क्षण ऐसा निर्णय करते थे, जो स्थायी होता था । संसारका कोई भी प्रलोभन उन्हें उससे डिगा नहीं सकता था । अपनी महती प्रज्ञाके द्वारा उन्होंने श्रीरामके उस सत्यमार्गकी महत्ता पहचान ली थी, जिसके लिये यह घोषित हो चुका है—'यतो धर्मस्ततो जयः ।'

श्रीरामका पक्षधर होना सहज काम नहीं था । श्रीरामके पक्षमें किसी भी प्रकारके भौतिक सुखोंकी प्राप्ति सम्भव नहीं थी । उनके पक्षधरके लिये यह अनिवार्य था कि वह सत्यका ओरसे असत्यसे संघर्ष करे । बाली और रावण-जैसे असत्योन्मुख और सत्ता-सम्पन्न विपक्षियोंका विरोध झेलना कोई सरल कार्य नहीं था । यह विरोध श्रीहनुमानपर न तो सुग्रीवके द्वारा लादा गया था और न श्रीरामके ही द्वारा यह उनपर मढ़ा गया था । यह उनके स्वयंके तत्त्व चिन्तनका परिणाम था । एक सत्याग्रही स्वयंसेवककी भाँति उन्होंने स्वयं ही इस विरोधका वरण किया था । इसीलिये वे जीवनभर सुग्रीवके सचिव और श्रीरामकी सेनाके स्वयंसेवक बने रहे । श्रीरामकी महती कृपा प्राप्त करके भी उन्होंने सदैव सुग्रीवको ही अपना नेता और अधिपति माना, यह उनकी एक बड़ी विशेषता थी । श्रीराम और सुग्रीवको जीवनभरके लिये एक करनेमें हनुमानने अपनी जिस विलक्षण प्रतिभाका परिचय दिया था, उसी विलक्षण शक्तिका सतत परिचय देते हुए वे सुग्रीवके सचिव और श्रीरामके सेवक बने रहे ।

श्रीहनुमानका सत्यार्पित जीवन

श्रीहनुमानने अपना सारा जीवन सत्यको समर्पित कर रखा था । सत्यके लिये समर्पित होकर उन्होंने अपनेआपको श्रीराममय बना डाला था । विषम परिस्थितियोंमें भी उन्होंने भ्रष्टाचारके सम्मुख घुटने नहीं टेके । उन्होंने उस समय अपने राज्यके युवराज अङ्गदको भी धीरज बँधाया, जब वे मृत्युसे डरकर अपने कर्तव्यधर्मसे च्युत होने जा रहे थे । जब श्रीहनुमान समुद्र पार करनेके हेतु साथियोंसे विदा होने लगे, वह समय भी बड़ा विषम था । न जाने कौन-सी विपत्ति उनके सामने आ जाय ! समुद्रमें प्रविष्ट होना मृत्युके मुखमें ही प्रविष्ट होना तो था । फिर समुद्रके उस पार एकाकी हनुमानके सामने शत्रुओंका वह भयंकर साम्राज्य था, जिसकी तुलनामें संसारकी सभी भीषणताएँ फीकी हो जाती थीं । यदि हम अपने-आपको श्रीहनुमानके स्थानपर रखकर परिस्थितिका चिन्तन करें, तभी हम यह समझ पायेंगे कि श्रीहनुमानमें कितनी अधिक सत्यनिष्ठा थी । उनमें कैसा ज्वलन्त शौर्य था और कितना निर्भीक था उनका स्वभाव ! कितना साहस था उनमें !

महाविपत्तिका साक्षात्कार

महाविपत्ति साकार हो उठी ! श्रीहनुमान शत्रुपक्षके बंदी हो गये । उन्हें अपमानपूर्वक मारा-पीटा गया । तिरस्कारपूर्वक बाँधकर, नगरकी सड़कोंपर पैदल चलाकर उन्हें राज-दरबारमें उस सम्राट्‌के सम्मुख उपस्थित किया गया, जिसके आतङ्कसे उस युगकी धरती थर्‌ थर्‌ काँप रही थी । ऐसे सम्राट्‌के सम्मुख बंदी होकर जानकी कल्पना अवश्य कीजिये और तब सोचिये कि श्रीहनुमान कितने साहसी, कितने निर्भीक और कितने श्रीरामार्पित—सत्यार्पित थे ।

सम्राट्‌की ओरसे जब उसके मन्त्री यह महान्‌ मनस्वी बंदीसे उसका परिचय जानना चाहा, तब सुग्रुद्धके मुखमें यह

ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीबाबूरामजी द्विवेदी, एम०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न)

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥[1]

श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्डके मङ्गलाचरणमें पवनसुत हनुमानकी बल-बुद्धि विद्या-युक्त सेवाभाव-समन्वित कर्तव्य निष्ठा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी यश प्रशस्तिमें पर्यवसित होकर उन्हें अपना ऋणी बनाकर[2] लङ्काकाण्डमें रावण कुम्भकर्णादि दुर्दान्त राक्षसोंके विनाशकी ओर अग्रसर होती है।

भगवान् श्रीराम हनुमानजीद्वारा अनुष्ठित 'रामकाज' को, जिसको पूर्ण किये बिना उन्हें विश्राम नहीं है,[3] अपने प्रति उपकार मानते हुए कहते हैं—'हे हनुमान ! तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तुम्हारा क्या प्रत्युपकार (बदलेमें उपकार) करूँ मेरा मन तुम्हारे सम्मुख नहीं हो सकता।'[4]

श्रीहनुमानकी अघटन-घटना-पटीयसी बौद्धिक शक्तिद्वारा सम्पन्न—सीतान्वेषण, मेघनाद वध, लक्ष्मणकी शक्तिहृत मूर्च्छा निवृत्ति आदि महत्त्वपूर्ण कार्योंसे प्रभावित होकर गोस्वामी तुलसीदासने विभिन्न स्थलोंपर विश्वासपूर्वक उद्घोष किया है—

(क) मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥[5]

(ख) साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान[6]॥

(ग) पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत !
रामहूँ की बिगरी तुम्हीं सुधारि लई है[7]॥

ऐसे उत्तम आदर्शयुक्त बुद्धिमान् सेवककी, जो स्वामी (श्रीराम)द्वारा दुष्कर-कार्यमें नियुक्त होकर, उसे (सीतान्वेषण-कार्य) पूरा करके तदनुरूप अन्य कार्य (लङ्का-दहन) भी सम्पन्न करते हैं[8]—प्रार्थना करते हुए गोस्वामी तुलसीदास उपर्युक्त श्लोकमें कहते हैं—'अतुलनीय बलके भण्डार, सुवर्णपर्वतके समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वनको ध्वंस करनेके लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान (कोश), वानरोंके स्वामी और श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनतनय हनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ।'

हनुमन्नामका शास्त्रीय आधार

हन्+उन्=हनु। क्षीरस्वामीसे ऊङ्—हन्+ऊङ्=हनू+मतुप्= हनुमत् अथवा हनूमत्=हनुमान् या हनूमान्।

ज्ञानिनाम् अग्रगण्य—अग्रगन्ता च स हनुमान्। वाल्मीकि-रामायणमें हनुमन्नामके दोनों रूप मिलते हैं—

'ऋश्यकाय हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत्।'
(वा० रा० ६। १। ६)

'तस्मिन्योगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता।'
(वा० रा० ६। १। १०)

आदिकाव्यमें हनुमानके आविर्भाव और नामके सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख मिलता है कि "उदयगिरिके शिखरपर उनका जन्म हुआ। वे सूर्यको फल फल समझकर उसे पानेके लिये ऊपर उड़े। इन्द्रके वज्र प्रहारद्वारा वायुपुत्रके

१ रा० च० मा०, सुन्दरकाण्ड, श्लोकसंख्या ३

२ सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
(रा० च० मा० सुन्दर० ३२। ३½)

३ राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥
(मानस ५। १)

४ हनूमते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥
(अध्यात्मरा० ५। ५। ६०)

५ रा० च० मा०, उत्तर० ११९। ८।

६ दोहावली ५२८।

७ कवितावली, उत्तरकाण्ड १०९।

८ यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे।
कुर्यात् तदनुरागेण ततः पुरुषोत्तमः॥
(वा० रा० ६। १। १

स्वाध्यायद्वारा उन्होंने विशेष ज्ञानका अर्जन किया था—यह बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कथनसे सिद्ध होती है। जब शुद्ध संस्कृत भाषामें हनुमानजी श्रीराम-लक्ष्मणको नर नारायण कहते हैं, तब “भगवान् श्रीराम लक्ष्मणको संकेत करते हैं कि ‘देखो, अवश्य ही इस ब्रह्मचारी (हनुमान)ने सम्पूर्ण शब्दशास्त्र (व्याकरण)का अनेक बार अध्ययन किया है। इसने इतनी बातें कहीं, पर इसके बोलनेमें कहीं कोई भी अशुद्धि नहीं हुई।’”[19]

आदिकाव्यमें तो हनुमानके शास्त्र-ज्ञान-स्रोतका विस्तृत वर्णन मिलता है। सुग्रीवद्वारा प्रेषित हनुमानकी शुद्ध वक्तृता सुनकर भगवान् श्रीराम कहते हैं—‘हे लक्ष्मण! जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामें वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि बहुत-सी बातें बोल जानेपर भी इनके मुँहसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।’[20]

ज्ञानियोंमें प्रमुख श्रीहनुमान

हनुमानजीको ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ और वीरोंमें अद्वितीय शक्तिशाली कहा गया है। ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमानका मङ्गलमय विग्रह बुद्धि-कौशल और अतुल बल-वैभवका समन्वित रूप है, इसीलिये जहाँ-कहीं भी उनके ज्ञानकी प्रशंसा की गयी है, वहाँ उनकी अमोघ शक्ति और अलौकिक पराक्रमकी ओर भी संकेत किया गया है।

‘पद्मपुराण’के अनुसार श्रीहनुमानको सभी विद्याएँ सिद्ध हो गयी थीं। वे प्रभावशाली, विनयशील और महाबलवान् थे तथा समस्त शास्त्रोंका अर्थ करनेमें कुशल और परोपकारपरायण थे।[21]

‘रामरक्षास्तोत्र’के ३३वें श्लोकमें श्रीहनुमानजीको बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ (ज्ञानिनामग्रगण्य) बतलाते हुए श्रीबुधकौशिकमुनि उनसे प्रार्थना करते हैं ‘जिनकी गति मनके समान और वेग वायुके समान है, जो परम जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, उन पवननन्दन वानराग्रणी श्रीरामदूतकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।’[22]

महर्षि वाल्मीकिजीने समुद्रोल्लङ्घन प्रसङ्गमें जाम्बवान् द्वारा श्रीहनुमानकी बल-बुद्धिकी प्रशंसा करायी है। जाम्बवान् कहते हैं—‘हे वानर-जगत्के वीर! सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हनुमान! तुम एकान्तमें आकर चुपचाप क्यों बैठे हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?’[23]

‘अध्यात्मरामायण’में हनुमानके बल और बुद्धिकी परीक्षा लेनेके निमित्त देवताओंद्वारा प्रेषित सुरसा (नागमाता) समुद्रके ऊपर उपस्थित होती है। हनुमानके बुद्धि-कौशल, साहस और निर्भीकताको देखकर वह स्तब्ध रह जाती है और पवनतनयको नमस्कार करते हुए एवं ‘रामकाज’ (सीताकी सुधि) विषयक प्रतिज्ञाको दुहराते हुए देख-सुनकर कहती है—‘हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! जाओ, श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करो।’[24]

गोस्वामी तुलसीदासने ‘मानस’के आरम्भमें ही श्रीसीतारामके गुण-समूहरूपी पवित्र वनमें विहार करनेवाले विशुद्ध विज्ञानसम्पन्न कवीश्वर (वाल्मीकिजी) और कपीश्वर (हनुमानजी)की वन्दना की है।[25]

---

१९. श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं बटुरूपिणम्।
शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किंचिदपशब्दितम्।
(अ० रा० ४।१।१०½)

२०. नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥
(वा० रा० ४।३।२८-२९)

२१. सिद्धविद्यः प्रभावाढ्यो विनयी च महाबलः।
सर्वशास्त्रार्थकुशलः परोपकृतिनिश्चितः॥
(पद्मपुराण)

२२. मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥

२३. वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन् किं न जल्पसि॥
(वा० रा० ४।६६।२)

२४. गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर॥
(अ० रा० ५।१।२१)

२५. सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥
(मानस १। श्लोक ४)

ग्रहण करते हुए हम भी उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं और गोस्वामी तुलसीदासके शब्दोंमें पवनसुत श्रीहनुमानजीको प्रणाम करते हैं—'जो दुष्टरूपी वनको भस्म करनेके लिये अग्निरूप हैं, जो ज्ञानकी घनमूर्ति हैं, जिनके हृदयरूपी भवनमें धनुष-बाण धारण किये श्रीरामचन्द्रजी निवास करते हैं।'[१६]

हम उन अतुलनीय पराक्रमी बलीयान् श्रीहनुमानजीका आश्रय ग्रहण करते हैं, जिनका आश्रय लेते हुए भगवान् श्रीरामने सीताजीकी खोजके प्रसङ्गमें कहा था कि 'अत्यन्त बलशाली कपिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारे बलका आश्रय लिया है। पवनकुमार हनुमान! जिस प्रकार श्रीजनकनन्दिनी सीता प्राप्त हो सके, तुम अपने महान् बल-विक्रमसे वैसा ही प्रयत्न करो। अच्छा, अब तुम जाओ।'[१७]

अन्तमें हम उन महावीर श्रीहनुमानजीकी विनती करते हैं, जिनके यशका श्रीरामचन्द्रजीने भी स्वयं (श्रीमुखसे) वर्णन किया है।[१८]

भगवान् श्रीरामके ज्ञानी भक्त श्रीहनुमान

(लेखक—वैद्य श्रीगुरुदत्तजी, एम्० एस्-सी०, वैद्यभास्कर, आयुर्वेद-वाचस्पति)

श्रीमद्भगवद्गीतामें भक्तोंके चार प्रकार बताये गये हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
(गीता ७।१६)

'हे अर्जुन! उत्तम कर्मवाले चार प्रकारके भक्तजन होते हैं—(१) अर्थार्थी, (२) आर्त्त, (३) जिज्ञासु और (४) ज्ञानी।' श्रीमद्भगवद्गीतामें तथ्य-कथनकी एक विशिष्ट शैली है। भगवान् श्रीकृष्ण परमात्माकी बात कहनेमें प्रथम पुरुषका उपयोग करते हैं, जिसे अंग्रेजीमें 'डायरेक्ट स्पीच' (Direct Speech) कहा जाता है। वे वहाँ 'माम्', 'मम' इत्यादि शब्दोंका भी प्रयोग करते हैं और उनसे भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय परमात्मासे ही होता है। ऐसा ही इस श्लोकमें कहा गया प्रतीत होता है कि परमात्माके भक्त चार प्रकारके होते हैं। परंतु परमात्माके अतिरिक्त अन्य देवी-देवता या महापुरुषकी उपासनासे भी मुक्ति हो सकती है। इस विषयमें भी भगवान् श्रीकृष्णने इसी प्रसङ्गमें आगे चलकर कहा है—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
(गीता ७।२१)

'जो जो भक्त जिस जिस देवता-शरीरकी श्रद्धासे पूजा करनेकी इच्छा करता है, उस-उस (देवता)में ही मैं उस (भक्त)की श्रद्धाको स्थिर कर देता हूँ।' सशरीर देवताओं या महापुरुषोंकी भी भक्ति हो सकती है और परमात्मा उस भक्तकी श्रद्धाको उस देवता या महापुरुषमें स्थिर कर देते हैं और वह भक्ति फल-प्रदायिनी होती है—

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्॥
(गीता ७।२२)

'वह (भक्त) उस श्रद्धासे युक्त हुआ उस देवताके पूजनकी चेष्टा करता है और परमात्माकी निश्चित प्रक्रियाके अनुसार उस (देवता)से वह निस्संदेह इच्छित भोगोंको प्राप्त करता है।'

---

१६ प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन। जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥
(रामचरितमा०, बाल० १७)

१७ अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व॥
(वा० रा० ४।४४।१७)

१८ महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥
(रा० च० मा० १।१६।५)

अगाध श्रद्धा हो। श्रीहनुमानजी ऐसे ही थे, तभी तो लङ्कामें जाकर घर-घरमें श्रीसीताको ढूँढ निकालनेका प्रयास उनके द्वारा सम्भव हो सका था।

यह स्थिति कितनी भयावह रही होगी, जब श्रीहनुमानको रावणके सम्मुख उपस्थित किया गया और उसे पता लगा कि यह श्रीरामका दूत और भक्त है तथा श्रीसीताका पता लगाने अशोक-वाटिकामें पहुँच गया है। श्रीहनुमानजी भी यही चाहते थे कि रावणको बता दिया जाय कि उन्हें श्रीसीताका पता चल गया है और अब लङ्कापर आक्रमण होगा। पर रावण इससे भयभीत नहीं हुआ था। उसे क्रोध अवश्य आया था कि एक व्यक्ति अकेला ही उस वाटिकामें घुस आया और यहाँतक पहुँच गया है, जो सर्वाधिक गोपनीय स्थान था। रावणसे जब श्रीहनुमानजीने कहा—

दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः।
श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो॥
(वा० रा० ५। ५०। १९)

'प्रभो! मैं अमिततेजस्वी श्रीरामजीका ही दूत हूँ, ऐसा जानकर आप मेरे इन हितकारक वचनोंको सुनें।'

मदोन्मत्त रावणको जब यह ज्ञात हुआ कि उसका वैरी महान् तेजस्वी है और उसके एक अनुचरने उसकी सुरक्षित नगरीमें आकर मनमाना उपद्रव मचाया है तो उसके क्रोधकी सीमा न रही। उस भयावह परिस्थितिमें भी श्रीहनुमानजी अपनी श्रद्धा और भक्तिके आस्पद श्रीरामका कार्य करनेके लिये वहाँ निर्भीक खड़े थे और रावणसे बातें कर रहे थे। इस सभामें वार्तालापके समय और पीछे दण्ड दिये जाते समय श्रीहनुमानजीके मनकी स्थिति स्थिर और सक्रिय रह सकी। इसमें हेतु थे केवल उनकी श्रीरामके प्रति भक्ति और श्रद्धा और ये ही श्रद्धा भक्ति उन्हें सफलता दिला सकी थीं।

इतिहास साक्षी है कि सुग्रीवके सब सेनानियोंमें सर्वाधिक शौर्य और पराक्रमका प्रदर्शन भी हनुमानजीने ही किया था। जब किसी भक्तके मनमें अपने आराध्य देवके लिये अनन्य भक्ति उमड़ पड़ती है, तब वह अपने आराध्यदेवके समान ही कार्य-सम्पादनकी अचिन्त्य सामर्थ्य पा जाता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं हमारे श्री श्रीहनुमानजी।

यह प्रसिद्ध है कि 'जो व्यक्ति जिस देवतामें अनन्य भक्ति करता है, उसमें उस देवताके गुण आ जाते हैं।' ऐसे ही श्रीरामके अद्वितीय शौर्य, बल, पराक्रम और ओजको श्रीहनुमानजीने प्राप्त किया।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि श्रीहनुमानजीकी श्रीरामके प्रति भक्ति किस प्रकारकी थी? पहले चार प्रकारके भक्तोंकी चर्चा हो चुकी है। यह भी पहले कहा जा चुका है कि श्रीरामकी महिमा सम्पूर्ण देशमें फैल चुकी थी। श्रीरामजीके श्रेष्ठ त्याग, तपपूर्ण जीवन और धर्म निष्ठाका ज्ञान श्रीहनुमानजीको था। इसी कारण वे मनसे तो पहले ही श्रीरामभक्त बन चुके थे, परंतु प्रथम भेंटमें जब उन्होंने श्रीरामके ओजपूर्ण ब्रह्मचर्य-समन्वित सुन्दर शरीरको देखा, तब वे पुलकित मन और तनसे श्रीरामकी सेवाके लिये तैयार हो गये। इस भक्ति और सेवामें न तो किसी अर्थ प्राप्तिकी इच्छा थी और न ही श्रीहनुमानजी स्वयं सङ्कट-ग्रस्त आर्त थे। वे जिज्ञासु भी नहीं थे। वे ज्ञानी भक्त थे, श्रीरामजीके गुणोंका ज्ञान होनेपर ही वे श्रीरामभक्त हुए थे। ज्ञानी भक्तके विषयमें भगवान्‌ने कहा है—

'उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।'
(गीता ७। १८)

'ये सभी (चारों प्रकारके भक्तजन) बहुत श्रेष्ठ हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है।' अतः भगवान् श्रीरामको चाहे कुछ भी मान—अर्थात् परमात्मा अथवा अतिमानव अथवा आद्य मानव, श्रीरामभक्त श्रीहनुमान श्रीरामतद्रूप ही थे।

श्रीहनुमानने बालीका वध क्यों नहीं किया, इसका कारण भगवान् श्रीरामने महर्षिको बतलाया है—

> किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया।
> तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा॥
> नहि वेदितवान् मन्ये हनूमानात्मनो बलम्।
> यद् दृष्टवाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम्॥
>
> (वा० रा० ७। ३५। ११-१२)

'उस समय जब सुग्रीव और वालीमें विरोध हुआ था, सुग्रीवका हित करनेके लिये हनुमानजीने तृणके समान वालीको क्यों नहीं जला दिया ? सम्भवतः उस समय हनुमानको अपने बलका ज्ञान न था कि मैं वालीको मार सकता हूँ। इसी कारण उन्होंने प्राणोंके समान प्रिय वानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते देखा।' वस्तुतः हनुमानजीको ऋषि शाप-वश अपने बलका स्मरण ही नहीं रहता था।

भगवान् श्रीरामको सम्पूर्ण हनुमच्चरित सुनाते हुए महर्षि अगस्त्यने भी हनुमानजीके गुणोंके सम्बन्धमें अपना निर्णय इस प्रकार दिया है—

> पराक्रमोत्साहमतिप्रताप
> सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
> गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
> र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥
>
> (वा० रा० ७। ३६। ४४)

'बल, पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, कोमलता, न्यायान्यायका ज्ञान, गम्भीरता, चतुरता, बल और धैर्यमें श्रीहनुमानसे अधिक इस त्रिलोकीमें कौन है ?'

श्रीहनुमानजी रावणका भी वध कर सकते थे, परंतु रावण-वधका यश भगवान् श्रीरामको प्राप्त हो, इसी विचारसे इन्होंने स्वयं उसके वधकी उपेक्षा कर दी। हनुमानजी स्वयं भीमसेनको बतला रहे हैं—

> भीमसेन न पर्याप्तो ममासौ राक्षसाधमः॥
> मया तु निहते तस्मिन् रावणे लोककण्टके।
> कीर्तिर्नश्येद्राघवस्य तत एतदुपेक्षितम्॥
>
> (महा० वन० १५०। १८-१९)

'हे भीमसेन! वह राक्षसाधम रावण मेरे बराबरका बलवान् नहीं था। यदि उस लोकपीडकको मैं मार डालता तो श्रीरामका यश नहीं मिलता, इसीसे मैंने उसकी उपेक्षा कर दी।' हनुमानजी चाहते तो लङ्काके सारे राक्षसोंको अकेले ही मौतके घाट उतार सकते थे। ऋक्षराज जाम्बवान्से स्वयं उन्होंने कहा था—

'सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥'

(मानस ४। २९। ४½)

रावणको भी हनुमानजीके अतुलबलका पता ज्ञान था, तभी तो वह मेघनादको समझा रहा था—

न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम्॥

(वा० रा० ५। ४८। ११)

'वायुपुत्र हनुमानके सामर्थ्यकी इयत्ता नहीं है। वह कितना बली है, इसका निश्चय नहीं है। अग्निके समान तेजस्वी यह वानर किन्हीं साधनविशेषोंद्वारा नहीं मारा जा सकता।' अपने पाँच सेनापतियोंको भी रावणने हनुमानजीके बलके सम्बन्धमें समझाया था—

> दृष्टा हि हरयः पूर्वं मया विपुलविक्रमाः।
> वाली च सह सुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः॥
> नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः।
> नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः॥
> न मतिर्न बलोत्साहौ न रूपपरिकल्पनम्।
> महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम्॥
>
> (वा० रा० ५। ४६। १२-१४)

'मैंने विपुल पराक्रमी वाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि अन्य वानरोंसे भी देखा है, परंतु उनके काम इतने भयङ्कर नहीं हैं और न उनका इतना तेज और पराक्रम ही है, न उनके बुद्धि है, न बल है और न ऐसा उत्साह ही है। उनमें रूप बदलनेकी ऐसी शक्ति भी नहीं है। वस्तुतः वानरके रूपमें आया हुआ यह कोई बड़ा शक्तिशाली दिव्य प्राणी है।'

रावण तो अपने बलके समक्ष किसीको कुछ मानता ही नहीं था, फिर भी वह हनुमानजीके बलका लोहा तो मान ही गया था। अङ्गदके सामने उसने अपने बलकी बहुत डींग हाँकी, किंतु हनुमानजीका ध्यान आते ही वह यह स्वीकार करनेको विवश हो गया कि—

'है कपि एक महा बलसीला' 'आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा।'

(मानस ६। २२। १०½)

रावणकी यह स्वीकृति ही अतुलितबलधाम हनुमानजीके

अतुलितबलधाम श्रीहनुमान

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत पं० श्रीजगदीशजी शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ)

'बलं बलवतां चाहम्' (गीता ७ । ११)—इस गीतोक्तिके अनुसार सभी बलवानोंके बल स्वयं भगवान् ही हैं। क्रुद्ध रावणने यही हनुमानजीसे जब पूछा कि 'केहि कें बल घालेहि बन खीसा। (मानस ५ । २० । ३½)—तूने किसके बलपर वनको उजाड़कर नष्ट कर डाला', तब शील और तेजसे समन्वित रूप हनुमानजीने अत्यन्त निर्भीकताके साथ उस बलका स्पष्ट परिचय दिया—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥
(मानस ५ । २० । १-४½; ५ । २१)

माया, ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा शेषका बल भी श्रीरामजीका ही बल है। जिनके बलके क्षुद्र अंशको पाकर खरादिके क्षुद्र अंश भी बलवान् बनते हैं, जो अतुलित बलवानोंका भी वध करनेवाले हैं, वे ही भगवान् श्रीराम वस्तुतः अतुलितबलशाली हैं। 'अप्रमेयबलो रामः' (वा० रा० ५ । ४२ । ३३) कहकर पवन-नन्दनने उन्हीं अतुलबली भगवान् श्रीरामका जयजयकार किया है। जनकपुरके दूतने भी 'राजन राम अतुल बल जैसें।' (मानस १ । २९२ । १½) कहकर राजा दशरथसे उन्हीं श्रीरामजीके अतुलबलका बखान किया था। वे ही अतुलबली श्रीराम पवन-कुमारके हृदयागारमें धनुष और बाण धारण किये हुए नित्य निवास करते हैं—

'जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥'
(मानस १ । १७)

वस्तुतः हनुमानजीका हृदय पवित्र एवं सुन्दर 'आगार' है। उसमें विहार करनेवाले हैं—अतुलितबली भगवान् श्रीराम, अतएव हनुमानजी उन अतुलितबल श्रीरामके धाम हैं। हनुमानजीका बल अपना बल नहीं है, वह तो अतुलितबली श्रीरामका ही बल है, हनुमानजी तो उस अतुलितबलके धाममात्र हैं। तभी गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने 'रामचरितमानस' सुन्दरकाण्डमें 'अतुलितबलधामम्' कहकर हनुमानजीकी वन्दना की है और 'हनुमानचालीसा'में भी 'रामदूत अतुलित बलधामा' लिखकर उनका जयजयकार किया है।

त्रेतायुगमें अतुलित बलशाली बहुत थे। खर, दूषण, त्रिशिरा, वाली, मेघनाद, रावणादि अतुलित बलशाली ही तो थे। वाली और रावण इनमें मुख्य थे; किंतु उन दोनोंका भी बल श्रीहनुमानजीके बलकी तुलनामें न्यून था। भगवान् श्रीरामने महर्षि अगस्त्यसे अपना यही विचार हनुमानजीके विषयमें बतलाया है—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥
(वा० रा० ७ । ३५ । ३१)

'वाली और रावण, दोनोंका बल अतुलनीय था, पर इनका बल भी हनुमानके बलके समान नहीं है, ऐसा मैं समझता हूँ। शूरता, निपुणता, बल, धीरता, बुद्धि, नीति, विक्रम और प्रभावका हनुमानमें निवास है।' आगे फिर श्रीरामने महर्षिको समझाया—

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥
एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥
हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत्॥
(वा० रा० ७ । ३५ । ८-१०)

'युद्धमें यमराज, इन्द्र, विष्णु और कुबेरके वैसे वीरतापूर्ण कर्म नहीं सुने जाते, जैसे हनुमानके हैं। इन्हींके बाहुबलसे मैंने लंका, सीता, लक्ष्मण, विजय, राज्य, मित्र और बन्धुओंको पाया है। वानरराज सुग्रीवके मित्र हनुमान यदि होते न, तो सीताका पता भी कौन लगा सकता ?'

श्रीहनुमानने वालीका वध क्यों नहीं किया, इसका कारण भगवान् श्रीरामने महर्षिको बतलाया है—

> किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया।
> तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा॥
> नहि वेदितवान् मन्ये हनूमानात्मनो बलम्।
> यद् दृष्टवाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम्॥
>
> (वा० रा० ७। ३५। ११-१२)

'उस समय जब सुग्रीव और वालीमें विरोध हुआ था, सुग्रीवका हित करनेके लिये हनुमानजीने तृणके समान वालीको क्यों नहीं जला दिया? सम्भवतः उस समय हनुमानको अपने बलका ज्ञान न था कि मैं वालीको मार सकता हूँ। इसी कारण उन्होंने प्राणोंके समान प्रिय वानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते देखा।' वस्तुतः हनुमानजीको ऋषि-शाप-वश अपने बलका स्मरण ही नहीं रहता था।

भगवान् श्रीरामको सम्पूर्ण हनुमच्चरित सुनाते हुए महर्षि अगस्त्यने भी हनुमानजीके गुणोंके सम्बन्धमें अपना निर्णय इस प्रकार दिया है—

> पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
> सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
> गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
> र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥
>
> (वा० रा० ७। ३६। ४४)

'बल, पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, कोमलता, न्यायान्यायका ज्ञान, गम्भीरता, चतुरता, बल और धैर्यमें श्रीहनुमानसे अधिक इस त्रिलोकीमें कौन है?'

श्रीहनुमानजी रावणका भी वध कर सकते थे, परंतु रावण-वधका यश भगवान् श्रीरामको प्राप्त हो, इसी विचारसे इन्होंने स्वयं उसके वधकी उपेक्षा कर दी। हनुमानजी स्वयं भीमसेनको बतला रहे हैं—

> भीमसेन न पर्याप्तो ममासौ राक्षसाधमः॥
> मया तु निहते तस्मिन् रावणे लोककण्टके।
> कीर्तिर्नश्येद् राघवस्य तत एतदुपेक्षितम्॥
>
> (महा० वन० १५०। १८-१९)

'हे भीमसेन! वह राक्षसाधम रावण मेरे बराबरका बलवान् नहीं था। यदि उस लोक-कण्टकको मैं मार डालता तो प्रभु श्रीरामको यश नहीं मिलता; इसीसे मैंने उसकी उपेक्षा कर दी।' हनुमानजी चाहते तो लंकाके सारे राक्षसोंको अकेले ही मौतके घाट उतार सकते थे। ऋक्षराज जाम्बवान्‌से स्वयं उन्होंने कहा था—

> 'सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥'
>
> (मानस ४। २९। ४३)

रावणको भी हनुमानजीके अतुलबलका पक्का ज्ञान था, तभी तो वह मेघनादको समझा रहा था—

> न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम्॥
>
> (वा० रा० ५। ४८। ११)

'वायुपुत्र हनुमानके सामर्थ्यकी इयत्ता नहीं है। वह कितना बली है, इसका निश्चय नहीं है। अग्निके समान तेजस्वी वह वानर किन्हीं साधनविशेषोंद्वारा नहीं मारा जा सकता।' अपने पाँच सेनापतियोंको भी रावणने हनुमानजीके बलके सम्बन्धमें समझाया था—

> दृष्टा हि हरयः पूर्वं मया विपुलविक्रमाः।
> वाली च सह सुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः॥
> नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः।
> नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः॥
> न मतिर्न बलोत्साहौ न रूपपरिकल्पनम्।
> महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम्॥
>
> (वा० रा० ५। ४६। ११-१४)

'मैंने विपुल पराक्रमी वाली, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि अन्य वानरोंको भी देखा है, परंतु उनके कार्य इतने भयंकर नहीं हैं और न उनका इतना तेज और पराक्रम ही है, न उनके बुद्धि है, न बल है और न वैसा उत्साह ही है। उनमें रूप बदलनेकी वैसी शक्ति भी नहीं है। वस्तुतः वानरके रूपमें आया हुआ यह कोई बड़ा शक्तिशाली दिव्य प्राणी है।'

रावण तो अपने बलके घमण्डमें किसीके बलको मानता ही नहीं था; फिर भी वह हनुमानजीके बलका लोहा तो मान ही गया था। अंगदके सामने उसने अपने बलकी बहुत डींग हाँकी, किंतु हनुमानजीका ध्यान आते ही वह यह स्वीकार करनेको विवश हो गया कि—

> 'है कपि एक महा बलसीला' 'आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा।'
>
> (मानस ६। २२। १३, १४)

रावणकी यह स्वीकृति ही अतुलितबलधाम हनुमानजीके

अतुल बलकी विजय-वैजयन्ती है। हनुमानजीका बल-पारावार अपार और अगाध है। आजतक किसीने भी इन अतुलितबलधामके बलकी थाह नहीं पायी। जो युद्धमें सामने आ गया, उसे ही मुँहकी खानी पड़ी चाहे वह भट हो या सुभट, महाभट हो या दारुण भट। अशोक-वाटिकाका युद्ध इसका प्रमाण है।

कई दिनोंके भूखे हनुमानजी पराम्बा श्रीजानकीसे आदेश लेकर मेघनादसे भी अधिक प्यारे रावणके अशोक-वनमें प्रविष्ट हुए। जब मधुर-मधुर फलोंका आहार पूरा हो गया, तब वृक्षोंको उखाड़ने उजाड़नेका काम आरम्भ हो गया। जब पहरा देनेवाले भटोंने हस्तक्षेप किया, तब उनमेंसे जो सामने आ गये, वे तो सुरधाम चले गये और जो भाग गये, उन्होंने जाकर रावणको इसकी सूचना दी—

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥
(मानस ५।१७।२)

इसकी मर्यादित सूचना पाकर रावणने अपने ही तुल्य पराक्रमी अस्सी 'हजार' किंकर-नामक राक्षसोंको, प्रहस्त पुत्र जम्बुमालीको, सात मन्त्रिपुत्रोंको तथा पाँच सेनापतियोंको क्रमशः भेजा। उन्हें देखते ही युद्धके उत्साहमें हनुमानजीने बड़ी भयंकर गर्जना की। उन्होंने कुछ चुने-चुनाये भटोंको तो कालके गालमें पहुँचाया और कुछ चोट खाये हुए अधमरोंको रावणके पास समाचार पहुँचानेके लिये छोड़ दिया। वे घायल राक्षस पुकार मचाते हुए रावणके पास पहुँचे। इस बार रावणने अपने प्रियपुत्र कुमार अक्षको युद्धार्थ भेजा। वह महाभट सुभटोंकी सेना लेकर चला। उसे आता देखकर हनुमानजीने एक वृक्षको हाथमें लेकर उसे डाँटा और देखते-ही-देखते उसका वध करके पुनः ऊँची ध्वनिमें गर्जन किया—

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
(मानस ५।१७।४)

अशोक-वाटिकामें हनुमानजीको चार बार युद्ध करना पड़ा। चारों युद्धोंके तारतम्यको हम इनके गर्जनसे समझ सकते हैं। पहली लड़ाई अस्सी भटोंके साथ हुई। यह इनकी दृष्टिमें इतनी हल्की रही कि इन्हें युद्धका उत्साह ही नहीं आया, इसलिये इन्होंने साधारण गर्जन भी न किया। दूसरी लड़ाई रावणके द्वारा प्रेषित अनेक भटोंके साथ हुई। उसमें इन्हें थोड़ा युद्धोत्साह हुआ, इसलिये इन्होंने साधारण गर्जन किया। तीसरी जब महाभट अक्षकुमारके साथ हुई। रावणपुत्र अक्षका वध करके ये युद्धोत्साहमें जोरसे गरजे। चौथी जब दारुण भट और अतुलित योद्धा मेघनादके साथ हुई। मेघनादको देखकर इन्होंने तीन क्रियाएँ एक साथ कीं—कटकटाये, गरजे और दौड़े—

कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥
(मानस ५।१८।१)

हनुमानजीके बलकी थाह न भटोंने पायी, न सुभटों महाभटोंने। रावणसे मिलनेके ही उद्देश्यसे दारुण भट मेघनाद द्वारा किये गये ब्रह्मास्त्रके प्रयोगका हनुमानजीने सम्मान किया, अतः मूर्च्छाकी लीला की। तब मेघनाद नागपाशमें बाँधकर इन्हें रावणकी राजसभामें ले गया। रावणसे मिलनेके बाद लाङ्गूल-दाहकी तैयारी पूरी होते ही इन्होंने अपने विशाल शरीरको योगबलसे इतना संकुचित कर दिया कि उन्हें बन्धनसे सहज ही मुक्ति मिल गयी। इसके बाद विश्वविजयी रावण तथा स्वर्गविजेता मेघनादके देखते-ही-देखते आगसे सम्पूर्ण लङ्काका पूर्णरूपसे अग्नि-संस्कार करके अपने अतुलित बलका झंडा रावण और समस्त लङ्कावासियोंके अन्तःस्थलपर गाड़ दिया।

हनुमानजी लात, लाङ्गूल और मुक्का—तीनोंसे प्रहार करते हैं। इनके तीनों अङ्गोंका बल अद्वितीय तथा अमोघ है, फिर भी इनके मुक्केका प्रहार विशेष प्रबल और अचूक है। लङ्काके तीनों विशिष्ट वीर—रावण, कुम्भकर्ण तथा मेघनाद इनके एक-एक मुष्टिप्रहारको भी सहन नहीं कर सके। परिणामतः तीनों मूर्च्छित हुए। इनके क्रमशः उदाहरण लीजिये।

प्रचण्ड शक्ति प्रयोगके द्वारा मूर्च्छित लक्ष्मणको जब रावण उठाने लगा, तब वे उससे उठ न सके, इतनेमें ही हनुमानजीने लक्ष्मणको देख लिया और—

देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥
(मानस ६।८३)

फिर भी—

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥
(मानस ६।८३।१)

इसके बाद—

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
(मानस ६।८३।१)

रावणका मुष्टि प्रहार प्रघोर था, फिर भी वह हमारे हनुमानजीको गिरा नहीं सका इधर हनुमानजीके मुष्टि प्रहारसे चारों खाने चित्त हो गया वह विश्वविजयी वीर रावण। रावण मूर्च्छित पड़ा रहा और हनुमानजी उसकी मूर्च्छा निवृत्तिकी प्रतीक्षा करते रहे; किंतु वाह रे मुष्टि प्रहारका प्रभाव! होशमें आते ही रावणसे रहा नहीं गया और वह मुक्त-कण्ठसे हनुमानजीके विपुल बलकी सराहना करने लगा—

मुरुछा गइ बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
(६।८३।१½)

अब पवन-नन्दनके मुक्केसे कुम्भकर्णकी मूर्च्छाका प्रसङ्ग देखिये। कुम्भकर्णके ऊपर—

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
(मानस ६।६४।१½)

फिर भी—

मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो।
जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो॥
(मानस ६।६४।१)

तब—

'तब मारुतसुत मुठिका हन्यो।'
(मानस ६।६४।१½)

परिणाम—

'पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥'
(मानस ६।६४।१½)

कुम्भकर्ण कोटि-कोटि गिरि शिखर प्रहारको सहता हुआ भी युद्धमें निर्बाध बढ़ता आ रहा था। वह पवनात्मजका मुक्का खाते ही व्याकुल होकर धरतीपर ढेर हो गया और लगा सिर पीटने। जो कार्य असंख्य योद्धाओंद्वारा कोटि कोटि गिरि शिखर प्रहार करनेसे भी न हो सका, वह वायुपुत्रके एक मुक्केकी मारसे तुरंत सम्पन्न हो गया। धन्य हैं वायु कुमार और धन्य है उनका यह मुष्टि प्रहार! कुम्भकर्णने भी रावणको समझाते हुए हनुमानजीके बलकी प्रशंसा जी खोलकर की थी—

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जा के हनूमान से पायक॥
(मानस ६।६२।१½)

मेघनाद तो अशोक-वाटिकाके युद्धमें ही हनुमानजीके मुक्केसे मूर्च्छित हो चुका था—

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
(मानस ५।१८।४)

हनुमानके मुक्केका मर्म जान लेनेके बाद मेघनाद अपने आपको उनके सामने सदा पराजित अनुभव करता था। हनुमानजीके बार-बार ललकारनेपर भी वह उनके निकट नहीं आता था, बल्कि बड़ी सावधानीसे बाय बचाते कतरा-कतरा फिरता था—

बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥
(मानस ६।५०।१)

यह है अतुलितबलधाम हनुमानजीके मुष्टिप्रहारका अनोखा चमत्कार और सदैव ही अभिनन्दनीय है—श्रीपवन नन्दनका यह अतुलित बल!

अद्भुत राम-भजन-रसिक हनुमान

भए भगत भगवत के भजन-रस,
है रहे विवेकी, जग जान्यो जिन सपनो।
सेवा ही के बल, सेवा आपनी कराई, पुनि
पायो मनोरथ, सब काहू जन-अपनो॥
यह अद्भुत 'सेनापति' है भजन कोई
क्यों न धनतन तन-मन को अरपनो।
जैसो हनूमान जान्यो भजन को रस, जिन
राम के भजन ही लौं जीव्यो माँग्यो अपनो॥

—महाकवि सेनापति (कवित्तरत्नाकर ४।६०)

अद्भुत पराक्रमी श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

विद्या-बुद्धिके निधान, ज्ञानवान्, वेदज्ञ, तीक्ष्णबुद्धि, सर्वशास्त्र पारगत, असीम पराक्रमकी मूर्ति, सर्वोपरि शौर्य-वीर्यके आगार, आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीहनुमानजी वानरके अंशसे वायुद्वारा कपिराज केसरीकी पत्नी अञ्जनाके गर्भसे एक मतसे चैत्र शुक्ला एकादशीको अवतरित हुए थे। श्रीहनुमानजीने अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नायक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी सेवामें संलग्न होकर ऐसे-ऐसे अद्भुत कार्य किये, जिनका और किसीसे होना सर्वथा असम्भव था।

जब अहिरावण श्रीराम-लक्ष्मणको निद्रावस्थामें मोहनी विद्यासे मोहित करके पातालमें ले गया, तब श्रीहनुमानजीने शोकमग्न वानरसेनाको संतोष दिलाते हुए प्रतिज्ञा की कि 'मैं चौदह भुवनों और तीनों लोकोंमें जहाँ भी श्रीराम-लक्ष्मण होंगे, उन्हें खोजकर लाऊँगा।' ऐसा कहकर हनुमानजी प्रलयकालके बादलोंके समान भयंकर गर्जना करके चले और एक क्षणके अन्तरालपर शीघ्र ही पाताल पहुँच गये। यहाँ एक अद्भुत लीला यह हुई कि ज्यों ही आप सूक्ष्म रूप धारणकर अहिरावणकी देवीके सम्मुख पहुँचे, त्यों ही देवी तो लुप्त हो गयी तथा आप स्वयं देवी बनकर उस स्थानपर विराजमान हो गये। आप सम्पूर्ण पूजा-सामग्रीको भक्षण करते गये। जब श्रीराम-लक्ष्मणको बलि देनेके लिये लाया गया, तब हनुमानने मेघके समान गर्जन करके राक्षसोंको मारकर अहिरावणका मस्तक अग्निकुण्डमें होम दिया और वे श्रीराम-लक्ष्मणको वहाँसे छुड़ा लाये। दोनों भ्राताओंने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'हनुमन्! तुम्हारे समान हितकारी देवता, मुनि, सिद्ध और शरीरधारियोंमें कोई नहीं है। तुम्हारी कीर्ति तीनों लोकोंमें छा जायगी।'

समुद्रको लाँघना, सीताजीको खोजना, अशोक-वाटिका का उजाड़ना, लङ्काका जलाना, संजीवनी बूटीको लाना, राक्षसोंके साथ भयंकर युद्ध करना आदि ऐसे शौर्ययुक्त अद्भुत कार्य श्रीहनुमानजीद्वारा सम्पन्न हुए हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीने 'हनुमानबाहुक'में कहा है कि पवनसुत हनुमान अतुलित बलधाम, महावीर, विद्यावान्, गुणी, अति चतुर, कुमति निवारक और सुमतिके साथी हैं, जिन्होंने विकट रूप धारणकर लङ्का जलायी, भीमरूप धारणकर असुरोंका संहार किया और रामचन्द्रजीके सब काम सुधारे। जगत्‌के जितने दुर्लभ काम हैं, वे सब उनकी कृपासे सुगम हो जाते हैं।' विनयपत्रिकामें गोस्वामीजीने विनती की है कि 'हनुमानजी! आप अहंकार, काम, क्रोध आदि दुष्टोंसे व्याप्त घोर संसाररूपी रात्रिका नाश करनेवाले साक्षात् सूर्य हैं।' अतः यह पूर्णतः प्रत्यक्ष है कि हनुमानमें इतना बल, पराक्रम, सामर्थ्य या ब्रह्मचर्यतेज था कि वे किसी भी लोकमें कैसा भी रूप बनाकर अबाध गतिसे आ-जा सकते थे।

श्रीराम-गाथाओंमें तो केसरीनन्दन श्रीहनुमानजीको पराक्रमी श्रीरामसेवक बताया ही है, इनके अतुल बल-पौरुषकी अन्य स्थानोंपर भी प्रचुर प्रशंसा की गयी है। केवल त्रेतायुग ही नहीं, द्वापरयुग भी श्रीहनुमानजीकी पराक्रम-गाथासे गौरवान्वित है। महर्षि गर्गाचार्यकृत 'गर्गसंहिता' ग्रन्थके 'विश्वजित् खण्ड'के तीसवें अध्यायमें उल्लेख है कि 'भीमनादिनी नगरीका कुम्भ नामक राक्षस दस हजार राक्षसोंको साथ लेकर यादवोंसे युद्ध करने लगा। वह इतना भयंकर दैत्य था कि हाथियों, रथ-पहियों, घोड़ों-ऊँटों तथा सेनानियोंको दाँतोंसे चबा जाता और उन्हें आकाशमें गलेकी गोलीकी भाँति फेंक देता था। भगवान् श्रीकृष्णके ज्येष्ठ पुत्र जब उससे लड़ते-लड़ते पराजित होने लगे, तब उन्होंने कपिवर हनुमानके 'कपीन्द्रास्त्र'का संधान किया। संधान करते ही हनुमानजी प्रकट हो गये और उन्होंने उस राक्षसको आकाशमें सौ योजन दूर फेंक दिया। इसपर कुम्भने हनुमानपर एक अत्यन्त भारी गदा फेंकी, किंतु वे वेगसे उछलकर बच गये और कुम्भकी छातीपर ऐसा मुक्का मारा कि वह राक्षस धरतीपर गिरकर ढेर हो गया। फिर हनुमानजीने वैदूर्यपर्वत लाकर उसके ऊपर डाल दिया, जिससे वह मृत्युका ग्रास बन गया।'

महाभारतके सारे युद्धमें प्रायः सर्वत्र श्रीकृष्णके सखा अर्जुन छाये हुए हैं। महाभारतमें स्थान-स्थानपर उनके बल-पौरुषकी प्रशंसा हुई है। उनके रथकी ध्वजापर श्रीहनुमानजी विराजमान थे, तभी अर्जुन बड़े-बड़े योद्धाओंको जीतने-मारनेमें समर्थ हुए। इसीसे भीष्मपर्वमें अर्जुनके 'कपिध्वज', 'कपिकेतन' आदि नाम बताये गये हैं, जो वीरवर हनुमानके ही नामपर आधृत हैं। श्रीकृष्णके अभिन्न मित्र एवं स्वयं महान् शूरवीर होते हुए भी अर्जुनका हनुमानके बल-प्रभावकी

आवश्यकता हुई और उनके सम्मानमें अर्जुनके नाम उन्हींके नामानुसार प्रसिद्ध हुए—यह महाबली हनुमानके पौरुषका प्रत्यक्ष आदर है और उनके अतुल बलशाली होनेका महान् प्रमाण है।

सच तो यह है कि बलकी सदासे पूजा होती आयी है। देश, काल और पात्रके अनुसार व्यष्टि समष्टि, राष्ट्र एवं समाजमें यश धन या बलकी प्राप्ति एवं सुरक्षाके लिये हमें पग-पगपर बलकी आवश्यकता है। ऋग्वेदमें बलकी महिमाका कई स्थानोंपर वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि 'विद्या और शारीरिक उन्नतिके बिना मनुष्यकी वृद्धि कभी नहीं हो सकती। बल ही श्रेष्ठ पुरुषोंका पालन और दुष्टोंका दलन कर सकता है। अतएव कदाचारसे बचकर शरीर-बल-सम्पादन करनेका सदैव प्रयत्न करना चाहिये।' इसलिये तो हमारे देशमें आजसे नहीं, सुदीर्घ कालसे बल्कि युग, कृपाके सागर श्रीहनुमानजीकी आराधना भक्ति, ज्ञान, श्री, श्रम, शक्ति-सामर्थ्य प्राप्त्यर्थ एवं असाध्य रोगों तथा भारी सकटोंके निवारणार्थ विश्वास-भक्ति श्रद्धापूर्वक होती चली आ रही है। सर्वत्र ही सभी जाति और सम्प्रदायके अमीर-गरीब श्रीहनुमानके पूजा-पाठ अनुष्ठान आदिमें संलग्न रहते हैं और उसका शुभ फल प्राप्त करते हैं।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके आदर्श—महावीर श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीरामभाऊ चिगटे, एम्० ए०)

अञ्जनीगर्भसम्भूतो वायुपुत्रो महाबलः।
कुमारो ब्रह्मचारी च तस्मै हनुमते नमः॥

अत्यन्त प्राचीन कालसे पुण्यभू भारतवर्षने अनेक ऋषि मुनियों, तपस्वियों तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको जन्म दिया है, जो केवल भारतके लिये ही नहीं, अपितु जगत्के लिये स्तम्भभूत हैं। श्रीहनुमानजी अनेक कारणोंसे आदर्श ब्रह्मचारियोंके अग्रगण्य हैं। श्रीसमर्थ रामदासस्वामी आपके विषयमें कहते हैं—'जगा धन्य तो मारुती ब्रह्मचारी' अर्थात् 'जगत्में धन्य हैं वे ब्रह्मचारी हनुमान'। मानव-समाजके सामने श्रीहनुमानजीने ब्रह्मचर्यका बहुत ही उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया है।

अनेक देवताओंका प्रासङ्गिक आविर्भाव स्वाभाविक रूपमें दिखायी देता है, किंतु श्रीहनुमानजी इस विषयमें अपवाद हैं। जन्मसिद्ध ब्रह्मचर्य—यही आपका स्वरूप-लक्षण है। आपकी माताने आपसे कहा था—'जो तुम्हारा यह लक्षण पहचानेगा, वही तुम्हारा स्वामी होगा।' विशेषता तो यह है कि जिस वानर-जातिमें इन्होंने जन्म लिया था, उसमें बहुपत्नीक-प्रथा रूढ़ थी, किंतु श्रीहनुमानजी इससे दूर्वथा अपवाद रहे और उनका यह रहना केवल पुरस्सर था तथा यह किसी प्रकारकी कामना सफलताके अभावमें या किसी प्रकारकी न्यूनता या अयोग्यताके कारण नहीं। आप 'रूपयौवनसम्पन्न' थे तथा जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें असाधारण योग्यता तथा अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न थे। यदि आप चाहते तो भोग विलासमय जीवन व्यतीत कर सकते थे किंतु फिर भी आप इस प्रकारके जीवनसे सर्वथा अस्पृष्ट रहे। इसीलिये आप धीर कहे गये हैं। महाकवि कालिदासके अनुसार 'धीर वे ही हैं, जो विकारोंके निमित्त उपलब्ध होनेपर भी अपने मनको निर्विकार रख पाते हैं—विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः॥' (कुमारसम्भव १।५९) मतवाले हाथी तथा खूँखार व्याघ्र सिंहादिपर विजय पानेवाला मनुष्य 'वीर' होता है, किंतु अपने मनको जीतकर कामदेवपर विजय पानेवाला मनुष्य 'महावीर' होता है। श्रीभर्तृहरिने यथार्थ ही कहा है—मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः ... । कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः॥ (शृङ्गारशतक ७१) श्रीहनुमानजी इन्हीं दुर्लभ कोटिके लोगोंमें हैं। इसीलिये आप 'महावीर' कहलानेके पात्र हुए।

जब श्रीभगवान् अवतार धारण करते हैं, तब वे अकेले ही प्रकट नहीं होते। उनके साथ ही उनकी अनेक दिव्य शक्तियोंके अधिष्ठाता देवगण भी विभिन्न रूपोंमें तथा विभिन्न सामर्थ्योंसे सम्पन्न होकर अवतरित होते हैं। जिस समय भगवान् श्रीरामने रावणसे धर्म्य देव-मानवादिकी रक्षाके हेतु अवतार धारण किया, उस समय उन्हींके संकेतानुसार अनेक देवगण भी वानरादिके विभिन्न रूपोंमें प्रकट हो गये। उनके अनन्य भक्त कैलासनाथ भूतभावन भगवान् श्रीशंकरजीने कपि-अवस्थामें ही भगवान् श्रीरामके सहायतार्थ अवतार धारण करनेका संकल्प किया और उन्होंने एक अंशके

अपने आराध्यदेवके प्रमुख सेवकके रूपमें आविर्भूत होनेका निश्चय कर लिया। इसी आशयसे श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'हर ते भे हनुमान'। (दोहावली १४३) इसीलिये समर्थ स्वामी रामदासजीने श्रीहनुमानजीको 'महारुद्रका अवतार' कहा है। यह अवतार भगवान् शंकरने शक्तिसहित न धारण करके अकेले ही धारण किया। अतएव नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आपके इस अवतारका मुख्य लक्षण है। कामारि और अनन्य श्रीरामभक्त तो आप थे ही, इसलिये इस व्रतका आपने अनायास पालन करके मानव-समाजके सामने ब्रह्मचर्यका एक उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया है। अल्पशक्ति मानवको आचरण-विषयक और उज्ज्वल चारित्र्य विषयक शिक्षा देना यह भी भगवदवतारका एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन होता है। इसी आशयसे श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।'
(५ । १९ । ५)

मेरे प्रभुका मानवरूपमें अवतार केवल राक्षसोंके वधके लिये नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मानवोंको शिक्षा देना है।' ये वचन स्वयं श्रीहनुमानजीके मुखारविन्दसे अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिके रूपमें निकले हैं। एक प्रकारसे ये वचन स्वयं उन्हींपर लागू होते हैं, क्योंकि उनके अवतारका भी यह एक प्रमुख उद्देश्य है।

ब्रह्मचर्यकी महिमा अत्यन्त प्राचीन कालसे वेदों, उपनिषदों तथा इतिहास पुराणादिमें गायी गयी है। 'अथर्ववेद'का तो एक सम्पूर्ण सूक्त ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचारीकी अपरिमित महिमा दिखलानेवाला है (काण्ड ११ सू० ५)। छान्दोग्योपनिषद्में ब्रह्मचर्यकी महिमा विस्तृतरूपसे बतलायी गयी है। ऋषि मुनि अपने शिष्योंको दीर्घकालतक ब्रह्मचर्यके पालन करनेका आदेश देते थे। अन्य उपनिषदों तथा श्रीमद्भगवद्गीतामें ब्रह्मचर्यको ब्रह्मपदकी प्राप्तिका साधन बतलाया गया है—

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥
(गीता ८ । ११)

महाभारत 'मोक्षधर्म'का निम्न श्लोक इस विषयमें प्रसिद्ध है—

यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ।
परं तत्सर्वधर्मेभ्यस्तेन यान्ति परां गतिम् ॥

'ब्रह्मचर्य परब्रह्मका ही रूप है। यह सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है। उसके द्वारा मोक्षरूप परमगति प्राप्त होती है।' 'पद्मपुराण'में ब्रह्मचर्यको सबसे श्रेष्ठ तप कहा गया है—'ब्रह्मचर्य समाचरेत् किमतः परमं तपः ॥'

इस अमित महिमामय ब्रह्मचर्यकी व्याख्या तथा लक्षण भिन्न भिन्न स्थानोंपर विभिन्न प्रकारसे बताये गये हैं। 'लिङ्गपुराण'के अनुसार 'यतियों एवं ब्रह्मचारियोंके लिये मनसे, वाणीसे, शरीरसे तथा कर्मसे मैथुनकी प्रवृत्ति न होना ही ब्रह्मचर्य है'—

मैथुनस्याप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्कायकर्मणा ।
ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्तं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥

'दक्षसंहिता'में अष्टविध ब्रह्मचर्यका स्वरूप निम्न श्लोकोंमें बतलाया गया है—

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा मैथुनं पृथक् ।
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥
(७ । ३१-३३)

अष्टविध ब्रह्मचर्यके पालनमें निम्न आठ बातोंसे बचना आवश्यक है—(१) स्त्रियोंका कामभावसे स्मरण, (२) उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा सौन्दर्यादिका वर्णन, (३) उनके साथ कामभावपूर्वक हँसी विनोद, (४) उनका कामभावसे दर्शन, (५) उनके साथ एकान्तमें कामबुद्धिसे सम्भाषण, (६) कामासक्त होकर उनकी प्राप्तिकी अभिलाषा, (७) उनके साथ रमण करनेका निश्चय एवं (८) प्रत्यक्ष समागम। इस प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन असिधारा-व्रतके सदृश है।

समाजमें रहते हुए, विशेषतः श्रीहनुमानजी-जैसे अधिकारके पदको सँभालते हुए अष्टविध ब्रह्मचर्यका पालन करना सरल नहीं है यह बहुत बड़ी तपस्या है। किंतु श्रीहनुमानजी इस विषयमें कितने खरे थे, इसका परिचय उनके जीवनकी एक ही घटनाके द्वारा हो जाता है। ब्रह्मचारीके लिये स्त्रियोंकी ओर देखनेका भी निषेध है। श्रीहनुमानजी लङ्कामें माँ जानकीजीकी खोज करनेके लिये गये थे। इसके लिये उन्हें रात्रिके समय रावणके रनिवासकी अनेक सुन्दरी स्त्रियोंको ध्यानपूर्वक देखना पड़ा। बाध्य होकर ही उन्हें यह करना पड़ा। यह एक तरहका धर्म-संकट था। यदि स्त्रियोंकी ओर न देख कर ब्रह्मचर्यव्रतका अक्षरशः पालन करते हैं तो जानकीजीकी खोजरूप प्रभु-कार्यका सम्पन्न करना असम्भव हो जाता

है। यदि प्रभु-कार्यार्थ स्त्रियोंकी ओर देखते हैं तो ब्रह्मचर्य व्रत भङ्गका प्रसङ्ग उपस्थित होता है। इस कारण उनका चित्त यहाँ देखनेके लिये दोलायमान हो जाता है और व्रतभङ्गकी आशङ्कासे व उद्विग्न-से हो जाते हैं किंतु शीघ्र ही इस समस्याका हल प्राप्त हो जाता है। आत्मपर्यवेक्षणके द्वारा वे इस दुविधाको जिस सुन्दर रीतिसे दूर करते हैं, वह सभी ब्रह्मचर्यव्रतधारियोंके लिये बोधप्रद है। किसी भी क्रियाकी अपेक्षा उसके मूलमें रहनेवाला हेतु या उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। रावणके रनिवासकी स्त्रियोंकी ओर देखनेका उनका उद्देश्य केवल माँ जानकीकी खोजरूप प्रभु-कार्य करनेका था कामभावसे स्त्रियोंकी ओर देखना नहीं। अपने आत्मपर्यवेक्षणमें श्रीहनुमानजीने ठीक ही कहा है कि 'स्त्रीकी खोज स्त्री-समुदायमें ही की जाती है, हरिणियोंके समुदायमें नहीं।' आपका हेतु पूर्णतः विशुद्ध और पवित्र था। स्त्रियोंकी ओर देखकर भी आपका ब्रह्मचर्यव्रत अखण्डित ही रहा क्योंकि उनकी ओर देखकर भी आपका मन पूर्णरूपसे निर्विकार रहा। वस्तुतः अपरिहार्य कारणोंके उपस्थित होनेपर स्त्रियोंकी ओर देखना दोषपूर्ण नहीं है, किंतु उनकी ओर कामासक्त होकर पापबुद्धिसे देखना दोषपूर्ण है।

पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। जो आजन्म ब्रह्मचर्यका पालन करता है, उसके विषयमें कहा गया है कि 'वह देव ही है, मनुष्य नहीं—स देवो न तु मानुषः'। अब प्रश्न यह है कि इसके पालनका प्रमुख उपाय क्या है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि 'जहाँ काम तहँ राम नहिं' और 'जहाँ राम नहिं काम।' महात्मा गांधीने वैवाहिक जीवनमें ही ब्रह्मचर्यका व्रत ले लिया था और इसके पालनके लिये उन्होंने अनेक प्रयोग किये थे, किंतु अन्तमें वे इसी निष्कर्षपर पहुँचे थे कि पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन राम-नाम या भगवद्भक्तिद्वारा ही सम्भव है। जाबालदर्शन उपनिषद् (१।१४) में ब्रह्मचर्यका यही अर्थ दिया गया है—'ब्रह्मभावे मनश्चारं ब्रह्मचर्यं परंतप।' अर्थात् 'ब्रह्मभावमें मनका विचरण करना ब्रह्मचर्य है।' जिसका जीवन भगवन्मय हो गया हो, वही सच्चा ब्रह्मचारी हो सकता है। श्रीहनुमानजी उच्चतम कोटिके श्रीरामभक्त थे। उनका रोम-रोम श्रीराममय हो रहा था। उनके हृदयमें अपने आराध्यदेवकी मूर्ति निरन्तर विद्यमान रहती थी। सम्पूर्ण जगत्‌को वे 'सीयराममय' देखते थे। ऐसी स्थितिमें ब्रह्मचर्यकी विघातक कोई ग्राम्यवृत्ति उनके चित्तमें कैसे उदय हो सकती थी?

ब्रह्मचर्य एक ऐसी तपस्या है, जिसको सिद्ध कर लेनेपर मनुष्यमें अनेक दिव्य तथा दुर्लभ गुण प्रकट हो जाते हैं—

'वपुषि च गुणकोटीं निर्मिमाते यदर्चो।'
चिरायुषः सुसम्पन्ना दृढसंहनना नराः।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः॥

कोई आश्चर्य नहीं कि श्रीहनुमानजी इसके प्रभावसे ही 'सकलगुणनिधान' हुए हों। श्रीवाल्मीकिरामायणमें आपकी इस गुण-सम्पन्नताका वर्णन यत्र-तत्र पाया जाता है। संक्षेपमें उनका दिग्दर्शन करानेके लिये निम्न श्लोक पर्याप्त हैं—

(१) तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥
(वा० रा० ६।१२८।८२)

'श्रीहनुमानमें ये सद्गुण सदा विद्यमान रहते हैं—तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि।'

(२) शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥
(वा० रा० ७।३५।३)

'शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्गुणोंने श्रीहनुमानके भीतर घर कर रखा है।'

(३) पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥
(वा० रा० ७।३६।४४)

'संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें श्रीहनुमानसे बढ़कर हो।'

[illegible] यह है कि श्रीहनुमानजीका [illegible] उनके भक्तमें भी अभीष्ट गुण प्रकट हो जाता है। यथा—

बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगता ।
अजाड्यं वाक्पटुत्वं च हनुमत्स्मरणाद् भवेत् ॥

'श्रीहनुमानजीके स्मरणसे मनुष्यमें बुद्धि, बल, यश, धैर्य, निर्भयता, आरोग्यता, विवेक और वाक्पटुता आदि गुण आ जाते हैं ।'

गोस्वामी तुलसीदासजी हनुमान चालीसामें कहते हैं—

दुर्गम काज जगत के जेते । सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥
नासै रोग हरै सब पीरा । जपत निरंतर हनुमत बीरा ॥

माँ जानकीके वरप्रदानसे आप अष्टसिद्धि नवनिधिके दाता भी हैं—

अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता । अस बर दीन्ह जानकी माता ॥

आपका संकटमोचन रूप प्रसिद्ध ही है—

संकट कटै मिटै सब पीरा । जो सुमिरै हनुमत बलबीरा ॥

आज हमारे देशके नवयुवकोंमें सर्वत्र ब्रह्मचर्यका ह्रास दीख पड़ता है । यदि इनके सामने श्रीहनुमानजी जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारीका आदर्श बाल्यावस्थासे ही रखा जाय तो सम्भवतः ब्रह्मचर्यका महत्त्व समझनेपर इन्हें ब्रह्मचर्य व्रतके निष्ठापूर्वक पालन करनेकी प्रेरणा मिल सकती है । यही कारण है कि स्वामी श्रीविवेकानन्द जैसे सुदूरदर्शी राष्ट्र-संतने मोहनिद्रामें मग्न भारतको निम्न संदेश देकर जगाया था—'देश तथा धर्मके उद्धारके लिये आपलोग श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीहनुमानजीकी उपासना जोरोंसे प्रचलित कीजिये ।'

सेवा-सावधान श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी रत्नमालीय, एम्०ए०, बी०एड्०)

'ग्यान-गुनवान बलवान, सेवा-सावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो ।'
(हनुमानबाहुक ८)

श्रीरामचन्द्र सरकारके अडिग पायक, राम-रतिरूपी रुचिर रसायनके अप्रतिम स्वादविद्, मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यव्रत यती, जनकनाथ-चरणानुरागी शूर शिरोमणि, सादगी, सुमति, समीर कुमार श्रीहनुमानजीकी मञ्जुल-मङ्गल मोदमयी मूर्तिका सर्वाधिक सम्मोहक पक्ष है—उनकी सेवा सावधानता, जिसकी परिधिमें समुद्र-संतरण, रावण-मद-मर्दन, कुम्भकर्ण गर्व-खर्वीकरण, मेघनाद मख विध्वंसन, निकुम्भ निधन, धूम्राक्ष-धूलि धूसरण, त्रिशिर शिर मर्दन, अकम्पन उरकम्पन, अतिकाय-काय संकोचन, अक्षयकुमार विदारण एवं द्रोणगिरि आनयनसे लेकर भरतमिलनकी सुखदी सम्पन्नताके व्यापार सम्मिलित हैं ।

अपने इन्हीं परम सुजान राम-सुखमके सुयोगसे रहते हुए मनसा-वाचा-कर्मणा सुमन सुमनसी (मनकी वचनकी करमकी तिहूँ प्रकार, तुलसी तिहारो तुम साहेब सुजान हौ— हनुमानबाहुक १४) अनन्याश्रयप्रतिम हो तत्-स्वरूप कर उठते हैं—

जयति भिन्नमन्त्रामान सौनरमण
निरति निर्भर हरष गुणधारी ।
राम-साम्राज्यशोभा-सहित सर्वदा
तुलसिमानस-रामपुर-विहारी ॥
(विनयपत्रिका २७ । ५)

'रामगुलाम तुही हनुमान गुसाँइ सुसाँइ सदा अनुकूलो ।'
(हनुमानबाहुक १६ । १)

बड़भागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चापत बिधि नाना ॥
(मानस ६ । ११ । १½)

पुण्यश्लोक पवनात्मजके चरित्रका केन्द्रीय भाव है—रामगुलामी और रामगुलामीका प्राण तत्त्व है—सेवा सावधानता । सेवाधर्म परम गहन है । यह योगियोंके लिये भी अगम्य है—

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धरमु कठिन जगु जाना ॥
(मानस २ । २९९ । ४½)

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥
(मानस २ । २०३ । ४½)

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।'

गोस्वामी तुलसीदासके मतमें स्वामीके पद-पदपर सावधान रहना ही सेवक धर्म पालनका स्वर्णिम नियम है ('सहज स्वामि हित सब भाय सम्भव जो 'सेवक कर पद नयन सो') और हनुमानजी इस नियमके सुविज्ञ हैं, इस धर्मके विशेषज्ञ हैं, पूर्ण पण्डित हैं ।

श्रेष्ठ सेवकके जिन गुणोंका उल्लेख निम्नोक्त विदुर वचनमें हुआ है, वे सभी उनके व्यक्तित्वमें जगमगा रहे हैं—

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः॥
(विदुरनीति ५। २५)

'जो सेवक स्वामीके अभिप्रायको समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्योंको पूरा करता है, जो हितकी बात कहनेवाला, स्वामि-भक्त, सज्जन और राजाकी शक्तिको जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर कृपा करनी चाहिये।'

उनके समग्र व्यक्तित्वमें विनयशीलता और अनुशासनका मणि-काञ्चन संयोग सर्वत्र दिखायी पड़ता है। उनकी अतुलनीय सेवाका स्मरण करते ही श्रीरामचन्द्रजी मुक्त कण्ठसे पुकार उठते हैं—

एतस्य बाहुवीर्येण लब्धा सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥
हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपते सखा।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत्॥
(वा० रा० ७। ३५। ९-१०)

'सुग्रीश्वर! मैंने तो इन्हींके बाहुबलसे विभीषणके लिये लङ्का, शत्रुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा सीता, लक्ष्मण, मित्र तथा बन्धुजनोंको प्राप्त किया है। यदि मुझे वानरराज सुग्रीवके सखा हनुमान् नहीं मिलते तो जानकीका पता लगानेमें भी कौन समर्थ हो सकता था?'

आइये, अब इन सेवकशिरोमणिकी सेवा-सावधानताके कुछ स्थलोंका सिंहावलोकन किया जाय। श्रीलक्ष्मणलालजीको श्रीसीता-रक्षणका भार सौंपते हुए श्रीरामजीने जिन चार बातोंका उल्लेख किया है, उन्हींमें सेवा-सावधानताका मर्म भी छिपा हुआ है—

'सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥'
(मानस ३। २६। ४½)

बुद्धि, विवेक, बल और कालका विचार रखकर ही सेवा-धर्मका सम्पादन सम्भव है। बुद्धि व्यवसायात्मिका होती है यह कार्यमें प्रवृत्त करती है। विवेक, धारणात्मक होता है वह कार्याकार्यव्यवस्थिति-क्रममें सदसत् कार्यकी विवेचना कर सत्यकी सम्यक्में सहायता पहुँचाता है। बल कार्य-सम्पादनका मूल उपादान है और समयका विचार अङ्कुश इन देकर मानो सोने सोनेमें सुगन्ध देनेके समान है। श्रीहनुमानजीके व्यक्तित्वमें इन चारों गुणोंका सुगुम्फन हुआ है। वाल्मीकीय रामायणमें भी आदिकवि जी उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥
(वा० रा० ५। १। २०१)

'वानरेन्द्र! जिस पुरुषमें तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्यमें कभी असफलता नहीं मिलती।'

मति और दृष्टि शब्द बुद्धि और विवेकके वाचक हैं, दक्षता कुशलाचरणकी सूचिका है तथा धृति तो बलवानों एवं वीरोंका प्रथम लक्षण और अन्यतम भूषण ही है। उपर्युक्त चारों गुणोंके पुञ्जकारी हनुमत्-चरित्रमें स्थल-स्थलपर उपयुक्त चारों गुणोंके पुञ्जकारी प्रसङ्ग बिखरे पड़े हैं। पहले उनके दर्शन हम सुग्रीव-सचिवके रूपमें करते हैं, तत्पश्चात् राम-सेवकके रूपमें। एक ओर वे 'मतिमान् सुग्रीवैकबन्धु' हैं तो दूसरी ओर वे 'भानुकुल-भानु कीरति-पताका' हैं। प्रत्येक स्थानपर वे अपने इस द्विविध व्यक्तित्वका सफल निर्वाह करते हैं। आत्मपरिचय देते हुए वे श्रीसीताजीसे निवेदित करते हैं—

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः॥
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे।
(अ० रा० ५। २। ३३-३४)

'हे शुभप्रदे! मैं तो कोसलाधिपति परमात्मा श्रीरामका दास और वानरराज सुग्रीवका मन्त्री हूँ, तथा हे माता! सम्पूर्ण जगत्के प्राणस्वरूप पवनदेवका पुत्र हूँ।'

क्या सुग्रीव सचिवत्व, क्या रामदासत्व—प्रत्येक प्रसङ्गमें हम उन्हें परम सावधान पाते हैं।

श्रीसुग्रीव-सेवक हनुमानकी सेवा-सावधानता

श्रीहनुमानजीके प्रथम दर्शन हमें ऋष्यमूकपर्वतपर वानरी सब प्रकार उद्विग्नहृदय सुग्रीवके साथ होते हैं। सुग्रीवके मानसपटलपर आगत, घाते एवं स्वप्नमें उदेगें पलकी मूर्ति ही नाचती है। उनकी इस उन्मनी अवस्थामें अनन्य स्नेह (समझाते रहना) परिचारक (कार्य-सम्पन्न करना) और बन्धु (राजाको मन्त्रणा देना)—इन गुणोंसे हनुमानजी। देवयोगसे उन्हीं दिनों भगवान् श्रीराम लक्ष्मणका दर्शन होता है। यहीं सब पीड़ा सुग्रीव अस्थिर हो उठते हैं, उनकी ऐसी दशा देखकर सब हनुमानजी उनको चिन्ता निर्मुक्त किन्तु श्रीराम-लक्ष्मणकी

श्रीहनुमान-आराध्यकी प्रतीक्षामें

हृदयमें भी अपत्य-स्नेह जाग्रत् हुए बिना नहीं रहता, किंतु कर्तव्य-बोधके वैवश्यवश वह यह झटका भी सँभालकर खड़ी है—राह रोककर पहाड़की तरह अड़ी है। श्रीहनुमानजी परेशान हैं कि यह कैसी विकट समस्या है, जिसमें उनके सब-के-सब दिव्यास्त्र बेकार हो गये हैं। अतः व शीघ्र निपटारा कर डालनेके उद्देश्यसे कह उठते हैं—'मुझे ग्रसो न !'—'ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना।' तब सुरसा वदनका विस्तार करती है और साथ ही आञ्जनेयका आकार द्विगुणित होता जाता है। दाँव पेंच, क्रिया प्रतिक्रिया, घात प्रतिघात, समस्या-समाधानका यह क्रम सुरसाके सौ योजन मुख विस्तारतक चलता है। सहसा समीरसुवनजीको एक सरलतम समाधान सूझ जाता है। वे झट अङ्गुष्ठमात्र लघु रूप बनाकर उसके मुखमें प्रविष्ट हो बाहर निकल जाते हैं और उसे नमस्कार करते हैं—'प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते।'—दक्षनन्दिनी ! तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुखमें प्रवेश कर चुका।' इतनेपर भी भला सुरसा सन्तुष्ट क्यों न हो। धन्य है मारुतात्मजकी चतुरस्र चतुराई।

> राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
> आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥
>
> (मानस ५। २)

अब श्रीहनुमानजीके विमल विवेकके एक दो रुचिर प्रसङ्ग और देखिये। स्वधर्ममें स्थिरता, तत्त्वोंके परिज्ञानमें प्रवीणता और आत्मविनिग्रह—ये विवेकके विशिष्ट अङ्ग हैं और आञ्जनेयका व्यक्तित्व इन सभी गुणोंका आगार माना जाता है। सीता परिमार्गण-प्रसङ्गमें वे रावणके रनिवासकी स्त्रियोंको देखकर धर्मलोपकी आशङ्कासे अभिभूत हो उठते हैं—

> निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।
> जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः॥
> परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
> इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति॥
>
> (वा० रा० ५। ११। ३७-३८)

किंतु, अविलम्ब ही अपने मनकी विशुद्धता और विहित कार्यकी अनिवार्यताका विचार कर वे आत्म निर्वेदसे मुक्त हो जाते हैं। उनका दूसरा विवेकपूर्ण कार्य है—विप्ररूप धारण कर विभीषणसे परिचय करना, लङ्काका भेद लेना, सज्जन-सम्पर्क-सुख लूटते हुए स्वामीके कार्यकी सिद्धि करना। उनका तीसरा विवेकपूर्ण कार्य है—मेघनादद्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्रका (प्रतिकार-समर्थ होकर भी) समादर करना। वे तो मर्यादापुरुषोत्तमके महान् सेवक ठहरे, फिर भला मर्यादाकी रक्षा क्यों न करें। धन्य है, मारुतात्मजका विवेक।

श्रीराम-सेना प्रसङ्गमें उनके बलकी इयत्ता बतलानेकी शक्ति किसकी लेखनीमें है ! महाबली मारुतात्मजका रण-कौशल देखकर तो श्रीराम-लक्ष्मण, रावण, विधि, चक्रपाणि, चण्डीपति, चण्डिका एवं देवाङ्गनाएँ—सभी सिहाते हैं—

> तुलसी' लखत, रामु, रावनु, बिबुध, बिधि,
> चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
> बड़े-बड़े बानइत, बीर बलवान बड़े,
> जातुधान जूथप निपाते बातजात हैं॥
>
> (कवितावली, लङ्काकाण्ड ४१)

उनके द्वारा की जाती हुई राक्षसोंकी दुर्दशाका श्रीतुलसीदासजीद्वारा प्रस्तुत वर्णन देखिये—

> दबकि दबोरे एक, बारिधिमें बोरे एक,
> मगन महीमें, एक गगन उड़ात हैं।
> पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
> चीरि-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं॥
>
> (कवितावली, लङ्काकाण्ड ४१)

और चकित कर दीजिये कानोंको युद्ध-सुख, रण कौतुकी कपीशकी यश जय गाथा सुनाके—

> कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरष्षत।
> कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करष्षत॥
> चरन चोट चटकन चकोट अरि उर-सिर बज्जत।
> बिकट कटकु बिद्दरत बीर बारिदु जिमि गज्जत॥
> लंगूर लपेटत पटकि भट, जयति राम जय ! उच्चरत।
> तुलसीस पवननंदनु अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥
>
> (कवितावली, लङ्काकाण्ड ४७)

असुरमण्डली तो उनके अलौकिक बलसे संत्रस्त होकर दिशा विदिशाओंमें उनकी मूर्ति ही देखती है। कैसी बेचैनी है उसे ! आँख मूँद लेनेसे भी उसका बचाव नहीं—

> मूँदे आँखि हिय में, उघारें आँखि आगें ठाढ़ो,
> धाइ जाइ जहाँ-तहाँ, और कोऊ को हितू ।
>
> (कवितावली सुन्दर० १७)

अब उनकी विनयके कुछ चित्र देखें—

विघ्नोंके बीच ही विशेष चमत्कार दिखानेवाले चतुरशिरोमणि वातजात भला ऐसे छोटे-मोटे विघ्नसे कहीं कुण्ठित होनेवाले हैं ! वे बाहुबलसे विशाल पर्वतको ही उखाड़कर चल देते हैं, एक पल भी ऊहापोहमें बेकार नहीं बिताते । उनकी सजग कालज्ञ बुद्धिका परिचय समराङ्गणके उस स्थलपर मिलता है, जब विवश सुग्रीवको लेकर हर्षमग्न कुम्भकर्ण अपने नगरकी ओर लौटता है। समीप पहुँच चुके हैं समीरसुत, किंतु यह क्या ! स्वामी सुग्रीवको वे छुड़ाते नहीं । क्या यही स्वामिभक्ति है उनकी ! क्या इससे भी बढ़कर नमकहलालीका कोई उपयुक्त अवसर आयेगा ? हाँ, स्वामिभक्ति ही तो उन्हें रोक रही है अन्तर विचार ही तो उनके पैरोंको जकड़े हुए है। ऐसा करनेसे स्वामीके यशकी हानि जो हो जाती—

मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अप्रीतिश्च भवेत् कष्टा कीर्तिनाशश्च शाश्वतः ॥
(वा० रा० ६ । ६७ । ७१)

'यदि मैं इन्हें छुड़ाऊँ तो महात्मा सुग्रीवको प्रसन्नता नहीं होगी, उल्टे इनके मनमें खेद होगा और सदाके लिये इनके यशका नाश हो जायगा ।'

कहाँतक इन 'सेवक-सरोरुह सुखद भानु भोर-स्वरूप' सेवकशिरोमणिकी गायमानताकी चर्चा की जाय ? उनकी बुद्धिकी बचपनेतकमें वह चमत्कार है, जो समस्त श्रीराम परिकरकी बुद्धिको चकरा देता है और उनकी चरणसेवाके विशेष विचारको सर्वथा सुरक्षित कर देता है । उनकी विस्तृत विरुदावलीका न तो ओर है न छोर—

जय जनकजा-रमण जय जनकजा-रमणानुज जय जनकजा-रमण चरण-चकोर !'

श्रीरामकथानुरागी श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीरामपदारथसिंहजी)

भगवान्‌की कथामें अनुराग होना भक्तिका एक लक्षण है। श्रीराम भक्तिकी मिठासे आकर्षित होकर 'हृदसे हनुमान' बननेवाले महाभागवत श्रीआञ्जनेयमें भक्तिका यह लक्षण आश्चर्यजनक रूपमें विद्यमान है । उनका श्रीरामकथानुराग पराकाष्ठाको प्राप्त है । सच तो यह है कि श्रीहनुमानजीने श्रीरामकथाको अपना जीवनाधार ही बना लिया है ।

श्रीवाल्मीकीय रामायणसे विदित होता है कि श्रीमारुत नन्दनने भगवान् श्रीरामसे यही वरदान माँग लिया था कि 'जबतक जगन्मङ्गलमयी श्रीरामकथा पृथ्वीपर प्रचलित रहे, तभीतक उनके शरीरमें प्राण रहें'—

यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥
(वा० रा० ७ । ४० । १७)

महाभारतके वनपर्वमें भी भीमसेनको रामचरित सुनाते समय उन्होंने अपनेद्वारा भगवान् श्रीरामसे उपर्युक्त आशयका वरदान माँगनेका उल्लेख किया है—

या मया याचितोऽसौ रामः राजीवलोचन ॥
यावद्रामकथेयं ते भवेल्लोकेषु शत्रुहन् ।
तावज्जीवेयमित्येवं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत् ॥
(१४८ । १९ । १०)

स्पष्ट है कि श्रीहनुमानजीको रामकथाके आधारपर ही जीना स्वीकार है । उन्हें दीर्घ जीवन प्राप्त है, पर बिना राम कथाके वह उन्हें पसंद नहीं ।

अनेक व्यक्तियोंको श्रीहनुमान्जीके श्रीरामकथानुरागका प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिला है । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके सम्बन्धमें प्रसिद्धि है कि उनका शौचका जल नित्य पाकर काशीमें एक प्रेत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें बतलाया कि श्रीहनुमानजी कोढ़ीके वेशमें प्रतिदिन रामायणकी कथामें नित्य ही सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं । इसी संकेतके आधारपर गोस्वामीजीने श्रीहनुमानजीको कथास्थलपर जाकर पहचाना । भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने भी यह कथा लिखी है—

सौच जल सेष पाय भूतहू बिबस भयो
बोल्यो सुख मानि हनुमान् जू बताय हैं ।
रामायन कथा, सो रसायन है कानन को
आवत प्रथम पाछे जात घृना छाय हैं ॥
जाय पहिचानि संग चले उर आनि आये
बन मधि जानि धाय पाँय लपटाय हैं ।
करै तिरस्कार कहौ सकौगे न टारि किये
जान्यो सार पै न भावत भाय हैं ॥

कालनेमि जानता था कि श्रीवायुनन्दन वायुके समान ही दुर्निग्रह हैं। उनको उलझानेका कोई अन्य अचूक उपाय न देखकर उसने श्रीराम-कथाका सहारा लिया। वह जानता था कि श्रीहनुमानजी श्रीराम-कार्य और श्रीराम-कथामें प्राथमिकता श्रीराम-कथाको ही देते हैं। उसे यह भी मालूम था कि वे कथा-समाप्तिके पूर्व कथास्थलसे जा नहीं सकते। अतः अपनी कुयोजनाको सफल करनेकी आशासे अन्य उपचार किये बिना वह श्रीराम-कथा कहने लगा। इसका फल हुआ भी उसकी आशाके अनुकूल ही। श्रीहनुमानजी कथा सुनने लगे। उसकी शिष्टाचार सम्बन्धी भूलपर उनका ध्यान नहीं गया और वे अपनी प्यास भी भूल गये। कथाप्रेमी वक्ताकी भूल-चूकपर ध्यान ही नहीं देता और कथा श्रवणके समय उसे भूख प्यास रहती ही नहीं। श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण करते समय महाराज परीक्षित्‌को भूख-प्यास नहीं रही। उनका अपना कथन है—

> नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
> पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥
> (श्रीमद्भागवत १० । १ । १३)

श्रीहनुमानजी कथा श्रवणमें ऐसे तल्लीन हो गये कि प्यास ही नहीं, जड़ी लाने जाना भी भूल गये। देर होने लगी। सुषेणने वनस्पति और समय दोनोंका समान महत्त्व बतलाया था—

> 'जियै कुँवर, निसि मिलै मूलिका कीन्हीं बिनय सुषेन।
> (गीतावली ६ । ७ । २½)

श्रीलक्ष्मणजीके लिये सूर्योदय प्राणघातक है, उसके पूर्व ही जड़ीका पहुँचना आवश्यक है। बादमें वह प्रभावहीन हो जायगी—ये सारी बातें श्रीहनुमानजीकी स्मृतिसे उतर गयीं क्योंकि श्रीराम-कथा कानोंमें पड़ी। इससे उनके मन, चित्त—सब उसीमें लग गये। अन्य बातोंको कौन याद करे! इधर विलम्ब होने लगा, उधर भगवान् श्रीरामकी व्याकुलता बढ़ने लगी—

> उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
> अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥
> (मानस ६ । ६० । १)

—पर श्रीहनुमानजी तो कथा सुननेमें तन्मय थे। कालनेमिने जो युद्ध-लीला देखी थी, उसे कहना प्रारम्भ किया—

> होत महारन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं॥
> (मानस ६ । ५६ । २½)

अब देखी हुई लीलाका वर्णन हो चुका, कुछ कहनेको शेष न रहा, तब वह अपनी प्रशंसाकी कथा सुनाने लगा—

> इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकाई॥
> (मानस ६ । ५६ । ३)

उस समय कानोंसे केवल श्रीराम-कथा ही सुननेवाले श्रीहनुमानजीके चित्तमें विक्षेप हुआ, उन्हें प्यास मालूम हुई और आगे चलकर मकरी-भूत अप्सरासे सारा भेद खुला। वे कालनेमिको मारकर आगे बढ़े और द्रोणाचलको ही उठाकर लङ्का ले गये। वैद्यने जड़ी पाकर तुरंत उपचार किया और लक्ष्मणजी स्वस्थ होकर उठ बैठे।

कालनेमिको श्रीराम-कथा पूरी ज्ञात नहीं थी। यदि वह भगवान्‌के जन्म, विवाह आदिकी भी कथा आरम्भ करता तो 'राम काज कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्रामा।' (मानस ५ । १) का विचार रखनेवाले श्रीहनुमानजीको तत्काल वह अवश्य उठा देता। उस दशामें उनके श्रीराम-कथा-विषयक अद्भुत अनुरागका परिणाम शुभ होता या अशुभ, यह प्रश्न श्रीराम-कथाके महत्त्वपर अपूर्ण आस्था होनेके कारण पैदा होता है। वास्तवमें कहना चाहिये कि श्रीराम-कथानुरागीका कोई काम उसके कथानुरागके कारण नहीं बिगड़ता। श्रीहनुमानजीका कभी कोई काम बिगड़ा हो, ऐसा उदाहरण नहीं है। भगवान् श्रीरामके सब काम सुन्दर ढंगसे श्रीहनुमानजीने ही पूरे किये—

> सब पर राम तपस्वी राजा। तिन के काज सकल तुम्ह साजा॥
> (हनुमानचालीसा)

तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो पै हिएँ उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी, कपि यों धुकि धायो॥
(६।५८)

हनुमानजीके उस वेगका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं कि 'हनुमानजीने विशाल पहाड़ उखाड़ते ही बिना विलम्ब किये उसी समय वहाँसे प्रस्थान कर दिया और उन्होंने पवन, मन और गरुड़—तीनोंको वेगसे लज्जित कर दिया। वे ऐसे वेगसे चले, मानो आकाशमें प्रत्यक्ष पर्वतकी रेखा खिंच गयी हो।' उनके वेग और उनकी अपार शक्तिका परिचय तो उनके समुद्र लाँघने और द्रोणाचल उखाड़कर रातभरमें लङ्का पहुँचा देनेसे ही स्पष्ट हो जाता है। जिन लक्ष्मणको मेघनाद और रावणतक नहीं उठा सके, उन्हें वे सरलतापूर्वक रणभूमिसे अपने हाथोंपर उठाये श्रीरामके पास लिये चले आये।

श्रीहनुमानजीको यह शाप था कि उन्हें अपने बलका ज्ञान तभी होगा, जब उन्हें उसका कोई स्मरण दिला देगा। इसीलिये जब समुद्र-तटपर पहुँचकर सम्पातिके बता देनेपर भी कोई समुद्र लाँघनेका साहस नहीं कर पा रहा था, उस समय जाम्बवन्तने ही हनुमानसे कहा था—'का चुप साधि रहेहु बलवाना॥' (मानस ४।२९।१½) और यह सुनते ही वे 'भयउ पर्बताकारा॥' (मानस ४।२९।३) हो उठे। अपनी इस शक्ति अर्थात् महिमा, गरिमा और लघिमा आदि सिद्धियोंका परिचय उन्होंने उस समय दिया था, जब सुरसा उनकी परीक्षा लेने आयी थी। जैसे जैसे सुरसा अपना मुँह फैलाती जाती थी, हनुमान उससे दुगुने बड़े होते चले जाते थे। तब सुरसाने उन्हें कह दिया था कि 'जाओ, मैंने तुम्हारी बुद्धि और बलकी परीक्षा ले ली है।'

दूतका कार्य यह है कि जो काम उसे सौंपा जाय, उसे वह सावधानीसे निश्छल होकर करे। जब समुद्र-तटसे उछलकर श्रीहनुमान लङ्काकी ओर जा रहे थे, उस समय मैनाकपर्वतने उनसे कहा कि थोड़ा विश्राम कर लीजिये। किंतु श्रीहनुमानने कहा—'नहीं, 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥' (मानस ५।१) इतना ही नहीं, लङ्का जलाकर सीताजीसे आज्ञा प्राप्त करके वे तत्काल वहाँसे चल पड़े। उन्होंने कुछ भी विलम्ब नहीं किया। उन्होंने जिस प्रकार सारी लङ्का जलाकर राख कर डाली, वह उनकी वीरता, शक्ति और प्रतापका जीता-जागता उदाहरण है। रावणवधके बाद अयोध्या लौटनेपर जब भरतने सबको बढ़िया आभूषण और वस्त्र पहनाये, उस समय हनुमानजीको भी मोतियोंका हार दिया गया। किंतु उन्होंने उसे तोड़कर फेंक दिया। दूत क्या पुरस्कारके लिये काम करता है? वे तो श्रीरामके भक्त थे—पवित्र, निर्लोभ भक्त। इसलिये उन्होंने झट हृदय फाड़कर सबको दिखला दिया कि 'यह देखो, मेरे प्राण-जीवन धन श्रीराम और श्रीसीता मेरे हृदयमें विराजमान हैं, मुझे अब क्या चाहिये।'

इस प्रकार श्रीहनुमानजी अपने स्वामी श्रीरामके ऐसे परम सदाचारी दूत सिद्ध हुए कि उनके समान कोई दूसरा दूत आजतक हुआ ही नहीं। यहाँतक कि श्रीरामने भी उनके लिये यह कह दिया कि मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और आजीवन तुमसे उऋण नहीं हो सकता।

'बड़ौ नाम हनुमान को'

ऐसो ओज सुजस बिराजै महि-मंडल में
परम प्रचंड तनु तेज भूरि भान को।
जाकी बल कीरति बखानै राम आप मुख
सेस हू न गाय सकैं जाके गुन-गान को॥
'दसिपद्मबिहारी' सुखदायक सदा ही घोर
दूत जनपाल दानी करुनानिधान को।
रोगन को नासी, मोद मंगल-बिधाता
यह रिधि सिधि दाता, बड़ौ नाम हनुमान को॥

—कविवर दसिपद्मबिहारी

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
(मानस ४। १। १-२½)

श्रीहनुमानजी दशरथके पुत्र रामका नाम सुनते ही समझ गये कि ये परब्रह्म परमात्मा हैं और उन्होंने विचार किया कि जैसे मेरे स्वामी सुग्रीवका राज्य और स्त्री आदि छीन लिये गये हैं और स्त्रीके वियोगसे वे दुःखित हैं, वैसे ही ये भी स्त्रीसे वियुक्त हैं। यदि ये मेरे स्वामी सुग्रीवसे मित्रता कर लें तो इनका और उनका—दोनोंका काम सम्पन्न हो जाय।' ऐसा सोचकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'इस पर्वतपर वानरोंके राजा सुग्रीव रहते हैं। उनके राज्य और उनकी स्त्रीको उनके बड़े भाई वालीने छीन लिया है। उनके साथ मित्रता करके आप उन्हें अभय प्रदान कीजिये और वे आपकी पत्नीकी खोज वानरोंद्वारा करायेंगे।'

श्रीरामचन्द्रजी तो चाहते ही थे कि ऐसा कोई सहायक मिल जाय, जो सीताकी खोज करा दे। हनुमानजीने वाली और सुग्रीवके वैमनस्यकी सारी कथा उन्हें कह सुनायी। जब श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीकी सलाह मान ली, तब हनुमानजीने अपना ब्राह्मण-रूप छोड़ दिया और प्राकृत वानरका शरीर धारण करके उन दोनों भाइयोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर ऋष्यमूकपर्वतपर ले गये।

हनुमानजीने उनको पीठपर इसलिये चढ़ा लिया कि परब्रह्मस्वरूप श्रीराम और लक्ष्मणके श्रीचरणोंके स्पर्शसे उनकी पीठ पवित्र हो जायगी। दूसरे, मनुष्यरूपमें अत्यन्त कोमल शरीरवाले श्रीराम और लक्ष्मण इतने ऊँचे पर्वतपर चढ़नेमें थक जायँगे। तीसरे, पीठपर चढ़ाकर ले जाते हुए हनुमानजीको देखकर सुग्रीवके मनकी उद्विग्नता शान्त हो जायगी। वे समझ जायँगे कि ये उनके हितैषी हैं, शत्रु नहीं।

सुग्रीवके पास पहुँचकर हनुमानजीने अग्निकी साक्षीमें उन दोनोंकी मित्रता करायी एवं एक-दूसरेके कार्यको सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा करवायी। भगवान् श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीवका काम पहले सम्पन्न किया और उनके शत्रु वालीको मारकर अपहृत राज्य और स्त्रीको उनके अधीन कर दिया। इस प्रकार हनुमानजीने सुग्रीवका कार्य सम्पन्न करके मित्रदूतत्वका पूर्ण परिचय दिया।

सुग्रीवने भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुरूप वानरोंकी सेना बुलायी और श्रीसीताजीकी खोजमें साधारण वानरोंको पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशामें भेजा किंतु दक्षिण दिशामें स्वयं प्रतिष्ठ वीर वानरोंको नियुक्त किया। जब सुग्रीवकी आज्ञासे वे वीर वानर प्रस्थान करने लगे, तब उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। सबसे अन्तमें हनुमानजीने उनके चरणोंपर सिर झुकाया। उस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इनका बल-पौरुष और बुद्धिमें सबसे बढ़कर समझा और इनको अपने पास बुलाकर श्रीसीताजीके लिये कुछ संदेश कहा और चिह्नस्वरूप उनको अपनी अँगूठी दी। अँगूठी इसलिये दी कि उसे देखनेसे श्रीसीताको विश्वास हो जाय कि ये श्रीरामके दूत हैं और तब वे खुलकर इनके साथ बातचीत कर सकें।

वीर वानर रास्तेकी कठिनाइयोंको पार करते हुए समुद्रके किनारे एक पर्वतपर पहुँचे। वहाँ सम्पातिद्वारा सीताजीका निश्चित समाचार मिलनेपर वानरोंको प्रसन्नता हुई, पर साथ ही चिन्ता भी हुई कि सौ योजन विस्तृत समुद्रको पार कैसे किया जाय। जाम्बवान्‌के स्मरण करानेपर श्रीहनुमानजीको अपनी शक्तिका ज्ञान हुआ। उन्होंने तुरत अपने शरीरको विशाल बना लिया और श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका ध्यान करके [illegible]।

वस्तुतः हनुमानजी भगवान् श्रीरामके निस्स्वार्थ और अनन्य भक्त थे। रामायणमें जैसी अद्भुत भक्ति उनकी दिखलायी गयी है, वैसी अन्य किसी पात्रकी नहीं। उनकी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीपर जितनी श्रद्धा और आस्था थी, उतनी और किसीकी भी नहीं। जब हनुमानजी समुद्र पार करने लगे, तब देवताओंने उनकी बल-बुद्धिकी परीक्षा लेनेके लिये नागमाता सुरसाको भेजा। हनुमानजीने अपने बुद्धि-बलसे उसको परास्त कर दिया। उन्होंने इसी तरह ध्वंस किया सिंहिकाको और पराभूत किया लङ्किनीको। उन्हें भगवान् श्रीरामकी कृपामें इतना विश्वास था कि उन्होंने श्रीराम नामके भरोसे मेघवर्णविग्रही रावण जैसे शत्रुकी नगरीमें अकेले जानेका साहस किया। वहाँ जाकर उन्होंने न केवल महारानी सीताजीकी खोज ही की, बल्कि अपने स्वामी भगवान् श्रीरामका प्रभाव भी रावणको बतला दिया।

[illegible] अशोकवनको तहस-नहस करना, लङ्कानगरीका जला देना और रावणको [illegible] भगवान् श्रीरामका [illegible]—

जीको सम्मानसहित श्रीरामके पास भेज दें। इसीमें आपकी भलाई है, अन्यथा आपका जीवित रहना कठिन है'—

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम्।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम्॥

(वा० रा० ५। ५१। ४२)

राजदूतके सम्बन्धमें श्रीरामकी द्वितीय उक्ति है—'स्मृतिमान्' अर्थात् विलक्षण स्मरणशक्तिसम्पन्न व्यक्ति। स्वर्ण, मणि, रत्न, हाथी, घोड़े, रथ, राक्षस, दानव, दैत्य, गन्धर्व, नाग, देव, वृक्ष, लता, गुल्म, पशु-पक्षी और धन-धान्यसे भरी पूरी लङ्काको भस्मीभूत करके मेघ-गर्जना करते हुए जब श्रीहनुमान वापस लौटे, तब सभीने उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। श्रीरामने तो यहाँतक कह डाला कि 'यदि मैं तुम्हारे ऊपर अपने प्राणोंको भी निछावर कर दूँ तो भी कपिश्रेष्ठ! मैं तुम्हारा ऋणी ही रहूँगा।' उन्होंने अपना प्रेम सरस प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करके श्रीहनुमानकी ओर साभिप्राय दृष्टि डालते हुए पुनः कहा—

'सौम्य! सुना जाता है कि लङ्कामें प्रवेश करना तथा उसे जीतना अत्यन्त दुष्कर है। इसलिये मैं अपने नेत्रोंसे देखे हुएके समान उसका स्पष्ट विवरण सुनना चाहता हूँ। तुमने समूची लङ्काका युद्धकी दृष्टिसे गहन अध्ययन किया है। अतएव बताओ कि रावणकी सेना कितनी है और लङ्काकी रक्षाके लिये उसने क्या-क्या उपाय कर रखे हैं।'

ऐसा प्रतीत होता है, मानो राजदूतकी स्मृतिकी थाह लगानेके लिये ही प्रभुने ऐसा प्रश्न किया हो। भगवान् श्रीरामके अर्थयुक्त वचन सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीहनुमानजीने निवेदन किया—

'हे रघुवंशविभूषण! लङ्कापुरी समस्त साधन सम्पन्न प्रबल और समृद्ध है। वहाँ बड़े-बड़े मत्त हाथी, घोड़े एवं रथ भरे पड़े हैं। उसके चार विशाल सिंहद्वारोंपर मजबूत किवाड़ोंमें मोटी-मोटी अर्गलाएँ लगी हुई हैं। उन द्वारोंपर शत्रुसेनाको रोकनेके लिये विशाल और प्रबल यन्त्र लगे हैं। दल-दल सहस्र भयंकर शूरवीर सुभट प्रत्येक द्वारकी रक्षा किया करते हैं और उनकी सहायताके लिये चतुरङ्गिणी सेना सर्वदा सन्नद्ध रहती है। लङ्काके चारों ओर स्वर्णिम कोट बना हुआ है, जिसके बीच-बीचमें मणि, मूँगा और मोती जड़े हुए हैं। उस चहारदीवारीके बाहर चारों ओर ठंडे जलसे भरी हुई भयानक गहरी खाई बनी हुई है, जिसमें मगरमच्छ आदि हिंस्र जलजन्तु तैरते रहते हैं। उस खाईके ऊपर चारों द्वारोंतक पहुँचनेके लिये विस्तृत मार्ग हैं, जिनमें शत्रु सैन्यको खाईमें गिरा देनेके लिये भारी यन्त्र लगे हुए हैं। उनमें एक संक्रम (लकड़ीका पुल) तो बड़ा ही दुर्भेद्य है, जो स्वर्ण-स्तम्भ तथा वेदियोंसे सुशोभित है। उसमें पर्याप्त सेना निवास करती है जिसकी देखभाल निष्णात सेनापति किया करते हैं। स्वयं रावण भी बड़ी सावधानीपूर्वक सेनाका निरीक्षण करता रहता है। इस प्रकार लङ्का देवताओंके दुर्गके समान अतिशय दुर्गम है। उसपर देवताओंके लिये भी आक्रमण करना दुष्कर है। परंतु रण-केसरी श्रीराम! भगवती सीता अशोक-वाटिकामें बड़ी व्याकुलतासे आपके दर्शनोंकी प्रतीक्षामें प्राण धारण किये हुए हैं और ये नल, नील, अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवन्त आदि अनेक सेना-नायकोंसहित वानर भालुओंकी अपार वाहिनी आपके आदेशकी प्रतीक्षामें आतुर खड़ी है।' (वा० रा० युद्ध०, स० ३)

राजदूतकी तीसरी योग्यता है—उसका 'वाग्मी' होना। 'प्रशस्ता वागस्यास्तीति वाग्मी' अर्थात् राजदूतकी वाणी अकाट्य होनी चाहिये, जिसको कोई अन्यथा न कर सके। श्रीमारुतिनन्दनका सर्वप्रथम वार्तालाप ऋष्यमूकपर्वतपर भगवान् श्रीरामसे हुआ था। श्रीहनुमानजीकी वाक्पटुतासे श्रीराम इतने अधिक प्रभावित हुए कि अनायास पास खड़े उस समय उन्होंने लक्ष्मणजीसे उनकी प्रशंसा प्रारम्भ कर दी—

'वत्स लक्ष्मण! कोई विद्या अथवा ऐसा कोई शास्त्र और वेद नहीं है, जिसका इन्होंने अध्ययन न किया हो। इनका गम्भीर ज्ञान इनके प्रवचनसे ही प्रकट हो गया। इस संसारमें जितनी भी नीतिशास्त्रकी बातें हैं, उनके विशेष कोविद देवताओंमें कौन ऐसा है, जो इनके जैसी वाक्पटुता रखता हो। धनुर्धर! यदि यह नीतिमान् वीर कपि कुञ्जर नायक सुग्रीवकी आज्ञासे यहाँ आये हैं तो फिर सदा सुग्रीव किस प्रकारके प्रभावसे सम्पन्न होंगे!'—

[illegible] ! [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]॥ [illegible]

भगवान् विवस्वान्के मेधावी शिष्य ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमानके शास्त्र ज्ञानकी तो स्वयं श्रीरामने भ्राता लक्ष्मणसे भूरि भूरि प्रशंसा की है और उनकी बहुज्ञतासे प्रभावित होकर 'वेदा मे वचनम्' के प्रोक्ता परब्रह्म भानुकुल-भानु श्रीरामने हनुमानको 'रामगीता' (अद्भुतरामायण), 'ज्ञानगीता' (राम-रसायन), 'राम-हृदय' (अध्यात्मरामायण), 'मुक्तिकोपनिषद्' (शुक्लयजुर्वेदीय) आदिका उपदेश भी किया था। इतना ही नहीं, सनक सनन्दनादि योगियोंके जिज्ञासा करनेपर स्वयं श्रीहनुमानजीने भी उन्हें 'श्रीरामोपनिषद्' (अथर्ववेदीय) एवं 'श्रीरामरहस्योपनिषद्' (अथर्ववेदीय) उपनिषद् विद्याका व्याख्यान किया था, जिसके अनुसार 'राम' शब्दके आदिका 'रा' तत्पदार्थ है, 'मकार' त्वंपदार्थ है और दोनोंका संयोजन 'असि' है, अर्थात् 'राम' शब्द 'तत्त्वमसि'—इस वेदान्त महावाक्यका पर्याय है—

> रामो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वंपदार्थवान्।
> तयोः संयोजनमसीत्यर्थतत्त्वविदो विदुः॥
> (श्रीरामरहस्योपनिषद् ५। ११)

दूतका पाँचवाँ और अन्तिम लक्षण है—'अव्यग्रकर्मा'। इसका तात्पर्य बहुत व्यापक है। विद्या, बुद्धि, विवेक, देश, काल, पात्र, अनुभव, कर्तव्य और कार्यसिद्धि आदि अनेक व्यावहारिक गुणोंका यह प्रतिनिधित्व करता है। लङ्कापुरीमें पहुँच जानेपर अञ्जनी-नन्दनका मन प्रसन्न हो गया, बड़ा दुष्कर कार्य पूर्ण हुआ परंतु अब पद पदपर साहस, सावधानी और पराक्रमका अवसर था। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था। वे अपनेको छिपाये त्रिकूट शिखरपर चढ़ गये। वहाँ झाड़ियोंमें छिपकर वे अद्भुत स्वर्णमयी लङ्काका सिंहावलोकन करने लगे—'अहा! यह लङ्कापुरी तो इन्द्रकी अमरावतीसे स्पर्धा कर रही है। असंख्य धनुर्धर राक्षस-योद्धा बड़ी मुस्तैदीसे इसका पहरा दे रहे हैं।' मारुति विचार करने लगे—

'मुझे श्रीरामके पावन कार्यका निर्वाह करते हुए यहाँसे सकुशल संदेश लेकर लौटना है, इसलिये स्वामीके सघर्ष और शक्ति द्वारा अपनेको बचाना चाहिये। निराशा और असावधानीसे भी मुझे बचना है। अपनेको बहुत बुद्धिमान् समझनेवाले दूत भी कामको बिगाड़ देते हैं। देश-काल-पात्रादिके प्रतिकूल व्यवहारसे भी बहुधा काम बिगड़ जाते हैं। इसलिये मुझे बहुत सोच समझकर सावधानीपूर्वक कार्य करना चाहिये।'

ऐसा सोचकर वे उस समय ठहर गये। फिर जब चारों ओर रात्रिका अन्धकार व्याप्त हो गया, तब उन्होंने लघुरूप धारणकर अपने कार्यका श्रीगणेश किया। अपनेको छिपाते बचाते भवनोंमें पैठ-पैठकर वे श्रीजानकीमाताको खोजने लगे।

इस प्रकार राजदूतके लिये आवश्यक सभी श्रेष्ठ गुणोंसे हनुमानजीका व्यक्तित्व समन्वित है। जैसे श्रेष्ठ नीतिमान् राजा श्रीराम हैं, वैसे ही श्रेष्ठ नीतिज्ञ रामदूत श्रीहनुमान हैं।

गुणनिधान श्रीहनुमान

शासन में दास हैं अनन्य रामचन्द्र जू के,
दूतन में दूत वर चतुर अनन्त हैं।
विद्या-बुद्धि-बल के निधान गुन-खानि आछे,
दीनन के हेत सदा बने दयावन्त हैं॥
वेग राम-बान-सो प्रसिद्ध है 'नरायण जू',
सानिध्य भजन में लौने मुनि सन्त हैं।
ज्ञानिन में ज्ञानी, त्यों ही ध्यानिन में ध्यानी सदा,
ध्यानिन में अग्रगण्य वीर हनुमन्त हैं॥

—नारायणदास जी

योग्यता-सम्पन्न मन्त्रियोंसे युक्त था । श्रीहनुमान इनमें सुरक्षा और विदेश विभागके विशेषज्ञ होनेके नाते विदेश मन्त्री तथा सुरक्षा-सलाहकारोंमें प्रधान थे । श्रीरामकी विजय और राजनीतिज्ञ रावणकी पराजयका मूल कारण उभय पक्षका मन्त्रिमण्डल ही था । श्रीरामचन्द्रजीने चित्रकूटमें अनुज कैकेयीनन्दन भरतको राजनीतिका उपदेश देते हुए इस रहस्यका उद्घाटन किया था—

> सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः ।
> अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता ॥
> एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।
> राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥
>
> (वा० रा० २ । १०० । २३ २४)

‘यदि राजा हजार या दस हजार मूर्खोंको अपने पास रख ले तो भी उनसे अवसरपर कोई अच्छी सहायता नहीं मिलती किंतु यदि एक मन्त्री भी मेधावी, शूरवीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमार को बहुत बड़ी सम्पत्तिकी प्राप्ति करा सकता है ।’

वस्तुतः ‘मन्त्र-शक्ति’ ही राजदर्शनका एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अङ्ग रहा है, जिसकी उपेक्षासे राज्यको जितनी क्षति होती है, उतनी कदाचित् किसी अन्य बातसे नहीं । यदि उपर्युक्त कसौटीको दृष्टिगत रखते हुए हम श्रीराम अथवा सुग्रीवके महान् विपत्तिसे छुटकारा पाने और ऐसे दुर्धर राजनीतिके प्रकाण्ड विद्वान्, विश्वको रुलानेवाले रावणके नाशका अनुसंधान करें तो हमें ऐसा भासित होगा कि यह हनुमानजीकी अद्वितीय, अद्भुत, विलक्षण और विचक्षण मन्त्रणाका ही शुभ परिणाम है, रामायणके आदिकर्ता महर्षि वाल्मीकिने हनुमानजीकी विलक्षण शक्ति, वाक्पटुता, पराक्रम, निर्णयशक्ति, प्रत्युत्पन्नमतित्व, दूरदर्शिता एवं बाहरी चेष्टाओंसे ही मनके भावोंको ताड़ लेनेकी अद्भुत क्षमताका विशद उल्लेख किया है, जिसके बलपर प्रथम मिलनमें ही श्रीराम और लक्ष्मणको देखकर उन्होंने इस बातका अनुमान लगा लिया कि ‘जिसके सहायक ये नरश्रेष्ठ होंगे, उसके कष्टका पूर्ण निवारण हो सकता है ।’ सुग्रीवने भी ऋष्यमूकपर्वतसे श्रीरामलक्ष्मणको देखा किंतु वे उन्हें शत्रु बालिका भेजा (चार मित्र) अरि मित्र मानते हैं और मारे भयके वह पर बौने लगते हैं, ...कि वानरोंको ऋष्यमूकपर उनका कोई भय नहीं था । श्रीरामलक्ष्मणको सम्भव

सुग्रीव कहते हैं—‘मेरे मनमें संदेह है कि ये दोनों श्रेष्ठ पुरुष बालीके ही भेजे हुए हैं, क्योंकि राजाओंके बहुत-से मित्र होते हैं, अतः उनपर सहसा विश्वास करना उचित नहीं । प्राणिमात्रको छद्मवेषमें विचरनेवाले शत्रुओंको विशेषरूपसे पहचाननेकी चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि वे दूसरोंपर अपना विश्वास जमा लेते हैं, किंतु स्वयं किसीका विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषोंपर ही प्रहार कर बैठते हैं । बाली इन कार्योंमें बड़ा कुशल है । अतः कपिश्रेष्ठ ! तुम एक साधारण पुरुषकी भाँति वहाँ जाओ और उनकी चेष्टाओं, रूप, बात-चीत तथा तौर-तरीकोंसे उन दोनोंका यथार्थ परिचय प्राप्त करो ।’ (वा० रा० ४ । २ । २१—२८)

हनुमान सुग्रीवके स्वामिभक्त सचिव थे । वे उनकी विपन्नावस्थासे क्षुब्ध थे । वे उन्हें ढाढ़स और दिलासा दिलाते हुए कहने लगे—‘सौम्य ! आपको दुरात्मा बालीका यहाँ कोई भय नहीं । यदि वह यहाँ आयेगा तो आना है, उसके सिरके सहस्रों टुकड़े हो जायँगे । बुद्धि और विज्ञानके बलसे आप दूसरोंकी चेष्टाओं और मनोभावोंको समझ लेनेके पश्चात् ही अपना आवश्यक कार्य करें, क्योंकि जो राजा बुद्धि-बलका आश्रय नहीं लेता, वह सम्पूर्ण प्रजापर शासन नहीं कर सकता ।’

सुग्रीवकी ओरसे हनुमानजीने स्वतः ही मन्त्र प्रस्ताव रखकर अपनी दूरदर्शिता और कार्यकुशलताका परिचय दिया । श्रीराम और लक्ष्मण उनकी सम्भाषण-कला के प्रभावसे ही सुग्रीवके प्रति आकृष्ट हो गये थे । इतना ही नहीं, हनुमानजीने सुग्रीवकी दयनीय दशाका कुछ ऐसा चित्रित चित्रण किया कि श्रीरामने मैत्री स्थापित करते ही उसके कष्टके निवारणार्थ बालीका वध किया और किष्किन्धाके राज्यसिंहासनपर सुग्रीवको प्रतिष्ठित कर दिया ।

उपर्युक्त प्रमाणोंके आधारपर हम कह सकते हैं कि श्रीहनुमानजैसे मन्त्रिश्रेष्ठके महान् प्रयासोंसे ही सुग्रीवने अपना खोया हुआ राज्य, पत्नी रुमा और प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त की थी ।

रामायणके अनुशीलनसे इस बातका भी पता चलता है कि सुग्रीवको हनुमान ... और ...

आकारको कितना ही क्यों न छिपाये, उसके भीतरी भाव कभी छिप नहीं सकते। बाहरका आकार पुरुषोंके आन्तरिक भावको बलात् प्रकट कर देता है।'' (वा० रा० ६। १८)

आगेकी घटनाओंसे श्रीहनुमानके ये वचन अक्षरशः सिद्ध होते हैं। लङ्का-अभियानमें विभीषणके द्वारा श्रीराम दलको अनेक स्थलोंपर सहायता मिली थी। यदि विभीषण इन्द्रजित्‌के गुप्त यज्ञकी बात न बताता और लक्ष्मणद्वारा उस यज्ञका विध्वंस न होता तो कोई भी शक्ति समर भूमिमें उसे पराजित नहीं कर सकती थी। इसी प्रकार कृत्रिम सीताके वधकी छद्म चालको भी यदि विभीषण नहीं बताते तो वानरोंका उत्साह उसी क्षण समाप्त हो गया होता क्योंकि शत्रुकी इस चालसे स्वयं श्रीराम अचेत हो गये थे। किंतु जब विभीषणने कहा कि 'यह कृत्रिम ऐन्द्रजालिक शक्तिका सहारा लेकर वानरोंको अनुत्साहित करनेका उपक्रम मात्र है। सीताको मारना तो दूर, उन्हें कोई देख भी नहीं सकता—ऐसा रावणका प्रबन्ध है। इसके अनुसार रावण सीताका वध किसी भी दशामें नहीं कर सकता।' इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि विभीषणको शरण देनेमें नीतिमें भावी सफलताके बीज निहित थे। इससे राक्षसोंके अनेक भेदोंका पर्दाफाश हो सका था। विभीषणने मानव वपुमें या वानरके वेषमें आये राक्षसोंको पहचानकर उन (शुक सारण)-को रामदलमें जासूसीतक रोक डाले, जिससे राक्षसोंकी शक्ति क्षीण हुई। सच पूछा जाय तो श्रीरामकी रावणपर विजयका श्रेय श्रीरामके अतिरिक्त यदि अन्य किसीको दिया जाय तो उसके लिये राजनीतिज्ञ हनुमानजीको सबसे उपयुक्त पात्र माना जा सकता है।

विश्वासके स्वरूप श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी सेठ, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

उत्तरी भारतके छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े जिस किसी नगरमें जानेका अवसर प्राप्त हुआ है, वहाँ कहीं-न-कहीं श्रीहनुमानजीका मन्दिर अवश्य दृष्टिगोचर हुआ है। स्थान-स्थानपर साधकोंको 'हनुमानचालीसा' का बड़ी ही श्रद्धासे पाठ करते भी देखा गया है। राजस्थानमें भी सालासर-जैसे कुछ सिद्ध स्थान भी देखनेको मिले हैं जहाँके दर्शनार्थियोंका यह पूरा विश्वास है कि श्रीहनुमानजीसे समक्ष शुद्ध भावसे जो भी मनौती की जायगी, वह अवश्य पूरी होगी। साधक श्रीहनुमानजीको ऐसा श्रीराम भक्त मानते हैं, जिनके पास अतुलित बल है और जो साधकोंकी प्रार्थनाको स्वीकार कर उन्हें संकटसे बचा देते हैं।

पिछले दिनों एक संत मेरे घरपर पधारे थे। मेरे कमरेके एक कोनेमें श्रीबजरंगबलीकी बड़ी ही आकर्षक प्रतिमाको देखकर वे पूछने लगे—'क्या तुम्हारे आराध्य हनुमान हैं?' मैंने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया—'मैं तो उस अव्यक्तको ही अपना आराध्य मानता हूँ फिर भी यदि मुझसे नाम पूछा जाय तो कह सकता हूँ कि श्रीहनुमानजी महाराजके प्रति मेरा विश्वास बहुत है क्योंकि रामदुआरेके वही रखवारे हैं। और इनकी आज्ञाके बिना प्रभुके दरबारमें प्रवेश नहीं हो सकता।' यह सुनकर उन्होंने इतना ही कहा—''बिल्कुल ठीक है, प्रभु-विश्वास ही 'हनुमानजी' हैं।''

मैं सोचने लगा कि यह क्या बात हुई। कुछ समयके पश्चात् इस कथनका रहस्य मेरे सामने स्पष्ट हो गया। पूज्य स्वामी शरणानन्दजी महाराज कहा करते हैं कि प्रत्येक साधकके जीवनमें आस्थाका तत्त्व विद्यमान है। दूसरी ओर उसे विचार शक्ति एवं क्रिया शक्ति प्राप्त है। इस आस्थाके तत्त्वको ही वे विश्वास मार्गमें प्रधानता देते हैं। प्रभु विश्वास हुए बिना साधककी साधना सफल नहीं होती और प्रभु विश्वास ही साधकको प्रभु-प्रेमसे भर देता है। मैंने पूज्य स्वामीजीको अपने प्रवचनोंमें प्रभुके किसी विशेष रूप या किसी नामको अपनानेकी बात नहीं कही। किंतु एक दिन अकस्मात् उन्होंने एक साधकसे यह कहा—'प्रभु अस्तित्वके हेतु तुम हनुमानजीको अपना इष्ट बना लो।' स्वामीजीके उपदेशकी शैली बड़ी ही निराली होती है। वे भिन्न-भिन्न साधकोंको

को एक कुशल वैद्यके समान भिन्न भिन्न पथ्य और पथ्य बना देते हैं, किंतु प्रभुप्रेमकी बात अन्तमें ही करते हैं। पूज्य श्रीस्वामीजीके इस संकेतसे हनुमानजीके प्रति मेरी आस्था और दृढ़ हो गयी है।

अब मुझे ऐसा लगता है कि प्रभु विश्वासके प्रतीक सचमुच हमारे श्रीहनुमानजी महाराज हैं। जिस व्यक्तिकी हनुमानजीमें आस्था हो जाती है, उसका प्रभु विश्वास बढ़ने लगता है और विश्वासका तत्त्व ही साधकको विविध बाधाओंसे निकालता हुआ प्रभु प्रेम पानेका अधिकारी बना देता है। इसीलिये 'राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥' कहा जाता है। जिनका प्रभुमें विश्वास ही नहीं होगा, वह उनके साम्राज्यमें कैसे प्रवेश पा सकता है ? ईश्वर-विश्वासकी बुद्धि स्वतः निर्मल होने लगती है। विश्वासी साधक हनुमानजी महाराजकी कृपासे उनके ही समान 'ज्ञान-गुन सागर' बन जाता है।

श्रीबजरंगबलीको कुमतिका निवारण करनेवाला, महातेजस्वी, प्रतापी और 'राम काज करिबे को आतुर॥' बताया गया है। मेरा विश्वास है कि जिस साधकपर हनुमानजी कृपा कर देते हैं, वह भी प्रभुका ही कार्य करने लगता है। फिर तो उसे भी हनुमानजीके समान प्रभु-चरित्र सुनना और सुनाना ही सुहाता है। हनुमानजी साधककी बुद्धिको विवेकवती बनाकर उसे भव-सागरको पार करनेकी सामर्थ्य प्रदान कर देते हैं। उनकी कृपासे साधकको वास्तविक सुख तथा आनन्द प्राप्त हो जाते हैं।

वास्तवमें ईश्वर-विश्वासीका 'हनुमानचालीसा'की एक-एक पङ्क्तिकी सत्यताका अनुभव होने लगता है। उसका विश्वास उसे अष्ट सिद्धियाँ तथा नवों निधि दिलानेमें समर्थ है। उसके लिये श्रीरामकृष्ण परमहंसका जीवन उदाहरण है, जिन्होंने मात्र विश्वासके बलपर सब कुछ प्राप्त किया था। ईश्वर विश्वास ही वह साधन-सम्पत्ति है, जो साधक हनुमानजीसे माँग सकता है। क्योंकि संकट तथा दुःखोंको दूर करनेमें, साधकको पूर्ण प्रभु-विश्वासी बनानेमें और अन्तकालमें रघुपुरमें श्रीरामसे मिलानेमें श्रीहनुमानजी पूर्ण समर्थ हैं। श्रीहनुमानजी विश्वासके प्रतीक हैं। अतः प्रभु विश्वासी साधकके प्रभु विश्वासको पुष्ट करनेके लिये हनुमदुपासना आवश्यक है।

श्रीहनुमानसे प्रार्थना

(रचयिता—डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

श्रीरामगण्य ! हमको वर वीरता दो।
तेजोनिधान ! अपनी महिमा दिखा दो॥
उद्दाम साहस भरो मनमें हमारे,
उन्मूल हों भय तथैव सदैव मारे॥
दुर्धर्ष घोर सब विघ्न घनावलीको
हे वायुपुत्र ! इस ही क्षणमें उड़ा दो।
भारी भयानक सभी कठिनाइयोंको
हे दीनवत्सल ! कृपा करके हटा दो॥
श्रीरामचन्द्र-पद-पङ्कज-चञ्चरीक !
हे देवदेव ! हम हों नित ही विभीक॥
विध्वस्त हो सकल कायरता-अनीक।
श्रीराममें विमल हो रति

मूर्च्छारहित हनुमानजीका श्रीभरतद्वारा आलिङ्गन

'लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।'

मायारूपी नारीसे सदैव सावधान रहना चाहिये। हनुमानजीने सुरसाको प्रणाम करके अपनी रक्षा की, रजोगुणी लंकिनीको अधमरा करके छोड़ दिया तथा तमोगुणी सिंहिकाका प्राणान्त कर दिया। इसी प्रकार साधकको तीनों गुणोंका यथोचित उपयोग करना चाहिये, तभी वह मृत्युलोकके पार जाकर अपनी रक्षा कर पाता है।

हनुमानजीने लंकामें पहुँचनेपर सीताकी खोज करनेके निमित्त कनक भवनका शोध किया। कनक-भवनका त्याग करनेके बाद भी कनक-मृगपर मुग्ध सीताजी कनक-नगरी लंकामें बंदिनी बन गयीं। इसीलिये हनुमानजीने उन्हें कनक भवनमें खोजा। उन्होंने विचार किया कि सीताजीको कनकमें शान्ति थी, अतः वे शान्तिको कनकमें खोजने लगे। कनक नगरीमें सीता (शान्ति) नहीं मिली। वस्तुतः स्वर्णमें शान्ति नहीं, वहाँ शान्तिकी भ्रान्ति मात्र है। यदि स्वर्णमें शान्ति होती तो स्वर्णपुरीके स्वर्णशासके स्वामी राक्षसराज रावणको लंकामें ही शान्ति मिल गयी होती, किंतु उसे शान्ति नहीं मिली। हनुमानजीने कनकनगरीस्थित कनक-भवनके प्रत्येक खण्डमें सीताजीका शोध किया—

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। किंतु मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥

हनुमानजीने सोचा कि यहाँ तो सब सोनेवाले हैं, अतः किसी जागनेवालेसे सीताजीका पता पूछना चाहिये—

मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥

शान्तिकी प्राप्तिकी युक्ति किसी भगवद्भक्तके पास ही होती है, अतः शान्ति-शोधक वैराग्य (हनुमान)को उसे पानेकी युक्ति मिल गयी—

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
— — — — —। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

उस अशोक-वनमें आकर हनुमानजीने देखा कि सीता बैठि सोच रत अहई। —उस अशोक-वनमें भी सीताको अशोक नहीं, स-शोक है।

सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्हि हरषि उठि कर गहेउ॥

अशोकने वस्तुतः ऐसा अङ्गार गिरा दिया, जिससे जानकीजीका समस्त शोक जलकर भस्म हो गया। जानकीजीने कहा था—'हे अशोक! मेरे शोकको हरकर अपने नामको सत्य करो।' अशोकने अपना नाम सत्य कर दिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥

रामनाम-अङ्कित मुद्रिका पाकर परम अशान्त सीताको परम शान्ति मिली—

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥

अशान्ता शान्ति-शून्यता वैराग्य नहीं है। वैराग्य तो वह है, जो कभी भी जरा-जर्जर न हो, शिथिल न हो, अपितु अमर रहे, सदा-सर्वदा तरुण रहे। सीतारूपा शान्तिने हनुमानरूप वैराग्यसे कहा—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

यह निश्चय ध्रुव हो गया कि राम शान्ति हैं।

निजानन्द-सन्दोह कपि-केसरी, केसरी-सुवन भुवनैक भर्ता।
(विनयपत्रिका २९। १)

सुन्दरकाण्डके आरम्भमें हनुमानजीने ही भगवान्‌को शान्तम्, शाश्वतम् और शान्तिप्रदम् पर शान्त वही होगा, जो शान्ति लिये होगा। इस काण्डमें (१) शान्तिरूपी रामका समाचार पाकर अशान्त सीताको शान्ति मिली, (२) समुद्र-तटपर बैठे हुए शरणागत वानरी सेनाको शान्ति मिली (३) हनुमानजीको तो सम्भवतः शान्ति देकर ही शान्ति मिली और (४) वैराग्यपुत्रके द्वारा प्रेरित राम-नाम-अङ्कित अति सुन्दर मुद्रिका पाकर शान्ति देवीको सम्पूर्ण सुख मिला। अतः इस काण्डका प्रारम्भ 'शान्तम्' एवं 'शान्तिप्रदम्'-के शब्दसे आरम्भ होता है— शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदम्।

हनुमानजीको बल और बुद्धिसे सम्पन्न माना है। सुरसाने हनुमानजीकी परीक्षा लेकर कहा—

'राम काजु सब करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।'

सीताजीने भी हनुमानजीको बल और बुद्धिका कोश पाया और उन्हें आज्ञा दी कि जाकर फल खा लो—

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु॥

हनुमानजीकी रूप धारण करनेकी कलाका गोस्वामीजीने भी वर्णन किया है। जब सुग्रीव दो युवक मुनियोंको धनुष-बाण सहित देखते हैं, तब वे डरकर हनुमानको पता लगानेके लिये भेजते हैं। रामचरितमानसमें व अध्यात्मके समान ब्राह्मण-वटुका रूप धारणकर श्रीराम लक्ष्मणका पता लगाते हैं। विभीषण और भरतके पास भी वे ब्राह्मणका रूप धारण करके जाते हैं। गोस्वामीजी हनुमानजीसे ब्राह्मणका ही रूप धारण कराते हैं। वाल्मीकि और अध्यात्ममें हनुमानजी भरतके पास मनुष्य रूपमें जाते हैं।

हनुमानजीमें लघु या विशाल आकार धारण करनेकी भी शक्ति थी। वाल्मीकि, अध्यात्मरामायण, हनुमन्नाटक आदि सभीने इस शक्तिके साथ हनुमानको अङ्कित किया है। सुरसाके सामने वे अपने शरीरको बढ़ाते जाते हैं और फिर अत्यन्त छोटे बन जाते हैं। मशक-समान रूप धारण कर वे लङ्कामें प्रवेश करते हैं। सीताने जब कहा कि तुम्हारे-जैसे छोटे बंदर राक्षसोंका सामना कैसे करेंगे तब हनुमानजीने अपने शरीरको बढ़ाया—

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

जब पूँछमें तेल और कपड़ा बाँधा जाने लगा, तब हनुमानजी अपनी पूँछको बढ़ाते गये—'बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥' आग लगाते समय विशाल शरीरको अत्यन्त हल्का कर लिया और एक महलसे दूसरेपर कूदते गये तथा आग लगाते गये—

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥

हनुमानजी शक्तिमें देवराजके पुत्र थे। द्रोणाचलके [illegible]को उखाड़कर लाना उनकी शक्तिका प्रमाण है। [illegible] मूर्छित लक्ष्मणको मेघनाद जैसे शक्तिशाली योद्धे [illegible] न उठा सके किंतु हनुमानजी उन्हें उठाकर श्रीराम [illegible] ले आये।

अध्यात्मरामायणके अनुसार श्रीहनुमान ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं, किंतु सबसे बड़ी विशेषता जो गोस्वामीजीने हनुमानजीमें प्रदर्शित की है—वह है उनका भक्तरूप। वन्दना प्रकरणमें ही गोस्वामीजी हनुमानजीके भक्तरूपकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उनके हृदयमें सदा धनुष-बाण धारण किये राम विराजते हैं—

प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

ये हनुमानजी ही हैं, जिन्होंने धनुर्धारी भगवान श्रीरामको अपने हृदयमें बंद कर रखा है, जिससे वे बाहर निकल ही नहीं पाते। सीताजीने आशीर्वाद दिया—'तात! तुम बल और शीलके कोश बनो।' हनुमानजीको इससे कोई विशेष प्रसन्नता न हुई। तब सीताजीने दूसरा आशीर्वाद दिया—'अजर अमर गुननिधि सुत होहू।' किंतु इससे भी हनुमानजीका हृदय प्रफुल्लित नहीं हुआ। सीताजीने तीसरा आशीर्वाद दिया—'करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥' बस, अब क्या था? इसे सुनकर हनुमानजी गद्गद हो गये—

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

और अत्यन्त आह्लादित होकर वे माँ सीताके चरणोंमें गिरकर बोले—

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥

सीताकी खोज करना हनुमानके बल और बुद्धिका ही फल था। समुद्र लाँघना अन्यके बलबूतेकी बात न थी। फिर सीताको विश्वास दिलाना कि मैं श्रीरामका संदेशवाहक हूँ—यह हनुमानजीका ही बुद्धि-कौशल था। [illegible] ठीक उस समय मुद्रिका गिराना, जब सीता अत्यन्त दुःखी थीं और चिता बनाकर मृत्युकी कामना कर रही थीं—अशोकसे आग माँग रही थीं। फिर [illegible] [illegible] प्रमाणित किया। हनुमानजीकी [illegible] सीताजीकी खोजकर श्रीरामको देते हुए [illegible] कथामें अद्भुत मधुरता [illegible]।

[illegible] श्रीकृष्ण [illegible] [illegible] [illegible] हो हैं [illegible] [illegible] [illegible]—

[illegible] ॥

[illegible]

हनुमान [illegible] है—

परिचय देते हैं और न उनका ही परिचय पूछते हैं, वरन् प्रणाम करते हैं। यह उनके ज्ञानियोंमें अग्रगण्य होनेका प्रमाण है। अपने प्रभुको वे सुग्रीवसे पहले पहचान गये। तत्पश्चात् वे भगवान्‌से पूछते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
(मानस ४।०।४४½)

भक्तकी उत्कण्ठा अपने परम आराध्यसे मिलनेकी अवश्य है, होनी भी चाहिये, परंतु वानरराज सुग्रीवकी उपेक्षा करके नहीं—उनके कार्यके महत्त्वको कम करके नहीं। व्यावहारिक दृष्टिसे यह इस बातका द्योतक है कि आध्यात्मिक साधनाके *परमोत्कर्षपर पहुँचकर भी व्यवहार तो निभाना ही पड़ता है।*

सुग्रीवने प्रभुकी झलक देखकर कहा था कि 'ये युगल पुरुष बल और रूपके निधान लगते हैं' फिर भी भयभीत सुग्रीव प्रभुको देखकर भागनेको तत्पर हैं। सुग्रीवरूपी जीव, जो विषयोंकी ओर आकृष्ट है, उसका यह कार्य स्वाभाविक है कि वह ईश्वरको न पहचान पाये। परंतु सौभाग्यकी बात यह है कि सुग्रीव श्रीहनुमानजीपर आश्रित हैं, उनकी मन्त्रणापर ही निर्भर हैं। इसी निर्भरताका फल सुग्रीवको इस रूपमें मिलता है कि श्रीहनुमानजी श्रीलक्ष्मण और श्रीरामको सुग्रीवके पास ले आये अथवा यों कहें कि विश्वासरूपी हनुमानपर आश्रित रहनेपर जीवरूपी सुग्रीवके पास स्वतः ज्ञान एवं वैराग्य आ गये उसके संकटोंका निवारण करनेके लिये।

जिस तरह हनुमानजीने सुग्रीवका हित किया, उसी प्रकार वे रावणका भी हित करना चाहते थे, पर रावणने हनुमानजीपर तनिक भी विश्वास नहीं किया, क्योंकि वह मोह और अभिमानका मूर्तिमान् रूप था। इस कारण वह विनाशकी ओर बढ़ता गया। उसकी पत्नी मन्दोदरीने उसे अनेकों प्रकारसे समझाया, पर भला, कभी दिन और रात, राम और काम तथा विश्वास और संशय एक साथ रह सकते हैं! श्रीहनुमानजी उसे ऐसी युक्ति बताते हैं, जिससे लङ्कापर अचल राज्य करनेकी उसकी प्रबल अभिलाषा पूरी हो सकती थी—

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
(मानस ५।२२।½)

जब हृदयमें विश्वासका अभाव रहता है, तब संसारके समस्त रोगोंको दूर करनेवाली महौषधि देनेपर भी रोगी अविश्वासी बनकर उसका पान नहीं करता और अपने विनाशका कारण स्वयं प्रस्तुत कर लेता है। रावणने भी यही मार्ग अपनाया। भक्तिस्वरूपा सीताजीको अपनी लङ्कामें लाकर वह अपना कल्याण दो कारणोंसे नहीं कर सका—पहला कारण था—संशय और दूसरा था—अभिमान।

परोपकारी संत श्रीहनुमानजी रावणकी दशापर दया करके असाध्य रोगसे ग्रसित रावणको समझाते हैं—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥
(मानस ५।२३)

'हे रावण! तुम मोह ही जिसका मूल है, ऐसे अत्यधिक पीड़ा देनेवाले तमरूप अभिमानका त्याग कर दो और कृपाके समुद्र राघवेन्द्र भगवान् श्रीरामका भजन करो।' भला अंधकार और सूर्यमें कभी मैत्री सम्भव हो सकती है?

जब विप्र-वेषधारी श्रीहनुमानने ऋष्यमूकपर्वतके चरण प्रान्तमें अपने परमाराध्य प्रभुको पहचान लिया और उन्होंने उनके चरणोंमें गिरकर निवेदन किया—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥
(मानस ४।२)

—तब प्रभुने श्रीहनुमानको उठाकर हृदयसे लगा लिया—अपना लिया, परंतु उन्हें *अनपायिनी भक्ति नहीं दी।* इस प्रकार अनेक भक्तोंको प्रभुने अपनाया है और अनेकों वरदान भी दिये हैं, परंतु 'अनपायिनी भक्तिरूपी चिन्तामणि' तो विरलोंको ही प्राप्त हुई है। श्रीहनुमानजीके चरित्रमें इसी चिन्तामणिकी प्राप्तिका सुगम मार्ग दर्शाया गया है। अपने जीवनमें कल्याणकामी व्यक्तिको प्रभु-चरणोंमें प्रेम करना चाहिये—इसकी शिक्षा श्रीहनुमानजीके जीवनसे मिलती है—

जेहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥
(दोहावली १४२)

प्रभुकी इच्छामें अपनी इच्छाको मिला देनेवाले भक्तमें न कोई आतुरता होती है और न अपने बल-बुद्धिका भरोसा अथवा अभिमान ही। श्रीरामजीने श्रीहनुमानको अपने पास

परिचय देते हैं और न उनका ही परिचय पूछते हैं, वरन् प्रणाम करते हैं। यह उनके ज्ञानियोंमें अग्रगण्य होनेका प्रमाण है। अपने प्रभुको वे सुग्रीवसे पहले पहचान गये। तत्पश्चात् वे भगवान्‌से पूछते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
(मानस ४। ०। ४४-६)

भक्तकी उत्कण्ठा अपने परम आराध्यसे मिलनेकी अवश्य है, होनी भी चाहिये, परंतु वानरराज सुग्रीवकी उपेक्षा करके नहीं—उनके कार्यके महत्त्वको कम करके नहीं। व्यावहारिक दृष्टिसे यह इस बातका द्योतक है कि आध्यात्मिक साधनाके चरमोत्कर्षपर पहुँचकर भी व्यवहार तो निभाना ही पड़ता है।

सुग्रीवने प्रभुकी झलक देखकर कहा था कि ये युगल पुरुष बल और रूपके निधान लगते हैं, फिर भी भयभीत सुग्रीव प्रभुको देखकर भागनेको तत्पर है। सुग्रीवरूपी जीव, जो विषयोंकी ओर आकृष्ट है, उसका यह कार्य स्वाभाविक है कि वह ईश्वरको न पहचान पाये। परंतु सौभाग्यकी बात यह है कि सुग्रीव श्रीहनुमानजीपर आश्रित हैं, उनकी मन्त्रणापर ही निर्भर हैं। इसी निर्भरताका फल सुग्रीवको इस रूपमें मिलता है कि श्रीहनुमानजी श्रीलक्ष्मण और श्रीरामको सुग्रीवके पास ले आये अथवा यों कहें कि विश्वासरूपी हनुमानपर आश्रित रहनेपर जीवरूपी सुग्रीवके पास भगवान्, ज्ञान एवं वैराग्य आ गये उसके सङ्कटोंका निवारण करनेके लिये।

जिस तरह हनुमानजीने सुग्रीवका हित किया, उसी प्रकार वे रावणका भी हित करना चाहते थे, पर रावणने हनुमानजीपर तनिक भी विश्वास नहीं किया, क्योंकि वह मोह और अभिमानका मूर्तिमान् रूप था। इस कारण वह विनाशकी ओर बढ़ता गया। उसकी पत्नी मन्दोदरीने उसे अनेकों प्रकारसे समझाया, पर भला, कभी दिन और रात, राम और काम तथा विश्वास और संशय एक साथ रह सकते हैं! श्रीहनुमानजी उसे ऐसी युक्ति बताते हैं, जिससे लङ्कापर अचल राज्य करनेकी उसकी अनन्त अभिलाषा पूरी हो सकती थी—

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
(मानस ५। २२। ६)

जब हृदयमें विश्वासका अभाव रहता है, तब संसारके समस्त रोगोंको दूर करनेवाली महौषधि देनेपर भी रोगी अविश्वासी बनकर उसका पान नहीं करता और अपने विनाशका कारण स्वयं प्रस्तुत कर लेता है। रावणने भी यही मार्ग अपनाया। भक्तिस्वरूपा सीताजीको अपनी लङ्कामें लाकर वह अपना कल्याण दो कारणोंसे नहीं कर सका—पहला कारण था—संशय और दूसरा था—अभिमान।

परोपकारी संत श्रीहनुमानजी रावणकी दशापर दया करके असाध्य रोगसे ग्रसित रावणको समझाते हैं—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥
(मानस ५। २३)

'हे रावण! तुम मोह ही जिसका मूल है, ऐसे अत्यधिक पीड़ा देनेवाले तमरूप अभिमानका त्याग कर दो और कृपाके समुद्र रघुनन्दन भगवान् श्रीरामका भजन करो।' भला अन्धकार और सूर्यमें कभी मैत्री सम्भव हो सकती है!

जब विप्र-वेषधारी श्रीहनुमानने ऋष्यमूक पर्वतके वन प्रान्तमें अपने परमाराध्य प्रभुको पहचान लिया और उन्हीं उनके चरणोंमें गिरकर निवेदन किया—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥
(मानस ४। २)

—तब प्रभुने श्रीहनुमानजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया—अपना लिया, परंतु उन्हें अनपायिनी भक्ति नहीं दी। इस प्रकार अनेक भक्तोंको प्रभुने अपनाया है और अनेकोंको वरदान भी दिये हैं परंतु 'अनपायिनी भक्तिरूपी चिन्तामणि' तो विरलोंको ही प्राप्त हुई है। श्रीहनुमानजीके चरित्रमें इसी चिन्तामणिकी प्राप्तिका सुगम मार्ग दर्शाया गया है। अपने जीवनमें कल्याणकामी व्यक्तिको *प्रभु-चरणोंमें प्रेम करना चाहिये—इसकी शिक्षा श्रीहनुमानजीके* जीवनसे मिलती है—

जेहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस, बानर भे हनुमान॥
(दोहावली १४२)

प्रभुकी इच्छामें अपनी इच्छाको मिला देनेवाले भक्तको न कोई आतुरता होती है और न अपने पुरुषार्थ या बुद्धिका भरोसा अथवा अभिमान ही। श्रीरामजीने श्रीहनुमानजीको अपने पास

यह 'बड़भागी साधक' लक्ष्मीके ऐश्वर्यको महत्त्व नहीं देता। लक्ष्मीपतिका कृपाप्राप्त साधक लक्ष्मीकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। यदृच्छालाभमें संतुष्ट, द्वन्द्वातीत, विमत्सर एवं सिद्धि-असिद्धिमें सम साधकके लिये रजोगुणी माया भी बाधक नहीं बन पाती।

लंकामें तमोगुणी आचार-व्यवहारके बीच श्रीहनुमानजीको प्रभु-कृपासे संत विभीषणका घर दिखलायी देता है—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥
(मानस ५। ४। ४, ५। ५)

उस घोर तमोगुणी आचार विचारसे लिप्त नगरीमें रामायुध चिह्नोंद्वारा अङ्कित गृह और पवित्र तुलसीका झुंड महान् आश्चर्य उत्पन्न कर देता है! कपि हनुमान अपनी खोजके मध्य तर्क वितर्क करने लगते हैं। उसी समय विभीषण जाग उठते हैं और 'राम-राम'का उच्चारण करने लगते हैं। हनुमानजीके हृदयमें निरन्तर प्रभुके नाम-स्मरणकी ध्वनिसे जब यह ध्वनि सम्मिलित हुई, तब वे हर्षित हो गये। प्रभुकी प्रेरणासे उनके हृदयमें यह भाव आया—

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥
(मानस ५। ५। २)

यदि भक्तिकी खोज सच्ची है तो प्रतिकूलताके बीच भी सिद्धि प्राप्तिमें सहायक उपायकी उपलब्धि हो जाती है। लंकाकी घोर प्रतिकूलताओंमें भी हनुमानजीको विभीषण मिल गये—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥
(मानस ५। ६। २)

संतको संत मिल ही जाते हैं। श्रीहनुमानजी इसी सुअवसरपर विभीषणसे भक्तिस्वरूपा माता सीतातक पहुँचनेकी युक्ति पूछते हैं और अशोक-वनमें पहुँचकर वे अपने स्वाभाविक स्वरूप 'वानर-तन' में उनके सामने प्रकट होते हैं।

संक्षेपमें भक्तिदेवीके चरणोंतक हनुमान (साधक)की यात्राका वर्णन यही है। मनमें पर उपकारकी इच्छा, प्रभु प्रतापपर अगाध विश्वास, उनका सतत नाम स्मरण, सत्त्वगुणी-रजोगुणी-तमोगुणी मायापर प्रभु-नामके सहारे निरभिमान रहते हुए विजय, संत समागम और संत कृपासे भक्तिदेवीतक पहुँचना अवश्य सम्भव है। भक्तिदेवीके सामने अपने स्वाभाविक स्वरूपको प्रकट करके प्रभुके चरणोंमें अगाध विश्वासका प्रमाण प्रस्तुत करना पड़ता है, तब कहीं उनका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त होता है। उसके बाद 'ज्ञानघन प्रभु' भी परम प्रसन्न होते हैं। श्रीहनुमानजीको भक्तिदेवीका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त हुआ और फिर प्रभु-कृपा भी प्राप्त हुई। इसके उपरान्त और क्या चाहिये ! यही साधक-जीवनकी सिद्धि है।

ऐसे हनुमान हैं !

कौसल-नाथ-नायक, प्रदायक सकल सिद्धि
हेमतुल्य देह, गुन-ग्यानके निधान हैं।
संत-सुखदायक, दनुज-बन-पावक हैं,
सब बिधि लायक, परम बलवान हैं॥
साज-बिधायक, सुपायक हैं रामजी के,
कहत सकल श्रुति, संत औ पुरान हैं।
'सत्य'के सहायक, गुनगायक मधुर नाम,
राम-मन-मानस-मराल हनुमान हैं॥

प्यारे अंजनी के हैं, दुलारे कपि केसरी के
तारे नैनों के हैं सीताराम औ लखन के।
वारे तन-मन, राम-नाम-रस-मतवारे,
'सत्य' के सहारे, दुख टारे कपि-गन के॥
असुर सँहारे, भट खेदि-खेदि मारे रन,
प्यारे हैं आयुध द्रुम, दसन, नखन के।
भगत उबारे, भव-सागर उतारे पार,
ना रखवार एक पूत हैं पवन के॥

—सत्यनारायण पँवार, एम० ए०, बी० एड०

श्रीरामकी दास्य-भक्तिके सम्पूर्ण रसास्वादनके लिये ही परब्रह्म रुद्र हनुमानके रूपमें प्रकट हुए।

श्रीहनुमानजीके रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, परिधान, अलंकार, आभूषण, शृङ्गार आदिका चिन्तन उन्हींकी कृपासे सम्भव है। भगवान् श्रीरामके चरण-कल्पतरुके मूल—दास्यमें तल्लीन श्रीहनुमानके अनुग्रह और प्रसन्नतासे ही प्राणी उनके रूपके दर्शन तथा वर्णनका सौभाग्य प्राप्त करता है।

श्रीहनुमानका रूप

श्रीहनुमान प्रत्येक युगमें भगवद्भक्तोंको अपने स्वरूपका दर्शन कराते रहते हैं। वे सप्त चिरजीवियोंमेंसे एक हैं। द्वापर और कलिके संधिकालमें भीमसेनने इनके रूपको देखा था। गन्धमादनपर्वतपर कदली-वनमें विचरण करते हुए भीमको इन्होंने कृपापूर्वक अपना रूप दिखलाया था। उनकी अङ्ग-कान्ति गिरती हुई बिजलीके समान पिङ्गलवर्णकी थी। उनका गर्जन वज्रपातकी गड़गड़ाहटके समान था। वे विद्युत्पातके सदृश चञ्चल प्रतीत होते थे। विद्युत्पातके समान चकाचौंध पैदा करनेके कारण उनकी ओर देखना कठिन था।

विद्युत्सम्पातदुष्प्रेक्ष्यं विद्युत्सम्पातपिङ्गलम्।
विद्युत्सम्पातनिनदं विद्युत्सम्पातचञ्चलम्॥

(महा०, वन० १४६। ७९)

उनके कंधे चौड़े और पुष्ट थे। उनके शरीरका मध्य भाग और कटिप्रदेश पतला था। उनकी रोमावली घनी थी, पूँछ ऊपरकी ओर उठकर ध्वजा-सी सुशोभित थी, होंठ छोटे थे, जीभ और मुखका रंग ताँबेके समान था और कान लाल रंगके थे। उनके खुले मुखमें सफेद चमकते दाँत थे और दाढ़ें तीखे श्वेत अग्रभागसे सुशोभित थीं। सुवर्णमय कदली वृक्षोंके बीच विराजमान, तेजसे दीप्त हनुमानजी ऐसे लगते थे, मानो केसरोंकी क्यारीमें अशोक-पुष्पका गुच्छा रखा हो—

केसरोत्करसम्मिश्रमशोकानामिवोत्करम्।
हिरण्मयीनां मध्यस्थं कदलीनां महाद्युतिम्॥

(महा०, वन० १४६। ८१)

स्कन्दपुराणके ब्रह्मखण्डके धर्मारण्य-माहात्म्यमें उल्लेख है कि ब्राह्मणोंके विशेष आग्रहपर श्रीहनुमानजीने अपना रूप प्रकट किया। उनके उस दिव्य स्वरूपको देखकर धर्मारण्य निवासी हर्षित हुए—

'दृष्ट्वा दिव्यस्वरूपं तं हनुमन्तं महाप्रभुम्।'

(३०।१८)

कहा जाता है कि चित्रकूटमें गोस्वामी तुलसीदासजीको श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शनके बाद श्रीहनुमानजीने प्रकट होकर बतलाया था कि उन्हें श्रीरामने दर्शन दिया, पर वे (गोस्वामीजी) उन्हें पहचान न सके। अभिनव-वाल्मीकि तुलसीदासजीने श्रीहनुमानके मङ्गलमय रूपका बड़ा भव्य चित्रण किया है—

स्वर्न-सैल-संकास कोटि रबि-तरुन-तेज घन।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल रसना दसनानन।
कपिस केस करकस लँगूर खल-दल-बल-भानन॥
कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुष पहिं सपनेहुँ नहिं आवत निकट॥

(श्रीहनुमानबाहुक २)

महाराष्ट्रके प्रसिद्ध संत समर्थ रामदासको उनके विकट तपसे प्रसन्न होकर श्रीहनुमानने उन्हें अपना महाकाय-रूप दिखाया था। समर्थ रामदास गोदावरीके पुण्य जलमें खड़े होकर नित्य ब्राह्ममुहूर्तसे सूर्योदयतक श्रीराम-नामका जप किया करते थे। उसी समय एक बंदर तटके ही एक अशोकवृक्ष पर नित्य निश्चल होकर बैठा रहता था। बारह वर्षोंतक यह क्रम चलता रहा। तेरह करोड़ जप पूर्ण होनेपर एक दिन ध्यानमें उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वह बंदर उनके सामने खड़ा हो गया और फिर उनके भीतर प्रवेश कर गया। जब उन्होंने नेत्र खोले, तब सामने एक बंदरको देखा। कुछ ही क्षणोंमें बंदरने महाकाय रूप धारण कर लिया। इस प्रकार हनुमानने अपना रूप प्रकट कर संत समर्थको कृतार्थ किया।

श्रीहनुमानजीके रूपका निश्चित आकार-प्रकार नहीं है। कहीं वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं तो कहीं बृहत्से भी बृहत् हैं। उनके रूपके सम्बन्धमें उल्लेख है—

बृहत्कायो बृहद्यशाः॥ (श्रीहनुमत्सहस्रनाम ४)

नारदीयपुराणमें उल्लेख है कि उत्तम साधकको उनका ध्यान इस रूपमें करना चाहिये—'श्रीहनुमानका मुख पाटल—गुलाबके पुष्पके सदृश है। (कुछ मतानुसार पाटलसे लाल रंगका गुलाब, कुछ गुलाबी रंगका गुलाब और कुछ रक्त-पीत मिश्रित—नारंगीके रंगका गुलाब अर्थ लेते हैं।) शरीरकी कान्ति स्वर्णशैलके समान है तथा वे पारिजात-वृक्षके मूलमें अवस्थित हैं'—

आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
पारिजातद्रुमूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥

(पूर्वखण्ड ७५। १०२)

महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा
सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ।
महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहु-
र्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः ॥
(अध्यात्मरा० ४ । ९ । २९)

श्रीसीताजीके पाससे किष्किन्धाके लिये प्रस्थान करते समय चूड़ामणि प्राप्त करनेके पहले उन्होंने उनके (सीताजीके) विश्वासके लिये अपना विश्वरूप दिखाया। श्रीरंगनाथ रामायणके रचयिता राजा गोनबुद्धने इसकी बड़ी रमणीय झाँकी प्रस्तुत की है—

“श्रीहनुमानने अपना रूप इतना विशाल बनाया कि सम्पूर्ण आकाशमें उनका शरीर परिव्याप्त हो गया। चमकनेवाले नक्षत्रोंका समूह पहले उनके कण्ठका मालती—मल्लिकाका हार बना, फिर वक्षःस्थलपर शोभित होनेवाले रजतका हार बना और उसके बाद उनके कटि प्रदेशको अलंकृत करनेवाली चाँदीकी क्षुद्र घटिकाओंकी मेखला बन गया। ऐसा अत्यन्त विस्मयकारी रूप धारणकर जब हनुमानजी सीताके समक्ष खड़े हुए, तब वे मन ही-मन भयभीत हो गयीं और कहने लगीं कि ‘हे अनुपम गात्रवाले! हे अञ्जनासुत! तुम्हारा यह रूप आश्चर्यजनक है। इसका शीघ्र ही उपसंहार करो।’ उनका यह विश्वरूप देखकर देवता भी उनकी प्रशंसा करने लगे। पवनपुत्रने भगवान् विष्णुके समान उस विशाल आकारको त्यागकर लघु रूप धारण कर लिया।” (सुन्दरकाण्ड १४)

श्रीहनुमानजीके रूपकी अनेक सुन्दर उपमाएँ मिलती हैं, जिनसे उनके महत्त्वपूर्ण, रमणीय और अद्भुत भव्य सौन्दर्यका परिचय मिलता है। श्रीसीताजीने अशोक-वनमें हनुमानजीको उदयाचलपर विराजमान सूर्यके समान देखा—

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्ता-
न्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम्।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥
(वा० रा० ५ । ३१ । १९)

अशोक-वनमें ही सीताजीके मनमें अपने पराक्रमका विश्वास दिलानेके लिये उन्होंने अपना बृहद् रूप बनाया, जो विन्ध्याचलके समान विशाल दीख पड़ता था। महाकवि क्षेमेन्द्रका कथन है—

प्रवर्धमानः सहसा पुनर्विन्ध्य इवोदितः ।
(रामायणमञ्जरी, सुन्दर० १५१)

महाभारतके वनपर्वमें उल्लेख है कि श्रीहनुमानका विन्ध्यपर्वतके समान अत्यन्त भयंकर और अद्भुत शरीर देखकर भीम घबरा गये—

तमद्भुतं महारौद्रं विन्ध्यपर्वतसंनिभम्।
दृष्ट्वा हनुमतो वर्ष्म सम्भ्रान्तः पवनात्मजः ॥
(१५० । १०)

श्रीहनुमन्नाटकमें हनुमानजीके रूपकी वसन्तके साथ बड़ी सौम्य उपमा दी गयी है। लंकासे लौटनेपर वायुसे चुम्बित शुद्ध केसरवाले, उद्दीप्त चन्द्रमण्डलके आगे चलनेवाले तथा वियोगी श्रीरामकी कातर दृष्टिसे देखे जाते हुए हनुमानजी वसन्त ऋतुके समान श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख उपस्थित हुए—

ततो मरुत्पुष्पितचारुकेसरः
प्रसन्नताराधिपमण्डलाग्रगीः।
वियुक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितः
समागतः श्रीहनुमान् वसन्तवत् ॥
(हनुमन्नाटक ६ । ३५)

चम्पू-रामायणमें महाराज भोजने श्रीहनुमानकी उपमा मन्दराचलसे दी है। उनका कथन है कि ‘विधाताने सीतारूपी लक्ष्मीको श्रीरामरूपी विष्णुको प्रदान करनेके लिये राक्षस सेनारूपी तरंगोंसे क्षुभित अत्यन्त भयंकर लंकारूपी सागरको रज्जुके समान (भुजङ्गरूपी) वासुकि-कायसे आवेष्टित मन्दराचलरूपी पवनात्मजस्वरूप मथानीसे मथ डाला’—

सीताभिधानकमलां प्रभवे प्रदातुं
लङ्कार्णवं क्षुभितसैन्यतरङ्गभीमम्।
वेधा ममन्थ किल रज्जुभुजङ्गराज-
भोगावृतेन पवनात्मजमन्दरेण ॥
(सुन्दरकाण्ड १०२)

शरीरका वर्ण (रंग)

श्रीहनुमानजीके शरीरका रंग—वर्ण अनेक प्रकारका कहा गया है, पर निर्विवादरूपसे सामान्यतः वे स्वर्ण-वर्णके ही चित्रित किये गये हैं। भगवान् सूर्यने उन्हें प्रभा प्रदान की थी—

महाकवि गिरिधरकृत गुजराती रामायणमें उपयुक्त प्रसङ्गका अत्यन्त भावपूर्ण स्पष्टीकरण उपलब्ध होता है। श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—

भाई जोमा कपीनो वेश।
जेने वज्र कछोटो छाजे, वली कनकनु कौपीन राजे।
छे कपिवर महाबलवत, अनु नाम हशे हनुमत॥
(किष्किन्धाकाण्ड २। ५६)

'भैया लक्ष्मण! इन कपिका वेश देखा। ये वज्र और कछोटेसे सुशोभित हैं, इनके स्वर्णिम कौपीन है। ये कपिश्रेष्ठ महान् बलशाली हैं और इनका नाम 'हनुमान' होगा।'

श्रीरामके वचन सुनकर हनुमानजीने विचार किया कि माँने मुझसे कहा था कि जो तुम्हारे अप्रकट स्वर्ण-वर्णके कौपीन और कछोटेको जान लेंगे, उन्हींको तुम अपना स्वामी समझना और उन्हींकी सेवा करना'—

मारी माते कह्यु हतु मुजने, सुत ओळखशे जे तुजने॥
कौपीन कनक कछोटो ओळखशे, छे गुप्त ते परगट लखशे॥
तेने स्वामि जाणजे सुत्र तेनी सेवा तु करजे पुत्र॥
(गिरिधर रा०, किष्कि० २। ७८)

परिधान

सामान्यतः श्रीहनुमानजीको पीताम्बरसे अलङ्कृत कहा गया है। उनके द्वारा श्वेत वस्त्र धारण करनेका भी वर्णन मिलता है। 'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र'के ११ वें श्लोकमें उनको 'पीतवासा' कहा गया है। उनके पीताम्बरसे अलङ्कृत रूपका ध्यान है—

ध्यायेद्बालदिवाकरप्रतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखैः प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालङ्कृतम्॥
(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, हनुमदाराधनतन्त्र १३। १२)

'जिनके शरीरका वर्ण बाल सूर्यके समान अरुण है, जो देव-शत्रुओंके दर्पको चूर्ण करनेवाले हैं, देवेन्द्र आदि प्रमुख देवगण जिनका यशोगान करते हैं, जो अपनी कान्तिसे उद्भासित हो रहे हैं, सुग्रीव आदि समस्त वानर जिन्हें घेरे हुए हैं, जो सुव्यक्त—श्रीरामतत्त्वके प्रेमी हैं, जिनके नेत्र लाल हैं, उन पीताम्बरधारी पवननन्दनका ध्यान करना चाहिये।'

श्रीसीताने हनुमानजीको श्वेत वस्त्रसे अलङ्कृत देखा था। अशोक-वाटिकामें अशोक-वृक्षकी शाखाओंके भीतर छिपे हुए, विद्युत्पुञ्जके समान अत्यन्त पिङ्गलवर्णवाले तथा श्वेतवस्त्रधारी हनुमानजीपर भगवती सीताकी दृष्टि पड़ी। फिर तो उनका मन चञ्चल हो गया। उन्होंने देखा कि फूले हुए अशोकके समान अरुण-कान्तिसे प्रकाशित एक विनीत और प्रियवादी वानर बैठा है। उसके नेत्र तपाये स्वर्णके समान चमक रहे हैं'—

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम्॥
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम्।
फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम्॥
(वा० रा० ५। ३२। १२)

अङ्ग-प्रत्यङ्ग-शृङ्गार

श्रीहनुमानजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दिव्य सौन्दर्यके अधिष्ठान हैं। उनसे दिव्यतम सात्त्विकता प्रवाहित होती रहती है। माता अञ्जनीके गर्भसे प्रकट होते समय ही वे समस्त दिव्य आभूषणोंसे भूषित थे। महाकवि गिरिधरका कथन है कि 'उनके अङ्गकी कान्ति उदयाचलपर उदित होते हुए सूर्यके समान थी, मस्तकपर मणिजटित टोपी थी—मुकुट था। कानके कुण्डलोंकी झलक विद्युत्के समान थी, उनके वज्र और कछोटा सुशोभित था, कनक-वर्णकी कौपीन थी, कमरमें मूँजकी करधनी थी। उनके वक्षःस्थलपर यज्ञोपवीत था, पूँछका अग्रभाग प्रवालके समान लाल रंगका तथा कोमल था'—

उदयाचल उपर जेम उगे कान्ति भग दिनेश॥
विद्युत जेवाँ कुण्डल झलके मणीजडित शिर टोपी।
वज्री कछोटो कौपीन कंचन कटिये मुंजी ओपी॥
महावीर रणधीरने शोभे यज्ञोपवित्त सार।
सुन्द पुच्छाग्र प्रवाळ जेवु रक्तवरण सुकुमार॥
(गिरिधर-रामायण, बाल० १३। ३-५)

गोस्वामी तुलसीदासजीने उनकी स्तुतिमें कहा है कि 'आपके सिरपर भूरे रंगकी कठोर जटाओंका जूड़ा बँधा हुआ है'—

कपिस-कठोर जटाजूटधारी ।
(विनयपत्रिका २८। २)

श्रीहनुमानजीका मस्तक मुकुटसे समलङ्कृत है। उनके ध्यानमें कहा गया है—

और तीखे अग्रभागके द्वारा अत्यन्त शोभायुक्त थीं। इन सबके कारण उनका मुख किरणोंसे प्रकाशित चन्द्रमाके समान दीख पड़ता था। मुखके भीतरकी सफेद दन्तावलि उसकी शोभा बढ़ानेके लिये आभूषणका काम दे रही थी। वे शत्रुसूदन अपने कान्तिमान् शरीरसे प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ते थे और अपनी मधुके समान पीली आँखोंसे इधर-उधर देख रहे थे।'

> ह्रस्वोष्ठ ताम्रजिह्वास्य रक्ताक्षं चलद्भ्रुवम्।
> विवृतदंष्ट्रादशनं शुक्लतीक्ष्णाग्रशोभितम्॥
> अपश्यद् वदनं तस्य रश्मिवन्तमिवोडुपम्।
> वदनाभ्यन्तरगतैः शुक्लैर्दन्तैरलङ्कृतम्॥
> दीप्यमानेन वपुषा स्वर्चिष्मन्तमिवानलम्।
> निरीक्षन्तममित्रघ्नं लोचनैर्मधुपिङ्गलैः॥
> (वनपर्व १४६। ७९, ८२)

श्रीहनुमानजीका मुख दुःखियोंके क्लेश और संकटग्रस्त प्राणियोंके दुःखका नाश करता है—

> 'प्रोद्यत्पूर्णचन्द्रमयूखमण्डलमुखं दुःखापहं दुःखिनाम्।
> (मन्त्रमहार्णव, पूर्व, तरंग वाँ पृष्ठ १८४, ध्यान १)

पञ्चमुखयुक्त श्रीहनुमानजीका भव्य ध्यान श्रीविद्यार्णव तन्त्रमें वर्णित है। 'हनुमानजी पञ्चवक्त्र एवं अत्यन्त भयंकर हैं, वे पंद्रह नेत्रों और दस भुजाओंसे सुशोभित हैं। वे समस्त कामनाओंको पूर्ण करते हैं'—

> पञ्चवक्त्रं महाभीमं त्रिपञ्चनयनैर्युतम्।
> बाहुभिर्दशभिर्युक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥
> (पञ्चमुख हनुमत्प्रकरण ३३। २)

इनके पूर्व दिशाका मुख वानरका है, यह करोड़ों सूर्यकी प्रभासे युक्त है। दक्षिणकी ओरका मुख नरसिंह-आकारका है। यह महान् अद्भुत, भीषण और भयको नष्ट कर देता है। नारसिंहस्वरूप हनुमानजीका शरीर अत्यन्त उग्र तेजसे प्रदीप्त है। पश्चिम दिशावाला मुख गरुड़का है। इससे समस्त रोगोंका शमन होता है। यह विषरोगका निवारण करता है। उत्तराभिमुखी हनुमान सूकरवक्त्रवाले हैं। यह मुख नीले नभके समान श्याम वर्णका है। यह ज्वररोगका नाश करता है। ऊर्ध्वमुख हय—अश्वके आकारका है, यह दानवोंका नाश करता है। पञ्चमुखी हनुमानका ध्यान है कि ये पीताम्बर तथा मुकुटसे अलंकृत हैं। इनके नेत्र पीले रंगके हैं—

> पञ्चास्यमच्युतमनेकविचित्रवीर्यं
> वक्त्रं सुशङ्खविधृतं कपिराजवर्यम्।
> पीताम्बरादिमुकुटैरभिशोभिताङ्गं
> पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि॥
> (श्रीविद्यार्णवतन्त्र, हनुमत्प्रकरण ३३। ११)

आचार्य शङ्करने हनुमानजीसे प्रार्थना करते हुए उनके मुखका वर्णन किया है। उनकी उक्ति है कि 'जिनका मुख कमल बाल (उदयकालीन) सूर्यके समान रक्तवर्णका है, जिनका नेत्रप्रान्त करुणारससे परिपूर्ण है, जो असीम एवं मनोरम महिमासे सम्पन्न हैं, उन्हीं (मूर्तिमान्) अञ्जना सौभाग्यस्वरूप हनुमानजीसे मैं श्रीरामभक्तिविलसित पवित्र निर्मल जीवनकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ'—

> तरुणारुणमुखकमलं करुणारसपूरपूरितापाङ्गम्।
> संजीवनमाशासे मञ्जुलमहिमानमञ्जनाभाग्यम्॥
> (श्रीहनुमत्पञ्चरत्न २)

श्रीहनुमानजीके मुखका रंग लाल कहा गया है, कहीं-कहीं उनके लिये माणिक्य और मूँगेके रंगकी भी उपमा उपलब्ध होती है। श्रीवाल्मीकिने हनुमानजीके लंका-गमनके समयके रूप-वर्णनमें उनके मुखका रंग ताम्रके समान लाल कहा है। उनकी दृष्टिमें मुखका यह रक्तवर्ण सन्ध्याकालीन सूर्यमण्डलके समान था—

> मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ।
> सन्ध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात् सूर्यमण्डलम्॥
> (वा० रा० ५। १। ६०)

श्रीवाल्मीकिने अशोक-वनमें भगवती सीताजीको प्रणाम करनेवाले हनुमानजीके मुखको विद्रुम—मूँगेके समान बताया है—

> सोऽवतीर्य द्रुमात् तस्माद् विद्रुमप्रतिमाननः।
> (वा० रा० ५। ३३। १)

[illegible] अशोक-वनवाले प्रसंगमें ही [illegible] मानजीके मुखकी उपमा माणिक्यसे दी है। कृपालु भगवती सीताद्वारा [illegible] हुए हनुमान जाने, जिनका मुख माणिक्यके रंगका था, प्रयाण किया—

> पूर्वमणि कपिवरस्य [illegible] दृष्ट्वास्य
> सत्त्वसमुचितवचोभिरुच्य [illegible]

संजीवनी-आनयन

'गहि गिरि निसि नभ धावत भयउ'

[पृष्ठ ११२

किया गया है। महाभारत, वनपर्वके १४६वें अध्यायके ७९वें श्लोकमें 'ताम्रजिह्वास्यम्'का उल्लेख है। उनकी जिह्वा श्रीरामके चरितामृतका वर्णन और उसका रसास्वादन करती है। किष्किन्धामें श्रीहनुमानने तरुण तपस्वी श्रीराम लक्ष्मणके सौन्दर्यको कुशके गुच्छसे उत्पन्न पवित्र सौरभकी उपमा देते हुए कहा है कि 'आपकी वार्ता-सुधाके आस्वादको मेरी कुशल जिह्वा स्वयं ग्रहण करना चाहती है, आपका वृत्तान्त श्रवणोंको सुख देनेवाला है'—

कुशस्तम्बेऽपि सम्भूतं सौरभ्यमिव भासते।
तपोवेषेऽपि सौन्दर्यं युवयोर्युवयोगिनो॥
युष्मद्वार्तासुधास्वादलुब्धयोश्श्रोत्रयोस्सुखम्।
स्वयमेव प्रदीप्तु मे जिह्वा प्रह्वा प्रवर्तते॥
(चम्पूरामायण, किष्किन्धा १६ १७)

भगवान् श्रीरामके यशके वर्णनमें अपनी जिह्वाकी असमर्थता प्रकट करते हुए श्रीहनुमानने अपनी वाणीके सम्बन्धमें निवेदन किया है कि 'हे राम! सूर्य आपकी कीर्तिका बखान करनेमें नितान्त अगम है, वह तो जुगनू-सा बन जाता है, चन्द्रमाका प्रकाश मकड़ीके जालेके समान (संकुचित) हो जाता है, तारागण मच्छरके आकारवाले हो जाते हैं, आकाशतक भ्रमरके समान हो जाता है और मेरी वाणी साधारण दशावाली—कुण्ठित हो जाती है'—

खद्योतद्युतिमातनोति सविता जीर्णोर्णनाभालय
च्छायामाश्रयते शशी मशकतामायान्ति तारादयः।
इत्थं वर्णयतो नभस्तव यशो यातं स्मृतेर्गोचरं
यत्रास्मिन् भ्रमरायते रघुपते वाचस्ततो मुद्रिता॥
(हनुमन्नाटक १४। ८४)

श्रीहनुमानकी जिह्वा परम सौभाग्यवती है, क्योंकि उसपर विहार करनेवाली उनकी मधुर वाणीकी प्रशंसामें भगवती सीताने कहा है कि 'तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, माधुर्य-गुणसे भूषित तथा बुद्धिके आठ अङ्गोंसे समृद्ध है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो'—

अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम्।
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम्॥
(वा० रा० ६। ११३। २६)

माधुर्यगुणभूषित वाणी ही श्रीहनुमानकी जिह्वाका दिव्य चमत्कार है। भगवती सीताने अशोक वनमें श्रीहनुमानकी वाणी सुनकर उनको 'अमृतमुख' कहा है—

'अमिअमुह, को सि तुमम्!'
संस्कृतरूपान्तर—'अमृतमुख! कोऽसि त्वम्!'
(प्रसन्नराघव, ६ठे अङ्कके २८वें श्लोकके बाद)

श्रीहनुमानकी वाणी सुधा-सी मधुर तथा सुखद थी। उन्होंने उपर्युक्त प्रसङ्गमें सुधामयी रघुनाथ-कथासे सम्पन्न वाणीका सृजन किया। महामति क्षेमेन्द्रका कथन है—

रघुनाथकथामस्या करोम्यग्रे सुधामयीम्॥
इति सञ्चिन्त्य हनुमान् विटपान्तरिताकृतिः।
ससर्ज वाणीं वैदेहीश्रोत्रपात्राभिगामिनीम्॥
(श्रीरामायणमञ्जरी, सुन्दर० १०८ ९)

महाकवि सूरदासने श्रीरामके मुखारविन्दसे हनुमानजीकी मधुर प्रिय वाणीकी प्रशंसा करायी है। श्रीरामने उनसे प्रश्न किया और उन्होंने उत्तर दिया—

मिले हनु, पूछी प्रभु यह बात।
महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुम किहिं के तात?
अंजनि कौ सुत, केसरि कैं कुल, पवन गवन उपजायौ गात॥
(सूरसागर नवम स्कन्ध ५१३)

गोस्वामी तुलसीदासजीने उनके वचनको मधुर, प्रिय और मृदु कहा है। उनका मधुर वचन श्रीरामके गुणसे परिपूर्ण रहता है। वह सीताजीके कानोंके लिये अमृतस्वरूप कहा गया है—

सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥
(रामचरितमानस ५। १३। २-४)

श्रीसीताको अत्यन्त व्याकुल देखकर उनके विरह दुःखको दूर करनेके लिये श्रीहनुमानने मृदु वचन कहे—

देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥
(रामचरितमानस ५। १४। ४)

श्रीसीताने उनका वह वचन सुना, जो पीयूषके समान सुखद था। 'उनके वचनामृतसे सीताजीके कान, शरीर और हृदय तो शीतल हो गये, किंतु नेत्रोंको भगवान् श्रीरामके दर्शनकी भूख लगी रह गयी'—

भये सीतल स्रवन-तन-मन सुने बचन पियूष।
दास तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख॥
(गीतावली, सुन्दर० ३। ६)

महर्षि वाल्मीकिका कथन है कि "श्रीहनुमान उदयाचलपर गिर पड़े। वहाँके शिलाखण्डपर गिरनेसे उनकी एक हनु कुछ कट (खण्डित हो) गयी, साथ ही दृढ हो गयी, इसलिये वे 'हनुमान' नामसे विख्यात हुए" —

अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ॥
पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले।
किंचिद् भिन्ना दृढहनुर्हनूमानेष तेन वै॥
(वा० रा० ६ । २८ । १४१५)

हनुके कुलिश-पातसे भग्न होनेका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हुए महाराज भोजने 'चम्पूरामायण'में कहा है कि 'हनुमानजी बाल्यकालमें पके फलकी भ्रान्तिसे सूर्यमण्डलका भक्षण करनेके लिये उछल पड़े। इसके बाद इन्द्रद्वारा प्रयुक्त वज्रके आघातसे उनकी हनु भग्न हो गयी, जिससे उनके पिता वायु कुपित हो गये और उन्होंने वायुका सञ्चार बंद कर दिया, इससे तीनों लोकोंके प्राणी व्यस्त हो उठे। तब ब्रह्माने जगत्‌के वायुद्वारा पोषणके लिये हनुमानजीको कल्पायु (चिरजीवी) होने तथा ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि अस्त्र शस्त्रोंसे अभेद्य होनेका वरदान दिया'—

तदुपतदुपभोक्तुं मण्डलं चण्डभानो
परिणतफलबुद्ध्या बालभावेऽपि सोऽयम्।
तदनुकुलिशपातक्षुण्णगण्डाय तस्मै
वरमदिशदमेयं वायुतुष्ट्यै विधाता॥
(किष्किन्धाकाण्ड ९८)

श्रीहनुमानका कण्ठ दिव्य मणि-मालाओं और हारोंसे विभूषित रहता है। उनका कण्ठ शङ्खके सदृश वतार-चढ़ाववाला कहा गया है। 'हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र'के १०२वें श्लोकमें उनका 'कम्बुकण्ठ'के नामसे वर्णन है। आचार्य शंकरने हनुमत्पञ्चरत्न स्तोत्रके तीसरे श्लोकमें उनका 'कम्बुगल' रूपमें स्मरण किया है। उनके कण्ठमें लङ्कासे लौटनेपर भगवान् श्रीरामके संकेतपर भगवती सीताने हार डाल दिया था। उन्होंने उस हारमें भी राम-नामको अङ्कित देखनेका प्रयास किया था। श्रीवाल्मीकि तथा अन्य रामायण-रचयिताओं और राम-काव्यकारोंने इस प्रसङ्गका बड़ा रोचक वर्णन किया है। अध्यात्मरामायणमें उल्लेख है कि 'श्रीरामने अत्यन्त प्रेमसे करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान अमूल्य मणि और रत्नोंसे भूषित एक हार जानकीजीको दिया'—

चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम्।
सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः॥
(३ । १६ । ६)

भगवती सीताने श्रीरामके सामने ही वह हार हनुमानजीको दे दिया, उस हारको पहनकर वे गौरवान्वित और शोभित हुए—

हनूमते ददौ हारं पश्यतो राघवस्य च।
तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च॥
(अध्यात्मरा० ६ । १६ । ९)

श्रीवाल्मीकि रामायणके अनुसार श्रीहनुमानके कण्ठमें समलङ्कृत उपर्युक्त हार इन्द्रकी प्रेरणासे वायुदेवताने भगवान् श्रीरामको समर्पित किया था। 'राज्याभिषेकके अवसरपर वायुदेवताने भी सुवर्णमय कमलोंसे बनी एक दीप्तिमती माला और सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त मणियोंसे विभूषित मुक्ताहार राजा रामको भेंट किया। 'उत्तम मणियोंसे युक्त उस परमोत्तम मुक्ताहारको जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशित था, श्रीरामने सीताके गलेमें डाल दिया'

राघवाय ददौ वायु ।
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम्॥
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः।
मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम्॥
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्।
(वा० रा ६ । १२८ । ७० ७१, ७७-७८)

श्रीसीताने उस हारको हनुमानजीको प्रदान किया। 'उस हारसे हनुमानजी उसी तरह शोभित हुए, जिस तरह चन्द्रमाकी किरणोंके समूह सदृश श्वेत बादलोंकी मालासे कोई पर्वत सुशोभित हो रहा हो'—

हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः॥
(वा० रा० ६ । १२८ । ८२)

श्रीहनुमानके कण्ठके उपर्युक्त समलंकरणका भव्य वर्णन 'रंगनाथ-रामायण'में युद्धकाण्डके १६८वें अध्यायमें मिलता है। ऐसा लगता है कि रचयिताने उपर्युक्त श्लोकका स्पष्ट भाष्य प्रस्तुत किया है—'श्रीसीताजीने अपने कृपा-रससे सींचते हुए उस हारको हनुमानजीके कण्ठमें पहना दिया। उस पवित्र हारको धारणकर वे पुण्यात्मा पवनपुत्र शरत्कालके बादलोंसे घिरे हुए मेरुपर्वतकी भाँति सुशोभित होने लगे।'

जातरूपाचलाकारविग्रह, लसल्लोल विद्युल्लता ज्वालमाला ॥
(विनयपत्रिका २८ । १)

उनके चौड़े और पुष्ट कंधेकी सदुपयोगिता यह है कि उसने भगवान् श्रीरामके आसनके रूपमें परम सौभाग्य प्राप्त किया। "रावणका रणमें आगमन देखकर श्रीहनुमानजीने भगवान् श्रीरामसे निवेदन किया कि 'आप हमारे कंधेपर विराजमान होकर रिपुपर विजय प्राप्त कीजिये।' प्रभु उनकी बात सुनकर मुस्कुरा उठे और वे उनके कंधेपर उसी तरह आरूढ हो गये, जिस तरह भगवान् विष्णु गरुडके कंधेपर शोभित होते हैं। भानुवंशके सूर्य श्रीराम उनके कंधेपर इस तरह लगते थे, मानो सोनेके पहाड़पर सूर्य अग्निके समान विभूषित हों।"

दसमुख-समर-पयान लखि, बोल्यो पवन कुमार।
नाथ हमारे कंध चढ़ि, जीतहु रिपु यहि बार ॥
पवनसुवनके बचन सुनि, प्रभु नेसुक मुसक्यान।
चढ़े कपीसहिं कंध पर, यथा गरुड भगवान ॥
सोह्यो हनुमत कंध पर, भानुबंस को भानु।
मनहुँ कनकगिरि सिखि उयो, भानु कृसानु समानु ॥
(रामस्वयंवर, २३वाँ प्रबन्ध)

महाकवि कम्बनने 'कम्ब-रामायण'के किष्किन्धाकाण्डके १३वें अध्यायमें हनुमानजीके स्वयम्प्रभाके नगरमें प्रवेश करते समयका प्रसङ्ग उपस्थित करते हुए कहा है कि 'दीर्घ स्वर्ण पर्वत-सदृश कंधोंवाले हनुमानजी बारह योजनतक गये। उनके कंधेपर ही श्रीसुग्रीवद्वारा श्रीरामका महत्त्वपूर्ण कार्य—भगवती सीताका पता लगाना रखा गया था। महाकवि क्षेमेन्द्रने सुग्रीवके मुखसे कहलाया है—

हनुमत्स्कन्धविन्यस्तं रामकार्यमिदं महत् ॥
(रामायणमञ्जरी, किष्किन्धाकाण्ड २४३)

उनके कंधेपर मूँजका यज्ञोपवीत सौन्दर्य बिखेरता है—
'काँधे मूँज जनेऊ साजै।' (हनुमानबाहुक)

श्रीहनुमानजीके कक्ष—काँखके सम्बन्धमें महाकवि कृत्तिवासने अपनी कृत्तिवासीय रामायणके लङ्काकाण्डमें एक रोचक कथाका इस प्रकार वर्णन किया है कि "उन्होंने कुछ समयके लिये सूर्यको अपने काँखमें रख लिया था। श्रीलक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर सुषेणके संकेतपर श्रीरामकी आज्ञासे हनुमानजी औषध लाने गये। सूर्योदयके बाद औषधका प्रभाव निरर्थक हो जाता, इसलिये रातमें ही उसे लानेकी बात थी। रावणने भास्करसे रातमें ही उदित होनेकी प्रार्थना की। श्रीहनुमानने क्रुद्ध होकर सूर्यके रथका पीछा किया और कहा कि 'जबतक लक्ष्मणके शरीरमें प्राणका सञ्चार न हो जाय, आप उदयाचलपर न जाइये।' सूर्यके न माननेपर उन्होंने उन्हें पकड़कर अपने कक्षमें रख लिया"—

सूर्येरे धरिया हनू करे कोलाकुलि।
सापटिया सूर्येरे पूरिल कक्षतलि ॥

श्रीहनुमानके औषध लानेपर लक्ष्मणजीके शरीरमें प्राण आ गया। रातमें ही वे औषधका पर्वत यथास्थान रखकर वापस आ गये। कार्य पूरा करनेके बाद हनुमानजीने श्रीरामके सामने उपस्थित होकर हाथ जोड़े तो उनके कक्षतलमें सूर्य दीख पड़े। प्रभुके कहनेपर उन्होंने भगवान् भास्करको मुक्त कर दिया। पवननन्दनने सूर्यदेवताको प्रणाम किया—

सूर्येरे प्रणाम करे पवननन्दन।

भगवान् श्रीरामने अपने पूर्वज सूर्यको नमस्कार किया। वे उदयाचलपर गये, रातका अन्त हुआ और भुवन प्रकाशित हो गया—

आदिकर्त्ता आपन वंशेर दिवाकर।
बात बात प्रणाम करेन रघुवर ॥
उदय पर्वते भानु करेन गमन।
पोहाइल विभावरी, प्रकाशे भुवन ॥
(कृत्तिवासीय रा०, लङ्काकाण्ड)

श्रीहनुमानजीके वक्ष—छातीकी महिमाका वर्णन शब्दोंमें नहीं किया जा सकता। यह शक्तिका वज्रपुञ्ज है। उनके वक्षकी पुष्टता और शक्तिमत्ताका वर्णन महर्षि वाल्मीकिने किया है। लङ्काके युद्धमें निकुम्भने उनकी छातीपर परिघसे प्रहार किया। उनकी छाती बड़ी सुदृढ और विशाल थी। 'उससे टकराते ही उस परिघके सहसा सैकड़ों टुकड़े (होकर) बिखर गये, मानो आकाशमें सौ उल्काएँ एक साथ गिरी हों'—

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः।
विशीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे ॥
(वा० रा० ६ । ७७ । १२)

रङ्गनाथ-रामायणके किष्किन्धाकाण्डके २८वें अध्यायमें श्रीहनुमानद्वारा वक्षसे मैनाकपर्वतको धक्का देनेका अद्भुत उल्लेख है कि "समुद्रकी ओरसे मैनाकपर्वत उन्हें विश्राम

साथ-ही-साथ कहा कि तुम भगवान् राघवेन्द्रके चरणोंको हृदयमें धारण कर लो—

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥
(रामचरितमानस ५। १७)

श्रीरामके चरण ही उनके हृदयके सर्वोत्तम भूषण हैं। उनके मनमें सदा श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीका निवास है—

'राम लखन सीता मन बसिया।'
(श्रीहनुमानचालीसा)

श्रीहनुमानजी मनसे बड़े धार्मिक और धैर्यशाली कहे गये हैं—

'करुना-कलित मन धारमिक धीर को।
(श्रीहनुमानबाहुक १०)

श्रीहनुमानजीकी पीठकी सार्थकता यह है कि वह प्रभुके आसनके रूपमें प्रयुक्त हो गयी। किष्किन्धामें अपनी पीठपर श्रीराम लक्ष्मणको आसनस्थ कर वे सुग्रीवके पास गये—

भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः।
पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः॥
(वा० रा० ४। ४। ३४)

गोस्वामी तुलसीदासजीने सरस-कोमल भाषामें कहा है—
एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥
(रामचरितमानस ४। ३। २½)

परमभागवत महामति सनातन गोस्वामीकी उक्ति है कि 'श्रीहनुमानजी अपने प्रभुको ले जानेके लिये श्रेष्ठ वाहनस्वरूप हैं। उस समय उनकी पूँछ श्वेत छत्रका काम देती है, उनकी पीठ श्रीरामके बैठनेके लिये सुख-आसनस्वरूप होती है। वे सेतुबन्धके कार्यमें अग्रणी हैं'—

स्वप्रभोर्वाहकश्रेष्ठः श्वेतच्छत्रितपुच्छकः।
सुखासनमहापृष्ठः सेतुबन्धक्रियाग्रणी॥
(बृहद्भागवतामृत २। ४। ४५)

श्रीहनुमानजीकी बाहु विशाल हैं। उन्हें 'आजानुबाहु' कहा गया है। उनकी भुजाएँ प्रचण्ड बलसे शोभित और शक्तिमयी हैं। श्रीहनुमानबाहुकके पहले और दूसरे छन्दमें उन्हें भुज बिसाल और 'भुजदंड चंड' कहकर वर्णित किया गया है। वे द्विभुज हैं। उनका ध्यान है—

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कृताञ्जलिम्।
कुण्डलद्वयसंशोभि मुखाम्बुजमहं भजे॥
(श्रीतत्त्वनिधि पृष्ठ ५९)

महर्षि वाल्मीकिने उनकी भुजाओंके वर्णनमें कहलाया है कि 'गरुड़के दोनों पंखोंमें जो बल है, वह तुम्हारी भुजाओंमें है।' जाम्बवान्‌के वचन हैं—

अरिष्टनेमिनः पुत्रो वैनतेयो महाबलः।
पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव॥
(वा० रा० ४। ६६। ४, ६)

भगवती सीताजीकी खोजमें आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमानजीकी दोनों भुजाएँ ऐसी दीख पड़ती थीं, मानो पर्वतके शिखरसे पाँच फनवाले दो सर्प निकले हुए हों—

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद् विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ॥
(वा० रा० ५। १। ५६)

महेन्द्रपर्वतपर चढ़कर हनुमानजीने अद्भुत रूप धारण किया था। वे महान् सर्पराजके समान दीर्घ भुजावाले दीख पड़े—

महाफणी द्रागसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः॥
(अध्यात्मरा० ४। । २)

महाराजा भोजने 'चम्पूरामायण'में उनकी बाहुको उरग तुल्य कहा है—

'माणिक्यगर्भवदनोरगतुल्यबाहु॥' (सुन्दरकाण्ड १)

उनका भुजबल कभी घटता नहीं है। कविचक्रवर्ती कम्बनने जाम्बवान्‌से श्रीहनुमानजीके भुजबलकी प्रशंसा करायी है। 'कम्ब-रामायण'के किष्किन्धाकाण्डके १६वें अध्यायमें महेन्द्रशैल-पटलमें जाम्बवान्‌ने कहा है कि 'तुम एक बार कूदो तो इस ब्रह्माण्डसे भी परे जा पहुँचोगे। तुम्हारा भुजबल कभी घटता नहीं। तुम्हारी महिमा मेरुसे भी ऊँची है।'

श्रीहनुमानने भगवान् श्रीरामके चरणदेशमें अपना भुजबल निवेदित करते हुए कहा था कि 'हे देव! क्या परकोटे, विहारस्थल और बड़े-बड़े द्वारोंवाली लङ्काको ही यहाँ ले आऊँ या वहीं रावणकी सारी सेनाको नष्ट कर दूँ अथवा समुद्र ही उठाय हुए पर्वतके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे समुद्रको पाट दूँ। आप आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ। मेरे इन भुजदण्डोंसे सब कुछ हो सकता है'—

ाना चाहते हैं, मुझे सीताजीका कुशल-समाचार सुनाओ। श्रीहनुमानजीने कहा कि 'हे जगत्को आनन्द देनेवाले श्रीराम! आपका कल्याण हो। आपके प्राणोंके जानेका द्वार बंद करनेकी अर्गला—चूडामणि मेरे हाथमें है'—

हा राम जगदानन्द किमिदं शिवमस्तु ते।
तव प्राणगतिद्वारस्यार्गलेयं करे मम॥
(हनुमन्नाटक ६। १८)

वनवासमें श्रीरामके साथ आहार और निद्राके अभावके कारण अरुण नेत्रवाले लक्ष्मण श्रीहनुमानको देखने लगे। फिर उन्होंने हाथमें चूडामणि लिये हुए भरतजीके बड़े भाई श्रीरामके दोनों चरण-कमलोंमें प्रणाम किया—

निद्रात्ययादरुणितेन समीरपुत्रस्सौमित्रिनेत्रयुगलेन निपीयमानः।
चूडामणिं करतले कलयन् ववन्दे पादारविन्दयुगलं भरताग्रजस्य॥
(चम्पूरामायण, सुन्दर० १२२)

श्रीहनुमानजीके हाथोंकी सार्थकता है—प्रभुके चरणोंकी सेवामें। यह उनका परम सौभाग्य कहा गया है। सुवेल शैलके रम्य शिखरपर विश्राम करते हुए प्रभुके चरणोंको अपने हाथोंसे अङ्गद और हनुमानजी दबा रहे थे—

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
(रामचरितमानस ६। १०। १½)

लंकासे लौटनेपर श्रीरामके तिलकोत्सवमें श्रीहनुमान राजसभामें उनकी चरण-सेवामें तत्पर चित्रित किये गये हैं। महाराजा रघुराजसिंहके शब्दोंमें इसका बड़ा भव्य वर्णन है—

प्रभु पद पंकज कंज कर दाबत पवनकुमार।
सिंहासन आगें लसत, राम प्रेम आगार॥
[भक्तमाला (रामरसिकावली), त्रेतायुगखण्ड, प्र० भ०]

इनके हाथमें श्रीरामकी ध्वजा विराजमान रहती है। लंकासे लौटनेपर प्रभु अयोध्यानगरका पर्यटन करते हैं, उस समय हनुमानजीके हाथमें श्रीरामके रथकी ध्वजा है—

भे सवार स्यंदन रघुनंदन। फहरि रहे पताक बहु वृंदन॥
बाजिन बाग भरत कर लीनो। रिपुहन छत्र लियो मुद भीनो॥
लखन चमर चारुन घुम छाइ। द्वितिय चमर लिय निसिचरराई॥
ध्वजदंड लिये खड़ो हनुमाना। कियो राम भूमि भवन पयाना॥
(रामस्वयंवर, २१वाँ प्रबन्ध)

श्रीरामके राज्याभिषेकमें हनुमानजीके हाथमें छड़ी समलङ्कृत है। महाराजा रघुराजसिंहने उस समयकी बड़ी रमणीय झाँकी प्रस्तुत की है—

ठाढ़ो दिसि दाहिने लखन लीन्हें चारु चौंर,
दूजों चौंर वाले वाम ठाढ़ो मधुसाल है।
छत्र छपानाथ सो बिराजित भरत कर,
आतपत्र लीन्हे खड़ो क्षेम-कुलपाल है॥
सिंहभुज हेमदंड फहरैं पताक तुंग,
ठाढ़ो लै निसाचरेस विक्रम बिसाल है।
रघुराज राजराज-बदन बिलोके खड़ो,
लीन्हें छरी जोरे कर आगे वायुलाल है॥
(रामस्वयंवर, २३वाँ प्रबन्ध)

उनके हाथ वज्र और ध्वजासे विभूषित रहते हैं। वे राक्षसोंके संहार और संतोंके संरक्षणमें लगे रहते हैं—

'हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै।' (हनुमानचालीसा)

श्रीहनुमानजी हाथमें पर्वत लेकर कुम्भकर्णपर भीषण आक्रमण करते हुए चित्रित किये गये हैं। 'उनके हाथमें पर्वत ऐसा शोभित है—मानो सुमेरुकी चोटीपर मैनाकपर्वत स्थित हो'—

'मैनाको मेरुशृङ्गस्थित इव हनुमत्पाणिपद्मे नगेन्द्रः।'
(हनुमन्नाटक ११। ११)

उनके हाथमें स्वयं श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक बिक गये—उनके अपने हो गये। ''हनुमानजीका द्रोणाचलपर जाना सुनकर रावणने राक्षस कालनेमिको विघ्न डालनेके लिये भेजा। उसने कपट-मुनिका वेष बनाया और वह मारा गया। श्रीहनुमानजीने अनेक योजन विस्तृत पर्वतको सहसा उखाड़ लिया, रक्षकोंको मारकर बड़े-बड़े वीरोंका नाश कर दिया। देखो, हनुमानजी चलकर पर्वत और भरतजीका कुशल-समाचार लाये हैं।'—ऐसा कहकर कृपालु रघुनाथजी उनके बल, साहस और वेगकी सराहना करने लगे। मानो वे कपिनाथ (हनुमानजी) के हाथ बिक गये। श्रीरामने उनका उपकार माना''—

चल्यो हनुमानु, मुनि जातुधानु कालनेमि
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फलु छलि कै।
सहसा उखारो है पहारु बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥
बगु, बलु, साहसु सराहत कृपालु रामु,
भरत की कुसल, अचलु ल्यायो चलि कै।

सो हनुमान हन्यो मुष्टिकाँ गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाज को मारो॥
(लंका० ३८)

श्रीहनुमानने करतल-प्रहार—थप्पड़से जम्बुमाली राक्षसके रथको तोड़ डाला—

सस्य स रथमास्थाय हनूमान् मारुतात्मजः।
ममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा॥
(वा० रा० ५। ४३। २२)

वे अपनी अङ्गुलिसे श्रीरामकी सेवा करते हैं। कभी कभी तो वे उनका गुण-गान करते हुए उनपर सुन्दर श्वेत चँवर डुलाते हैं, कभी उनके सम्मुख उपस्थित होकर हाथ जोड़कर स्वय-निर्मित चित्र विचित्र श्लोकोंसे उनकी स्तुति करते हैं—

कदापि सुग्रीवचामरे प्रभु गायन् गुणान् वीजयति स्थितोऽग्रतः।
कदाप्युपश्लोकयति स्वनिर्मितैश्चित्रैः स्तवैः श्रीहनुमान् कृताञ्जलिः॥
(बृहद्भागवतामृत २। ४। २६०)

श्रीहनुमानजीके शरीरका मध्यभाग और कटिप्रदेश पतला है—

'तनुमध्यकटीतटम्॥' (महा०, वन० १४६। ७७)

उनके कटिप्रान्तके नीचेका भाग लाल कहा गया है। वे देखनेमें ऐसे लगते थे, मानो फटे हुए गेरूसे युक्त विशाल पर्वत हो—

रिक्तदेशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः।
महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना॥
(वा० रा० ५। १। ६३)

वे कटिप्रदेशमें कौपीन धारण करते हैं। उनकी स्तुति है—

कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च।
(नारदपु०, पूर्व०, तृतीय० ७८। ४५)

'रामरहस्योपनिषद्'में स्वय हनुमानजीने अपने ध्यानकी विधि इस प्रकार बतायी है—

द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवापरायणम्।
मौञ्जीकौपीनसहितं मां ध्यायेद् रामसेवकम्॥
(रामरहस्योपनिषद् १। १०६)

आशय यह है कि 'दो भुजाओंसे युक्त, स्वर्ण-वर्णकी शोभावाले, श्रीरामसेवापरायण, कटिमें मूँजकी करधनी और कौपीन—लँगोटी धारण करनेवाले मुझ रामसेवकका ध्यान करना चाहिये।' 'लाङ्गूलयत्रुञ्जय हनुमत्स्तोत्र'में उनके इस स्वरूपका वर्णन है—

कौपीनं कटिसूत्रमौञ्ज्यजिनयुग्देहं विदेहात्मजा
प्राणाधीशपदारविन्दनिरतस्वान्तं कृतान्तं द्विषाम्।
(मन्त्रमहार्णव, पूर्वखण्ड, तरंग ९वाँ)

श्रीहनुमल्लीलाका विशेष उपकरण हनुमानजीकी लाङ्गूल—पूँछ है। उनकी पूँछने अग्निसे प्रदीप्त किये जानेपर लंका जला दी, राक्षसोंका मान मर्दन किया तथा श्रीलक्ष्मणजीकी प्राणरक्षाके लिये उन्होंने उसके अग्रभागपर द्रोणाचलको रखकर एक लंबी दूरी पारकर लंकामें प्रवेश किया। उन्हें 'दीर्घलाङ्गूलधारी' कहा गया है—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाश दीर्घलाङ्गूलधारिणे।
सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः॥
(नार० पूर्व०, तृतीय० ७८। १७)

महर्षि वाल्मीकिने श्रीहनुमानकी पूँछका वर्णन करते हुए लिखा है—आकाशमें तैरते हुए हनुमानकी उठी हुई पूँछ इन्द्रकी ऊँची ध्वजा-सी जान पड़ती थी—

लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते।
अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम्॥
(वा० रा० ५। १। ६१)

उनकी पूँछके लहरानेकी शोभाका महाराजा रघुराजसिंहने इस प्रकार वर्णन किया है कि 'वह ऐसी थी, मानो रावणकी साक्षात् मृत्यु व्योममें मँडरा रही हो, या महाकालकी लंबी जिह्वा हो, अथवा आकाशमें शेषनाग विराजमान हों, अथवा यमराजने कालपाश फैलाया हो, या शिवके तीसरे नेत्रकी अग्नि-शिखा हो, या भगवान् विष्णुके शार्ङ्गधनुषकी द्युति हो। यह बड़ी मोददायिनी है'—

कैधौं दसकंधर की मीचु मँडराती व्योम
कैधौं महाकाल कोपि रसना लगाई है।
कैधौं अहिराज आज राजत अकास ही मैं,
कैधौं यमराज कालपास पसराई है॥
कैधौं या त्रिनेत्र की त्रिनेत्र-वह्नि सिखा फैली
कैधौं हरि सारँग की द्युति दरसाई है।
कैधौं रघुराज मोददाइ छबि छाई मन,
भाई बायुलाल जू लँगूर लहराई है॥

रह्यो तेल पी ज्यौं चिय हू कौं पूर भीज्यौ, ऐसो
रूपज्यो समूह पट कोटिक पटल कौं।
मग सौं भ्रमत नभ देखियै बरत पूँछ,
देखियै न राति जैसी महल-महल कौं॥
सेनापति धरनि बखानै मानौं धूमकेतु
उदयौ बिनासी दसकधर के दल कौं।
सीता को सताप, कि सलीता उतपात कौं, कि
काल को पलीता, प्रलै-काल के अनल कौं॥
(कवित्तरत्नाकर ४। १८)

भगवती सीताजीकी प्रार्थनासे हनुमानजीकी पूँछ नहीं जली। 'वायुका प्रिय मित्र होनेके कारण तथा सीताजीकी प्रार्थनासे अग्निने हनुमानजीकी पूँछ नहीं जलायी। उनके लिये अग्निदेव अत्यन्त शीतल हो गये। जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर तुरत ही तापत्रयरूप अग्निको पार कर जाते हैं, उन्हीं श्रीरामके विशिष्ट दूतको प्राकृत अग्निके द्वारा किस तरह ताप पहुँचाया जा सकता था'—

वायो प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः।
न ददाह हरे पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः॥

यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः संतप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन॥
(अध्यात्म० ५। ४। ४६-४७)

हनुमानजीने द्रोणाचलको उखाड़कर अपनी लंबी पूँछपर रख लिया तथा साठ लाख योजनकी दूरी पारकर वे लंका पहुँच गये और श्रीलक्ष्मणजीके प्राणोंकी रक्षा की। 'हनुमन्नाटक' के १३वें अङ्कके बीसवें श्लोकके इस अंश 'लक्षाणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानाम्' से लंकासे द्रोणाचलकी साठ लाख योजनकी दूरीका पता चलता है। "एक पुच्छमात्र ही जिसका शेष रह गया था, ऐसे भरतके बाणद्वारा बिंधे हुए लोटपटाते 'हा राम! हा लक्ष्मण! मैं कहाँ हूँ!'—कहते हुए वालोंवाली पूँछके अग्रभागमें द्रोणाचलको धारण किये हुए हनुमानजी पृथ्वीपर अचेत होकर गिर पड़े"—

पुच्छावशेषभरतेषु कलाटपट्टो
हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमिति ब्रुवाणः।
सम्मूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो
लाङ्गूलरोमलहरीण समं रयेण॥
(हनुमन्नाटक १३। २५)

पद्मपुराणमें वर्णन है कि 'श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वकी रक्षामें नियुक्त श्रीहनुमान राजा सुबाहुके रथको अपनी लंबी पूँछमें लपेटकर उसे वेगपूर्वक खींच ले चले'—

पुच्छेनावेष्ट्य तस्याश्वैः रथं निन्ये महाबलः॥
(पातालखण्ड २८। १४)

महाभारतमें वर्णन है कि जब वे गन्धमादनपर्वतपर कदली वनमें विश्राम कर रहे थे, तब उन्होंने भीमको अपना विशाल रूप दिखाया था। उस समय उनकी पूँछ ऊपरकी ओर उठकर ध्वजाके समान शोभित हो रही थी—

लाङ्गूलेनोर्ध्वगतिना ध्वजेनेव विराजितम्॥
(वनपर्व १४९। ७८)

उपर्युक्त प्रसङ्गमें ही वर्णन है कि 'भीमने उनकी पूँछको उठानेका प्रयत्न तो किया, पर उसे वे हिला डुलातक न सके। तब उन्होंने हनुमानजीसे क्षमा माँगी—

न चाशकच्चालयितुं भीमः पुच्छं महाकपेः।
उत्क्षिप्य पुनर्दोर्भ्यामिन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्।
नोदतुमशकद् भीमो दोर्भ्यामपि महाबलः॥
(महा० वन० १४७। १९-२०)

बाहुकी पीड़ासे सतत गोस्वामी तुलसीदासजीने हनुमानजीसे उनकी बाँहपर अपनी लंबी पूँछ फेरनेकी प्रार्थना की। उन्होंने निवेदन किया कि 'मैं आपके टुकड़ोंसे पला हूँ। मुझसे चूक पड़नेपर भी आप मौन न हो जाइये। मैं कुमार्गी दो कौड़ीका हूँ, पर आप अपनी ओर देखिये। हे भोलानाथ! (रुद्ररूप हनुमान!) आपने भोलेपनसे ही आप थोड़े-से दोषसे रुष्ट हो जाते हैं आप सन्तुष्ट होकर मेरा पालन कर मुझे बचाइये अपना सेवक समझकर मेरी दुर्दशा न कीजिये। आप जल हैं तो मैं मछली हूँ, आप माता हैं तो मैं छोटा बालक हूँ। देरी न कीजिये, मुझे आपका ही सहारा है। बच्चेको व्याकुल जानकर प्रेमकी पहचान कर मेरी रक्षा कीजिये। मेरी बाँहपर अपनी लंबी पूँछ फेरिये, जिससे मेरा कष्ट मिट जाय'—

पालो तेरे टूक को, परेहू चूक मूकिये न
कूर कौड़ी दू को हौं, आपनी ओर हेरिये।
भोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष,
पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये॥
अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ सो न,
बूझिये बिलंब, अवलंब मेरे तेरिये।

लंकामें रावणकी पूँछमें अग्नि प्रज्वलित की गयी। इस प्रसंगमें अनेक प्रकारके विचित्र विविध भावपूर्ण वर्णन उपलब्ध होते हैं। अग्नि देवता पवनके मित्र हैं तथा पवनपुत्रकी रक्षाके लिये भगवती सीताने अग्निसे प्रार्थना की थी। ऋग्वेदमें मन्त्र है—

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥
(१ । ८७ । १)

उपर्युक्त मन्त्र अथर्ववेद (८ । ३ । १) और तैत्तिरीय संहिता (१ । २ । १४ । ६) में भी प्राप्त होता है। इसका भाष्य भगवान् नीलकण्ठने 'मन्त्ररामायण' (१०४) में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'एवं वहत्सु हनुमतः पुच्छे ज्वालितमग्निं सीता प्रार्थयते—रक्षोहणमिति। रक्षोहणं रक्षसां अक्षादीनां हन्तारं वाजिनं हरिं वानरं दृष्ट्वा आजिघर्मि क्षरामि बाष्पं यस्मिन् गिलनपात्रीभूय अतो मित्रं हनुमत्पितुर्वायोः सखायं प्रथिष्ठं प्रथमानं अग्निं शर्म हनुमते कल्याणं उपयामि उपेत्य याचामि। शिशानो दीप्यमानोऽग्निः क्रतुभिः यज्ञैः पूर्वं अस्माभिः समिद्धः सन्दीपितः स इदानीं मोऽस्मत्सम्बन्धिनं जनं दिवा नक्तं च रक्षितु हिंसातः पातु।'

भाष्यका भावार्थ यह है कि (राक्षसोंद्वारा) वह हनुमान्जीकी पूँछमें प्रज्वलित अग्निसे भगवती सीता प्रार्थना करती हैं कि ऋक्षादि राक्षसोंको मारनेवाले हनुमान्जीको देखकर मेरे नेत्रोंसे व्यथाके आँसू झर रहे हैं। आप उनके पिता वायुदेवताके मित्र हैं। मैं आपसे उनके कल्याणकी याचना करती हूँ। हे अग्नि! हमने पहले यज्ञोंमें (अनेक बार) आपको प्रदीप्त किया है। आप हमारे भक्त हनुमान्की राक्षसोंके प्रहारसे रात दिन रक्षा कीजिये।'

'हनुमन्नाटकमें इस प्रार्थनाका बड़ा सुन्दर रूप अङ्कित है। हनुमान्जीसे रावणने कहा कि 'तुम पुनः भस्म कर दो', तब उसने उनकी पूँछमें आग लगवा दी। उस समय माताजीने प्रार्थना की कि 'हे अग्निदेव! यदि आयपुत्र (रामचन्द्र) मातागीदारा कठोर वचन कहे जानेपर भी रुष्ट नहीं होते हैं, यदि आप पुत्रके हाथसे पूज्य हो। हे तथा यदि श्रीरामजीमें मेरी भक्ति है तो राक्षसोंके कुलको जलाकर शान्त भी हो जाना और मेरे लिये तथा इसकी पूँछके द्वारा हनुमान्जी हनन न हों।' इस प्रकारकी प्रार्थनासे अग्नि देवता शीतल हो गये।'

लाङ्गूले [illegible] [illegible]
रक्षोभिर्यो ज्वलितोऽग्निर्द्विजवरवनिता राघवो [illegible]।
दुष्टो [illegible] [illegible] [illegible]
सततं प्रार्थिता मा सदिद हनुमतः शीतलः पावकोऽभूत्॥
(हनुमन्ना० १ । ११)

महाराजा भोजकी निराशोक्ति है कि सीताजीकी प्रार्थनासे पूँछके अग्रभागमें अग्नि मणिदीपके समान शान्त होकर उठी और शीतल हो गयी—

घोरस्य राघवकलत्रतपोमयाग्ने-
र्मोभूदमि [illegible] [illegible]।
शैत्यं वितन्य दहनं पवनात्मजस्य
पुच्छाग्रसीम्नि मणिदीप इवाततान॥
(चम्पूरामायण, सुन्दर० १०)

गोस्वामी तुलसीदासजीने पूँछका इस रूपमें वर्णन किया है—भयंकर ज्वाला-मालाके सहित उनकी विशाल पूँछ ऐसी जान पड़ती थी, मानो लंकाको निगलनेके लिये कालने जीभ फैलायी है, अथवा मानो आकाशमार्गमें अनेक धूमकेतु भरे हैं, अथवा वीर-रसरूपी वीरने मानो तलवार निकाल ली है। यह इन्द्रधनुष है अथवा बिजलीका समूह है या सुमेरु पर्वतसे अग्निकी भारी नदी बह चली है। उसे देखकर राक्षस और राक्षसियाँ—सभी व्याकुल हो रहे हैं और कहते हैं कि वनको तो उजाड़ चुका, अब नगर जलायेगा।'

बालधी बिसाल बिकराल, ज्वाल-जाल मानो
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर तरवारि सो उघारी है॥
'तुलसी' सुरेस-चापु कैधौं दामिनि-कलापु
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखें जातुधान-जातुधानीं अकुलानी कहैं
काननु उजारयो, अब नगर प्रजारिहै॥
(कवितावली सुन्दर० ५)

महाकवि सेनापति हनुमान्जीकी जलती पूँछको लंकाके नाशके लिये उदित धूमकेतु कहते हैं। उनका कहना है कि राम और सीतेके विरहके धुएँसे निकली इसकी पूँछ कहीं अग्निमय ज्वाला तो नहीं है अथवा यह उगलती ढेरी (चिंगारी) अथवा प्रलयकी अलात नदीशा (ढेरमें आग लगानेवाली बत्ती) तो नहीं है—

रह्यो तेल घी ज्यौं चिय हू कौ पूर भोज्यो, ऐसो
　　कपट्यो समूह पट कोटिक पहल कौं।
वेग सौं भ्रमत नभ देखिये बरत पूँछ,
　　देखियै न राति जैसी महल-महल कौं॥
सेनापति वरनि बखानै मानौं धूमकेतु
　　उदयौ बिनासी दमकधर के दल कौं।
सीता को सताप, कि सलीता उतपात कौं, कि
　　दाह को पलीता, प्रलै-काल के अनल कौं॥
　　　　　　　　(कवित्तरत्नाकर ४ । १८)

भगवती सीताजीकी प्रार्थनासे हनुमानजीकी पूँछ नहीं जली। वायुका प्रिय मित्र होनेके कारण तथा सीताजीकी प्रार्थनासे अग्निने हनुमानजीकी पूँछ नहीं जलायी। उनके लिये अग्निदेव अत्यन्त शीतल हो गये। जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर तुरत ही तापत्रयरूप अग्निको पार कर जाते हैं, उन्हीं श्रीरामके विशिष्ट दूतको प्राकृत अग्निके द्वारा किस तरह ताप पहुँचाया जा सकता था'—

वायो प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः।
न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः॥

यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः संतप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन॥
　　　　　　　　(अध्यात्म० ५ । ४ । ४६ ४७)

हनुमानजीने द्रोणाचलको उखाड़कर अपनी लम्बी पूँछपर रख लिया तथा साठ लाख योजनकी दूरी पारकर वे लङ्का पहुँच गये और श्रीलक्ष्मणजीके प्राणोंकी रक्षा की। 'हनुमन्नाटक' के १३वें अङ्कके बीसवें श्लोकके इस अंश 'लक्षाणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानाम्' से लङ्कासे द्रोणाचलकी साठ लाख योजनकी दूरीका पता चलता है। "एक पुच्छमात्र ही जिसका प्रत्यङ्ग शेष रह गया था, ऐसे भरतके बाणद्वारा विंधे हुए लम्बायमान 'हा राम! हा लक्ष्मण! मैं कहाँ हूँ।'—कहते हुए चलनेवाली पूँछके अग्रभागमें द्रोणाचलको धारण किये हुए हनुमानजी पृथ्वीपर अचेत होकर गिर पड़े"—

पुच्छावशेषभरतेषु　　कलाटपहो
　　हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमिति प्रयाण।
सम्मूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो
　　लाङ्गूलकोटिरसेन　　　　सम्भ्रमेण॥
　　　　　　　　(हनुमन्नाटक १३ । २५)

पद्मपुराणमें वर्णन है कि 'श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वकी रक्षामें नियुक्त श्रीहनुमान राजा सुबाहुके रथको अपनी लम्बी पूँछमें लपेटकर उसे वेगपूर्वक खींच ले चले'—

पुच्छेनावेष्ट्य तरसोच्चै रथं निन्ये महाबलः॥
　　　　　　　　(पातालखण्ड २८ । १४)

महाभारतमें वर्णन है कि जब वे गन्धमादनपर्वतपर कदली वनमें विश्राम कर रहे थे, तब उन्होंने भीमको अपना विशाल रूप दिखाया था। उस समय उनकी पूँछ ऊपरकी ओर उठकर ध्वजाके समान शोभित हो रही थी—

लाङ्गूलेनोच्छ्रितेन　　ध्वजेनेव　　विराजितम्॥
　　　　　　　　(वनपर्व १४६ । ७८)

उपर्युक्त प्रसङ्गमें ही वर्णन है कि 'भीमने उनकी पूँछको उठानेका प्रयत्न तो किया, पर उसे वे हिला डुलातक न सके। तब उन्होंने हनुमानजीसे क्षमा माँगी—

न चाशकच्चालयितुं भीमः पुच्छं महाकपेः।
उत्क्षिप्य पुनर्दोर्भ्यामिन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम्।
नोद्धर्तुमशकद् भीमो दोर्भ्यामपि महाबलः॥
　　　　　　　　(महा० वन० १४७ । १९ २०)

बाहुकी पीड़ासे संतप्त गोस्वामी तुलसीदासजीने हनुमानजीसे उनकी बाँहपर अपनी लम्बी पूँछ फेरनेकी प्रार्थना की। उन्होंने निवेदन किया कि 'मैं आपके टुकड़ोंसे पला हूँ। मुझसे चूक पड़नेपर भी आप मौन न हो जाइये। मैं कुमार्गी दो कौड़ीका हूँ, पर आप अपनी ओर देखिये। हे भोलानाथ! (रुद्ररूप हनुमान!) अपने भोलेपनसे ही आप थोड़े-से दोषसे रुष्ट हो जाते हैं आप संतुष्ट होकर मेरा पालन कर मुझे बचाइये, अपना सेवक समझकर मेरी दुर्दशा न कीजिये। आप जल हैं तो मैं मछली हूँ, आप माता हैं तो मैं छोटा बालक हूँ। देरी न कीजिये, मुझे आपका ही सहारा है। बच्चेको व्याकुल जानकर प्रेमकी पहचान कर मेरी रक्षा कीजिये। मेरी बाँहपर अपनी लम्बी पूँछ फेरिये, जिससे मेरा कष्ट मिट जाय'—

पालो तेरे टूक को, परेहू चूक मूकिये न
　　कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिये।
भोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष,
　　पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये॥
अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ सो न,
　　बूझिये बिलंब, अवलंब मेरे,

कविवर मानने अपनी 'हनुमत्-नख-शिख-वर्णन' * रचना में हनुमानजीके चरणकी बड़ी सुन्दर वन्दना की है—

गोपद-करन, तोयनिधिके तरन, अच्छ
दलके दरन, ले करन अरि भट के।
आपद-हरन, दया दीन पै धरन, काल-
नेमि-संहरन, उर-आभरन संत के॥
औढर-ढरन, मान कवि के भरन, चारौं
फल के करन, जै करन जयवंत के।
असरन-सरन, अमंगल-हरन, बंदौं
रिधि-सिधि करन, चरन हनुमंत के॥

'जो समुद्रको गो-खुरके समान पार करनेवाले, अक्ष कुमार और उसके दलको विदीर्ण करनेवाले, आपदासे उबारनेवाले, दीनोंपर दया करनेवाले, कालनेमिका संहार करनेवाले, संतोंके हृदयके अलंकार, बात-की-बातमें प्रसन्न हो जानेवाले, मेरा (मान कविका) पोषण करनेवाले, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों फल प्रदान करनेवाले, विजय शीलोंको विजयी बनानेवाले, आश्रयहीनोंको शरणमें रखनेवाले, विघ्नों और अमङ्गलोंका नाश करनेवाले तथा ऋद्धि सिद्धिके प्रदाता हैं, उन (श्रीहनुमान)के चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीहनुमानजीने अपने चरणकी अँगुलीके स्पर्शसे मैनाक पर्वतको धन्य किया। समुद्रसे ऊपर उठकर मैनाकने कहा कि 'हे पवनकुमार! पक्ष काटनेवाले इन्द्रके भयसे मैं यहाँ छिपा रहता हूँ। मेरी नाभिमें अनेकों रत्न हैं। हिमालयका पुत्र एवं सुवर्णके शरीरवाला मैं मैनाक समुद्रकी प्रेरणासे आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप दूरसे आये हैं अतः मेरे शरीरपर ठहरकर मार्गके श्रमको दूर कीजिये।' उसकी वाणी सुनकर पवननन्दन हनुमानजीने उसके शिखरके अग्रभागका चरणकी अँगुलीसे स्पर्श किया और भुजाओंके वेगके पवनसे दिशाओंको पूरित करते हुए वे आगे चल पड़े।

विश्रान्तस्तत्र हर्षात् सपदि जलधिना प्रेरितो रत्ननाभो
मैनाकः काञ्चनाङ्गस्तुहिनगिरिसुतः प्राह दूरागतस्त्वम्।
इन्द्रो दूराध्वखेदं जहि मम शिखरे प्राप्य तस्यांघ्रि याव
त्स्पृष्ट्वाकुल्या सदम्भ भुजरयपवनापूरिताशो जगाम॥
(हनुमन्नाटक ६। ११)

श्रीहनुमानजीकी परम पवित्र एवं निर्मल साङ्गोपाङ्ग सुषमाका वर्णन महामाङ्गलिक है। भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीसे किष्किन्धामें कहा था कि हनुमानजीके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य किसी भी अङ्गमें कोई दोष नहीं है—

न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥
(वा० रा० ४। ३। २०)

श्रीहनुमानका श्रीविग्रह सुषमानिधि, परममङ्गलमय और दिव्य है, वे परमपूज्य, परमाराध्य और परमोपास्य हैं।

श्रीहनुमच्चरण-वन्दना

(१)

बलके निधान, यातुधानके विनाशक जो,
बलि-बलि जाते भक्त जिनको निहारके।
जिनपै मधुप-मन फेरी हैं लगाते सदा,
धन्य 'तलवे' जो अवलम्ब निराधारके॥
जिस 'नख-ज्योति'से प्रकाशित है जीवन ही,
खोलतीं जो 'उँगली' कपाट स्वर्ग द्वारके।
मेरे मन-मन्दिरमें नित्य ही निवास करें,
चरण-सरोरुह वे अञ्जनी-कुमारके॥

(२)

अशरण-शरण चरण जो अरुण-वर्ण,
जिनकी कृपासे हैं हरित मन जनके।
'पद्म-पद' जिनके अजेय-शक्तिसे हैं पूर्ण,
देते जो अभय-दान मग्न पड़े जनके॥
अमल-कमल भी विमुग्ध जिनपै हैं हुए
पूजते जिन्हें हैं सदा भक्त त्रिभुवनके।
मेरे मन-मानसमें नित्य ही विकास करें,
सुन्दर-पदाम्बुज वे मारुत-सुवनके॥

(३)

जिन चरणोंकी द्युति हरती त्रिलोक-तम भासक प्रचण्ड हैं जो भक्त जन-भयके।
रामानुज प्राण हित धाये जो पवन-तुल्य, सपदि विनाशक हैं जो संताप त्रयके॥
ऋषि-मुनि-सेवित हैं वन्दनीय बार-बार विकराल काल हैं जो अघके अनयके।
मेरे लोचनोंमें नित्य करते निवास रहें, चरण-कमल वे ही पवनतनयके॥

—श्यामसुन्दर सारस्वत दत्त, कविरत्न

* 'हनुमत्-नख-शिख-वर्णन' मान कविकी सुन्दर रचना है पर अमुद्रित है। पण्डित गङ्गाके ऊपर स्थित मिरजापुरके श्रीमदनमोहन कायस्थने संवत् १८८२ वि० में इसकी प्रतिलिपि की थी।

श्रीहनुमानका भाव-विग्रह

श्रीहनुमानजीके स्वभाव, गुण, पराक्रम आदि उनके भाव-विग्रहके मूल आधार हैं। इस विग्रहको समझ लेनेपर उनके सम्पूर्ण शब्दाङ्कन सहज-सुलभ हो जाता है तथा उसके हृदयंगम करनेमें बड़ी सुविधा होती है। उनका भाव-विग्रह श्रीरामके माधुर्यसे अनुप्राणित होकर जगत्‌के कल्याणके लिये निरन्तर प्रवाहित है। इस भाव-विग्रहके गठनमें भगवान्‌के प्रति उनकी अनन्य प्रीति एवं निष्काम सेवा-भावना—आराध्यनिष्ठाका विशेष योगदान है।

भगवान् श्रीरामने परोपकारशीलता, परदुःखकातरता, दयालुता और बुद्धिमत्ताको सज्जनोंका स्वाभाविक गुण कहा है—

परोपकारशीलत्वं परदुःखासहिष्णुता।
दयापरत्वं दाक्षिण्यं सतां स्वाभाविका गुणाः॥
([illegible] ४१)

श्रीहनुमानजीकी प्रवृत्ति समस्त गुणोंसे ओतप्रोत है। उनकी स्वतः बड़ी विशेषता है—भगवान् श्रीरामका प्रिय सेवक होना—

वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा॥
(कूर्मपुराण, पूर्व० २१। १५)

कवियशस्वी कम्बनने 'कम्ब-रामायण'के किष्किन्धा-काण्डके दूसरे अध्याय (हनुमत्-पटल)में उनकी प्रीति और सेवा-भावनाका बड़ा ही सजीव चित्रण किया है कि 'हनुमानजीने सुग्रीवसे कहा कि मेरे पिताने मुझसे कहा था कि तुम इस धरतीके सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माकी भी सृष्टि करनेवाले भगवान् विष्णु (श्रीराम)की सेवा करोगे। वह समय ही उपयुक्त लगता है। जब समस्त लोक विपत्तिग्रस्त हो जायँगे, तब भगवान् अवतार लेंगे। उन्हें देखते ही तुम्हारे मनमें उनके प्रति प्रेम (भक्ति-भाव) उत्पन्न होगा यही उन्हें पहचाननेका प्रमाण होगा। हे स्वामी (सुग्रीव)! इन वीर (श्रीराम)को देखते ही मुझे ऐसा लगता है कि मेरी अस्थियाँ भी (प्रेम उमड़नेसे) गल रहीं; इस कारण उनका स्वरूप भी मेरी पहचानमें नहीं आया।'

भगवान् शङ्कर भगवती पार्वतीसे कहते हैं—'हनुमानजीके समान न तो कोई सौभाग्यशाली है, न श्रीरामके चरणोंका प्रेमी है। उनकी प्रीति-सेवाकी स्वयं श्रीरामने बार-बार सराहना की है।'

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥
(रामचरितमानस ७। ५१। ५-

'भावार्थ-रामायण'में सन्त शिरोमणि एकनाथ महाराजका कथन है कि महावीर हनुमानजी बुद्धिके सागर हैं, भक्ति (भाव)के महान् मेरुपर्वत हैं, आज्ञा-पालनमें अग्रगण्य हैं—

जो बुद्धी चा सागरु। भावार्था चा मेरु।
आज्ञेचा धरी किंकरु। महावीर हनुमंत॥
(सुं० ४८

महाराजकी उक्ति है कि 'वे भक्तिसुखके सागर, भजन-पद्धतिके मुकुट—महामहिम आचार्य हैं, निष्ठामें सुमेरु-पर्वतके समान अटल हैं और धैर्यके प्रतीक हैं—

जो भक्ति सुखाचा सागरु। भजनधर्मीचा मुकुटु।
निश्चयाचा महामेरु। धैर्य निर्धैर्य स्पर्धेना॥
(भावार्थरामायण, सुं० ५८)

बलवान्, विवेकी, भक्ति-वैराग्य सम्पन्न एवं सर्वार्थ-साधक हनुमानजीने श्रीरामको अपने प्रेम और सेवासे वशमें किया—

बळवंत विवेकवंत। भक्तिवैराग्यज्ञानवंत।
सर्वार्थी साधक हनुमंत। श्रीरघुनाथ तुष्ट॥
(भावार्थरामायण, सुं० ५१)

गोस्वामी तुलसीदासजीने लोगोंको सावधान किया है कि 'आप ज्ञानी, गुणवान, बलवान् और सेवामें सजग हनुमानजीके समान चतुर स्वामीको हृदयमें बसाओ।'

ग्यान-गुनवान-बलवान-सेवा-सावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो॥
(हनुमानबाहुक ८)

श्रीहनुमानने श्रीराम-कार्यके सम्पादनके लिये ही अवतार-शरीर धारण किया है। जाम्बवान्‌ने उनसे कहा था—

'रामकाज लगि तव अवतारा।'
(रामचरितमानस ४। ३०। ३)

जब सीताका पता लगाकर लौटनेपर हनुमानजीसे श्रीरामने कहा कि 'हनुमन्! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओंसे

भी होना कठिन है । मैं नहीं जानता कि इसके बदलेमें तुम्हारा क्या उपकार करूँ । लो, मैं तुम्हें अभी अपना सर्वस्व सौंपता हूँ ।' ऐसा कहकर उन्होंने वानरश्रेष्ठ हनुमानजीका गाढ़ आलिङ्गन किया और कहा—'संसारमें मुझ परमात्माका आलिङ्गन मिलना दुर्लभ है । हे वानरश्रेष्ठ ! तुम मेरे परम भक्त और प्रिय हो ।'

> हनुमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम् ।
> उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः ॥
> इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते ।
> इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम् ॥
> परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः ।
> भक्तस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ॥
> (अध्यात्मरा० ५ । ५ । ६०, ६१)

श्रीहनुमानका पराक्रम अनुपम कहा गया है । श्रीरामने अगस्त्यजीसे कहा कि 'रावण और वालीके इस बलकी कहीं तुलना नहीं है परंतु मेरा विचार है कि इन दोनोंका बल भी हनुमानजीके बलकी बराबरी नहीं कर सकता । युद्धमें हनुमानजीके जो पराक्रम देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कर्म काल, इन्द्र, भगवान् विष्णु और कुबेरके भी नहीं सुने जाते' —

> अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च ।
> न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥
> न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
> कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥
> (वा० रा० ७ । ३५ । २, ८)

श्रीहनुमानके पराक्रमका सजीव परिचय उनके समुद्र लङ्घन एवं द्रोणाचल उखाड़कर लाने और ले जाकर रखनेके कर्ममें विशेषरूपसे परिलक्षित होता है वैसे तो वे पराक्रमके अविकल-अखण्ड प्रतीक ही हैं । उनका पराक्रम प्रभु श्रीरामकी कृपासे सम्पन्न है । हनुमानजीकी उक्ति है—

> शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः ।
> यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव ॥
> (हनुमन्नाटक ६ । ४४)

महाकवि कालिदासने हनुमानजीके समुद्र लाँघनेके सम्बन्धमें बड़ी सुन्दर उक्ति प्रस्तुत की है । वे कहते हैं—'हनुमानजी उसी तरह सागर लाँघ गये, जिस तरह वीतराग पुरुष संसार सागरको पार कर जाता है'—

> मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः ॥
> (रघुवंश १२ । ६०)

लङ्काके समरमें श्रीलक्ष्मणके मूर्च्छित होनेपर हनुमानजीने श्रीरामकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हुए कहा कि 'आपकी आज्ञा हो तो मैं पातालसे अमृत-रस ले आऊँ, चन्द्रमाको निचोड़ कर अमृत प्रस्तुत कर दूँ, प्रचण्ड किरणवाले सूर्यको रोक दूँ, सदा पाशयुक्त यमराजके पाशको चूर-चूर कर दूँ'—

> पातालतः किमु सुधारसमानयामि
> निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि ।
> उद्यन्तमर्ककिरणं ननु वारयामि
> कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि ॥
> (हनुमन्नाटक १३ । १९)

भगवान् श्रीरामने उपर्युक्त कथनसे अपने मनमें विचार किया कि 'जो जो बात महावीरने कही है, उसे ये अभी करके दिखा सकते हैं पर ऐसा करनेसे असमयमें ही प्रलय हो जायगा' —

> यद्यदुक्तमनेन महावीरेण तत्तदिदानीमेव कृत्वा दर्शयति । परन्तु तत्करणादकालेऽपि महाप्रलयः स्यात् ।
> (हनुमन्नाटक अङ्क १३ । १९ के उपरान्त)

अब प्रभु श्रीरामने उनके बलका आश्रय लिया और कहा—'पवनकुमार हनुमान ! जिस प्रकार भी जनकनन्दिनी सीता प्राप्त हो सके, तुम अपने महान् बल-विक्रमसे वैसा ही प्रयत्न करो'—

> अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं
> हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः ।
> पवनसुत यथाधिगम्यते सा
> जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ॥
> (वा० रा० ४ । ४४ । १७)

गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने 'कवितावली' ग्रन्थमें श्रीहनुमानके सागर लाँघनेके समय उनके पराक्रमके रूपका वर्णन करते हुए कहा है कि 'वे क्षणमात्रमें ही समुद्रको पार कर ऐसे कूद पड़े, मानो श्याम घन हो ।' उनकी गतिकी व्यापकताका वर्णन है—

> नर [illegible] काम पै [illegible] मनहीं [illegible]
> [illegible] है [illegible] ।
> [illegible] हनुमन्त गिरि
> [illegible] है [illegible] ॥

'मद्दा' भति गति की चपलता कहाँ लौं कहौं,
भालु-कपि-कटक मधमे जधि ज्वे रहै ।
एक जिन बार-पार लाग्यो पारावार के,
गगन मगन कपन घनुष पेसो ह्वै रह्यौ ॥
(काव्यनिर्णयमें)

गोस्वामी तुलसीदासजीने उनके लिये महाभारत-युद्धके प्रथम सेनापति भीष्मकी उक्ति प्रस्तुत की है कि 'तीनों कालमें, तीनों लोकमें हनुमानजीके समान कोई वीर ही नहीं हुआ'—

भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो ॥
(हनुमानबाहुक ७)

श्रीहनुमानजीके भाव विग्रहके अन्तर्गत उनके स्मरण (स्मृति), प्रण, रूप, वेग, गर्जन, हाँक, रोष आदि उपाङ्गके रूपमें स्वीकार किये जाते हैं। इनके द्वारा उनके भावोंका सुन्दर और अत्यन्त व्यापक परिचय मिलता है। वे श्रीरामकी पादाम्बुजस्मृतिमें निरन्तर तत्पर रहते हैं—उनकी स्मृतिमें श्रीरामके चरणकमल विराजमान रहते हैं। श्रीहनुमानके ध्यानमें इसका स्पष्ट निरूपण है—

श्रीमद्रामपदाम्बुजस्मृतिरतं ध्यायामि वातात्मजम्॥
(मन्त्रमहोदधि १३ । ८)

श्रीहनुमानजीकी स्वोक्ति है कि 'योगीजन अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर जिनका ध्यान किया करते हैं, देवता और असुर भी अपना मुकुट-मण्डित मस्तक झुकाकर जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं तथा बड़े-बड़े लोकेश्वर जिनकी पूजा करते हैं, वे अयोध्याके अधिनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं। मैं उनका स्मरण करके जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य होगा'—

मत्स्वामी हृदये नित्यं ध्येयो यो योगिभिर्मुहुः।
य देवाः सासुराः सर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः ॥
राम श्रीमानयोध्यायाः पतिर्लोकैश्च पूजितः ।
तत्स्मृत्वा यद् ब्रुवे वाक्यं तद् वै सत्यं भविष्यति ॥
(पद्म० पाताल ३३ । ४५ ४६)

[illegible] उदाहरण प्रस्तुत करते हुए [illegible] संस्कृत साहित्यके महारथी विद्वानोंमें महाकवि [illegible] जगन्नाथकी अमृतमयी वाणीकी उद्घोषणा है कि 'अगाध और चारों ओर भरे महासमुद्रको देखकर हनुमानजी भगवान् श्रीरामके हृदयका स्मरण हो आया'—

अगाधं परितः पूर्णमालोक्य स महार्णवम्।
हृदयं रामभक्तस्य सस्मार पवनात्मजः ॥
(रसगङ्गाधर)

श्रीहनुमानजीका प्रण वज्रके समान अमोघ है। वे भगवद्भक्तपरायण हैं। उन्होंने रावणसे कहा कि मैं प्रण करके कहता हूँ कि जो श्रीरामके विमुख है, उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता'—

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
(रामचरितमानस ५ । २२ । १½)

श्रीहनुमानजीका रूप प्रभु श्रीरामकी शरणागतवत्सलताका प्रतीक है। प्रभु शरणागतको अभय देते हैं। विभीषणकी शरणागतिके समय प्रभुने सुग्रीवसे कहा था कि 'शरणागतके भयका हरण करना मेरा प्रण है। प्रभुके वचन सुनकर हनुमानजी हर्षमें भर गये'—

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥
(मानस ५ । ४३ । ५)

प्रभुका ध्यान करना—पहचान लेना उनके रूपका उद्गम है। उस समय हनुमानजीके हृदयमें स्थित रूपके सुखका वर्णन करना भगवान् शंकरके लिये भी कठिन हो जाता है। किष्किन्धामें श्रीरामके दर्शनके समयका प्रसङ्ग है—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
(मानस ४ । १ । ३-४½)

उनका वेग मारुतके समान है। श्रुति उपनिषदोंको स्वप्नमें रामरक्षास्तोत्रका आदेश देनेवाले भगवान् [illegible] (श्रीहनुमत्स्तुतिमें) शब्द है—

'मनोजवं मारुततुल्यवेगम्'
(११)

उहें महाराज भोज [illegible] वेग (गरुड़के समान [illegible]) तथा [illegible] कहा है—

[illegible] प्रथमं नमामि ॥
[illegible]

गर्जनकी
तथा

कहा कि 'आपके प्रभावसे हमलोग अपने शत्रुओंको जीत लेंगे।' हनुमानजीने उनको आश्वासन दिया कि 'जब तुम शक्ति और बाणके आघातसे व्याकुल हुई शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश कर सिंहनाद करोगे, तब मैं अपनी गर्जनासे उस सिंहनादको और अधिक बढ़ा दूँगा। इसके अतिरिक्त अर्जुनकी ध्वजापर बैठकर मैं ऐसी भीषण गर्जना करूँगा, जो शत्रुओंके प्राणोंको हरनेवाली होगी। इससे तुमलोग सुगमतासे उनका नाश कर सकोगे'—

चमूं विगाह्य शत्रूणां शरशक्तिसमाकुलाम्।
यदा सिंहरवं वीर करिष्यसि महाबल॥
तदाहं बृंहयिष्यामि स्वरवेण रवं तव।
विजयस्य ध्वजस्थश्च नादान् मोक्ष्यामि दारुणान्॥
शत्रूणां ये प्राणहराः सुखं येन हनिष्यथ।
(महाभारत, वन० १५१। १६—१८)

पार्थकी रक्षामें कपिराज हनुमानके गर्जनका उल्लेख करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है कि ''उनके गर्जनको सुनकर दुर्योधनकी सेनामें घबराहट उत्पन्न हो गयी। द्रोणाचार्य और भीष्मपितामहने कहा कि 'ये महाबली पवनकुमार हैं, जिनका बल वीररस-समुद्रका जल है।' इनके स्वाभाविक ही बालकोंके खेलके समान धरतीसे सूर्यतक उछलनेसे आकाश-मण्डल एक पगसे भी कम हो गया था। सब योद्धागण नतमस्तक हो हाथ जोड़कर देखते हैं, हनुमानजीके दर्शनसे उन्हें संसारमें जीनेका फल मिल गया, अर्थात् हनुमानजीका गर्जन उनके दर्शनका कारण बना।''

भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज
गाज्यो सुनि कुरुराज-दल हलबल भो।
कह्यो द्रोन-भीषम समीरसुत महाबीर,
बीररस-बारि-निधि जाको बल जल भो॥
बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लागि,
फलँग फलाँगहू तें घाटि नभतल भो।
नाइ-नाइ माथ, जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं,
हनुमान देखे जग जीवन को फल भो॥
(हनुमानबाहुक ५)

'जिस प्राणीके हृदयमें हनुमानजीकी हाँकका भरोसा होता है, उसके दिन अच्छी तरह व्यतीत होते हैं। उन्मत्त वीरोंमें शिरोमणि रावणके साहसरूपी शैल-शिखरको विदीर्ण करनेके लिये वज्रकी टाँकी हैं, उन हनुमानजीकी भयंकर हाँकको सुनकर दिक्पाल दाँतोंसे पृथ्वीको दबाकर चिग्घाड़ने लगते हैं, कच्छप-शेष भयसे सिकुड़ जाते हैं, शिवजी संदेहमें पड़ जाते हैं, पृथ्वी और सुमेरु विचलित हो जाते हैं, सातों समुद्र उछलने लगते हैं, ब्रह्माजी व्याकुल-बधिर होकर दिशाओं-विदिशाओंको झाँकने लगते हैं, घर-घरमें निशाचरोंकी स्त्रियोंके गर्भपात होने लगते हैं— [illegible] प्रहार हो जाता है'—

मत्त भट-मुकुट, दसकंठ-साहस-सइल-
सृंग बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठु,
सेषु संकुचित, संकित पिनाकी॥
चलत महि-मेरु, उच्छलत सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि-बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥
(कवितावली, लंका० ४४)

श्रीहनुमानका रोष शत्रुओंका अमङ्गल करता है। 'हनुमानजीने रावणका गर्व विध्वंस किया। उन्होंने रोषमें भरकर रावणके हाथसे बलपूर्वक स्रुवा छीन लिया और उसीसे उसपर भीषणतासे आघात किया'—

स्रुवमाक्षिप्य हस्ताच्च रावणस्य महामृधे।
तेनैव समभ्याघ्नद् हनूमान् प्लवगाग्रणीः॥
(अ० रा० ६। १। २१)

श्रीहनुमानजी समस्त प्राणियोंमें अपने प्रभु श्रीरामको व्याप्त देखते हैं। परमार्थी भक्त—सेवक हैं। श्रीरामजीका विजय संदेश सुनानेपर सीताजीने उनको आशीर्वाद दिया था—

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥
(मानस ६। १०७)

हनुमानजीके बल, बुद्धि, पुण्य, विज्ञान और आचार— सब कुछ भगवान् श्रीरामकी दास्यभक्तिमें समर्पित हैं। उनकी [illegible] उनको ही [illegible] है। (क्रमशः)

श्रीहनुमानजीके आयुध एवं वाहन

श्रीहनुमानजी अपने प्रभु श्रीरामके चरणोंमें पूर्ण समर्पित आप्तकाम निष्काम सेवक हैं। उनका सर्वस्व प्रभुकी सेवाका उपकरण है। उनके सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्ग, रद, मुष्टि, नख, पूँछ, गदा एवं गिरि, पादप आदि प्रभुके सेवा-मार्गमें अवरोध उत्पन्न करनेवाले असुरोंके नाशके लिये दिव्य आयुध हैं।

श्रीहनुमानजी वज्राङ्ग हैं—सभी आयुधोंसे अवध्य हैं। 'वरुणदेवताने उन्हें अमरत्व प्रदान किया था, यमने अपने दण्डसे अभयदान दिया था, कुबेरने गदाघातसे अप्रभावित होनेका वर दिया था और भगवान् शंकरने शूल तथा पाशुपत आदि अस्त्रोंसे अभय होनेका वरदान दिया था। प्रजापतिने कहा था कि ये ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड आदिसे अवध्य होंगे। अन्य शस्त्रोंके कर्ता विश्वकर्माने उन्हें समस्त आयुधोंसे अवध्य होनेकी बात कही थी'—

> अमरत्वं च वरुण स्त्वद्दण्डादभयं यमः।
> निष्कम्पतां गदाघाते स्वायुधेषु च वित्तपः॥
> शूलपाशुपतादिभ्योऽप्यभयं भगवान् भवः।
> ब्रह्मास्त्रब्रह्मदण्डाद्यैरवध्यत्वं प्रजापतिः॥
> सर्वायुधप्रतीघातं विश्वकर्माप्यकल्पयत्।
>
> (रामायणमञ्जरी, उत्तरकाण्ड ७१०-११)

श्रीहनुमानजी युद्धवीर हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीका कथन है कि 'शिव, स्वामिकार्तिक, परशुराम, दैत्य और देवगणवृन्द—सबकी युद्धरूपी नदीके पार जानेमें वे समर्थ एवं योग्य योद्धा हैं। वेदरूपी वन्दीजन उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि आप सत्यप्रतिज्ञ एवं चतुर योद्धा, बड़े कीर्तिमान् और यशस्वी हैं, जिनके गुणोंकी कथाको रघुनाथजीने श्रीमुखसे स्वयं कहा तथा जिनके अतिशय पराक्रमसे अपार जलसे भरा हुआ अपार समुद्र सूख गया। उन सुन्दर राजदूत (पवनकुमार)के बिना राक्षसोंके दलका नाश करनेवाला दूसरा कौन है। अर्थात् दूसरा कोई है ही नहीं।

> पचमुख छमुख-भृगुमुख्य भट असुर सुर
> सर्व-सरि-समर समत्थ सूरो।
> बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली
> बेद बंदी बदत पैजपूरो।
> जासु गुनगाथ रघुनाथ कह जासु बल
> बिपुल जल भरित जग जलधि झूरो।
> दुवन दल-दमन को कौन तुलसीस है,
> पवन को पूत रजपूत रूरो॥
>
> (हनुमानबाहुक १)

षड्भुज हनुमानको दस आयुधोंसे समलंकृत कहा गया है—

> वज्रं त्रिशूलं खट्वाङ्गं पाशमङ्कुशपर्वतम्।
> स्तम्भमुष्टिगदावृक्षं दक्षभिर्मुनिपुंगव।
> एतान्यायुधजालानि धारयन्तं यजामहे॥
>
> [भविष्यमहापुराण (हनुमत्कल्प) ११।८]

वज्र, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, पाश, अङ्कुश, पर्वत, स्तम्भ, मुष्टि, गदा और वृक्ष (की डाली) ही उनके दस आयुधोंके रूपमें परिगणित हैं।

श्रीहनुमानजीका बायाँ हाथ गदासे युक्त कहा गया है। गदा उनके हाथमें रहनेवाला एक प्रमुख आयुध है—

> वामहस्तगदायुक्तम्।
>
> (सत्योपाख्यान, पूर्वार्ध, अध्याय ३८, श्लो० ८५)

'श्रीलक्ष्मण और रावणके युद्धमें लक्ष्मणको पराजित होते देख हनुमानजीने गदाका प्रयोग किया था। वे हाथमें गदा लेकर दौड़ पड़े थे। उस समय वे ऐसे लगते थे मानो प्रलयकालमें जगत्के संहारमें तत्पर कुपित रुद्र हों। रावणके रथको उन्होंने गदासे भग्न कर दिया और उसके बाद वह गिरि पाषाणकी वृष्टि की।'

> हनुमत धाया तेहि समे, कर गदा गही निरवाण।
> प्रलय समे जम रुद्र कोपे, तथा लगत ता प्रान॥
> ते गदा मारी भग कीधो, रावण नो रथ जोय।
> पछे तव गिरि-पाषाण नी वृष्टि करी जेम मेह॥
>
> (गिरिधर रामायण, युद्धकाण्ड १६।११)

स्कन्दपुराणमें हनुमानजीको वज्रायुध धारण करनेवाला कहकर उनका नमस्कार किया गया है—

> नमः श्रीरामभक्ताय भक्तविघ्नविनाशिने।
> नमो वज्रधुरीणाय वज्रधारिणे॥
>
> (स्कन्दपु० ब्रह्मखण्ड धर्मारण्य० १०।१)

उनके हाथमें वज्र सदा विराजमान रहता है—

'हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै ।' (हनुमानचालीसा)

गिरि, नख और दाँत उनके आयुधोंमें परिगणित हैं। उनकी 'करालशैलशस्त्रधारी' और 'द्रुमशस्त्रधारी'के रूपमें स्तुति की गयी है—

करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः ।

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, हनुमत्स्तुतिप्रकरण २८ । ११)

पर्वतका शिखर उठाकर राक्षसोंकी सेनाको भगाकर महाबलवान् हनुमान्ने धूम्राक्षपर आक्रमण किया था—

विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनूमान् मारुतात्मजः ।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥

(वा० रा० ६ । ५२ । ११)

उसी गिरिशिखरसे उन्होंने धूम्राक्षका वध किया था—

हनूमान् गिरिशृङ्गेण धूम्राक्षमवधीद्रिपुम् ।

(अग्निपुराण १० । ८)

नारदपुराणके पूर्वभागके तृतीयपादके ७८वें अध्यायके ४४वें श्लोकमें उन्हें 'करस्थशैलशस्त्राय' कहा गया है। लंकाके दुर्गका विध्वंस करते समय हनुमानजीने क्रोधपूर्वक मेघनादपर पर्वतसे आक्रमण किया था—

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा ॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा ॥

(रामचरितमानस ६ । ४२ । १)

रावण और विभीषणके युद्धमें भी उन्होंने पर्वतका उपयोग किया था—

देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी ॥

(रामचरितमानस ६ । ९५ । ३)

नखायुध और दन्तायुधरूपमें भी उनकी स्तुति की गयी है। वे नखों और दाँतोंसे शस्त्रका काम लेते हैं—

नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च ।
विहंगाय शर्वाय वज्रदेहाय ते नमः ॥

(नारदपुराण, पू०, तृतीय० ७८ । ५१)

हनुमत्सहस्रनामस्तोत्रके ९१वें श्लोकमें उन्हें 'नखयुद्धविशारद' कहा गया है। उनके नखोंकी उपमा वज्रसे दी गयी है—

दल बिसाल भुजदंड नख बज्र बज्रतन ॥

(हनुमानबाहुक ५)

अशोकवाटिका उजाड़ते समय राक्षसोंके संहारके लिये उन्होंने वृक्षको आयुध बनाया था। हनुमानजीने एक विशाल शाल वृक्ष उखाड़कर उसे घुमाना आरम्भ किया—

शालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् ॥

(वा० रा० ५ । ४८ । १२)

अक्षकुमारको आता देखकर हनुमानजीने हाथमें वृक्ष ले लिया और उसको मारकर घोर नाद किया—

आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ॥

(मानस ५ । १८ । ४)

उन्होंने लंकामें युद्ध छिड़नेपर महान् वेगसे एक वृक्षको उखाड़कर अकम्पनके सिरपर प्रहार किया—

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥

(वा० रा० ६ । ५६ । २०)

वे दाँतसे भी शस्त्रका काम लेते हैं। नारदपुराणके पूर्व खण्डके तृतीयपादके ७८वें अध्यायके ४३वें श्लोकमें 'दन्तायुधधराय' कहकर उन्हें नमस्कार किया गया है। महाकवि चंद बरदाईने 'पृथ्वीराजरासो'में उनके दन्तयुद्धका अत्यन्त सजीव वर्णन किया है—"हनुमानजीने लंकामें भ्रमण करते हुए सीताजीकी खोज लिया और मनमें श्रीरामका चिन्तन कर बड़े क्रोधसे वन उपवनको नष्ट कर दिया। उन्होंने दौवारपर चढ़कर दन्तयुद्धद्वारा अक्षकुमार आदि दनुजवीरोंका संहार कर दिया। जब शेष वीरोंने मेघनादको सूचना दी, तब उसने आकर उनको पाशमें बाँध दिया और उनकी पूँछमें तृण लपेटकर कहा कि पूँछद्वारा अन्त निकट है—ऐसा कहकर उसने वस्त्र लिपटी हुई उनकी पूँछमें आग प्रज्वलित कर दी, इस तरह उसने सुवर्णमयी लंकाको ही जलाकर भीरद कर दिया।"—

गयौ लंक हनुमंत, भ्रमत सुधि सीता पाइय।
बन-उपबन सघरिय, धरे मन राम सुहाइय ॥
चढ़ि चढ़्यौ प्राकार, दसन दल्लद दनु भक्खिय।
अछै कुमारन हनिय, नेरि इन्द्रजित रक्खिय ॥

नििखि पास राम दत बध्यौ मंदि सु मदन चलत भरौ।
लगाय पुच्छ लग्ग करिय कनक पुर किन्नी क्षरौ ॥

(पृथ्वीराजरासो २ । ११)

मुष्टिका भी ब्रह्मास्त्रके रूपमें उपयोग करते दिखलायी पड़ते हैं। लंकाके युद्धमें उन्होंने कुम्भकर्णपर मुष्टिका प्रहार किया था—

रत्नवल्लीकी स्थापना की। वह वृक्ष वहाँ सदा विराजमान है। उस वृक्षके नामपर रत्नवल्लीपुर नगर स्थित है, जहाँ प्रतिदिन श्रीरामपूजक महात्मा हनुमानजी संगीत-कुशल आर्ष्टिषेणके साथ दर्शनके लिये आया करते हैं'—

> सन्तोषहर्षबिन्दुश्च चक्षुषो निपपात ह।
> तस्माद् वृक्षः समुद्भूतस्तुलसीति प्रकथ्यते॥
> रत्नवल्लीति तन्नाम चकार मधुसूदनः।
> अत्र किम्पुरुषे खण्डे हेमकूटगिरेरध॥
> तस्यां च रत्नवल्ल्याः को स्थापनां स चकार ह।
> रत्नवल्लीमहावृक्षः सदात्रैव विराजते॥
> तन्नाम्ना प्रथितमभूद्रत्नवल्लीपुरं स्थितम्।
> अत्र नित्यं हि हनुमानार्ष्टिषेणेन रागिणा॥
> दर्शनार्थं समायाति महात्मा रामपूजकः॥
> (२६। २२-२९)

किम्पुरुषवर्षमें चराचर जगत्‌के शासक दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और भगवती सीता उनके साथ सुशोभित रहती हैं। हनुमानजी उन आदि पुरुषकी स्तुतिमें तत्पर रहते हैं। वे उनका गुण गाते तथा भक्तिपूर्वक भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं—

> एवं किम्पुरुषे वर्षे सन्यसश्च रघूत्तमम्।
> रामं राजीवपत्राक्षं हनुमान् वानरोत्तमः॥
> स्तौति गायति भक्त्या च सम्पूजयति सर्वदा।
> (देवीभागवत ८। १ । १ २)

महात्मा सनातन गोस्वामीने अपने 'बृहद्भागवतामृत'ग्रन्थमें श्रीप्रह्लादकी प्रेरणासे श्रीरामकी उपासनामें तत्पर हनुमानजीके दर्शनके लिये देवर्षि नारदके किम्पुरुषवर्षमें जानेका उल्लेख किया है। प्रह्लादजीने नारदजीसे कहा कि 'यदि आप भगवान्‌के कृपापात्रका दर्शन करना चाहते हैं तो किम्पुरुषवर्षमें जाकर हनुमानजीका दर्शन कीजिये। मैंने हनुमानजीकी जो महिमा वर्णित की है, उससे भी अधिक आप स्वयं जानते हैं'—

> मदुक्तं च माहात्म्यं तस्य वेत्सि परं भवान्।
> गत्वा किम्पुरुषं वर्षं दृष्ट्वा तं मोदमाप्नुहि॥
> (१। ४। ५३)

श्रीनारदने आकाशमार्गसे किम्पुरुषवर्षमें पदार्पण किया। उन्होंने हनुमानजीका साक्षात् दर्शन किया। वे गायत्री भाँति भगवान् श्रीरामके मूर्तिस्वरूपका पूजन वनमें पैदा होनेवाली सामग्रियोंसे कर रहे थे, वह आनन्दसे गन्धर्वोंके मुखारविन्दसे रामरसायनरूप रामायण सुन रहे थे और कम्पित पुलकित होकर प्रेमाश्रु बहा रहे थे। वे अपनेद्वारा निर्मित विचित्र दिव्य गद्य-पद्यमय स्तोत्रोंद्वारा स्तुति कर रहे थे तथा दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे—

> तत्रापश्यद्धनूमन्तं रामचन्द्रपदाब्जयोः।
> साक्षाद्विराधनरतं विचित्रैर्वन्यवस्तुभिः॥
> गन्धर्वादिभिरानन्दाद् गीयमानं रमायनम्।
> रामायणं च शृण्वन्तं कम्पाश्रुपुलकान्वितम्॥
> विचित्रैर्दिव्यदिव्यैश्च गद्यपद्यैः स्वनिर्मितैः।
> स्तुतिमन्यैश्च कुर्वाणं दण्डवत् प्रणतीरपि॥
> (बृहद्भागवतामृत १। ४। ५५-५७)

श्रीहनुमानने नारदजीको प्रणाम किया और उनको श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करानेके लिये मन्दिरमें ले गये—

> उत्थाय स्वस्थतां देवर्षिं प्रणम्य श्रीहनूमता।
> रघुवीरप्रणामाय समानीतस्तदालयम्॥
> (बृहद्भागवतामृत १। ४। ६१)

हनुमानजीने देवर्षि नारदसे कहा कि 'अयोध्यापुरंदर श्रीराम सब राजाओंमें चक्रवर्ती हैं। उनकी श्रीचरण-लक्ष्मण सदा सेवा करते हैं। वे भरतजीके ज्येष्ठ भ्राता हैं, सुग्रीवके प्रिय हैं। विभीषण उनके चरणोंमें शरणागत हैं। वे दशरथनन्दन हैं, कौसल्याजीके सुपुत्र हैं। उनके कर-कमलमें सदा धनुष शोभित है। मैं यहाँ (किम्पुरुषवर्षमें) उन्हीं श्रीराघवेन्द्रके अर्चा विग्रहका साक्षात्‌की भाँति दर्शन करता हुआ तथा उनकी चरितामृत-कथाको सुनता हुआ निवास करता हूँ'—

> तस्मादस्य वसाम्यत्र तादृग्वपुषि सदा।
> पश्यन् साक्षात् स एवेति पिबंश्चरितामृतम्॥
> (बृहद्भागवतामृत १। ४। १०१)

हिमालयपर तपस्याके लिये हनुमानजीके गमनका उल्लेख अध्यात्मरामायणमें मिलता है, जिससे किम्पुरुषवर्षमें उनके निवास करनेका प्रसङ्ग स्पष्ट हो जाता है। हनुमानजीने श्रीरामसे कहा था कि 'आपका नाम-स्मरण करते-करते मेरा चित्त तृप्त नहीं होता। मैं आपका नाम-स्मरण करता हुआ निरन्तर पृथ्वीपर रहूँ। मुझे वर दीजिये कि जबतक संसारमें आपका नाम रहे, तबतक मेरा शरीर भी रहे।' श्रीरामने कहा कि 'ऐसा ही हो। तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। कल्पका अन्त होनेपर तुम निस्संदेह मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे।'

> रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्।
> कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः।
> (६। १६। १४-१५)

'हे महामति श्रीहनुमान नेत्रोंमें आनन्दाश्रु ...

सीतान्वेषी हनु

उस परम रूपवती अप्सरा पुञ्जिकस्थलाने ऋषिके शापसे कपियोनिमें वानरराज महामनस्वी कुञ्जरकी पुत्री[1] के रूपमें जन्म लिया। वह प्रख्यात अनिन्द्य सुन्दरी थी। उसके रूपकी समानता करनेवाली धरतीपर अन्य कोई स्त्री नहीं थी। उस त्रैलोक्य विख्यात सुन्दरी कुञ्जर पुत्रीका नाम था—'अञ्जना'।

लावण्यवती अञ्जनाका विवाह वीरवर वानरराज केसरीसे हुआ। कपिराज केसरी काञ्चनगिरि (सुमेर पर रहते थे। समस्त सुविधाओंसे सम्पन्न इसी सु पर्वतपर अञ्जना अपने पतिदेवके साथ सुखपूर्वक र लगीं। वीरवर केसरी अपनी सुन्दरी पत्नी अञ्ज अत्यधिक प्यार करते और अञ्जना सदा अपने प्राण पतिदेवमें ही अनुरक्त रहती थीं। इस प्रकार सुखपू बहुत दिन बीत गये, पर उनके कोई संतान नहीं हुई।

श्रीहनुमानकी उत्पत्तिके विभिन्न हेतु

श्रीहनुमानजीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें विभिन्न कथाएँ उपलब्ध होती हैं। संक्षेपमें वे इस प्रकार हैं—

अनन्त करुणा एवं प्रेमकी मूर्ति श्रीभगवानकी लीला मधुर, मनोहर एवं अद्भुत होती है। उसके स्मरण एवं श्रवणसे मुनिगण मुग्ध हो जाते हैं। भक्तोंकी तो वह परम निधि ही होती है *किंतु वह लीला होती है—रहस्यमयी।* परम मङ्गलकारिणी भगवल्लीलाका रहस्य देवता एवं योगीन्द्र मुनीन्द्रगण भी नहीं जान पाते, वे आश्चर्यचकित होकर *मौन हो जाते हैं, फिर हम कामादि दोषोंसे ग्रस्त सांसारिक* मनुष्य उसे कैसे समझ सकते हैं। हाँ, उन करुणामय लीला-विहारीकी लीलाका गुण-गान हमारे लिये परम कल्याणकर है।[2]

देवताओं और दैत्योंमें अमृत वितरणके लिये परम-प्रभुने मोहिनी रूप धारण किया था, यह सुनकर कर्पूरगौर नीलकण्ठ बहुत चकित हुए। श्रीभगवान्‌का स्त्री-वेष कैसा था!—आप्तकाम भगवान् शंकरके मनमें अपने प्राणाराध्यके उस विशिष्ट रूप एवं विशिष्ट लीलाके दर्शन करनेकी कामना उदित हुई।

गङ्गाधर माता पार्वतीके साथ क्षीराब्धिके तटपर पहुँचे। उन्होंने स्तवन किया। लक्ष्मीपति प्रकट हुए। देवाधिदेव *महादेवने निवेदन किया—'प्रभो! मैंने आपके मत्स्यादि सभी* अवतार-स्वरूपोंका दर्शन किया था, किंतु अमृत वितरणके समय आपने परम लावण्यमयी स्त्रीका वेष धारण किया, उस अवतार स्वरूपके दर्शनसे मैं वञ्चित ही रह गया। कृपया मुझे उस रूपके भी दर्शन करा दें, जिसे देखकर देवता और दानव—सभी मोहित हो गये थे।'

'देवाधिदेव महादेव! आप योगियोंके उपास्य मदनका दहन करनेवाले हैं। आप स्त्री-अवतार देखकर करेंगे? आपके लिये उसका कोई महत्त्व नहीं।' ल पतिने हँसते हुए उत्तर दिया।

'पर प्रभो! मैं उक्त अवतार-स्वरूपके दर्शनसे वञ्चि *रहना नहीं चाहता।' पार्वतीश्वरने साग्रह निवेदन किया—* 'कृपया मुझे उस मोहिनी स्वरूपके भी दर्शन करा ही दें।'

'तथास्तु!' क्षीराब्धिशायी सस्मित उत्तर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। अब वहाँ न तो क्षीरोदधि था और न नव-नीरद-वपु, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी लक्ष्मीपति ही थे। वहाँ थे सर्वत्र मनोहर पर्वत एवं सुरम्य वन। माता पार्वतीसहित *भगवान् शंकर उस सुखद वन प्रान्तके मध्यमें थे।*

वनमें पूर्णतया वसन्त छाया था। वृक्षोंमें नये कोमल पत्ते निकल आये थे। सर्वत्र पुष्प खिले थे और उन *सुगन्धित सुमनोंपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे।* कोकिला कुहू-कुहू शब्द कर रही थीं। शीतल मन्द समीरमें कोमल टहनियाँ एवं पुष्प धीरे-धीरे झूम रहे थे। सर्वत्र ऋतुराजका साम्राज्य प्रसरित था एवं मादकता व्याप्त थी।

सहसा योगियोंके उपास्य त्रिनेत्रने कुछ दूरपर ह ओटमें देखा—एक अत्यन्त रूपवती स्त्री अपने करकमलों पर कन्दुक उछालती हुई रह-रहकर दीख जाती है।

कामारि अधीर होने लगे। जिस अनन्त मोहिनी सौन्दर्य सिन्धुके एक सीकरकी तुलना सृष्टिकी सम्पूर्ण सौन्दर्य-राशिसे सम्भव नहीं, वह सौन्दर्य-सिन्धु स्वयं मूर्त हो उच्छलित होता दीख जाय, तब क्या हो! उनके सम्मुख लावण्यमयी अप्सराओंका त्याग और काम-दहन

---

1. (क) वा० रा० ४। ६६। ८-९, (ख) गौतमकी पुत्री (शि० पु० शत० २०। ३)।
2. कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥ (मानस ७। १०३। ५)

कलियुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास। गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥ (मानस ७। १०३ क)

क्या गणना! भोलेनाथको अपनी भी सुध न रही। वे निर्निमेष दृष्टिसे कन्दुकद्वारा क्रीड़ा करती हुई मोहिनीको देख रहे थे।

सहसा पवनका झोंका आया और जैसे बिजली-सी कौंध गयी—अप्रतिम सौन्दर्यशालिनी मोहिनीका वस्त्र खिसका और वह नग्नप्राय हो गयी। लाजसे सिकुड़ी मोहिनी लताओंमें छिपनेका प्रयत्न करने लगी और चिताभस्म धारण करनेवाले योगिराज कामारिका अवशिष्ट धैर्य भी समाप्त हो गया। वे महामहिमामयी माता पार्वतीके सम्मुख ही लज्जा त्यागकर उन्मत्तकी तरह मोहिनीके पीछे दौड़े।

मोहिनीने योगीश्वर शंकरको अपनी ओर आते देखा तो मुस्कुराकर लताओंकी ओटमें अपने अङ्गोंको छिपानेका प्रयत्न करती हुई दूर भागने लगी। भूतभावन मोहिनीके पीछे दौड़ रहे थे और वह भागी जा रही थी। नीलकण्ठको अपनी स्थितिका अनुमान भी नहीं था। उन्होंने दौड़कर मोहिनीके करका स्पर्श कर लिया।

प्रज्वलित अग्निमें घृताहुति पड़ गयी, पर मोहिनी हाथ छुड़ाकर भागी। उसके स्पर्शसे उत्तेजित कामारि पूर्णतया बेसुध हो चुके थे। वनों, पर्वतों, ऋषियोंके आश्रमों एवं देवलोकमें भी भगवान् शंकर मोहिनीके पीछे-पीछे दौड़ लगा रहे थे और माता पार्वती, शिवगण, सुरगण एवं ऋषिगण—सभी आश्चर्य-चकित हो यह दृश्य देख रहे थे पर थे सभी मौन। असफल काम क्रोधके रूपमें परिणत हो जाता है और फिर प्रलयंकर शंकरके रोषानलकी आहुति कौन बने! सभी स्तब्ध थे, जैसे सभी जड़-से हो गये हों।

अन्ततः योगिराज शिवका रेतस् स्खलित हुआ। अब उन्हें अपनी स्थितिका भान हुआ। विश्वनाथने तुरंत दोनों हाथ जोड़ लिये और मस्तक झुकाकर कहा—'प्रभो! आपकी लीला अगम्य है। आपकी मायाका पार पाना सम्भव नहीं है।'

अपने परमप्रभुकी लीलाकी अगम्यता एवं अनिर्वचनीयताको समझकर भगवान् शंकर उनका ध्यान करने जा ही रहे थे कि उनके सम्मुख वनमालाधारी चतुर्भुज प्रभु प्रकट हुए और उमावल्लभ शिवकी निष्ठा एवं विश्वासकी प्रशंसा कर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। परमपिता कर्पूरगौर भी माता पार्वतीके साथ प्रभु-गुण-गान करते हुए कैलासके लिये चल पड़े।

भगवान् शंकरका अमोघ वीर्य व्यर्थ कैसे जाता! उस वीर्यका राम-कार्यकी सिद्धिके लिये प्रयोग करनेकी दृष्टिसे भगवान् शंकरने सप्तर्षियोंको प्रेरित किया। उन्होंने उस वीर्यको पत्तेपर स्थापित कर लिया और समयसे उसे केसरी पत्नी अञ्जनामें कर्ण-मार्गसे प्रवेश करा दिया। उसके फलस्वरूप श्रीहनुमानजी प्रकट हुए।*

• • •

पतिके साथ दीर्घकालतक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई अञ्जनाको कोई संतान नहीं हुई। इस कारण वे अत्यन्त कठोर तप करने लगीं।

अञ्जनाको तपश्चरण करते देख महामुनि मतङ्गने उनके पास जाकर पूछा—'अञ्जना देवि! तुम इतना कठोर तप किसलिये कर रही हो?'

अञ्जनाने महामुनिके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त विनम्रतासे उत्तर दिया—'मुनीश्वर! केसरी नामक श्रेष्ठ वानरने मेरे पितासे मुझे माँगा। उन्होंने मुझे उनकी सेवामें समर्पित कर दिया। मैं अपने पतिदेवके साथ बहुत दिनोंसे अत्यन्त सुखपूर्वक रह रही हूँ, किंतु अबतक मुझे कोई संतान नहीं हुई। इसी कारण मैंने किष्किन्धामें अनेक व्रत, उपवास तथा तप किये, परंतु मुझे पुत्रकी प्राप्ति नहीं हो सकी। अतएव दुःखी होकर मैंने पुत्रके लिये पुनः तपश्चर्या प्रारम्भ की है। मुनिवर! आप कृपापूर्वक मुझे यशस्वी पुत्र प्राप्त होनेका उपाय बताइये।'

तपोधन मतङ्गमुनिने अञ्जनासे कहा—'तुम वृषभाचल (वेङ्कटाचल)पर जाकर भगवान् वेङ्कटेश्वरके भुक्ति-मुक्ति-दायक चरणोंमें प्रणाम करो। फिर वहाँसे कुछ ही दूर आकाशगङ्गा नामक तीर्थमें जाकर स्नान करो। तदनन्तर उसका शुभ जल पीकर वायुदेवको प्रसन्न करो। इससे तुम्हें देवता, दानव, मनुष्यसे अजेय तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे भी अवध्य पुत्र प्राप्त होगा।'

देवी अञ्जनाने महामुनिके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने वृषभाचलकी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर भगवान् वेङ्कटेश्वरके चरणोंकी अत्यन्त भक्तिपूर्वक वन्दना की। इसके बाद उन्होंने 'आकाशगङ्गा' नामक तीर्थमें स्नान कर उसके परम पावन जलका पान किया। फिर उसके तटपर तीर्थकी ओर मुँह करके वायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये अत्यन्त संयमपूर्वक तपश्चरण प्रारम्भ किया। अञ्जना

* शिवपुराण शतरुद्रसंहिता अध्याय [illegible] के आधारपर।

अत्यन्त श्रद्धा, विश्वास एवं धैर्यपूर्वक तप करती रहीं, शारीरिक कष्टोंकी तनिक भी चिन्ता न कर वे अखण्ड तप करती ही रहीं।

भगवान् सूर्य मकराशिपर थे। स्वातिनक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथि थी। अञ्जनाके कठोर तपश्चरणसे तुष्ट वायुदेवता प्रकट हो गये। उन्होंने अञ्जनासे कहा—'देवि! मैं तुम्हारे तपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

वायुदेवका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त कर प्रसन्न अञ्जनाने उनके चरणोंमें प्रणाम कर अपना मनोरथ प्रकट कर दिया—'प्राणनाथ! मुझे उत्तम पुत्र प्रदान कीजिये।'

प्रभु वायुदेवने कहा—'सुमुखि! मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हें विश्वविख्यात कर दूँगा।'

वर प्राप्त कर अञ्जनादेवीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। अपनी प्राणप्रियाकी वरप्राप्तिका संवाद पाकर कपिराज केसरी भी अत्यन्त मुदित हुए।*

एक बारकी बात है। परम लावण्यवती विशाललोचना माता अञ्जनाने शृङ्गार किया। उनके सुन्दर कलेवरपर पीली साड़ी शोभा दे रही थी। साड़ीका किनारा लाल रंगका था। विविध सुगन्धित सुमनोंके अद्भुत आभूषणोंसे स्निग्ध सौन्दर्यकी सजीव प्रतिमा-सी प्रतीत हो रही थीं।

माता अञ्जना पर्वत-शिखरपर खड़ी होकर प्राकृतिक सौन्दर्य देख-देखकर मन-ही-मन मुदित हो रही थीं। उस समय उनके मनमें कामना उदित हुई—'कितना अच्छा होता, यदि मेरे एक सुयोग्य पुत्र होता।'

सहसा वायुका तीव्र झोंका आया और अञ्जनाकी साड़ीका अञ्चल कुछ खिसक गया। उनके अङ्ग दीखने लगे। अञ्जनाने अनुभव किया, जैसे मुझे कोई स्पर्श कर रहा है।

सहमी हुई सती अञ्जनाने अपना वस्त्र सँभाला और अपना स्पर्श करनेवालेको डाँटते हुए कहा—'कौन दुष्ट मेरे पातिव्रत्यका नाश करना चाहता है?' वे शाप देनेके लिये उद्यत हो गयीं।

परंतु सती अञ्जनाको क्रुद्ध देखकर पवनदेव प्रकट हो गये।

उन्होंने कहा—'यशस्विनि! मैं तुम्हारे एकपत्नीव्रतका नाश नहीं कर रहा हूँ। अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये। मैंने अव्यक्तरूपसे तुम्हारा आलिङ्गन करके मानसिक संकल्पद्वारा तुम्हें बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्रदान किया है। तुम्हारा पुत्र महान् धैर्यवान्, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग मारनेमें मेरे ही समान होगा।'

माता अञ्जना प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने पवनदेवको क्षमा कर दिया। अञ्जना गर्भवती हुईं। कपिराज केसरीकी प्रसन्नताकी सीमा न थी।*

• • •

अधिक आयु बीत जानेपर भी कोई संतान न होनेसे रघुकुलशिरोमणि राजा दशरथके मनमें अत्यधिक ग्लानि हुई। उन्होंने वसिष्ठजीके आदेशानुसार महर्षि शृङ्गीके द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। ऋषिने भक्तिपूर्वक आहुतियाँ दीं। इससे प्रसन्न होकर अग्निदेव हाथमें चरु (हविष्यान्न खीर) लिये प्रकट हुए और उन्होंने राजा दशरथसे कहा—'तुम्हारे कार्यकी सिद्धि हो गयी। अब तुम इस हविष्यान्नको रानियोंमें यथाक्रम बाँट दो।' अग्निदेव अन्तर्धान हो गये।

राजा दशरथने पायसका आधा भाग बड़ी रानी कौसल्याको दिया और शेष आधेके दो भाग किये, जिनमेंसे एक भाग कैकेयीको दिया। शेषके दो भाग हुए और राजाने उनको कौसल्या और कैकेयीके हाथपर रखकर उनका मन प्रसन्न कर अर्थात् उनकी अनुमतिसे सुमित्राको दे दिया।

कैकेयी हाथमें पायस लिये हुए कुछ विचार कर रही थीं कि सहसा आकाशसे एक गृध्रीने झपटकर चरुको अपनी चोंचमें ले लिया और वह तुरंत आकाशमें उड़ गयी।

अब तो कैकेयी व्याकुल हो गयीं। तब महाराज दशरथकी प्रेरणासे कौसल्या तथा सुमित्राने अपने चरुका थोड़ा-थोड़ा भाग कैकेयीको दिया। तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं। महारानी कौसल्याके अङ्कमें श्रीरामचन्द्रजी, कैकेयीके अङ्कमें

* भविष्यपुराण (प्रतिसर्गपर्व) के आधारपर

* वाल्मीकिरामायण किष्किन्धाकाण्डके ६६वें सर्गके आधारपर।

भरतजी एवं सुमित्रादेवीको कृतार्थ करनेके लिये लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी प्रकट हुए ।

कपिराज केसरी अपनी सुन्दरी सहधर्मिणी अञ्जनाके साथ सुमेरुपर्वतपर निवास करते थे । अञ्जनाने पुत्रकी प्राप्तिके लिये सात सहस्र वर्षोंतक कर्पूरगौर उमानाथकी उपासना की । प्रसन्न होकर आशुतोषने अञ्जनासे वर माँगनेके लिये कहा ।

अञ्जनाने सर्वलोकमहेश्वरके चरणोंमें प्रणाम कर अत्यन्त विनयपूर्वक याचना की—'करुणामय शम्भो ! मैं समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न योग्यतम पुत्र चाहती हूँ ।'

प्रसन्न भोलेनाथने कहा—'एकादश रुद्रोंमेंसे मेरा अंश ग्यारहवाँ रुद्ररूप ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट होगा । तुम मन्त्र ग्रहण करो । पवनदेवता तुम्हें प्रसाद देंगे । पवनके उस प्रसादसे ही तुम्हें सर्वगुणसम्पन्न पुत्रकी प्राप्ति होगी ।'

पार्वतीश्वर अन्तर्धान हो गये और भगवती अञ्जना अञ्जलि पसार शिव प्रदत्त मन्त्रका जप करने लगीं । उसी समय उक्त गृध्री कैकेयीके भागका पायस लिये आकाशमें उड़ती हुई जा रही थी । सहसा झञ्झावात आया । गृध्रीका अङ्ग सिकुड़ने लगा और पायस उसकी चोंचसे गिर गया । पवनदेव पहलेसे ही तैयार थे । उन्होंने उक्त चरु अञ्जनाकी अञ्जलिमें डाल दिया । भगवान् शंकर पहले ही बता चुके थे; अञ्जनाने तुरंत पवन प्रदत्त चरु अत्यन्त आदरपूर्वक ग्रहण कर लिया और वे गर्भवती हो गयीं ।[1]

श्रीहनुमानका अवतरण

चैत्र शुक्ल १५ मङ्गलवारकी पवित्र वेला थी । भगवान् शिव अपने परमाराध्य श्रीरामकी मुनि मनमोहिनी अवतार-लीलाके दर्शन[2] एवं उसमें सहायता प्रदान करनेके लिये अपने अंश ग्यारहवें रुद्रसे[3] इस शुभ तिथि और शुभ मुहूर्तमें माता अञ्जनाके गर्भसे पवन-पुत्र महावीर हनुमानके रूपमें धरतीपर अवतरित हुए । कल्पभेदसे कुछ लोग इनका प्राकट्य-काल चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें मानते हैं, कुछ कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको और कुछ कार्तिकी पूर्णिमाको पवन-पुत्रका जन्म मानते हैं । कोई मंगलवार तो कोई शनिवारको उनका जन्म दिन स्वीकार करते हैं ।[4] भावुक भक्तोंके लिये अपने आराध्यकी सभी पुण्यमयी तिथियाँ श्रेष्ठ हैं ।

---

१ ब्रह्मलोककी दिव्य अप्सराओंमेंसे सुवर्चला नामक अप्सराकी कुचेष्टासे क्रुद्ध होकर पितामहने उसे मर्त्यलोकमें गृध्री हो जानेका शाप दे दिया । वह करुण प्रार्थना करने लगी । तब ब्रह्माने कहा—'राजा दशरथके पुत्रेष्टि यज्ञमें अग्निदेव चरुके साथ प्रकट होंगे । वह चरु तीनों रानियोंमें वितरित होगा । तू कैकेयीके भागका चरु लेकर उड़ जायगी । चरु तो तू खा नहीं सकेगी, किंतु उसके स्पर्शसे ही तू उक्त कुत्सित योनिसे मुक्त होकर पुनः अप्सराका रूप धारण करके ब्रह्मलोकमें आ जायगी ।'

लोकपितामहके वचनानुसार वैसी ही घटना घटी और गृध्रीकी चोंचसे चरु छूटते ही उसका शरीर छूट गया और वह पूर्ववत् दिव्य अप्सरा होकर ब्रह्मलोकमें चली गयी । (आनन्दरामायणके आधारपर)

२ जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान । रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान ॥
जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान । पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान ॥ (दोहावली १४२-४३)

३ (क) जयति रणधीर, रघुवीरहित, देवमणि रुद्र-अवतार, संसार-पाता ।
(ख) जयति मर्कटाधीश मृगराज-विक्रम, महादेव मुद-मंगलालय, कपाली ।
(ग) जयति मंगलागार संसार-भारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी ।
(घ) रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर, पाहि, दास तुलसी शरण शूलपाणी । (विनयपत्रिका २५, २६, २७ और २८ वें पदसे)
(ङ) यो वै चैकादशो रुद्रो हनुमान् स महाकपिः । अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः ॥ (स्क०, माहे०, के० ८ । १००)
'ग्यारहवें रुद्र ही अमित तेजस्वी विष्णुकी सहायताके लिये महाकपि हनुमानके रूपमें अवतरित हुए ।'

४ (क) चैत्रे मासि सिते पक्षे हरिदिन्यां मघाभिधे । नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुसूदनः ॥
महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः । वदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन ॥
(आनन्दरामायण सारकां० १३ । १६२-६३)

'चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघानक्षत्रमें रिपुसूदन हनुमानजीका जन्म हुआ था । कुछ विद्वान् कल्पभेदसे चैत्री पूर्णिमाके दिन हनुमानजीका शुभ-जन्म बतलाते हैं ।'

भगवान् शिवके ग्यारहवें रुद्रावतार—मारुतात्मज, केसरी किशोर, अञ्जना-नन्दनके धरतीपर चरण रखनेके समय प्रकृति पूर्णतया रम्य हो गयी थी। दिशाएँ प्रसन्न थीं। सूर्यदेवकी किरणें सुखद-शीतल थीं। सरिताओंमें स्वच्छ सलिल बहने लगा था। पर्वत उत्सुक नेत्रोंसे आञ्जनेयके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रपात प्रसन्नतासे उछलते हुए गतिशील थे। वनों, उपवनों, बागों और वाटिकाओंमें विविध रंगके मनोहर पुष्प खिल उठे थे, उनपर भ्रमरावली गुञ्जार कर रही थी। मदमत्त वायु मन्थर गतिसे डोल रहा था।

भगवान् शंकर माता अञ्जनाके लालके रूपमें प्रकट हुए। प्राकट्य-कालमें ही हनुमानजीका सौन्दर्य अतुलनीय एवं अवर्णनीय था। उनकी अङ्ग-कान्ति पिङ्गलवर्णकी थी। उनके रोम, केश एवं नेत्र भी पिङ्गलवर्णके ही थे। हनुमानजी विद्युच्छटा-तुल्य सुवर्णनिर्मित मनोहर कुण्डल किये हुए ही माता अञ्जनाकी कुक्षिसे अवतरित हुए। उनके मस्तकपर मणि-जटित टोपी शोभा दे रही थी। वे कौपीन और कछनी काछे हुए थे। उनके प्रशस्त वक्ष यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था एवं हाथमें वज्र और कटि-प्रदेशमें मूँजकी मेखला सुशोभित थी। अपने पुत्रका अलौकिक सौन्दर्य देखते ही माता अञ्जना आनन्द-निमग्न हो गयीं।

भाग्यवती धरित्रीपर हनुमानजीके चरण रखते ही माता अञ्जना और कपिराज केसरीके आनन्दकी तो सीमा ही नहीं थी, चतुर्दिक् हर्षोल्लासकी लहरें दौड़ गयीं। देवगण, ऋषिगण, कपिगण, पर्वत, प्रपात, [illegible] समुद्र, पशु-पक्षी और जड़ चेतन ही नहीं, [illegible] वसुन्धरा पुलकित हो उठी। सर्वत्र हर्ष एवं उत्साह [illegible] था। चतुर्दिक् आनन्दका साम्राज्य व्याप्त हो गया था।

बाल्यकाल

माता अञ्जना अपने प्राणप्रिय पुत्र हनुमानजीका लालन-पालन बड़े ही मनोयोगपूर्वक करतीं। कपिराज केसरी भी उन्हें अतिशय प्यार करते। जब हनुमानजी प्रसन्नतापूर्वक किलकते तो अञ्जना और केसरी आनन्द-मग्न हो जाते। हनुमानकी बाल-क्रीडाएँ अत्यन्त आकर्षक और सुखद तो थीं ही, अद्भुत भी होती थीं।

एक बारकी बात है। कपिराज केसरी कहीं बाहर गये थे। माता अञ्जना भी बालकको पालनेमें लिटाकर वनमें फल-फूल लेने चली गयीं। बालक हनुमानजीको भूख लगी। माताकी अनुपस्थितिमें वे हाथ-पैर उछाल-उछालकर क्रन्दन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि प्राचीक्षितिजपर गयी। अरुणोदय हो रहा था। उन्होंने सूर्यके अरुण बिम्बको लाल फल समझा।

तेज और पराक्रमके लिये अवस्था अपेक्षित नहीं। यहाँ तो हनुमानजीके रूपमें अञ्जनाके अङ्कमें प्रत्यक्ष प्रलयंकर शंकर ग्यारहवें रुद्र क्रीडा कर रहे थे। [illegible] देवने पहले ही उन्हें उड़नेकी शक्ति प्रदान कर दी थी। हनुमानजी उछले और वायुवेगसे आकाशमें उड़ने लगे। पवनपुत्र तीव्र गतिसे उड़ते चले जा रहे थे। उन्हें इस प्रकार वेगपूर्वक उड़ते देखकर देव, दानव और यक्षादि विस्मित होकर कहने लगे—'इस वायुपुत्रके [illegible] तुल्य वेग तो स्वयं वायु, गरुड़ और मनमें भी नहीं है। इसी आयुमें शिशुका ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनकालमें इसकी शक्ति कैसी होगी!'

वायुदेवने अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देखा तो उनके मनमें चिन्ता हुई—'मेरा यह बच्चा कहीं सूर्यकी प्रखर किरणोंसे झुलस न जाय'—इस कारण वे हिमके समान शीतल होकर उसके साथ चलने लगे।

सूर्यदेवने भी अलौकिक बालकको अपनी ओर आते देखा तो उन्हें समझते देर न लगी कि ये पवनपुत्र [illegible]

(ख) " " प्रादुरासीत्तदा तां वै भाषमाणो महामति।
मेषसंक्रमणं भानौ सम्प्राप्ते मुनिसत्तमाः। पूर्णिमाख्ये तिथौ पुण्ये चित्रानक्षत्रसंयुते॥ (स्कन्दपु०, वैष्णवख० ४०। ४२।४)
(ग) आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे चतुर्दशी। मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः॥ (वायुपुराण)
(घ) [illegible] कार्तिककृष्ण., [illegible] मेषलग्ने सायंकाले। [illegible]
(हनुमच्चरित्र-प्रकाश, वाराणसी)

१ ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि यह घटना भी श्रीहनुमानजीके जन्मके समयकी है—
(क) आनन्दरामायण ४। ९। १८। १९।
(ख) जातो हि बालमात्रोऽपि बालार्कं हर मूर्तिमान्। गृहीतुकामः बालार्कं पुष्पाकाम्… [illegible]
(स्कन्दपु०, माहेश्वरखण्ड, … [illegible] ४९। १४)

पिताके वेगसे मेरी ओर आ रहे हैं और स्वयं पवनदेव भी उनकी रक्षा करनेके लिये साथ ही उड़ रहे हैं। सूर्यदेवने अपना सौभाग्य समझा—'अहा! स्वयं भगवान् चन्द्रमौलि ही हनुमानजीके रूपमें मुझे कृतार्थ करनेके लिये पधार रहे हैं!' अंशुमालीकी अग्निमयी किरणें शीतल हो गयीं। हनुमानजी सूर्यके रथपर पहुँचकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे।

संयोगकी बात, उस दिन अमावस्या तिथि थी। सिंहिकापुत्र राहु सूर्यदेवको ग्रसनेके लिये आया तो भुवनभास्करके रथपर बैठे हुए उस बालकको देखा। राहु बालककी चिन्ता न कर दिनमणिको ग्रसनेके लिये आगे बढ़ा ही था कि हनुमानजीने उसे पकड़ लिया। उनकी वज्रमुष्टिमें दबकर राहु छटपटाने लगा। वह किसी प्रकार प्राण बचाकर भागा। वह सीधा सुरपति इन्द्रके समीप पहुँचा और उसने भौंहें टेढ़ी कर क्रोधके साथ कहा—'सुरेश्वर! मेरी क्षुधाका निवारण करनेके लिये आपने मुझे सूर्य और चन्द्रको साधनके रूपमें प्रदान किया था, किंतु अब आपने यह अधिकार दूसरेको किस कारण दे दिया?'

क्रुद्ध सिंहिकापुत्र राहुकी चकित करनेवाली वाणी सुनकर सुरेन्द्र उसका मुँह देखने लगे। उसने आगे कहा—'आज पर्वके समय मैं सूर्यको ग्रसनेके लिये उनके समीप गया ही था कि वहाँ पहलेसे ही उपस्थित दूसरे राहुने मुझे कसकर पकड़ लिया। मैं किसी प्रकार अपनी जान बचाकर यहाँ आ पाया हूँ।'

नेत्रोंमें आँसूभरे क्रुद्ध राहुकी वाणी सुनकर वासव चिन्तित हो उठे। वे अपने सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये और ऐरावतपर बैठकर घटना-स्थलकी ओर चले। राहु उनके आगे-आगे चला। शचीपति आश्चर्यचकित हो मन-ही-मन सोच रहे थे—'तिमिरारिके समीप ऐसा कौन पराक्रमी पहुँच गया, जिसके भयसे सिंहिकापुत्रको प्राण बचाकर भागना पड़ा।'

उधर राहु बड़े वेगसे सूर्यकी ओर दौड़ा। उसे देखते ही हनुमानजीको भूखकी स्मृति हुई। वे राहुको सुन्दर भक्ष्य समझकर उसपर टूट पड़े।

'सुरेश्वर! बचाइये! बचाइये!!'—चिल्लाता हुआ राहु इन्द्रकी ओर भागा।

सुरेन्द्र राहुकी रक्षाके लिये दौड़े। राहुके बच निकलनेपर हनुमानजीने ऐरावतको देखा तो उसे सुन्दर सुस्वादु खाद्य समझा। वे ऐरावतपर झपटे। उस समय हनुमानजीका स्वरूप प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशित और भयानक प्रतीत हो रहा था। इन्द्र डर गये। अपनी रक्षाके लिये उन्होंने बालकपर वज्रसे प्रहार किया। वह हनुमानजीकी बायीं हनु (ठुड्डी)में लगा, जिससे उनकी हनु टूट गयी और वे छटपटाते हुए पर्वत-शिखरपर गिरकर मूर्च्छित हो गये।

अपने प्राणप्रिय पुत्रको वज्रके आघातसे छटपटाते देख वायुदेव इन्द्रपर अत्यन्त कुपित हुए। शक्तिशाली वायुदेवने अपनी गति रोक दी और वे अपने पुत्रको अङ्कमें लेकर पर्वतकी गुफामें प्रविष्ट हो गये।

फिर तो त्रिभुवनके समस्त प्राणियोंमें श्वास आदिका सञ्चार रुक गया। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके जोड़ टूटने लगे और वे सब-के-सब सूखे काठकी तरह अवरुद्ध हो गये। उनके सारे धर्म-कर्म रुक गये।

प्राण-सङ्कटसे भयभीत इन्द्र, देव, गन्धर्व, असुर, नाग, गुह्यक आदि जीवन-रक्षाके लिये ब्रह्माजीके पास दौड़े। ब्रह्माजी सबको साथ लेकर उस गिरि-गुहामें पहुँचे, जहाँ पवनदेव अपने पुत्रको अङ्कमें लेकर वक्षसे सटाये दुःखातिरेकसे आँसू बहा रहे थे। मूर्च्छित हनुमानजीकी सूर्य, अग्नि एवं सुवर्णके समान अङ्ग-कान्ति देखकर चतुर्मुख चकित हो गये।

अपने सम्मुख स्रष्टाको देखते ही पवनदेव पुत्रको गोदमें लेकर खड़े हो गये। उस समय हनुमानजीके कानोंमें अलौकिक कुण्डल हिल रहे थे। उनके मस्तकपर मुकुट, गलेमें हार और दिव्य अङ्गोंपर सुवर्णके आभूषण सुशोभित थे। पवनदेवता विधाताके चरणोंपर गिर पड़े।

चतुराननने अपने हाथोंसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक पवनदेवको उठाया और उनके पुत्रके अङ्गोंपर अपना कर कमल फेरने लगे। कमलयोनिके करस्पर्शसे पवनपुत्र हनुमानजीकी मूर्च्छा दूर हो गयी। वे उठकर बैठ गये। अपने पुत्रको जीवित देखते ही जगत्के प्राणस्वरूप पवनदेव पूर्ववत् बहने लगे और त्रैलोक्यको जीवन दान मिला।

ब्रह्माने सन्तुष्ट होकर हनुमानजीको वर प्रदान करते हुए कहा—'इस बालकको ब्रह्मशाप नहीं लगेगा और इसका कोई अङ्ग कभी भी शस्त्रास्त्रसे नहीं छिद सकेगा।'

फिर उन्होंने सुर-समुदायसे कहा—'देवताओ ! यह असाधारण बालक भविष्यमें आपलोगोंका बड़ा हित-साधन करेगा, अतएव आपलोग इसे वर प्रदान करें।'

देवराज इन्द्रने तुरंत प्रसन्नतापूर्वक हनुमानजीके कण्ठमें अम्लान कमलोंकी माला पहनाकर कहा—''मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी, इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान' होगा। * इसके अतिरिक्त इस बालकपर मेरे वज्रका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और इसका शरीर मेरे वज्रसे भी अधिक कठोर होगा।''

वहाँ उपस्थित सूर्यदेवने कहा—'मैं इसे अपने तेजका शतांश प्रदान करता हूँ। साथ ही समयपर इसे शिक्षा देकर शास्त्रमर्मज्ञ भी बना दूँगा। यह अद्वितीय विद्वान् और वक्ता होगा।'

वरुणने कहा—'मेरे पाश और जलसे यह बालक सदा सुरक्षित रहेगा।'

यमदेव बोले—'यह नीरोग और मेरे दण्डसे सदा अवध्य रहेगा।'

पिङ्गलवर्णके यक्षराज कुबेरने कहा—'युद्धमें इसे कभी विषाद नहीं होगा। मेरी गदासे यह सुरक्षित हो रहेगा। मेरे यक्ष-राक्षसोंसे भी कभी पराजित नहीं हो सकेगा।'

भगवान् शंकरने वर प्रदान किया—'यह मुझसे और मेरे आयुधोंसे सदा अवध्य रहेगा।'

विश्वकर्मा बोले—'यह बालक मेरेद्वारा निर्मित दिव्य अस्त्रों और शस्त्रोंसे सदा सुरक्षित रहकर चिरायु होगा।'

इस प्रकार देवताओंके अमोघ वरदान दे देनेपर कमलयोनि ब्रह्माने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः कहा—'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा।'

फिर प्रसन्न चतुराननने पवनदेवसे कहा—'मारुत ! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंके लिये भयंकर और मित्रोंके लिये अभय देनेवाला होगा। इसे युद्धमें कोई पराजित नहीं कर सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारणकर जहाँ चाहेगा जा सकेगा। इसकी अव्याहत गति होगी। यह अत्यन्त यशस्वी होगा और अत्यन्त अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कार्य करेगा।'

इस प्रकार वर प्रदान कर ब्रह्मादि देवगण तथा असुरगण अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए।

ऋषियोंका शाप

बालक हनुमान बड़े ही चञ्चल और नटखट थे। एक तो सर्वसमर्थ शंकरके अवतार, दूसरे कपि-शावक, उसपर देवताओंद्वारा प्रदत्त अमोघ वरदान। इनकी चपलतासे माता-पिता प्रसन्न होते। मृगराजकी पूँछ पकड़कर उसे चारों ओर घुमाना और हाथीको पकड़कर उसकी शक्तिका अनुमान लगाना तो प्रायः इनकी नित्यकी क्रीडाके अन्तर्गत था। कभी ये विशाल वृक्षोंका मूलसहित हिला देते। पर्वतका कोई शिखर ऐसा नहीं था, जहाँ ये छलाँग मारकर न पहुँच जायँ। सम्पूर्ण आरण्य वन एवं पर्वत इनके देखे भाले थे।

वनके प्राणी प्रायः इनसे भयभीत, किंतु आदरसे इन्हें प्यार भी करते थे। ये समस्त प्राणियोंके मित्र और रक्षक थे। कोई सबल किसी दुर्बलको कष्ट दे, यह हनुमानको सह्य नहीं था। ये एक वृक्षकी चोटीसे दूसरे वृक्षकी चोटीपर कूदते हुए योजनों दूर निकल जाते। इनके भारसे यदि किसी वृक्षकी डालके टूटनेकी आशङ्का होती तो ये हल्के हो जाते।

वरदानजनित शक्तिसे सम्पन्न हनुमानजी तपस्वी ऋषियोंके आश्रमोंमें चले जाते और वहाँ कुछ-न-कुछ ऐसी चञ्चलता कर बैठते, जिससे ऋषियोंको क्लेश पहुँचता। किसी ऋषिका आसन दूसरे ऋषिके समीप रख देते। किसीका मृगचर्म आदि उठाकर पेड़ोंपर कूदते या उसे किसी दूसरे स्थानपर रख देते। किसीके कमण्डलुका जल उलट देते या किसीका कमण्डलु पटककर फोड़ देते या उनका वस्त्र फाड़ देते।

हनुमानजी ध्यान करते मुनियोंके अङ्कमें बैठ जाते।

---

* मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यदा हतः। नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥
(वा० रा० ७।३६।११)

अहिंसापरायण मुनि ध्यानस्थ होकर जप करते रहते, किंतु ये वानर शिरोमणि मुनिकी दाढ़ी नोचकर भाग जाते। किसीकी कौपीन तो किसीके पाठकी पोथी अपने दाँतों और हाथोंसे फाड़कर फेंक देते। ये महाबली पवन-कुमार महात्माओंके यज्ञोपयोगी पात्र भी नष्ट कर देते। स्रुक्-स्रुवा आदिको तोड़ देते तथा कठिनाईसे प्राप्त ढेर-के-ढेर वल्कलोंको चीर फाड़कर फेंक देते थे। ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा दिये गये वरदानसे परिचित होनेके कारण ऋषिगण अवश थे, चुप रह जाते, पर उन्हें बड़ा क्लेश पहुँचता।

धीरे धीरे हनुमानजीकी आयु विद्याध्ययनके योग्य हो गयी, पर इनकी चञ्चलता बनी ही रही। माता पिता भी यह चिन्तित थे। उन्होंने अपने प्राणप्रिय लालको अनेक प्रकारसे समझाया, कई प्रकारके यत्न किये, किंतु हनुमानजीकी चपलतामें कमी नहीं आयी। अन्ततः अञ्जना और वानरराज केसरी ऋषियोंके समीप पहुँचे। ऋषियोंने भी अपनी कष्ट-गाथा उन्हें कह सुनायी। उन्होंने ऋषियोंसे विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—'तपोधनो! हमें यह बालक बहुत दिनोंके बाद कठोर तपके प्रभावसे प्राप्त हुआ है। आपलोग इसपर अनुग्रह करें। ऐसी कृपा करें, जिससे यह विद्या प्राप्त कर ले। आपलोगोंकी करुणासे ही इसका स्वभाव परिवर्तन सम्भव है। आप हम दोनोंपर दया करें।'

ऋषियोंने सोचा—'इसे अपनी अमित शक्ति एवं पराक्रमका अभिमान है। यदि यह अपना बल भूल जाय तो इसका यथार्थ हित हो सकता है।'

कुछ वयोवृद्ध समर्थ ऋषि यह भी जानते थे कि 'यह बालक देवताओंका हित-साधन करनेवाला है। यह भगवान् श्रीरामका अनन्य भक्त होगा और अनुगत भक्तके लिये बलका अहंकार उचित नहीं। दीन भावसे ही प्रभुका कैङ्कर्य निभ सकेगा।'

इस कारण भृगु एवं अङ्गिराके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने हनुमानजीको शाप दे दिया—'वानरवीर! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शापसे मोहित होकर दीर्घ-कालतक भूले रहोगे—तुम्हें अपने बलका पता ही न चलेगा। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्तिका स्मरण दिलायेगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा।'*

तपस्वी मुनियोंके इस प्रकार शाप देनेसे पवनकुमारका तेज और ओज कम हो गया और ये अत्यन्त सौम्य स्वभावके हो गये। अब ये अन्य कपि किशोरोंकी तरह आश्रमोंमें शान्तभावसे विचरण करते। इनके मृदुल व्यवहारसे ऋषि मुनि भी प्रसन्न रहने लगे।

मातृ शिक्षा

बालकपर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है—माताके जीवन एवं उसकी शिक्षाका। आदर्श माताएँ अपने पुत्रको श्रेष्ठ एवं आदर्श बना देती हैं। पुराण-इतिहासोंमें ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं।

हनुमानजीकी माता अञ्जना—अञ्जनादेवी परम सदाचारिणी, तपस्विनी एवं सद्गुण-सम्पन्न आदर्श माता थीं। उन्होंने अपने लालको प्राप्त करनेके लिये जितनी तत्परतासे कठोर तपश्चरण किया था, उसी तत्परतासे वे अपने प्राणप्रिय बालकका जीवन निर्माण करनेके लिये सजग और सावधान रहती थीं। वे हनुमानजीके वीरतापूर्ण कार्य देखकर मन-ही-मन मुदित होतीं और उन्हें प्रोत्साहन देतीं।

पूजनोपरान्त और रात्रिमें शयनके पूर्व वे अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्रको पुराणोंकी कथाएँ सुनाया करतीं। वे आदर्श पुरुषोंके चरित्र बार-बार सुनातीं और अपने पुत्रका ध्यान उनकी ओर आकर्षित करती रहतीं। वे महापुरुषोंके जो चरित्र सुनातीं, उन्हें पुनः-पुनः अपने लालसे भी पूछतीं और उनका लाल—उसे क्या सीखना था! सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी जिससे गोपनीय क्या है! किंतु लीलामय कभी-कभी हनुमानजी अनजान बनकर ठीक उत्तर न देते तो माता उसे पुनः सुनाकर कण्ठस्थ करा देतीं। करुणावरुणालयके अवतारोंकी समस्त कथाएँ हनुमानजीके जिह्वापर थीं। उन श्रेष्ठ कथाओंको ये अपने समवयस्क कपि किशोरोंको अत्यन्त प्रेम और उत्साहपूर्वक सुनाया करते।

माता अञ्जना जब भगवान् श्रीरामके अवतारकी कथा प्रारम्भ करतीं, तब बालक हनुमानका सारा ध्यान उक्त कथामें ही केन्द्रित हो जाता। निद्रा उनके

* बाधसे यद् समाश्रित्य बलमस्मान् प्लवंगम॥
तद् दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः। यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम्॥
(वा० रा० ७।३६।३४-३५)

समीप फटकने नहीं पाती थी। माताको झपकी आती तो हनुमानजी उन्हें झकझोरकर कहते—'माँ! आगे कह, फिर क्या हुआ!'

माता फिर कहने लगतीं। श्रीराम-कथाके श्रवणसे हनुमानजीकी तृप्ति ही नहीं होती थी। वे माँसे बार-बार श्रीराम-कथा ही सुनानेका आग्रह करते। माता अञ्जना उल्लासपूर्वक कथा सुनातीं और हनुमानजी उस कथाके श्रवणसे भाव-विभोर हो जाते। उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आते, अङ्ग फड़कने लगते। वे सोचते—'यदि मैं भी वही हनुमान होता!'

कथा सुनाते-सुनाते माता अञ्जना पूछ बैठतीं—'बेटा! तू भी वैसा ही हनुमान बनेगा!'

'हाँ, माँ! अवश्य वही हनुमान बनूँगा।'—हनुमानजी उत्तर देते। 'पर श्रीराम और रावण कहाँ हैं? यदि रावणने जननी सीताकी ओर दृष्टिपात किया तो मैं उसे पीसकर रख दूँगा।'

माता अञ्जना कहतीं—'बेटा! तू भी वही हनुमान हो जा। अब भी लङ्कामें एक रावण राज्य करता है और अयोध्या-नरेश दशरथके पुत्रके रूपमें श्रीरामका अवतार भी हो चुका है। तू जल्दी ही बड़ा हो जा। श्रीरामकी सहायता करनेके लिये बल और पौरुषकी आवश्यकता है। तू यथाशीघ्र बलवान् और पराक्रमी हो जा।'

'माँ! मुझमें शक्तिकी कमी कहाँ है!' हनुमानजी शय्यासे कूद पड़ते और अपना मुष्टिका दिखाकर भी सम्मुख अमित शक्तिशाली होनेका प्रमाण देने लगते। माता अञ्जना हँसने लगतीं और फिर अपने प्राणप्यारे हनुमानजीको अङ्कमें लेकर थपकी देते तथा मधुर स्वरसे प्रभु-सुयश सुनाती हुई सुलाने लगतीं। हनुमानजी माता अञ्जनाके वक्षमें चिपककर सुखपूर्वक सो जाते।

सहज अनुरागसे हनुमानजी बार-बार श्रीराम-कथा श्रवण करते। बार-बार श्रीराम-कथाके श्रवण करनेसे वे निरन्तर भगवान् श्रीरामका स्मरण और चिन्तन करते, फलतः उनका श्रीराम-स्मरण उत्तरोत्तर गाढ़ होता गया। धीरे-धीरे उनका अधिकांश समय श्रीरामके ध्यान और स्मरणमें ही व्यतीत होने लगा। वे कभी अरण्यमें, कभी पर्वतकी गुफामें, कभी सरिताके तटपर और कभी सघन कुञ्जमें ध्यानस्थ बैठ जाते। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित होता रहता।

इस प्रकार ध्यानकी तन्मयताके कारण उन्हें भूख और तृषाका भी ज्ञान नहीं रहता। माता अञ्जना प्रातः और सायंकाल अपने हृदय-खण्ड हनुमानजीको ढूँढ़ने निकलतीं। वे जानती थीं—मेरा पुत्र कहाँ होगा। वे पर्वत, सरिता, निर्झर एवं अरण्यमें घूम-घूमकर हनुमानजीको ढूँढ़कर लातीं, तब कहीं माताके आग्रहसे उनके मुँहमें अन्न पहुँचता। और यह क्रम प्रतिदिन चलने लगा। हनुमानजी अपने आराध्यके प्रेममें इतने तल्लीन रहने लगे कि उन्हें अपने शरीरकी सुध भी कम रहती। उनके मुँहसे 'राम राम'—केवल 'राम-राम'का ही स्वर होता रहता।

सूर्यदेवसे शिक्षा प्राप्ति

माता अञ्जना अपने पुत्रकी मानसिक स्थिति देखकर कभी-कभी उदास हो जातीं और वानरराज केसरी तो प्रायः चिन्तित रहा करते। हनुमानजीकी आयु भी विद्याध्ययनके योग्य हो गयी थी। माता-पिताने सोचा—'अब इसे गुरुके पास विद्या प्राप्तिके लिये भेजना चाहिये। कदाचित् इसी हेतु इसकी दशा परिवर्तित हो जाय।' यद्यपि वे अपने ज्ञानमूर्ति पुत्रकी विद्या-बुद्धि एवं बल-पौरुष तथा ब्रह्मादि देवताओंद्वारा प्रदत्त अमोघ वरदानसे भी पूर्णतया परिचित थे, किंतु वे यह भी जानते थे कि सामान्य जन महापुरुषोंका अनुसरण करते हैं और स्वभावमें अभ्यस्ता उत्पन्न न हो जाय, इस कारण महापुरुष स्वतन्त्र आचरण नहीं करते। वे सदा शास्त्रोंकी मर्यादाका ध्यान रखते हुए नियमानुकूल व्यवहार करते हैं। इसी कारण जब-जब स्वयं प्रभु भूतलपर अवतरित होते हैं, वे सर्वज्ञ सम्पन्न होनेपर भी विद्या प्राप्तिके लिये गुरु-गृह जाते हैं। वहाँ गुरुकी सविनय सेवा कर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनसे विद्याध्ययन करते हैं। सच तो यह है कि गुरुको सेवासे संतुष्ट कर अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्राप्त की हुई विद्या ही फलवती होती है। अतएव माता अञ्जना और कपिराज केसरीने हनुमानजीको शिक्षा प्राप्तिके लिये गुरु-गृह भेजनेका निश्चय किया।

माता-पिताने अत्यन्त उत्साहपूर्वक हनुमानजीका उपनयन संस्कार कराया और फिर उन्हें विद्याप्राप्तिके लिये गुरुके चरणोंमें जानेकी आज्ञा प्रदान की। किंतु वे किस सर्वगुण-सम्पन्न आदर्श गुरुके समीप जायँ। इस

अञ्जनाने अतिशय स्नेहसे कहा—'बेटा ! सर्वशास्त्रमर्मज्ञ समस्त लोकोंके साक्षी भगवान् सूर्यदेव हैं। वे तुम्हें समयपर विद्याध्ययन करानेका आश्वासन भी दे चुके हैं। अतएव तुम उन्हींके समीप जाकर श्रद्धा भक्तिपूर्वक शिक्षा ग्रहण करो।'

कौपीन-कछनी काछे, मूँजका यज्ञोपवीत धारण किये, पलाशदण्ड एवं मृगचर्म लिये ब्रह्मचारी हनुमानजीने भगवान् सूर्यकी ओर देखा और फिर विचार करने लगे। माता अञ्जना ऋषियोंके शापसे अवगत थीं ही, उन्होंने तुरंत कहा—'अरे बेटा! तेरे लिये सूर्यदेव कितनी दूर हैं। तेरी शक्तिकी सीमा नहीं। अरे! ये तो वे सूर्यदेव हैं, जिन्हें अरुण-फल समझकर तू बचपनमें उछलकर निगलने पहुँच गया था। सूर्यके साथ तू क्रीड़ा कर चुका है। तेरे भयसे राहु प्राण लेकर इन्द्रके पास भागा था और तेरे भयसे सुरेन्द्र भी सहम गये थे। बेटा! ऐसा कोई कार्य नहीं, जो तू न कर सके। तेरे लिये असम्भव कुछ नहीं। तू जा और भगवान् सवितासे सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर। तेरा कल्याण सुनिश्चित है।'

फिर क्या था! आञ्जनेयने माता पिताके चरणोंमें प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दूसरे ही क्षण वे आकाशमें उछले तो सामने सूर्यदेवके सारथि अरुण मिले। हनुमानजीने पिताका नाम लेकर अपना परिचय दिया और उन्होंने अंशुमालीको दिखला दिया।

अञ्जनानन्दनने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भगवान् भुवनभास्करके चरणोंमें प्रणाम किया। सरलताकी मूर्ति, सर्वथा निश्छलहृदय, विनम्र पवनकुमारको बद्धाञ्जलि खड़े देखकर सूर्यदेवने पूछा—'बेटा! यहाँ कैसे?'

हनुमानजीने अत्यन्त नम्र वाणीमें उत्तर दिया—'प्रभो! मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार हो जानेपर माताने मुझे आपके चरणोंमें विद्याध्ययन करनेके लिये भेजा है। आप कृपापूर्वक मुझे ज्ञान प्रदान करें।'

आदित्य बोले—'बेटा! देख लो, मेरी बड़ी विचित्र स्थिति है। मुझे अहर्निश रथपर दौड़ते रहना पड़ता है। ये अरुणजी रथका वेग कम करना नहीं जानते। मैं क्षुधा पिपासा और निद्राको त्यागकर अनवरतरूपसे रथ दौड़ाते ही रहते हैं। इस विषयमें पितामहसे कुछ कहनेका अधिकार भी मुझे नहीं। रथसे उतरना भी मेरे लिये सम्भव नहीं। ऐसी दशामें मैं तुम्हें शास्त्रका अध्ययन कैसे कराऊँ! तुम्हीं सोचकर कहो, क्या किया जाय। तुम्हारे-जैसे आदर्श बालक को शिष्यके रूपमें स्वीकार करनेमें मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

भगवान् दिवाकरने टालनेका प्रयत्न किया, किंतु समीरात्मजको इसमें किसी प्रकारकी कठिनाईकी कल्पना भी नहीं हुई। उन्होंने उसी विनम्रतासे कहा—'प्रभो! वेगपूर्वक रथके चलनेसे मेरे अध्ययनमें क्या बाधा पड़ेगी? हाँ, आपको किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होनी चाहिये। मैं आपके सम्मुख बैठ जाऊँगा और रथके वेगके साथ ही आगे बढ़ता रहूँगा।'

मारुतात्मज भगवान् तिमिरारिकी ओर मुख करके उनके आगे-आगे स्वाभाविकरूपमें चल रहे थे।

सूर्यनारायणको इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। वे समीरकुमारकी शक्तिसे परिचित थे। वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि ये स्वयं ज्ञानिनामग्रगण्य हैं, किंतु शास्त्रकी मर्यादाका पालन करने हेतु एवं मुझे यश प्रदान करनेके लिये ही मुझसे विद्या प्राप्त करना चाहते हैं।

बस, सूर्यदेव वेदादि शास्त्रों एवं समस्त विद्याओंके अङ्गोपाङ्ग एवं उनके रहस्य जितनी शीघ्रतासे बोल सकते थे, बोलते जाते थे। हनुमानजी शान्त भावसे उन्हें सुनते जा रहे थे। प्रश्न और शङ्का तथा उत्तर और समाधानकी आवश्यकता ही नहीं थी। आदित्यनारायणने हनुमानजीको वर्ष-दो-वर्ष या दो-चार मासमें नहीं, कुछ ही दिनोंमें समस्त वेदादि शास्त्र, उपशास्त्र एवं विद्याएँ सुना दीं। हनुमानजीमें तो स्वतः सारी विद्याएँ निवास करती थीं। सविधि विद्याध्ययन हो गया। सबमें पारंगत हो गये वे।

अत्यन्त भक्तिपूर्वक गुरु-चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर अञ्जनानन्दनने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—'प्रभो! गुरु-दक्षिणाके रूपमें आप अपना अभीष्ट व्यक्त करें।'

सर्वथा निष्काम सूर्यदेवने उत्तर दिया—'मुझे तो कुछ नहीं चाहिये, किंतु यदि तुम मेरे अंशसे उत्पन्न कपिराज बालिके छोटे भाई सुग्रीवकी रक्षाका वचन दे सको तो मुझे प्रसन्नता होगी।'

'आज्ञा शिरोधार्य है।'—अनिलात्मजने गुरुके सम्मुख प्रतिज्ञा की—'मेरे रहते सुग्रीवका बाल भी बाँका नहीं हो सकेगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।'

'तुम्हारा सर्वविध मङ्गल हो।' भगवान् सूर्यदेवने आशीर्वाद दिया और केसरी किशोर गुरुदेवके चरणोंमें पुनः साष्टाङ्ग लेट गये।

परम विद्वान् पवनकुमारने गन्धमादनपर लौटकर अपने माता पिताके चरणोंपर मस्तक रखा। माता पिताके हर्षकी सीमा न थी। उस दिन उनके यहाँ ऐसा महान् उत्सव मनाया गया कि गन्धमादनपर इस और इसके समारोहका इतना सुन्दर और विशद आयोजन इसके पूर्व कभी किसीने देखा नहीं था। सम्पूर्ण कपि-समुदाय आनन्द-विभोर हो गया। सबने प्राणप्रिय अञ्जनानन्दनको मनसे अन्तर्हृदयका आशीर्वाद प्रदान किया।

शिशु श्रीरामके साथ

कर्पूरगौर शिव और नीलकलेवर श्रीराममें अनन्य प्रीति है। सच तो यह है, भगवान् श्रीराम और महेश्वर तत्त्वतः एक ही हैं, इनमें भेद नहीं। इसी कारण 'जो गोविन्दको नमस्कार करते हैं, वे शंकरको भी नमस्कार करते हैं एवं जो भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वजकी भी पूजा करते हैं। जो विरूपाक्षसे द्वेष करते हैं, वे जनार्दनसे भी द्वेष करते हैं एवं जो रुद्रको *नहीं जानते—जिन्हें रुद्रका स्वरूप विदित नहीं है, वे केशवको भी नहीं जानते।

भगवान् शंकरने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहा है—'जो इन अव्यक्त शिशुको और मुझ महेश्वर देवको एक-सा देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।'† किंतु लीलाके लिये—अपनी ही रसमयी मधुर लीलाके आस्वादनके लिये वे दोनों आशुतोष शिव एवं मुनिमनरञ्जन श्रीरामके रूपमें प्रकट होते हैं।

पाप-ताप निवारण, धर्म-संस्थापन एवं प्राणियोंके अनुपम मङ्गलके लिये जब-जब भगवान् श्रीराम धरतीपर अवतरित होते हैं, तब-तब भवलोकमहेश्वर शिव भी अपने प्रियतम श्रीरामकी मुनिमनमोहिनी मधुर मङ्गलमयी लीलाके दर्शनार्थ धरतीपर उपस्थित हो जाते हैं। वे अपने एक अंशसे अपने प्राणप्रिय श्रीरामकी लीलामें सहयोग करते हैं, पर दूसरे रूपमें उनकी भुवनपावनी लीलाके दर्शन कर मन-ही-मन मुदित भी होते रहते हैं। उस समय उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती।

निखिल भुवन-पावन भगवान् श्रीराम माता कौसल्याके सम्मुख प्रकट हुए और अवधकी गलियोंमें उमानाथ लगे घूमने। वे अयोध्यापति दशरथके राजद्वारपर कभी प्रभु-गुण-गायक साधुके रूपमें तो कभी भिक्षा ग्रहण करनेके लिये विरक्त महात्माके वेषमें दर्शन देते। कभी प्रभुके अवतारोंकी मङ्गलमयी कथा सुनाने प्रकाण्ड विद्वान्के रूपमें राज-सदन पधारते तो कभी त्रिकालदर्शी दैवज्ञ बनकर दशरथके कमल-नयन शिशुका फलादेश बताने पहुँच जाते। इस प्रकार वे किसी-न-किसी बहाने घूम-फिरकर श्रीरामके समीप जाते ही रहते। भगवान् शंकर कभी अपने आराध्यको अङ्कमें उठा लेते, कभी हस्तरेखा देखनेके मिष उनके कोमलतम दिव्य हस्त-पद्म सहलाने और कभी अपनी समाधिमें उनके नन्हे-नन्हे कमल सरीखे लाल-लाल तलवे सहलाते तो कभी उन देवदुर्लभ सुकोमल अरुणोत्पल चरणोंका ध्यान किये नेत्रोंसे स्पर्श कर परमानन्दमें निमग्न हो जाते। धीरे-धीरे कौसल्यानन्दन राजद्वारतक आने लगे।

एक बारकी बात है—पार्वतीवल्लभ मदारीके वेषमें डमरू बजाते राज-द्वारपर उपस्थित हुए। उनके साथ नाचनेवाला एक अत्यन्त सुन्दर बंदर था। मदारीके चारों ओर अवधके बालकोंका समुदाय लगा हुआ था।

डमरू बजने लगा—और कुछ ही देरमें श्रीरामसहित चारों भाई राजद्वारपर आ पहुँचे। मदारीने डमरू बजाया और बंदरने दोनों हाथ जोड़ लिये। भ्राताओंसहित श्रीराम हँस पड़े।

मदारी जैसे निहाल हो गया। डमरू और जोरसे बजा। बंदरने नाचना आरम्भ किया। वह झूम-झूमकर नाचने लगा।

भगवान् वृषभध्वज अपने एक अंशसे अपने प्राणाराध्यके सम्मुख नाच रहे थे और अपने दूसरे अंशसे स्वयं ही बजा रहे थे। नाचने और नचानेवाले आप ही थे—अपने प्राणधन

---

* ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥
(रुद्रहृदय उपनिषद् १७)

† ये त्वेवं शिशुमव्यक्तं मां च देवं महेश्वरम्।
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥
(कूर्मपुराण-ईश्वरगीता)

नुरागी पार्वतीवल्लभ और बंदरके नाचसे मुग्ध होकर बार-बार ताली बजानेवाले थे—सम्पूर्ण सृष्टिको नट-मर्कटकी भाँति नचानेवाले अखिलभुवनपति कौसल्या-कुमार भगवान् श्रीराम!

अन्तमें भगवान् श्रीराम प्रसन्न हो गये और मचल उठे—'मुझे यह बंदर चाहिये।'

चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामकी कामना कैसे अपूर्ण रहती। मदारी बंदरका मूल्य चाहे जो ले, पर बंदर तो कौसल्या-किशोरके पास ही रहेगा। मदारीको भी तो यही अभीष्ट था। इसी उद्देश्यसे—अपने प्रभुके चरणोंमें समर्पित होनेके लिये ही तो वह राजद्वारपर आया था। नव नीरद-वपु श्रीरामने अपने कर-कमलसे बंदरको ग्रहण किया—युग-युगकी लालसा पूर्ण हुई बंदरकी। वह नाच उठा—थिरक थिरककर नाचने लगा। अबतक भोलेनाथ बंदरके रूपमें अपनेको नचा रहे थे अब वे स्वयं नाच रहे थे और उन्हें नचानेवाले थे मुनि-मन मानस-मराल दशरथकुमार! बंदरके सुख, सौभाग्य और आनन्दकी सीमा न थी। वह विविध प्रकारके मनोमोहक हाव भाव प्रदर्शित करता हुआ अपने आराध्यके सम्मुख नृत्य करनेमें तन्मय था उधर मदारी अदृश्य हो गया। पता नहीं, वह कैलास शिखरपर चला गया या अपने परमप्रभुकी सुखद लीलाके दर्शनार्थ अपने दूसरे रूपमें प्रविष्ट हो गया।

इस प्रकार हनुमानजीने अपने स्वामी श्रीरामके समीप रहनेका अवसर प्राप्त कर लिया। श्रीराम हनुमानजीको अतिशय प्यार करते। वे हनुमानजीके समीप बैठते, उनके साथ खेलते, उनके सुवर्ण-तुल्य अङ्गोंपर अपने कर-कमल फेरते कभी उन्हें नाचनेके लिये आज्ञा देते तो कभी दौड़ाकर कोई वस्तु मँगवाते। हनुमानजी अपने प्रभुकी प्रत्येक आज्ञाका अत्यन्त आदर, उत्साह एवं प्रसन्नतापूर्वक पालन करते। वे प्रत्येक रीतिसे भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करते। भगवान् श्रीरामको जैसे सुख मिले, उनका जैसे मनोरञ्जन हो, वे वही करते।

इस प्रकार कई वर्षोंका समय क्षणार्धके समान व्यतीत हो गया। महर्षि विश्वामित्र अयोध्या पधारे और जब उनके साथ श्रीरामके जानेका अवसर आया तो उन्होंने हनुमानजीको एकान्तमें बुलाकर कहा—'मेरे अन्तरङ्ग सखा हनुमान! मेरे धराधामपर अवतरित होनेका प्रमुख कार्य अब प्रारम्भ होने वाला है। लङ्काधिपति रावणकी अनीति एवं अनाचारसे पृथ्वी विकल हो उठी है। अब मैं उसका वध कर पृथ्वीपर धर्मकी स्थापना करूँगा। मेरे इस कार्यमें तुम्हारी सहायता अपेक्षित होगी। दशाननने महाबली वालीको मित्र बना रखा है और वह अपने अनुज सुग्रीवके रक्तका प्यासा है। भयाक्रान्त सुग्रीव ऋष्यमूकपर्वतपर निवास कर रहे हैं। अतएव तुम ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर सुग्रीवसे मैत्री कर लो। मैं अपने यज्ञोंमें बसनेवाले मारीच, सुबाहु और ताड़काका उद्धार कर कुछ ही दिनोंमें दण्डकारण्यमें खर-दूषण, त्रिशिरा और शूर्पणखा जैसे भयानक कण्टकोंको दूर करता हुआ ऋष्यमूककी ओर आऊँगा। वहाँ तुम मुझसे सुग्रीवकी मैत्री स्थापित करवाकर वानर भालुओंके द्वारा मेरे अवतार-कार्यमें सहायता करना।'

हनुमानजी अपने प्रभुसे पृथक् होना नहीं चाहते थे, किंतु प्रभुकी आज्ञाका पालन ही उनके लिये सर्वोपरि कर्तव्य था। उन्होंने अपने प्राणाराध्यके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके मङ्गलमय-कल्याणमय मधुर नामका मन ही मन जप करते हुए वे ऋष्यमूकके लिये प्रस्थित हो गये।

सुग्रीव-सचिव

ऋक्षराजा वानरके दो पुत्र थे—वाली और सुग्रीव*। पिता अपने दोनों पुत्रोंको समान रूपसे प्यार करते थे। दोनों बालक अत्यन्त धीर, वीर, बलवान्, बुद्धिमान् एवं सुन्दर तो थे ही, दोनोंमें परस्पर अतिशय प्रीति थी। वाली सुग्रीवको प्राण तुल्य चाहते और सुग्रीव वालीके चरणोंमें पिताकी भाँति श्रद्धा रखते। दोनों भाई भोजन, शयन, क्रीडा, अटन आदि साथ ही करते—प्रायः सदा साथ रहते।

पिताके दिवंगत होनेपर मन्त्रियोंने ज्येष्ठ होनेके कारण वालीको वानर-समुदायके राज्य-पदपर अभिषिक्त किया। वे समस्त वानर जातिके प्राणाधिक प्रिय थे और उसी प्रकार

* वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम्। सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतां वरः॥
(वा० रा० १।१७।१०)

देवराज इन्द्रने वानरराज वालीको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया जो महेन्द्रपर्वतके समान विशालकाय और बलिष्ठ थे। तपनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्यने सुग्रीवको जन्म दिया।

भी पुत्रवत् प्यार करते। इस प्रकार वाली किष्किन्धाके विशाल राज्यका शासन करते और सुग्रीव श्रद्धा-भक्तिके कारण अत्यन्त विनीतभावसे दासकी भाँति अपने अग्रजकी सेवामें प्रस्तुत रहते।

उधर कपिराज केसरी अपनी सहधर्मिणीके साथ अपने प्राणप्रिय पुत्र हनुमानकी विरक्ति एवं एकान्तप्रियतासे अत्यधिक चिन्तित थे। वे कपियोंके यूथपति थे और ऋष्यमूकके समीप रहते थे। इस कारण उन्होंने हनुमानजीको राजनीतिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पम्पापुर भेजनेका निश्चय किया। मातृ पितृ भक्त हनुमानजीने माता पिताका आदेश प्राप्त होते ही उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लेकर वे पम्पापुरके लिये चल पड़े।

पवनकुमारके पम्पापुरमें आगमनका समाचार प्राप्त होते ही सुग्रीवने आगे जाकर उनका स्वागत किया। उनके देव दुर्लभ गुणोंसे परिचित होनेके कारण वालीने भी उनका अत्यधिक सम्मान किया और उन्हें बड़े ही आदरसे अपने पास रखा। हनुमानजी विद्वान्, बुद्धिमान्, बलवान्, धैर्यवान्, सदाचारपरायण एवं सरलताकी सजीव मूर्ति थे, इस कारण वाली इन्हें अपना अन्तरङ्ग बनाना चाहते थे। किंतु विद्या-वारिधि केसरीकुमारको अपनी गुरु-दक्षिणाकी स्मृति सदा बनी रहती। अतएव वे सुग्रीवके अभिन्न मित्र बन गये। सुग्रीवके हृदयमें भी इनके लिये अतिशय प्रीति थी।

जिस समय पवनात्मज हनुमान पम्पापुर पहुँचे, उस समय उस क्षेत्रके चारों ओर राक्षसोंके राज्य थे। एक ओर शक्तिशाली खर दूषणादि, दूसरी ओर विराध और तीसरी ओर देव द्विजद्रोही वीरवर दशाननका निष्कण्टक राज्य था। वानरराज वाली अप्रतिम वीर एवं योद्धा थे, इस कारण असुर उनसे सभीत रहा करते। वे उनके राज्यकी सीमामें उपद्रव करनेका साहस नहीं कर पाते; किंतु राक्षसोंकी दुष्टतासे अवगत होनेके कारण वाली निश्चिन्त होकर दुष्ट-दलनके लिये कहीं दूर जा भी नहीं सकते थे। परंतु केसरी-किशोरके पम्पापुरमें प्रवेश करते ही उनकी यह चिन्ता प्रायः दूर हो गयी। माता अञ्जनाने अपने अलौकिक पुत्रको राक्षसोंकी अनेक कथाएँ सुनायी थीं, इस कारण हनुमानजीके मनमें बाल्यकालसे ही राक्षसोंके प्रति रोष उत्पन्न हो गया था। अतः उनकी दृष्टिमें पड़ जानेपर किसी राक्षसका सुरक्षित बच निकलना सम्भव नहीं था। वे असुरोंको खोज-खोजकर उनका प्राण हरण करते और असुर उनके नामसे ही काँपते थे। वाली

हनुमानजीकी सरलता और साधुताके साथ उनकी अद्भुत वीरता, धीरता और पराक्रमको देखकर चकित हो रहते।

वीरवर वाली और सुग्रीवकी अद्भुत प्रीतिकथा सर्वत्र प्रख्यात थी। वे दोनों प्रत्येक दृष्टिसे सुखी थे, किंतु दैव नियतिकी निर्दयताकी सीमा नहीं। उसने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे दोनों अपने सहज प्रेमको भूलकर एक दूसरे-रक्तपिपासु बन गये।

उस समय मयका पुत्र मायावी नामक दानव अपने शक्ति एवं वीरताके गर्वसे उन्मत्त होकर सर्वत्र घूमता फिरता था। एक दिनकी बात है कि अर्धरात्रिके समय वह दानव असुर किष्किन्धाके द्वारपर आकर वालीका ललकारते हुए भयानक गर्जन करने लगा।

अप्रतिम वीर वाली शत्रुका आह्वान सुनते ही उसका सुख-मर्दन करनेके लिये सदैव प्रस्तुत रहते थे। वे उस समय निद्रामें थे, किंतु असुरकी ललकार सुनते ही शय्यासे उठकर तुरंत दौड़ पड़े। अग्रजको शत्रुके सम्मुख जाते देखकर सुग्रीव भी उनके पीछे दौड़े। असुरने जब वालीको और उनके पीछे सुग्रीवको भी आते देखा तो वह भयभीत होकर तेजीसे भागा। दोनों भाइयोंने भी उसी गतिसे उसका पीछा किया।

अत्यधिक दूर जानेपर उसे घास-फूससे ढका हुआ एक विशाल विवर मिला। असुर उसी विवरमें प्रविष्ट हो गया। क्रोधोन्मत्त वाली सुग्रीवको वहीं द्वारपर सावधानीसे साथ खड़ा रहनेका आदेश देकर स्वयं विवरमें घुस गये।

वालीने अपने भाई सुग्रीवको पंद्रह दिनोंतक विवर द्वारपर सावधानीपूर्वक प्रतीक्षा करनेका आदेश दिया था, किंतु सुग्रीव एक मासतक वहाँ सतर्क होकर डटे रहे। वे विवरके द्वारपर कान लगाकर कुछ सुननेका प्रयत्न करते, पर वालीके स्थानपर राक्षसोंका कोलाहल सुनायी पड़ता था। सुग्रीव अपने अग्रजके लिये मन ही-मन चिन्तित थे कि उनके सम्मुख विवरसे फेनसहित रक्तकी धारा निकली। भातृ-भक्त सुग्रीव व्याकुल हो गये। उनके मनमें भाँति-भाँतिके तर्क होने लगे।

बहुत ध्यान देनेपर भी जब उन्हें भाईका स्वर एवं सुनायी नहीं पड़ा, तब उन्होंने समझा—'इस विवरमें छिपे असुरोंने मिलकर मेरे प्राणाधिक प्रिय अग्रजको मार डाला है और अब ये बाहर आकर मुझे भी जीवित नहीं छोड़ेंगे।'

अत्यन्त दुःखी सुग्रीवने अपनी रक्षाके लिये वहीं पड़ा एक विशाल चट्टानसे विवरका मुख बंद कर दिया और दुःखी मन पम्पापुरको जलाञ्जलि देकर वे किष्किन्धा लौट आये।

सुग्रीव अपने अग्रजकी मृत्युका संवाद अप्रकट रखना चाहते थे, किंतु चतुर मन्त्रियोंने युवराज अङ्गदको छोटा देखकर सुग्रीवको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया । वे नीतिपूर्वक राज्यके दायित्वका निर्वाह करने लगे ।

उधर वीरवर वाली असुरके समस्त साथियोंका वध कर नी लौटे । जब उन्होंने अनुज सुग्रीवको अपने स्थानपर का उपभोग करते देखा, तब उनके नेत्र क्रोधसे लाल उन्होंने सोचा—'इसी स्वार्थी भाईने मेरी स्त्री और र प्राप्त करनेके लिये विवर-द्वारपर विशाल चट्टान जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ और वहीं मेरा जाय ।' यह विचार मनमें आते ही प्रज्वलित अग्निमें घृताहुति पड़ गयी । वाली क्रोधोन्मत्त हो गये ।

सुग्रीवने क्रोधारुणलोचन अपने बड़े भाईको देखते ही उनका राज्य वापस कर दिया और वे उन्हें वस्तुस्थिति समझानेका प्रयत्न करने लगे, किंतु अतिशय क्रुद्ध वाली सुग्रीवके कट्टर शत्रु हो गये थे । उन्होंने राज्यसहित सुग्रीव-पत्नी रुमाको अपने अधिकारमें कर लिया । वे सुग्रीवका वध भी कर डालना चाहते थे । सुग्रीव प्राण-रक्षाके लिये मन्त्रियोंसहित भाग खड़े हुए ।

भयभीत सुग्रीव भागे जा रहे थे और वाली उन्हें मार डालनेके लिये उनके पीछे लगे थे । नद-नदियों, वनों, पर्वतों, समुद्रों एवं नगरोंको छोड़ते सुग्रीव दौड़ते जा रहे थे । कहीं कुछ दिन भी रुकनेका साहस उनमें न रह गया था—वाली जो प्राणघातक शत्रुकी तरह पीछे लगे थे ।

भागते-दौड़ते सुग्रीव हिमालय, मेरु और उत्तर समुद्र तक जाकर भी वालीसे अपना पीछा न छुड़ा सके । उन्हें कहीं शरण नहीं मिली । तब उनके साथ निरन्तर छायाकी भाँति रहनेवाले ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमान्‌जीको दुन्दुभि-वध*की घटना स्मरण हो आयी ।

---

*महिषके वेषमें रहनेवाले दुन्दुभि नामक दैत्यमें एक सहस्र हाथियोंका बल था । उसे अपनी शक्तिका बड़ा अहंकार था । एक बारकी बात है कि वह समुद्र और हिमवान्‌का तिरस्कार कर गर्जना करता हुआ वीरशिरोमणि वालीसे युद्ध करनेके लिये किष्किन्धापुरीके द्वारपर जाकर जोर-जोरसे दुन्दुभि-नादकी तरह गर्जना करने लगा । दुन्दुभि अपने खुरोंसे पृथ्वीको खोदता, वृक्षोंको नष्ट करता और पुरीके द्वारको सींगोंसे तोड़नेका प्रयत्न करता हुआ युद्धका आह्वान कर रहा था ।

उसकी गर्जना सुनकर परमपराक्रमी वाली अमर्षसे भरे हुए बाहर निकले । उस समय उनके कण्ठमें इन्द्रप्रदत्त विजयप्रदायिनी सुवर्णमाला सुशोभित थी । वे दुन्दुभिको देखते ही उससे युद्ध करनेके लिये सावधानीसे खड़े हो गये । वह उनपर अपने सींगोंसे आक्रमण करनेके लिये अत्यन्त वेगपूर्वक झपटा ही था कि वालीने उसके दोनों सींग कसकर पकड़ लिये । महिषके सींग जैसे वज्रमुष्टिमें बँध गये । वाली दुन्दुभि-दैत्यके सींग पकड़कर उसे चारों ओर घुमाने लगे ।

उस समय वाली क्रोधकी भयानक मूर्ति बन गये थे । वे बार-बार जोर-जोरसे गर्जन कर रहे थे । इस प्रकार पहले तो उन्होंने उस पर्वताकार दैत्यको चारों ओर घुमाया और फिर उसे बलपूर्वक पृथ्वीपर पटक दिया । दुन्दुभिके दोनों कानोंसे रुधिरकी धाराएँ बहने लगीं ।

अमितशक्तिशाली दुन्दुभि उठा और तुरंत वालीसे भिड़ गया । परमपराक्रमी असुर और वानरराज वालीमें युद्ध होने लगा । दोनों एक-दूसरेको मार डालना चाहते थे । दुन्दुभि अपने खुरों और सींगोंसे वालीपर आक्रमण करता जा रहा था और वाली मुक्कों, लातों, घुटनों, शिलाओं और वृक्षोंसे दुन्दुभिपर प्रहार कर रहे थे ।

वीरवर वालीके बार-बारके असह्य प्रहारसे दुन्दुभि शिथिल होने लगा किंतु वाली उसपर आक्रमण करते ही जा रहे थे । अन्ततः उन्होंने उस दुर्दमनीय दानवको उठाकर अपनी पूरी शक्तिसे पृथ्वीपर पटक दिया और स्वयं कूदकर उसपर चढ़ गये । वालीका असह्य भार वह सह न सका । उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रक्त प्रवाहित होने लगा और तुरंत ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ।

दुन्दुभिके मर जानेपर कुपित वालीने उसके शवको उठाकर एक योजन दूर फेंक दिया, जो महामुनि मतङ्गके आश्रमके अंदर गिरा । वेगपूर्वक फेंके जानेके कारण मृत असुरके शरीरसे बहते हुए रक्तकी कुछ बूँदें महामुनिके शरीरपर भी पड़ गयीं ।

अपने शरीरपर रक्तके पड़े छींटे देखकर महामुनि चिन्ता करते हुए उसके कारणकी खोज करने लगे तो उन्हें पर्वताकार मृत महिष दिखायी पड़ा । उन परम तपस्वी ऋषिको अपने मन-ही-मन समझते देर न लगी कि यह कुकृत्य किसका है । अतः उन्होंने तुरंत वालीको शाप दे दिया कि 'यदि वह इस आश्रममण्डलमें प्रवेश करेगा तो उसके मस्तकके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे ।'

'लिए दुओ जन पीठि चढ़ाई' [पृष्ठ २६२

श्रीरामद्वारा मुद्रिका प्रदान [पृष्ठ २६७

श्रीजाम्बवानद्वारा प्रोत्साहन [पृष्ठ २७१

श्रीहनुमानजीकाप

मैनाकका सम्मान [पृष्ठ २७४

सुरसाके मुखमें [पृष्ठ २७

श्रीसीताजीको श्रीरामकी मुद्रिका देना [पृष्ठ २८१

अशोकवाटिका-विध्वंस [पृष्ठ २८

विश्वासी पुरुषोंपर ही प्रहार कर बैठते हैं।* वाली इसमें बड़ा पटु है। अतएव कपिश्रेष्ठ! तुम सामान्य व्यक्तिकी भाँति इनके समीप जाकर इनका तथा इनके मनोभावोंका परिचय प्राप्त कर लो। यदि इन्हें वालीने भेजा हो तो तुम वहींसे संकेत कर देना मैं मन्त्रियोंसहित इस पर्वतसे तुरत भागकर अन्यत्र शरण लूँगा।'

पवनकुमार अपने प्राणधन महाधनुर्धर श्याम-गौर श्रीराम-लक्ष्मणको पहचान नहीं रहे थे, किंतु उनके दायें अङ्ग फड़क रहे थे। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये और हृदय बरबस उनकी ओर आकृष्ट हो रहा था।

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवका उद्देश्य समझकर पवनकुमार ऋष्यमूकपर्वतसे उछलते हुए चले। मार्गमें उन्होंने ब्राह्मणका वेष धारण कर लिया। अभूतपूर्व एवं अश्रुतपूर्व सौन्दर्यसे युक्त श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन कर हनुमानजीकी अत्यन्त विचित्र दशा हो गयी। उनका मस्तक स्वतः उनके चरणोंमें झुक गया। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाली विनम्र वाणीमें पूछा—'वीरवर! श्याम और गौर वर्णवाले अन्यतम सुन्दर पुरुष आपलोग कौन हैं? निश्चय ही आपलोग वीरपुंगव क्षत्रियकुमार हैं। किंतु आप अत्यन्त कोमल हैं और यहाँ पर्वत और वन अत्यन्त भयानक हैं, सर्वत्र व्याघ्रादि हिंस्र पशुओंका भय है। मार्ग कंकड़ों, पत्थरों एवं कुश-कण्टकोंसे भरा पड़ा है। आपके चरण-कमलोंके उपयुक्त यह कठोर भूमि कदापि नहीं है। फिर भी आपलोग किस कारण इस निर्जन वनमें विचरण कर रहे हैं?'

हनुमानजीने आगे कहा—'मैं आपलोगोंका तेजस्वी स्वरूप देखकर चकित हो रहा हूँ। कोई साधारण क्षत्रियकुमार इतना तेजस्वी नहीं हो सकता। लोकोत्तर तेजोमय पुरुष आप कौन हैं? कृपापूर्वक बता दें कि आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हैं या आप नर और नारायण हैं? अथवा आप निखिल सृष्टिके स्वामी स्वयं परब्रह्म परमात्मा तो नहीं हैं, जो भू-भार हरणार्थ युगल रूपोंमें अवतरित होकर मुझे सनाथ करने यहाँ पधारे हैं?'

बातचीत करनेमें कुशल हनुमानजीके चुप होते ही भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'भाई लक्ष्मण! इनके विद्वत्तापूर्ण शुद्ध उच्चारणसे स्पष्ट है कि ये व्याकरण शास्त्रके पारंगत विद्वान् तो हैं ही, इन्होंने वेदोंका गहन अध्ययन भी किया है। निश्चय ही इन्होंने समस्त शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया है, क्योंकि ये संस्कार[1] और क्रमसे[2] सम्पन्न, अद्भुत, अविलम्बित[3] तथा हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाली कल्याणमयी वाणीका उच्चारण करते हैं। हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीनों स्थानोंद्वारा स्पष्टरूपसे अभिव्यक्त होनेवाली इनकी इस विचित्र वाणीको सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा! वध करनेके लिये तलवार उठाये हुए शत्रुका हृदय भी इस अद्भुत वाणीसे बदल सकता है।† तुम इनसे बातें करो।'

अग्रजका आदेश प्राप्त होते ही सुमित्रानन्दनने ब्राह्मण वेषधारी पवनकुमारसे कहा—'भगवन्! हम दोनों अयोध्याके प्रख्यात धर्मात्मा राजा दशरथके पुत्र हैं। ये मेरे बड़े भाई हैं, इनका नाम श्रीराम है और मेरा लक्ष्मण। पिताकी आज्ञासे हम चौदह वर्षोंके लिये अरण्यवास करने आये हैं। यहाँ पञ्चवटीमें इनकी सती पत्नी सीताको किसी राक्षसने छलपूर्वक हरण कर लिया। हमलोग इस बीहड़ वनमें उन्हें ही ढूँढ़ते फिर रहे हैं। आप कौन हैं? कृपया अपना परिचय दीजिये।'

पवनकुमार सुमित्रानन्दनसे युगल रूपोंका परिचय तो प्राप्त कर रहे थे, किंतु उनका ध्यान केन्द्रित था जटा-जालसे सुशोभित नवनीरद-वपु श्रीरामके मुखारविन्दपर। भुवनमोहन रूप जैसे उनके रोम-रोममें प्रविष्ट हो रहा था। उनके नेत्र सजल एवं अङ्ग पुलकित थे। अपने प्रभुका परिचय प्राप्त होनेपर तो उन्हें अपनी सुधि भी न रही। पवनकुमार प्राणाराम श्रीरामके त्रैलोक्य दुर्लभ पावन पद-पद्मोंमें साष्टाङ्ग

* अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः । विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्ति हि ॥
(वा० रा० ४।२।२२)

1 व्याकरणके नियमानुकूल शुद्ध वाणीको 'संस्कार-सम्पन्न' (संस्कृत) कहते हैं।

2 उच्चारणकी शास्त्रीय परिपाटीका नाम 'क्रम' है।

3 बिना रुके धाराप्रवाह रूपसे बोलना 'अविलम्बित' कहलाता है।

† संस्कारक्रमसम्पन्नामद्रुतामविलम्बिताम् । उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम् ॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया । कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥
(वा० रा० ४।३।३३)

मेरी प्राणप्रिय पत्नीको मुझसे छीनकर अत्यन्त क्रूरता पूर्वक मुझे निकाल दिया। मैं उन्हींके त्रास और भयसे उद्भ्रान्तचित्त होकर इस पर्वतपर निवास करता हूँ। आप मुझे अभय कर दीजिये।'

भगवान् श्रीरामने वचन दिया—'मित्र सुग्रीव! मैं वालीको अपने एक ही बाणसे मार डालूँगा। विश्वास करो, मेरे अमोघ बाणसे उसके प्राणोंकी रक्षा किसी प्रकार सम्भव नहीं।'

× × ×

वाल्य—निखिल भुवनपावन भगवान् श्रीरामके एक ही बाणसे वाली मारे गये। त्रैलोक्यत्राता श्रीरामके सम्मुख उन्होंने अपने भौतिक कलेवरका त्याग किया। पतिकी मृत्युका संवाद सुनकर वालीकी पत्नी तारा वहाँ आकर करुण क्रन्दन करने लगी। उस समय ताराको समझाते हुए परम वीतराग हनुमानजीने कहा—

गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्मफलहेतुकम्।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम्॥
शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे।
कस्य कस्यानुशोच्योऽसि देहेऽस्मिन् बुद्बुदोपमे॥
जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम्।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डिते नेह लौकिकम्॥

(वा० रा० ४। २१। २-३, ५)

'देवि! जीवके द्वारा गुण-बुद्धिसे अथवा दोष-बुद्धिसे किये हुए जो अपने कर्म हैं, वे ही सुख-दुःखरूप फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। परलोकमें जाकर प्रत्येक जीव शान्तभावसे रहकर अपने शुभ और अशुभ—सभी कर्मोंका फल भोगता है। तुम स्वयं शोचनीया हो, फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो? स्वयं दीन होकर किस दीनपर दया करती हो? पानीके बुलबुलेके समान इस शरीरमें रहकर कौन जीव किस जीवके लिये शोचनीय है! देवि! तुम विदुषी हो, अतः जानती ही हो कि प्राणियोंके जन्म और मृत्युका कोई निश्चित समय नहीं है। इसलिये शुभ (परलोकके लिये सुखद) कर्म ही करना चाहिये। अधिक रोना-धोना आदि जो लौकिक कर्म (व्यवहार) है, उसे नहीं करना चाहिये।'

पवनकुमारने ताराको समझाते हुए यही भी कहा—

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया।
आयत्या च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय॥

(वा० रा० ४। २१। ४)

'तुम्हारे पुत्र कुमार अङ्गद जीवित हैं। अब तुम्हें इन्हींकी ओर देखना चाहिये और इनके लिये भविष्यमें जो उन्नतिके साधक श्रेष्ठ कार्य हों, उनका विचार करना चाहिये।'

वालीका अन्त्येष्टि-संस्कार हुआ। श्रीलक्ष्मणजीने कपिराज सुग्रीवको किष्किन्धाधिपतिके पदपर सविधि अभिषिक्त कर दिया। वाली-पुत्र अङ्गद युवराज हुए। सुग्रीवको धन-सम्पत्ति, राज्य और पत्नी आदि सभी अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त हो गयीं। अशरणशरण श्रीरामकी कृपासे क्या नहीं प्राप्त होता!

सुग्रीव किष्किन्धामें रहने लगे; किंतु पिताकी आज्ञाका आदर करते हुए भगवान् श्रीरामने नगरमें प्रवेश नहीं किया। वे चातुर्मास्य व्यतीत करनेके लिये प्रस्रवण-गिरिपर चले गये।

आञ्जनेय प्रतिक्षण अपने परमाराध्य परमप्रभु श्रीरामके चरणोंमें ही रहना चाहते थे, किंतु सुग्रीवने अभी-अभी राज्य पदका दायित्व ग्रहण किया था, कार्य-सम्पादनके लिये निपुण सचिवकी नितान्त आवश्यकता थी, इस कारण लोकोपकारी श्रीरामने उन्हें सुग्रीवके कार्यमें सहयोग प्रदान करनेकी आज्ञा दी। हनुमानजीके लिये प्रभुका आदेश ही सर्वोपरि कर्तव्य है। वे किष्किन्धामें सुग्रीवके समीप रहने लगे।

सुग्रीवको सत्परामर्श-दान

भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मणके साथ अपनी प्राणप्रिया जनकदुलारीकी चिन्ता करते हुए प्रवर्षण गिरिपर वर्षाके दिन व्यतीत करने लगे और कपिराज सुग्रीव धन सम्पत्ति, राज्य एवं अपनी पत्नी रुमाके साथ अनिन्द्य सुन्दरी ताराको भी प्राप्त कर अत्यन्त प्रमुदित थे। वे निश्चिन्त होकर राज्यके भोगोंका उपभोग करने लगे। वे राज्य-सुखमें इतने तन्मय हुए कि उन्हें अपने परम हितैषी प्रभु श्रीरघुनाथजी की मैत्री, उनका उपकार तथा उनके प्रति अपने दायित्वका ध्यान भी नहीं रह गया। किंतु पवनपुत्र हनुमान शास्त्रके निश्चित सिद्धान्तको जाननेवाले व कर्तव्याकर्तव्यका उन्हें यथार्थ ज्ञान था। मातान्तरकी करनेमें सुदृढ़ श्रीहनुमानजी [illegible]

अनाथ और शरणागत समझकर मेरा तिरस्कार कर रहा है। अतएव तुम जाकर स्पष्ट शब्दोंमें उससे कह दो—'जो बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करनेवाले कार्यार्थी पुरुषोंको प्रतिज्ञापूर्वक आशा देकर पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसारके सभी पुरुषोंमें नीच है। जो अपने मुखसे प्रतिज्ञाके रूपमें निकले हुए भले या बुरे—सभी तरहके वचनोंको अवश्य पालनीय समझकर सत्यकी रक्षाके उद्देश्यसे उनका पालन करता है, वह वीर समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ माना जाता है।'*

भगवान् श्रीरामने दुःखी हृदयसे अपने अनुजसे आगे कहा—'उस दुरात्मासे कह दो, मेरे शरसे मारा गया वाली जिस मार्गसे गया है, वह मार्ग बंद नहीं हुआ है। उस समय तो अकेले वालीको ही मैंने मारा था, किंतु यदि तुमने अपने वचनका पालन नहीं किया तो मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित कालके हवाले कर दूँगा।'

अपने ज्येष्ठ भाई श्रीरामके वचन सुनते ही सुमित्रानन्दन रोषमें भर गये। उन्होंने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'विषय-भोगोंमें आसक्त बुद्धिहीन वानरने अग्निदेवकी साक्षीमें मैत्री स्थापित की, किंतु स्वार्थ सिद्ध हो जानेपर उसकी नीयत बदल गयी है। मैं मिथ्यावादी सुग्रीवको अभी मारकर अङ्गदको राज्याभिषिक्त करता हूँ। अब वे ही राजा होकर वानर-वीरोंके द्वारा सीतादेवीका पता लगायें।'

धनुष-बाण हाथमें लिये क्रुद्ध लक्ष्मणको सुग्रीव-वधके लिये प्रस्थान करते देखकर अत्यन्त धीर एवं गम्भीर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने उन्हें समझाते हुए कहा—'लक्ष्मण! तुम्हारे-जैसे श्रेष्ठ वीर पुरुषको मित्र-वधका निषिद्ध कर्म करना उचित नहीं। जो उत्तम विवेकके द्वारा अपने क्रोधको मार देता है, वह वीर समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ है।† वत्स! सुग्रीव मेरा मित्र है, तुम उसे मारना मत। केवल यह कहकर कि तुम भी वालीके समान मारे जाओगे उसे डराना और शीघ्र ही उसका उत्तर लेकर आ जाना।'‡

'जैसी आज्ञा!' इक्ष्वाकुकुलनन्दन वीरवर सुमित्रानन्दनने श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने भयंकर धनुष-बाणको हाथमें लिये हुए वे किष्किन्धाके लिये चल पड़े। उस समय क्रोधके कारण उनकी आकृति अत्यन्त भयावह हो गयी थी। उनके अधर फड़क रहे थे। लक्ष्मण अत्यधिक रोषके कारण मार्गके वृक्षोंको गिराते और पर्वत-शिखरोंको उठा-उठाकर दूर फेंकते जा रहे थे। उस समय वे प्रलयकालके समान प्रतीत हो रहे थे।

किष्किन्धाके समीप पहुँचकर श्रीरामानुजने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका भयंकर टङ्कार किया। उस समय कुछ सामान्य वानर नगरके परकोटेपर अपने हाथोंमें पत्थर और वृक्ष लेकर किलकारी मारने लगे। कुपित लक्ष्मणकी क्रोधाग्निमें जैसे घृताहुति पड़ गयी। प्रज्वलित प्रलयाग्नि-तुल्य लक्ष्मणने अपने विशाल धनुषपर भयानक बाण चढ़ाया ही था कि किष्किन्धाके समस्त वानर वीर काँप उठे। लक्ष्मण किष्किन्धाका मूलोच्छेद करनेके लिये प्रस्तुत हो गये।

नगर-निवासियोंने अत्यधिक आकुल होकर युवराज अङ्गदने लक्ष्मणजीके समीप पहुँचकर अत्यन्त आदरपूर्वक उनके चरणोंमें शीश झुकाया। उनको देखकर दयाके आगार भ्रातृभक्त लक्ष्मणका रोष शान्त हो गया। उन्होंने युवराजसे प्रसन्न हृदयसे कहा—'वत्स! तुम यथाशीघ्र सुग्रीवके समीप जाकर कहो कि श्रीरामानुज लक्ष्मण कुपित हैं और उन्हींकी प्रेरणासे मैं यहाँ आया हूँ।'

'बहुत अच्छा!'—अङ्गदने विनम्रताके साथ हाथ जोड़कर विदा ली और सुग्रीवके समीप पहुँचे। अङ्गदके द्वारा श्रीलक्ष्मणजीके आनेकी बात ज्ञात होते ही सुग्रीव भयाक्रान्त हो गये। उन्होंने तत्काल श्रीरामानुजको अनुकूल बनानेके लिये पवनकुमारको भेजा।

हनुमानजीने श्रीलक्ष्मणजीके समीप जाकर उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और फिर उन्होंने अत्यन्त

* अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्। आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्। सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः॥
(वा० रा० ४। ३०। ७१-७२)

† क्रोधमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः॥ (वा० रा० ४। ३१। ६)

‡ न स हन्तव्यस्तावत् वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा॥
किंतु भीषय सुग्रीवं वालिवध निदर्शने। ब्रूयास्त्वा ... सुग्रीवं ...
(वा० रा० ४। ३१। ११-१२) [illegible]

मैन्द, गज, पनस, वलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार तथा हनुमानके पिता महाबली और परम धीर केसरी—ये मेरे प्रधान यूथपति हैं। इनके अधीन पर्वततुल्य विशालकाय कोटि-कोटि वानर-वीर हैं। ये सब-के-सब युद्धभूमिमें आपके लिये सहर्ष प्राण दे देंगे। आप इन्हें इच्छानुसार आज्ञा प्रदान कीजिये।'

सर्वान्तर्यामी श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवसे कहा—'सुग्रीव! तुम मेरा कार्य जानते ही हो। यदि उचित समझो तो इन्हें यथाशीघ्र जानकीको खोजनेके लिये नियुक्त कर दो।'

सुग्रीवने समस्त यूथपतियोंको सावधानीपूर्वक सर्वत्र श्रीसीताजीका पता लगानेके लिये आज्ञा देते हुए कहा

> विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम्।
> मासादर्वाङ्निवर्तध्वं मत्प्रसादपुरस्सराः॥
> सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत्।
> तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः॥
>
> (अ० रा० ४। ६। २५-२६)

'मेरी आज्ञासे तुम सब लोग बड़े प्रयत्नसे जानकीजीकी खोज करो और एक मासके भीतर ही लौट आओ। यदि श्रीसीताजीको बिना देखे तुम्हें एक माससे एक दिन भी अधिक हो जायगा तो हे वानरो! याद रखो तुम्हें मेरे हाथसे प्राणान्त दण्ड भोगना पड़ेगा।'*

इस प्रकार सुग्रीवने वानर और भालुओंके यूथपतियोंको सीताका शीघ्र पता लगानेके लिये कठोरतम आदेश प्रदान किया। उन्होंने समस्त दिशाओंमें अनेकों वानरोंको भेजकर दक्षिण दिशामें अधिक प्रयत्नसे साथ ही युवराज अङ्गद जाम्बवान्, हनुमान, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविद आदिको भेजा। उस समय उन्होंने वीरवर हनुमानकी प्रशंसा करते हुए उनसे कहा—

'कपिश्रेष्ठ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देवलोक अथवा जलमें भी तुम्हारी गतिका अवरोध मैं कभी नहीं देखता हूँ। असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र तथा पर्वतोंसहित सम्पूर्ण लोकोंका तुम्हें ज्ञान है। वीर! महाकपे! सर्वत्र अबाधित गति, वेग, तेज और स्फूर्ति—ये सभी सद्गुण तुममें अपने महापराक्रमी पिता वायुके ही समान हैं। इस भूमण्डलमें कोई भी प्राणी तुम्हारे तेजकी समानता करनेवाला नहीं है। अतः जिस प्रकार श्रीसीताजीकी उपलब्धि हो सके, वह उपाय तुम्हीं सोचो। हनुमान! तुम नीतिशास्त्रके पण्डित हो। एकमात्र तुम्हींमें बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण तथा नीतिपूर्ण बर्ताव एक साथ देखे जाते हैं।'†

इस प्रकार श्रीपवनकुमारका गुणगान करते हुए समस्त वानरोंको श्रीसीतान्वेषणार्थ आदेश देकर सुग्रीव श्रीरघुनाथजीके समीप बैठ गये। वीर वानर और भालू कमलनयन श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके जाने लगे। सबके अन्तमें जब श्रीपवनपुत्र प्रभुके समीप पहुँचे, तब भगवान् श्रीरामने उनसे कहा—'वीरवर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य, बल-पराक्रम और सुग्रीवका सन्देश—इन सब बातोंसे लगता है कि निश्चय ही तुमसे मेरे कार्यकी सिद्धि होगी। तुम मेरी यह अँगूठी ले जाओ। इसपर मेरे नामाक्षर खुदे हुए हैं। इसे अपने परिचयके लिये तुम एकान्तमें सीताको देना। कपिश्रेष्ठ! इस कार्यमें तुम्हीं समर्थ हो। मैं तुम्हारा बुद्धि-बल अच्छी तरह जानता हूँ। अच्छा, जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।'‡

पवनकुमारने प्रभुकी मुद्रिका अत्यन्त आदरपूर्वक अपने [illegible] और उनके चरण-कमलोंमें अपना मस्तक रख दिया। भक्तवत्सल प्रभुका कर-कमल स्वतः उनके मस्तकपर

---

* जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥ अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥

(मानस ४। २१। ४)

† न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये। नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव॥
सासुराः सगन्धर्वाः सनागनरदेवताः। विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः॥
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे। पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते। तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः। देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥

(वा० रा० ४। ४४। ३-७)

‡ अभिज्ञानार्थमेतन्मे [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] ॥
अभिज्ञ [illegible] प्रसन्न हि समेत्य कपिसत्तम। [illegible] [illegible] ॥

([illegible])

इस गुफामें तुम्हारे पास आयेंगे। तुम भक्ष्य, भोज्य एवं मधुर जलसे उनका स्वागत कर उन परमप्रभु श्रीरामके पास चली जाना। उनके दर्शन कर उनसे प्रीतिपूर्वक प्रार्थना करना; उनकी दयासे तुम योगि-दुर्लभ श्रीविष्णुके आनन्दमय नित्यधाममें चली जाओगी।'॥"

अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक श्रीहनुमानजीकी ओर देखती हुई तपस्विनीने पुनः कहा—'मैं दिव्य नामक गन्धर्वकी पुत्री स्वयम्प्रभा हूँ। आज यहाँ तुमलोगोंके पवित्र चरण पड़नेसे मेरा भाग्य-सूर्य उदित हुआ है। अब मैं अपने प्राणाराम परमप्रिय प्रभु भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ जानेके लिये आतुर हो रही हूँ। तुमलोग अपने-अपने नेत्र बंद कर लो; तुरंत इस गुफासे बाहर पहुँच जाओगे। तुम सीताजीको पा जाओगे। निराश मत होओ।'*

महाभागा स्वयम्प्रभाके आदेशानुसार वानर भालुओंका वह विशाल समुदाय नेत्र बंद करते ही गुफाके बाहर अरण्यमें पहुँच गया।

सम्पातिद्वारा सीताका पता लगना

वानर भालू पुनः श्रीजनकनन्दिनीकी खोजमें लगे। अत्यधिक श्रमके साथ खोज करनेपर भी दशाननकी भार्या श्रीसीताजीका कहीं पता नहीं चला। थके हुए वानर भालू बैठकर परस्पर विचार करने लगे कि 'क्या किया जाय?' उस समय अत्यन्त दुःखित होकर अङ्गदने कहा—'इस कन्दरामें घूमते हुए सम्भवतः एक मास बीत गया। राजा सुग्रीवकी दी हुई अवधि समाप्त हो गयी और भगवती सीताका पता नहीं चला। अब किष्किन्धा लौटनेपर तो हम निश्चय ही मारे जायँगे। मुझे तो वे छोड़ ही नहीं सकते, अवश्य मार डालेंगे; कारण मैं उनके शत्रुका पुत्र हूँ। मेरी रक्षा तो परमात्मा श्रीराम श्रीरामजीने की है। अब प्रभुका कार्य पूरा न करनेका बहाना पाकर वे मुझे किस प्रकार जीवित छोड़ सकते हैं! अतएव मैं तो लौटूँगा नहीं, किसी-न-किसी प्रकार यहीं अपना शरीर त्याग दूँगा।'

इस प्रकार साश्रुनयन युवराजका विलाप करते देखकर वानरोंको बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक अङ्गदसे कहा—'आप चिन्ता न करें। हम सब अपने प्राण देकर भी आपके जीवनकी रक्षा करेंगे। हम सब अमरावतीपुरीकी सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न इस गुफामें ही सुखपूर्वक रहेंगे।'

वानरोंके द्वारा धीरे-धीरे कही गयी इन बातोंको सुनकर गम्भीरहृदय पवननन्दनने युवराजको आश्वस्त करते हुए अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा—'युवराज! तुम व्यर्थकी चिन्ता कैसे करने लगे? तुम महारानी ताराके प्राणप्रिय पुत्र होनेके कारण सुग्रीवके भी सहज ही प्रिय हो और तुममें श्रीरामचन्द्रकी प्रीति तो प्रतिदिन लक्ष्मणसे भी अधिक बढ़ती जा रही है। वानरोंने जो तुम्हें इस गुफामें निष्कण्टक रहनेका परामर्श दिया है, वह व्यर्थ है, क्योंकि त्रैलोक्यका कोई भी स्थल श्रीरघुनन्दनके बाणोंसे अभेद्य नहीं है। स्त्री-पुत्रोंसे कभी पृथक् न रहनेवाले ये वानर तुम्हें उचित परामर्श नहीं दे रहे हैं।'

पवनपुत्रने अत्यन्त प्रेमपूर्वक अङ्गदको समझाते हुए आगे कहा—'इसके अतिरिक्त बेटा! मैं एक अत्यन्त गुप्त रहस्य और बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। भगवान् श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् निर्विकार श्रीनारायणदेव हैं। भगवती सीताजी जगन्मोहिनी माया हैं और लक्ष्मणजी त्रिभुवनाधार साक्षात् नागराज अनन्त हैं। ये सब ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे राक्षसोंके विनाश करनेके लिये माया-मानवरूपमें उत्पन्न हुए हैं। हममेंसे प्रत्येक विष्णुकी ही रक्षा करनेमें सहाय हैं।† हमारा तो परम सौभाग्य है कि हम परमप्रभुकी लीलाके कार्यमें निमित्त बन रहे हैं।'

इस प्रकार युवराज अङ्गदको धैर्य प्रदान करनेके अनन्तर परमपराक्रमी रामदूत श्रीहनुमान् जाम्बवान् और अङ्गद आदि वानरोंके साथ माता सीताको ढूँढ़ते हुए धीरे-धीरे दक्षिण-समुद्रके तटपर महेन्द्राचलके पास उतरकर जा पहुँचे। वहाँ सामने अगाध एवं असीम महासागरको

---

* मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥ (मानस ४।२४।२)

† अन्यद् गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत। रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः॥
सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी। लक्ष्मणो भुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः॥
ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे रक्षोगणविनाशने। मायामानुषभावेन जाता [illegible]॥
(अ० रा० ४।७।१६—[illegible])

"अङ्गदके वचन सुनकर विहग प्रसन्न हो सम्पातिने कहा—'हे कपीश्वरो! जटायु मेरा परमप्रिय भाई है। आज कई सहस्र वर्षोंके अनन्तर मैंने भाईका समाचार सुना है'। फिर उन्होंने कहा—

वाङ्मात्रेण हि सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः ॥
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तन्नात्र संशयः ।
(वा० रा० ४। ५९। २४-२५)

'मैं वाणी और बुद्धिके द्वारा तुम सबलोगोंका प्रिय काम अवश्य करूँगा, क्योंकि दशरथनन्दन श्रीरामका जो कार्य है, वह मेरा ही है—इसमें संदेह नहीं है।'

सम्पातिने फिर कहा—'सर्वप्रथम तुमलोग मुझे जलके पास ले चलो, जिससे मैं अपने भाईको जलाञ्जलि दे दूँ। फिर तुमलोगोंके कार्य सिद्धिके लिये मैं उचित मार्ग बताऊँगा।'*

सम्पातिकी इच्छा जानकर महावीर हनुमानजी उन्हें उठाकर समुद्र-तटपर ले गये।† वहाँ सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी। फिर वानरगण उन्हें उनके स्थानपर ले गये। वहाँ भगवान् श्रीरामके भक्तोंको सम्मुख बैठे देखकर सम्पातिके सुखकी सीमा न थी। उनका शारीरिक एवं मानसिक कष्ट तो पहले ही दूर हो गया था। उन्होंने चारों ओर अपनी दृष्टि डालकर प्रभुके प्रिय भक्तोंसे अत्यन्त आदरपूर्वक बताया—

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई ॥

मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ॥
(मानस ४। २७। ६; २८)

'त्रिकूटपर्वतपर लंकापुरी है। वहाँ रावण सहज ही निर्भय रहता है। वहीं अशोक नामक एक उपवन है, जहाँ श्रीसीताजी शोकमग्न बैठी हैं। मैं सब देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते, क्योंकि गीधकी दृष्टि अपार—बहुत दूरतक जानेवाली होती है। मैं वृद्ध हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता करता।'

फिर उन्हें प्रोत्साहित करते हुए सम्पातिने उनसे कहा—

तद् भवन्तो मतिश्रेष्ठा बलवन्तो मनस्विनः ॥
प्रहिताः कपिराजेन देवैरपि दुरासदाः ।
(वा० रा० ४। ५९। २५-२६)

'तुमलोग भी उत्तम बुद्धिसे युक्त, बलवान्, मनस्वी तथा देवताओंके लिये भी दुर्जय हो। इसीलिये वानरराज सुग्रीवने तुम्हें इस कार्यके लिये भेजा है।'

तदनन्तर उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणके तीक्ष्ण शरोंकी महिमाका गान करते हुए वानर भालुओंसे कहा—

रामलक्ष्मणबाणाश्च विहिताः कङ्कपत्रिणः ॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे ।
कामं खलु दशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ।
भवतां तु समर्थानां न किंचिदपि दुष्करम् ॥
(वा० रा० ४। ५९। २६-२७)

'श्रीराम और लक्ष्मणके कङ्कपत्रसे युक्त जो बाण हैं, वे साक्षात् विधाताके बनाये हुए हैं। वे तीनों लोकोंकी रक्षा और दमन करनेके लिये पर्याप्त शक्ति रखते हैं। तुम्हारा विपक्षी दशग्रीव रावण भले ही तेजस्वी और बलवान् है, किंतु तुम-जैसे सामर्थ्यशाली वीरोंके लिये उसे परास्त करना आदि कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है।'

प्रोत्साहन देनेके अनन्तर सम्पातिने कहा—'तुमलोग किसी तरह समुद्र लाँघनेका प्रयत्न करो। राक्षसराज रावणको तो वीरवर श्रीरामचन्द्रजी स्वयं मार डालेंगे। तुमलोग विचार कर देखो कि तुममें ऐसा कौन वीर है, जो समुद्र लाँघकर लंकामें पहुँच जाय और माता जानकीका दर्शन करे तथा उनसे बातचीत कर पुनः समुद्रके इस पार आ जाय।'

सम्पातिके द्वारा माता सीताका पता पाकर वानर-वृन्दके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने कौतूहलवश सम्पातिका पूरा जीवन-वृत्तान्त जाननेकी इच्छा व्यक्त की। उन्होंने उन्हें बड़े ही आदर और प्रेमपूर्वक अपनी पूर्व भस्म होने एवं चन्द्रमामुनिके द्वारा कही गयी सारी बातें सुना दीं। इसके अनन्तर उन्होंने कहा—'वानरो! पक्षहीन पक्षीका जिसका क्या कहीं जाय! मेरी इस अवस्था देखकर निशाकर मेरा पुत्र

* मोहि लै जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि। बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि ॥
(मानस ४। २७)

† स्पृष्ट्वा सर्वाङ्गुरस्तस्य सीतायाँ जटायुष्कोदकं विधिवत् ददाना। (शिवपुराणके ८ वें ११)

“अङ्गदके वचन सुनकर चित्तमें प्रसन्न हो सम्पातिने कहा—‘हे कपीश्वर ! जटायु मेरा परमप्रिय भाई है । आज कई सहस्र वर्षके अनन्तर मैंने भाईका समाचार सुना है’ ।” फिर उन्होंने कहा—

वाङ्मतिभ्यां हि सर्वेषां करिष्यामि प्रियं हि वः ॥
यद्धि दाशरथेः कार्यं मम तन्नात्र संशयः ।
(वा० रा० ४ । ५९ । २४ २५)

“मैं वाणी और बुद्धिके द्वारा तुम सबलोगोंका प्रिय कार्य अवश्य करूँगा, क्योंकि दशरथनन्दन श्रीरामका जो कार्य है, वह मेरा ही है—इसमें संशय नहीं है ।”

सम्पातिने फिर कहा—“सर्वप्रथम तुमलोग मुझे जलके पास ले चलो, जिससे मैं अपने भाईको जलाञ्जलि दे दूँ । फिर तुमलोगोंका कार्य सिद्धिके लिये मैं उचित मार्ग बताऊँगा ।”*

सम्पातिकी इच्छा जानकर महावीर हनुमानजी उन्हें उठाकर समुद्र-तटपर ले गये ।† वहाँ सम्पातिने स्नान करके जटायुको जलाञ्जलि दी । फिर वानरगण उन्हें उनके स्थानपर ले गये । वहाँ भगवान् श्रीरामके भक्तोंको सम्मुख बैठे देखकर सम्पातिके सुखकी सीमा न थी । उनका शारीरिक एवं मानसिक कष्ट तो पहले ही दूर हो गया था । उन्होंने चारों ओर अपनी दृष्टि डालकर प्रभुके प्रिय भक्तोंको अत्यन्त आदरपूर्वक बताया—

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई । सीता बैठि सोच रत अहई ॥
मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार ।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ॥
(मानस ४ । २८ । ६, २८)

“त्रिकूटपर्वतपर लङ्कानगरी है । वहाँ रावण सहज ही निडर रहता है । वहाँ अशोक नामक एक उपवन है, जहाँ श्रीसीताजी शोकमग्न बैठी हैं । मैं सब देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गृध्रकी दृष्टि अपार—बहुत दूरतक जानेवाली होती है । मैं वृद्ध हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता करता ।”

फिर उन्हें प्रोत्साहित करते हुए सम्पातिने उनसे कहा—

यूयं भवन्तो मतिश्रेष्ठा बलवन्तो मनस्विनः ॥
प्रहिताः कपिराजेन देवैरपि दुरासदाः ।
(वा० रा० ४ । ५९ । २५ २६)

“तुमलोग भी उत्तम बुद्धिसे युक्त, बलवान्, मनस्वी तथा देवताओंके लिये भी दुर्जेय हो । इसीलिये वानरराज सुग्रीवने तुम्हें इस कार्यके लिये भेजा है ।”

तदनन्तर उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणके तीक्ष्ण शरोंकी महिमाका गान करते हुए वानर भालुओंसे कहा—

रामलक्ष्मणबाणाश्च विहिताः कङ्कपत्रिणः ॥
त्रयाणामपि लोकानां पर्याप्तास्त्राणनिग्रहे ।
कामं खलु दशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ।
भवतां तु समर्थानां न किंचिदपि दुष्करम् ॥
(वा० रा० ४ । ५९ । २६ २७)

“श्रीराम और लक्ष्मणके कङ्कपत्रसे युक्त जो बाण हैं, वे साक्षात् विधाताके बनाये हुए हैं । वे तीनों लोकोंका संरक्षण और दमन करनेके लिये पर्याप्त शक्ति रखते हैं । तुम्हारा विपक्षी दशग्रीव रावण भले ही तेजस्वी और बलवान् है, किंतु तुम जैसे सामर्थ्यशाली वीरोंके लिये उसे परास्त करना आदि कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है ।”

प्रोत्साहन देनेके अनन्तर सम्पातिने कहा—“तुमलोग किसी-न-किसी तरह समुद्र लाँघनेका प्रयत्न करो । राक्षसराज रावणको तो वीरवर श्रीरामचन्द्रजी स्वयं मार डालेंगे । तुमलोग विचार कर लो कि तुममें ऐसा कौन वीर है जो समुद्र लाँघकर लङ्कामें पहुँच जाय और माता सीताके दर्शन एवं उनसे बातचीत कर पुनः समुद्रके इस पार आ जाय ।”

सम्पातिके द्वारा माता सीताका पता पाकर वानर-वृन्दके हर्षकी सीमा न रही । उन्होंने कौतूहलवश सम्पातिका पूरा जीवन-वृत्तान्त जाननेकी इच्छा व्यक्त की । उन्होंने उन्हें बड़े ही आदर और प्रेमपूर्वक अपने पंख भस्म होने एवं चन्द्रमामुनिके द्वारा कही गयी सारी बातें सुना दीं । इसके अनन्तर उन्होंने कहा—“वानरो ! पक्षहीन पक्षीकी विवशता क्या कही जाय ! मेरी इस अत्यन्त दयनीय स्थितिमें मेरा पुत्र

---

* मोहि लै जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि । बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि ॥
(मानस ४ । २७)

† जयति धर्मांशु-संदग्ध-संपाति नवपक्ष-लोचन दिव्यदेह-दाता । (विनयपत्रिका २८वाँ पद)

समुद्रोल्लङ्घन और लंकामें प्रवेश

गृध्रराज सम्पातिके द्वारा श्रीजनकदुलारीका पता पाकर
नर-भालुओंका विशाल समुदाय हर्षातिरेकसे उछलते-कूदते
था, किंतु जब वे लोग महान् जलधिके तटपर पहुँचे,
ब उसका रोमाञ्चकारी स्वरूप देखकर सहम उठे। 'भयानक
गर्जन करते हुए उत्तुङ्ग तरङ्गोंवाले असीम सागरके पार
कैसे जाया जाय ?'—समस्त वानर-भालुओंको चिन्तित,
उदास और विषादमें पड़ा देख युवराज अङ्गदने उन्हें
अनेक युक्तियोंसे समझाकर आश्वस्त किया। सच तो यह
है, महासागर-तुल्य वीर वानर-भालुओंकी महान् सेनाको
अङ्गद और श्रीहनुमान ही सुस्थिर रख सकनेमें समर्थ थे।

वालिकुमार अङ्गदने समस्त वीर वानर-भालुओंसे कहा—
'बन्धुओ! आप सब अन्यतम वीर हैं और आपलोगोंमेंसे
कभी किसीकी गति कहीं नहीं रुकती। आपमें ऐसे कौन
कौन महान् वीर हैं, जो जगन्माता जानकीका पता लगानेके
लिये इस अपार समुद्रको लाँघकर लंका पहुँच जायँगे ?'

अङ्गदका वचन सुन पहले तो समस्त वानर-भालू चुप
हो गये, किंतु कुछ देर बाद गजनामक वानरने कहा—
'मैं दस योजनकी छलाँग मार सकता हूँ।' इसी प्रकार
गवाक्षने बीस, शरभने तीस, ऋषभने चालीस, गन्धमादनने
पचास, मैन्दने साठ, द्विविदने सत्तर और सुषेणने अस्सी
योजनतक छलाँग मारनेकी बात कही। वयोवृद्ध ऋक्षराज
जाम्बवान्ने कहा—'पहले यौवनकालमें मैं भी बहुत
लंबी छलाँग मार सकता था, किंतु अब वह शक्ति
मुझमें नहीं रही, तथापि वानरराज सुग्रीव और
श्रीकौसल्याकिशोरके कार्यकी उपेक्षा सम्भव नहीं। इस
वृद्धावस्थामें मैं केवल नब्बे योजन दूरतक छलाँग मार सकता
हूँ। पूर्वकालमें जब भगवान् त्रिविक्रमने अवतार लिया
था, तब मैंने उन प्रभुके पृथ्वीके बराबर परिमाणवाले
चरणकी इक्कीस बार परिक्रमा कर ली थी परंतु अब इस
महान् समुद्रको लाँघ जाना मेरे वशकी बात नहीं।'

अङ्गद बोले—'मैं समुद्रके पार कर सकता हूँ, किंतु
लौट पाऊँगा कि नहीं, यह कहना सम्भव नहीं।'

अङ्गदके वचन सुनकर वाक्यकोविद वृद्ध जाम्बवान्ने
उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'अङ्गद! यद्यपि तुम इस
कार्यके करनेमें पूर्ण समर्थ हो, किंतु तुम हम सबके नायक
हो, अतः तुम्हें भेजना हमारे लिये उचित नहीं है। तुम तो
प्रत्येक रीतिसे रक्षणीय हो।'

अङ्गदने उदास होकर कहा—'तब तो समुद्रोल्लङ्घन
सम्भव नहीं प्रतीत होता। फिर हमलोग प्रायोपवेशनका
संकल्प करके बैठ जायँ।'

'नहीं वत्स! भगवान् श्रीरामका कार्य अवश्य होगा।'
अङ्गदको आश्वस्त करते हुए जाम्बवान्ने श्रीअञ्जनानन्दनकी
ओर देखा। वे सर्वथा मौन बैठे थे। ऋक्षराजको विदित
था कि ये वज्राङ्ग श्रीहनुमान शापके कारण भस्माच्छादित
अग्नि-तुल्य शान्त हैं। इन्हें अपनी अपरिमेय शक्तिकी
स्मृति नहीं है, अन्यथा ये अपने स्वामी सुग्रीवको संकटग्रस्त
देखकर भी चुप कैसे रहते? ये निश्चय ही वालीको दण्डित
करते। जाम्बवान्ने श्रीहनुमानको उनकी शक्तिका स्मरण दिलाते
हुए कहा—'भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त वज्राङ्ग हनुमान!
श्रीरामके कार्यके लिये ही तुमने अवतार धारण किया है,
फिर चुप क्यों बैठे हो? महावीर! तुम पवनके पुत्र हो।
तुमने माता अञ्जनाका दुग्ध पान किया है। बाल्यकालमें ही
तुम सूर्यदेवको अरुण फल समझकर उन्हें भक्षण करनेके
लिये एक ही छलाँगमें उनके पास पहुँच गये थे। ब्रह्मादि
देवताओंने तुम्हें अलौकिक वरदान प्रदान किये हैं। महावीर
केसरीकिशोर! तुम अपरिमित शक्ति-सम्पन्न हो। तुम्हारी
गति अव्याहत है। यह विशाल जलधि तो तुम्हारे लिये
नगण्य है। उठो और समुद्रको लाँघकर लंका पहुँच जाओ।
वहाँ माता सीताके दर्शन कर तुरंत लौट आओ। इन
वानर-भालुओंके जीवनकी रक्षा कर लो। विवेक और ज्ञानके
निधान वायुपुत्र! देखो, ये चिन्तित और उदास असंख्य
वानर-भालू तुम्हारी ओर देख रहे हैं।'

जाम्बवान्के वचन सुनते ही भगवान्की स्मृतिमें तल्लीन
हनुमानजीको अपने बल और पराक्रमका स्मरण हो आया।
तत्क्षण उनका शरीर पर्वताकार हो गया। उन्होंने अपनेमें
अपार शक्तिका अनुभव कर भयानक गर्जना की। उस
गर्जनासे धरती, आकाश तथा समस्त दिशाएँ काँप उठीं।

कनकभूधराकार पवनकुमारने गरजते हुए कहा—
'वानरो! मैं भगवान्की कृपासे आकाशचारी समस्त ग्रह
नक्षत्र आदिको लाँघकर आगे बढ़ जानेके लिये तैयार हूँ।
मैं चाहूँ तो समुद्रोंको सोख लूँ, पृथ्वीको विदीर्ण कर दूँ और
कूद-कूदकर पर्वतोंको चूर्ण कर डालूँ। यह तुच्छ
समुद्र मेरे लिये कुछ नहीं है। बताओ, मुझे क्या करना है

डाले। वज्र लिये क्रुद्ध सुरेन्द्र मेरी ओर भी चले, किंतु आपके पिता महात्मा वायुदेवने मुझे इस समुद्रमें गिराकर मेरी रक्षा कर ली।'

मैनाकने अत्यन्त आदर एवं प्रीतिपूर्वक हनुमानजीसे आगे निवेदन किया—'वायुनन्दन! आपके साथ मेरा यह पवित्र सम्बन्ध है और आप मेरे माननीय हैं। दूसरे, समुद्रने भी आपको विश्राम देनेके लिये मुझे आज्ञा प्रदान की है। आप मेरे यहाँ विविध प्रकारके मधुर फल ग्रहण करें, कुछ देर विश्राम कर लें। तदनन्तर अपने कार्यके लिये चले जायँ।'

मैनाकके वचन सुनकर श्रीआञ्जनेयने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उत्तर दिया—'मैनाक! आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा आतिथ्य हो गया। मुझे अपने प्रभुके कार्यकी शीघ्रता है, अतएव मेरे लिये विश्राम करना सम्भव नहीं।'

श्रीकेसरीकिशोरने हँसते हुए मैनाकका स्पर्श किया और तीव्रतासे आगे बढ़ गये। उस समय शैलप्रवर मैनाक और जलधि—दोनोंने उनकी ओर अत्यन्त आदर और प्रीतिपूर्वक देखकर उन्हें बारम्बार आशीर्वाद प्रदान किया।

श्रीकेसरीकिशोरको श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये वेगपूर्वक लङ्काकी ओर उड़कर जाते देख देवताओंने उनके बल और बुद्धिका पता लगानेके लिये नागमाता सुरसाको भेजा। देवताओंके आदेशानुसार सुरसाने अत्यन्त विकट, बेडौल और भयानक रूप धारण किया। उसके नेत्र पीले और दाढ़ें विकराल थीं। वह आकाशको स्पर्श करनेवाला विकटतम मुँह बनाकर श्रीहनुमानजीके मार्गमें खड़ी हो गयी।

श्रीहनुमानको अपनी ओर आते देख नागमाताने कहा—'महामते! मैं तीव्र क्षुधासे व्याकुल हूँ। देवताओंने तुम्हें मेरे आहारके रूपमें भेजा है। तुम मेरे मुखमें आ जाओ। मैं अपनी क्षुधा शान्त कर लूँ।'

श्रीअञ्जनानन्दनने उत्तर दिया—'माता सुरसा! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। मैं आतप्राणपरायण श्रीरघुनाथजीके कार्यसे लङ्का जा रहा हूँ। इस समय माता सीताका पता लगानेके लिये तुम मुझे जाने दो। वहाँसे शीघ्र ही लौटकर तथा श्रीरघुनाथजीको माता सीताका कुशल समाचार सुनाकर मैं तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हो जाऊँगा।'

किंतु श्रीरामदूतके बल-बुद्धिकी परीक्षाके लिये आयी सुरसा उन्हें किसी प्रकार आगे नहीं जाने देती थी, तब श्रीहनुमानने उससे कहा—'अच्छा, तू मुझे भक्षण कर।'

सुरसाने अपना मुँह एक योजन विस्तृत फैलाया ही था कि श्रीवायुनन्दनने तुरंत अपना शरीर आठ योजनका बना लिया। उसने अपना मुँह सोलह योजन विस्तृत किया, तब श्रीपवनकुमार तुरंत बत्तीस योजनके हो गये। सुरसा जितना ही अपना विकराल मुँह फैलाती, बृहत्काय श्रीहनुमान उसके दुगुने आकारके विशाल हो जाते थे। जब उसने अपना मुँह सौ योजनका बनाया, तब श्रीवायुपुत्र अँगूठेके समान अत्यन्त छोटा रूप धारण कर उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये।

सुरसा अपना मुँह बंद करने ही जा रही थी कि महामति श्रीआञ्जनेय उसके मुखसे बाहर निकल आये और विनयपूर्वक कहने लगे—'माता! मैं तुम्हारे मुँहमें जाकर निकल आया। तुम्हारी बात पूरी हो गयी। अब मुझे अपने प्रभुके आवश्यक कार्यके लिये जाने दो।'

सुरसा तो श्रीरामदूतकी केवल परीक्षा करना चाहती थी। उसने कहा—'वायुनन्दन! *निश्चय ही तुम ज्ञाननिधि हो।* देवताओंने तुम्हारी परीक्षाके लिये मुझे भेजा था। मैं तुम्हारे बल और बुद्धिका रहस्य समझ गयी, अब तुम जाकर श्रीराघवेन्द्रका कार्य करो। सफलता तुम्हें निश्चय वरण करेगी। मैं हृदयसे तुम्हें आशिष देती हूँ।'

सुरसा देवलोकके लिये प्रस्थित हुई और उधर श्रीमारुतात्मज गरुड़के भाँति आगे चले। मैनाकवन्दित वानर शिरोमणि श्रीरामदूत पवनके वेगसे उड़ते हुए जा ही रहे थे, मार्गमें सिंहिका राक्षसी समुद्रमें मिली। वह आकाशसे उड़कर जानेवाले प्राणियोंको उनके प्रतिबिम्बके द्वारा खींचकर मार डालती थी। उस छायाग्राहिणी सिंहिका आसुरीने समुद्रसे श्रीपवनपुत्रकी भी छाया पकड़ ली। हनुमानजीकी गति अवरुद्ध हो गयी। आश्चर्यमें पड़े श्रीरामदूतने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, पर उन्हें कहीं कोई दीख न पड़ा। जब उन्होंने नीचे दृष्टि डाली तो उनके ऊपर स्थूल शरीरवाली विकराल राक्षसी दीख पड़ी। बस, विशालकाय हनुमानजी वेगपूर्वक सिंहिकाके ऊपर कूद पड़े। भूधराकार, महातेजस्वी, महाशक्तिशाली पवन पुत्रका भार वह राक्षसी कैसे सह पाती! पिसकर चूर्ण-चूर्ण हो गयी।

कहो तो मैं लंकामें जाकर उसे उठाकर समुद्रमें डुबो दूँ और माता सीताको यहाँ ले आऊँ, या कहो तो रावणसहित समूची लंकाको जलाकर राख कर दूँ अथवा कहो तो राक्षसराज रावणके कण्ठमें रस्सी बाँधकर उसे घसीटते हुए यहाँ लाकर भगवान् श्रीरामके चरणोंमें पटक दूँ, या केवल जगन्माता जानकीको देखकर ही लौट आऊँ।'

परम शक्तिशाली पवनकुमारके वचन सुन जाम्बवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'तात! तुम सर्वसमर्थ हो, किंतु तुम भगवान्के दूत हो। तुम केवल सीता-माताका दर्शन कर उनका समाचार लेकर चले आओ। इसके अनन्तर भगवान् श्रीराम वहाँ जाकर असुर-कुलका उद्धार करेंगे। उनकी पवित्र कीर्तिका विस्तार होगा और हम सभी प्रभु-कार्यमें सहायक होकर कृतार्थ होंगे। हम समस्त वानर-भालुओंके प्राण तुम्हारे अधीन हैं। हम सब आतुरतापूर्वक तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहेंगे। तुम शीघ्र जाओ। आकाशमार्गसे जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो।'

वृद्ध वानर-भालुओंके आशीर्वादसे प्रसन्न होकर महापराक्रमी, शत्रुमर्दन श्रीरामदूत हनुमान उछलकर महेन्द्रपर्वतके शिखरपर चढ़ गये। उनके चरणोंके आघातसे पर्वत नीचे धँसने लगा और वृक्षोंसहित पर्वत-शृङ्ग टूट-टूटकर गिरने लगे। उस समय समस्त प्राणियोंको वायुपुत्र महात्मा हनुमानजी महान् पर्वतके समान विशालकाय, सुवर्ण-वर्ण अरुण (बाल-सूर्य)के समान मनोहर मुखवाले और महान् सर्पराजके समान दीर्घ भुजाओंवाले दिखायी देने लगे*।

समुद्र पार करनेके लिये प्रस्तुत आञ्जनेयने पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता वायुदेवको प्रणाम किया। फिर उन्होंने भगवान् श्रीरामका स्मरण कर वानर-भालुओंसे कहा—'वानरगण! मैं परमप्रभु श्रीरामकी कृपासे उनके अमोघ बाणकी गतिसे लंका जाकर जगज्जननीके दर्शन कर पुनः लौट आऊँगा। प्राणान्तकालमें प्रभुके नामका स्मरण कर मनुष्य संसार-सागरसे पार हो जाता है, फिर मैं तो उनका दूत हूँ। उनकी अँगुलीकी दिव्य अँगूठी मेरे पास है और मेरे हृदयमें उनकी मूर्ति तथा वाणीमें उनका नाम विराजित है, फिर मैं इस तुच्छ समुद्रको लाँघकर कृतकार्य होऊँ, इसमें कौन बड़ी बात है? आपलोग मेरे लौटनेतक कन्द-मूल आहार करके यहीं मेरी प्रतीक्षा करें।'

उस समय श्रीवायुनन्दनमें तेज, बल और पराक्रमका अद्भुत आवेश था। देवगण जय-जयकार और ऋषि स्तुति-पाठ करने लगे। श्रीआञ्जनेयने दक्षिणकी ओर अपनी दोनों भुजाएँ फैलायीं और बड़े वेगसे आकाशमें कूदकर उछलकर गरुड़की भाँति तीव्रतासे उड़े। उनके वेगसे आकृष्ट होकर कितने ही वृक्ष उखड़कर अपनी डालियोंसमेत उड़ चले। पुष्पित वृक्षोंके पुष्प उनके ऊपर गिरे, जैसे वे वायुपुत्रकी पूजा कर रहे हों।

पवनपुत्र श्रीहनुमानको पवनकी गतिसे श्रीरामकार्यके लिये जाते देखकर सागरने सोचा—'इक्ष्वाकुवंशीय महाराज सगरके पुत्रोंने मुझे बढ़ाया था और ये अभय वज्राङ्ग पुरुष इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न श्रीरामके कार्यसे लंका जा रहे हैं, अतः मुझे इन्हें मार्गमें विश्राम देनेका प्रयत्न करना चाहिये।'

समुद्रने मैनाकपर्वतसे कहा—'शैलप्रवर! देखो, ये कपिकेसरी हनुमान इक्ष्वाकुवंशीय श्रीरामकी सहायताके लिये तीव्र वेगसे लंका जा रहे हैं। इस पावन वंशके लोग मेरे पूजनीय हैं और तुम्हारे लिये तो परम पूजनीय हैं। अतएव तुम श्रीहनुमानकी सहायता करो। तुम तुरंत जलसे ऊपर उठ जाओ, जिससे ये कुछ देर तुम्हारे शिखरपर विश्राम कर सकें।'

मैनाक अपने अनेक सुवर्ण एवं मणिमय शिखरोंसहित समुद्रसे अत्यधिक ऊपर उठ गया और एक मनुष्यके रूपमें खड़े होकर उसने हनुमानजीसे प्रार्थना की—'कपिश्रेष्ठ! आप वायुके पुत्र हैं और उन्हींकी भाँति अतुलित शक्तिसम्पन्न हैं। आप धर्मके ज्ञाता हैं। आपकी पूजा होनेपर साक्षात् वायुदेवका पूजन हो जायगा†। इसलिये आप अवश्य ही मेरे पूजनीय हैं। पहले पर्वतोंके पंख होते थे। वे आकाशमें इधर-उधर वेगपूर्वक उड़ा करते थे। इस प्रकार उनके उड़ते रहनेसे देवताओं, ऋषियों एवं समस्त प्राणियोंके मनमें भय व्याप्त हो गया। इस कारण कुपित होकर सहस्राक्ष इन्द्रने लाखों पर्वतोंके पंख का-

---

* महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ।
महाहिभोगेन्द्रभुजो बभौ वायुसुतस्तदानीम् ॥ (वा० रा० ४।६७।१४)

† पूजिते त्वयि धर्मज्ञ पूजां प्राप्नोति मारुतः । (वा० रा० ५।१।११८)

डाले। वज्र लिये क्रुद्ध सुरेन्द्र मेरी ओर भी चले, किंतु आपके पिता महात्मा वायुदेवने मुझे इस समुद्रमें गिराकर मेरी रक्षा कर ली।'

मैनाकने अत्यन्त आदर एवं प्रीतिपूर्वक हनुमानजीसे आगे निवेदन किया—'वायुनन्दन! आपसे साथ मेरा यह पवित्र सम्बन्ध है और आप मेरे माननीय हैं। दूसरे, समुद्रने भी आपको विश्राम देनेके लिये मुझे आज्ञा प्रदान की है। आप मेरे यहाँ विविध प्रकारके मधुर फल ग्रहण करें, कुछ देर विश्राम कर लें। तदनन्तर अपने कार्यके लिये चले जायँ।'

मैनाकके वचन सुनकर श्रीआञ्जनेयने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उत्तर दिया—'मैनाक! आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा आतिथ्य हो गया। मुझे अपने प्रभुके कार्यकी शीघ्रता है, अतएव मेरे लिये विश्राम करना सम्भव नहीं।'

श्रीकेसरीकिशोरने हँसते हुए मैनाकका स्पर्श किया और तीव्रतासे आगे बढ़ गये। उस समय शैलप्रवर मैनाक और जलधि—दोनोंने उनकी ओर अत्यन्त आदर और प्रीतिपूर्वक देखकर उन्हें बार-बार आशीर्वाद प्रदान किया।

श्रीकेसरीकिशोरको श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये वेगपूर्वक एकाकी और उड़कर जाते देख देवताओंने उनके बल और बुद्धिका पता लगानेके लिये नागमाता सुरसाको भेजा। देवताओंके आदेशानुसार सुरसाने अत्यन्त विकट, बेडौल और भयानक रूप धारण किया। उसके नेत्र पीले और दाढ़ें विकराल थीं। वह आकाशको स्पर्श करनेवाला विकटतम मुँह बनाकर श्रीहनुमानजीके मार्गमें खड़ी हो गयी।

श्रीहनुमानको अपनी ओर आते देख नागमाताने कहा—'महामते! मैं तीव्र क्षुधासे व्याकुल हूँ। देवताओंने तुम्हें मेरे आहारके रूपमें भेजा है। तुम मेरे मुखमें आ जाओ। मैं अपनी क्षुधा शान्त कर लूँ।'

श्रीअञ्जनानन्दनने उत्तर दिया—'माता सुरसा! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। मैं आर्तत्राण-परायण श्रीरघुनाथजीके कार्यसे लंका जा रहा हूँ। इस समय माता सीताका पता लगानेके लिये तुम मुझे जाने दो। वहाँसे शीघ्र ही लौटकर तथा श्रीरघुनाथजीको माता सीताका कुशल-समाचार सुनाकर मैं तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हो जाऊँगा।'

किंतु श्रीरामदूतके बल-बुद्धिकी परीक्षाके लिये आयी सुरसा उन्हें किसी प्रकार आगे नहीं जाने देती थी, तब श्रीहनुमानने उससे कहा—'अच्छा, तू मुझे भक्षण कर।'

सुरसाने अपना मुँह एक योजन विस्तृत फैलाया ही था कि श्रीवायुनन्दनने तुरंत अपना शरीर आठ योजनका बना लिया। उसने अपना मुँह सोलह योजन विस्तृत किया, तब श्रीपवनकुमार तुरंत बत्तीस योजनके हो गये। सुरसा जितना ही अपना विकराल मुँह फैलाती, बृहत्काय श्रीहनुमान उसके दुगुने आकारके विशाल हो जाते थे। जब उसने अपना मुँह सौ योजनका बनाया, तब श्रीवायुपुत्र अँगूठेके समान अत्यन्त छोटा रूप धारण कर उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये।

सुरसा अपना मुँह बंद करने ही जा रही थी कि महामति श्रीआञ्जनेय उसके मुखसे बाहर निकल आये और विनयपूर्वक कहने लगे—'माता! मैं तुम्हारे मुँहमें जाकर निकल आया। तुम्हारी बात पूरी हो गयी। अब मुझे अपने प्रभुके आवश्यक कार्यके लिये जाने दो।'

सुरसा तो श्रीरामदूतकी केवल परीक्षा करना चाहती थी। उसने कहा—'वायुनन्दन! निश्चय ही तुम ज्ञाननिधि हो। देवताओंने तुम्हारी परीक्षाके लिये मुझे भेजा था। मैं तुम्हारे बल और बुद्धिका रहस्य समझ गयी। अब तुम जाकर श्रीरामचन्द्रका कार्य करो। सफलता तुम्हें निश्चय वरण करेगी। मैं हृदयसे तुम्हें आशिष देती हूँ।'

सुरसा देवलोकके लिये प्रस्थित हुई और उग्रवेग श्रीमारुतात्मज गरुडके भाँति आगे चले। मैनाकवन्दित वानरशिरोमणि श्रीरामदूत पवनके वेगसे उड़ते हुए जा ही रहे थे, मार्गमें सिंहिका राक्षसी समुद्रमें मिली। वह आकाशसे उड़कर जानेवाले प्राणियोंको उनके प्रतिबिम्बके द्वारा खींचकर मार डालती थी। उस छायाग्राहिणी सिंहिका आसुरीने समुद्रसे श्रीपवनपुत्रकी भी छाया पकड़ ली। हनुमानजीकी गति अवरुद्ध हो गयी। आश्चर्यमें पड़े श्रीरामदूतने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, पर उन्हें कहीं कोई दीख न पड़ा। तब उन्होंने नीचे दृष्टि डाली तो जलके ऊपर स्थूल शरीरवाली विकराल राक्षसी दीख पड़ी। बस, विशालकाय हनुमानजी वेगपूर्वक सिंहिकाके ऊपर कूद पड़े। भूधराकार, महातेजस्वी, महाशक्तिशाली पवनपुत्रका भार वह राक्षसी कैसे सह पाती? पिसकर हो गयी।

हनुमानजीका यह भयानक कार्य देखकर गगनचर प्राणियोंने उनका स्तवन करते हुए कहा—'कपिवर ! इस विशालकाय प्राणीको मार डालनेका अद्भुत कर्म कर लेनेपर अब आप निरापद आगे जा सकते हैं। वानरेन्द्र ! जिस पुरुषमें आपके समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चारों गुण होते हैं, उसे अपने कार्यमें कभी असफलता नहीं होती।'

आकाशमें विचरण करनेवाले प्राणियोंके वचन सुनते हुए श्रीपवनपुत्र दक्षिण दिशाकी ओर अत्यन्त वेगपूर्वक जा रहे थे। कुछ ही देरमें वे निर्विघ्न लंकाके उस समुद्र-तटपर पहुँचे, जहाँ विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पों और फलोंसे लदे वृक्षोंके सुन्दर बगीचे थे। वे भौंरोंके गुंजार एवं अनेक प्रकारके सुन्दर पक्षियोंके कलरवसे निनादित थे। वहाँ मृग शावक क्रीडा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक इधर-उधर दौड़ रहे थे। शीतल बयार बह रही थी। बड़ा ही मनोरम दृश्य था। वहाँसे त्रिकूटपर्वतके शिखरपर बसी हुई चतुर्दिक् परकोटों एवं खाइयोंसे घिरी रावणकी लंकापुरी स्पष्ट दीख रही थी।

आञ्जनेयने एक बार चारों ओर देखा। फिर वे लंकामें प्रविष्ट होनेके लिये विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—'दुर्धर्ष दशाननसे युद्ध अनिवार्य है। अतएव यहाँ अपरिमित वानर-भालुओंकी सेनाके साथ प्रभुके ठहरनेके स्थान और फल-फूल सुलभताका भी पता लगा लेना चाहिये। यह दुर्ग अत्यन्त दुर्गम प्रतीत होता है। अतएव आक्रमणकी दृष्टिसे यहाँकी एक-एक बात जान लेना नितान्त आवश्यक है। किंतु इस विशाल वेषमें दिनके प्रकाशमें तो असुरोंको मेरे आगमनका रहस्य विदित हो जायगा। अतएव रात्रिमें सूक्ष्म रूपसे इस सुदृढ़ दुर्गके भीतर मेरा प्रवेश करना निरापद होगा।'

आञ्जनेय उछलकर एक पर्वतपर चढ़ गये और वहाँसे लंकापुरीको देखने लगे। वह पुरी अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग थी और उसकी सुन्दरता अनिर्वचनीय थी। उसके चारों ओर समुद्र थे और उसपर परकोटे अनेक बने थे। उसके सभी द्वार सुवर्ण-निर्मित थे। प्रत्येक द्वारपर नीलमके चबूतरे बने थे। वहाँके सुविस्तृत पथ स्वच्छ एवं आकर्षक थे। यातायात पथिकोंसे लंकापुरीमें स्थान-स्थानपर सुरम्य वन एवं निर्मल जलपूरित सरोवर विद्यमान थे। उसके निर्माणमें जैसे विश्वकर्माने अपनी समस्त बुद्धि व्यय कर दी थी।

लंकामें सर्वत्र सशस्त्र विकराल सैनिकोंकी कठोर सुरक्षा व्यवस्था थी। श्रीविदेहनन्दिनीको हरकर लानेके बादसे वहाँकी रक्षा-व्यवस्था और सुदृढ़ कर दी थी। उसके वे और विशाल धनुष-बाण धारण किये असुर सावधान एवं सजग होकर अहर्निश घूमते रहते थे।

राक्षसराज रावणकी पुरी लंकाको यत्र-तत्र देखते हुए महावीर हनुमान सायंकालकी प्रतीक्षा कर रहे थे। धीरे-धीरे सूर्यास्त हुआ। श्रीपवननन्दनने अणिमा-सिद्धिके द्वारा अत्यन्त छोटा रूप धारणकर मन-ही-मन श्रीरघुनाथजीको करबद्ध प्रणाम किया और उनकी पावनतम मूर्तिको हृदयमें धारण करके लंकामें प्रविष्ट हुए।

हनुमानजीके अत्यन्त लघु रूप धारण करनेपर भी लंकाकी अधिष्ठात्री देवी लंकिनीने उन्हें देख लिया। उसने उन्हें डाँटते हुए कहा—'अरे तू कौन है, जो चोरकी तरह इस नगरीमें प्रवेश कर रहा है। अपनी मृत्युके पूर्व तू अपना रहस्य प्रकट कर दे।'

कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमानने सोचा—'पहले ही इससे विवाद करना उचित नहीं। यदि और राक्षस आ गये तो यहीं युद्ध छिड़ जायगा और माता सीताका पता लगानेके कार्यमें विघ्न पड़ेगा।' बस उन्होंने उसे स्त्री समझकर उसपर बायें हाथकी मुट्ठीसे धीरेसे प्रहार किया, पर वज्राङ्ग श्रीहनुमानका मुष्टिप्रहार ! लंकिनीके नेत्रोंके सम्मुख अँधेरा छा गया। वह रुधिर वमन करती हुई पृथ्वीपर गिरकर मूर्च्छित हो गयी, किंतु कुछ ही देर बाद वह पुनः सँभली और उठकर खड़ी हो गयी।

अब लंकिनीने उन अद्भुत बलशाली वानरशिरोमणिसे कहा—"श्रीरामदूत हनुमान ! तुमने लंकापुरीपर विजय प्राप्त कर ली। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। अब सीताके कारण दुरात्मा रावणके विनाशका काल समीप आ गया है। बहुत पहले स्वयम्भू ब्रह्माने मुझसे कहा था कि त्रेतायुगमें साक्षात् नारायण अविनाशी परब्रह्म दशरथकुमार श्रीरामरूपमें अवतीर्ण होंगे। उनकी सहधर्मिणी महामायारूपिणी सीतादेवीका रावण हरण करेगा। उन्हें ढूँढ़ते हुए जब रात्रिमें एक वानर लंकामें प्रवेश करे और उसके मुष्टिप्रहारसे तू व्याकुल हो जाय, तब समझना कि अब असुर-कुलके नाश होनेमें विलम्ब नहीं। पर मेरा परम सौभाग्य है कि दीर्घकालके अनन्तर आज

मुझे उन भक्ताधिपोंके श्रीरामके प्रिय भक्तका अति दुर्लभ संग प्राप्त हुआ है। आज मैं धन्य हूँ। मेरे हृदयमें विराजमान दाशरथिनन्दन श्रीराम मुझपर सदा प्रसन्न रहें।'*

परम बुद्धिमान् वानरशिरोमणि वायुनन्दनने अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लिया और फिर वे करुणामय प्रभुका मन-ही-मन स्मरण कर विकट असुरोंसे सुरक्षित दुर्भेद्य लङ्कामें प्रविष्ट हुए।

श्रीकेसरी किशोरके समुद्रोल्लङ्घन एवं लङ्का प्रवेशके साथ ही जगज्जननी जानकी एवं लङ्काधिपति रावणकी बायीं भुजा और बायें नेत्र तथा समस्त सुरवन्दित दशरथकुमार श्रीरामके दायें अङ्ग फड़क उठे।

विभीषणसे मिलन

कपिकुञ्जर श्रीपवनपुत्र त्रैलोक्य-वन्दनीया माता जानकीके दर्शनार्थ अत्यधिक व्याकुल और चिन्तित थे। इस कारण वे विकट असुरोंसे छिपते हुए विविध पुष्पमय आभरणोंसे अलङ्कृत लङ्काके प्रमुख स्थलोंको अत्यन्त सावधानीपूर्वक देखने लगे। नगरके मध्य भागमें ठहरे रावणके बहुत-से गुप्तचर दिखायी दिये। इनके अतिरिक्त उन्होंने एक लाख सशस्त्र रक्षकोंको रावणके अन्तःपुरके अग्रभागमें अत्यन्त सावधानीके साथ स्थित देखा। श्रीअञ्जनानन्दनने दशाननकी वृहत् अश्वशाला, गजशाला, अस्त्रागार, मन्त्रणा-गृह, छावनी आदिको अत्यन्त ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने माता सीताको ढूँढ़ते हुए असुरोंकी अट्टालिकाओंमें घूम-घूमकर उनके आहार-विहार, शयन तथा मनोरञ्जनादिके स्थल भी देखे। वहाँ वीरवर पवनपुत्रने कितने ही एकत्र मदसे मत्त निशाचरों एवं मदिरापानसे मतवाले राक्षसोंको देखा। श्रीरामदूत हनुमानने उस त्रैलोक्यविजयी राक्षसराज रावणकी लङ्कामें बहुत-से उत्कृष्ट बुद्धिवाले, सुन्दर बोलनेवाले, सम्यक् श्रद्धा रखनेवाले, अनेक प्रकारके रूप-रंगवाले और सुन्दर नामोंसे विभूषित प्रख्यात असुर देखे। पर उन्हें श्रीजनकनन्दिनीके न तो कहीं दर्शन हुए और न कहीं किसीके वार्तालापसे ही उनका कुछ संकेत प्राप्त हुआ।

अतएव इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले एवं अमित बल-वैभव सम्पन्न श्रीपवनकुमार माता सीताको ढूँढ़ते हुए सुवर्णमय परकोटोंसे घिरे राक्षसराज रावणके महलमें प्रविष्ट हुए। उस राजोचित सामग्रियोंसे पूर्ण, श्रेष्ठ एवं सुन्दर भवनको देखकर श्रीसमीरकुमार आश्चर्यचकित हो गये। उस भवनके द्वारपर चमचमाता सुवर्ण मढ़ा हुआ था और चाँदीसे मढ़े चित्रोंसे उसकी शोभा अद्भुत हो रही थी। उसकी रक्षाके लिये शस्त्र धारण किये लक्षाधिक प्रख्यात वीर सजग खड़े थे। समस्त सैनिकोंने अभेद्य कवच धारण कर रखे थे। हाथी, घोड़े और रथसे भरे उस महलके अनूप रूपको देखकर श्रीपवनकुमार अत्यन्त चकित हो रहे थे, किंतु उनके नेत्र श्रीजनकदुलारीके अन्वेषणमें ही लगे थे।

गवेषणाविशारद हनुमानजी उस भवनके आस-पासके भवनोंमें घूम-घूमकर माता सीताका पता लगाने लगे। वे महाकपि कूदकर कुम्भकर्णके भवनमें पहुँचे। वहाँसे उछलते हुए वे महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व और विद्युन्मालीके घर गये। उन असुरोंकी अमित सम्पत्ति एवं महान् वैभव देखते हुए निर्भीक हनुमानजी उछलकर वज्रदंष्ट्र, शुक तथा बुद्धिमान् सारणके घरोंमें भी गये। वे माता सीताको ढूँढ़ते हुए इन्द्रजित्, जम्बुमाली तथा सुमालीके घर गये। वहाँ माता सीताको न देखकर अमित विक्रमशाली श्रीरामभक्त हनुमान रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकायके महलोंमें जा पहुँचे। माता जानकीका पता लगानेके लिये श्रीपवननन्दन अथक परिश्रम कर रहे थे। उन्होंने धूम्राक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, भीम, घन, विघन, नक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच और शोणिताक्ष नामक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध असुरोंके घरोंमें जाकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक देखा, किंतु वहाँ कहीं भी श्रीजननीके दर्शन न होनेसे वे पुनः रावणके भवनके समीप शीघ्रतासे चले आये।

कपिश्रेष्ठ हनुमानजी कूदकर रावणके महलके भीतर पहुँचे। वहाँ उन्होंने हाथोंमें शूल, मुद्गर, शक्ति, गदा, पट्टिश, कोदण्ड, मूसल, परिघ, भिन्दिपाल, भाले, पाश और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र धारण किये अगणित राक्षस एवं राक्षसियोंको देखा। उन विशालकाय वीर राक्षस-राक्षसियोंमें अपार शक्ति

* भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि॥ (अ० रा० ५।१।५७)

थी । उनकी दृष्टि बचाते हुए श्रीहनुमान अत्यन्त छोटे रूपमें रावणके प्रत्येक कक्षको ध्यानपूर्वक देखते जा रहे थे । वहाँ उन्होंने सुवर्णके समान कान्तिवाला, अनेकानेक रत्नोंसे व्याप्त, भाँति भाँतिके श्रेष्ठ पुष्पोंसे आच्छादित तथा पुष्पोंके परागसे भरे हुए पर्वत शिखरके समान अत्यन्त उत्तम और अनुपम पुष्पक विमानको देखा । वह अपनी दिव्य कान्तिसे प्रज्वलित-सा हो रहा था । उस अद्भुत एवं परम मनोहर विमानको देखकर हनुमानजी अत्यन्त विस्मित हुए, किंतु चारों ओर घूमकर देखनेपर भी परम पूजनीया माता सीताको न पाकर उनकी चिन्ता बढ़ गयी ।

चिन्तित श्रीहनुमान जनककिशोरीको ढूँढ़नेके लिये सशस्त्र प्रहरी-राक्षसोंसे बचते राक्षसराज रावणके निजी आवासमें पहुँचे । रावणके उस निवासमें राक्षसजातीय पत्नियाँ एवं हरकर लायी हुई सहस्रों राजकन्याएँ रहती थीं । वहाँ पर्दों सुवर्णमय दीपक जल रहे थे । वहाँके फर्श स्फटिकमणिसे निर्मित थे और सीढ़ियाँ भी मणियोंसे ही बनी थीं । वहाँकी खिड़कियाँ सोनेकी थीं । रावणका वह आवास स्वर्गसे भी श्रेष्ठ प्रतीत हो रहा था ।

रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी । उस भवनमें श्रीपवनकुमारने रंग बिरंगे वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये अनेक प्रकारकी वेष भूषासे विभूषित सहस्रों सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं । वे मद्यपान एवं अत्यधिक जागरणके कारण बेसुध गाढ़ निद्रामें पड़ी थीं । उनके वस्त्र अस्त व्यस्त थे । उन्होंने माता सीताको पहले कभी देखा तो था नहीं किंतु परम सती जानकीका परम सात्त्विक एवं तेजस्वी रूप स्वयं पहचानमें आ जाता, इस कारण श्रीअञ्जनाकुमार उन सुन्दरियोंको ध्यानपूर्वक देख रहे थे ।

इधर उधर देखते हुए श्रीकेसरी किशोरने स्फटिकमणिसे निर्मित एक दिव्य एवं श्रेष्ठ वेदी देखी, जिसपर महान् प्रभावशाली बहुमूल्य मणियों एवं रत्नोंसे निर्मित अत्यन्त अद्भुत एवं परम सुन्दर पलङ्ग था । पलङ्गके चारों ओर खड़ी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ हाथोंमें चँवर लिये व्यजन डुला रही थीं । उस प्रकाशमान पलङ्गपर स्वर्णाभिमानी रावण सुखपूर्वक शयन कर रहा था । वहीं ब्रह्मचारी हनुमानजीने उसकी पत्नियोंको भी देखा, जो उसके चरणोंके आसपास ही सो रही थीं । समीप ही उनको प्रसन्न करनेवाली वीणावादिनी सुन्दरी गम्भीर निद्रामें पड़ी थीं और अब भी कुछके वक्षःस्थलपर वीणा पड़ी थी तथा उनकी सुकोमल अँगुलियाँ [illegible] तारोंको स्पर्श कर रही थीं ।

उन सबसे पृथक् अत्यन्त सुन्दर शय्यापर सोयी एक अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्ना युवतीको हनुमानजीने [illegible] उसके सुकोमल सुन्दर अङ्गोंपर मोतियों और मणियोंसे [illegible] हुए विविध प्रकारके आभूषण सुशोभित थे । उसकी [illegible] कान्ति सुवर्णकी भाँति दमक रहा था । वह [illegible] रूपवती रावण-पत्नी मन्दोदरी थी । उसे देखकर हनुमानजीने अनुमान किया कि ये ही जनकदुलारी माता हैं । फिर तो उनके हर्षकी सीमा न रही । हर्षमग्न होकर वे अपनी पूँछ पटकने और उसे चूमने लगे । वे वानरोंकी प्रकृतिके अनुसार इधर-उधर दौड़ने लगे । वे कभी खंभोंपर चढ़ते तो फिर दूसरे ही क्षण कूदकर नीचे उतर आते ।

किंतु कुछ ही देर बाद गहनतम गम्भीर पवनपुत्रने [illegible] सोचा—'परम सती माता सीता परमप्रभु श्रीरामसे बिलग [illegible] कभी शृङ्गार करके वस्त्राभरण धारण नहीं कर सकतीं । वे [illegible] न भोजन ही कर सकती हैं और न सुखपूर्वक शयन ही [illegible] मदिरा-पान तो वे स्वप्नमें भी नहीं कर सकतीं [illegible] परमप्रभु श्रीरघुनाथजीके सौन्दर्यकी तुलना देव, दानव, नर [illegible] किंनर अथवा पृथ्वीके किसी पुरुषसे नहीं की जा सकती [illegible] फिर माता सीता जैसी पतिव्रता नारी परपुरुषके पास कैसे जा सकती हैं ! अतएव निश्चय ही ये सीताजी नहीं हैं ।'

फिर महामति हनुमानजीने रावणके उस महल [illegible] घूम घूमकर सोती हुई सहस्रों सुन्दरियोंका ध्यानपूर्वक देखा [illegible] सहसा उनके मनमें विचार उत्पन्न हुआ—'मैं बाल [illegible] ब्रह्मचारी हूँ और भगवान श्रीरामका दूत हूँ । मैं [illegible] ढूँढ़ने निकला हूँ, किंतु यहाँ मैंने जिस तरह [illegible] सोयी हुई पराई स्त्रियोंको देखा है, यह [illegible] नहीं । मेरी दृष्टि अबतक कभी अपनी मर्यादा छोड़कर किसी नारीपर नहीं पड़ी है, किंतु आज मैं धर्मसे च्युत हो गया [illegible]'

धर्ममूर्ति वीरवर हनुमानजी धर्मके भयसे [illegible] उठे, किंतु उनके तन मन और प्राणमें [illegible] श्रीरामचन्द्र विराजमान थे । अतएव तुरंत [illegible] उनके मनका समाधान हो गया । वे स्थिर [illegible] लगे—'इसमें संदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियाँ निश्चिन्त [illegible]

ो रही थीं और उसी अवस्थामें मैंने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा , किंतु मेरे मनमें किसी प्रकारका कोई विकार उत्पन्न हीं हुआ है। शुभाशुभका प्रेरक तो मन है और मेरा वह मन पूर्णतया शान्त और स्थिर है उसका कहीं राग या ेष नहीं है। इसलिये मेरे इस स्त्री-दर्शनसे धर्मका लोप म्भव नहीं। मैं तो स्वेच्छया उन स्त्रियोंको देखना हीं चाहता था, माता श्रीजानकीको ढूँढ़ने और पहचाननेके ये ही उनपर दृष्टि डाली थी और स्त्री होनेके कारण ाता जानकीजीको स्त्रियोंमें ही ढूँढ़ा जा सकता था। मैंने ीजनकनन्दिनीका अन्वेषण शुद्ध मनसे ही किया है, अतएव ं सर्वथा निर्दोष हूँ।'

कामजित् श्रीहनुमानजी माता जानकीजीको अन्य स्थलोंमें ढूँढ़ने लगे। उन्होंने एकाकी बचे-खुचे गृह, वन, बाग, उपवन, वाटिका, वापी, कूप, मन्दिर, पशुशाला, अखाड़ा, सभा-भवन, सैन्य-क्षेत्र एवं गुप्त-से-गुप्त स्थानोंको भी देख लिया। इस प्रकार वे अत्यन्त सजग होकर सम्पूर्ण रात्रि माता सीताको ढूँढ़ते ही रहे, किंतु उनका कहीं पता र चला। वायुपुत्र उदास हो रहे थे और इधर रात्रि बीत रही थी। ब्राह्म-मुहूर्त समीप आ रहा था।

सहसा हनुमानजीकी दृष्टि एक अतिशय पवित्र भवनपर पड़ी, जहाँ श्रीभगवान्‌का एक मन्दिर भी सुशोभित था। उस भवनकी दीवालपर सर्वत्र अनेक अवतारों तथा लीलाओंके चित्र और राम-नाम अङ्कित थे तथा उसके द्वारपर श्रीरामके आयुध—धनुष-बाण बने हुए थे। वहाँ मणियोंके प्रकाशमें केसर और पुष्पोंके साथ क्यारियोंमें तुलसीके पौधे रूप दीख रहे थे। यह देखकर हनुमानजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। अरे! यहाँ धर्म-कर्म, वेद-पुराण, यज्ञ-याग, गौ, द्विज, देव एवं श्रीभगवान्‌के सहज शत्रु राक्षसोंकी पुरीमें यह मन्दिर कैसे।

उसी समय रावणके अनुज महात्मा विभीषण शय्या त्यागकर भगवान् श्रीरामके नामका स्मरण करने लगे। उनके मुँहसे श्रीरामका नाम सुनते ही श्रीपवनपुत्रके मनमें विश्वास हो गया कि ये निश्चय ही भगवद्भक्त पुरुष हैं। शरणागतवत्सल हनुमानजी तुरत ब्राह्मणका वेष धारण कर भगवान्‌का नाम लेने लगे।

'राम'-नाम सुनते ही विभीषण तुरत बाहर निकले। उन्होंने ब्राह्मण-वेषधारी विश्व-पावन पवनपुत्रके चरणोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने पूछा—'ब्राह्मण देवता! आप कौन हैं? मेरा मन कहता है कि आप श्रीभगवान्‌के भक्तोंमें कोई हैं। आपके दर्शन कर मेरे हृदयमें अतिशय प्रीति उत्पन्न हो रही है। अथवा आप अपने भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले स्वयं मेरे स्वामी श्रीराम ही तो नहीं हैं, जो मुझे कृतार्थ करने यहाँ पधारे हैं! कृपया मुझे अपना परिचय दीजिये।'

संसार भय-नाशन श्रीअञ्जनानन्दनने अत्यन्त प्रेमपूर्ण मधुर वाणीमें उत्तर दिया—'मैं परमपराक्रमी पवनदेवका पुत्र हूँ। मेरा नाम 'हनुमान' है। मैं भगवान् श्रीरामकी पत्नी जगज्जननी जानकीजीका पता लगानेके लिये उनके आदेशानुसार यहाँ आया हूँ। आपको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कृपया आप भी अपना परिचय दीजिये।'

भगवान् श्रीरामकी स्मृतिसे एवं उनके दूत हनुमानजीको सम्मुख देखकर विभीषणकी विचित्र स्थिति हो गयी। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये, अङ्ग पुलकित हो गये और वाणी अवरुद्ध हो गयी। किसी प्रकार अपनेको सँभालकर उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—'हनुमानजी! मैं राक्षसराज रावणका अनुज अधम विभीषण हूँ। किंतु आज आपके दर्शन कर मैं अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करता हूँ। मैं तो इस असुर पुरीमें दाँतोंके मध्य जीभकी भाँति जीवनके दिन व्यतीत कर रहा हूँ।'

विभीषणने हनुमानजीसे आगे कहा—'पवनपुत्र! मैं राक्षसकुलोत्पन्न तामसिक प्राणी हूँ। मुझसे भजन होता नहीं और अशरणशरण सर्वाधिपति प्रभुके चरणोंमें मेरी प्रीति भी नहीं है। फिर क्या दयाधाम सीतापति श्रीराम कभी दीन-हीन, असहाय, निरुपाय और सर्वथा अनाथ जानकर मुझ पर भी कृपा करेंगे? क्या मुझे भी उनके सुर-मुनि-सेवित चरण कमलोंकी पावनतम रज प्राप्त हो सकेगी? इतना तो मेरे मनमें सुदृढ़ विश्वास हो गया कि भगवत्कृपाके बिना संतोंका दर्शन नहीं होता। आज अब करुणामय श्रीरामने मुझपर अनुग्रह किया है तभी आपने कृपापूर्वक स्वयं मुझ अधमके द्वारपर पधारनेका कष्ट स्वीकार किया है।'

भक्तानुरूपी श्रीपवनपुत्र भक्त विभीषणकी भागवत्प्रीति देखकर मन-ही-मन पुलकित थे। उन्होंने विभीषण से अत्यन्त प्रीतिपूर्वक मधुर वाणीमें 'विभीषणजी! आप बड़े भाग्यवान् हैं

करुणावतार प्रभुकी भक्ति योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंको भी सुलभ नहीं, वह प्रभु-चरणोंमें अद्भुत भक्ति आपको सहज प्राप्त है। भगवान् श्रीराम जाति-पाँति, कुल, मान-बड़ाई आदिकी ओर भूलकर भी दृष्टि नहीं डालते। वे तो बस, निश्छल हृदयकी प्रीति—अचल शुद्ध प्रीति चाहते हैं और इस प्रीतिपर वे भक्तके हाथों बिक जाते हैं, उनके पीछे-पीछे डोलते हैं। आप देखिये न, भला मैंने किस श्रेष्ठ वंशमें जन्म लिया है? सब प्रकारसे नीच चञ्चल वानर हूँ। यदि प्रातःकाल कोई हमलोगोंका नाम भी ले ले तो उसे उपवास करना पड़े। इस प्रकारके मुझ अधमपर भी भक्तवत्सल प्रभुने कृपा की। उन्होंने मुझे स्वजन और सेवक बना लिया। फिर आप तो उन्हें अपना सर्वस्व समझ रहे हैं, निश्चय ही आपपर उनकी अद्भुत कृपा है। आप बड़े भाग्यवान् हैं। इस असुरपुरीमें आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह भी मेरे स्वामी श्रीरघुनाथजीकी ही कृपाका फल है।'

श्रीराघवेन्द्रके शील-स्वभावके गुण-गानमें दोनों भक्त इतने तल्लीन थे कि उन्हें समयका पता न रहा, अपने शरीरका भी भान नहीं था। दोनोंके अङ्ग पुलकित थे, दोनोंके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भर थे। दोनों एक-दूसरेको पाकर अत्यन्त मधुर, सुखी एवं आनन्द-विह्वल थे।

कुछ सावधान होकर श्रीपवनपुत्रने उनसे कहा—'भाई विभीषण! मैं तो प्रभुके आदेशानुसार माताका पता लगाने यहाँ आया हूँ। अब समय बहुत कम है। सूर्योदयके अनन्तर प्रकाशमें जानकीके समीप पहुँचना कठिन होगा। उधर समुद्रके उस पार तटपर बैठे कोटि-कोटि वानर-भालू उत्सुकतासे मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं स्वयं माताके लिये अधीर हो रहा हूँ। आप मुझे जननीका पता बतायें। उनके दर्शन कहाँ होंगे?'

विभीषणने बताया—'यहाँसे थोड़ी दूर राजमहलके समीप रावणकी सर्वाधिक प्रिय अशोकवाटिका है। वाटिकामें विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पों एवं प्रकारके सुस्वादु फलोंसे लदे सघन वृक्ष हैं। वहाँ सरस भ्रमर गुञ्जार एवं पक्षी कलरव करते रहते हैं।

'वाटिकाके मध्यमें निर्मल जलसे पूरित एक सुन्दर सरोवर है। सरोवरके तटपर असुरोंके इष्ट भगवान् शङ्करका एक विशाल एवं रमणीय मन्दिर है। वहाँ प्रख्यात सशस्त्र असुर योद्धा एवं प्रहरी राक्षसियाँ अहर्निश पहरा देती रहती हैं।

'शिव-मन्दिरसे कुछ ही दूर अत्यन्त सघन और ऊँचा एक अशोकका वृक्ष है। माता सीता उसी वृक्षके नीचे बैठी हुई प्रभुके वियोगमें व्यथित रहती हैं। उनके बालोंमें केश उलझकर एक जटाके रूपमें बन गये हैं। अन्न-जलका त्याग करनेके कारण उनका शरीर सूख गया है। वे पीली पड़ गयी हैं। उनके शरीरपर मैली साड़ीके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

'अत्यन्त क्रूर राक्षसियाँ उन्हें रात-दिन डराया-धमकाया करती हैं। उनके पास पहुँचना भी कठिन है। मेरी पत्नी और ज्येष्ठ पुत्री कला कभी-कभी उनके दर्शनार्थ वहाँ जाकर उन्हें कुछ संतोष दे आती हैं। मैं तो माँकी चरण-वन्दना स्मृतिसे ही किया करता हूँ। सशस्त्र प्रहरी घूमते रहते हैं। आप अत्यन्त सावधानीपूर्वक जाइये।'

जगज्जननी श्रीजानकीकी करुण दशा सुनकर प्रेममूर्ति श्रीअञ्जनानन्दन दुःखसे छटपटा उठे। उन्होंने विभीषणको गले लगाते हुए कहा—'विभीषणजी! आप चिन्ता न करें। दया-सागर प्रभुकी दयासे मैं उनके दर्शन कर लूँगा।'

श्रीहनुमानजी पुनः छोटा रूप धारण किये और अशोक-वाटिकाके लिये तीव्र गतिसे चल पड़े।

माता सीताके चरणोंमें

[illegible] असुर [illegible] निमग्न थे। श्रीराम [illegible] [illegible] कोई [illegible] नहीं हुआ। [illegible] [illegible] एक अद्भुत [illegible] आदिकी [illegible] [illegible] [illegible] दर्शनार्थ आतुर थे। सीधे अशोकवृक्षपर पहुँचे और उसके सघन पत्तोंमें छिपकर बैठ गये। उन्होंने नीचे देखा—

करुणा एवं शीलकी परम तेजस्विनी मूर्ति माता सीता चरणोंकी ओर नेत्र झुकाये गुमसुम बैठी थीं। उन्हें देखते ही हनुमान् अधीर हो उठे।

जगज्जननी श्रीसीताजीके दर्शन कर श्रीराम-भक्त अञ्जना-नन्दन अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके आह्लादकी सीमा न थी। अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने मन-ही-मन कहा—'आज जनकीजीको देखकर मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। अहा! परमात्मा श्रीरामके कार्यकी सिद्धिमें मैं ही निमित्त बना।'*

माताकी दयनीय दशा देखकर हनुमानजी दूसरे ही क्षण अत्यन्त दुःखी हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि क्या करूँ! उसी समय कोलाहल सुनकर श्रीपवननन्दन अशोकके सघन पत्तोंमें सावधान होकर छिप गये और माता जानकीजी डरसे सिकुड़कर बैठ गयीं। श्रीपवनपुत्रने देखा—अनेक सुन्दरी राक्षसियोंसे घिरा कज्जलगिरि-तुल्य दशमुख रावण चला आ रहा है। उन स्त्रियोंके साथ रावणकी महारानी मन्दोदरी भी थी।

मदनशरपीड़ित समीप आकर रावण कहने लगा—'जनकनन्दिनी! तुम मुझसे क्यों डरती हो! मैं तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक चाहता हूँ, तुम व्यर्थ ही क्यों कष्ट सह रही हो! तुम्हारा दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। उस वनवासी राममें क्या रखा है! उसमें यदि किसी प्रकारकी शक्ति होती तो वह अबतक कभी आकर तुम्हें ले गया होता। किंतु मैं त्रैलोक्य-विजयी हूँ। मनुष्य तो क्या, देवता, असुर, नाग और किंनरादि सभी मेरे नामसे काँपते हैं। इस त्रिकूटस्थित लङ्काके दुर्भेद्य दुर्गमें एक पक्षीका भी प्रविष्ट होना सम्भव नहीं, फिर वह वनवासी राम शतयोजन सागर पारकर यहाँ कैसे आ सकेगा? वह तो सर्वथा असमर्थ, निर्मम, अभिमानी, मूर्ख और अपनेको बड़ा बुद्धिमान् माननेवाला है, पर अब उससे तुम्हें क्या लेना है? तुम मेरी बनकर रहो, फिर देव, गन्धर्व, नाग, यक्ष और किंनर आदिकी स्त्रियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। मैं पूर्ण समर्थ हूँ। यदि चाहूँ तो तुम्हें बलपूर्वक ग्रहण कर सकता हूँ, किंतु मैं तुम्हें हृदयसे प्यार करता हूँ, इस कारण क्लेश देना उचित नहीं समझता। तुम स्वयं मान जाओ, इसीमें तुम्हारा कल्याण है।'

ऐसा सीताके मनपर प्रलोभनका कोई प्रभाव होते न देख दशाननने आगे कहा—'सुन्दरी सीता! देख, जबतक मुझे क्रोध नहीं आता, तबतक मेरे पक्षमें निर्णय कर ले, अन्यथा यदि मुझे तनिक भी क्रोध उत्पन्न हुआ तो मैं अपनी तीक्ष्ण तलवारके एक ही वारसे तेरा मस्तक धड़से अलग कर दूँगा। तेरे शरीरका मांस गीध और कौए खायेंगे या राक्षस और राक्षसियाँ तुझे कच्चा ही चबा जायँगी।'

क्रूरतम दशमुखकी विष-दग्ध शर-तुल्य वाणीसे माता जानकीजी तनिक भी भयभीत एवं विचलित नहीं हुईं। उन्होंने अपने सम्मुख एक तृण रख सिर नीचा किये कहा—'अधम राक्षस! तुझे जो कुछ करना है, शीघ्र कर ले। तेरे-जैसे पापीके द्वारा यन्त्रणा पानेकी अपेक्षा मृत्यु कहीं अच्छी है। अपनेको त्रैलोक्यविजयी बतानेवाले नीच! तू मेरे प्राणनाथकी अनुपस्थितिमें मुझे चुराकर ले आया और यहाँ अपने घरमें एक असहाय नारीके सामने डींग हाँक रहा है! तू तभीतक प्रलाप कर रहा है, जबतक श्रीराघवेन्द्र लङ्कामें पदार्पण नहीं करते। पर तू देखेगा, निकट भविष्यमें तेरी सोनेकी लङ्का अग्निमें जलकर राख हो जायगी और तू अपने बान्धवों एवं कुटुम्बियोंसहित मेरे स्वामीके अमोघ शरोंकी भेंट चढ़ जायगा। जिस समय श्रीकोसलेन्द्रकी बाण-वर्षासे विदीर्ण होकर तू यमलोकको जायगा, उसी समय उनके प्रतापको समझ सकेगा। मेरे प्रभु जबतक यहाँसे दूर हैं, तबतक तू पागलोंकी तरह इच्छानुसार प्रलाप कर ले।'

श्रीराम-वियोगिनी सती सीताजीके कठोर वचन सुनते ही दशाननके नेत्र लाल हो गये। क्रोधोन्मत्त रावण तलवार निकालकर श्रीजनककिशोरीकी ओर दौड़ा, किंतु उसे रोकती हुई उसकी पत्नी मन्दोदरीने प्रेमपूर्वक समझाया—'नाथ! आप इस दीना, क्षीणा, दुखिया एवं कातर मानवीको छोड़ दीजिये। इसमें क्या रखा है! आपको तो वरण करनेके लिये देव, गन्धर्व एवं नागादिकोंकी परम लावण्यवती स्त्रियाँ प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं।'

मन्दोदरीके पैरों पड़ने एवं अनुनय-विनय करनेसे रावणने पुनः शपथपूर्वक भगवती श्रीसीतासे कहा—'जानकी! देख, आज तो मैं तुझे छोड़ देता हूँ, किंतु यदि एक मासमें तू मेरी बात नहीं मानेगी तो मैं निश्चय ही तुझे अपने हाथों मार डालूँगा। अच्छा तो यही है कि तू यथाशीघ्र निर्णय कर ले।'

* कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम्॥ मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मनः।
(अ० रा० ५।३।११३)

तदनन्तर दशाननने अत्यन्त भयानक बदनवाली राक्षसियोंको आदेश देते हुए कहा—'निशाचरियो! यह सीता आदर, प्रलोभन, भय या जिस प्रकारसे मेरे अनुकूल हो जाय, वही प्रयत्न करो। यदि एक मासके भीतर यह मेरे वशमें हो गयी, तब तो यह मेरे महान् राज्य-सुखका उपभोग करेगी और यदि इसने अपना निश्चय नहीं बदला तो इकतीसवें दिन इस मानवीको मारकर मेरा प्रातःकालीन कलेवा बना देना।'

रावण चला गया और उसके इच्छानुसार अनेक भयानक राक्षसियाँ दुःखिनी श्रीजनककिशोरीको विविध प्रकारसे डराने धमकाने लगीं। यह दृश्य देखकर श्रीपवनात्मज क्षुब्ध हो उठे। उनके जीमें आया—इन नीच राक्षसियोंको अभी मसलकर फेंक दूँ, किंतु नीतिनिपुण मेधावी हनुमानजीने भगवान् श्रीरामका कार्य पूरा करनेके लिये धैर्यसे काम लिया।

उन अत्यन्त निर्मम एवं दुष्टा राक्षसियोंके द्वारा पतिवियोगिनी माता सीताको डरायी जाती देख बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा, जो तत्काल जागकर उठी थी, उन सबसे कहने लगी—'अधम निशाचरियो! निश्चय ही तुमलोगोंके बुरे दिन समीप आ गये हैं, अन्यथा तुमलोग सौभाग्यनिधान श्रीरामकी पत्नी देवी सीताके सम्मुख इस प्रकारका दुःसाहस आचरण नहीं करतीं। देखो, मैंने अभी-अभी एक भयंकर और रोमांचकारी स्वप्न देखा है, जो दशानन सहित समस्त राक्षसकुलके विनाश एवं देवी सीताके अभ्युदयका सूचक है।'

त्रिजटाकी बातोंसे [illegible] राक्षसियाँ भयभीत हो गयीं और वे स्वप्नके सम्बन्धमें उससे आग्रहपूर्वक बार-बार पूछने लगीं। त्रिजटाने उन्हें बताया—'मैंने स्वप्नमें रावणको मूड़ मुँड़ाये, तेलसे नहाकर लाल वस्त्र पहने हुए देखा था। करवीरकी माला पहने हुए मदिरासे उन्मत्त रावणको मैंने पुष्पक विमानसे पृथ्वीपर गिरते हुए देखा। मुण्डित मस्तक रावण काले वस्त्र पहने रथसे [illegible] उसे एक स्त्री कहीं खींचे लिये जा रही थी। शरीरपर लाल चन्दनका लेप किये और लाल पुष्पोंकी माला धारण किये रावण तेल पीता, हँसता, नाचता गधेपर बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा था। एकमात्र विभीषणको छोड़कर मैंने स्वप्नमें रावणके समस्त पुत्रों एवं मेघनादादिका मुण्डित मस्तक और तेलमें नहाये देखा है। मैंने यह भी देखा है कि रावण सूअरपर, मेघनाद सूँसपर और कुम्भकर्ण ऊँटपर सवार होकर दक्षिण दिशाको गये हैं। इतना ही नहीं, मैंने स्वप्नमें यह भी देखा है कि एक मूँगेके समान लाल मुँहवाले महातेजस्वी वानरने [illegible] ढकेलकर लंकामें आग लगा दी है। यह लंका भस्म हो गयी। मेरे विचारानुसार प्रातःकालका यह स्वप्न अवश्य सत्य सिद्ध होगा।'

बुद्धिमती वृद्धा त्रिजटाने अन्तमें राक्षसियोंको समझाते हुए कहा—'निशाचरियो! जो जनकदुलारी रानी सीता राज्यके समस्त सुख और वैभवको ठोकर मारकर अपने वीर पतिके साथ अरण्यमें चली गयीं, श्रीरघुनाथजीके साथ कुश, कण्टक और कंकरीले [illegible] कष्ट उठाती हुई सुखका अनुभव करती रहीं, उन [illegible] पतिव्रता माता और परमादरणीया प्रियतमा सीताको इस प्रकार धमकाया और डराया जाना कौसल्यानन्दन श्रीराम किस प्रकार सहन कर सकेंगे! तुम सबकी दुर्दशा होगी। तुम्हें कहीं शरण नहीं मिलेगी। अब इन्हें धमकाना एवं दुःख देना छोड़कर इनका सम्मान करो। इनके साथ सद्व्यवहार करो और इन विदेहनन्दिनीसे कृपा और क्षमा याचना करो, इसीमें तुमलोगोंका हित है।'

वृद्धा राक्षसी त्रिजटाके वचन सुनकर राक्षसियाँ [illegible] हो गयीं और वे माता सीताके चरणोंमें सिर नवाकर उनसे क्षमाकी प्रार्थना करके यहाँसे चली गयीं। [illegible] दुःखकी सीमा न थी। उन्होंने व्याकुल होकर त्रिजटासे कहा—'माता! तुम इस विपत्तिकालमें मेरी सहायक सिद्ध हुई हो, किंतु अब प्राणनाथके वियोगमें इन राक्षसियोंके बीचमें जीवित रहनेमें कोई लाभ नहीं। तुम [illegible] और सहायता करो। कुछ सूखी लकड़ियाँ [illegible] और थोड़ी-सी आग ला दो, जिससे मैं [illegible] यह शरीर त्याग दूँ। मैं तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूँगी। अब यह कष्ट मुझसे नहीं सहा जा रहा है।'

माता सीता फूट-फूटकर रो रही थीं। उनके दुःखसे दुःखी वृद्धा त्रिजटाने उन्हें अनेक युक्तियोंसे [illegible] फिर वह अपने घर चली गयी। माताका करुण रुदन सुनकर वृक्षपर छिपे बैठे परम पराक्रमी श्रीहनुमानजीका हृदय जैसे विदीर्ण होने लगा। [illegible] प्रभु [illegible], पर उन्होंने [illegible] उनके सम्मुख [illegible]

माता सीताने दुःखके आवेगमें शरीर छोड़ देना ही उचित समझा। उन्होंने सोचा—'फाँसी लगाकर मर जानेके लिये तो मेरी वेणी ही पर्याप्त होगी। प्राण त्याग देनेका निश्चय कर दु खिनी श्रीविदेहनन्दिनी उठकर खड़ी हो गयीं, उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे।

माताको इस प्रकार प्राणान्त करनेका निश्चय करते देख सूक्ष्मरूपधारी पवनपुत्र अत्यन्त मधुर स्वरमें कहने लगे—'प्रख्यात इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। उनके त्रैलोक्य-विख्यात श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न देवताओंके समान शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न चार पुत्र हैं। उनमें बड़े भाई श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण तथा अपनी प्राणाधिका सहधर्मिणी जनकदुलारीके साथ पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये राज्य त्यागकर वनमें आये। वे ऋषि-मुनियोंका दर्शन करते दण्डकारण्यमें पहुँचे। वे करुणावतार श्रीराम गौतमी नदीके तटपर पञ्चवटी आश्रममें रहते थे। श्रीरामकी अनुपस्थितिमें लङ्काधिपति दुष्ट दशानन उनकी सती पत्नी सीतादेवीको छलपूर्वक हर ले गया। सूने पर कुटियामें श्रीसीताको न पाकर श्रीराम व्याकुल हो गये। लक्ष्मणके साथ श्रीसीताको ढूँढ़ते हुए शोकाकुल श्रीराम मार्गमें जटायुको परमधाम भेजकर ऋष्यमूकपर्वतपर आये। वहाँ कपिराज सुग्रीवसे उनकी मैत्री हुई। सुग्रीवका बड़ा भाई वाली उसका शत्रु था। महाबाहु श्रीरामने वीरवर वालीको एक ही बाणसे मार डाला और सुमित्राकुमारने सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यपदपर अभिषिक्त किया। किष्किन्धाके राजा वानरराज सुग्रीवने विदेहनन्दिनी श्रीसीताका पता लगानेके लिये कोटि-कोटि वीर वानर भालुओंको चारों दिशाओंमें भेजा है। मैं उन्हीं कपिराज सुग्रीवका भेजा हुआ एक तुच्छ वानर हूँ। मार्गमें जटायुके भाई सम्पातिसे भेंट हुई। उन्होंने जनकनन्दिनीका पता बताया। उन्हींके निर्देशानुसार माता सीताको ढूँढ़ते हुए विभीषणसे भेंट हो गयी। उनके बताये अनुसार मैंने यहाँ महारानी सीताका दर्शन प्राप्त किया। उनका दुःख देखकर मेरा धैर्य छूट रहा है, पर मेरी यात्रा सफल हो गयी।'

प्राणाराध्य श्रीरामका वृत्तान्त सुनकर माता जानकीके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे मन ही-मन सोचने लगीं—यह सत्य है, अथवा मैं स्वप्न देख रही हूँ पर नींद तो मुझे आती नहीं, फिर स्वप्न कैसे देख सकती हूँ। जब मैं सुस्पष्ट वाणी सुन रही हूँ, तब यह भ्रम भी नहीं। माताने कहा—'जिन महाभागने मेरे प्राणनाथका अमृतोपम संवाद सुनाया है, वे मेरे सम्मुख आयें।'

माता सीताका आदेश पाते ही श्रीरामभक्त हनुमानजी धीरे धीरे वृक्षसे उतरे। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा और विनयपूर्वक माताके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया।

अत्यन्त कुटिल राक्षसियोंके बीच पति वियोगसे दुःखिनी श्रीजनकनन्दिनीने अपने सम्मुख विद्युत्पुञ्जके समान, अत्यन्त पिङ्गलवर्णवाले एव पक्षीके बराबर आकारके वानरको देखा तो वे सहम गयीं। वानरके नेत्र तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रहे थे। उस टेढ़े मुखवाले नन्हे-से वानरको देखकर माताने सोचा—'मुझे छलपूर्वक फँसानेके लिये मायावी रावणने यह माया रची है।' अवनतवदना माता सीता व्याकुल होकर सिसकने लगीं।

भगवती सीताको नीचे मुख किये रोते देखकर श्रीअञ्जनानन्दनने व्याकुल होकर कहा—'माता! आप किसी प्रकारकी शङ्का न करें। मैं करुणा निधान श्रीरामकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं प्रभु श्रीरामका दास और कपिराज सुग्रीवका सचिव हूँ। उनके भेजनेसे आपका पता लगानेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। मेरे पिता परमपराक्रमी पवन देवता हैं।'

अपने सम्मुख श्रद्धापूर्वक सिर झुकाये बद्धाञ्जलि श्रीपवननन्दनको देखकर माता जानकीने कहा—'तुम अपनेको श्रीरघुनाथजीका दास कहते हो किंतु मनुष्य और वानरका साथ कैसे सम्भव है?'

हाथ जोड़ हनुमानजीने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'माता! शबरीकी प्रेरणासे सानुज श्रीराम ऋष्यमूक पर्वतके समीप पहुँचे। गिरि शिखरपर बैठे सुग्रीवने मुझे उनका पता लगानेके लिये भेजा। मैं ब्राह्मणके वेषमें प्रभुके समीप पहुँचा। परिचय हो जानेपर मैं लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीरामको अपने कंधेपर बैठाकर सुग्रीवके पास ले गया। वहाँ मैंने प्रभुकी सुग्रीवसे मैत्री करा दी। राज्यसे बहिष्कृत सुग्रीव प्रभु-कृपासे ही राज्य-सुखका उपभोग कर रहे हैं। उन्हींकी आज्ञासे मैं यहाँ आया हूँ। आते समय प्रभुने पहचानके लिये अपनी मुद्रिका भी मुझे दी थी।'

हनुमानजीने माता जानकीको मुद्रिका दे दी। प्रभुकी

कनक-भूधराकार श्रीहनुमानजी

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

[पृष्ठ २८८

स्वामी रावण-सहित उठाकर भाग ले जा सकता हूँ। अतएव आप अपने मनमें तनिक भी संदेह न करें। माता! मुझमें बुद्धि कहाँ, किंतु परमप्रभुकी कृपासे साँपका छौना भी गरुड़को खा सकता है। फिर इस तुच्छतम कीट-तुल्य राक्षसकी क्या गणना है! जननी! मैं वानरराज सुग्रीवका एक तुच्छ सेवक हूँ। उनके यहाँ कोटि-कोटि महाशक्तिसम्पन्न विशालकाय और भयानक वानर भालू हैं।'

वानरशिरोमणि विशालकाय हनुमानजीकी वाणी सुनकर माता जानकीके मनका संदेह तो दूर हुआ ही, वे अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने श्रीराम भक्तको आशीर्वाद प्रदान किया—'हे तात! तुम बल और शीलके निधान होओ। हे पुत्र! तुम अजर (जरारहित), अमर और गुणोंकी निधि होओ। श्रीरघुनाथजी तुमपर बहुत कृपा करें *।'

'प्रभु कृपा करें'—जगज्जननीके मुखारविन्दसे आशीर्वाद प्राप्त कर श्रीपवनपुत्र कृतार्थ हो गये, उन्हें जैसे निखिल सृष्टिकी बहुमूल्य निधि प्राप्त हो गयी! वे माता जानकीके चरणोंमें लोटने लगे। उनके प्रेमानन्दकी सीमा नहीं थी। उनके अङ्ग-अङ्गमें पुलक एवं नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल रहा था। भुवनपावनी माता जानकीकी चरण-रज उनके मुख-मण्डलमें लिपट गयी थी। हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें हनुमानजीने भगवती सीतासे कहा—'माता! मैं कृतार्थ हो गया। मेरा जीवन एवं जन्म—सब सफल हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ होता है, यह जगत्प्रसिद्ध है।'

हनुमानजीने फिर कहा—'माँ! मुझे भूख लगी है और मेरे सम्मुख इस वाटिकामें विविध प्रकारके मधुर फल लटके दीख रहे हैं। यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं इन्हें खाकर क्षुधा निवारण कर लूँ।'

जानकीजीने कहा—'बेटा! तुम फल खाकर तृप्त हो जाओ, यह तो मैं चाहती हूँ, किंतु यहाँ बड़े बलवान् और शूरवीर सशस्त्र सैनिक सदा पहरा देते रहते हैं।'

अभय श्रीहनुमानने कहा—'माँ! यदि आप प्रसन्नमन मुझे आज्ञा दे दें तो मुझे इन असुरोंकी तनिक भी चिन्ता नहीं है।'

भगवती सीताने महावीर हनुमानको बल और बुद्धिसे सम्पन्न देखकर कह दिया—'बेटा! जाओ! श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए इच्छानुसार मधुर फलोंको खाकर पेट भर लो।'

अशोक-वाटिका-विध्वंस

समस्त शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् श्रीसमीरकुमारने मन ही मन विचार किया—'दूतका कार्य स्वामीके हितके लिये मार्ग प्रशस्त करना है। राक्षसराज रावणका यह दुर्ग अभेद्य है। इसके प्रत्येक द्वारपर इतने अद्भुत और शक्तिशाली यन्त्र लगे हैं, जिनके रहते किसी भी वीर-वाहिनीका इसमें प्रवेश सम्भव नहीं। दूसरे, इस अगम लंकाको मैंने रात्रिमें देखा है। दशग्रीवके व्यक्तित्व एवं उसके योद्धाओंका कैसे पता चले? शत्रुकी सैन्य-शक्तिकी जानकारी आवश्यक है, इतना ही नहीं, रावणको आतङ्कित कर उसका मनोबल गिरानेसे भी लाभ होगा। माता सीता भी दिये गये आश्वासनका विश्वास करके धैर्यपूर्वक अपने दिन काट सकेंगी। अतएव लंकाको भलीभाँति देखकर इसके अधिपति रावणसे मिलकर ही चलना अधिक उपयोगी होगा। पर दशमुखसे भेंट कैसे हो? यदि ये असुर किसी प्रकार उत्तेजित हो जायँ तो निश्चय ही मैं रावणके सम्मुख पहुँचा दिया जाऊँगा।'

बस, अपने मनमें इस प्रकारकी योजना बनाकर श्रीपवनपुत्र उछलकर एक वृक्षपर चढ़ गये। वे मधुर फलोंको खाने लगे। वे कुछ फलोंको कुतरकर और कुछको वैसे ही धरतीपर फेंक देते। किसी वृक्षकी डाल तोड़कर फेंकने तो कोई समूचा वृक्ष ही उखाड़ देते। इस प्रकार वे सम्पूर्ण अशोक वाटिकाको नष्ट करने लगे। जिस शिंशपा (अशोक) वृक्षके नीचे माता सीता रहती थीं, उसके अतिरिक्त पवनपुत्रने वाटिकाके समस्त पुष्पों एवं फलोंके वृक्षोंको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अत्यन्त सुन्दर वाटिका कुछ ही देरमें उजाड़ हो गयी। इतना ही नहीं, परम शक्तिसम्पन्न महादेवात्मज श्रीहनुमान असुरोंके गगनचुम्बी चैत्य प्रासादपर† उछलकर चढ़ गये। वे परम तेजस्वी शिवावतार कपीश्वर विशाल शरीर धारण करके लंकाको प्रतिध्वनित करते हुए उस प्रासादको तोड़-फोड़कर नष्ट करने लगे।

---

* × × × । होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥ (मानस ५। १६। १ २)

† लंकामें राक्षसोंके कुलदेवताका अत्यन्त रमणीय भवन 'चैत्यप्रासाद' कहा जाता था।

टूट पड़े । उस समय कपिराज हनुमानजीका आकार भयानक पर्वत-तुल्य हो गया । उनकी भीषणतम आकृति एवं आकाशको विदीर्ण करनेवाले गर्जनसे असुर निष्प्राण-से हो गये । उनके अस्त्र-शस्त्र परम शक्ति-सम्पन्न श्रीअञ्जनानन्दनको तिनके तुल्य प्रतीत हुए । उन्होंने कुछ ही क्षणोंमें समूची सेनाके साथ पाँचों सेनापतियोंको रौंद डाला । उनकी लाशोंसे वहाँकी धरती पट गयी । वानराधीश श्रीपवननन्दन लौह-स्तम्भ लिये मुख्य फाटकपर खड़े होकर अन्य राक्षस-वीरोंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे । उस समय क्रोधपरवशात्मा कपिसत्तम असुरोंका संहार करनेके लिये उद्यत भयानकतम काल-तुल्य प्रतीत हो रहे थे ।

दशकण्ठ दशाननने अपने पाँचों सेनापतियोंके सैनिकों एवं वाहनोंसहित मारे जानेका दुःसंवाद सुनकर अपने वीरपुत्र अक्षकुमारकी ओर देखा । युद्धके लिये उत्कण्ठित रहनेवाला वीरवर अक्षकुमार अत्यन्त उत्साहपूर्वक उठ खड़ा हुआ । वह महापराक्रमी राक्षस शिरोमणि सुवर्ण-मण्डित रथपर आरूढ होकर कपीश्वरकी ओर चला । उसके रथमें धनुष, बाण, तरकस, तलवार, शक्ति, तोमर आदि समस्त अस्त्र-शस्त्र यथास्थान यथाक्रमसे रखे हुए थे ।

अक्षकुमारने समरशूर हनुमानजीपर प्रचण्ड वेगसे आक्रमण किया, किंतु रूपधाकार श्रीमहादेवांशज आकाशसे सीधे उसके रथपर कूद पड़े । उसके रथ, अश्व और सारथि—सभी समाप्त हो गये । वीरवर अक्षकुमार रथसे कूदकर श्रीपवनपुत्रपर अस्त्र-प्रहार करना ही चाहता था कि वे पुनः आकाशमें उड़ गये । उनके पीछे रावणकुमार भी दौड़ा । हनुमानजीने अत्यन्त फुर्तीसे उसके दोनों पैर दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये और उसे आकाशमें ही हजारों बार वेगपूर्वक घुमाकर जोरसे पृथ्वीपर पटक दिया । उच्चाकाशसे नीचे गिरनेपर असुरराजके प्राणप्रिय पुत्रके किसी भी अङ्गका पता नहीं चला । केवल यत्र-तत्र खूनकी क्षीण धारा बहती दीख पड़ी ।

हनुमानजीके द्वारा अक्षकुमारके मारे जानेपर नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले महर्षियों, यक्षों, नागों, भूतों तथा इन्द्रसहित देवताओंने वहाँ एकत्र होकर विस्मयके साथ परम तेजस्वी साक्षात् काल-तुल्य श्रीरुद्रांशका दर्शन किया । श्रीपवनपुत्र पुनः युद्धकी प्रतीक्षा करते हुए वाटिकाके उसी द्वारपर जा डटे ।

अक्षकुमारकी मृत्युका अत्यन्त दुःखद समाचार रावणके पास पहुँचा । उसने बड़ी कठिनाईसे अपना मन स्थिर किया । प्रज्वलित रोषानलमें दग्ध होता हुआ महाकाय रावण स्वयं हनुमानजीको पकड़ने चला, किंतु इन्द्रजित्‌ने उसे रोककर कहा—'महाभाग ! मेरे रहते आप क्यों दुःखी होते हैं ! मैं अभी उस वानरकी उच्छृङ्खलता शान्त करता हूँ ।'

इन्द्रजित्‌को वानरराज श्रीहनुमानके साथ युद्धार्थ जानेके लिये उद्यत देखकर रावणने उसे सावधान करते हुए कहा—'बेटा ! उस वानरकी गति अथवा शक्तिका कोई माप-तौल या सीमा नहीं है । वह अग्नि-तुल्य तेजस्वी वानर किसी साधन-विशेषसे मारा नहीं जा सकता ।* अतएव तुम प्रतिपक्षीमें अपने समान ही पराक्रम समझकर अपने धनुषके दिव्य प्रभावको याद रखते हुए आगे बढ़ो और ऐसा पराक्रम कर दिखलाओ, जो अव्यर्थ सिद्ध हो ।'

अपने पिताके ये वचन सुन वीरवर मेघनादने युद्धके लिये निश्चित विचार करके दशग्रीवकी परिक्रमा की और वह अपने अद्भुत रथकी ओर चला ।

महापराक्रमी इन्द्रजित् अपने तेजस्वी रथपर बैठकर अनेक राक्षसोंके साथ पवनपुत्रके समीप पहुँचा । उसका भयंकर सिंहनाद सुन सर्वसमर्थ श्रीहनुमानजी लौह-स्तम्भ लिये आकाशमें उड़ गये । धनुर्धर मेघनादने अपने तीक्ष्ण शरोंसे हनुमानजीको बींध दिया । उनके शरीरसे रक्तकी धारा बह चली । वृहत्काय हनुमानजीने कुपित होकर लौह-स्तम्भके प्रबल प्रहारसे उसके सारथिको मारकर रथको चूर्ण-विचूर्ण कर दिया । मेघनादके कितने ही वीर राक्षस रक्त-वमन करते हुए यमलोक सिधारे ।

महाकपीश्वरकी शक्तिके सम्मुख कोई वश चलता न देख इन्द्रजित्‌ने ब्रह्मपाश छोड़ा । नित्यमुक्त श्रीपवनकुमारको विधाताने ब्रह्मपाशसे मुक्त रहनेका वरदान पहले ही दे दिया था, किंतु श्रीअञ्जनानन्दन मर्यादाका अतिक्रमण करना नहीं जानते । वे ब्रह्मपाशको सम्मान प्रदान करनेके लिये उसमें बँध गये ।

---

* न साधनस्यास्ति गतिप्रमाणं न चास्तिकारः करणेन हन्तुम्॥

(वा० रा० ५ । ४८ । ११)

दया रखनेवाले वालीको उन्होंने एक ही बाणसे मार डाला। तुम उन्हें न जाननेका स्वाँग भले ही रच लो, पर वे तुम्हें कैसे भूल सकते हैं, जिनकी सती पत्नीको तुम चोरकी तरह चुराकर ले आये हो। रावण! तुम अच्छी प्रकार देख और समझ लो, मैं उन्हीं सर्वशक्ति-सम्पन्न परमप्रभु श्रीरामका दूत परम प्रतापी पवनदेवका पुत्र हनुमान हूँ।

'किष्किन्धाधिपति श्रीराम-सखा सुग्रीवने सीतादेवीकी खोजके लिये व्यग्र होकर कोटि-कोटि वीर वानर भालुओंको चारों दिशाओंमें भेजा है। उन्हींका भेजा हुआ मैं शतयोजन सागर लाँघकर यहाँ आया हूँ। मैंने माता सीताका दर्शन कर लिया है। तुम भगवती सीताको लंकाका विनाश करनेवाली कालरात्रि ही समझो। सीताका शरीर धारण करके तुम्हारे पास कालकी फाँसी आ पहुँची है। रावण! तीनों लोकोंमें एक भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो भगवान् श्रीरामका अपराध करके सुखी रह सके। महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा, त्रिनेत्र त्रिपुरारि, सहस्राक्ष इन्द्र, देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष—ये सब मिलकर भी समराङ्गणमें श्रीरघुनाथजीके सम्मुख नहीं टिक सकते।

'मैं तो प्रभुके आदेशानुसार माता सीताका दर्शन करने गया था। मुझे जोरकी भूख लगी थी, इस कारण फल खाने लगा। अपने स्वभावके अनुसार मैंने वृक्षोंको तोड़ा, किंतु तुम्हारे सैनिक मुझपर प्रहार करने लगे। भला, अपना शरीर किसे प्रिय नहीं है! अतः जिन्होंने मुझे मारा, मैंने भी उन्हें मार डाला। इसमें मेरा क्या दोष है! अपराध तो तुम्हारे पुत्रने किया है। तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो, मैं यहाँ अन्यायपूर्वक बाँधकर लाया गया हूँ।'

कपीश्वर हनुमानजीकी चतुरतापूर्ण निर्भीक वाणी सुनकर देवगण प्रसन्न हो उठे और राक्षसगण भयाक्रान्त हो काँपने लगे। श्रीरामकी शक्तिकी महिमा सुनकर उनका मनोबल गिर गया। रावण क्रोधपूर्वक दाँत पीसने लगा, परंतु परम बुद्धिमान् मङ्गलमूर्ति श्रीहनुमान दशग्रीवके यथार्थ हितके लिये अत्यन्त शान्तिपूर्वक उपदेश करते रहे—

"लंकाधिपति! तुम ब्रह्माजीके अति उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए हो तथा पुलस्त्यनन्दन विश्रवाके पुत्र और कुबेरके भाई हो, अतः देखो, तुम तो देहात्मबुद्धिसे भी राक्षस नहीं हो, फिर आत्मबुद्धिसे राक्षस नहीं हो, इसमें तो कहना ही क्या है! तुम सर्वथा निर्विकार हो, इसलिये शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ और दुःखादि—ये न तुम्हारे (गुण) हैं और न तुम स्वयं हो। इन सबका कारण अज्ञान है और स्वप्न-दृश्यके समान ये सब असत् हैं। यह बिल्कुल सत्य है कि तुम्हारे आत्म-स्वरूपमें कोई विकार नहीं है, क्योंकि अद्वितीय होनेसे उसमें कोई विकारका कारण ही नहीं है। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र होनेपर भी (किसी पदार्थके गुण-दोषसे) लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तुम देहमें रहते हुए भी सूक्ष्म रूप होनेसे उसके सुख-दुःखादि विकारोंसे लिप्त नहीं होते। 'आत्मा देह, इन्द्रिय, प्राण और शरीरसे मिला हुआ है'—ऐसी बुद्धि ही सारे बन्धनोंका कारण है और 'मैं चिन्मात्र, अजन्मा, अविनाशी तथा आनन्दस्वरूप ही हूँ'—इस बुद्धिसे जीव मुक्त हो जाता है। पृथ्वीका विकार होनेसे देह भी अनात्मा है और प्राण वायुरूप ही है, अतः यह भी आत्मा नहीं है। अहंकारका कार्य मन अथवा प्रकृतिके विकारसे उत्पन्न हुई बुद्धि भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो चिदानन्द स्वरूप, अविकारी तथा देहादिके संघातसे पृथक् और उसका स्वामी है। वह निर्मल और सर्वदा उपाधिरहित है—उसका इस प्रकार ज्ञान होते ही मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है। अतः हे महामते! मैं तुम्हें आत्यन्तिक मोक्षका साधन बतलाता हूँ सावधान होकर सुनो! भगवान् विष्णुकी भक्ति बुद्धिको अत्यन्त शुद्ध करनेवाली है, उसीसे अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानसे शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव होता है और उससे दृढ़ बोध हो जानेपर मनुष्य परमपद प्राप्त करता है। इसलिये तुम प्रकृतिसे परे, पुराण पुरुष, सर्वव्यापक आदिनारायण लक्ष्मीपति हरिभगवान्का भजन करो। अपने हृदयमें स्थित शत्रुभावरूप मूर्खताको छोड़ दो और शरणागतवत्सल श्रीरामका भजन करो। सीताजीको आगे कर अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित भगवान् श्रीरामकी शरणमें जाकर उन्हें नमस्कार करो। इससे तुम भयसे छूट जाओगे। जो पुरुष अपने हृदयमें स्थित अद्वितीय सुखस्वरूप परमात्मा श्रीरामका भक्तिपूर्वक ध्यान नहीं करता, वह दुःख-तरङ्गावलिसे पूर्ण इस संसार-समुद्रका पार कैसे पा सकता है! यदि तुम भगवान् श्रीरामका भजन नहीं करोगे तो अज्ञानरूपी अग्निसे जलते हुए अपने-आपको शत्रुके समान सुरक्षित नहीं रख सकोगे और उसे अपने किये हुए

लंका-दहन

सत्त्वगुणशाली, परमपराक्रमी, कपिकुञ्जर श्रीअञ्जनानन्दवर्धनने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने दिव्य आकारको छिपा रखा था। लंकाधिपति रावणका आदेश पाते ही मूढ़ राक्षस घृत और तेलमें डुबा-डुबाकर चिथड़े और वस्त्र उनकी पूँछपर लपेटने लगे। परम कौतुकी पवनात्मजने अपनी पूँछ लंबी कर दी। दुष्ट दशाननके आज्ञापालक असुर हनुमानजीकी पूँछमें जितने ही वस्त्र लपटते, वह उतनी ही लंबी होती जाती। कपिकी इस क्रीडासे लंकामें वस्त्र एवं तेल-घृतका अभाव होने लगा। पर असुर कब माननेवाले थे। उक्त राक्षसपुरीमें जहाँसे जितना वस्त्र, तेल और घृत प्राप्त हुआ, सब एकत्र कर लिया गया। वस्त्रको पूँछमें अच्छी प्रकार लपेटकर उसे दृढ रज्जुसे बाँध दिया गया और फिर असुरोंने उसे अच्छी प्रकार भिगा देनेसे बचे-खुचे तेल और घीको भी ऊपरसे उँड़ेल दिया।

दृढ रज्जुमें जकड़े हुए कपिकुञ्जर श्रीकेसरीकिशोरको राक्षस पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक ले चले। वे शङ्ख और भेरी बजा-बजाकर उनके अपराधोंकी घोषणा करते हुए उन्हें गली-गली घुमाने लगे। राक्षस और उनके बच्चे शत्रुदमन श्रीहनुमानजीके पीछे-पीछे ताली बजाते, उन्हें गाली बकते, घूँसा मारते, उनके बाल नोचते तथा उनपर कंकड़-पत्थर फेंकते हुए चल रहे थे, किंतु परम बुद्धिमान् हनुमानजी अपने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये मनमें तनिक भी दुःख न मानकर सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक सह रहे थे। उन्होंने रात्रिमें दुर्ग-रचनाकी विधिपर दृष्टि रखते हुए उस नगरीको अच्छी प्रकार नहीं देखा था और अब वे रावणप्रदत्त इस दण्डसे राक्षसोंकी विशाल पुरीमें विचरते हुए उसे भलीभाँति देखने लगे। इस प्रकार उन्होंने अनेक अद्भुत विमान, सुन्दर चबूतरे, घनीभूत गृह-पङ्क्तियोंसे घिरी हुई सड़कें, चौराहे, छोटी-बड़ी गलियाँ, घरोंके मध्यभाग, गवाक्ष, द्वार एवं प्रख्यात राक्षसोंके आवास आदि सब महत्त्वपूर्ण स्थान ध्यानपूर्वक देख लिये।

राक्षसोंने हनुमानजीको बाँधकर लंकामें सर्वत्र घुमाया और जी भरकर उनका तिरस्कार किया। पीछे प्रमुख चौराहे पर आकर सब श्रीहनुमानजीको घेरकर खड़े हो गये। चारों ओर हर्षोल्लासकी ध्वनि होने लगी। उसी बीच रावणके एक प्रमुख वीरने पूँछमें आग लगा दी। अग्नि प्रज्वलित हुई और राक्षस-राक्षसियाँ—सब हर्षातिरेकसे ताली पीट-पीटकर नाचने लगे।

बल-बुद्धि निधान हनुमानजीके उद्देश्यकी पूर्ति हो गयी। अब उन्होंने अपना आकार छोटा कर लिया। बस, असुरों-द्वारा बाँधा गया बन्धन ढीला पड़ गया। श्रीपवनपुत्र बन्धन मुक्त हुए और फिर उन्होंने बृहदाकार रूप धारण कर लिया। उन्होंने वेगपूर्वक अपनी पूँछ घुमायी ही थी कि राक्षस सहमे, किंतु रुद्रांशजने उन्हें अपनी पूँछसे ही मारना आरम्भ किया। हनुमानजीकी पूँछका आघात वज्रपातके सदृश हो रहा था। बालक, युवा एवं वृद्ध राक्षस नर नारी भयभीत होकर भागने लगे, किंतु वे जहाँ-कहीं भी भागते, पूँछ वहीं उन्हें काल-सर्पकी भाँति लपेट लेती। अग्निकी ज्वालामें छटपटाते हुए असुर पृथ्वीपर जोरसे पटके जाते। तड़पने भी नहीं पाते, तुरंत मर जाते। इस प्रकार वहाँ एकत्रित समस्त असुरोंका वध कर हनुमानजी लंकाकी एक अत्यन्त विशाल गगनचुम्बी अट्टालिकापर चढ़ गये।

जिस समय पवननन्दन हनुमानजीकी पूँछमें आग लगायी जा रही थी, उसी समय एक भयानक राक्षसीने दौड़कर माता जानकीसे कहा—'सीते! तुम जिस बंदरसे बात कर रही थी, उसे बाँधकर उसकी पूँछमें आग लगा दी गयी है। उसे अत्यन्त अपमानके साथ लंकाकी गलियोंमें घुमाया गया है।'

माता जानकी सहसा काँप उठीं। उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा—विशाल लंकापुरीमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला फैली हुई है। उन्होंने अत्यन्त व्याकुल होकर अग्निदेवसे प्रार्थना की—'अग्निदेव! यदि मैं अपने प्राणनाथ पतिदेवकी विशुद्ध सेविका हूँ और यदि मुझमें तपस्या तथा पातिव्रत्यका बल है तो तुम पवनपुत्र हनुमानके लिये शीतल हो जाओ!' एक तो पातिव्रत्यकी ही अमित शक्ति! पतिव्रता देवी इच्छा होनेपर सम्पूर्ण सृष्टिको उलट-पुलट कर सकती हैं, दूसरे निखिल सृष्टिकी स्वामिनी, जगज्जननी, मूल प्रकृति स्वयं शक्तिकी प्रार्थना! तीखी लपटोंवाले अग्निदेव श्रीहनुमानके लिये शान्त भावसे जलने लगे। उनकी शिखा प्रदक्षिणभावसे उठने लगी। स्वयं हनुमानजी चकित होकर सोचने लगे—'अरे! अग्नि तो

पापोंसे उत्तरोत्तर नीचेकी ओर ही ले जाओगे। फिर तुम्हारे मोक्षकी कोई सम्भावना न रहेगी ।*

'असुरराज ! मैं तुमसे पुनः पुनः विनीत प्रार्थना करता हूँ कि तुम माता सीताको अत्यन्त आदरपूर्वक आगे करके भगवान्‌के समीप चलो और उनके चरणोंमें गिरकर अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँग लो । विश्वास करो, वे दयाधाम श्रीराम तुम्हें निश्चय ही क्षमा कर देंगे । फिर तुम लङ्कामें निष्कण्टक राज्यका उपभोग करो । तुम्हारा लौकिक और पारलौकिक जीवन सुधर जायगा—सफल हो जायगा । तुम धन्य हो जाओगे ।'

भक्तवर श्रीअञ्जनानन्दन दशग्रीवके परम कल्याणके लिये उसे अमृतोपम उपदेश दे रहे थे, किंतु भावीवश दुर्बुद्धि राक्षसराजको वह बहुत अप्रिय लगा । उसके नेत्र लाल हो गये । अत्यन्त कुपित होकर उसने कहा—'वानराधम ! दुष्टबुद्धे !! मेरे सामने तू अनर्गल प्रलाप करनेका दुस्साहस कैसे कर रहा है ! वनवासी राम और सुग्रीवकी क्या शक्ति है ! पहले तो मैं यहीं तेरा वध करता हूँ और फिर सीताको मारकर तेरे राम-लक्ष्मण और सुग्रीवको भी उनकी सेनाके सहित मृत्यु-मुखमें झोंक दूँगा ।'

दशाननकी मिथ्या दर्पोक्तिको विशुद्धात्मा श्रीमर्कटाधीशके लिये सह लेना सम्भव नहीं था । दाँत किटकिटाते हुए उन्होंने कहा—'अधम राक्षसराज ! तेरे सिरपर मृत्यु नाच रही है, इसी कारण तू प्रलाप कर रहा है । मैं भगवान् श्रीरामका सेवक हूँ । मेरी शक्ति और पराक्रमकी तू कल्पना भी नहीं कर सकता । तेरे-जैसे कोटि-कोटि पापात्मा मेरी समानता करनेमें समर्थ नहीं हैं ।'

दुरात्मा रावण प्रज्वलित क्रोधाग्निसे जल उठा । उस क्रोधोन्मत्त असुरने चिल्लाते हुए अपने अनुचरोंको आज्ञा दी—'राक्षसो ! तुम इस दुष्ट वानरका वध कर डालो ।'

अनेक वीर राक्षस कपीश्वरकी ओर झपटे ही थे कि वार्तालाप-कुशल विभीषणने अपने ज्येष्ठ भ्राता रावणको शान्तिपूर्वक समझाते हुए कहा—'वीरवर लङ्केश्वर ! धर्मकी व्याख्या करने, लोकाचारका पालन करने अथवा शास्त्रके सिद्धान्तको समझनेमें आपके समान दूसरा कोई नहीं है । आप क्रोधको त्यागकर विचार करें—सत्पुरुषोंका कथन है कि दूत कहीं, किसी समय भी वध करनेयोग्य नहीं होता । यह भला हो या बुरा, शत्रुओंने इसे भेजा है, अतः यह उन्हींके स्वार्थकी बात करता है । दूत सदा पराधीन होता है अतः उसे कभी मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जाता । दूतके लिये अङ्ग-भङ्ग आदि अन्य प्रकारके बहुत-से दण्ड हैं, आप उनमेंसे किसीका उपयोग कर सकते हैं ।'

अनुज विभीषणके देश-कालके उपयुक्त हितकर वचन सुनकर नीतिज्ञ रावणने कहा—'विभीषण ! तुम्हारा कहना ठीक है, किंतु वधके अतिरिक्त इसे दूसरा कोई दण्ड अवश्य देना चाहिये । वानरोंको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है, वही इनका आभूषण है । अतः यथाशीघ्र इसकी पूँछ जला दी जाय । यह दुमकटा बंदर अपने वनवासी स्वामीके समीप जाकर उसे स्वयं कालके गालमें खींच लायगा ।'

दुष्ट दशाननने पुनः आज्ञा दी—'असुरगण ! तिरस्कार करते हुए इसको लङ्काकी सड़कों, चौराहों और गलियोंमें घुमाओ और अन्तमें इसकी पूँछमें आग लगा दो ।'

* त्वं ब्रह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भवः पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः । देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो ह्यसि ॥
शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसन्ततिर्न ते न च त्वं तव निर्विकारतः । अज्ञानहेतोश्च तथैव सन्ततेरसत्त्वमस्याः स्वपतो हि दृश्यवत् ॥
इदं तु सत्यं तव नास्ति विक्रिया विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वतः । यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते तथा भवान् देहगतोऽपि सूक्ष्मकः ।
देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गतस्त्वात्मेति बुद्ध्वाखिलबन्धभाग् भवेत् ॥
चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते । देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो न प्राण आत्मानिल एष एव सः ॥
मनोऽप्यहंकारविकार एव नो न चापि बुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा । आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवान् देहादिसङ्घाद्व्यतिरिक्त ईश्वरः ॥
निरञ्जनो मुक्त उपाधितः सदा ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते । अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनं वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते ॥
विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धियस्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम् । विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्ततः सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥
अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम् । विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ॥
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥
रामं परात्मानमभावयन् जनो भक्त्या हृदिस्थं सुखरूपमद्वयम् । कथं परं तीरमवाप्नुयाज्जनो भवाम्बुधेर्दुःखतरङ्गमालिनः ॥
नो चेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् । नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्च पातकैर्विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति ॥
(अध्यात्मरामायण ५ । ४ । ११—१९)

लंका-दहन

सत्त्वगुणशाली, परमपराक्रमी, कपिकुञ्जर श्रीअञ्जनानन्दवर्धनने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने दिव्य आकारको छिपा रखा था। लंकाधिपति रावणका आदेश पाते ही मूढ़ राक्षस घृत और तेलमें डुबा-डुबाकर चिथड़े और वस्त्र उनकी पूँछपर लपेटने लगे। परम कौतुकी पवनात्मजने अपनी पूँछ लंबी कर दी। दुष्ट दशाननके आज्ञापालक असुर हनुमानजीकी पूँछमें जितने ही वस्त्र लपेटते, वह उतनी ही लंबी होती जाती। कपिकी इस क्रीडासे लंकामें वस्त्र एवं तेल-घृतका अभाव होने लगा। पर असुर कब माननेवाले थे। उक्त राक्षसपुरीमें जहाँसे जितना वस्त्र, तेल और घृत प्राप्त हुआ, सब एकत्र कर लिया गया। वस्त्रको पूँछमें अच्छी प्रकार लपेटकर उसे दृढ रज्जुसे बाँध दिया गया और फिर असुरोंने उसे अच्छी प्रकार भिगा देनेसे बचे-खुचे तेल और घीको भी ऊपरसे उँड़ेल दिया।

दृढ रज्जुमें जकड़े हुए कपिकुञ्जर श्रीकेसरीकिशोरको राक्षस पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक ले चले। वे शङ्ख और भेरी बजा-बजाकर उनके अपराधोंकी घोषणा करते हुए उन्हें गली-गली घुमाने लगे। राक्षस और उनके बच्चे शत्रुदमन श्रीहनुमानजीके पीछे-पीछे ताली बजाते, उन्हें गाली बकते, घूँसा मारते, उनके बाल नोचने तथा उनपर कंकड़-पत्थर फेंकते हुए चल रहे थे, किंतु परम बुद्धिमान् हनुमानजी अपने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये मनमें तनिक भी दुःख न मानकर सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक सह रहे थे। उन्होंने रात्रिमें दुर्ग-रचनाकी विधिपर दृष्टि रखते हुए उस नगरीको अच्छी प्रकार नहीं देखा था और अब वे रावण-प्रदत्त इस दण्डसे राक्षसोंकी विशाल पुरीमें विचरते हुए उसे भलीभाँति देखने लगे। इस प्रकार उन्होंने अनेक अद्भुत विमान, सुन्दर चबूतरे, घनीभूत गृह-पङ्क्तियोंसे घिरी हुई सड़कें, चौराहे, छोटी-बड़ी गलियाँ, घरोंके मध्यभाग, गढ़, द्वार एवं प्रख्यात राक्षसोंके आवास आदि सब महत्त्वपूर्ण स्थान ध्यानपूर्वक देख लिये।

राक्षसोंने हनुमानजीको बाँधकर लंकामें सर्वत्र घुमाया और जी भरकर उनका तिरस्कार किया। पीछे प्रमुख चौराहे पर आकर सब श्रीहनुमानजीको घेरकर खड़े हो गये। चारों ओर हर्षोल्लासकी ध्वनि होने लगी। उसी बीच रावणके एक प्रमुख वीरने पूँछमें आग लगा दी। अग्नि प्रज्वलित हुई और राक्षस-राक्षसियाँ—सब हर्षातिरेकसे ताली पीट-पीटकर नाचने लगे।

बल-बुद्धि निधान हनुमानजीके उद्देश्यकी पूर्ति हो गयी। अब उन्होंने अपना आकार छोटा कर लिया। बस, असुरों-द्वारा बाँधा गया बन्धन ढीला पड़ गया। श्रीपवनपुत्र बन्धन मुक्त हुए और फिर उन्होंने बृहदाकार रूप धारण कर लिया। उन्होंने वेगपूर्वक अपनी पूँछ घुमायी ही थी कि राक्षस सहमे किंतु कपीशजने उन्हें अपनी पूँछसे ही मारना आरम्भ किया। हनुमानजीकी पूँछका आघात वज्रपातके सदृश हो रहा था। बालक, युवा एवं वृद्ध राक्षस नर नारी भयभीत होकर भागने लगे किंतु वे जहाँ-कहीं भी भागते, पूँछ वहीं उन्हें काल-सर्पकी भाँति लपेट लेती। अग्निकी ज्वालामें छटपटाते हुए असुर पृथ्वीपर जोरसे पटके जाते। तड़पने भी नहीं पाते, तुरंत मर जाते। इस प्रकार वहाँ एकत्रित समस्त असुरोंका वध कर हनुमानजी लंकाकी एक अत्यन्त विशाल गगनचुम्बी अट्टालिकापर चढ़ गये।

जिस समय पवननन्दन हनुमानजीकी पूँछमें आग लगायी जा रही थी, उसी समय एक भयानक राक्षसीने दौड़कर माता जानकीसे कहा—'सीते! तुम जिस बंदरसे बात कर रही थी, उसे बाँधकर उसकी पूँछमें आग लगा दी गयी है। उसे अत्यन्त अपमानके साथ लंकाकी गलियोंमें घुमाया गया है।'

माता जानकी सहसा काँप उठीं। उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा—विशाल लंकापुरीमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला फैली हुई है। उन्होंने अत्यन्त व्याकुल होकर अग्निदेवसे प्रार्थना की—'अग्निदेव! यदि मैं अपने प्राणनाथ पतिदेवकी विशुद्ध सेविका हूँ और यदि मुझमें तपस्या तथा पातिव्रत्यका बल है तो तुम पवनपुत्र हनुमानके लिये शीतल हो जाओ!' एक तो पातिव्रत्यकी ही अमित शक्ति! पतिव्रता देवी इच्छा होनेपर सम्पूर्ण सृष्टिको उलट-पुलट कर सकती हैं, दूसरे निखिल सृष्टिकी स्वामिनी, जगज्जननी, मूल प्रकृति स्वयं शक्तिकी प्रार्थना! तीखी लपटोंवाले अग्निदेव श्रीहनुमानके लिये शान्त भावसे जलने लगे। उनकी शिखा प्रदक्षिणभावसे उठने लगी। हनुमानजी चकित होकर सोचने लगे—'अरे!

प्रज्वलित है, इसके स्पर्शसे विशाल अट्टालिकाएँ धायँ धायँ जल रही हैं किंतु मैं बिल्कुल सुरक्षित हूँ। निश्चय ही माता सीताकी दया, मेरे परमप्रभुके तेज तथा मेरे पिताकी मैत्रीके प्रभावसे अग्निदेव मेरे लिये शीतल बन गये हैं।'

'जय श्रीराम!' उस विशाल गगनचुम्बी अट्टालिकामें आग लगाकर भयानक-मूर्ति श्रीहनुमान दूसरे महलपर कूदे। उस समय उनकी भीषण गर्जनासे आकाश विदीर्ण हो रहा था। उस गर्जनमात्रसे कितने ही असुरोंका प्राणान्त हो गया, राक्षस-पत्नियोंके गर्भ गिर गये और बड़े-बड़े वीर राक्षसोंका हृदय काँप उठा।

'जय श्रीसीताराम'—रावणके महान् दुर्गका ध्वंस करते हुए मैनाकवन्दित महान् वेगशाली कपीश्वर उछलकर प्रहस्तके महलपर पहुँच गये और उसमें आग लगाकर महापार्श्वके घरमें आग लगाते हुए श्रीरामदूतने क्रमशः वज्रदंष्ट्र, शुक, बुद्धिमान् सारण, इन्द्रविजयी मेघनाद, जम्बुमाली और सुमालीके महलोंको फूँक दिया। उस समय अग्निकी भयानक लपटोंमें अरुणवर्ण श्रीमारुतात्मज प्रत्यक्ष कालकी मूर्ति प्रतीत हो रहे थे। अत्यन्त भयभीत असुर उनकी ओर देखनेका साहस भी नहीं कर पा रहे थे।

अमित वेगशाली कपीश्वरमें अद्भुत स्फूर्ति थी। वे एक महलपर जाकर अपनी प्रज्वलित पूँछसे उसके आँगन, द्वार और वातायनोंमें प्रवेश कर इतनी शीघ्रतासे आग लगाकर दूसरे महलपर कूद पड़ते कि विश्वास करना भी कठिन था कि यहाँ एक ही हनुमानजी हैं। राक्षसोंको सर्वत्र सभी महलोंपर मर्कटाधीश श्रीहनुमान ही आग लगाते हुए दीख रहे थे।

इस प्रकार श्रीहनुमानने अत्यन्त शीघ्रतासे रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, राक्षस रोमश, रणोन्मत्त ध्वजग्रीव, भयानक विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, मकराक्ष, नरान्तक, कुम्भ, दुरात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु आदि समस्त प्रमुख राक्षसोंके भवन तथा अश्वशाला, गजशाला, अस्त्रागार, सैन्य शिविर आदिमें आग लगा दी।

उसी समय अपने पुत्रके कार्यमें सहायता करनेके लिये पवनदेव तीव्र गतिसे बहने लगा। इस कारण आग और भी अधिक प्रज्वलित हो गयी। सोने, चाँदी तथा रत्नोंके महल पिघल पिघलकर बहने लगे। लंकाके स्त्री पुरुष और बालक-वृद्ध—सभी असुरोंमें त्राहि त्राहि मच गयी। कितने असुर इस अग्नि-दाहसे ही कालके गालमें चले गये। किसीको कुछ सूझ नहीं रहा था। सबको अपने प्राणोंके लाले पड़े थे। अन्न, वस्त्र, आभूषण, गज, अश्व, रथ इत्यादि जहाँके तहाँ अग्निमें जल रहे थे, अपने प्राणके सम्मुख उनकी चिन्ता कौन करता! अनाथ और असहायकी भाँति रावणकी लंका प्रचण्ड अग्निमें धायँ-धायँ जल रही थी। पशु, स्त्री-बच्चे चीत्कार कर रहे थे, पर त्रैलोक्यविजयी असुर कुछ नहीं कर पा रहे थे। सभी अवश और निरुपाय थे वे। उधर जिन घरोंमें अग्नि कुछ शान्त होती, मारुतनन्दन उनमें पुनः अग्नि प्रज्वलित कर देते। वे लंकाको उलट-पलटकर जला रहे थे।

अपने दुर्लभ अलौकिक भवनको जलते देखकर दशग्रीवका हृदय काँप उठा, पर अपना मनोगत भाव छिपाते हुए उसने राक्षसोंको आज्ञा दी—'वीरो! इस अधम वानरको पकड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दो।'

स्वामीका आदेश प्राप्त कर मेघनाद आदि वीर शस्त्र धारण कर एकत्र हुए किंतु वे किसे पकड़ें। वे जिधर जिस अट्टालिकापर दृष्टि डालते, उन्हें उधर उसी अट्टालिकापर हनुमानजीकी काल-तुल्य भयानक मूर्ति दीख पड़ती। हनुमानजीने अपनी वज्र-तुल्य प्रज्वलित पूँछ लपेट ली। बस, जितने ही वीर उधर झुलस गये। कितने उस पूँछके आघातसे ही व्याकुल होकर गिर पड़े। प्रबल प्रभञ्जन और भयंकर ज्वाला—असुर वीर कुछ नहीं कर सके। उन्होंने रावणके सम्मुख अपनी विवशता व्यक्त की।

रावणके वशमें लोकपाल और यम थे। उसने उन्हें भेजा। लंकादाहक श्रीहनुमानजीने यमको तो अपने मुँहमें रख लिया और लोकपाल उनकी पूँछकी साधारण चोट भी सह न सके, वे प्राण लेकर भागे।

यमकी अनुपस्थितिमें सृष्टिका कार्य स्थगित हो गया। प्राणियोंकी मृत्यु कैसे हो! देवताओंसहित इन्द्र चतुर्मुख ब्रह्माने आकाशसे कालमूर्ति श्रीहनुमानकी स्तुति की। महल-भेद निधान हनुमानजीने यमको छोड़ दिया। यमने मन ही मन संकल्प किया कि अब मैं प्रभु भक्तोंके समीप कभी नहीं जाऊँगा।

अन्तमें रावणने मेघोंको वृष्टिके द्वारा अग्नि बुझा देनेकी आज्ञा दी। उमड़ते हुए सजल जलद लंकापर घिर आये। घनघोर वर्षा होने लगी, किंतु उस वर्षाका हनुमानजीद्वारा लगायी गयी आगपर उलटा ही प्रभाव पड़ा। जलकी बूँदें तप्त तेल और घृतकी तरह प्रज्वलित अग्निको और भी सहायता करने लगीं। जैसे-जैसे वर्षा होती, आग उतनी ही तीव्र होती जाती थी।

विचित्र दशा थी। बादल इधर तो अग्निकी लपटोंसे जले जाते हैं और उधर उनके शरीर ग्लानिसे गले जाते हैं। सब मेघ शुष्क हो सकुचाकर पुकारने लगे—'हमलोगोंने बारहों सूर्य देखे, प्रलयकी अग्नि देखी और कई बार शेषजीके मुखकी ज्वाला भी देखी, परंतु कभी जलको घृतके समान हुआ नहीं सुना। यह महान् आश्चर्य श्रीकेसरीनन्दनने कर दिखलाया!' मेघोंके वचन सुनकर मन्त्रीगण सिर धुमाने लगे और रावणसे बोले—'यह सब ईश्वरकी प्रतिकूलताका विकार—फल है।'*

सोनेकी लंका धायँ धायँ जल रही थी, वहाँके समस्त प्राणी चीत्कार कर रहे थे, पर उनकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं था। मन्दोदरी आदि रानियाँ विलखती हुई चिल्ला रही थीं—'हमने पहले ही इस दसमुँहेको मना किया था कि सती जानकीको उनके पतिके यहाँ भेज दो, श्रीरामसे वैर मत करो; किंतु यह अहंकारके वश होकर हमारी एक नहीं सुनता था। अब उसका बल, उसकी सेना और उसका प्रताप कहाँ गया! कोनेमें चोरकी तरह यह मुँह छिपाकर बैठा है। अब हमारी रक्षा कैसे हो!' इसी प्रकार बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष—जो जहाँ थे, वहीं विलख रहे थे। उधर हाथी, घोड़े, रथ, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा कितने ही राक्षसोंसहित लंकापुरी दग्ध हो रही थी। वहाँके निवासी दीन भावसे फूट फूटकर रो रहे थे।

लंकाको फूँकते हुए परम पराक्रमी हनुमानजी मन ही-मन अपने परमप्रभु श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर रहे थे। श्रीमर्कटाधीशके इस अद्भुत एवं अप्रतिम कार्यसे सभी देवता, मुनिवर, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। देवताओंने श्रीपवनपुत्रकी स्तुति की।

कहते हैं, लंकाधिपति रावणने सूर्यपुत्र शनिदेवको बंदी बना लिया था। उस बंदी-गृहकी चहारदीवारी हनुमानजीके पैरके आघातसे टूटकर गिर गयी। हनुमानजीने शनिदेवका दर्शन किया और उन्हें रावणकी सारी करतूत बता दी। शनिदेवने मुक्तिदाता श्रीहनुमानजीको आशीर्वाद देते हुए कहा—'अब लंकाका सर्वनाश निकट है।' उन्होंने कनखीसे लंकाकी ओर देखा और एक विभीषणका घर छोड़कर बची-खुची लंका जलकर राख हो गयी।

अतुलित बलशाली श्रीपवनकुमारने जब देखा कि सारी लंका जल रही है, यहाँके सैन्य-केन्द्र, युद्धोपयोगी उपकरण तथा वाहन आदि नष्ट हो रहे हैं, यहाँके लोग आतङ्कित, भयभीत एवं त्रस्त हो गये हैं, तब उन्हें माता सीताकी चिन्ता हुई—'विभीषणका घर तो मैंने बचा लिया, किंतु माता सीता, पता नहीं कैसे हैं? यदि कहीं भूलसे अग्निकी ज्वालामें ...!' श्रीपवनदेव काँप उठे। अत्यन्त चिन्तित हनुमानजी उछलकर समुद्रमें कूद पड़े। पूँछकी आग बुझाकर वे पानीसे निकल ही रहे थे कि चारणोंके मुखसे निकली हुई शुभ वाणी सुनकर उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी।

महात्मा चारण कह रहे थे—'पवनपुत्र हनुमानजीने सोनेकी लंकामें आग लगाकर बड़े दुस्साहसका कार्य किया है। घरोंसे भागे हुए राक्षसों, स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंका रुदन और चीत्कार सारी लंकामें छाया हुआ है। पर्वतकी कन्दराओं, अटारियों, परकोटों, सैन्य-स्थलों, गुप्तागारों और नगरके प्रमुख द्वारोंसहित समूची लंका जलकर भस्म हो गयी, किंतु अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि श्रीरामवल्लभा सीतापर आँच नहीं आयी।'

---

* ज्यों ज्यों ज्वाल जरे गात, त्यों त्यों ग्लानि गरे गात, सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
'जुग-पट भानु देखे, प्रलय कृसानु देखे, सेष-मुख-अनल बिलोके बार-बार हैं॥
तुलसी सुन्यो न कान सलिलु सर्पी-समान, अति अचिरिजु किया केसरीकुमार हैं।'
बारिद-बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह, कहैं दससीस! ईस-बामता बिकार है॥
(कवितावली)

माता सीतासे विदाई

'जय श्रीसीताराम !'—हर्षातिरेकसे हनुमानजीके मुँहसे जयध्वनि हो रही थी। वे अत्यन्त तीव्रगतिसे दौड़े जगज्जननी जानकीकी ओर! हनुमानजीकी कुशलताकी चिन्तामें माता उदास बैठी थीं, श्रीपवनपुत्रने दौड़कर 'माँ-माँ' कहते हुए उनके चरण-कमलोंपर सिर रख दिया। माँके हृदयमें वात्सल्य उमड़ पड़ा और नेत्र सजल हो गये। उन्होंने परम भाग्यवान् हनुमानजीके मस्तकपर अपना अभयद कर-कमल रख दिया।

अतिशय स्नेहसे माता जानकीने पूछा—'बेटा! तुम्हें सकुशल देखकर मेरा मन हल्का हो गया। तेरा कोई अङ्ग जला तो नहीं?'

श्रीपवननन्दन तो माताका सहज स्नेह पाकर पुलकित हो गये थे। उन्होंने कहा—'माँ! जब आपका परम पावन अभयद कर-कमल मेरे मस्तकपर है, तब त्रिभुवनमें मेरा बाल भी बाँका कैसे हो सकता है? आपकी दयासे मेरे यहाँ आनेके उद्देश्यकी पूर्ति हो गयी। मैंने आपके चरणोंका दर्शन प्राप्त कर लिया, लङ्काके रहस्य एवं राक्षसोंकी शक्तिसे मैं परिचित हो गया, साथ ही यहाँके प्रत्येक स्थलको भी मैंने अच्छी प्रकार देख लिया। अब आप कृपापूर्वक मुझे आज्ञा प्रदान करें, जिससे मैं प्रभुके चरणोंमें पहुँचकर आपका संदेश उन्हें सुना दूँ और सर्वसमर्थ करुणानिधान यथाशीघ्र लङ्कामें प्रवेश करके इन क्रूरतम असुरोंका संहार करें।'

माता वैदेहीके नेत्र बरस पड़े। उन्होंने अत्यन्त व्यथासे कहा—'बेटा! तुम्हारे यहाँ आनेसे मुझे सहारा मिल गया था। अब तुम भी जा रहे हो! तुम्हारे चले जानेके बाद मेरे लिये फिर वही दुःखके दिन और दुःखकी घड़ियाँ होंगी। पर यदि तुम थक गये हो तो एक दिन यहाँ किसी गुप्त स्थानमें ठहर जाओ। आज विश्राम करके कल चले जाना।'

अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक पवनकुमारने निवेदन किया—'माँ! प्रभुका कार्य सम्पन्न हुए बिना मुझे विश्राम कहाँ! आपका अमोघ आशीर्वाद मेरे साथ है। मैं जिस वेगसे यहाँ आया था, उसी वेगसे समुद्र पार कर जाऊँगा। वहाँ कोटि-कोटि वानर-भालू मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। आपका समाचार पाकर उन सबके प्राण लौट आयेंगे। फिर तो वानरी सेनाके साथ प्रभु यहाँ आयेंगे ही। आप लोगोंको लिये सिंहासनपर एक साथ विराजमान देखकर ही इनलोग सुखी होंगे।'

भगवती सीताने स्नेहपूर्वक पूछा—'बेटा! मेरे मनमें एक संदेह अभीतक बना हुआ है। मैं समझती हूँ, ऐसे ही प्राणियोंमें समुद्रको लाँघनेकी शक्ति है—तुममें, गरुड़में और पवनदेवतामें। फिर बड़े-बड़े वानरों और रीछोंके सहायक होनेपर भी महाबली सुग्रीव इस दुस्तर समुद्रको कैसे पार करेंगे? उनकी विशाल वाहिनीसहित प्रभु इस सागर कैसे लाँघ सकेंगे?'

हनुमानजीने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'माता! बन्दरकी शक्ति ही कितनी है! वे इस डालसे कूदकर उस डालपर चले जायँगे, बस! किंतु परमप्रभु श्रीरामकी अचिन्त्य शक्तिसे सब सम्भव है। उनकी कृपाकी कोरसे अत्यन्त छोटा सर्प भी महाबली गरुड़को खा सकता है अथवा पङ्गु गगनस्पर्शी गिरिवरको लाँघनेमें समर्थ हो सकता है। अतः मन-बुद्धिसे परे अचिन्त्य प्रभुके दर्शन कर समुद्र स्वयं मार्ग दे देगा। यदि उसने मार्ग देनेमें आनाकानी की तो उसे शुष्क कर देनेके लिये सुमित्राकुमारका एक ही शर पर्याप्त है। दूसरे, वानरराज सुग्रीव सहस्रों कोटि वानरोंसे घिरे हैं। उन शक्तिशाली कपिराजने आपके उद्धारकी प्रतिज्ञा कर ली है। उनके पास साधनोंका अभाव नहीं है। आप धैर्य रखें। अब मेरे स्वामी यहाँ यथाशीघ्र पहुँचकर आपका उद्धार करेंगे।'

श्रीअञ्जनानन्दवर्धनके उत्तरसे माताको संतोष हुआ। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठसे हनुमानजीसे कहा—'बेटा! प्रभुके चरणोंमें मेरा प्रणाम निवेदन कर उन्हें मेरी दयनीय स्थिति बता देना और उनसे मेरी ओरसे यह प्रार्थना करना कि वे तुरंत आयें। मैं प्रतिक्षण उनकी प्रतीक्षा करती हुई जी रही हूँ, अवधि समाप्त होनेपर मेरे प्राण नहीं रुक सकेंगे।'

दुःखिनी माताके नेत्रोंसे आँसू बहते जा रहे थे। उन्हें पोंछ-पोंछकर वे धैर्यपूर्वक अपने प्राणनाथके लिये संदेश दे रही थीं—'बेटा! मेरे प्रिय देवर लक्ष्मणसे कहना कि मुझसे अपराध हो गया, वे मुझे क्षमा कर दें। मेरा आशीर्वाद उन्हें देना। वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज अङ्गद आदि सबको मेरा आशीर्वाद देना। उन सबसे कहना कि मैं आपलोगोंके साथ प्रभुके आगमनकी घड़ी गिनती एक-एक पल गिन रही हूँ।' इतना कहकर कमललोचना माता सीताने अपना मुँह ढक लिया।

माताकी यह विवश अवस्था देखकर महावीर श्रीहनुमानका धैर्य जाता रहा। वे भी फफककर रो पड़े। बड़ी कठिनाईसे बोल सके—'माँ! आप धैर्य धारण कीजिये, मेरे पहुँचते ही प्रभु यहाँके लिये प्रस्थित हो जायँगे।'

कुछ रुककर धैर्यपूर्वक हनुमानजीने कहा—'माता! प्रभुने जैसे आपके लिये अपनी मुद्रिका भेजी थी, उसी प्रकार आप भी मुझे अपना कोई चिह्न दे दें, जिसे मैं प्रभुको दिखा सकूँ।'

माता सीताने अपने केश-पाशसे चूड़ामणिको निकाला और उस पवनकुमारको देते हुए कहा—'बेटा! इससे श्रीआर्यपुत्र और लक्ष्मण तुम्हारा विश्वास कर सकेंगे। उनके विश्वासके लिये मैं तुम्हें एक बात और बतला देती हूँ। तुम मेरे प्राणधनसे निवेदन कर देना—"चित्रकूटपर्वतकी बात है। एक दिन मेरे जीवन-सर्वस्व एकान्तमें मेरी गोदमें सिर रखे सो रहे थे। उसी समय इन्द्र-पुत्र (जयन्त) काकरूपमें वहाँ आया और मांसके लोभसे उसने मेरे पैरके लाल लाल अँगूठेको अपनी तीखी चोंच तथा पंजोंसे फाड़ डाला। निद्रासे उठते ही स्वामीने मेरे पैरका अँगूठा देखा तो व्याकुल होकर उन्होंने पूछा—'प्रिये! यह किस दुष्टकी करनी है?' और उसी समय उन्होंने सामने रक्तसे सनी चोंचवाले काकको बार-बार मेरी ओर आते देखा। फिर क्या था! क्रुद्ध प्रभुने एक तृण उठाया और उसपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके उस प्रज्वलित अस्त्रको लीलासे ही उस कौएकी ओर फेंक दिया।* भयभीत काक प्राण लेकर भागा। वह तीव्रतम गतिसे भागता हुआ जहाँ-जहाँ गया, वहाँ वहाँ वह प्रज्वलित अस्त्र उसके पीछे लगा दीख पड़ता था। जयन्त इन्द्र और ब्रह्मादिके समीप गया, किंतु रामास्त्रके सम्मुख उसे किसीने आश्रय नहीं दिया। विवश होकर 'प्रभो! क्षमा करें। प्रभो! अपराध क्षमा हो।'—कहता हुआ वह प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा। दयानिधान प्रभुने उससे कहा—'यह मेरा अस्त्र अमोघ है। अतएव तू अपनी एक आँख देकर चला जा।' उस काकने अपनी बायीं आँख दे दी और प्रभुसे बार-बार क्षमा-याचना करता हुआ वह चला गया। बेटा! उन अपरिसीम-अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न प्रभुसे कहना—'वे शीघ्र पधारें।'"

पवनन्दनने माताके चरणोंपर सिर रख दिया और कहा—'माँ! अब मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये।'

माताके नेत्र पुनः बरस पड़े। आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा—'मेरा हनुमान! जाओ, पर प्रभुके साथ शीघ्र लौटना। देर न करना। तुम्हारा सर्वविध मङ्गल हो।'

हनुमानजीने सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी जननीका आशीर्वाद प्राप्तकर मन-ही-मन *श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रणाम किया* और फिर उछलकर उत्तम अरिष्ट गिरिपर चढ़ गये। उस शैलराजपर आरूढ़ हो वायुनन्दन कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमानने अपना शरीर बहुत विशाल बना लिया। वे दक्षिणसे उत्तर दिशामें सागर पार करनेके लिये बड़े वेगसे उछले। हनुमानजीके पैरोंका दबाव पड़नेके कारण तीस योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा वह शोभाशाली महीधर वृक्षों और ऊँचे शिखरोंसहित तत्काल धरतीमें धँस गया।

अरिष्ट-गिरिसे उछलकर आकाशमें पहुँचते ही महाबली वज्राङ्ग श्रीहनुमानने भयानक गर्जना की, जिससे दिशाएँ थर्रा उठीं, आकाश जैसे फट गया, मेघ तितर बितर हो गये, समुद्र उछलने लगा, गिरि शृङ्ग टूट-टूटकर गिरने लगे और समूची लङ्का हिल उठी। असुरोंने समझा कि भूकम्प आया है। वीर राक्षस जहाँ थे, वहीं काँपकर गिर पड़े। गर्भवती राक्षसियोंका गर्भपात हो गया। सभासदोंसहित स्वयं दशग्रीव भी सिंहासनसे नीचे लुढ़क पड़ा। उसके बहुमूल्य मुकुट सिरसे खिसककर नीचे गिर गये। इस अपशकुनकी असुरोंमें सर्वत्र चर्चा होने लगी। सबमें भय और आतङ्क व्याप्त हो गया।

समुद्रके मध्यमें पर्वतराज सुनाभ (मैनाक) को स्पर्श कर अत्यन्त वेगशाली पवनकुमार धनुषसे छूटे हुए बाण-तुल्य सागरके उत्तरी तटके समीप पहुँचे। महेन्द्रपर्वतपर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने गम्भीर स्वरमें बार-बार गर्जना की।

* यह प्रसङ्ग 'अध्यात्मरामायण (५।३)' के आधारपर लिखा गया है। श्रीरामचरितमानसमें यह इस प्रकार है—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥ सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥
सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥ जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥ चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥
(३।१।२-४)

समुद्रके इस ओर

लङ्का-दाहक कपीश्वरके सिंहनादको सुनकर समुद्रके उत्तरतटवर्ती कोटि-कोटि वानर भालू प्रसन्नतासे किलकारी मारते हुए उछलने-कूदने लगे। उन्हें विश्वास हो गया कि हनुमानजी माता सीताके दर्शन कर वापस लौट रहे हैं। शूरवीर महाबली वानर और भालुओंका समुदाय उत्तर तटपर बैठा हुआ कन्दर्प-कोटि-लावण्य श्रीरामदूतकी अपलक नेत्रोंसे प्रतीक्षा कर रहा था। कपिप्रवर श्रीमारुतात्मजका सिंहनाद सुनकर उन्हें देखनेकी इच्छासे वीर वानर भालू एक वृक्षसे दूसरे वृक्षोंपर तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरोंपर कूदने लगे। कुछ वानर सर्वोच्च गिरि शिखरोंपर चढ़कर अतिशय प्रीतिपूर्वक स्पष्ट दिखायी देनेवाले वस्त्र हिलाने लगे। उसी समय परम वेगशाली वृहत्काय हनुमानजी महेन्द्रगिरिके शिखरपर उतरे।

* * *

गो द्विज-हितकारी परमप्रभु पाप-तापके निवारण, धर्मकी स्थापना एवं उसके अभ्युदयके लिये प्रत्येक युगमें अवतार धारण करते हैं। उन प्रभुकी मधुर एवं मङ्गलमयी लीलाएँ आश्चर्यजनक होती हैं, किंतु उनसे सम्पूर्ण धराका परम हित होता है। आनन्दरामायणमें भगवान् श्रीरामके किसी कल्पकी अवतार-लीलामें पवनपुत्रकी एक अद्भुत कथा उपलब्ध होती है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

दशग्रीवकी सोनेकी लंका फूँककर श्रीकेसरीकिशोर जग जननी जानकीके समीप पहुँचे। उन्होंने माताके चरणोंमें प्रणाम निवेदन कर कहा—'माँ! आप मेरे कंधेपर बैठ जायँ। मैं आज ही समुद्र पार कर आपको प्रभुके दर्शन करा देता हूँ।'

वैदेहीने उत्तर दिया—'बेटा हनुमान! मेरे अनुपम शूर वीर प्राणनाथको यह स्वप्नमें भी सह्य न होगा कि मुझे अन्य कोई चुरा कर ले जाय। रावण-वध एवं मेरा उद्धार उन्हींके कर-कमलोंसे होनेमें उनकी और मेरी शोभा है। इससे तुम्हारे स्वामीकी कीर्ति भी बढ़ेगी। तुम यह चूड़ामणि और मुद्रिका ले जाकर प्रभुको दे देना और उनसे प्रार्थना करना कि वे यहाँ पहुँचनेमें तनिक भी विलम्ब न करें।'

श्रीआञ्जनेयने मातृ प्रदत्त चूड़ामणि और मुद्रिका अत्यन्त आदरपूर्वक ले ली और माताके परम पावन पाद-पद्मोंमें प्रणाम कर लौट पड़े। हनुमानजी उछलकर समुद्र तटवर्ती गिरि-शिखरपर कूद गये। पर्वत उनका भार सह न सका, चूर्ण हो गया। उसी समय लङ्काविजयके पवनात्मजके द्वारा लङ्कादाहके विस्तृत विवरणसे पूर्ण एक पत्र श्रीरामको देनेके लिये हनुमानजीको दिया। श्रीरामदूत चतुराननका पत्र एवं माता जानकीकी चूड़ामणि और मुद्रिका लेकर समुद्रके ऊपर वेगपूर्वक उड़ते हुए चले। वे भयानक सिंहनाद करते जा रहे थे।

उत्तर दिशामें समुद्रके पार जानेपर वे नीचे उतरे। उन्होंने भजन करते हुए एक मुनिको देखा। हनुमानजीने उन विरक्त मुनिसे कहा—'मुनिवर! मैं भगवान् श्रीरामके आदेशानुसार उनकी प्राणप्रिया जनकदुलारीका पता लगाकर समुद्र-पारसे आ रहा हूँ। मैं तृषाधिक्यसे व्याकुल हूँ। कृपया कोई जलाशय बताइये।'

तपस्वी मुनिने जप करते हुए अपनी तर्जनी अँगुलीसे जलाशयकी ओर संकेत कर दिया।

जब हनुमानजी तपस्वी मुनिको अपनी लङ्का-यात्राका विवरण सुना रहे थे, तब अपनी उपलब्धियोंकी स्मृतिसे उनके हृदयमें बड़प्पनकी भावनाका स्फुरण हो आया। प्रभु ठहरे भक्त-गर्वापहारी! वे श्रीहनुमान-जैसे आदर्श भक्तके हृदयमें बड़प्पनकी भावनाका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्फुरण भी सहन कर सकते थे! तत्काल उन्होंने उसके प्रशमनकी व्यवस्था कर दी।

श्रीपवनपुत्र चूड़ामणि, अँगूठी और विधाता प्रदत्त पत्र जप करते हुए मुनिके समीप रखकर तृषा शान्त करनेके लिये जलाशयकी ओर चले गये। उसी समय मुनिके सामने उछलता-कूदता एक बंदर आया। उसने उस मुद्रिकाको उठाकर साधुके समीप रखे हुए कमण्डलुमें डाल दिया और फिर वहाँसे चला गया।

जल ग्रहण कर हनुमानजी लौटे। उन्होंने चूड़ामणि और पत्रके साथ मुद्रिका न देखकर मुनिसे पूछा—'मुनिनाथ! वह मुद्रिका क्या हुई?'

मुनिने कमण्डलुकी ओर संकेत किया। हनुमानजीने कमण्डलुमें हाथ डाला तो एक ही साथ उसी आकार प्रकार एवं रूप-रंगकी श्रीराम नामाङ्कित सब सब मुद्रिकाएँ निकल आयीं। श्रीपवनपुत्रने पुनः कमण्डलुमें हाथ डाला। फिर वैसी ही सैकड़ों मुद्रिकाएँ निकलीं। उन्होंने कमण्डलुसे गड्डे अँगूठियाँ निकालीं, पर कमण्डलुकी अँगूठियाँ समाप्त ही नहीं हो रही थीं। उनकी लायी हुई अँगूठी कौन-सी थी,

महावीर अञ्जनानन्दवर्धन समझ न सके। उनके आश्चर्यकी सीमा न रही।

चकित श्रीपवननन्दनने मुनिसे पूछा—'मुनिराज! इतनी मुद्रिकाएँ कहाँसे आयीं और इनमें मेरद्वारा लायी हुई मुद्रिका कौन-सी है?'

वयोवृद्ध मुनिने उत्तर दिया—'प्रत्येक अवतारमें श्रीसीता हरणके उपरान्त जब जब श्रीराघवेन्द्र सरकारने पवनकुमारको उनका पता लगानेके लिये भेजा है, तब-तब हनुमानने लङ्कामें सीतासे मिलकर यहाँ अँगूठियाँ रक्खी हैं और मदरोंने उनको उठाकर इस कमण्डलुमें डाल दिया है। इनमें तुम अपनी अँगूठी पहचानकर ले लो।'

हनुमानजीका गर्वाङ्कुर नष्ट हो गया। आश्चर्यचकित हनुमानजीने मुनिसे पूछा—'मुनीश्वर! आजतक कितनी बार श्रीरामने अवतार ग्रहण किया है?'

मुनिने उत्तर दिया—'कमण्डलुसे मुद्रिकाएँ निकालकर गिन लो।'

हनुमानजी अञ्जलि भर भरकर अँगूठियाँ निकालने लगे, किंतु उनका अन्त नहीं हुआ। उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर मन-ही-मन कहने लगे—'भगवान् श्रीरामकी लीला, गुण एवं शक्तिका अन्त नहीं। उनके अवतारोंकी भी संख्या नहीं। मेरे पूर्व भी प्रभु श्रीरामकी आज्ञासे सहस्रों हनुमान माता सीताका पता लगा चुके हैं, फिर मेरी क्या गणना है!'

गलित-अभिमान आञ्जनेयने मन-ही-मन श्रीसीतारामके चरणोंमें प्रणाम किया। × × × फिर हर्षोन्मत्त श्रीहनुमान पर्वत-शिखरसे पृथ्वीपर कूद पड़े। उन्हें देखते ही वानरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया।

'मैंने माता सीताके दुर्लभ चरणोंका दर्शन और स्पर्श प्राप्त कर लिया!'—पवनकुमारने इतना कहा ही था कि जाम्बवान्ने उन्हें वक्षसे लगा लिया। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उन्होंने गद्गद-कण्ठसे कहा—'पवन पुत्र! तुमने हम सबके प्राणोंकी रक्षा कर ली!'

माता सीताका पता लग जानेके संवादसे वानर प्रसन्नतासे किलकारी मारते हुए कूदने लगे। हर्षातिरेकके कारण बहुत से वानर अपनी पूँछ ऊपर उठाकर नाचने लगे। कितने ही अपनी लंबी और मोटी पूँछें घुमाने लगे। कुछ वानर हनुमानजीकी पूँछ चूमने लगे और कुछ उनके सम्मुख विविध प्रकारके मधुर फल-मूल रखकर उन्हें सुख पहुँचानेके लिये अनेक प्रकारसे उनकी सेवा करने लगा। हनुमानजीने किसीके चरणोंमें प्रणाम किया तो किसीसे आलिङ्गन किया, किसीके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया तो किसीकी पीठ ठोंककर उसकी प्रशंसा की। समर्थ श्रीरुद्रांश कुछ ही क्षणोंमें समस्त वानर भालुओंसे मिल लिये।

शोकहर श्रीकपिसत्तमसे भगवती सीताके दर्शन, रावणसे वार्तालाप एवं लङ्का-दाहका समाचार सुनकर प्रबलल्लास उल्लसित युवराज अङ्गदने हनुमानजीसे कहा—'वानरश्रेष्ठ! बल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई नहीं है, क्योंकि तुम इस विशाल समुद्रको लाँघकर फिर इस पार लौट आये! कपिशिरोमणे! एकमात्र तुम्हीं हमलोगोंके जीवनदाता हो। तुम्हारे प्रसादसे ही हम सब लोग सफल-मनोरथ होकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलेंगे। अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीके प्रति तुम्हारी भक्ति अद्भुत है। तुम्हारा पराक्रम और धैर्य भी आश्चर्यजनक है!* अत्यन्त सौभाग्यकी बात है कि तुमने परम सती वैदेहीका दर्शन प्राप्त कर लिया। अब इस सुखद संवादसे श्रीराघवेन्द्रका वियोग-जनित शोक भी दूर हो जायगा।'

फिर जाम्बवान् एवं युवराजके परामर्शसे यशस्वी हनुमानसहित समस्त वानर-समुदाय भगवान् श्रीरामको सुखदायक समाचार सुनाने कपिराज सुग्रीवके पास चल पड़ा। हनुमानजी आगे-आगे चले और उनके पीछे प्रसन्नतामें भरा हुआ वानरोंका विशाल समुदाय उछलता-कूदता चलने लगा। उस समय सिद्ध आदि भूतगण अत्यन्त यशस्वी महाबली बुद्धिमान् पवननन्दनकी ओर अपलक नेत्रोंसे देखते हुए उनकी भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

---

* सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समो वानर विद्यते॥
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः। जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम॥
त्वत्प्रसादात् समेष्यामः सिद्धार्थो राघवेण ह। अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृति॥
(वा० रा० ५।५७।४५-४७)

आकाशमें छलाँग मारते हुए हर्षोन्मत्त वानर भालू स्वर्गके नन्दनवनके तुल्य मनोहर मधुवनके समीप पहुँचे। किष्किन्धाधिपति सुग्रीवके मधुवनकी रक्षा उनके मामा महाबली दधिमुख नामक वानर सदा किया करते थे। उस मनोरम वनको देखकर वानर-समुदाय मधु पीने एवं फल खानेके लिये लालायित हो उठा। हर्षोन्मत्त वानरोंने इसके लिये युवराज अङ्गदसे आज्ञा माँगी। उन्होंने वृद्ध जाम्बवान्‌से पूछा। जाम्बवान् एवं महावीर श्रीहनुमानके अनुमोदनसे युवराजने उन्हें आज्ञा दे दी।

फिर क्या था! प्रसन्नतासे भरे हुए पिङ्गल वर्णवाले वानर मधुवनके सुगन्धित फल-मूलोंका भक्षण एवं मधुका पान करने लगे। वानर मधु पीकर मत्त हो गये। माता सीताका संवाद प्राप्त होनेकी प्रसन्नतासे मधुमत्त वानरोंकी बड़ी विचित्र स्थिति थी। आनन्दमग्न होकर कोई गाते, कोई हँसते, कोई नाचते, कोई गिरते-पड़ते, कोई जोरसे चलते, कोई उछलते-कूदते और कोई प्रलाप करते हुए मधु पीते तथा बचा हुआ मधु फेंक देते। कोई फलोंसे लदे वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ते और कुछ मदमत्त वीर वानर समूचा वृक्ष ही उखाड़ फेंकते। इस प्रकार अत्यन्त रमणीय मधुवन तहस-नहस होने लगा।

दधिमुख और अन्य रक्षक दौड़े। युवराज अङ्गद और हनुमानकी आज्ञासे मधु पाकर मतवाले वानर उल्टे रक्षकोंको ही डाँटने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने मधुवनके रक्षकोंको मारना-पीटना भी प्रारम्भ कर दिया।

विवश दधिमुखने वानरराज सुग्रीवके पास जाकर निवेदन किया—'राजन्! आपने जिस सुन्दरतम मधुवनकी चिरकालसे रक्षा की है, उसे अङ्गद और हनुमानजीके साथ वानरोंने नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे बुरी तरह मारा पीटा भी है।'

सुग्रीवके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने दधिमुखसे कहा—'मामाजी! निश्चय ही हनुमानजी माता सीताका दर्शन कर चुके हैं, अन्यथा मधुवनके फल खाने और मधु पीनेका साहस वानरोंमें नहीं होता। युवराज भी आज्ञा कदापि नहीं देते। मधुवन युवराजका ही है। आप उन्हें क्षमा कर दें।'

भगवान् श्रीरामने सुग्रीवसे पूछा—'राजन्! तुम सीता सम्बन्धी क्या बात कर रहे थे?' सुग्रीवने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! लगता है, हनुमानजी माता सीताका दर्शन प्राप्त कर चुके हैं अन्यथा ये लोग मधुवनके फल खाने और उसे तहस-नहस करनेका साहस नहीं कर सकते थे।'

सुग्रीवने दधिमुखसे कहा—'मामाजी! आप जाकर उन लोगोंसे कह दें कि वे माता सीताका समाचार सुनानेके लिये प्रभु-चरणोंमें यथाशीघ्र उपस्थित हों।'

दधिमुख चले गये। भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणके मुखपर प्रसन्नताकी लहर देखकर वानरराज सुग्रीव भी आनन्दमग्न हो गये।

श्रीहनुमानका परम सौभाग्य

महायशी दधिमुखके द्वारा वानरराज सुग्रीवका आदेश प्राप्त होते ही महामति जाम्बवान्, युवराज अङ्गद और श्रीहनुमानजी विशाल वानर-समुदायके साथ आकाशमें उड़ चले।

उस समय प्रस्रवणगिरिके शिखरपर श्रीरामचन्द्रकी पर्णकुटी थी। प्रभु भाई लक्ष्मणके साथ कुटियाके बाहर स्फटिक शिलापर आसीन थे। समीप ही वानरराज सुग्रीव बैठे थे।

दूरसे ही प्रसन्न वानर-समूहोंके साथ अङ्गदको आकाश मार्गसे उड़ते हुए आते देखकर वानरराज सुग्रीवने कमलनयन श्रीराघवेन्द्रसे कहा—'प्रभो! धैर्य धारण कीजिये। निश्चय पवननन्दनने श्रीसीतादेवीका पता लगा लिया है, अन्यथा अवधि समाप्त हो जानेपर युवराज इतने उल्लाससे नहीं आते। मतिसत्तम! इस कार्यको सिद्ध करानेमें हनुमानजीके सिवा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है। वानरशिरोमणि हनुमानजीमें ही कार्य सिद्धिकी शक्ति और बुद्धि है। उनमें उद्योग, पराक्रम और शास्त्र ज्ञान भी प्रतिष्ठित है।'*

इस प्रकार वानरराज सुग्रीव परम बुद्धिमान् रघुनन्दनको धैर्य बँधा ही रहे थे कि अङ्गद और हनुमानका नाम [illegible]

* न चान्यस्य कर्मणो हेतुः साधनेऽस्य हनूमतः। हनूमतीह सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम॥
व्यवसायश्च शौर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम्। (वा० रा० ५।६४।११।१२)

हर्षातिरेकसे सिंहनाद करते हुए वीर वानरोंका समुदाय निकट आ गया। उन्हें देखकर सुग्रीवने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पूँछ ऊपर उठा दी।

अङ्गदादि वीर श्रीरघुनाथजीको देखकर हर्षोल्लासपूर्वक आकाशसे नीचे उतर आये। समस्त वानरोंने सानुज श्रीराम एवं सुग्रीवके चरणोंमें प्रणाम किया और पवनकुमार हनुमानजी दौड़कर राघवेन्द्रके भुवनपावन चरणकमलोंमें लेट गये। प्रभुके दर्शन कर उनके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने कहा—'स्वामी! माता सीता सतीत्वके कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीरसे सकुशल हैं।'

'मैंने जगज्जननी जानकीका दर्शन किया है'—हनुमानजीके इस कथनसे श्रीराम, लक्ष्मण और किष्किन्धाधिपति सुग्रीवकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। श्रीरघुनाथजीने अतिशय प्रीति और आदरपूर्वक हनुमानजीकी ओर देखा। हनुमानजी प्रभु-चरणोंमें पुनः पुनः प्रणाम कर, सुमित्रानन्दन एवं सुग्रीवको भी प्रणाम कर हाथ जोड़ परमप्रभुके मुखारविन्दकी ओर अपलक दृष्टिसे देखने लगे।

भगवान् श्रीरामने हनुमानजीसे पूछा—'वायुनन्दन! देवी सीता कहाँ हैं? वे कैसे हैं? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है? तुम विदेहकुमारी सीताका पूरा समाचार सुनाओ।'

श्रीपवनकुमारने पहले दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके माता सीताके उद्देश्यसे श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'करुणामय प्रभो! सौ योजन विस्तृत समुद्रके पार दुरात्मा दशाननकी नगरी लङ्का समुद्रके दक्षिण-तटपर बसी हुई है। उस राक्षसपुरीमें मैंने माता सीताको अशोक-वाटिकामें अशोक-तरुके नीचे अत्यन्त व्यथित अवस्थामें आपका निरन्तर स्मरण करते हुए देखा है। प्रभो! आपके वियोगमें जलहीन मीनकी भाँति छटपटानेवाली माता सीताका दुःख न कहनेमें ही भला है।'

श्रीआञ्जनेयके ये वचन सुन राघवेन्द्र अधीर हो उठे। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। पवनपुत्रके नेत्र भी अश्रुपूरित थे, पर अपने अश्रुओंको रोककर वे माताका संदेश कहते जा रहे थे—'माता सीता इस समय अत्यन्त दुःखके दिन व्यतीत कर रही हैं। उन्हें दुष्ट दशाननने अशोक-वाटिकामें रोक रखा है और क्रूर राक्षसियाँ वहाँ रात दिन पहरा दिया करती हैं। उनके शरीरपर एक मैली साड़ी है और उनके सुन्दर केश उलझकर जटाकी तरह बन गये हैं। इस प्रकार एक वेणी धारण किये वे सतत आपकी चिन्तामें डूबी रहती हैं। माता जानकी नीचे पृथ्वीपर सोती हैं। वे अन्न-जल छोड़ देनेके कारण अत्यन्त कृश-काय हो गयी हैं और शोकसे निरन्तर 'हा राम' 'हा राम' कहती रहती हैं। इस प्रकार माता सीताको मैंने आपकी भक्तिसे प्रेरित कठोर तपस्या करते एवं दुःसह कष्ट सहते देखा है। प्रभो! चलते समय माताने आपके विश्वासके लिये अपनी चूडामणि दी है। साथ ही उन्होंने चित्रकूटमें (इन्द्रपुत्र जयन्त) कौएकी घटनाका स्मरण कराते हुए कहा है कि 'स्वामी! इतनी महान् शक्तिके रहते हुए भी आप मौन क्यों हैं? मेरा अपराध क्षमा कर शीघ्र मेरा उद्धार करें।'

हनुमानजीके वचन सुनकर रघुनाथजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सीताजीद्वारा प्रदत्त चूडामणिको हृदयसे लगाकर सुग्रीवसे कहने लगे—'मित्र! इस चूडामणिको देखकर मेरा हृदय द्रवित हो रहा है। यह सुरपूजित मणि जलसे प्रकट हुई थी और किसी यज्ञमें सतुष्ट होकर सुरेन्द्रने इसे मेरे श्वशुर राजा जनकको दिया था। इस मणिरत्नको उन्होंने विवाहके अवसरपर सीताको दिया, जो सदा मेरी प्रिया सीताके सीमन्तपर सुशोभित होती रही।'

श्रीपवनकुमारके द्वारा अपनी प्राणप्रिया सीताका समाचार पाकर प्रभुने अत्यन्त प्रसन्नतासे कहा—'हनुमान! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओंके लिये भी दुष्कर है, मैं नहीं जानता कि इसके बदले तुम्हारा क्या उपकार करूँ? पुत्र! मैंने मनमें खूब विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।* तथापि लो, मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व सौंपता हूँ।'

इतना कहकर करुणावतार परमप्रभु श्रीरामने पवित्रात्मा हनुमानजीको अपनी दोनों भुजाओंमें खींचकर अपने हृदयसे लगाते हुए कहा—'संसारमें मुझ परमात्माका आलिङ्गन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, वानरश्रेष्ठ! तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है अतः तुम मेरे परमभक्त और प्रिय हो।'†

---

* सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥ (मानस ५।३२।३४)

† परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः। अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुंगव॥ (अ० रा० ५।५।६३)

भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त श्रीमहादेवात्मजकी कामना पूर्ति हुई। उनके वानर-शरीर धारणका उद्देश्य पूरा हो गया। वे आनन्दमग्न होकर प्रभुके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। अधीर होकर उन्होंने बार-बार प्रार्थना की—'प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये!'

भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामने हनुमान्‌से पूछा—'हनुमान! तुम विशाल समुद्र लाँघकर लङ्कामें कैसे पहुँचे! वहाँ तुम देवी सीतासे कैसे मिले और उन्होंने क्या कहा! लङ्काधिपति रावणका दुर्ग और उसकी शक्ति कैसी है! यह तुम मुझसे विस्तारपूर्वक कहो।'

लङ्का-यात्राका विवरण

प्रभुके मुखारविन्दकी ओर निहारते हुए हाथ जोड़े विनीतात्मा पवनपुत्रने कहा—"प्रभो! मैं सर्वथा पशु, और उसमें भी तुच्छ चञ्चल वानर हूँ। मुझमें विद्या, बुद्धि और शक्ति ही कितनी है! किंतु आपके प्रतापसे तो रूई भी बड़वाग्निको जला सकती है। इसी प्रकार किष्किन्धाधिपतिके आदेशसे माता जानकीके दर्शनार्थ मैं खेल-खेलमें ही उछला और आकाशमें उड़ता हुआ लङ्काके सागर तटपर पहुँच गया। वहाँ राक्षसोंकी दृष्टिसे बचनेके लिये रात्रिमें सूक्ष्म रूपसे माता जानकीको ढूँढ़ने लगा। दशानन की प्रिय अशोक-वाटिकामें अशोक वृक्षके तले शोकमग्ना माताके दर्शन कर मैं अधीर हो गया। मैं वृक्षपर पत्तोंमें छिपकर बैठा ही था कि वहाँ क्रूर दशानन आ पहुँचा। उसने सतीलक्ष्मी प्रज्वलित मूर्ति वियोगिनी माताको वशमें करनेके लिये उन्हें बहुत डराया धमकाया, किंतु जब माताने उसे कुत्तेकी तरह दुत्कार दिया, तब वह अधम राक्षस माताको मारने दौड़ा। अपनी प्रिया मन्दोदरीके समझानेसे वह एक मासकी अवधि देकर वहाँसे चला गया। राक्षसियोंने भी माताको बहुत डराया। उन राक्षसियोंके चले जानेपर माताजी अगाध दुःखके कारण प्राण त्याग देनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

"उस समय मैंने वृक्षके पत्तोंमें छिपे छिपे आपके जन्मसे लेकर दण्डकारण्यमें जाने, सीता-हरण, सुग्रीवसे मैत्री, वालि-वध आदिकी संक्षिप्त कथा सुनाते हुए कहा कि 'किष्किन्धाधिपति सुग्रीवने आपका पता लगानेके लिये चारों दिशाओंमें करोड़ों वानरोंको भेजा है। मैं भी उन्हींका भेजा हुआ हूँ। आज आपका दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो गया।'

'मेरे मुखसे आपकी मधुर मङ्गल-कथा सुनकर माताने कहा—'जिन्होंने मुझे यह अमृततुल्य संवाद सुनाया है, वे मेरे सामने प्रकट क्यों नहीं होते!'

'मैंने नीचे उतरकर माताके चरणोंमें प्रणाम किया। मुझ वानरको देखकर पहले तो वे सहम गयीं, पर मैंने उन्हें क्रमशः सब बातें बतलायीं। इसके बाद मैंने आपकी मुद्रिका उन्हें दी, तब माताके मनमें मेरे प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ।

"क्रूरतम रावणके यहाँ दुष्टा राक्षसियोंके बीच अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाली वियोगिनी माँ पुत्रको देखकर रो पड़ीं। उन्होंने कहा—'बेटा! जिस प्रकार इन राक्षसियोंके द्वारा मैं अहर्निश सतायी जा रही हूँ, वह मेरे प्राणनाथको बता देना।'

"मैंने उन्हें अनेक प्रकारसे धैर्य बँधाया और कहा—'माँ! बस, मेरे प्रभुके समीप पहुँचनेकी ही देर है। अतिशक्ति-सम्पन्न श्रीराघवेन्द्र आपका संवाद पाते ही यहाँ पहुँचकर इस असुर-कुलका विध्वंस कर देंगे।'

"रोती हुई माता जानकीने अत्यन्त करुणापूर्वक आपके शीघ्र आनेकी प्रार्थना करते हुए लक्ष्मणके लिये कहा कि 'लक्ष्मण! तुम्हें मैंने अज्ञानवश कुछ कठोर वचन कह दिया था, उसके लिये तुम मुझे क्षमा करना और श्रीरघुनाथजीके साथ शीघ्र आकर मेरी रक्षा करना अन्यथा एक मासके उपरान्त मैं जीवित नहीं रहूँगी।'

"इतना कहकर माता सीता रोने लगीं। उन्होंने पराक्रमी सुग्रीव, महामति जाम्बवान्, युवराज अङ्गद तथा समस्त वानरोंको आशीर्वाद देते हुए सबसे शीघ्र लङ्का पहुँचकर राक्षसोंका नाश करनेकी प्रार्थना की है।"

श्रीपवननन्दनके द्वारा भगवती जानकीका समाचार सुनकर श्रीराम अत्यन्त व्याकुल हो गये। कमलनयनके नेत्र सजल हो गये और समस्त वानरोंके भी नेत्र भर आये, पर हनुमान्‌जी धैर्यपूर्वक कहते जा रहे थे—'माताकी आज्ञासे मैं अशोक-वाटिकाके फल खाने लगा, पर रावणके किंकरोंके रोकनेपर मैंने वह मनोरम वाटिका विध्वंस कर दी। रावणके पुत्र अक्षकुमारके साथ लाखों असुरोंको मारनेके बाद मैं इन्द्रजित्‌के

कारागारमें बँधकर रावणके सम्मुख पहुँचाया गया। वहाँ उस दुष्टने दण्डस्वरूप मेरी पूँछ जलानेका आदेश दे दिया। प्रभो, आपकी कृपासे सारी लङ्का जल गयी।'

भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, महामति जाम्बवान्, अङ्गद, द्विविद, मैन्द, पनस, नल और नील आदि महान् वानरगण लङ्कामें घटित हुई घटनाओंको ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। हनुमानजी सहसा श्रीराघवेन्द्रके चरणोंपर गिर पड़े और बोले—'प्रभो! यह सब कुछ मैंने नहीं किया है। अन्तर्यामी स्वामी! मेरे अन्तरमें प्रविष्ट होकर अपनी शक्तिसे आपने जो लीला करायी है, मैं वही निवेदन कर रहा हूँ।'

हनुमानजी आगे कहने लगे—"करुणामय स्वामी! वहाँ मैंने त्रिकूटपर्वतपर बसी हुई दिव्य लङ्कापुरी देखी। उस पुरीके चारों ओर चार लंबे-चौड़े द्वार हैं। उनमें अत्यन्त मजबूत किवाड़ और मोटी-मोटी अर्गलाएँ लगी हैं। उन द्वारोंपर अत्यन्त विशाल एवं शक्तिशाली यन्त्र लगे हैं, जो बाण और पत्थरोंके गोलोंकी वर्षा करते हैं। उनके द्वारा लङ्कामें प्रविष्ट होना अत्यन्त कठिन है। पुरीके चतुर्दिक् सोनेका परकोटा है, जिसे तोड़ना अत्यन्त दुष्कर है। उसमें मणि, मूँगे, नीलम और मोतियोंका काम किया गया है। परकोटोंके चारों ओर ग्राह और विशाल मत्स्यपूरित अगाध जलवाली खाइयाँ हैं। उन चारों द्वारोंके सम्मुख खाइयोंपर लकड़ीके ऐसे यन्त्रमय विशाल एवं सुदृढ पुल बने हैं, जिनपर शत्रुसेनाके आते ही उसे यन्त्रोंद्वारा खाइयोंमें एवं चारों ओर फेंक दिया जाता है। लङ्कापर आक्रमण करनेका कोई मार्ग नहीं है। उसके चारों ओर दुर्गम नदी, पर्वत, वन, खाई और सुदृढ परकोटा आदि हैं। लङ्का विस्तृत समुद्रके दक्षिण तटपर बसी है। अतएव लक्ष्यका किसी प्रकार पता न मिल सकनेके कारण वहाँ जलयानसे जाना भी बड़ा कठिन है।

"लङ्काके पूर्व द्वारपर दस सहस्र प्रचण्ड वीर राक्षस रहते हैं। उसके दक्षिण द्वारपर चतुरङ्गिणी सेनाके साथ एक लाख राक्षस योद्धा, पश्चिम द्वारपर दस लाख राक्षस और उत्तर द्वारपर दस करोड़ राक्षस तथा मध्यभागकी छावनीमें सैकड़ों सहस्र दुर्जय वीरवर निशाचर रहते हैं। हाथी, घोड़े, खाइयों और शतघ्नियों आदिसे दुष्ट दशाननकी लङ्का सुरक्षित है, किंतु आपकी कृपा-शक्तिसे मैंने प्रायः सारी कठिनाइयाँ समाप्त कर दी हैं—लङ्काके सुदृढ द्वार नष्ट कर दिये, खाइयाँ पाट दीं, परकोटोंको धराशायी कर दिया, विशालकाय राक्षसी सेनाका चतुर्थांश नष्ट कर दिया और समूची लङ्का फूँककर राख कर दी है। रावणके नागरिकों एवं उसके सैनिकोंमें ही नहीं, स्वयं उसके मनमें भी आपका भय और आतङ्क व्याप्त हो गया है। असुर-सैन्यका मनोबल तो समाप्त ही हो गया है। अतएव अब अविलम्ब शत्रुपर आक्रमण करना ही उचित प्रतीत होता है।"

दुःखशमन महावीर हनुमानजी सारा संवाद सुनाकर नव-नीरद-वपु प्रभु श्रीरामके मुखारविन्दकी ओर अपलक दृष्टिसे देखने लगे। हनुमानजीके वचन सुन प्रभुने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हनुमानने जो कार्य किया है, उसका करना देवताओंके लिये भी कठिन है! पृथ्वीतलपर और कोई तो उसका मनसे भी स्मरण नहीं कर सकता। भला, ऐसा कौन है, जो सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लाँघने और राक्षसोंसे सुरक्षित लङ्कापुरीका ध्वंस करनेमें समर्थ हो! हनुमानने सुग्रीवके सेवक-धर्मको खूब निभाया। संसारमें ऐसा न कोई हुआ और न आगे होगा ही। उसने जानकीजीका पता लगाकर आज मुझको तथा रघुवंश, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सभीको बचा लिया है।"*

इसके बाद सीतापति श्रीरामने किष्किन्धाधिपतिसे कहा—"मित्रवर सुग्रीव! इस समय विजय नामक मुहूर्त व्यतीत हो रहा है, अतएव तुम समस्त सैनिकोंको इसी समय प्रस्थान करनेके लिये आदेश प्रदान करो। इस मुहूर्तमें यात्रा करके मैं निश्चय ही समस्त राक्षसोंसहित दुर्जय दशाननको नष्ट करके देवी सीताको ले आऊँगा।'

* कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम्। मनसापि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले॥
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत्क: पयोनिधिम्। लङ्कां च राक्षसैर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः॥
भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः। सुग्रीवस्येदृशो लोके न भूतो न भविष्यति॥
अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वरः। जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षिताः स्मो हनूमता॥
(अ० रा० ६। १। ३—६)

फिर क्या था ! सुग्रीवने तुरंत किष्किन्धाके शासन प्रबन्धकी व्यवस्था की और अत्यन्त उल्लासपूर्वक उन्होंने समस्त यूथपतियों एवं वानरोंको कूच करनेकी आज्ञा दे दी। वीर वानरोंके मनमें लङ्काको पीस डालनेका अत्यधिक उत्साह भरा था। वे सब एक स्वरमें बोल उठे—'श्रीसीतारामकी जय ! मारुतनन्दन श्रीरामकी जय !!'

सुग्रीवकी आज्ञासे कोटि-कोटि वीर वानरों और रीछोंकी महान् सेना प्रस्थित हुई। सबके मनमें हर्ष एवं उत्साह भरा था। उस विशाल सेनाके मध्य वल्कल पहने, जटाजूट बाँधे और तूणीर कसे वीरवर कमलनयन श्रीराम परम सौभाग्यशाली हनुमानजीके कंधेपर बैठकर चले। वीरवर लक्ष्मण युवराज अङ्गदके कंधेपर बैठे थे। सुग्रीव दोनों भाइयोंके साथ चल रहे थे। गज, गवाक्ष, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण और जाम्बवान् तथा अन्य शत्रुहन्ता समस्त सेनापतिगण सेनाके चारों ओर सावधानीपूर्वक देखते जा रहे थे। अत्यन्त नम्र वीर वानर यूथपतियोंके आदेश एवं सुग्रीवके भयसे सर्वथा अनुशासित, बड़े वेगसे उछलते-कूदते, गरजते, फल-मूल खाते, मधु पीते दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ रहे थे।

उन वानर वीरोंके सौभाग्यका क्या कहना, जो मुनियोंके दुर्लभ निखिल सृष्टिके स्वामी दयाधाम श्रीरामके कार्यके लिये उन्हींके साथ आनन्दपूर्वक प्रयाण कर रहे थे। उनके सौभाग्यको देख-देखकर इन्द्रादि देवगण मन-ही-मन उनकी प्रशंसा कर रहे थे। भगवान् श्रीरामके प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान करते ही माता जानकीका वाम नेत्र और उनकी बायीं भुजा फड़कने लगी। उसी समय लङ्कामें अनेक प्रकारके भयानक अपशकुन हुए, जिन्हें देखकर असुरकुल मन-ही-मन चिन्तित हो उठा।

वानरोंकी यह विशाल वाहिनी तनिक भी विश्राम किये बिना रात-दिन चल रही थी। वे लोग श्रीरामेन्द्रके साथ मलयाचल और सह्याद्रिके मनोरम वनोंको देखते और उन पर्वतोंको पार करते हुए आगे बढ़े तथा नीलोदधिके तटपर जा पहुँचे। वहाँ वानरोंने अतीव प्रसन्नतासे गर्जना की—'जय श्रीराम ! जय श्रीसीताराम !'

कोटि-कोटि वानरोंकी सामूहिक गर्जनाके समक्ष महासमुद्रकी भयानक गर्जना मन्द पड़ गयी।

विभीषणपर अनुग्रह

'महान् वीर वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनीके साथ सीतापति श्रीराम समुद्र-तटपर पहुँच गये हैं।'—इस संवादसे लङ्कामें बेचैनी फैल गयी। राक्षस और राक्षसियाँ अत्यन्त चिन्तित होकर परस्पर कहने लगीं—'एक वानरने तो समूची लङ्काको भयानक क्षति कर दी थी, अब कोटि-कोटि वीर वानरोंके समुदायसे इस राष्ट्रकी क्या दशा होगी।' भयभीत तो दशग्रीव भी था, उसके भी मनमें आतङ्क व्याप्त था किंतु वह उसे प्रकट नहीं होने देता था। उसने सभा-भवनमें आकर सभासदोंसे कहा—'वीर राक्षसो ! वानरोंकी सेना लेकर दशरथनन्दन राम और लक्ष्मण लङ्कापर आक्रमण करनेके उद्देश्यसे समुद्रके उस तटपर पहुँच गये हैं। अतएव आप लोग निश्चय करें कि इन तुच्छ नर और वानरोंको किस प्रकार दण्डित किया जाय।'

राक्षसाधिपतिके इन वचनोंको सुनकर चाटुकार सभासद उसकी शूरता, उसके अमित बल और पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे। प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, कुम्भकर्णकुमार निकुम्भ, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, कुम्भ, अतिकाय आदि राक्षसोंने रावणका अभिवादन किया और उसके शौर्यकी सराहना करते हुए कहा—'यह तो बड़े ही सौभाग्यकी बात है कि हम क्षुधार्तोंके प्रिय आहार नर और वानर कालकी प्रेरणासे स्वयं हमारे मुँहमें चले आ रहे हैं। पवनपुत्र तो हमारी उदारता और असावधानीके कारण क्षति पहुँचाकर चला गया किंतु अब तो ये वानर किसी प्रकार अपना प्राण बचाकर भी यहाँसे नहीं लौट सकेंगे। उन दशरथकुमारोंने सम्भवतः आपके धनुषसे छूटे हुए दो जीभवाले सर्पोंके समान तीक्ष्ण विशाल बाणोंका दर्शन नहीं किया है, इसी कारण वे प्रज्वलित दीपकपर पतङ्ग-तुल्य मर-मिटनेके लिये इधर आनेकी चेष्टा करने जा रहे हैं। चिन्ताकी तो कोई बात ही नहीं, आप आदेश दें, हमलोग अभी समुद्र-पार जाकर वानरोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर उन्हें पृथ्वीसे मिटा दें।'

रावणके सिरपर तो मृत्यु नाच रही थी, इसी कारण इस प्रकारकी चाटुकारितापूर्ण विपरीत बातें उसे प्रिय लग रही थीं। किंतु उसी समय परम नीतिज्ञ एवं धर्मात्मा उसके छोटे भाई विभीषणने उसके चरणोंमें सिर झुकाकर विनयपूर्वक कहा—'महाराज ! आप बुद्धिमान्, विद्वान् और नीतिमर्मज्ञ हैं। आप अच्छी प्रकार विचार कर देखें, वे सत्यवादी

आपके यथार्थ हितकी चिन्ता न कर केवल आपको सन्तुष्ट करनेके लिये प्रलाप कर रहे हैं। श्रीरामके दूत एक वानरने दुर्लङ्घ्य लङ्कामें प्रविष्ट होकर प्रमदावनसहित सम्पूर्ण लङ्काको—सैन्य-स्थल, वाहन आदि महत्त्वपूर्ण स्थलोंको फूँक ही नहीं दिया, सहस्रों असुरोंसहित आपके वीर कुमारको भी मार डाला, तब यहाँ वैसे करोड़ों वानरोंके आ जानेपर क्या होगा? इन बुभुक्षित सभासदोंकी क्षुधा उस समय कहाँ चली गयी थी, जब हमारा नगर अनाथकी भाँति प्रज्वलित अग्निमें धायँ धायँ जल रहा था?'

'भैया! श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् अव्यक्त नारायणदेव हैं। उनकी यशस्विनी पत्नी सीताजी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। सीताजी लङ्कामें यम पाशकी भाँति आ गयी हैं। अतएव जबतक श्रीरामचन्द्रजीके तीक्ष्णतम ज्वाल बाण धनुषसे नहीं छूटते और जबतक समरप्रिय नखदंष्ट्रायुधविशारद वानर लङ्कामें फैलकर इसे नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ नहीं कर देते, तबतक आप विपुल रत्नराशिके साथ श्रीमिथिलेशकुमारीको उनकी सेवामें सम्मान पूर्वक सौंप दें; अन्यथा विश्वास कीजिये, स्वयं कालकण्ठ शंकर भी यदि आपकी रक्षा करना चाहें, सुरपति एवं यमराज भी आपको अपनी गोदमें छिपा लें, या आप पातालमें ही प्रविष्ट हो जायँ, तो भी श्रीरामके अमोघ बाणसे आपके जीवनकी रक्षा नहीं हो सकती।''

विभीषणने अत्यन्त आदरपूर्वक रावणसे आगे कहा—'भैया! महामुनि पुलस्त्यने भी अपने शिष्यसे इसी बातको आपकी सेवामें निवेदन करनेके लिये कहलवाया है कि आप अहंकार त्यागकर माता जानकीको परमप्रभु श्रीरामकी सेवामें लौटाकर उनका स्मरण करें, मेरे विचारसे इसी प्रकार आपका, मेरा, इन राक्षसोंका तथा सम्पूर्ण लङ्का निवासियोंका हित हो सकेगा।'

विभीषणका सत्परामर्श सुनकर उनके नाना माल्यवान्, जो बड़े बुद्धिमान् एवं उसके सचिव भी थे, बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दशग्रीवसे विनम्रतापूर्वक कहा—'स्वामी! आपके छोटे भाई परम नीतिज्ञ विभीषणने सर्वथा उचित बात कही है। इनकी बात स्वीकार कर लेनेमें ही मङ्गल है।'

किंतु काल प्रेरित दशाननको हितके वचन प्रिय नहीं लगे। उसने क्रुद्ध होकर कहा—'अरे! शत्रुओंकी प्रशंसा करनेवाले इन दोनों मूढ असुरोंको यहाँसे निकाल बाहर करो।'

रावणके वचन सुन माल्यवान् तो अपने घर चले गये, किंतु विभीषणने अपने भाईके हितके लिये पुनः विनयपूर्वक निवेदन किया—'भैया! आप कृपापूर्वक अपने हितकी बात सोचें। आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि विदेहकुमारी सीताके लङ्का प्रवेशके समयसे ही यहाँ बार-बार अमङ्गलजनक शकुन हो रहे हैं। उनकी सुस्पष्ट सूचना देनेमें आपके मन्त्री संकोच करते हैं। मैं बार-बार आपके चरणोंमें विनीत प्रार्थना करता हूँ कि श्रीराम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं। आपके ये अन्यतम वीर इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ, अतिकाय आदि समराङ्गणमें कोसलेन्द्रके सम्मुख नहीं टिक सकते। अतएव श्रीरामके साथ शत्रुता करना उचित नहीं है। उनके अमोघ बाणोंका स्मरण कर मिथिलेशकुमारी सीताको उनके पास लौटाकर उनसे क्षमा माँग लेनेमें ही आपकी भलाई है।'

विभीषणके हितभरे वचन सुनकर रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। क्रोधसे काँपते हुए उसने कहा—'कुलकलङ्क निशाचर! तू मेरे ही दिये हुए भोगोंसे पुष्ट होकर तथा मेरे ही पास रहकर शत्रुके सम्मुख मुझे अपमानित देखना चाहता है। मेरे भयसे त्रैलोक्य काँपता है, किंतु तू मुझे सामान्य मनुष्यसे भयभीत करनेका प्रयत्न कर रहा है। धिक्कार है तुझे! यदि तेरे सिवा और कोई इस प्रकारका वचन बोलता तो मैं उसे तत्क्षण मार डालता।'

इतना कहते हुए क्रोधके वशीभूत रावण विभीषणपर जोरोंसे पाद प्रहार कर बैठा और बोला—'तू भी जा, उन्हीं वनवासी मनुष्योंमें मिल जा।'

रावणके इतने कटुवचन और पाद प्रहार सहकर भी परम बुद्धिमान् और महाबली विभीषणने उसके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथमें गदा ले सभासे निकलकर आकाशमें उड़े। अपने चार मन्त्रियोंके साथ आकाशमें स्थित होकर उन्होंने रावणसे कहा—'राजन्! सदा प्रिय लगनेवाली मीठी मीठी बातें कहने वाले लोग तो सुगमतासे मिल सकते हैं, परंतु जो सुननेमें अप्रिय, किंतु परिणाममें हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं।* आप मेरे पिता-तुल्य हैं। आपके पाद प्रहार

* सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

(वा० रा० ६। १६। २१)

इस विकारकी मुझे चिन्ता नहीं, किंतु आपका नाश न हो जाय, मैं इसीलिये व्याकुल हूँ। पर मैं देखता हूँ कि आप और आपकी यह विशाल सभा कालके वश हो गयी है, इसी कारण यहाँ सब कुछ विपरीत सोचा, समझा और करनेका निश्चय किया जा रहा है। मैं श्रीरामके द्वारा आपके पुत्र, सेना, वाहनादि, सम्पूर्ण राक्षसवंश और आपका मारा जाना नहीं देख सकता, इस कारण श्रीरघुनाथजीकी शरणमें जा रहा हूँ। मेरे चले जानेपर आप अपने महलमें सुदीर्घकालतक सांसारिक भोग भोगते रहियेगा, पर पीछे मुझे दोष मत दीजियेगा।'

बस, विभीषण अपने मन्त्रियोंसहित श्रीरामचन्द्रके चरणोंकी शरण लेने चल पड़े। उनके हृदयमें आनन्दकी लोल लहरियाँ उठ रही थीं। श्रीराम-चरणोंके दर्शनकी तीव्र लालसासे वे आतुर हो रहे थे। वे मन-ही-मन सोचते जा रहे थे—'आज मेरे महान् सुकृतोंका उदय हुआ है, जो मैं परमप्रभु श्रीरामके उन लाल-लाल चरण-कमलोंके दर्शन प्राप्त करूँगा, जिनके लिये देवता और मुनि जन्म-जन्मान्तरोंतक कठोर तप करते हैं, फिर भी उन्हें वे भक्त सुखदायक चरण प्राप्त नहीं होते। जिन चरण-कमलोंके स्पर्शसे गौतम-पत्नी तर गयी, जिन अरुण चरणोंको भगवती सीताने अपने हृदयमें धारण कर रखा है, कर्पूरगौर महादेव अपने अन्तर्हृदयमें जिनका ध्यान करते रहते हैं और जिन लोकपावन चरणोंकी पादुकाओंकी भाग्यवान् भरत श्रद्धा भक्तिपूर्वक निरन्तर पूजा करते हैं, आज मैं अधम राक्षस होकर भी उन चरणोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करने जा रहा हूँ।'

इस प्रकार मनोरथ करते हुए वज्रधारी इन्द्रके समान तेजस्वी, उत्तम आयुधधारी, दिव्य आभूषणोंसे अलङ्कृत विभीषण कवच और अस्त्र-शस्त्र धारण किये अपने चारों पराक्रमी मन्त्रियोंसहित समुद्रके इस पार आ गये। वानरोंने पर्वत-तुल्य महान् विभीषणको आते देखकर उन्हें रावणका दूत समझा। वे उन्हें वानरोंके पहरेमें ठहराकर निवेदन करनेके लिये सुग्रीवके समीप पहुँचे। वानरराज सुग्रीवने भगवान् श्रीरामसे विनयपूर्वक कहा—'प्रभो! रावणका भाई विभीषण आपसे मिलने आया है।'

भगवान् श्रीरामने किष्किन्धाधिपति सुग्रीवसे पूछा—'सखे! इस विषयमें तुम्हारी क्या सम्मति है?'

नीति-निपुण सुग्रीवने उत्तर दिया—'प्रभो! राक्षस अत्यन्त मायावी तो होते ही हैं, इनमें अन्तर्धान होनेकी भी शक्ति होती है। यह शूर-वीर विभीषण अत्यन्त क्रूर रावणका भाई है। अतः इसे कठोर दण्ड देकर मन्त्रियोंसहित मार डालना चाहिये।'

सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीपवनकुमार व्याकुल हो गये। इनका सहज स्वभाव है कि ये अपने सम्पर्कमें आये हुए व्यक्तिको प्रभु-चरणोंमें पहुँचाकर ही सन्तुष्ट होते हैं। लंकामें ये विभीषणसे मिल चुके थे। ये उनकी निश्छल भक्तिसे प्रभावित हुए थे। माता सीताका पता उन्होंने ही बताया था और दुष्ट रावणकी सभा भवनमें श्रीहनुमानजीका पक्ष विभीषणने ही लिया था और अब वे सब कुछ त्यागकर श्रीभगवान्‌के चरणोंमें आ गये। ऐसी स्थितिमें वानरराजने ऐसा वचन कहकर यह क्या अनर्थ कर दिया! पवनकुमार शरणागतवत्सल प्रभुके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

भक्त सर्वस्व प्रभु श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—"सखे! तुमने नीतिकी तो बड़ी सुन्दर बात कही, किंतु शत्रु दुःखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षीकी शरणमें जाय तो शुद्ध हृदयवाले श्रेष्ठ पुरुषको अपने प्राणोंका मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये। यदि शरणमें आया हुआ पुरुष संरक्षण न पाकर उस रक्षकके देखते-देखते नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्योंको अपने साथ ले जाता है। इस प्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें महान् दोष बताया गया है। शरणागतका त्याग स्वर्ग और सुयशकी प्राप्तिको मिटा देता है तथा मनुष्यके बल और वीर्यका नाश करता है।* अतएव जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्या लगी हो, शरणमें आने पर मैं उसे भी नहीं छोड़ता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। वानरराज सुग्रीव! मेरा यह व्रत है कि जो एक बार मेरी शरण आकर शुद्ध हृदयसे 'मैं आपका हूँ'—यह कहता है, मैं उसे सम्पूर्ण प्राणियोंसे निर्भय कर

* आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः। अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः। आनाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः॥
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे। अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम्॥
(वा० रा० ६।१८।२८, ३०-३१)

देता हूँ।* मैं तो इच्छा होनेपर क्षणार्धमें ही लोकपालोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको ध्वंस कर उन्हें पुनः रच सकता हूँ और पृथ्वीपर जितने असुर हैं, उन सबको मेरे भाई लक्ष्मण अकेले ही क्षणभरमें मार सकते हैं। अतएव तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। विभीषणको ले आओ।'

भक्तिसुधापानेच्छु प्रभु श्रीरामके वचन सुन पवनानन्दनके आनन्दकी सीमा न रही। उनके रोम-रोम पुलकित हो गये और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये।

'भक्तवत्सल श्रीरामकी जय!' हनुमानजीने सिंहनाद किया और अङ्गदादि वानरोंके साथ अत्यन्त उल्लासपूर्वक उछलकर सबसे पहले विभीषणके समीप जा पहुँचे और उन्हें आदरपूर्वक प्रभुके समीप ले आये। विभीषणने जटाजूट धारण किये श्याम-गौर श्रीराम-लक्ष्मणके अलौकिक सौन्दर्यको देखा तो देखते ही रह गये। कुछ क्षणोंतक इस स्थितिमें रहनेके अनन्तर वे साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए कहने लगे— 'पद्मपलाश प्रभो! मैं आपकी सती पत्नी भगवती सीताको हरण करनेवाले राक्षसकुलोत्पन्न दुष्ट दशाननका छोटा भाई विभीषण हूँ। मैं अत्यन्त तामसिक प्रकृतिवाला अधम राक्षस हूँ। मैंने अपने भाई राक्षसराजसे विदेहनन्दिनी सीताको आपके पास भेजनेकी प्रार्थना की थी, किंतु वे कालवश मुझपर कुपित हो गये। तब मैं आपके यशका स्मरण कर अपने स्त्री-पुत्रोंको वहीं छोड़ अपने मन्त्रियोंके साथ संसार-पाशसे मुक्त होनेके लिये मुमुक्षुके रूपमें आपके भुवनपावन चरणोंकी शरण आ गया। करुणानिधान! आप मुझ अधमपर भी करुणाकी दृष्टि कर मेरा जीवन और जन्म सफल करें। मुझे अपने चरणोंकी छाँहमें रख लें।'

विभीषणकी भक्तिपूर्ण वाणी सुनते ही लक्ष्मणसहित भक्तप्राणधन प्रभुने तुरंत उठकर उन्हें उठाया और अपनी लंबी भुजाओंको फैलाकर हृदयसे लगा लिया। फिर प्रभुने उन्हें अतिशय प्रीतिपूर्वक अपने समीप बैठाकर सर्वप्रथम सम्बोधित किया—'लङ्केश!'

गद्गद-कण्ठसे भगवान्‌का स्तवन करते हुए विभीषणने निवेदन किया—'प्रभो! मैं आपके सुर-मुनि-दुर्लभ त्रयताप-हर चरण-कमलोंका दर्शन करके ही कृतार्थ हो गया। मैं धन्य हो गया। मुझे सर्वस्व प्राप्त हो गया। राजराजेश्वर श्रीराम! मुझे विषयजन्य सुखकी इच्छा नहीं है, मुझे तो आपके चरण-कमलोंमें आसक्तिरूपा भक्ति ही अभीष्ट है।'

किंतु श्रीरामचन्द्रने अनुज सौमित्रिसे कहा—'लक्ष्मण! मेरे दर्शनका फल इन्हें अभी प्राप्त होना चाहिये। तुम सिन्धुका जल ले आओ।'

सीतापति श्रीरामकी आज्ञा प्राप्त होते ही लक्ष्मण कलशमें समुद्रका जल ले आये और प्रभुके आदेशसे मुख्य-मुख्य वानरोंके बीच विभीषणको लङ्काके राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया। जिस सम्पत्तिको रावणने अपने दसों सिर चढ़ाकर भगवान् शंकरसे प्राप्त किया था, वही महान् सम्पत्ति हनुमानजीके अनुग्रहसे भगवान् श्रीराघवेन्द्रने विभीषणको अत्यन्त संकोचपूर्वक प्रदान कर दी।

यह देखकर समस्त वानर-भालू प्रसन्न हो गये, किंतु हनुमानजीकी प्रसन्नताकी तो सीमा ही नहीं थी। सच तो यह है कि पवनात्मजकी कृपासे ही असुर विभीषण परमप्रभुके प्रीतिभाजन हुए। लङ्काधिपति रावणसे तिरस्कृत निराश्रित विभीषण श्रीअञ्जनानन्दनकी कृपासे निखिल सृष्टिके स्वामी प्रभुके समीप ही नहीं पहुँचे, लङ्काधीश ही नहीं हुए, प्रभुके सखा, आत्मीय और स्वजन बन गये। दयार्द्रहृदय हनुमानकी दयाका यह सजीव निदर्शन है।

सेतु-निर्माण

सर्वसमर्थ भगवान् श्रीरामने लङ्कामें पहुँचनेका मार्ग माँगनेके लिये तीन दिनोंतक समुद्रसे प्रार्थना की, किंतु मूढ़ जलनिधिपर विनयका कोई प्रभाव न पड़ते देखकर वे कुपित हो गये। उनके विशाल नेत्रोंमें लालिमा छा गयी और उन्होंने ब्रह्मदण्डके समान भयंकर बाणको अभिमन्त्रित करके अपने श्रेष्ठ धनुषपर चढ़ाकर खींचते हुए कहा— 'आज समस्त प्राणी रघुकुलोद्भव रामका पराक्रम देख लें। मैं समुद्रको अभी सुखा देता हूँ, फिर हमारे कोटि-कोटि वीर वानर-भालू पैदल ही इसे पार कर जायँगे।'

अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीरामके धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते ही पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत डगमगाने लगे और सूर्यदेवकी उपस्थितिमें ही आकाश और दसों दिशाओंमें

* सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६।१८।३३)

अन्धकार फैल गया । अन्तरिक्षसे कर्कश ध्वनिके साथ वज्रपात होने लगे । समुद्र क्षुब्ध हो उठा और वह भयके कारण मर्यादा त्यागकर अपने तटसे एक योजन आगे बढ़ आया । मत्स्य और मकर आदि जल-जन्तु व्याकुल हो गये । तब जाम्बूनद-नामक सुवर्णनिर्मित आभूषण धारण किये, स्निग्ध वैदूर्यमणिके समान स्निग्ध श्यामरूपधारी समुद्र हाथोंमें अपने ही अन्तस्तलमें स्थित दिव्य रत्नोंका उपहार लिये सीतापति श्रीरामके सम्मुख उपस्थित हुआ ।

सागरने अपरिमित शक्ति-सम्पन्न प्रभुके चरणोंमें अनुपम उपहार रखकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया । फिर उसने अत्यन्त विनयपूर्वक स्तुति करते हुए कहा—'प्रभो ! सृष्टि रचनाके समय आपने ही मुझे जड बनाया था । अतएव मेरी जडतापर दृष्टि न डालकर कृपापूर्वक मुझे क्षमा प्रदान करें । आपकी सेनामें समस्त शिल्पकलामें निपुण नल और नील दो वानर-बन्धु हैं । ऋषियोंके आशीर्वादसे इनके स्पर्श कर लेनेसे बड़े-बड़े पर्वत भी आपके प्रतापसे जलमें तैरने लगेंगे । ये सुन्दर और सुदृढ़ पुलका निर्माण करनेमें पूर्ण समर्थ हैं । साथ ही मैं भी अपनी ओरसे सहायता करूँगा । इस प्रकार मेरी मर्यादा तो सुरक्षित रहेगी ही, सब लोग अनन्तकालतक आपकी संसार-सन्तापहारिणी कीर्तिका गान करते रहेंगे ।'

भगवान् श्रीरामने समुद्रके कथनानुसार अपना अमोघ बाण 'द्रुमकुल्य'-नामक देशकी ओर छोड़ दिया । वह बाण एक क्षणमें ही वहाँका सर्वनाश करके पूर्ववत् उनके तूणीरमें लौट आया । प्रभुने सेतु निर्माणकी आज्ञा दी ।

'जय श्रीराम ! जय श्रीसीताराम !!' और 'जय श्रीलक्ष्मण !!!' का तुमुल घोष आकाशमें व्याप्त हो गया । उस समय हनुमान्जीके उत्साहकी सीमा न थी । वे स्वयं दौड़ते और पर्वतोंको ला-लाकर नल-नीलको देते तथा उनके संकेतपर समुद्रमें डाल देते । अत्यन्त चञ्चल वानरोंमें भी संयम और तत्परतापूर्वक यही कार्य करते । हनुमान्जीके स्नेह, स्फूर्ति, दक्षता, अथक श्रम, उत्साह तथा प्रोत्साहनसे समस्त वानर-भालू उछलते-कूदते हुए जाते और शीघ्रतापूर्वक वृक्षों एवं पर्वतोंको ले आते । श्रीपवनकुमारके अत्युत्साह-प्रोत्साहनसे वानरोंने बड़ा परिश्रम किया । नल और नीलने भी अथक श्रम करके पहले ही दिन उन्होंने समुद्रपर चौदह योजन लंबा पुल तैयार कर लिया ।

हनुमान्जीको इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ । उन्होंने वानर-भालुओंको और प्रोत्साहित किया । दूसरे दिन पर्वतोंको लिये पवनपुत्र प्रायः समस्त वानरोंके आगे रहते । लगन एवं श्रमकी प्रशंसा करते । फलस्वरूप दूसरे दिन बीस योजन सेतु और तैयार हुआ । हनुमान्जीको अब भी संतोष नहीं था । जगज्जननी जानकीकी करुणमूर्ति उनके हृदयमें व्याकुलता उत्पन्न कर रही थी । वे शीघ्रातिशीघ्र माता सीताको प्रभु-चरणोंमें ले आने एवं दशाननकी मुक्तिके लिये अत्यन्त व्यग्र थे । वानर सेतु निर्माणके कार्यमें अथक परिश्रम कर रहे थे और श्रीपवननन्दन उनकी कला एवं उनके श्रमकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते । फलतः तीसरे दिन सेतु इक्कीस योजन और तैयार हो गया । पर श्रीअञ्जनानन्दवर्धन पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए । वे वनों और पर्वतोंमें इतनी शीघ्रतासे जाते और वानरोंके समूह एवं नल-नील आदिके यहाँ इतनी स्फूर्ति भरते कि सभी वानर-भालू समझते कि मारुतसुत मेरे ही पास हैं । इस कारण चौथे दिन एक योजन और अर्थात् बाईस योजन पुल निर्मित हो गया ।

बुद्धि, तेज, शक्ति एवं पराक्रमके सजीव विग्रह हनुमान्जीने वानरोंको प्रोत्साहित करते हुए कहा—'परम भाग्यवान् वानर-भालुओ ! निश्चय ही तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम जगन्नियन्ता श्रीराम एवं निखिल भुवनकी स्वामिनी माता जानकीके कार्यमें निमित्त बन रहे हो, अन्यथा भगवान् श्रीरामकी इच्छाशक्तिसे ही रावण-कुलका नाश हो जाता । प्रभु-चरणोंमें हम सबका जीवन अर्पित हो चुका है । यह सुअवसर इन्द्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है । अब यह सेतु केवल तेईस योजन और शेष रह गया है । अतएव आज इसे सागर-पार लङ्काके तटतक अवश्य ही पूरा हो जाना चाहिये ।'

उपक्रम गोवर्धन

कोटि-कोटि वानरोंने गर्जना की—'जय श्रीराम !' 'जय हनुमान्जी !' पुनः सिंहनाद किया—'जय श्रीसीताराम !!' श्री... विशाल पर्वत लेने उड़ चले । दक्षिणके समस्त पर्वत सेतुमें डाल दिये गये थे, इस कारण वे उत्तराखण्ड हिमालयके समीप पहुँचे । उन्हें वहाँ एक अत्यन्त कान्तिमान् सुविस्तृत शिखर अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत हुआ । उस शिखरका नाम था—गोवर्धन । जब आञ्जनेय ...

वतारके समय देवगण उनकी दुर्लभतम मङ्गलमयी लाका दर्शन करने एवं उसमें सहयोग प्रदान करनेके लिये पृथ्वीपर अवतरित हुए, उसी समय गोवर्धन भी गोलोकसे पृथ्वीपर आये ।

श्रीपवनपुत्रने उन्हें उठाना चाहा, किंतु अत्यन्त आश्चर्य ! इनकी सम्पूर्ण शक्ति लगानेपर भी द्रोणगिरिका वह शिखर टस-से-मस नहीं हुआ । श्रीरामभक्त हनुमानने अपने प्रभुका ध्यान किया ही था कि उन्हें उस श्रेष्ठ गिरि गिरिराजकी महत्ता विदित हो गयी । 'अरे ! ये तो ात् श्रीभगवान्के विग्रह गोवर्धन हैं । इनकी प्रत्येक ा शालग्राम-तुल्य है ।'

तब तो हनुमानजीने महिमामय गोवर्धनके चरणोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—'भगवनम गिरिराज ! मैं आपको प्रभु-चरणोंमें उपस्थित करना चाहता हूँ, फिर आप क्यों नहीं चलते ! वहाँ आप दयाधाम प्रभुकी मङ्गल-मूर्तिके दुर्लभ दर्शन ही नहीं करेंगे, प्रभु आपके ऊपर अपने सुख शान्ति निकेतन चरण-कमल रखते हुए सागर पारकर लङ्कामें जायँगे ।'

श्रीरामप्रिय पवनकुमारके वचन सुनते ही गोवर्धन आनन्दमग्न हो गये । 'वहाँ श्रीभगवान्के दुर्लभ दर्शन ही नहीं होंगे, प्रभु मुझपर अपने भवतापहर चरण-कमलोंको रखते हुए समुद्र पार करेंगे'—इस कल्पनासे उनके सुखकी सीमा न रही । उन्होंने आञ्जनेयसे कहा—'पवनकुमार ! मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ । आपकी इस कृपासे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता । आप दया करके मुझे यथाशीघ्र प्रभुके समीप ले चलें । आपकी इस अहैतुकी कृपाके लिये मैं आपका सदा ही उपकृत बना रहूँगा ।'

अब तो हनुमानजीने उन्हें अत्यन्त सरलतासे उठा लिया । कपीश्वरके वामहस्तपर गोवर्धन पुष्प-तुल्य प्रतीत हो रहे थे । गोवर्धनकी प्रसन्नताकी सीमा न थी । वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'आज इन महावीर हनुमानजीकी कृपासे कितने दिनोंके बाद मेरी लालसा पूरी होगी ! मङ्गल एवं परोपकारकी मूर्ति इन पवननन्दनने इस प्रकार कितने प्राणियोंका हित किया है ! मेरा सौभाग्य है, जो आज मुझे इनके दर्शन और सेवाका सुअवसर प्राप्त हो गया । आज इनकी कृपासे मुझे मेरे जीवन-सर्वस्व कमल-नयन प्रभुके दर्शन हो जायँगे ।'

इस प्रकार गोवर्धन मन ही मन प्रभु एवं उनके भक्तका स्मरण, चिन्तन एवं गुणगान करते जा रहे थे और उधर भक्तवाञ्छाकल्पतरु परम प्रभुने सोचा—'गोवर्धन गोलोकके मेरे मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण-रूपके अनन्य भक्त हैं । यहाँ उन्होंने कहीं मुझसे उसी रूपमें दर्शन देनेका आग्रह किया तो उनके सच्चे गुणैषी हनुमानजीकी ओर देखकर मुझे मर्यादाका त्याग करना पड़ेगा । क्या किया जाय ?'

प्रभु मौन ही रहे थे कि उस पाँचवें दिन शत योजन लंबा और दस योजन चौड़ा सुविस्तृत दृढ़तम सेतुका शेष तेईस योजन भाग भी पूर्ण हो गया । फिर क्या था ? तत्क्षण श्रीराघवेन्द्रकी आज्ञा प्रचारित हुई—'सेतु-बन्धनका कार्य पूर्ण हो गया । अतएव अब पर्वत एवं वृक्षादिकी आवश्यकता नहीं । जिनके हाथमें जो पर्वत या वृक्ष जहाँ कहीं हों, वे वहीं उन्हें छोड़कर तुरंत प्रभुके समीप पहुँच जायँ ।'

चञ्चल एवं वीर वानरोंने दौड़ते हुए सर्वत्र श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा सुना दी । उनके हाथमें जो पर्वत या वृक्ष जहाँ थे, वे उन्हें वहीं छोड़कर प्रभुके समीप दौड़ चले । आज दक्षिण भारतमें वीर वानरोंके छोड़े हुए वे ही पर्वत विद्यमान हैं । वहाँके पर्वत तो पहले सेतुके काम चुके थे । महामहिमामय गोवर्धनको अपने हाथमें केसरी किशोर उस समय व्रजपर्यन्त पहुँचे ही थे कि उन्होंने प्रभुकी आज्ञा सुनी । हनुमानजीने गोवर्धनको तुरंत वहीं रख दिया, किंतु उन्हें अपने वचनका ध्यान था । उसी समय उन्होंने देखा, गोवर्धन अत्यन्त उदास होकर उनकी ओर आशाभरे नेत्रोंसे देख रहे हैं ।

हनुमानजीने कहा—'आप चिन्ता मत कीजिये । मेरे भक्तप्राणधन स्वामी मेरे वचनोंकी रक्षा तो करेंगे ही ।' और वे शीघ्रतासे प्रभुकी ओर उड़ चले ।

हनुमानजीने प्रभुके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये । दयामय सर्वज्ञ प्रभुने उनका अभीष्ट पूछा तो उन्होंने अत्यन्त विनम्रतासे निवेदन किया—'प्रभो ! मैंने गोवर्धनको आपके दर्शन और परमपावन चरण-कमलोंके स्पर्शका वचन दे दिया था, किंतु वानरोंके द्वारा आपका आदेश प्राप्त होते ही मैंने उन्हें व्रजभूमिमें रख दिया । वे अत्यन्त उदास हो गये । मैंने उन्हें पुनः आश्वासन भी दे दिया है ।'

सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल श्रीरामने हनुमानजीके चुप होते ही कहा—'प्रिय हनुमान ! तुम्हारा आश्वासन और तुम्हारा

वचन मेरा ही आश्वासन और मेरा ही वचन है । गोवर्धनको मेरी प्राप्ति अवश्य होगी, किंतु उन्हें मेरा मयूरमुकुटी वंशीविभूषित रूप प्रिय है। अतएव तुम उनसे कह दो कि जब मैं द्वापरमें व्रजधरापर उनके प्रिय मुरली मनोहर रूपमें अवतरित होऊँगा, तब उन्हें मेरे दर्शन तो होंगे ही, मैं व्रज-बालकोंसहित उनके फल-फूल एवं तृणादि समस्त वस्तुओंका उपभोग करते हुए उनपर क्रीड़ा करूँगा। इतना ही नहीं, अनवरत सात दिनोंतक मैं उन्हें अपनी अँगुलीपर धारण भी किये रहूँगा।'

'कृपामूर्ति श्रीरामकी जय!' पवनकुमारके मुखसे स्वर निकल पड़ा। आनन्दमग्न हनुमानजी अन्तरिक्षसे गोवर्धनके समीप पहुँचे। अत्यन्त उत्सुकतासे प्रतीक्षा करते हुए उनसे हनुमानजीने कहा—'गिरिराज! आप धन्य हैं। भक्त-पराधीन प्रभुने आपकी कामनापूर्तिका वचन दे दिया। द्वापरमें मयूरमुकुटी वंशीधर (आपके आराध्य) स्वयं ही आपके ऊपर बाल-क्रीड़ा करेंगे। वे प्रभु उस समय आपके जल, पत्र, पुष्प, फल, शिला एवं तृण-रत्नादि समस्त वस्तुका उपभोग तो करेंगे ही, सात दिनोंतक निरन्तर आप उनके करकमलपर निवास भी करेंगे।'

गिरिराज आनन्दमग्न हो गये। नेत्रोंमें प्रेमाश्रुभर उन्होंने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक श्रीरामभक्त हनुमानसे कहा—'आञ्जनेय! आपके इस महान् उपकारके बदले मैं आपका कुछ भी सेवा किंचित् नहीं हूँ। मैं आपका सदा कृतज्ञ रहूँगा।'

सहस्राब्दियोंसे गिरिराज पूजित हैं। विरक्त महात्मा एवं भक्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी परिक्रमा कर अपनी अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त करते हैं। परम भाग्यवान् गिरिराजजीका यह गौरवपूर्ण पद द्वापरमें अवतरित वंशीधररूपी श्रीरामने अपने भक्त आञ्जनेयके वचनको सार्थक कर ही प्रदान किया था।

निश्चय ही जिस भाग्यवान्को हनुमानजीका दर्शन प्राप्त हो जाय, उसे प्रभु-प्राप्ति तो होकर ही रहेगी। करुणामूर्ति पवनकुमार अपने भक्तको प्रभुतक पहुँचाये बिना चैन नहीं लेते। गिरिराजसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक मिलकर परमोपकारी हनुमानजी अपने प्रभु श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें लौट आये।

• • •

विशाल वानर-भालुओंके द्वारा बना और देखते-देखते वह सुविस्तृत सेतु निर्मित हो गया। भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामने चकित होकर वानरोंसे पूछा—'अरे! ये पत्थर पानीपर कैसे तैरने लगे!'

वानरोंने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! आपके 'राम'-नामकी महिमा है। उसीके प्रतापसे ये पर्वत और बड़े-बड़े शिलाखण्ड समुद्रपर तैर रहे हैं।'

कौतूहलवश श्रीरघुनन्दनने छोटे-छोटे दो-तीन पत्थर उठाकर समुद्रके जलपर रखे, पर वे सब-के-सब डूबकर नीचे चले गये। तब प्रभुने कहा—'यह कैसे सम्भव है? मैं स्वयं इन पत्थरोंको अपने हाथसे छोड़ रहा हूँ, किंतु ये पानीपर तैरनेके बदले डूबते जा रहे हैं।'

वानर-भालू एक-दूसरेका मुँह देखने लगे, किंतु उसी समय परमप्रभु श्रीरामके अनन्य भक्त पवनकुमारने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'स्वामी! आप जिसे अपने करकमलसे छोड़ देंगे, वह तो सहज ही डूब जायगा! आपके बिना प्राणीकी गति कहाँ?'

श्रीराघवेन्द्र मुस्कुरा उठे।

वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनीके साथ श्रीरामने समुद्र पार किया। वहाँ उन्होंने सुवेल पर्वतपर डेरा डाला। एक उच्च, सुन्दर एवं समतल शिखरपर सुमित्रानन्दनने वृक्षोंके कोमल दल और सुन्दर सुमनोंको सजाया और फिर उसके ऊपर एक सुन्दर मृगछाला बिछा दी। उसी आसनपर करुणासागर प्रभु श्रीराम वानरराज सुग्रीवकी गोदमें अपना सिर रखकर लेट गये थे। उनकी बायीं ओर उनका विशाल धनुष तथा दाहिनी ओर अक्षय तूणीर पड़ा था। प्रभु एक दीप्तिमान् तारकापर हाथपर अपना करकमल रखे हुए थे और भाग्यवान् विभीषणजी उनसे धीरे-धीरे परामर्श कर रहे थे। अत्यन्त सौभाग्यशाली अङ्गद और हनुमान उनके परम दुर्लभ चरण-कमलोंको धीरे-धीरे दबा रहे थे और उनकी दृष्टि प्रभुके मुखारविन्दपर थी। वीरवर सौमित्रि धनुष-बाण धारण किये प्रभुके सिरहाने अत्यन्त सावधान होकर वीरासनसे बैठे थे।

उसी समय पूर्व आकाशमें उदित चन्द्रमाको देखकर भगवान् श्रीरामने कहा—'आपलोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार बतलाइये कि इस चन्द्रमामें यह श्यामता कैसी है?'

सब अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार उत्तर दिये। अन्तमें हनुमानजीने उत्तर दिया—'प्रभो! चन्द्रमा आपका

श्री हनुमान रौद्ररूपमें

प्रिय दास है और आपकी सुन्दर श्यामल मूर्ति उसके हृदयमें निवास करती है, वही श्यामता सुधांशुमें झलक रही है।*

सच तो यह है, पवनतनयके रोम-रोममें उनके प्राणाराध्य श्रीराम ही बसे हुए थे। उन्हें सर्वत्र अपने प्रभुके ही दर्शन होते थे। अतएव शशि-मण्डलमें श्रीराम दर्शन उनके लिये स्वाभाविक ही है।

समराङ्गणमें

दूसरे दिन भगवान् श्रीरामने अपने मन्त्रि महामति जाम्बवान्‌के परामर्शसे दशग्रीवको समझानेके लिये दूतके रूपमें युवराज अङ्गदको लङ्का भेजा, किंतु रावणके सिरपर तो मृत्यु नाच रही थी, इस कारण उसपर किसी बातका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। युद्ध प्रारम्भ हो गया। राक्षस मायावी थे और वे भिन्दिपाल, खड्ग, शूल, परशु, शक्ति, तोमर, धनुष-बाण और गदा आदि विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे युद्ध करते थे। वे वीर एवं पराक्रमी तो थे ही, पराजयकी स्थिति उत्पन्न होते ही अदृश्य हो जाते और आकाशसे धूल, अस्थि एवं रक्तादिकी वर्षा करने लगते। अपनी सेनाको व्याकुल देखकर मायापति श्रीराम अपने एक ही शरसे उन मायावी राक्षसोंकी मायाका विनाश कर देते, तब वानर-भालू पुनः अत्यधिक उत्साहसे युद्ध करने लगते।

भगवान् श्रीरामकी विशाल सेनामें सुग्रीव, मन्त्रियोंसहित विभीषण, हनुमान, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, हर, यूथपति रम्भ, जाम्बवान्, सुषेण, ऋषभ, दुर्मुख तथा शतबलि आदि प्रमुख योद्धा थे। इन परम पराक्रमी वीरोंके अधीन लाखों करोड़ों वानर-भालू थे। वानर-भालुओंके पास कोई अन्य अस्त्र-शस्त्र तो थे नहीं वे गगनचुम्बी अट्टालिकाओंपर चढ़ जाते और उनके कँगूरोंको तोड़कर राक्षसोंपर प्रहार करते, क्रोधसे किलकिलाते हुए असुरोंपर कूद पड़ते, उन्हें थप्पड़ोंसे मारते, उनपर वज्र-तुल्य मुष्टिकासे प्रहार करते, उनको लातोंसे रौंदते और दाँतोंसे काटते। वानर असुरोंकी गर्दन तोड़ देते और नखोंसे उनका हृदय विदीर्ण कर देते। उनके गलोंको फाड़ डालते, उनकी भुजाएँ उखाड़कर फेंक देते। कुछ वानर-भालू राक्षसोंको पकड़कर उन्हें रेतमें गाड़ देते और कुछ उन्हें पकड़कर समुद्रमें डुबा देते।

समर-भूमिमें महापराक्रमी एवं महाबली पवनपुत्र तो राक्षसोंके लिये साक्षात् काल-तुल्य ही प्रतीत होते थे। उन्होंने पहले ही लङ्काके मनोरम प्रमदा-वनको तहस-नहस करके कितने ही शूरवीर असुरोंका संहार कर दिया था। उनके हाथों रावण-पुत्र अक्षकुमारकी मृत्यु एवं वैभवमयी अनुपम लङ्काका सर्वनाश राक्षस देख चुके थे। आकाशको विदीर्ण करनेवाला श्रीहनुमानका सिंहनाद उन्हें क्षणार्धके लिये भी विस्मृत नहीं हुआ था, अतएव उनके हतोत्साह होनेके लिये मर्कटाधीशका नाम ही पर्याप्त था। जहाँ प्रज्वलित अग्निके समान दुर्धर्ष हनुमानजी स्वयं हाथोंमें विशाल शैल धारणकर मेघ-गर्जन करते हुए दौड़ जायँ, वहाँ तो राक्षसोंके प्राण-पखेरू ही उड़ जाते थे। ओज, तेज एवं स्फूर्तिके साकार विग्रह वज्राङ्गबली जहाँ पहुँचते, वहाँ राक्षस-सैन्यका सामूहिक संहार हो जाता। अधिकांश राक्षस उनकी चपेटसे रक्त-वमन करते हुए प्राण त्याग देते और कुछ भागकर लङ्कामें प्रवेश कर जाते।

श्रीहनुमानजी एक ही स्थानपर युद्ध करते हों, ऐसी बात नहीं, वे जब जहाँ वानर-सैन्यपर असुरोंका दबाव पड़ता देखते, वहीं 'जय श्रीराम'का गगन-भेदी घोष करते हुए सीधे राक्षसोंके मध्य उनके ऊपर कूद पड़ते। राक्षस समूहका दलन हो जाता। वे अश्व, सारथि एवं रथसहित असुर वीरोंको आकाशमें इतने वेगसे फेंकते कि वे चक्कर काटते हुए समुद्रके जलमें गिरकर समाप्त हो जाते। वे असुरोंको उनकी टाँग, हाथ या सिर—जब जिसका जो अङ्ग हाथमें आया, पकड़कर समुद्रमें फेंक देते। इस प्रकार हनुमानजी त्वरित गतिसे सहस्रों असुरोंका संहार कर देते। वे छोटे-छोटे वृक्षोंका तो स्पर्श ही नहीं करते थे, सीधे छलाँग मारते और समीपका बड़ा पर्वत उठाकर विद्युत्-गतिसे लौटते और असुरोंपर फेंक देते। रह-रहकर कुछ पर्वत और विशाल शिलाखण्ड लङ्कामें भी फेंकते रहते। त्राहि त्राहि मच जाती।

पवनपुत्र श्रीहनुमान अविश्रान्त युद्धक्षेत्रमें राक्षसोंका इतना भयानक संहार करते कि रणमें उपस्थित असुर-गणोंके मनमें रावणके सर्वनाशका निश्चय हो ही जाता। हनुमानजी अत्यन्त तीव्र गतिसे युद्धके प्रत्येक स्थलपर पहुँचते। जहाँ

* कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥ (मानस ६। १२

भाग्यवश वह एक ही दिनके युद्धमें भगवान् श्रीरामके बाणसे मुक्त हो गया।

* * *

विगतित क्रुद्ध रावण स्वयं युद्ध-भूमिमें आया। उसके हाथमें अत्यन्त भयानक एवं दीप्तिमान् धनुष था। उसने अपने तीक्ष्णतम शरोंकी वर्षासे वानर-सैन्यको विचलित कर दिया। उस समय वज्राङ्गबली हनुमान कूदकर उसके रथके समीप पहुँच गये और अपना दाहिना हाथ उठाकर उन्होंने रावणको भयाक्रान्त करते हुए कहा—'देखो, पाँच अंगुलियोंसे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ उठा हुआ है। तुम्हारे शरीरमें चिरकालसे जो जीवात्मा निवास करता है, उसे आज यह इस देहसे अलग कर देगा।'*

पराक्रमी रावणने अत्यन्त कुपित होकर कहा—'वानर! तुम निश्चिन्त होकर पहले मुझपर प्रहार कर लो, तब पराक्रम देखकर मैं तुम्हारा प्राण हरण करूँगा।'

हनुमानजीने उत्तर दिया—'तुम यह क्यों भूल जाते हो कि मैंने पहले ही तुम्हारे प्राणप्रिय अक्षकुमारको मार डाला है।'

आञ्जनेयकी इस उक्तिसे रावणका हृदय जल उठा। उसने तुरंत हनुमानजीके वक्षपर हाथसे प्रहार किया।

बल-विक्रम-सम्पन्न महातेजस्वी रावणकी मुष्टिकाके आघातसे हनुमानजी क्षणभरके लिये विचलित हो गये, किंतु वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी थे। सुस्थिर होते ही उन्होंने भी अत्यन्त क्रोधपूर्वक राक्षसराजको कसकर एक घूँसा मारा।

परमपराक्रमी वज्राङ्ग महावीरका वज्र-तुल्य घूँसा लगते ही रावण काँप उठा। कुछ क्षणोपरान्त उसने सँभलकर कहा—'शाबाश वानर! पराक्रमकी दृष्टिसे तुम मेरे प्रशंसनीय प्रतिद्वन्द्वी हो।'

वीरवर पवनकुमारने उत्तर दिया—'अरे रावण! तुम अब भी जीवित हो, इसलिये मेरे पराक्रमको धिक्कार है!† अब तुम एक बार और मुझपर प्रहार करो। तुम्हारे प्रहारके अनन्तर जब मेरा मुक्का पड़ेगा, तब तुम यमलोक पहुँच जाओगे।'

श्रीरघुनाथीशके वाग्बाणसे राक्षसराज रावणके नेत्र लाल हो गये। उसने अत्यन्त कुपित होकर हनुमानजीके वक्षपर अपना प्रचण्ड घूँसा मारा।

रावणके मुक्केसे हनुमानजी पुनः विचलित हो गये। धैर्यपूर्वक उनके सँभलते-सँभलते रावण वानर-सेनापति नीलपर चढ़ बैठा। हनुमानजी उधर दौड़े, किंतु रावणको नीलसे युद्ध करते देखकर उन्होंने कहा—'अरे निशाचर! इस समय तुम दूसरेसे युद्ध कर रहे हो, इस कारण मैं तुमपर प्रहार नहीं कर रहा हूँ।'

* * *

इस प्रकार हनुमानजीकी प्रचण्ड वीरताके कारण शत्रुओंके रक्तसे लिप्त उनका दर्शन होनेपर रावण भी मन-ही-मन काँप उठता था। एक बार वह सुमित्रानन्दनसे युद्ध करनेमें लगा था तथा लक्ष्मणके तीक्ष्णतम शरोंसे व्याकुल होकर भी वह उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचा पा रहा था। उसका सारा शरीर मेद और रक्तसे सन गया था। उस अवस्थामें उसने रणभूमिमें ब्रह्माजीकी दी हुई शक्ति बड़े वेगसे श्रीरामानुजपर छोड़ दी। वह शक्ति लक्ष्मणके विशाल वक्षःस्थलमें प्रविष्ट हो गयी और वे आहत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

रावण प्रसन्न होकर लक्ष्मणके समीप पहुँचा और उन्हें उठाने लगा, किंतु भगवान् शिवके कैलासपर्वतको उठा लेनेवाला रावण श्रीरामानुजके शरीरको हिला भी न सका! उस समय हनुमानजी दौड़े और अत्यन्त कुपित होकर उन्होंने रावणकी छातीमें वज्र-तुल्य मुक्केसे प्रहार किया।

उस मुक्केके भयानक प्रहारसे रावणको चक्कर आ गया। वह घुटनेके बल बैठ गया और काँपता हुआ गिर पड़ा। उसके मुख, नेत्र और कानोंसे रक्त बहने लगा। तड़पता, छटपटाता और चक्कर काटता हुआ रावण विगलित अपने रथके पिछले भागमें निश्चेष्ट होकर जा बैठा और कुछ ही देरमें मूर्च्छित हो गया।

---

* एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः। विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम्॥
(वा० रा० ६।५[illegible]।५६)

† धिगस्तु मम वीर्यस्य यत् त्वं जीवसि रावण। (वा० रा० ६।५[illegible]।६६)
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं त जिअत रहेसि सुरद्रोही॥ (रामचरितमानस ६।८३)

श्रीरघुनाथजीको अधीर होते देखकर रुद्रावतार पवनपुत्रके नेत्र भी सजल हो गये, परंतु इस विषम परिस्थितिमें सबको सँभालनेका दायित्व भी उनपर ही था। अतएव अपने मनको दृढ़ करके वे सबको उत्साहित करते हुए बोले—'प्रभो! मेरे रहते आप छोटे भाईकी चिन्ता क्यों करते हैं! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं अभी स्वर्गसे अमृत ले आऊँ या सुधांशुको वस्त्रकी भाँति निचोड़कर उसका अमृत सुमित्राकुमारके मुँहमें डाल दूँ। सुमित्राकुमारके जीवनकी रक्षाके लिये मैं पृथ्वीको भेदकर तुरंत पाताल चला जाऊँ और वहाँ नागोंको मारकर अमृतकुण्ड ही लाकर लक्ष्मणको उसमें स्नान करा दूँ—यही क्यों, आज मैं साक्षात् कालको ही ध्वस्त कर देता हूँ, जिससे लक्ष्मणके लिये तो चिन्ता दूर हो ही जायगी, समस्त प्राणी भी सदाके लिये मृत्यु-भयसे मुक्त हो जायँगे।'

हनुमानजीका प्रलयंकर स्वरूप प्रकट होता जा रहा था, पर लीला-वपु श्रीरघुनन्दनको तो मनुष्योचित आचरण करना था। उन्हें रुद्रके इस वेषको देखकर चिन्ता हुई ही थी कि उसी समय विभीषणके परामर्शसे महाबुद्धिमान् जाम्बवान्‌ने कहा—'भैया हनुमान! निस्संदेह तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, किंतु तुम्हें यह सब कुछ नहीं करना है। केवल तुम लङ्कामें चले जाओ। पहले तुमने उस नगरीको अच्छी प्रकार देख ही लिया है। वहाँ सुषेण* नामक योग्यतम चिकित्सक हैं। तुम उसे ले आओ। उसके बताये हुए उपचारसे निश्चय ही लक्ष्मणके घाव तुरंत भर जायँगे और ये पूर्ववत् शक्ति-सम्पन्न भी हो जायँगे।'

विभीषणने श्रीहनुमानको सुषेणके घरका ठीक-ठीक पता भी बता दिया। बस, हनुमानजी अत्यन्त छोटा रूप धारणकर लङ्कामें तुरंत प्रविष्ट हो गये। सुषेणके द्वारपर पहुँचकर उन्होंने सोचा—'सुषेण शत्रुपक्षके चिकित्सक हैं, कहीं ये चलना अस्वीकार न कर दें।' बस, पवनकुमारने अधिक समय नष्ट करना उचित नहीं समझा। उन्होंने उनका सम्पूर्ण भवन समूल ही उखाड़ लिया और उसे आकाश मार्गसे लाकर श्रीरघुनन्दनके समीप कुछ दूरीपर रखकर खड़े हो गये।

सुषेण अपने भवनसे निकले तो श्रीरामकी सेनाको देखकर चकित हो गये। उन्हें समझते देर न लगी कि मुझे किसलिये लाया गया है। विभीषणने भी उन्हें स्थिति समझा दी।† सुषेणने तुरंत नाड़ी, हृदय एवं घावकी परीक्षा की और बोले—'घाव गम्भीर है, किंतु यदि संजीवनी बूटी यहाँ सूर्योदयके पूर्व आ जाय तो ये जीवित हो जायँगे और इनकी शक्ति भी पूर्ववत् लौट आयेगी।'

सुषेणने दृष्टि उठाकर देखा, सामने पवनकुमार सचिन्त मुद्रामें खड़े थे। लङ्का-दहनके समयसे ही उनकी शक्तिसे परिचित होनेके कारण उन्होंने उनसे कहा—'पराक्रमी पवनकुमार! यह काम आप ही कर सकेंगे। आप तुरंत हिमालय पर्वत चले जाइये। वहाँ पहुँचनेपर आपको अत्यन्त ऊँचाईपर सुवर्णमय पर्वत ऋषभका तथा कैलास शिखरका दर्शन होगा। उन दोनों शिखरोंके बीच अत्यन्त दीप्तिमान् ओषधियोंका पर्वत द्रोण दिखायी देगा। उसकी दीप्ति अद्भुत है और वहाँ सभी ओषधियाँ सुलभ हैं। वहाँ संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी नामक महौषधियाँ प्रकाशित रहती हैं। आप उन्हें शीघ्र लाकर लक्ष्मणको प्राण-दान करें। स्मरण रहे, ये ओषधियाँ सूर्योदयके पूर्वतक ही उपयोगी सिद्ध हैं। सूर्योदयके अनन्तर सुमित्राकुमारकी रक्षा असम्भव हो जायगी।'

'जय श्रीराम!' श्रीरघुनन्दनके चरणोंमें प्रणाम कर अञ्जनानन्दनने गर्जना की और वायुवेगसे उड़े। उन्हें हिमालयके समीप पहुँचते देर न लगी। उन्होंने हिमालयकी तराईमें एक अत्यन्त सुन्दर तपोवन देखा। वह तपोवन एक योजन विस्तृत था और उसमें पके हुए सुन्दर फलोंसे लदे कदली, शाल, खजूर और कटहल आदिके वृक्ष लगे थे। उस तपोवनके एक सुरम्य आश्रममें एक तेजस्वी मुनि भगवान् शंकरकी पूजा कर रहे थे।

हनुमानजी तृषाका अनुभव कर रहे थे। उन्होंने सोचा, यहाँ जल पीकर तब द्रोणगिरिपर चलूँ। उन्होंने मुनिके चरणोंमें नमस्कार कर कहा—'भगवन्! मैं भगवान् श्रीरामका दूत पवनपुत्र हनुमान हूँ। स्वामीके आवश्यक

* अन्यत्र वर्णन मिलता है कि भगवान् श्रीरामकी वानरी-सेनामें सुषेण नामक एक वानर सुयोग्य चिकित्सक थे। उनके द्वारा इस ओषधिका एक बार प्रयोग हो चुका था। इस बार महामति जाम्बवान्‌ने उसी ओषधिके लिये पवनपुत्रको भेजा। कल्पभेदसे यह कथा भी सत्य है, किंतु रामचरितमानसके अनुसार लङ्काके चिकित्सक सुषेणके द्वारा लक्ष्मण-मूर्च्छा मिटनेकी बात अधिक प्रसिद्ध है।

† यह घटना उस स्थितिकी है, जब चिकित्सक अपने पवित्रतम कर्तव्यको ही सर्वोपरि मानते थे। शत्रु हो या मित्र—चिकित्सकका धर्म तो रोगीका प्राण बचाना है। इस कारण सुषेणपर अविश्वासका कोई हेतु नहीं था।

जटाजूटधारी श्यामल भरतजीके नेत्र बहने लगे। उन्होंने हनुमानजीको सचेत करनेके अनेक प्रयत्न किये, किंतु सबको विफल होते देखकर अन्तमें कहा—'जिस निर्मम विधिने मुझे अपने प्रभु श्रीरामसे पृथक् किया, उसीने मुझे आज यह दुःखका दिन भी दिखाया है। किंतु यदि भगवान् श्रीरामके अमल चरण-कमलोंमें मेरी विशुद्ध निश्छल प्रीति है और श्रीरघुनाथजी मुझपर प्रसन्न हों तो यह वानर पीड़ामुक्त होकर पूर्ववत् सचेत और सशक्त हो जाय।'

'भगवान् श्रीरामकी जय!'—हनुमानजी तुरत उठकर बैठ गये। उन्हें जैसे कुछ हुआ ही नहीं। वे पूर्णतया स्वस्थ एवं सशक्त थे। उन्होंने अपने सम्मुख भरतजीको देखा तो समझा कि मैं श्रीरघुनाथजीके ही समीप हूँ। उन्होंने तुरत चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'प्रभो! मैं कहाँ हूँ?'

'यह तो अयोध्या है।' आँसू पोंछते हुए भरतजीने कहा—'तुम अपना परिचय दो।'

'यह अयोध्या है!' हनुमानजी बोले—'तब तो मैं अपने स्वामीकी पवित्र पुरीमें पहुँच गया हूँ और जैसा मेरे प्रभु प्रायः गुण-गान किया करते हैं, लगता है कि आप भरतजी हैं।'

'हाँ भैया! अधम भरत यही है!' भरतजीने रोते हुए कहा—'इसी पातकीके कारण मेरे प्राणाधार श्रीरामको चौदह वर्षके लिये अरण्य-वास करना पड़ा है। मेरे ही कारण पिताको परलोक जाना पड़ा और जनकदुलारीको अनेक यातनाएँ सहनी पड़ रही हैं। मैं वही पापात्मा भरत हूँ। मैं तुम्हारा परिचय पानेके लिये व्यग्र हूँ।'

हनुमानजीने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! देवी अञ्जना मेरी माता हैं और मैं वायुदेवका पुत्र श्रीरामदूत हनुमान हूँ। लङ्काधिपति रावणने माता जानकीका हरण कर उन्हें अशोक-वाटिकामें रख दिया है। प्रभुने समुद्रपर सेतु निर्माण करवाया और फिर अपने वीर वानर भालुओंकी असीम वाहिनीके साथ समुद्रके पार उतर गये। युद्ध हो रहा है। आज मेघनादकी शक्तिसे लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये हैं। उन्हींके लिये मैं संजीवनी बूटी लेने द्रोणाचल गया था। बूटी न पहचाननेके कारण पूरा पर्वत-शिखर ही लिये जा रहा हूँ। अत्यन्त सौभाग्यकी बात है कि मार्गमें आपका भी दर्शन हो गया। प्रभु श्रीराम सदा ही आपका गुण-गान किया करते हैं। आज आपके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया।'

'भैया हनुमान!' रोते हुए भरतजीने उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया और रोते-रोते ही उन्होंने हनुमानजीसे कहा—'भाई पवनकुमार! मैं प्रभुके एक भी काम न आ सका। मुझ पातकीके ही कारण प्रभुको ये समस्त विपदाएँ झेलनी पड़ रही हैं और जब भाई लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े हैं, तब मैंने और व्यवधान उत्पन्न कर दिया!'

उसी समय हनुमानजीका समाचार पाकर माता कौसल्या, देवी सुमित्रा और वसिष्ठजी तथा अन्य सभी गुरुजन वहाँ उपस्थित हो गये। माता सुमित्राने कहा—'हनुमान! श्रीरामसे कह देना, लक्ष्मणने अपने धर्मका पालन किया है, इस कारण मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सेवकको तो स्वामीकी सेवामें प्राण-त्याग करना ही चाहिये। लक्ष्मण चाहे न रहे, पर सीताके बिना श्रीरामका यहाँ आगमन मैं सह न सकूँगी।'

माता कौसल्या बोल उठीं—'देखो, भैया पवनकुमार! तुम रामसे इनकी एक भी बात न कहना। ये तो रामको प्राणसे भी अधिक चाहती हैं, इस कारण इन्हें रामके बिना कहीं कुछ दीखता ही नहीं, पर तुम रामसे मेरा संवाद अवश्य कहना कि 'जिस प्रकार यहाँसे जाते समय तुम लक्ष्मणको अपने साथ ले गये थे, उसी प्रकार अयोध्या आते समय अपने साथ लक्ष्मणको अवश्य लेते आना। लक्ष्मणके बिना तुम्हें अयोध्या नहीं आना चाहिये'।''

इधर पवनात्मजको समाचार दिये जा रहे थे, उधर अयोध्याकी विशाल वाहिनी सेनापतिके आदेशसे लङ्का जानेके लिये प्रस्तुत हो गयी थी। सहसा शस्त्रास्त्रोंसे सजी विशाल वाहिनीको देखकर हनुमानजी चकित हो गये।

सेनापतिकी प्रार्थना सुनते ही कुलगुरु वसिष्ठजीने कहा—'चक्रवर्ती सम्राट्की सेना ऐसी ही होनी चाहिये, किंतु मर्यादाका उल्लङ्घन न हो। इस समय सेना तो क्या, शत्रुघ्नका भी यहाँ जाना उचित नहीं। श्रीरघुनन्दन ही अकेले धरतीके सम्पूर्ण राक्षसोंको समाप्त करनेमें सर्वथा समर्थ हैं।'

श्रीरघुनन्दनका सविस्तर समाचार सबने सुन लिया। सबके नेत्र आँसुओंसे भरे थे। उधर रात्रि बीत जानेकी आशङ्का थी। इस कारण भरतजीने कहा—'भाई हनुमान!

कार्यसे जा रहा हूँ। मुझे अत्यधिक प्यास लगी है। कृपया मुझे जल बता दीजिये।'

'तुम मेरे कमण्डलुका जल पी सकते हो।' मुनिके उत्तरमें हनुमानजीने कहा—'मुनीश्वर! कमण्डलुके जलसे ही मेरा काम नहीं चलेगा। मेरी तृप्तिके लिये कोई जलाशय बतलाइये।'

मुनिने दाँत पीस लिये। हनुमानजीके कार्यमें देर करनेके लिये उसने कहा—'कपीन्द्र! मुझसे कुछ छिपा नहीं है। तपोबलसे मैं त्रिकालकी बात जानता हूँ। श्रीरामका लङ्काधिपति रावणके साथ युद्ध छिड़ा हुआ है। यद्यपि लक्ष्मण इन्द्रजित्‌की अमोघ शक्तिसे मूर्च्छित हो गये हैं, किंतु अब सुमित्राकुमार और समस्त वानर-वृन्द सचेत होकर बैठ गये हैं। अतएव तुम यहाँ स्थिरतासे मधुर फलोंको खाकर जल पी लो और फिर विश्राम करो। तदनन्तर लौट जाना।'

हनुमानजी बोले—'मुनिवर! आप मुझे केवल जलाशय बतला दीजिये। मैं प्रभुके दर्शनके बिना एक क्षणके लिये भी विश्राम करना नहीं चाहता।'

श्रीरघुनाथजीके कार्यमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये भेजे गये मुनिवेषधारी मायावी असुर कालनेमिके कमण्डलुका विष व्यर्थ गया। मुनिरूपधारी असुरने कहा—'वे ओषधियाँ सर्वसाधारणको नहीं दीखतीं, लुप्त हो जाती हैं। किंतु मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम जलाशयमें जल पीकर स्नान कर लो। फिर तुम्हारे आनेपर मैं तुम्हें एक मन्त्रका उपदेश कर दूँगा, जिससे तुम वह ओषधि सहज ही देख सकोगे।'

मायावी असुरने आगे कहा—'देखो, तुम नेत्र बंद करके जल पीना।' उसने जलाशय बता दिया।

हनुमानजीने नेत्र बंद करके जलाशयमें जल पीना प्रारम्भ ही किया था कि एक महामायाविनी घोररूपिणी मकरीने उनका पैर पकड़ लिया। नेत्र खोलकर पवनपुत्रने देखा, मकरी उन्हें निगलनेका प्रयत्न कर रही थी। बस, हनुमानजीने क्रुद्ध होकर उसका मुख फाड़ डाला। वह उसी समय मर गयी।

सहसा हनुमानजीने आकाशमें एक दिव्यरूपिणी स्त्रीको देखा। उसने उनसे कहा—'कपीश्वर! मैं शापग्रस्ता धान्यमाली नामक अप्सरा थी। आज आपकी कृपासे मैं शापमुक्त हो गयी। अनघ! यह सुरम्य आश्रम सर्वथा कृत्रिम है। मुनिके वेषमें कालनेमि नामक असुर रावणके आदेशानुसार आपके कार्यमें व्यवधान डालनेका प्रयत्न कर रहा है। आप इस दुष्टको मारकर शीघ्र द्रोणाचल चले जायँ। आपके पावन स्पर्शसे कृतार्थ होकर ब्रह्मलोक जाती हूँ।'

अप्सरा अदृश्य हो गयी और हनुमानजी कपटी मुनिके समीप पहुँचे। मुनिवेषधारी असुरने कहा—'वानरश्रेष्ठ! आओ, अब मैं तुम्हें दीक्षा प्रदान करूँ।' उसने शास्त्रकी लम्बी-चौड़ी विधि बतानेमें ही सारी रात्रि व्यतीत हो जानेको ...

'मुनिवर! पहले दक्षिणा ले लीजिये'—सहसा हनुमानजीका यह सुन कालनेमि चौंका ही था कि वह पवनपुत्रकी पूँछमें बँधकर पिसने लगा और जब पवनपुत्रने उसे विशाल शिलापर जोरसे पटका तो उसके किसी भी अङ्गका पता नहीं चला। मृत्युके समय वह असुरवपुसे मुक्त हो गया और 'राम-राम' कहते हुए उसने सद्गति प्राप्त कर ली।

'जय श्रीराम!' हनुमानजी प्रसन्नतापूर्वक द्रोणगिरिपर पहुँचे। वहाँ अनेक ओषधियाँ प्रकाशित हो रही थीं। वे सुषेणद्वारा बतायी हुई ओषधियोंको पहचान न सके। इस कारण उन्होंने शृङ्गों, हाथियों, सुवर्ण, अन्य सभी प्रकारकी धातुओं तथा ओषधियोंसहित पर्वतको ही समूल उखाड़ लिया और उसे लेकर वे गरुड़के समान प्रचण्ड वेगसे आकाशमें उड़ चले।

द्रोणाचलसहित आकाशमें वेगपूर्वक चलनेसे आँधी और तूफानकी तरह ध्वनि हो रही थी। उड़ते हुए हनुमानजी अयोध्याके ऊपर पहुँचे ही थे कि श्रीरामके सरपरायण भरतजीने सोचा—'विशाल पर्वत लिये सम्भवतः यह कोई असुर जा रहा है।' उन्होंने अपना धनुष उठाया और उसपर बिना नोकका बाण रखकर उसे धीरेसे छोड़ दिया।

'श्रीराम! जय राम!! जय श्रीसीताराम!!!' कहते हुए हनुमानजी मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े। उनकी मूर्च्छितावस्थामें भी पर्वत सुरक्षित था।

'अरे! यह तो कोई श्रीराम-भक्त है!'—भरतजीका हृदय काँप उठा। वे दौड़े। उन्होंने मूर्च्छित महाकपि मर्कटाधीशका कुम्हलाया हुआ मुँह देखा। उनके अधर हिल रहे थे और धीरे-धीरे सुनायी दे रहा था—'श्रीराम! जय राम!! जय श्रीसीताराम!!!'

जटाजूटधारी श्यामल भरतजीके नेत्र बहने लगे। उन्होंने हनुमानजीको सचेत करनेके अनेक प्रयत्न किये, किंतु सबको विफल होते देखकर अन्तमें कहा—'जिस निर्मम विधिने मुझे अपने प्रभु श्रीरामसे पृथक् किया, उसीने मुझे आज यह दुःखका दिन भी दिखाया है। किंतु यदि भगवान् श्रीरामके अमल-चरण-कमलोंमें मेरी विशुद्ध निश्छल प्रीति है और श्रीरघुनाथजी मुझपर प्रसन्न हों तो यह वानर पीड़ामुक्त होकर पूर्ववत् सचेत और सशक्त हो जाय।'

'भगवान् श्रीरामकी जय!'—हनुमानजी तुरंत उठकर बैठ गये। उन्हें जैसे कुछ हुआ ही नहीं। वे पूर्णतया स्वस्थ एवं सशक्त थे। उन्होंने अपने सम्मुख भरतजीको देखा तो समझा कि मैं श्रीरघुनाथजीके ही समीप हूँ। उन्होंने तुरंत चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'प्रभो! मैं कहाँ हूँ?'

'यह तो अयोध्या है।' आँसू पोंछते हुए भरतजीने कहा—'तुम अपना परिचय दो।'

'यह अयोध्या है!' हनुमानजी बोले—'तब तो मैं अपने स्वामीकी पवित्र पुरीमें पहुँच गया हूँ और जैसा मेरे प्रभु प्रायः गुण-गान किया करते हैं, लगता है कि आप भरतजी हैं।'

'हाँ भैया! अधम भरत यही है।' भरतजीने रोते हुए कहा—'इसी पातकीके कारण मेरे प्राणाधार श्रीरामको चौदह वर्षके लिये अरण्य-वास करना पड़ा है। मेरे ही कारण पिताको परलोक जाना पड़ा और जनकदुलारीको अनेक यातनाएँ सहनी पड़ रही हैं। मैं वही पापात्मा भरत हूँ। मैं तुम्हारा परिचय पानेके लिये व्यग्र हूँ।'

हनुमानजीने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! देवी अञ्जना मेरी माता हैं और मैं वायुदेवका पुत्र श्रीरामदूत हनुमान हूँ। लंकाधिपति रावणने माता जानकीका हरण कर उन्हें अशोक-वाटिकामें रख दिया है। प्रभुने समुद्रपर सेतु निर्माण करवाया और फिर अपने वीर वानर-भालुओंकी असीम वाहिनीके साथ समुद्रके पार उतर गये। युद्ध हो रहा है। आज मेघनादकी शक्तिसे लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये हैं। उन्हींके लिये मैं संजीवनी बूटी लेने द्रोणाचल गया था। बूटी न पहचाननेके कारण पूरा पर्वत-शिखर ही लिये जा रहा हूँ। अत्यन्त सौभाग्यकी बात है कि मार्गमें आपका भी दर्शन हो गया। प्रभु श्रीराम सदा ही आपका गुण-गान किया करते हैं। आज आपके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया।'

'भैया हनुमान!' रोते हुए भरतजीने उन्हें अपने कण्ठसे लगा लिया और रोते-रोते ही उन्होंने हनुमानजीसे कहा—'भाई पवनकुमार! मैं प्रभुके एक भी काम न आ सका। मुझ पातकीके ही कारण प्रभुको ये समस्त विपदाएँ झेलनी पड़ रही हैं और जब भाई लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े हैं, तब मैंने और व्यवधान उत्पन्न कर दिया!'

उसी समय हनुमानजीका समाचार पाकर माता कौसल्या, देवी सुमित्रा और वसिष्ठजी तथा अन्य सभी गुरुजन वहाँ उपस्थित हो गये। माता सुमित्राने कहा—'हनुमान! श्रीरामसे कह देना, लक्ष्मणने अपने धर्मका पालन किया है, इस कारण मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सेवकको तो स्वामीकी सेवामें प्राण-त्याग करना ही चाहिये। लक्ष्मण चाहे न रहे, पर सीताके बिना श्रीरामका यहाँ आगमन मैं सह न सकूँगी।'

माता कौसल्या बोल उठीं—"देखो, भैया पवनकुमार! तुम रामसे इनकी एक भी बात न कहना। ये तो रामको प्राणसे भी अधिक चाहती हैं, इस कारण इन्हें रामके बिना कहीं कुछ दीखता ही नहीं, पर तुम रामसे मेरा संवाद अवश्य कहना कि 'जिस प्रकार यहाँसे जाते समय तुम लक्ष्मणको अपने साथ ले गये थे, उसी प्रकार अयोध्या आते समय अपने साथ लक्ष्मणको अवश्य लेते आना। लक्ष्मणके बिना तुम्हें अयोध्या नहीं आना चाहिये'।"

इधर पवनात्मजका समाचार दिये जा रहे थे, उधर अयोध्याकी विशाल वाहिनी सेनापतिके आदेशसे लंका जानेके लिये प्रस्तुत हो गयी थी। सहसा शस्त्रास्त्रोंसे सजी विशाल वाहिनीको देखकर हनुमानजी चकित हो गये।

सेनापतिकी भावना सुनते ही कुलगुरु वसिष्ठजीने कहा—'चक्रवर्ती सम्राट्की सेना ऐसी ही होनी चाहिये, किंतु मर्यादाका उल्लङ्घन न हो। इस समय सेना तो क्या, शत्रुघ्नका भी वहाँ जाना उचित नहीं। श्रीरघुनन्दन ही अकेले धरतीके सम्पूर्ण राक्षसोंको समाप्त करनेमें सर्वथा समर्थ हैं।'

श्रीरघुनन्दनका संक्षिप्त समाचार सबने सुन लिया। सबके नेत्र आँसुओंसे भरे थे। उधर रात्रि बीत रही थी। इस कारण भरतजीने कहा—'भा

तुम मेरे बाणपर बैठ जाओ। मेरा यह बाण तुम्हें तुरत प्रभुके समीप पहुँचा देगा। कहीं देर न हो जाय!'

'यह बाण पर्वतसहित मेरा भार कैसे सह सकेगा!'—हनुमानजीके मनमें क्षणभरके लिये गर्व उत्पन्न हो गया, किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने सोचा—'अभी भी तो मैं इनके बिना नोकके बाणके आघातसे मूर्च्छित होकर गिर ही गया था। प्रभु-कृपासे सब सम्भव है।' यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़कर भरतजीसे कहा—'प्रभो! स्वामीके प्रतापसे आपका स्मरण करता हुआ मैं शीघ्र ही पहुँच जाऊँगा।'

हनुमानजीने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया और पूर्ववत् वायुवेगसे आकाशमें उड़ चले।

उधर रात्रि अधिक व्यतीत होते देख भगवान् श्रीराम अत्यन्त दुःखसे अधीर हो गये और विलाप करते हुए कहने लगे—'प्रिय भाई लक्ष्मणने मेरे लिये माता पिता-पत्नी ही नहीं, सम्पूर्ण राज्य-सुखको त्याग दिया, मेरे सुखके लिये वन-वन भटकता फिरा, उसके बिना मैं अब अयोध्यामें कौन सा मुँह लेकर जाऊँगा! वैदेही मिल भी गयी तो अब लक्ष्मणके बिना मेरा क्या होगा! अपने प्राणप्रिय भाईके बिना मैं निश्चय ही अपना प्राण त्याग दूँगा, फिर हमारी तीनों माताएँ और भरत तथा शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार अब अयोध्याका सर्वनाश हो जायगा। मेरे न रहनेपर वानरराज सुग्रीव युवराज अङ्गदके साथ किष्किन्धामें और ये वीर वानर भालू पर्वत और वनोंमें चले जायँगे; किंतु विभीषणको दिये गये मेरे वचनका क्या होगा! विभीषणने मेरा आश्रय ग्रहण किया है। ये मेरे शरणागत हैं। मेरा हृदय इसी चिन्ताग्निमें झुलस रहा है कि इन भक्त विभीषणका क्या होगा।' *

अखिलप्रभु भगवान् श्रीरामचन्द्रके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था। उन्हें बिलखते और करुण विलाप करते देखकर वानर भालू अत्यन्त व्याकुल हो गये। सबके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। रोते हुए वे रह-रहकर आकाशकी ओर देखने लगे थे। उनके मनमें महावीर हनुमानके आ जानेकी आशा लगी थी और वह लग पूरी भी हो गयी।

'जय श्रीराम!'का घोष करते हुए हनुमानजीने द्रोणाचलको रघुनाथजीके कुछ ही समीप एक ओर रख दिया और उनके चरणोंपर गिर पड़े। वानरोंकी प्रसन्नता सीमा नहीं थी। हर्षातिरेकमें कोई वानर हनुमानके चरण दबाता तो कोई हाथ और कोई उनकी पूँछ सहला रहा था।

इधर वानर भालू प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे, उधर सुषेणने बूटी लेकर लक्ष्मणको सुँघा दी। लक्ष्मणजी मानो नींदसे जाग पड़े हों। उठते ही उन्होंने कहा—'मेघनाद कहाँ है!' कुछ देर बाद उन्हें परिस्थितिका ज्ञान हुआ।

कृतज्ञताकी मूर्ति श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमानजीको गले लगाते हुए कहा—'हे वत्स! हे महाकपे!! आज तुम्हारी कृपासे ही मैं अपने भाई लक्ष्मणको स्वस्थ निरामय देख रहा हूँ।' †

श्रीसौमित्रिके पूर्ण स्वस्थ हो जानेपर सुषेणने श्रीरघुनन्दनके चरणोंमें प्रणाम किया। दयाधाम श्रीरामने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कुछ माँगनेको कहा। सुषेणने प्रभुकी सुदृढ़ भक्तिकी याचना की, जिसे भक्तवत्सल श्रीरामने उन्हें सहज ही दे दी। सुषेणके इच्छानुसार महावीर हनुमानने उनके भवनको लंकामें ले जाकर पूर्ववत् यथास्थान रख दिया। तदनन्तर वे द्रोणाचलको भी यथास्थान रखकर सूर्योदयके पूर्व ही लौट आये।

धर्माञ्जनलीके इस महान् कार्यकी स्वयं भगवान् श्रीराम और पुनर्जीवन प्राप्त लक्ष्मण तो प्रशंसा करते ही थे, समस्त वानर भालू सर्वत्र उन्हींका गुण-गान कर रहे थे, किंतु अभिमान-शून्य आञ्जनेयके हृदयमें इसका तनिक भी विचार नहीं था, जैसे उन्होंने कुछ किया ही नहीं था। उनके हृदयमें यही भाव था मानो यह सब करनेवाले कोई अन्य हनुमान थे। वे तो सबसे पृथक् मन-ही-मन प्रभुके अरुण कमल-तुल्य सुकोमल चरणोंके ध्यानमें तल्लीन थे।

---

* गिरि-कानन जैहैं साखामृग। हौं पुनि अनुज सँघाती। ह्वै है कहा बिभीषन की गति रही सोच भरि छाती॥

(गीतावली ६।७)

† मारुते मम वत्साय त्वत्प्रसादान्महाकपे। निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम॥

(अ० रा० ६।७।११)

अहिरावण-वध

रावणके सहस्रों शूर-वीर तो प्रतिदिन श्रीरामके साथ होनेवाले युद्धकी भेंट चढ़ ही जाते थे, उसके चुने हुए परमपराक्रमी योद्धा भी कालके गालमें प्रवेश कर गये थे किंतु जब उसका प्राणप्रिय पुत्र अजेय मेघनाद सुमित्राकुमारके शरसे बिद्ध होकर मर गया, तब दशग्रीव धैर्य धारण न कर सका। वह व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर वह अपनी निश्चित विजयके लिये उपाय सोचने लगा। उसे अपने सहयोगी अहिरावणकी स्मृति हो आयी पर पातालके राक्षसराज अहिरावणको संदेश कैसे भेजा जाय! लङ्कासे बाहर जानेवाले द्वारोंपर तो शत्रुके सैनिकोंने अधिकार कर रखा था!

'अहिरावण देवी-भक्त है।'—रावणने विचार किया और वह सीधे देवी-मन्दिरमें पहुँचा। वहाँ उसने स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किया और देवीकी पूजामें तल्लीन हो गया। दशाननकी आराधनासे आकृष्ट होकर अहिरावण वहाँ तुरत आ पहुँचा। उसने आदरपूर्वक रावणके चरणोंमें प्रणाम कर उससे पूछा—'आपने मुझे कैसे स्मरण किया?'

'अहिरावण! मैं बड़ी विपत्तिमें उलझ गया हूँ। इस विपत्तिसे मुझे तुम्हीं उबार सकते हो?'—रावणने अहिरावणसे प्रार्थना की।

'क्या हुआ और मुझे क्या करना है, आज्ञा दीजिये।' अहिरावणने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'अयोध्या-नरेश दशरथके दो पुत्र राम और लक्ष्मण वनमें आये थे।' दशाननने बताया—'उन्होंने मेरी बहन शूर्पणखाके नाक-कान काट डाले और खर-दूषणको मार डाला। इसपर क्रुद्ध होकर मैंने उनकी पत्नी सीताका हरण कर लिया। बस, युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें मेरे एक-से-एक वीर योद्धा मार डाले गये। यहाँतक कि कुम्भकर्ण और मेघनाद भी नहीं बचे। अब मैंने असहाय होकर तुम्हारा स्मरण किया है।'

'आपने सीताका हरण कर उचित कार्य नहीं किया।' अहिरावणने मनकी बात स्पष्ट कह दी—'आप वीरतापूर्वक श्रीरामसे युद्ध करते, यह तो शोभाकी बात थी। किंतु उनकी सहधर्मिणीका हरण कर आपने अनीति एवं कार्य किया है। इसका परिणाम तो हम देख ही रहे हैं। बालि-वधमें वे पूर्णतया नहीं सकता, दूसरे खर-दूषण, कुम्भकर्ण और इन्द्रजित्को मारनेवाला सामान्य पुरुष नहीं होगा। किंतु आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ?'

रावणने कहा—'और कुछ नहीं, तुम किसी प्रकार केवल राम और लक्ष्मणको अपनी पुरीमें ले जाओ और वहाँ उनका वध कर डालो फिर ये वानर-भालू तो स्वत ही भाग जायँगे। इसी प्रकार मेरी रक्षा हो सकेगी।'

'आपके संतोषके लिये मैं यही करूँगा।' अहिरावणने राक्षसराज दशग्रीवको आश्वासन दिया—'आकाशमें प्रकाश देखते ही आप समझ लीजियेगा कि मैं निर्विघ्न दोनों भाइयोंको लिये जा रहा हूँ।' राक्षसकुलशिरोमणि रावणके चरणोंमें प्रणाम कर अहिरावण अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये चल पड़ा।

रात्रिका समय था। दिनभरके युद्धसे थकी श्रीरामकी सेना शयन कर रही थी। सर्वसिद्धिमय आञ्जनेयका पहरा था। उन्होंने अपनी पूँछ बढ़ाकर वानर भालुओंकी विशाल वाहिनीको घेरेमें ले लिया था। पूँछकी प्राचीरको पारकर भीतर प्रवेश करना किसीके लिये सहज सम्भव नहीं था। अहिरावण सहम गया। कुछ क्षण सोचकर वह विभीषणका वेष धारण कर भीतर प्रविष्ट होने लगा।

'अरे भाई विभीषण! इतनी राततक बाहर कहाँ रहे?'—हनुमानजीने उससे पूछा। विभीषणका वेष बनाये हुए अहिरावणने तुरत उत्तर दिया—'मैं सध्या-वन्दन करने समुद्र-तटपर चला गया था। वहाँसे लौटनेमें देर हो गयी।'

हनुमानजीके मनमें संशय तो हुआ, पर वे चुप ही रहे। अहिरावणने भीतर जाकर देखा कि सुग्रीव, अङ्गद, मयन्द, द्विविद, नल, नील, जाम्बवान् और विभीषण आदि प्रमुख सेनानायक श्रीराम और लक्ष्मणको अपने मध्य सुलाकर विश्राम कर रहे हैं। दिनभरके युद्धमें थके ये वीर सैनिक आञ्जनेय-जैसे प्रबल प्रहरीके संरक्षणमें सर्वथा निश्चिन्त गाढ़ निद्रामें शयन कर रहे थे।

भगवान् श्रीरामकी दाहिनी ओर उनका चमकता हुआ विशाल धनुष और शर-पूरित तूणीर था और बायीं ओर उनके प्रिय भाई लक्ष्मण थे। लक्ष्मणकी बायीं ओर उनका धनुष

और शोभा था। भगवान् श्रीरामका कर-कमल भाईके वक्ष स्थलपर सुशोभित था।

भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणका चन्द्रविनिन्दक सुन्दर मुख! मुखारविन्दपर बिखरी अलकें!! निद्रालु प्रभुकी भुवनमोहिनी शान्त मुद्रा!!! सुग्रीवादि वानर भालुओंके सौभाग्यका क्या कहना? जिन त्रिभुवनसुन्दर परमप्रभुकी एक झलक अनेक जन्मोंके कठोरतम तपश्चरणसे किसी किसी महर्षि और मुनिपुंगवको ही प्राप्त होती है, उन्हीं करुणासिन्धु दशरथकुमारके साथ वे वानर भालू खाते, पीते, सोते और युद्ध करते हैं, उन्हींके लिये संग्राममें प्राण-त्याग करते हैं!

उन दोनों अनन्त-सौन्दर्य-सुधा सिन्धुको अहिरावणने देखा तो वह देखता ही रह गया। किंतु उसे अपने कर्तव्यका ध्यान था और लीलानायक श्रीराम लक्ष्मणको मानवी-लीला करनी थी। उन्हें असुर भक्तोंका उद्धार करना था। समस्त सैनिकोंके जग जानेकी आशङ्कासे दुष्ट अहिरावणने उन्हें मोहित कर दिया, जिससे श्रीराम और अरण्य-वासमें सदा जागते रहनेवाले सुमित्राकुमार भी जैसे सोते ही रहे। महाशक्तिशाली अहिरावणने उन दोनों भाइयोंको उठाया और वह आकाश मार्गसे तीव्र-गतिसे भागा। सहसा आकाशमें प्रकाश छा गया। रावणकी प्रसन्नताकी सीमा न थी।

अब रावणका क्रोध पवनकुमारपर था, केवल श्रीपवन कुमारपर क्योंकि साधारण-से-साधारण और भयानक-से भयानक परिस्थितियों और कार्योंमें सफलताका श्रेय उन्हें ही प्राप्त होता था। श्रीभगवान्‌की तुच्छ-से-तुच्छ सेवा करनेमें उन्हें झिझक या लज्जाका अनुभव नहीं होता था, अपितु वे प्रभुकी सेवा करना अपना सौभाग्य समझते थे और सेवा करके ही सन्तुष्ट होते थे। रावणके पुत्र अक्ष, अन्यतम पराक्रमी असुर अकम्पन आदिका वध हनुमानजीने ही किया था। हनुमानजीके ही मुष्टि प्रहारसे स्वयं दशानन भी मूर्च्छित हो गया था। इन्होंने सुषेणको ले आकर और सुदूर स्थानसे द्रोणगिरि लाकर संजीवनीके द्वारा लक्ष्मणकी प्राण रक्षा पवन पुत्रने ही की थी। किंतु अब श्रीराम और लक्ष्मणके मारे जानेपर राक्षसी मायासे इन्हें भी समाप्त किया जा सकता है—यह सोचकर दशानन प्रसन्न हुआ और हर्षातिरेकसे मन-ही-मन विजयोत्सव मनानेकी योजना बनाने लगा।

भगवान् श्रीरामके चरण-कमलोंमें सोये हुए सुग्रीव आकाशमें तीव्र प्रकाशके कारण जाग पड़े। उन्होंने अपने स्वामीको नहीं देखा तो चिल्ला उठे—'प्रभु कहाँ गये! उन्हें कौन ले गया!' वानर-सेनामें अद्भुत कोलाहल मच गया। भक्त विभीषण, मयन्द, द्विविद, नल, नील और जाम्बवान् आदि सभी आश्चर्यचकित थे। सबके हृदय काँप रहे थे। सभी चिन्तित और अशान्त हो पवनात्मजका मुँह देख रहे थे। बुद्धिमान् जाम्बवान्‌ने अञ्जनानन्दनसे कहा—'भैया! अब तुम्हीं हमलोगोंके प्राणोंकी रक्षा करो। चाहे जैसे प्रभुको लक्ष्मणसहित ले आओ। हमलोग तो किंकर्तव्यविमूढ हो गये हैं।'

हनुमानजीने कहा—'इस पृथ्वीपर ही नहीं, आकाश और पातालमें कहीं भी प्रभु हों, मैं तुरंत उन्हें ले आऊँगा। प्रभुको लानेके लिये मैं कालका भी तत्काल संहार कर सकता हूँ; किंतु पता तो चले, वे कहाँ हैं!'

'रात्रिमें कोई अपरिचित तो नहीं आया था?' जाम्बवन्तने हनुमानजीसे पूछा।

'ना, रात्रिमें कोई नहीं आया। हाँ, विभीषणजी अवश्य समुद्र-तटसे संध्या करके देरसे लौटे थे।' हनुमानजीका उत्तर सुनकर विभीषणजी अत्यन्त चकित हुए और बोले—'मैं तो सायंकालसे ही प्रभु-चरणोंके समीप था। संध्याके लिये भी कहीं नहीं गया। अवश्य ही किसी मायावी असुरने षड्यन्त्र रचा है।'

कुछ क्षणोंके उपरान्त चिन्तित विभीषणने कहा—'लङ्काके किसी मायावी असुरकी सामर्थ्य नहीं कि वह मेरा वेष धारण कर सके। निश्चय ही यह कुकृत्य अहिरावणने किया है। केवल वही मेरा वेष धारण करनेमें समर्थ है।'

'हनुमानजी!' विभीषणने मारुतात्मजकी ओर देखकर कहा—'असुर वंशका प्रतापी राजा अहिरावण पातालपुरीमें रहता है। राक्षस-वंशका सर्वनाश होता देखकर रावणकी प्रेरणा पाकर निश्चय वह सुमित्राकुमारके साथ प्रभुको उठा ले गया है। आप शीघ्र वहाँ जाइये और उस असुरका वध करके प्रभुको यहाँ ले आइये, अन्यथा हमारा जीवन नहीं रह पायेगा।'

'विभीषणसे पाताल-प्रवेशका मार्ग तथा अहिरावणकी राजधानी, उसके मार्ग, द्वार, राज-सदन आदिकी सभी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर हनुमानजीने कहा—'आपलोग पूर्णतया सजग और सावधान रहिये। प्रभुको प्रभु तथा मैं

अनुपस्थितिकी गन्ध न लगने पाये और असुर सेना तो क्या यदि स्वयं दुष्ट दशानन ही यहाँ युद्ध करने आ जाय तो उसका मुख-मर्दन करके ही रहियेगा।' हनुमानजीने सुग्रीवको प्रणाम किया और वे वायुवेगसे उड़े। उड़ते समय सहज ही उनके मुखसे निकला—'जय श्रीराम'।

पवननन्दनको पातालल्लोक पहुँचते कितनी देर लगती! वे पातालमें प्रविष्ट होकर सीधे अहिरावणके नगरके द्वारपर पहुँच गये। वहाँ ठीक उन्हींके आकार प्रकारका एक महाकाय वानर नगरकी रक्षाके लिये नियुक्त था।

हनुमानजी सूक्ष्म रूप धारण कर द्वारके भीतर प्रवेश करने ही जा रहे थे कि गर्जते हुए वानरने कहा—'तुम कौन हो? सूक्ष्म रूप धारण कर चोरीसे कहाँ जा रहे हो? मेरे यहाँ रहते तुम द्वारके भीतर कदापि प्रवेश नहीं कर सकते। मेरा नाम मकरध्वज है और कान खोलकर सुन लो, मैं परमपराक्रमी वज्राङ्गबली हनुमानका पुत्र हूँ।'

'वज्राङ्गबली हनुमानका पुत्र!' हनुमानजीने चकित होकर पूछा—'अरे! हनुमान तो बालब्रह्मचारी हैं। तुम उनके पुत्र कहाँसे आ गये?'

मकरध्वजने उत्तर दिया—'मेरे पिता जब लङ्का-दहनके अनन्तर समुद्रमें पूँछ बुझाकर स्नान कर रहे थे, तब श्रमके कारण उनके शरीरसे स्वेद झर रहा था। वही स्वेदयुक्त जल एक मछली पी गयी। वह मछली पकड़कर मेरे स्वामी अहिरावणके भोजनागारमें लायी गयी थी। काटते समय उसके उदरसे मेरी उत्पत्ति हुई। अहिरावणने ही मेरा पालन पोषण किया और अब उन्हींके आदेशसे मैं उनके इस वैभवशाली नगरकी रक्षा करनेमें तत्पर रहता हूँ।'

'बेटा! हनुमान तो मैं ही हूँ।' हनुमानजी अपने विशाल रूपमें प्रकट हो गये। मकरध्वजने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

हनुमानजीने उससे पूछा—'बेटा! यह तो बता दो कि अहिरावण मेरे स्वामी श्रीराम और लक्ष्मणको यहाँ ले आया है क्या?'

मकरध्वजने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'नाम तो मुझे विदित नहीं, किंतु आज ही कुछ देर पहले वे कहींसे श्याम-गौर दो अत्यन्त सुन्दर राजकुमारोंको उठाकर ले आये हैं और अभी कुछ ही देरमें उन्हें देवीके सम्मुख बलि चढ़ानेवाले हैं।'

'अच्छा, अब मुझे जाने दो।' हनुमानजीके मुखसे निकलते ही मकरध्वजने उत्तर दिया—'नहीं पिताजी, आप भीतर नहीं जा सकते और जबतक मैं जीवित हूँ, आप मुझे पराजित किये बिना भीतर किसी प्रकार प्रवेश नहीं कर सकेंगे। यदि पिताके नाते मैंने आपको द्वारके भीतर जाने दिया तो मैं धर्मसे च्युत हो जाऊँगा। मैं अपने स्वामीके साथ विश्वासघात कदापि नहीं कर सकता।'

हनुमानजीको प्रभुके समीप पहुँचनेकी त्वरा थी। उन्होंने तुरंत अपने पुत्र मकरध्वजपर मुष्टिका प्रहार किया, पर वह भी वीर पिताका वीर पुत्र था। युद्ध छिड़ गया। जैसा पिता, वैसा ही पुत्र। किसी प्रकार हनुमानजीने उसे पछाड़कर उसीकी पूँछसे उसे कसकर द्वारपर बाँध दिया और स्वयं द्रुत गतिसे भीतर चले गये।

हनुमानजी सूक्ष्म रूपसे देवी मन्दिरमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—चामुण्डाके सम्मुख प्रज्वलित अग्निकुण्डके समीप पाद्य, अर्घ्य, स्नानार्थ जल, रक्त चन्दन, रक्त पुष्प और रक्त पुष्पोंकी माला तथा धूप-दीपादि पूजोपकरण प्रस्तुत हैं। अहिरावण स्नान करके रक्त वस्त्र, रक्त चन्दन एवं रक्त पुष्पोंकी माला धारणकर वहाँ आ गया है। पूजा प्रारम्भ होनेवाली ही है। हनुमानजी सीधे देवीके पीछे चले गये। परमप्रभु श्रीरामके अनन्य सेवक पवनकुमारके स्पर्शसे देवी पातालमें प्रविष्ट हो गयीं और उनके स्थानपर स्वयं श्रीरामदूत देवीके रूपमें भयानक मुख फाड़कर खड़े हो गये।

अहिरावणने पूजा प्रारम्भ की। उसने गन्ध, अक्षत, पुष्प, पुष्पमाला, धूप और दीपके अनन्तर जब पक्वान्न देवीको अर्पण किया, तब हनुमानजीने उसे भक्षण कर लिया। लड्डू, खीर, पूड़ी, हलवा आदि जो भी पदार्थ अहिरावण देवीको अर्पित करता, हनुमानजी सब ग्रहण करते जाते।

'आज देवी अत्यन्त प्रसन्न हैं, तभी तो प्रत्यक्ष प्रकट होकर नैवेद्य स्वीकार कर रही हैं।'—अहिरावण मन ही मन प्रसन्न होकर प्रस्तुत समस्त नैवेद्य चढ़ा चुका और देवीरूपी मारुतात्मजने सबको उदरस्थात् कर लिया। अहिरावणने राज-सदनके सभी पक्वान्न और फलादि मँगवाये, हनुमानजीने उन्हें भी पा लिया।

अन्तमें असुरने श्रीराम और लक्ष्मणको मँगवाया। बलिके लिये ही राक्षसोंने परमप्रभु श्रीराम एवं लक्ष्मणको स्नान कराकर उन्हें मूल्यवान् नवीन वस्त्र और आभूषण धारण

कराये थे । गन्ध, पुष्प, पुष्पमाला तथा धूप-दीपादिसे सविधि उनकी पूजा की थी। इस प्रकार उन्होंने श्रीरघुनाथजी एवं सुमित्राकुमारको सजाकर देवीके सम्मुख उपस्थित किया।

कालके गालमें पड़ा हुआ अहंकारी असुर बोला—'अब कुछ ही देरमें तुम दोनों भाई देवीकी भेंट चढ़ा दिये जाओगे। अपने त्राताका स्मरण कर लो।'

प्रभुको सर्वथा मौन देखकर लक्ष्मणजी अत्यन्त विस्मित थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि 'प्रभु कैसी लीला कर रहे हैं। ये स्वयं न तो असुरका संहार कर रहे हैं और न मुझे ही इसका वध करनेकी आज्ञा प्रदान करते हैं।'

उसी समय श्रीराघवेन्द्रने अपने अनुजसे कहा—'भाई लक्ष्मण! आपत्तिके समय समस्त प्राणी मेरा स्मरण करते हैं, किंतु मेरी आपदाओंका अपहरण करनेवाले तो पवनकुमार ही हैं। अतः हमलोग उन्हींका स्मरण करें।'

'यहाँ पवनपुत्र हनुमान कहाँ!' लक्ष्मणजीके कहते ही भगवान् श्रीरामने उत्तर दिया—'आञ्जनेय कहाँ नहीं हैं! सबके कण-कणमें वे विद्यमान हैं। मुझे तो देवीके रूपमें भी उन्हींके दर्शन हो रहे हैं।'

सुमित्राकुमारने देवीकी ओर दृष्टि उठायी ही थी कि वज्राङ्गबली हनुमानजीने घोर गर्जना की, ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस गर्जनसे आकाश फट जायगा। सम्पूर्ण पाताल-पुरी काँप उठी। राक्षसोंसहित वीर अहिरावणके नेत्र मुँद गये। इतनी ही देरमें हनुमानजीने एक ही झटकेसे अहिरावणके हाथसे तलवार छीन ली और श्रीराम एवं लक्ष्मणको अपने कंधोंपर बैठाकर सभी असुरोंका वध करने।

सहसा कैसे क्या हो गया? असुर चकित हो ही रहा था कि वहाँके आधे राक्षस समाप्त हो गये। भयानकमूर्ति हनुमानजीसे प्राण बचाकर राक्षस भाग जाना चाहते थे, किंतु पवनकुमारने अपनी पूँछ लंबी कर चतुर्दिक् उसका इतना विशाल प्राचीर बना दिया था कि एक भी राक्षस भागकर अपना प्राण नहीं बचा सका। सभी मार डाले गये।

अहिरावणने कुपित होकर अपनी दूसरी तीक्ष्ण तलवारसे हनुमानजीपर आक्रमण किया, किंतु वह [illegible] वज्राङ्गपर लगकर उसकी तलवार टूट गयी। [illegible] क्रुद्ध हनुमानजीने अपने हाथकी तलवारसे [illegible] झटकेसे अहिरावणका मस्तक उतार लिया। रक्तका [illegible] छोड़ता और नाचता हुआ उसका कबन्ध पृथ्वीपर [illegible] मस्तक प्रज्वलित अग्निकुण्डमें गिर पड़ा। इस [illegible] असुरका हवन पूर्ण हुआ।

अहिरावणका सारा परिवार मारा गया। [illegible] चलते समय श्रीरघुनाथजीने अपनी ही पूँछसे [illegible] मकरध्वजका परिचय पाया तो उन्होंने तुरंत हनुमान[illegible] आदेश दिया—'सर्वप्रथम मकरध्वजको पातालका [illegible] प्रदान करो।'

हनुमानजीने मकरध्वजको राजतिलक देकर कहा—'बेटा! तुम धर्मपूर्वक शासन करते हुए सदा-सर्वदा [illegible] स्वामी श्रीसीतारामका स्मरण करते रहना।'

मकरध्वजने भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणके दुर्लभ चरण-कमलोंकी रज माथे चढ़ायी और अपने पिताको प्रण[illegible] कर उन्हें आदरपूर्वक विदा किया। हनुमानजी अपने [illegible] श्रीराम और लक्ष्मणको अपने कंधोंपर बैठाकर तीव्र[illegible] गतिसे लङ्काकी ओर उड़े।

इधर वानर-भालुओंके दुःखका पार नहीं था। [illegible] चिन्तित, दुःखी और अशान्त थे। उनकी व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी कि सबने हनुमानजीका हर्षोन्मु[illegible] स्वर सुना—'जय श्रीराम!'

वानर भालुओंने प्रसन्न होकर देखनेके लिये अपने-अपने नेत्र ऊपर उठाये ही थे कि उसक्षण हनुमानजी श्रीराम लक्ष्मणके साथ उनके मध्य उपस्थित हो गये। वानर-भालू हर्षोन्मादमें गर्जन करने लगे—'भगवान् श्रीरामकी जय! सुमित्रानन्दनकी जय!! पवनपुत्र हनुमानकी जय!!!'

सुग्रीवकी सेनामें प्रसन्नताकी लहरें उमड़ रही थीं और उधर इस जयघोषको सुनकर दुष्ट दशाननका मुख मलिन हो गया।

मातृ-चरणोंमें

दशग्रीवके प्रायः सभी प्रमुख योद्धा समाप्त हो गये। विवशतः दशानन स्वयं युद्ध-भूमिमें आया। वह अद्भुत धीर, वीर एवं प्रबल पराक्रमी था, किंतु उसे भी कपिपुंगव आञ्जनेयकी वीरताकी प्रशंसा करनी पड़ी। रावणने [illegible] युद्ध किया, किंतु श्रीरघुनाथजीके सम्मुख उसकी एक न चली। वह अमित सौन्दर्य-राशि त्रैलोक्य मङ्गलका दर्शन करता

हुआ उन्हींके पावनतम तीक्ष्ण शरकी भेंट चढ़ गया। दशाननका निर्जीव शरीर भू-लुण्ठित होते ही श्रीराम और रावणके युद्धकी पूर्णाहुति हो गयी।

'जय श्रीराम!' आनन्दातिरेकसे वानर भालू उछलने कूदने और परस्पर आलिङ्गन करने लगे। आकाशमें देवगण प्रभुका स्तवन करते हुए उनपर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। आञ्जनेयके भी हर्षकी सीमा नहीं थी। उस समय उनके हर्षाश्रुसे भरे नेत्रोंके सम्मुख निखिल भुवनेश्वरी माता सीताके अरुण अमल चरण-कमल थे।

उस समय भगवान् श्रीरामने विभीषण, हनुमान, अङ्गद, सुग्रीव और जाम्बवान् आदि वीरोंसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'आपलोगोंके बाहु-बलसे आज मैंने रावणको मार दिया। आप सब लोगोंकी पवित्र कीर्ति जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तबतक स्थिर रहेगी और जो लोग मेरेसहित आप सबकी कलि-कल्मष-नाशिनी त्रिलोकपावनी पवित्र कथाका कीर्तन करेंगे, वे परमपदको प्राप्त होंगे।'*

उसी समय मृत रावणको देखकर मन्दोदरी आदि रावणकी पत्नियाँ पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और विलाप करने लगीं। स्वयं विभीषण अपने भाईका शव देखकर शोकसे व्याकुल हो गये। यह देखकर सुमित्रानन्दनने उन्हें संसारकी नश्वरताका वर्णन करते हुए प्रेमपूर्वक समझाया। उनके सदुपदेशसे विभीषणके शोक और मोहका निवारण हो गया। वे लक्ष्मणजीके साथ प्रभुके समीप पहुँचे। प्रभुने विभीषणको दुःखसे व्याकुल होकर विलाप करती हुई मन्दोदरी आदि रानियोंको समझाने और बन्धु-बान्धवोंसहित यथाशीघ्र दशाननका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेकी आज्ञा दी। विभीषणने पिता-तुल्य बड़े भाई रावणका विधिपूर्वक अन्तिम संस्कार कर उसे जलाञ्जलि दी और फिर पृथ्वीपर सिर रखकर प्रणाम किया। इसके अनन्तर उन्होंने मन्दोदरी आदि रानियोंको समझा-बुझाकर राज-सदनमें भेज दिया और स्वयं प्रभुके समीप जाकर विनीत भावसे हाथ जोड़े खड़े हो गये।

भगवान् श्रीरामने विभीषणकी प्रथम भेंटमें ही उन्हें लङ्काधीश बना दिया था, किंतु अब प्रभुके आदेशानुसार लक्ष्मणजीने सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान और जाम्बवान् आदिके सहित लङ्कामें प्रवेश किया और वहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंके द्वारा मन्त्रपाठपूर्वक समुद्रके जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलशोंसे विभीषणका मङ्गलमय अभिषेक किया। विभीषण लङ्काके अधीश्वर हुए, यह देखकर पवनपुत्रके हर्षकी सीमा न रही। सच तो यह है कि विभीषणको इस सुख-सौभाग्यकी प्राप्तिका मुख्य हेतु श्रीहनुमान मिलन ही था। यह अहैतुक दयामय पवन पुत्रकी दयामयी दृष्टिका ही सुफल था।

विभीषण लङ्काके सम्भ्रान्त नागरिकोंके साथ विविध प्रकारके बहुमूल्य उपहार लेकर लक्ष्मणसहित प्रभुके चरणोंमें पहुँचे। उपहार प्रभुके सम्मुख रखकर उसने उन्हें सादर दण्डवत् प्रणाम किया। उसको राज्य-पदपर अभिषिक्त देखकर श्रीरघुनाथजी अत्यन्त प्रसन्न थे।

प्रभुने देखा, उनके सम्मुख पर्वताकार हनुमानजी हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़े हैं। श्रीराघवेन्द्रने उनसे कहा—'पवनकुमार! तुम मिथिलेशकुमारीके स्नेह भाजन हो। तुम महाराज विभीषणकी आज्ञा प्राप्त करके लङ्कामें प्रवेश करो और वहाँ सीताको रावण-वधका समाचार सुना दो। साथ ही वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नल, नील, जाम्बवान्, विभीषण तथा अन्यान्य वीर वानर भालुओंके साथ मेरा और लक्ष्मणका कुशल-समाचार बतला दो।'

'जय श्रीराम!' हनुमानजीने गर्जना की। हर्ष उनके हृदयमें समा नहीं रहा था। जगज्जननी जानकीजीको उन्होंने वचन दिया था और वह वचन रावण-वधके साथ पूरा हो गया, किंतु यह कुशल-समाचार! यह विजय-संदेश!! प्रभुके विरह-वह्निमें जलनेवाली अनुपम सती पत्नी सीताको प्रभुका विजय-संदेश!!! इससे अधिक सुखकी वस्तु और क्या होगी!

विभीषणके आदेशानुसार महावीर हनुमानजीके साथ प्रख्यात वीर असुर चल रहे थे। हनुमानजीका सर्वत्र उल्लासपूर्ण स्वागत एवं सादर अभिनन्दन हो रहा था, किंतु उन प्रभु-भक्तको तो मातृ-चरणोंके दर्शनकी, उन चरणोंमें दण्डकी भाँति लेट जानेकी उत्कट लालसा थी। हनुमानजी अशोकवाटिकामें पहुँचे।

---

* भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया॥
कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ। कीर्तयिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम्॥
मयोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम्। (अ० रा० ६।

माता सीता उसी अशोक-तरुके नीचे राक्षसियोंसे घिरी बैठी थीं, जहाँ पहले पवनतनयने उनका दर्शन किया था। उसके हनुमानजी दौड़े और 'माता!' कहते हुए उनके चरणोंमें लोट गये। हनुमानको देखते ही माता सीताका मुख हर्षसे खिल उठा।

कुछ देर बाद हनुमानजी उठे और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने गद्गद कण्ठसे कहा—'माता! असुरराज रावण मारा गया! विभीषणने लङ्काका राज्य-पद प्राप्त कर लिया और श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, सुग्रीव और वानरसेनासहित सकुशल हैं।'

जीवन-सर्वस्व प्रभुका संदेश कितना सुखद था, इसे वियोगिनी माता जानकी ही जानती हैं। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। हर्षातिरेकके कारण कुछ क्षण तो वे बोल भी नहीं सकीं। फिर उन्होंने कहा—'वत्स हनुमान! इस संदेशके सदृश त्रैलोक्यकी अन्य कोई वस्तु मुझे सुख नहीं दे सकती! इस अवसरपर मैं तुम्हें क्या दूँ, मुझे नहीं सूझ रहा है। तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है, मैं तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकती।'

विनीतात्मा हनुमानजी माताके चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने कहा—'माता! मैं शत्रुके नष्ट होनेपर स्वस्थ चित्तसे विराजमान विजयशाली श्रीरामका दर्शन करता हूँ—यह मेरे लिये नाना प्रकारकी रत्नराशि और देवराज्यसे भी बढ़कर है।* और पुत्र तो मातासे कभी उऋण हो ही नहीं पाता। मैं आपके साथ परमप्रभुके चरणोंकी छायामें पड़ा रहूँ, मुझे आपकी सेवाका सुअवसर प्राप्त होता रहे, बस, मेरी यही लालसा है। मेरी इतनी ही कामना है।'

मारुतात्मजकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत वाणी सुनकर जनकनन्दिनीने प्रसन्न होकर कहा—'वीरवर! तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, माधुर्य-गुणसे भूषित तथा बुद्धिके आठ† अङ्गों (गुणों) से अलंकृत है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो। तुम वायुदेवताके प्रशंसनीय पुत्र तथा परम धर्मात्मा हो। शारीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तम दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य बहुत-से सुन्दर गुण केवल तुममें एक साथ विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है।‡

अनिलात्मजकी प्रशंसा करती हुई माता जानकीने उन्हें दुर्लभतम आशिष दे दी—'हे पुत्र! सुनो, समस्त सद्गुण तुम्हारे हृदयमें बसें और हे हनुमान! लक्ष्मणजीके साथ कोसलपति प्रभु सदा तुमपर प्रसन्न रहें।'§

निखिल भुवनेश्वरी जगदम्बासे शुभाशीर्वाद प्राप्तकर हनुमानजी पुनः मातृ-चरणोंमें गिर पड़े। कुछ क्षणोंके उपरान्त उन्होंने क्रूर दृष्टिवाली विकरालमुखी राक्षसियोंको देखकर निवेदन किया—'माता! इन विकराल, विकट आकारवाली, क्रूर और अत्यन्त दारुण राक्षसियोंने आपको बड़ी पीड़ा पहुँचायी है। इन्हें देखकर मेरा खून खौल रहा है। आप कृपापूर्वक आज्ञा प्रदान करें तो मैं इनके दाँत तोड़ दूँ, इनके नाक-कान काट लूँ और इनके बाल नोचकर घूँसों और लातोंसे मार-मारकर इनका कचूमर निकाल दूँ।'

हनुमानजीकी कठोर वाणी सुनकर सीताजीको निरन्तर त्रास पहुँचानेवाली रावणकी दुष्ट दासियाँ अत्यन्त भयभीत होकर वैदेहीके मुखारविन्दकी ओर देखने लगीं। करुणामयी जनकदुलारीने कहा—'ना, बेटा! ये तो स्वयं रावणके अधीन

* रत्नौघात् विविधात् वापि देवराज्यात् विशिष्यते। हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थिरम्॥
(अ० रा० ६ । ११ । ११)

† शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥
'सुननेकी इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना, ऊहा (तर्क-वितर्क), अपोह (सिद्धान्तका निश्चय), अर्थका ज्ञान तथा तत्त्वको समझना—ये आठ बुद्धिके गुण हैं।

‡ अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम्। बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम्॥
श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं पुत्रः परमधार्मिकः। बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम्॥
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः। एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः॥
(वा० रा० ६ । ११३ । २६-२८)

§ सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत। सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥
(मानस ६ । [illegible])

थीं और उसके आदेशका पालन कर रही थीं। रावणकी मृत्युके बाद तो ये अत्यन्त विनयपूर्वक मुझे प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट करनेका प्रयत्न कर रही हैं। मुझे तो अपने पूर्व-कर्मोंके कारण यह सारा दुःख निश्चितरूपसे भोगना ही था, इसलिये यदि इन राक्षसियोंका कुछ अपराध भी हो तो उसे मैं क्षमा करती हूँ। ये तो दयाकी पात्र हैं।'

'दयामयी जननी!' हनुमानजीने गद्गद कण्ठसे कहा—'ऐसे वचन मेरे परमप्रभु श्रीरामकी सहधर्मिणी ही बोल सकती हैं!' फिर हनुमानजीने निवेदन किया—'माँ! अपनी ओरसे आप मुझे कोई संदेश दें। अब मैं अपने स्वामीके पास जाऊँगा।'

हनुमदीश्वर *

दशग्रीवके परमधाम-गमनके साथ ही लंका विजयका कार्य पूर्ण हो गया। फिर विभीषणके राज्याभिषेकके अनन्तर श्रीरघुनन्दन अपनी सहधर्मिणी सीता, अनुज लक्ष्मण, पवनपुत्र हनुमान, वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, महामतिमान् जाम्बवान् आदि वानर भालुओंके साथ पुष्पक-विमानपर आरूढ हो आकाश-मार्गसे चलकर गन्धमादन पर्वतपर उतरे। वहीं परमसती विदेह-नन्दिनी सीताकी अग्नि-परीक्षाद्वारा शुद्धि की गयी। उस समय महामुनि अगस्त्यजीके साथ दण्डकारण्य निवासी ऋषि-मुनियोंने गद्गद कण्ठसे प्रभुकी स्तुति की।

श्रीराघवेन्द्रने उन तपस्वी मुनियोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर अत्यन्त विनयके साथ निवेदन किया—'तपस्वी ब्राह्मणो! मैं क्षत्रिय हूँ। दुष्टोंका शासन करना मेरा धर्म है। इस कारण मैंने लंकाधिपति रावणका तथा उसके भाइयों और पुत्रोंका ही नहीं, सम्पूर्ण पुलस्त्यकुलका संहार किया है, किंतु वह था तो ब्राह्मणकुलोत्पन्न ही। अतएव ब्राह्मण-वधके पापका प्रायश्चित्त क्या है? आपलोग कृपापूर्वक विचार करके मुझे यह बतानेका कष्ट करें।'

श्रीरघुनन्दनके वचन सुनकर मुनियोंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम! आप यद्यपि स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं, पाप-नामक कोई वस्तु आपका स्पर्श भी नहीं कर सकती, आपने तो उन असुरोंको मुक्ति प्रदान कर उनका परम मङ्गल ही किया है, किंतु मर्यादा पालन और मर्यादा-रक्षा आपका धर्म है। अतएव आप यहाँ लोकसंग्रहकी दृष्टिसे शिव लिङ्गकी स्थापना करें। उस शिव लिङ्गकी असीम महिमा होगी और वह आपके ही नामसे प्रख्यात होगा। उसके दर्शन एवं पूजनसे मनुष्य तो परमपद प्राप्त करेंगे ही, रावण-वधका दोष भी दूर हो जायगा।'

लिङ्ग-स्थापनाका पुण्यमय समय दो ही मुहूर्तमें आनेवाला था। अतएव उसी कालमें प्रतिष्ठा करनेकी दृष्टिसे श्रीराघवेन्द्रने पवनकुमारको शिव लिङ्ग लानेके लिये कैलास पर्वत भेजा।

परम पराक्रमी श्रीराम-भक्त हनुमानकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने अपने आराध्य श्रीसीतारामके चरणोंमें प्रणाम किया और वायुवेगसे उड़ चले। कैलास पहुँचने उन्हें देर न लगी किंतु वहाँ लिङ्गरूपधारी महादेवजीका दर्शन नहीं प्राप्त हुआ, तब ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानने आशुतोष शिवको संतुष्ट कर उनसे शिव लिङ्ग प्राप्त कर लिया और फिर विद्युत् गतिसे लौट पड़े।

इधर हनुमानजीके न पहुँचनेसे स्थापनाका मुहूर्त व्यतीत होते देखकर तत्त्वदर्शी मुनियोंने धर्मपालक श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! पुण्यकाल समाप्त होनेवाला ही है। अतः वैदेहीने लीलापूर्वक जो बालूका शिवलिङ्ग बनाया है, इस समय आप उसीकी स्थापना कर दीजिये।'

मुनियोंका आदेश प्राप्त होते ही भगवान् श्रीरामने अपनी सहधर्मिणी सीता तथा ऋषियोंके साथ मङ्गलाचरण प्रारम्भ किया। उस समय ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी दशमी तिथि और बुधवार दिन था। हस्त नक्षत्रके साथ गर करण, एवं आनन्द और व्यतीपात योग थे। कन्याराशिपर चन्द्रमा तथा वृषराशिपर सूर्य विराजमान थे। ऐसे परम पुण्यमय उपयुक्त दस योगोंकी उपस्थितिमें गन्धमादन पर्वतपर सेतुकी सीमामें भगवान् श्रीरामने लिङ्गरूपधारी पार्वतीवल्लभ भगवान् शिवकी स्थापना की। उस समय उक्त लिङ्गमें स्वयं सतीशिरोमणि पार्वतीसहित शशाङ्क शेखर, कर्पूरगौर आशुतोष शिव प्रकट हो गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीरामको वर प्रदान करते

* सेतुबन्धके अनन्तर भगवान् श्रीरामके द्वारा अमित महिमामय 'रामेश्वर'की स्थापनाका उल्लेख हो चुका है किंतु 'रामेश्वर'की स्थापनाके सम्बन्धमें एक और कथा 'आनन्दरामायण' तथा पुराण ग्रन्थोंमें वर्णित है। प्रस्तुत कथा स्कन्दपुराणके 'ब्राह्मखण्ड' सेतु-माहात्म्य'के आधारपर लिखी गयी है।

हुए कहा—'रघुनन्दन! आपके द्वारा प्रतिष्ठित इस रामेश्वर लिङ्गके दर्शनार्थियोंकी समस्त पाप-राशि क्षणार्धमें ही ध्वस्त हो जायगी।'

भगवान् शंकर अन्तर्धान हुए ही थे कि हनुमानजी कैलास पर्वतसे एक उत्तम शिवलिङ्ग लिये वेगपूर्वक वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ आते ही माता जानकी, परम प्रभु श्रीराम, सौमित्रि और वानरराज सुग्रीवके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, किंतु जब उन्होंने भगवती सीता एवं मुनियोंके साथ श्रीरघुनाथजीको बालुकामय शिवलिङ्गका पूजन करते देखा तो वे अत्यन्त दुःखी हो गये। खिन्नमन उन्होंने श्रीराघवेन्द्रसे कहा—'प्रभो! आपके आदेशानुसार मैं वायुवेगसे कैलास पर्वतपर गया। वहाँ भगवान् शंकरका दर्शन न मिलनेसे उन्हें प्रसन्न करनेके लिये मैंने तपस्या प्रारम्भ की। फिर महादेवजीकी कृपासे यह उत्तम लिङ्ग लेकर मैं द्रुतगतिसे आ ही रहा था कि आपने यहाँ बालूका लिङ्ग स्थापित कर लिया। अब मैं इस शिव-लिङ्गका क्या करूँ?'

अपने अनन्य भक्त पवनपुत्र हनुमानको उदास देखकर प्रभुने उन्हें अत्यन्त स्नेहपूर्वक समझाया—'कपीश्वर! तुम शोक मत करो। तुम्हारी अनुपस्थितिमें शिव-लिङ्गकी स्थापनाका पुण्यकाल व्यतीत हो रहा था, इस कारण मैंने इस सीता-निर्मित बालुका-लिङ्गकी स्थापना कर दी। तुम गम्भीरतापूर्वक विचार करोगे तो प्रत्यक्ष देखोगे कि तुम्हारा किया हुआ प्रत्येक कर्म मेरा किया हुआ है और मेरा किया हुआ प्रत्येक कर्म तुम्हारा। मैंने जो यह शिव-लिङ्गकी स्थापना की है, वह तुमने ही की है, तुम यही समझो।

प्राणश्रेष्ठ! आज शुभ दिन है, अतः इसी समय अपना कैलाससे लाया हुआ श्रेष्ठ शिवलिङ्ग यहीं तुम्हीं स्थापित करो। 'हनुमदीश्वर'—तुम्हारे ही नामसे यह लिङ्ग त्रिलोकीमें प्रख्यात होगा। पहले हनुमदीश्वरका दर्शन करके तब रामेश्वरका दर्शन होगा।'

भगवान् श्रीरामने प्राणप्रिय हनुमानजीको समझाते हुए आगे कहा—'निष्पाप हनुमान! तुमने मेरी सेनाकी दृष्टिसे असंख्य राक्षस योद्धाओंका वध किया है, तुम्हारी दृष्टि उन्हें श्रीभगवद्धाम भेजनेकी थी। तुम तो स्वयं परम पावन हो, ब्रह्महत्या तक तो तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर सकती, किंतु लोकशिक्षार्थ इस लिङ्गकी स्थापनासे तुम सब पापसे मुक्त हो जाओगे।'

भगवान् श्रीरामकी गहनतम आत्मीयता एवं स्नेहसे प्रभावित पवनानन्दन श्रीरघुनाथजीके सर्वसमर्थ चरण-कमलोंमें दण्डकी भाँति लेट गये और फिर खड़े होकर हाथ जोड़े गद्‌गद कण्ठसे स्तवन करने लगे—

'नमो रामाय हरये विष्णवे प्रभविष्णवे।
आदिदेवाय देवाय पुराणाय गदाभृते॥
विष्टरे पुष्पके नित्यं निविष्टाय महात्मने।
प्रहृष्टवानरानीकजुष्टपादाम्बुजाय ते॥
निष्पिष्टराक्षसेन्द्राय जगदिष्टविधायिने।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रचरणाय च॥
सहस्राक्षाय शुद्धाय राघवाय च विष्णवे।
भक्तार्तिहारिणे तुभ्यं सीतायाः पतये नमः॥
हरये नारसिंहाय दैत्यराजविदारिणे।
नमस्तुभ्यं वराहाय दंष्ट्रोद्धृतवसुंधर॥
त्रिविक्रमाय भवते बलियज्ञविभेदिने।
नमो वामनरूपाय नमो मन्दरधारिणे॥
नमस्ते मत्स्यरूपाय त्रयीपालनकारिणे।
नमः परशुरामाय क्षत्रियान्तकराय ते॥
नमस्ते राक्षसघ्नाय नमो राघवरूपिणे।
महादेवमहाभीममहाकोदण्डभेदिने॥
क्षत्रियान्तकरक्रूरभार्गवत्रासकारिणे।
नमोऽस्त्वहल्यासंतापहारिणे चापहारिणे॥
नागायुतबलोपेतताटकादेहहारिणे।
शिलाकठिनविस्तारवालिवक्षोविभेदिने॥
नमो मायामृगोन्माथकारिणेऽज्ञानहारिणे।
दशस्यन्दनदुःखाब्धिशोषागस्त्यस्वरूपिणे॥
अनेकोर्मिसमाधूतसमुद्रमदहारिणे।
मैथिलीमानसाम्भोजभानवे लोकसाक्षिणे॥
राजेन्द्राय नमस्तुभ्यं जानकीपतये हरे।
तारकब्रह्मणे तुभ्यं नमो राजीवलोचन॥
रामाय रामचन्द्राय वरेण्याय सुखात्मने।
विश्वामित्रप्रियायेदं नमः खरविदारिणे॥
प्रसीद देवदेवेश भक्तानामभयप्रद।
रक्ष मां करुणासिन्धो रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥
रक्ष मां वेदवचसामप्यगोचर राघव।
पाहि मां कृपया राम शरणं त्वामुपैम्यहम्॥
रघुवीर महामोहमपाकुरु ममाधुना।
स्नाने चाचमने भुक्तौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु॥

सर्वावस्थासु सर्वत्र पाहि मां रघुनन्दन।
महिमानं तव स्तोतुं कः समर्थो जगत्त्रये॥
त्वमेव त्वन्महत्त्वं वै जानासि रघुनन्दन।

(स्क० पु०, ना० से मा० ४६। ११-४९)

'सबकी उत्पत्तिके आदि कारण, सर्वव्यापी, श्रीहरिस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आदिदेव, पुराणपुरुष, भगवान् गदाधरको नमस्कार है। पुष्पकके आसनपर नित्य विराजमान रहनेवाले महात्मा श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। प्रभो! हर्षमें भरे हुए वानरोंका समुदाय आपके युगल चरणार विन्दोंकी सेवा करता है, आपको नमस्कार है। राक्षसराज रावणको पीस डालनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्‌का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं, आप विशुद्ध विष्णुस्वरूप राघवेन्द्रको नमस्कार है। आप भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा सीताके प्राणवल्लभ हैं। आपको नमस्कार है। दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले आप नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वराह! आपको नमस्कार है। बलिके यज्ञको भङ्ग करनेवाले आप भगवान् त्रिविक्रमको नमस्कार है। वामनरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। अपनी पीठपर महान् मन्दराचल धारण करनेवाले भगवान् कच्छपको नमस्कार है। तीनों वेदोंकी सुरक्षा करनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुरामरूपी रामको नमस्कार है। राक्षसोंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। राघवेन्द्रका रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। महादेवजीके महान् भयंकर महाधनुषको भङ्ग करनेवाले आपको नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले क्रूर परशुरामको भी शाप देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप अहिल्याका उद्धार और महादेवजीका चाप हरनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली ताड़काके शरीरका अन्त करनेवाले आपको नमस्कार है। पत्थरके समान कठोर और चौड़ी वालीकी छाती छेद डालनेवाले आपको नमस्कार है। आप मायामय मृगका नाश करनेवाले तथा अज्ञानको दूर हटानेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दशरथजीके दुःखरूपी समुद्रको सोख लेनेके लिये आप मूर्तिमान् अगस्त्य हैं, आपको नमस्कार है। अनन्त उत्ताल तरंगोंसे उद्वेलित समुद्रका भी दर्प-दलन करनेवाले आपको नमस्कार है। मिथिलेशनन्दिनी सीताके हृदयकमलको विकसित करनेवाले सूर्यरूप आप लोकसाक्षी श्रीहरिको नमस्कार है। हरे! आप राजाओंके भी राजा और जानकीके प्राणवल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। कमलनयन! आप ही तारक ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आप ही योगियोंके मनको रमानेवाले 'राम' हैं। राम होते हुए चन्द्रमाके समान आह्लाद प्रदान करनेके कारण 'रामचन्द्र' हैं, सबसे श्रेष्ठ और सुखस्वरूप हैं। आप विश्वामित्रजीके प्रिय हैं, खर नामक राक्षसका हृदय विदीर्ण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंको अभयदान देनेवाले देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये! करुणासिन्धु श्रीरामचन्द्र! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा कीजिये। मन-वाणीके भी अगोचर राघवेन्द्र! मेरी रक्षा कीजिये। श्रीराम! कृपा करके मुझे उबारिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। रघुवीर! मेरे महान् मोहको इस समय दूर कीजिये। रघुनन्दन! स्नान, आचमन, भोजन, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सभी क्रियाओं और सभी अवस्थाओंमें आप मेरी रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो आपकी महिमाका वर्णन या स्तवन करनेमें समर्थ हो सकता है। रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम! आप ही अपनी महिमाको जानते हैं।'

करुणामूर्ति श्रीरघुनाथजीकी इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर अञ्जनानन्दन भक्तिपूर्ण हृदयसे जगज्जननी श्री जानकीजीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—

'जानकि त्वां नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्॥
दारिद्र्यरणसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम्।
विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम्॥
भूमेर्दुहितरं विद्यां नमामि प्रकृतिं शिवाम्।
पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रीं भक्ताभीष्टां सरस्वतीम्॥
पतिव्रताधुरीणां त्वां नमामि जनकात्मजाम्।
अनुग्रहपरामृद्धिमनघां हरिवल्लभाम्॥
आत्मविद्यां त्रयीरूपामुमारूपां नमाम्यहम्।
प्रसादाभिमुखीं लक्ष्मीं क्षीराब्धितनयां शुभाम्॥
नमामि चन्द्रभगिनीं सीतां सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
नमामि धर्मनिलयां करुणां वेदमातरम्॥
पद्मालयां पद्महस्तां विष्णुवक्षःस्थलालयाम्।
नमामि चन्द्रनिलयां सीतां चन्द्रनिभाननाम्॥

लिङ्गको पूँछमें लपेटकर उखाड़ दो तो मैं तुम्हारे काशीसे लाये हुए इस शिव लिङ्गको स्थापित कर दूँ ।'

हनुमानजीने उक्त बालूके लिङ्गके ऊपरी भागमें पूँछ लपेटकर उसे जोरसे हिलाया । अनेक बार हिलानेपर भी जब वह टस-से-मस नहीं हुआ, तब महावीर हनुमानने अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे खींचा । भगवान् श्रीरामके स्पर्शसे उक्त प्रतिष्ठित शिव-लिङ्ग वज्र-तुल्य हो गया था । महावीरकी अमित शक्तिसे वह बालूका लिङ्ग तो टस-से-मस नहीं हो सका, किंतु हनुमानजीकी पूँछ टूट गयी और वे दूर पृथ्वीपर मुँहके बल गिरकर मूर्च्छित हो गये । यह दृश्य देखकर वहाँ समस्त वानर भालू-हँस पड़े ।

कुछ क्षणोपरान्त मूर्च्छा दूर हुई, पर साथ ही श्रीराम भक्त हनुमानका गर्व भी नष्ट हो गया । उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक प्रभुकी स्तुति करते हुए कहा—'कृपासिंधु श्रीराम ! मेरे द्वारा जो अपराध हुआ हो, उसे आप क्षमा करें ।' *

दयामय श्रीरामचन्द्रजीने पवननन्दनसे कहा—'हनुमान ! तुम मेरेद्वारा स्थापित रामेश्वर शिव लिङ्गसे उत्तरकी ओर इस विश्वनाथ-नामक लिङ्गको स्थापित कर दो ।' फिर भगवान् श्रीरामने हनुमानजीके द्वारा स्थापित शिव लिङ्गको वरदान देते हुए कहा—'हनुमान ! तुम्हारेद्वारा स्थापित विश्वनाथ नामक उत्तम लिङ्गकी पूजा किये बिना जो मनुष्य सेतुबन्ध रामेश्वरकी पूजा करेंगे, उनकी पूजा व्यर्थ हो जायगी ।'†

इसके अनन्तर प्रभुने पवनकुमारसे आगे कहा—'मेरे लिये लाया हुआ विश्वनाथ शिव लिङ्ग यहीं चुपचाप पड़ा रहने दो । यह लिङ्ग दीर्घकालतक पृथ्वीपर अपूजित ही रहेगा । भविष्यमें मैं स्वयं इसकी स्थापना करूँगा । तुम्हारी पूँछ यहीं छिन्न हुई है, अतएव तुम यहीं धरतीपर छिन्नपुच्छ तथा गुप्तपाद होकर अपने गवका स्मरण करते रहना ।'

फिर दयामूर्ति श्रीरघुनाथजीने अपने करकमलोंसे हनुमानजीकी पूँछका स्पर्श करके उसे पूर्ववत् सुदृढ एवं सुन्दर बना दिया ।

हनुमानजीने प्रभुकी लीलासे शिक्षा ग्रहण की । अब सर्वथा गर्वरहित हनुमानजीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही । उन्होंने सीतापति श्रीरामके आदेशानुसार श्रीरामेश्वर लिङ्गसे उत्तर अपना विश्वनाथ-लिङ्ग स्थापित कर दिया ।

माताका दूध

भगवान् श्रीराम अपने प्राणप्रिय भाई भरतसे मिलनेके लिये अधीर हो रहे थे, इस कारण राक्षसराज विभीषणने रत्नादि उपहारोंके साथ उनकी सेवामें कुबेरका इच्छानुसार चलनेवाला, दिव्य एवं उत्तम पुष्पक विमान उपस्थित कर दिया । उक्त सूर्य-तुल्य तेजस्वी विमानपर श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे विभीषण, हनुमान एवं समस्त वानर भालुओंके साथ सुग्रीव और युवराज अङ्गद भी चढ़ गये । फिर भगवान् श्रीरामकी प्रेरणासे वह पुष्पक विमान आकाश-मार्गसे तीव्र गतिसे उड़ चला । भगवान् श्रीराम अपनी प्राणप्रियाको त्रिकूट पर्वतपर बसी विशाल लङ्का, मेघनाद, कुम्भकर्ण एवं रावण आदिके वधस्थल, सेतुबन्ध, शिव-स्थापना आदिको दिखाते तथा अपनी लीलाका विवरण सुनाते जा रहे थे कि वह अद्भुत विमान किष्किन्धाके ऊपर जा पहुँचा । श्रीरघुनाथजीने उसे वहाँ उतरनेकी आज्ञा दी ।

विमानके किष्किन्धामें उतरते ही वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे उनकी तारा आदि सुन्दरी स्त्रियाँ वैदेहीके समीप पहुँच गयीं । माता सीताके इच्छानुसार सुग्रीवकी रानियाँ भी प्रभुके राज्याभिषेकका उत्सव देखने चलीं । उस समय पवननन्दन हाथ जोड़ टकटकी लगाये प्रभुके मुखारविन्दकी ओर ऐसे देख रहे थे, जैसे वे कुछ कहना चाहते हों । भक्तवत्सल प्रभुने उनकी ओर देखते ही तुरंत पूछा । तब हनुमानजीने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—'प्रभो ! माताजीके दर्शन हुए अधिक दिन बीत गये । यदि आज्ञा हो तो मैं उनके चरणोंका स्पर्श कर आऊँ ।'

श्रीरघुनाथजीने हर्षोल्लासपूर्वक हँसते हुए कहा—'और हमलोग माताजीके दर्शनसे वञ्चित ही रहेंगे क्या ?'

---

* मयापराधितं राम तत्क्षमस्व कृपानिधे । (आ० रा० सा० १० । ...)

† असम्पूज्य विश्वनाथं मारुतेः त्वत्प्रतिष्ठितम् ॥

ममादौ पूजयन्त्यत्र ये नरा लिङ्गमुत्तमम् । रामचराभिधं तेषां तेषां पूजा वृथा भवेत् ॥

प्रभुकी आज्ञासे विमान अयोध्यापुरसे उठकर काञ्चन गिरिके लिये उड़ चला। विमानके उतरते ही हनुमानजीके साथ स्वयं जगज्जननी जानकी और परमप्रभु श्रीराम सबके साथ उतर पड़े। हनुमानजीके साथ निखिल भुवनपति श्रीराम एवं जगद्धात्री सीताके सहित सौमित्रि तथा वानर भालुओंका विशाल समुदाय और वानर-पत्नियोंके साथ विभीषणकी पत्नियाँ हनुमानजीकी जननी अञ्जनाके दर्शनार्थ चलीं।

माताका दर्शन होते ही हनुमानजी दौड़कर अबोध शिशुकी भाँति उनके चरणोंमें गिर पड़े। उनका कण्ठ अवरुद्ध-सा हो गया था। नेत्रोंसे आँसू बह चले। उन्होंने बड़ी कठिनाईसे कहा—'माँ!'

'माँ'—माता अञ्जनाको उनका लाल—उनका प्राणधन कितने दिनों बाद मिला था। वे सजल नेत्रोंसे हनुमानजीके सिरपर अपना हाथ फेरने लगीं। पुत्रको आशीर्वाद तो उनका रोम-रोम दे रहा था।

उसी समय वहाँ श्रीसीता और लक्ष्मणसहित प्रभु भी पहुँच गये। 'माँ! ये मेरे प्राणनाथ प्रभु और ये माता जानकी तथा ये सौमित्रि हैं।'—हनुमानजीने उनका परिचय दिया।

अञ्जनाके पुत्र-सौभाग्यका क्या कहना! स्वयं परमप्रभु चलकर उनके द्वारपर पधारे। देवी अञ्जना उनके चरणोंमें गिरने ही जा रही थीं कि श्रीरघुनाथजीने अपने पिताका नाम लेते हुए उनके चरणोंका स्पर्श कर उन्हें प्रेमपूर्वक बैठाया। भगवती सीता और लक्ष्मणने भी उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर सुग्रीव, युवराज अङ्गद, राक्षसराज विभीषण—असंख्य वानर भालू, सुग्रीव एवं विभीषणकी पत्नियों—सबने एक साथ पृथ्वीपर मस्तक रखकर हनुमानजीकी माता अञ्जनाको अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

माता अञ्जना अपने भाग्यपर गर्व कर रही थीं। निखिल सृष्टिके स्वामी एवं उद्भवस्थितिसंहारकारिणी जगदम्बाको मेरा लाल हनुमान मेरे द्वारपर ले आया। उन्होंने मुझे सम्मान दिया, यह सौभाग्य देवताओं एवं लाखों महर्षियोंको भी कहाँ प्राप्त होता है! उन्होंने बड़े ही प्यारसे प्रभुके, उनके मुखारविन्दको, उनके कर कमलोंको एवं अरुण कमल-सदृश मङ्गलमय चरणोंको सहलाया। माता जानकीको हृदयसे लगाया और उनकी ओर देखती हुई माता अञ्जनाने कहा—'मैं जननी हूँ, मैं ही यथार्थ पुत्रवती हूँ। मेरे पुत्र हनुमान्ने आपके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है, इसीके कारण जगदाधार स्वामीने स्वयं मेरे घरों पधारकर अपना दुर्लभतम दर्शन प्रदान करनेकी कृपा की है। उन्होंने भी मुझे 'माँ' कहा है। अब मैं केवल हनुमानकी ही नहीं, इन प्रभु श्रीरामकी, ऐसे लक्ष्मणलालकी और इन असंख्य परम पराक्रमी वानर भालुओंकी माता हूँ।'

फिर उन्होंने हनुमानजीसे कहा—'बेटा! कहते हैं पुत्र मातासे कभी उऋण नहीं हो पाता, किंतु तू मुझसे उऋण हो गया। तूने अपना जीवन और जन्म सफल कर ही लिया, तेरे कारण मेरे भाग्यपर बड़े-बड़े मुनिपुङ्गवोंको भी ईर्ष्या हो सकती है।'

हनुमानजीने माता अञ्जनाके चरण छूते हुए कहा—'माँ! इन करुणामूर्ति माता सीताको रावण हर ले गया था। इन करुणानिधानकी आज्ञा एवं इन्हींकी कृपाशक्तिसे मैंने समुद्र-पार जाकर लङ्कामें माताजीका पता लगाया। फिर प्रभुने समुद्रपर पुल बँधवाया और लंकामें राक्षसोंके साथ भयानक संग्राम किया। मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण-जैसे प्रख्यात दुर्जय वीरोंका प्रभुने वध किया और फिर विभीषणजीको लङ्काके राज्यपदपर अभिषिक्त कर माता जानकीके साथ अयोध्या पधार रहे हैं।'

हनुमानजीके वचन सुनते ही माता अञ्जनाने कुपित होकर उन्हें अपनी गोदसे ढकेल दिया। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—'तूने व्यर्थ ही मेरी कोखसे जन्म लिया। मैंने तुझे व्यर्थ ही अपना दूध पिलाया।'

परम प्रभु श्रीरघुनाथजीके साथ निस्तब्ध-से सौमित्रि, समस्त वानर भालू, विभीषण, वानरराज सुग्रीव एवं विभीषणकी पत्नियाँ तथा स्वयं पवनानन्दन चकित थे कि अभी-अभी माताजीको क्या हो गया! वे सहसा क्रुद्ध क्यों हो गयीं! हनुमानजी हाथ जोड़ चुपचाप खड़े थे और टकटकी लगाये देख रहे थे और अञ्जना देवी उन्हें डाँटती हुई कह रही थीं—'तुझ और तेरे बल पराक्रमको धिक्कार है! क्या तुझमें इतनी शक्ति नहीं थी कि तू लंकामें प्रवेश करनेपर त्रिकूट पर्वतको उखाड़कर समूची लंकाको समुद्रमें डुबा देता! तू दुरात्मा

उसके सैनिकोंसहित नहीं मार सकता था और यदि तू उन्हें मारनेमें समर्थ नहीं था तो उनसे युद्ध करता हुआ स्वयं मर जाता, किंतु तेरे जीवित रहते परम प्रभुको सेतु-बन्धन एवं राक्षसोंसे युद्ध करनेका कष्ट उठाना पड़ा। तुझे मेरा दूध पिलाना व्यर्थ हुआ। तूने मेरे दूधको लज्जित कर दिया। धिक्कार है तुझे! अब तू मुझे अपना मुँह मत दिखाना।'

माता अञ्जना क्रोधसे काँप रही थीं। हाथ जोड़े हनुमानजीने कहा—'माँ! मैंने तेरे दूधको कभी लज्जित नहीं किया है और न भविष्यमें तेरे महिमामय दूधको कभी आँच ही आयगी। यदि मैं स्वतन्त्र होता तो लंका क्या, इच्छा होनेपर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको क्षणार्द्धमें पीसकर रख देता। राक्षसोंको तो मच्छरोंकी तरह मसलकर मार डालता और उसी समय माता जानकीको प्रभुके श्रीचरणोंमें पहुँचा देता, किंतु जगज्जननी जानकीका पता लगानेके लिये समुद्रके पार जाते समय मेरे नायक जाम्बवन्तजीने मुझे आदेश दिया था कि 'तुम केवल माता सीताको देखकर उनका कुशल-समाचार लेकर लौट आना'।'

हनुमानजीने महामतिमान् जाम्बवन्तजीकी ओर देखकर कहा—'माँ! तुम इनसे पूछ लो। मैं यदि इनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर देता तो स्वामीकी परमपवित्र लीला एवं कीर्तिमें व्यवधान पड़ता। मैं तो अपने प्रभुकी सेवाके लिये केवल उनकी आज्ञाका पालन करना ही अपना प्रमुख कर्तव्य मानता हूँ।'

जाम्बवान्‌ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—'माताजी! हनुमानजी सत्य कह रहे हैं, आपके दुग्धके प्रतापसे इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, किंतु ये मनमानी करते तो प्रभुके यशका विस्तार कैसे हो पाता!'

श्रीरघुनाथजीने भी जाम्बवान्‌के वचनका अनुमोदन किया, तब माता अञ्जनाका क्रोध निवारण हुआ। उन्होंने शान्त होकर कहा—'अरे बेटा! यह सब मैं नहीं जानती थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि मैंने जिस हनुमानको अपना दुग्ध पिलाकर पाला है, वह इतना कायर कैसे हो गया कि उसके रहते जगदाधार स्वामीको कष्ट उठाना पड़ा।'

माता अञ्जनाके द्वारा बार-बार अपने दुग्धकी प्रशंसामें सौमित्रि अतिशयोक्ति समझ रहे थे। माता अञ्जनाने उनके मुखारविन्दको देखकर अनुमान कर लिया कि 'लखनलालको मेरी बातोंपर संदेह हो रहा है।' उन्होंने कहा—'लखनलाल! आप समझ रहे हैं कि यह बुढ़िया बार-बार अपने दुग्धका क्या गुणगान कर रही है! पर मेरा दूध असाधारण है। आप स्वयं देख लीजिये।'

माता अञ्जनाने अपने स्तनको दबाकर दुग्धकी धार समीपस्थ पर्वत शिखरपर छोड़ी। फिर तो जैसे वज्रपात हो गया। भयानक शब्दके साथ वह पर्वत फटकर दो भागोंमें विभक्त हो गया।

'माता अञ्जनाकी जय!' समस्त वानर भालुओंने चकित होकर गर्जना की।

माता अञ्जनाने कहा—'लखनलाल! मेरा यही दूध हनुमानने पिया है। मेरा दूध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।'

प्रसन्नमन श्रीरघुनाथजी हाथ जोड़कर माता अञ्जनासे चलनेकी आज्ञा माँगने लगे, तब उन्होंने कहा—'प्रभो! आपने दर्शन देकर मुझे तो सर्वस्व दे दिया है, फिर भी मेरी एक प्रार्थना है कि आप मेरे हनुमानको अपना बनाकर इसे सदा अपने चरणोंकी छत्रच्छायामें रखियेगा।'

हनुमानजीने माताके चरणोंपर सिर रखा तो उन्हें आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा—'बेटा! तू सदा निष्कपट भावसे अत्यन्त श्रद्धा भक्तिपूर्वक परम प्रभु श्रीराम एवं जगज्जननी जानकीकी सेवा करते रहना।'

'माता अञ्जनाकी जय!' प्रभुके साथ सब लोग पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए और विमान तीव्रतम गतिसे अयोध्याके लिये उड़ चला।

सुखद संदेश

आकाशमें तीव्रतम गतिसे उड़ता हुआ पुष्पक विमान तीर्थराज प्रयागके ऊपर पहुँचा। भगवती सीताने प्रभुके इच्छानुसार त्रिवेणीके पवित्र चरणोंमें प्रणाम किया। यहाँसे अयोध्याके दर्शन कर तो श्रीरघुनन्दन भाव विभोर हो गये। उन्होंने सीतासहित पतितपावन अयोध्यापुरीको प्रणाम किया। तदनन्तर प्रभुके इच्छानुसार पुष्पक त्रिवेणी-तटपर उतर पड़ा।

वहाँ प्रभुने जनकदुलारी सीता और लक्ष्मण तथा समस्त वानर भालुओंके साथ अत्यन्त प्रसन्न होकर स्नान

किया और ब्राह्मणोंको पुष्कल दान देकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया।

तदनन्तर भक्तवत्सल प्रभुने पवननन्दनको बुलाकर कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम शीघ्र ही अयोध्या जाकर वहाँका कुशल-समाचार ले आओ। शृङ्गवेरपुरमें जाकर वनवासी निषादराज गुहसे भी मिलकर उसे मेरे सकुशल लौटनेका संवाद सुना देना। वह मेरा मित्र है। वनसे मेरे कुशलपूर्वक लौटनेके समाचारसे उसे बड़ी प्रसन्नता होगी। उससे तुम्हें भाई भरतका भी समाचार मिल जायगा। भाई भरतके पास जाकर उनके आरोग्य आदिका समाचार पूछकर वैदेही और लक्ष्मणके सहित मेरे कुशलपूर्वक लौटनेका समाचार उन्हें सुना देना। उनकी मुख-मुद्रा और चेष्टाओंका भी ध्यान रखना। यदि किसी प्रकार उनके मनमें राज्य-सुखकी तनिक भी कामना लक्षित हो तो वे निश्चिन्ततापूर्वक भूमण्डलका राज्य करें। ऐसी स्थितिमें मैं कहीं अन्यत्र रहकर तपोमय जीवन व्यतीत करूँगा। प्रत्येक रीतिसे मुझे भरतका ही सुख अभीष्ट है। उनसे मिलकर तुम यथाशीघ्र लौट आओ।'

'जय श्रीराम!' हनुमानजीने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और ब्राह्मणका रूप धारणकर आकाशमार्गसे गरुड़ वेगसे चल पड़े। शृङ्गवेरपुर पहुँचकर हनुमानजीने निषादराज गुहसे प्रभुका समाचार सुनाया तो उनके हर्षकी सीमा न रही। वे हर्षोल्लासपूर्वक श्रीरघुनाथजीके स्वागतकी तैयारीमें जुट गये और हनुमानजी अयोध्याके लिये चल पड़े। मार्गमें परशुरामतीर्थ, बालुकिनी नदी, वरूथी, गोमती और भयानक शालवनको देखते हुए पवनकुमारने अयोध्यासे एक कोसकी दूरीपर भरतजीके आश्रमको देखा।

श्रीभरतजीकी अत्यन्त करुण स्थिति थी। परम प्रभु श्रीरामके वियोगमें उन्होंने राज्य-सुखको तिलाञ्जलि दे दी थी। भगवान् श्रीराम अपनी प्रिया सीता और अनुज लक्ष्मणसहित अयोध्या त्यागकर वनमें क्या गये, भरतका तन, मन, प्राण और सारा सुख उनके साथ चला गया। वनवासी श्रीरामकी भाँति श्रीराम-चरणानुरागी भरतजी अयोध्यामें ही कठोर तपश्चरण कर रहे थे। वे अयोध्यासे एक कोस दूर नन्दिग्राममें एक पर्णकुटीमें निवास करते थे। वे शरीरमें मैल रमाये, तन पर जटा और कृष्ण-मृग चर्म धारण करते थे। उनकी जटाएँ बढ़ गयी थीं। वे फल-मूलका भोजन करके प्रभुकी चरण-पादुकाओंकी पूजा करते हुए उन्हींके सम्मुख बैठकर पृथ्वीका शासन करते। उनके पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी गेरुआ वेष रखते और गेरुए वस्त्र पहनते थे।

भगवान् श्रीरामके अनन्य प्रेमी भरतजीका प्रतिक्षण समय अपने प्रभु अग्रजके स्मरण-चिन्तनमें ही व्यतीत होता। श्रीसीतारामके वियोगमें वे प्रायः रोते रहते। कठोर तपःपूर्ण जीवन व्यतीत करनेसे निरन्तर उनका शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था। उन्होंने पूरे चौदह वर्षोंके अरण्य-वासकी अवधिको एक-एक दिन गिनकर व्यतीत किया था, प्रभुके आनेमें अब केवल एक दिन और शेष रह गया था। इस कारण भरतजी अत्यधिक अधीर हो गये थे। उनका एक-एक क्षण युग-तुल्य हो गया था।

उन्होंने अयोध्यासे शृङ्गवेरपुरतक पथमें प्रहरियोंको नियत करवा दिया था, जो गङ्गा-तटतक प्रभुके पधारते ही तुरंत अवधमें सूचना पहुँचा दें। इस कारण तनिक पत्ता भी खटकता तो भरतजी उत्सुक होकर कान लगा देते, पर कहींसे प्रभुके पधारनेकी कोई सूचना नहीं प्राप्त हो रही थी। अतएव वे मन-ही-मन व्याकुल हो रहे थे।

यद्यपि भरतजीकी दाहिनी भुजा और दाहिनी आँख बार-बार फड़ककर शुभकी सूचना दे रही थी, किंतु श्रीसीतारामके दर्शनके लिये आतुर उनके दुःखकी सीमा नहीं थी। वे सोचते थे—'अबतक मेरे प्राणाराम प्रभुके आगमनकी सूचना क्यों नहीं आयी? क्या प्रभुने मेरी दुष्टताके कारण अयोध्या आनेका विचार तो नहीं त्याग दिया? वस्तुतः मैं बड़ा पापी हूँ, जो मैंने प्रभुके कल्याणकारी पावन चरणोंसे दूर रहकर अपनेको स्वीकृति दे दी। निश्चय ही मैं पापात्मा हूँ, अन्यथा मेरे प्राण तो उसी समय छूट जाने चाहिये थे। अहा! भाई लक्ष्मण कितने भाग्यवान् हैं, जिन्होंने अपनी सद्बुद्धिसे, अपने माता-पिता और सम्पूर्ण राज्य-सुखको छोड़कर प्रभुके चरणोंमें अपना जीवन समर्पित कर दिया। मेरे मनमें कपट था, मेरी कुटिलता पहचानकर ही प्रभु मुझे अपने साथ नहीं ले गये। पर वे तो कौतुक करुणामय हैं। प्रणिमात्रके परम सुहृद् वे दयानिधान

यदि मेरे कर्मोंकी ओर दृष्टिपात करेंगे तब तो सौ करोड़ कल्पोंतक भी मेरा उद्धार नहीं हो सकेगा । पर मेरे प्रभु श्रीरामका स्वभाव अत्यन्त कोमल है । वे दीनों और अनाथोंपर सदा ही दयादृष्टि रखते हैं । इस कारण वे अपने भक्तोंकी त्रुटियों और उनके अपराधोंकी ओर कदापि ध्यान नहीं देते ।'

रघुकुलतिलक श्रीरामकी पादुकाओंके सम्मुख कुशासनपर बैठे भरतजी उन्हींकी स्मृतिमें विकल-विह्वल हो रहे थे । उनके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था, अधरोंसे वे प्रभुके पावनतम 'राम'-नामका जप कर रहे थे । उसी समय ब्राह्मण वेषधारी हनुमानजी वहाँ पहुँच गये । अपने परमप्रभु नवनीरद-वपु श्रीरामकी प्रतिमूर्ति भरतजीकी विरह-व्यथा देखकर पवनपुत्रकी प्रसन्नताकी सीमा न रही । उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें भरतजीसे कहा—'प्रभो ! आप जिन दण्डकारण्यवासी तपोनिष्ठ भगवान् श्रीरामका अहर्निश चिन्तन करते हैं तथा जिनके लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, वे ककुत्स्थनन्दन श्रीराम अपने शत्रु रावणको मारकर अपनी प्रिया वैदेही, भाई लक्ष्मण तथा अपने मित्र वानर भालुओंके साथ कुशल-पूर्वक आपसे मिलनेके लिये अधीर होकर आ रहे हैं । कल पुष्य नक्षत्रके योगमें आप उनका दर्शन प्राप्त करेंगे ।'

भगवान् श्रीरामके सकुशल पधारनेका संदेश ! अमृत मय सुखद संदेश !! भरतजीमें जैसे नवजीवनका सञ्चार हो गया । उनके हर्षकी सीमा नहीं थी । उन्होंने आतुरता पूर्वक ब्राह्मणदेवको प्रणाम किया ही था कि हाथ जोड़े हुए पवनकुमार उनके चरणोंकी ओर झुके । भरतजीने उनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक पूछा—'मुझे अतिशय आनन्द प्रदान करनेवाला संदेश सुनानेवाले आप कौन हैं ! आप कहाँसे पधारे हैं !'

'प्रभो ! मैं भगवान् श्रीरामका दास पवनपुत्र हनुमान हूँ । प्रभुने मुझे आपका कुशल-समाचार जानने और अपना कुशलका संवाद सुनानेके लिये आपकी सेवामें भेजा है ।' हनुमानजीका उत्तर सुनते ही भरतजीने उन्हें अत्यन्त प्रेम पूर्वक हृदयसे लगा लिया । भरतजीके नेत्रोंसे वेगपूर्वक आँसू बहने लगे । उन्होंने अञ्जनानन्दनके शरीरपर हाथ फेरते हुए गद्गद कण्ठसे कहा—'हनुमान ! आज तुम्हें देखकर मेरा सारा दुःख दूर हो गया । मानो तुम्हारे रूपमें मुझे मेरे परमप्रभु श्रीराम ही मिल गये । भाई हनुमान ! इस सुखद संदेशके समान मेरे लिये आनन्दप्रदायक और कुछ नहीं है । हे तात ! मैं तुमसे किसी प्रकार उऋण नहीं हो सकता । अब तुम मुझे मेरे प्रभुका चरित्र सुनाओ ।'*

श्रीभरतजीके आदेशानुसार हनुमानजीने उनके चरणोंमें सिर झुकाया और श्रीरामचन्द्रजीका क्रमशः सम्पूर्ण चरित्र सुना दिया । मारुतिसे श्रीराम चरित्र सुनते हुए भरतजी मन ही मन आनन्दित हो रहे थे । हनुमानजीके चुप होनेपर उन्होंने पूछा—'कपिश्रेष्ठ ! क्या प्रभु मुझे भी कभी दासकी तरह स्मरण करते थे ?'

अत्यन्त विनीत भरतजीके वचन सुन मारुतिने उत्तर दिया—'प्रभो ! मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ, आप भगवान् श्रीरामके प्राण-तुल्य प्रिय हैं । वे सदा आपका गुणगान करते हुए आत्मविभोर हो जाते थे । अब आप कृपापूर्वक मुझे प्रभुके समीप पहुँचनेकी आज्ञा दीजिये ।'

प्रेममूर्ति भरतजीने पुनः हनुमानजीको गलेसे लगा लिया । वे पवनकुमारका बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, उनके हृदयमें आनन्द समा नहीं पा रहा था ।

पवनकुमारने भरतजीके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रभु श्रीरामके समीप पहुँचनेके लिये तीव्र गतिसे चल पड़े ।

हनुमानजीके अयोध्याके लिये प्रस्थित हो जानेपर श्रीरघुनाथजी पञ्चमी तिथिको मुनिवर भरद्वाजके आश्रममें पहुँचे और उनका दर्शन कर सीता तथा भाई लक्ष्मणसहित उनके चरणोंमें प्रणाम किया । सुग्रीव, अङ्गद और विभीषणादिने भी महामुनिके चरणोंमें श्रद्धा भक्तिपूर्ण हृदयसे प्रणाम निवेदन किया ।

महर्षि भरद्वाजने श्रीरामको शुभ आशीर्वाद देकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक बैठाया । भगवान् श्रीरामने कहा—'मुनिनाथ ! आपकी कृपासे चतुर्दश वर्षोंका वनवास-काल समाप्त होनेपर मुझे पुनः आपके चरणोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है । आपको यदि भाई भरतका कुछ कुशल-समाचार प्राप्त हुआ हो तो कृपया बतलाइये ।'

मुनिवर भरद्वाजने उत्तर दिया—'धर्ममूर्ति श्रीराम ! आपने पृथ्वीका भार उतारनेका महान् दायित्व कर लिया

* नाहिन तात उरिन मैं ताही । अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥ (

और असुरपर विजय प्राप्तकर सकलमनोरथ हो अपनी पती पत्नी, भाई लक्ष्मण एवं मित्रोंसहित कुशलपूर्वक लौट आये, यह देखकर मैं आनन्दमग्न हो रहा हूँ । मेरी प्रसन्नताकी सीमा नहीं है ।'

फिर अत्यन्त गद्गद कण्ठसे मुनिने कहा—'श्रीराम ! आप समस्त लोकोंसे वन्दित और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं । आप साक्षात् विष्णुभगवान् हैं, जानकीजी लक्ष्मी हैं और ये लक्ष्मणजी शेषनाग हैं ।'* आप सर्वान्तर्यामी हैं, किंतु आपके पूछनेपर मैं बता रहा हूँ कि अयोध्यामें सब कुशल है । आपके भाई भरत आपके स्मरणमें रोते हुए किसी प्रकार एक-एक क्षण व्यतीत कर रहे हैं । वे अत्यन्त कृश हो गये हैं । आपके दर्शनकी आशामें ही उनके प्राण टिके हुए हैं । कौसल्यादि आपकी माताएँ तथा सभी अयोध्यावासी उत्सुकताके साथ आपके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।'

महामुनिके मुखसे भाई भरतकी प्रीति एवं उनका दुःख जानकर रघुकुलनन्दन श्रीराम व्याकुल हो गये । उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगा । उन्होंने महामुनिके अनुरोधपर रातके लिये उनका आतिथ्य स्वीकार किया । तत्पश्चात् हनुमानजीने नन्दिग्रामसे लौटकर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया । हनुमानजीके द्वारा अपने भाई भरतका समाचार सुनकर भ्रातृवत्सल प्रभु श्रीरामने महामुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और भाई भरतसे मिलनेके लिये आतुर होकर पुष्पक विमानमें जा बैठे । विमान वेगपूर्वक चला ।

इधर हनुमानजीके लौटने पर भरतजीने यह समाचार गुरु वसिष्ठ एवं माताओंको सुनाया तो उनके हर्षकी सीमा न रही । समाचार ही नहीं, पूरी अयोध्यामें सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामके आगमनके संवादसे प्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी । अवधवासी अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने घरों, द्वारों एवं मार्गोंको सजाने लगे । अनेक प्रकारके तोरण, ध्वजों और रत्नोंकी वन्दनवारों एवं चित्र-विचित्र पताकाओंसे अवधपुरी सज उठी । घर-घर, गली-गली, राजपथ, राजद्वार—सर्वत्र जैसे आनन्द साकार होकर नृत्य कर रहा था । सर्वत्र हर्ष ! सर्वत्र प्रसन्नता ! सर्वत्र आनन्द ! सर्वत्र उल्लास ! सर्वत्र प्रभुके दर्शनकी लालसा !!! अयोध्या आजतक ऐसी कभी नहीं सजी थी । उसकी शोभाके सम्मुख अमरावती भी लज्जित हो रही थी । बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सब सुन्दर एवं आकर्षक वस्त्राभरणोंसे सजे थे और सभी प्रभुके स्वागतार्थ उनके दर्शनार्थ सबसे आगे पहुँच जाना चाहते थे । कहीं बालकों, कहीं युवकों, कहीं वृद्धों और कहीं स्त्रियोंका समूह भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ मङ्गलगान करता हुआ चला जा रहा था । अयोध्यासे प्रभुके स्वागतार्थ एक लाख घोड़े, दस सहस्र हाथी और सुनहरी सामानोंसे विभूषित दस सहस्र रथ आदि अनेक ऐश्वर्यमयी वस्तुओंके साथ लोग चले । प्रभुके दर्शनके लिये पालकीमें माताएँ, राजमहलकी स्त्रियाँ और शत्रुघ्नके साथ भरतजी सिरपर प्रभुकी पादुकाओंको रखकर पैदल ही चले । उस समय भरतजीके मनमें हर्ष नहीं समा रहा था । रह-रहकर उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू छलक पड़ते थे ।

नगरके बाहर भरतजीके साथ शत्रुघ्नजी, मुनि वसिष्ठ, माताएँ, राजमहिलाएँ और समस्त पुरवासी अत्यन्त आतुरतासे प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि उन्हें सहसा चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पक विमान दिखायी दिया ।

'भगवान् श्रीरामकी जय ! जानकीजीकी जय !! लक्ष्मणलालकी जय !!!' से सम्पूर्ण वसुन्धरा गूँज उठा और उसी समय मनकी गतिसे चलनेवाला विमान धरतीपर उतर गया । सीता, लक्ष्मण एवं अपने अन्य परिकरोंके उतर जानेपर भगवान् श्रीरामने कुबेरके पुष्पकको उसके पास लौट जानेकी आज्ञा दी ।

भगवान् श्रीरामने अपने सम्मुख वामदेव, वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनियोंको देखा तो अपना धनुष-बाण पृथ्वीपर रख दिया और लक्ष्मणसहित दौड़कर गुरुके चरणकमलोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया । मुनि वसिष्ठने श्रीराम और लक्ष्मणको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और उन्हें अनेक प्रकारके आशीर्वाद देने लगे । इसके बाद भगवान् श्रीरामने समस्त ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक प्रणाम कर उनका आशीर्वाद ग्रहण किया ।

* [illegible] भरताग्रजसुत [illegible] विष्णुदेवकी [illegible] शेषोऽयं लक्ष्मणाभिधः ॥
(अ० रा० ६ । १५ । ११)

और शत्रुपर विजय प्राप्तकर सफलमनोरथ हो अपनी सती पत्नी, भाई लक्ष्मण एवं मित्रोंसहित कुशलपूर्वक लौट आये, यह देखकर मैं आनन्दमग्न हो रहा हूँ । मेरी प्रसन्नताकी सीमा नहीं है ।'

फिर अत्यन्त गद्गद कण्ठसे महर्षिने कहा—'श्रीराम ! आप समस्त लोकोंसे वन्दित और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं । आप साक्षात् विष्णुभगवान् हैं, जानकीजी लक्ष्मी हैं और ये लक्ष्मणजी शेषनाग हैं ।* आप सर्वान्तर्यामी हैं, किंतु आपके पूछनेपर मैं बता रहा हूँ कि अयोध्यामें सब कुशल है । आपके भाई भरत आपके स्मरणमें रोते हुए किसी प्रकार एक-एक क्षण व्यतीत कर रहे हैं । वे अत्यन्त कृश हो गये हैं । आपके दर्शनकी आशामें ही उनके प्राण टिके हुए हैं । कौसल्यादि आपकी माताएँ तथा सभी अयोध्यावासी उत्सुकताके साथ आपके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।'

महामुनिके मुखसे भाई भरतकी प्रीति एवं उनका दुःख जानकर रघुकुलनन्दन श्रीराम व्याकुल हो गये । उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे । उन्होंने महामुनिके अनुरोधकी रक्षाके लिये उनका आतिथ्य स्वीकार किया । तबतक हनुमानजीने नन्दिग्रामसे लौटकर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया । हनुमानजीके द्वारा अपने भाई भरतका समाचार सुनकर भ्रातृवत्सल प्रभु श्रीरामने महामुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और भाई भरतसे मिलनेके लिये आतुर होकर पुष्पक विमानमें जा बैठे । विमान वेगपूर्वक उड़ा ।

इधर हनुमानजीके लौटते ही भरतजीने यह समाचार गुरु वसिष्ठ एवं माताओंको सुनाया तो उनके हर्षकी सीमा न रही । राजसदन ही नहीं, पूरी अयोध्यामें सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामके आगमनके संवादसे प्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी । छोटे-बड़े सभी अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने घरों, द्वारों एवं मार्गोंको सजाने लगे । अनेक प्रकारके उज्ज्वल मोतियों और रत्नोंकी वन्दनवारों एवं चित्र-विचित्र पताकाओंसे अवधपुरी सज उठी । गृह-गृह, गली-गली, राजमार्ग, राजसदन—सर्वत्र जैसे आनन्द मूर्तरूप होकर नृत्य कर रहा था । सर्वत्र हर्ष ! सर्वत्र प्रसन्नता ! सर्वत्र आनन्द ! सर्वत्र उल्लास ! सर्वत्र प्रभुके दर्शनकी उत्कट लालसा !!! अयोध्या आजतक ऐसी कभी नहीं सजी थी । उसकी शोभाके सम्मुख अमरावती भी लज्जित हो रही थी । बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी नवीन एवं आकर्षक वस्त्राभरणोंसे सजे थे और सभी प्रभुके स्वागतार्थ उनके दर्शनार्थ सबसे आगे पहुँच जाना चाहते थे । कहीं बालकों, कहीं युवकों, कहीं वृद्धों, स्त्री-पुरुषोंका सुन्दर भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ मङ्गलगान करता हुआ दल जा रहा था । अयोध्यासे प्रभुके स्वागतार्थ एक लाख घोड़े दस सहस्र हाथी और सुनहरी बागडोरोंसे विभूषित एक सहस्र रथ आदि अनेक ऐश्वर्यमयी वस्तुओंके साथ लेकर चले । प्रभुके दर्शनके लिये पालकीमें माताएँ, राजसदनकी स्त्रियाँ और शत्रुघ्नके साथ भरतजी सिरपर प्रभुकी पादुकाओंको रखकर पैदल ही चले । उस समय भरतजीके मनमें हर्ष नहीं समा रहा था । रह-रहकर उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू छलक पड़ते थे ।

नगरके बाहर भरतजीके साथ शत्रुघ्नजी, महर्षि वसिष्ठ, माताएँ, राजमहिलाएँ और समस्त पुरवासी अत्यन्त आतुरतासे प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि उन्हें सहसा चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पक विमान दिखायी दिया ।

'भगवान् श्रीरामकी जय ! जगज्जननी जानकीकी जय !! लखनलालकी जय !!!' से सम्पूर्ण वायुमण्डल गूँज उठा और उसी समय मनकी गतिसे चलनेवाला विमान धरतीपर उतर गया । सीता, लक्ष्मण एवं अपने समस्त परिकरोंके उतर जानेपर भगवान् श्रीरामने पुष्पकको कुबेरके पास चला जानेकी आज्ञा दी ।

भगवान् श्रीरामने अपने सम्मुख वामदेव, वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनियोंको देखा तो अपना धनुष-बाण पृथ्वीपर रख दिया और लक्ष्मणसहित दौड़कर गुरुके चरण-कमलोंमें अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया । वसिष्ठजीने श्रीराम और लक्ष्मणको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और उन्हें अनेक प्रकारके आशीर्वाद देने लगे । इसके बाद धर्ममूर्ति श्रीरामने समस्त ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया ।

* त्वं जगन्नाथः सर्वलोकनमस्कृतः । त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शेषाख्यो लक्ष्मणाभिधः ॥ (अ॰ रा॰ ६ । १४ । २१)

श्रीभरत मिलापके समय श्रीहनुमानजी

'धर करि कृपासिंधु उर लाए'

[पृष्ठ ३११

भरत, शत्रुघ्न और माताओंसहित समस्त पुरवासी प्रभुकी ओर अपलक दृष्टिसे देख रहे थे। भरतजीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रभु श्रीरामकी पादुकाएँ सिरसे उतारकर उनके सम्मुख रखीं और उनके चरण-कमलोंको पकड़ लिया। प्रीति-परवश श्रीरघुनाथजीकी भी यही विचित्र स्थिति थी। भरतजीके प्रेमसे उनके नेत्र सजल हो गये थे। श्रीभगवान् उन्हें बार-बार उठानेका प्रयत्न कर रहे थे, किंतु भरतजी प्रभुके जन्म-जरा-मृत्यु विरामदायी दुर्लभतम चरण-कमलोंसे उठनेपर भी नहीं उठ रहे थे। भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामने उन्हें बरबस उठाकर हृदयसे लगा लिया।

नवनीरदवपु श्रीराम एवं नवघनश्याम भरतजी—दोनों जटाजूटधारी, दोनों तपस्वी, दोनों एक-दूसरेके प्राणाधिक प्रिय, दीर्घकालके बाद दोनों प्राणप्रिय भाइयोंका मिलन। श्रीराम भरतसे उनका कुशल-संवाद पूछ रहे हैं, पर प्रेमानन्दमें निमग्न होनेके कारण भरतजीका कण्ठ अवरुद्ध हो गया है। वे बोल नहीं पाते, उनकी स्थिति वे ही जानते हैं। बड़ी कठिनाईसे भरतजीने उत्तर दिया—'प्रभो! आपने मेरी रक्षा कर ली। आपका दर्शन प्राप्त हो गया। बस, इससे सब आनन्द-मङ्गल है।'

भगवान्ने प्रसन्न होकर शत्रुघ्नजीको हृदयसे लगाया और भरतजीने भाई लक्ष्मणको अपने वक्षसे सटा लिया। एक ओर वानरराज सुग्रीव और उनकी पत्नियाँ, युवराज अङ्गद, लङ्केश विभीषण और उनकी पत्नियाँ, जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद, नल और नीलादि वानर भालुओंका अपरिसीम समुदाय, दूसरी ओर कुलगुरु वसिष्ठ, माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा अन्य राजमहिलाएँ और उनके मध्य भगवान् श्रीराम और भरत, श्रीराम और शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरत तथा सुमित्राके पुत्रद्वय लक्ष्मण और शत्रुघ्नका परस्पर मिलन। उन चारों भाइयोंका अद्भुत प्रेम एवं उनकी पाप-ताप-नाशक अलौकिक सौन्दर्य-राशि! उनके समीप हाथ जोड़े चकित एवं पुलकित अञ्जनानन्दन।

निश्चय ही वे अत्यन्त भाग्यवान् हैं, जो अपने अन्तर्हृदयमें यह मङ्गल-मूल-निधान, परम सुखद, सुन्दरतम ध्यान धारण कर सकें।

महिमामय

जगज्जननी जानकी और जगत्पाता प्रभु श्रीरामको अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन देखकर सर्वत्र हर्ष व्याप्त हो गया। अयोध्यामें तो आनन्दका पावन नर्तन हो ही रहा था, हर्षातिरेकसे मेदिनी पुलकित हो गयी और देवगण मुदित होकर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे।

धर्म विग्रह श्रीराघवेन्द्रने मुनियों एवं ब्राह्मणोंको पुष्कल दानादि—प्रत्येक रीतिसे प्रसन्नकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तदनन्तर उन्होंने अपने मित्र किष्किन्धाधिपति सुग्रीवको मणियोंसे युक्त सोनेकी एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रही थी। फिर प्रभु श्रीरामने युवराज अङ्गदको नीलमसे जटित दो अङ्गद (बाजूबंद) भेंट किये, जो चन्द्रमाकी किरणोंसे विभूषित प्रतीत होते थे। इसी प्रकार मैत्री धर्मका मर्म समझनेवाले प्रभु श्रीरामने राक्षसराज विभीषण, परम बुद्धि-वैभव सम्पन्न जाम्बवान्, द्विविद, मैन्द, नल और नील आदि वानर भालुओंको मनोवाञ्छापूरक बहुमूल्य अलंकार एवं श्रेष्ठ रत्नादि प्रदान किये।

उस समय भगवान् श्रीरामने महारानी सीताको अनेक सुन्दर वस्त्राभूषण अर्पित किये। साथ ही उन्होंने चन्द्र-किरणोंके तुल्य प्रकाशित उस परमोत्तम मुक्ताहारको उनके गलेमें डाल दिया, जिसे उन्हें वायुदेवताने अत्यन्त आदरपूर्वक प्रदान किया था।

माता सीताने देखा, प्रभुने सबको अनेक बहुमूल्य उपहार अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रदान किये, किंतु पवनकुमारको अबतक कुछ नहीं मिला और पवनकुमार निरन्तर श्रीसीता-रामके चरणारविन्दकी ओर देख रहे थे। उन्हें त्रैलोक्यकी सम्पूर्ण सम्पत्ति उन चरणोंमें ही समायी दीख रही थी। माता सीताने प्रभुकी ओर देखकर अञ्जनानन्दनको कुछ भेंट देनेका विचार किया। उन्होंने प्रभु प्रदत्त दुर्लभतम मुक्ताहार अपने गलेसे निकालकर हाथमें ले लिया और प्रभुकी ओर तथा समस्त वानरोंकी ओर देखने लगीं।

'महारानी सीताकी इच्छाका अनुमान कर प्रभुने कहा—सौभाग्यशालिनि! तुम जिसे चाहो, इसे दे दो।'

अपने प्राणनाथका आदेश प्राप्त होते ही माता सीताने वह मुक्ताहार पवनपुत्रको दे दिया। उक्त बहुमूल्य हारको कण्ठमें धारण करनेपर हनुमानजीकी शोभा अद्भुत हो गयी।

हनुमानजीकी भक्तिसे तो सभी प्रभावित थे और सभी स्वीकार करते थे कि तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि *—ये दस गुण इनमें सदा विद्यमान रहते हैं। अतएव इस बहुमूल्य हारके यथार्थ पात्र हनुमानजी ही थे। किंतु इस हारके मिस श्रीरघुनाथजीने एक नयी लीला प्रारम्भ कर दी, जिससे हनुमानजीकी अद्भुत महिमा प्रकट हुई और उनकी अनन्य भक्तिके सम्मुख सबको नत होना पड़ा।

जहाँ हनुमानजीके इस बहुमूल्य मुक्ताहारको प्राप्त करनेके सौभाग्यकी प्रशंसा हो रही थी, वहीं श्रीहनुमानजीकी मुखाकृतिपर उसकी प्राप्तिके कारण हर्षका कोई चिह्न नहीं दीख रहा था। वे तो सोच रहे थे कि माता जानकी और प्रभु श्रीराम मेरी अञ्जलिमें अपने अनन्त सुखदायक चरण कमल रख देंगे, किंतु यह मातृप्रदत्त मुक्ताहार! हनुमानजीने उस मुक्ताहारको गलेसे निकाल लिया और उसे उलट-पलटकर देखने लगे। कुछ देरतक तो वे हारको, उसके प्रकाश विकीर्णकारी एक-एक मुक्तामणिको ध्यानपूर्वक देखते रहे, किंतु उनमें उनका अभीष्ट प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने सोचा, सम्भवतः इसके भीतर मेरे अभीष्ट—'श्रीसीता-राम'—मिल जायँ। बस, उन्होंने एक अनमोल रत्नको मुँहमें डालकर अपने वज्र तुल्य दाँतोंसे फोड़ दिया, पर उसमें भी कुछ न था। वह तो निरा चमकता हुआ पत्थर ही था। हनुमानजीने उसे फेंक दिया।

यह दृश्य देखकर सबका ध्यान पवनतनयकी ओर आकृष्ट हो गया। भगवान् श्रीराम मन-ही-मन मुस्कुरा रहे थे और माता जानकी, भरत आदि भ्राता, राक्षसराज विभीषण, वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, महाप्रभुद्ध जाम्बवान्, निषादराज, समस्त वानर-भालू एवं सभासद्गण यह दृश्य देखकर चकित हो रहे थे। हनुमानजीने दूसरे रत्नको भी मुँहमें डालकर फोड़ लिया और उसे भी देखकर फेंक दिया। इस प्रकार वे अनमोल मुक्तामणि और रत्नोंको मुखमें डालकर दाँतोंसे फोड़ते और उसे देखकर फेंक देते।

सभासदोंका धैर्य जाता रहा, पर कोई कुछ बोल न पा रहा था। काना-फूँसी होने लगी—'आखिर हनुमानजी हैं तो बंदर ही न! बंदरको बहुमूल्य हार देनेका और फल क्या होता!' विभीषणजीने तो पूछ ही लिया—'हनु... इस हारके एक-एक रत्नसे विशाल साम्राज्य क्रय ... सकते हैं और आप इन्हें तोड़-फोड़कर नष्ट कर दे ...

एक रत्नको फोड़कर ध्यानपूर्वक देखते हुए ... उत्तर दिया—'लंकेश्वर! क्या करूँ! मैंने देखा कि ... मेरे प्रभुकी भुवनपावनी मूर्ति है कि नहीं! कि... उसे न पाकर मैं इसके रत्नोंको तोड़-फोड़कर देख ... कि सम्भवतः इनमें मेरे सर्वेश्वरकी मूर्ति मिल जाय, ... अबतक तो एक रत्नमें भी मेरे प्रभुकी मूर्तिके दर्शन नहीं हुए। जिनमें मेरे स्वामीकी भयतापनिवारक मूर्ति नहीं ... तो तोड़ने और फेंकने ही योग्य हैं। इनका उपयोग ही क्या!'

महामूल्यवान् रत्नोंके नष्ट होनेसे राक्षसराज विभीषण ... कुछ क्षुब्ध होकर पूछा—'यदि इन अनमोल रत्नोंमें प्रभु... झाँकी नहीं मिल रही है तो पहाड़-जैसी आपकी काया... प्रभुकी झाँकी होती है क्या!'

'निश्चय!' हनुमानजीने दृढ़ विश्वासके साथ उत्त... दिया—'मेरे प्राणनाथ प्रभु मेरे हृदयमें भी विराजते हैं और यदि वे यहाँ नहीं हैं, तब तो इस शरीरका भी कोई उपयो... ही नहीं। मैं इसे अवश्य नष्ट कर दूँगा। आप स्वयं दे... लीजिये।'—कहते हुए भगवान् श्रीरामके अनन्य चरणानुरा... पवनकुमारने दोनों हाथोंको अपने वक्षपर रखा और अ... तीक्ष्णतम नखोंसे उसे फाड़कर दो भागोंमें विभक्त कर दिया

आश्चर्य! अत्यन्त आश्चर्य!! विभीषणजीने ही नहीं भगवती सीतासहित भगवान् श्रीराम एवं समस्त सभासदों... प्रत्यक्ष देखा, सम्मुख राजसिंहासनपर विराजित श्रीसी... रामकी पावनतम मञ्जुल मूर्ति पवनपुत्र हनुमानके हृदय... भी विराज रही थी और उनके रोम-रोमसे 'राम'-नाम... ध्वनि हो रही थी। लंकेश्वर उनके चरणोंपर गिर पड़े।

'भक्तराज हनुमानकी जय!' सभासदोंने जयघो... किया और भगवान् श्रीरामने सिंहासनसे सहसा उतरक... हनुमानजीको अपने हृदयसे लगा लिया (अन्यथा वे अप... सारा शरीर उधेड़कर रख देते)। निखिलभुवनपावन भक्तरक्ष... श्रीरामके मङ्गलमय कर-स्पर्शसे उनका शरीर पूर्ववत् स्व...

* तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः। पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥
(वा० रा० ६। ११८। ८...)

और सुहृद हो गया। राज सभामें सबने हृदयसे स्वीकार किया कि हनुमानजी भगवान् श्रीसीतारामके अनन्य भक्त एवं बाह्याभ्यन्तर श्रीराममय हैं।

पवनकुमारको माता जानकी और परम प्रभु श्रीराम भी प्राणप्रिय समझते हों, ये श्रीसीतारामकी ही सम्पूर्ण ममता एवं स्नेहके केन्द्र हों, इतनी ही बात नहीं, इन्हें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौसल्यादि माताएँ तथा श्रीराम-चरणानुरागी सभी प्राणाधिक प्यार करते थे।

भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे वानरराज सुग्रीव जब किष्किन्धाके लिये प्रस्थित हुए, तब उन्होंने पवनपुत्रसे अतिशय प्रीतिपूर्वक कहा—'पवनकुमार! तुम पुण्यकी राशि हो। जाकर दयाधाम श्रीरामजीकी सेवा करो।'*

हनुमानजी! अतिशय सरल और अन्यतम उदार हनुमानजी!—ये जीवमात्रको ही प्रभुके अक्षय सुख शान्ति निकेतन चरण-कमलोंमें पहुँचानेके लिये व्यग्र रहते हैं। भगवदुन्मुख प्राणियोंके अहैतुक सहायक हैं ये। युवराज अङ्गदने प्रभुसे विदा लेकर किष्किन्धा जाते समय हनुमानजीसे प्रार्थना की—'हे हनुमान! मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि प्रभुके चरणोंमें मेरा अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम निवेदन करना और उन्हें बार-बार मेरा स्मरण दिलाते रहना।'

प्रभुको उनके चरणोन्मुख प्राणीका स्मरण दिलानेके लिये तो वे प्रतिपल आतुर रहते हैं। सर्वथा निश्छल, अत्यन्त सरल हनुमानजीका यही तो स्वभाव है। हनुमानजीने लौटते ही अङ्गदके प्रेमकी प्रशंसा की, जिसे सुनकर भगवान् श्रीराम प्रेम निमग्न हो गये।† यह देखकर हनुमानजीको अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ।

इतना ही नहीं, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी भगवान् श्रीरामके चरणोंमें कुछ निवेदन करना चाहते हैं तो प्रभुके सम्मुख बोल नहीं पाते, वे हनुमानजीका सहारा लेते हैं। हनुमानजीके द्वारा ही उनके कार्यकी सिद्धि होती है। देखिये न! तीनों भाइयोंने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया, वे प्रभुसे कुछ पूछना चाहते हैं, पर संकोचवश कुछ कह नहीं पाते, हनुमानजीकी ओर देखने लगते हैं। अन्तर्यामी प्रभु सब जान गये और वे हनुमानजीसे पूछते हैं—'कहो हनुमान! क्या बात है?'‡

तब हनुमानजीने हाथ जोड़कर कहा—'हे दीनदयालु प्रभो! सुनिये। हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करनेमें सकोच करते हैं।'§ इस प्रकार भरतादि भ्राताओंके सहायक तो हुए ही, वे सहज ही उनके प्रीति भाजन भी हैं।

जहाँ भगवान् श्रीरामके नामका जप होता है, जहाँ प्रभुके मङ्गलमय मधुर नामका कीर्तन होता है, जहाँ करुणामूर्ति श्रीसीतारामकी लीला-कथा एवं उनका स्मरण चिन्तन होता है, वहाँ हनुमानजी सदा उपस्थित रहते हैं। वे भगवती सीतासहित भगवान् श्रीरामके नाम-जापक एवं उनके लीला गुणगायकका हृदयसे आभार स्वीकार करते हैं। हनुमानजीके तनमें, मनमें, प्राणमें—यहाँतक कि उनके रोम-रोममें व्याप्त निखिलभुवनपावन परम प्रभुने लीला-संवरण कर साकेत पधारते समय उन्हें आदेश प्रदान किया था—'हरीश्वर! जबतक संसारमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।'*

दयाधाम श्रीरामकी आज्ञा प्राप्तिके लिये निरन्तर उनके मुखारविन्दकी ओर देखते रहनेवाले भक्तराज हनुमानजीने तुरंत हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया—'भगवन्! संसारमें जबतक आपकी पावन कथाका प्रचार रहेगा, तबतक

---

* पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥ (मानस ७। १८। ५)

† तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत। (मानस ७। १९ (ख))

‡ अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥ (मानस ७। ३५। २)

§ जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं॥ (मानस ७। ३५। ३)

* मत्कथा प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्। (वा० रा० ७। १०८। ३३-३४)

आपके आदेशका पालन करता हुआ मैं इस पृथ्वीपर रहूँगा।'*

परम प्रभु श्रीरामकी आज्ञाके पालनमें सतत जागरूक रहनेवाले हनुमानजीके भाग्यकी तुलना सम्भव नहीं। भगवान् श्रीरामने एक सघन अमराईमें कुछ देर विश्राम करनेका विचार ही किया था कि वहाँ भरतजीने अपना वस्त्र बिछा दिया। करुणामूर्ति श्रीराम उसपर बैठ गये और भरतादि भाई उनकी सेवा करने लगे। उस समय पवनपुत्र हनुमानजी उनपर पंखा झलने लगे। सजल-जलदवपु परम प्रभु श्रीरामके दर्शन कर हनुमानजीका शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये।

सच्चिदानन्दघन प्रभुकी इस झाँकीमें हनुमानजीकी सेवा एवं उनके भक्तिभावका स्मरण कर भगवान् शंकर गद्गद कण्ठसे जगन्माता पार्वतीसे कहते हैं—'गिरिजे! हनुमान्‌के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामजीके चरणोंका प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवाकी (स्वयं) प्रभुने अपने श्रीमुखसे बार-बार बड़ाई की है।'†

महिमामय भक्तराज हनुमानजीकी महिमाका वर्णन सम्भव नहीं। बस, यह मनोहारिणी झाँकी जिस बड़भागीके हृदयमें स्थान बना ले तो उसे निश्चय ही मनुष्य-जीवनका यथार्थ फल ही प्राप्त हो जाय।

भावुक भक्तोंमें

यशोज्ज्वल महावीर हनुमानजी सहज सरल और भोले हैं। इनके भोलेपन एवं श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें इनकी अद्भुत प्रीतिकी अनेक कथाएँ भक्तोंमें प्रचलित हैं। उनका आधार तो विदित नहीं, किंतु वे कथाएँ हनुमानजीकी सरलता, उनके भोलेपन एवं उनकी अलौकिक श्रीराम-प्रीतिकी परिचायिका हैं, इस कारण यहाँ कुछ कथाओंका उल्लेख करना अनुचित नहीं प्रतीत होता।

भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त हनुमानजीकी माता जानकीके चरणोंमें भी अद्भुत भक्ति है और जगज्जननी जनकदुलारी इन्हें प्राण-तुल्य प्यार करती हैं, इस कारण ये माताजीके सम्मुख तनिक भी संकोच नहीं करते। मातासे संकोच भी कैसा? बात है मंगलवार प्रातःकालकी। हनुमानजीको भूख लगी। वे सीधे माता जानकीके समीप पहुँचे और बोले—'माँ! मुझे भूख लगी है। कलेवाके लिये कुछ दीजिये।'

'बेटा! मैं अभी स्नान करके तुम्हें मोदक देती हूँ।' माताके वचन सुन हनुमानजी प्रभु श्रीरामका नाम-जप करते हुए माताके स्नान कर लेनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

जगदम्बा सीताने स्नान करके शृङ्गार करना प्रारम्भ किया। माताकी माँगमें सिन्दूर देखकर भोले हनुमानजीने पूछा—'माताजी! आपने यह सिन्दूर क्यों लगाया है?'

माता जानकीको हँसी आ गयी। हँसते हुए उन्होंने हनुमानजीको उत्तर दिया। उत्तर क्या दिया, जैसे वे छोटे अबोध शिशुको बहला रही थीं। बोलीं—'इस लाल सिन्दूरको लगानेसे तुम्हारे स्वामीकी आयु-वृद्धि होती है।'

'सिन्दूर लगानेसे मेरे स्वामीकी आयु बढ़ती है!' हनुमानजी मन-ही-मन सोचने लगे और बहुत देरतक सोचते रहे। वे सहसा उठे और ढूँढ़कर अपने सर्वाङ्गमें तेल लगाये, तत्पश्चात् आपादमस्तक सिन्दूर पोत लिये। सर्वाङ्ग सिन्दूररूप हो गया, जैसे उन्होंने सिन्दूरमें स्नान किया हो। मेरे इस सिन्दूर-लेपसे मेरे प्रभुकी आयु वृद्धि हो जायगी, इस हर्षोन्मादमें उन्हें अपनी क्षुधाका भी ध्यान नहीं रहा।

हनुमानजी सीधे प्रभु श्रीरामकी राज-सभामें पहुँचे।

* यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।
(वा० रा० ७। १०८। ३५-३६)

† " " " " " । गए जहाँ सीतल अवँराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥
मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥ (मानस ७। ४९। २-५)

थे कि उन्हें इस सिन्दूरपूरिताङ्ग अद्भुत वेषमें देखकर वहाँ जोरका अट्टहास हुआ। स्वयं भगवान् श्रीराम भी मुस्कुरा उठे। वे हनुमानजीसे पूछ बैठे—'हनुमान! आज तुमने सर्वाङ्गमें सिन्दूर-लेप कैसे कर लिया?'

सरल हनुमानजीने हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! माताजीके तनिक-सा सिन्दूर लगानेसे आपकी आयुमें वृद्धि होती है, यह जानकर आपकी अत्यधिक आयु-वृद्धिके लिये मैंने समूचे शरीरमें सिन्दूर लगाना प्रारम्भ कर दिया है।'

श्रीराघव हनुमानजीके सरल भावपर मुग्ध हो गये। उन्होंने घोषणा कर दी—'आज मङ्गलवार है। इस दिन मेरे अनन्यप्रीतिभाजन महावीर हनुमानको जो तेल और सिन्दूर चढ़ायेंगे, उन्हें मेरी प्रसन्नता प्राप्त होगी और उनकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति हो जाया करेगी।'

पवनात्मजने प्रभुके दोनों चरण-कमलोंको पकड़ लिया।

अतुलित बलधाम श्रीहनुमानजी विद्या-बुद्धि-सम्पन्न तो हैं ही, वे निरन्तर भगवान् श्रीरामकी सेवामें ही संलग्न रहना चाहते थे। प्रभुकी सेवामें ही उन्हें सुख-शान्तिका अनुभव होता। सेवाके लिये वे प्रतिक्षण अवसर देखा करते, प्रभुकी कोई आवश्यकता हो, प्रभु कोई भी आज्ञा प्रदान करें, उसके लिये हनुमानजी सदा सजग, सावधान और तत्पर रहते थे। प्रभुकी सेवाके लिये वे पृथ्वी ही नहीं, आकाश और पातालमें भी चले जानेके लिये सदा प्रस्तुत रहते थे। उनकी इसी सेवा वृत्तिके कारण भरतादि बन्धुओंकी बात तो अलग रही, स्वयं जगज्जननी जानकीको भी प्रभुकी किसी सेवाका सुयोग प्रायः नहीं मिल पाता, इस कारण वे सभी उद्विग्न रहा करते।

एक दिनकी बात है, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—तीनों भाई माता जानकीके पास पहुँचे। माताजीने पूछा—'आज तीनों भाई एक साथ कैसे पधारे?'

भरतजीने कहा—'प्रभुकी छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी सभी सेवा हनुमानजी कर लेते हैं। हमलोग चाहते हैं कि कुछ सेवाका अवसर हमें भी मिले, किंतु हनुमानजी सेवाके लिये निरन्तर हाथ जोड़े प्रभुके मुखारविन्दकी ओर ही निहारा करते हैं। इस कारण हमें प्रभुकी सेवाका कोई सुयोग नहीं मिल पाता। आपके चरणोंमें यही निवेदन करने हमलोग यहाँ आये हैं।'

स्वयं माताजी भी प्रभुकी सेवाका सुयोग प्राप्त करनेके लिये व्यग्र थीं। उन्होंने तीनों भाइयोंसे कहा—'आप लोगोंको भी प्रभु-सेवाका सुअवसर प्राप्त होना चाहिये, यह तो मैं भी चाहती हूँ, किंतु हनुमानजीके कारण मैं भी प्रायः प्रभुकी सेवासे वञ्चित रह जाती हूँ। पर किया क्या जाय? आपलोग कोई उपाय बताइये।'

गम्भीर विचार-विमर्शके उपरान्त निश्चय हुआ कि प्रभुके शय्या-त्यागसे लेकर उनके पुनः शयन-कालतककी सेवाकी एक तालिका बनायी जाय और उन सेवाओंको हमलोग अपने-अपने इच्छानुसार बाँट लें। उस निर्णीत सेवाकी तालिकापर प्रभुके हस्ताक्षर कराकर उसपर राज-मुद्राकी छाप लगा ली जाय, इस प्रकार हनुमानजी स्वतः सेवा-निवृत्त हो जायँगे और हमलोगोंका प्रभुकी सेवाका अवसर प्राप्त होता रहेगा।'

तालिका बन गयी। अब प्रभुके हस्ताक्षरका प्रश्न था। माता जानकीने कहा—'हस्ताक्षर तो मैं करा लूँगी।'

बस, पूर्ण आश्वस्त होकर तीनों भाई वहाँसे चले आये। रात्रिमें माता जानकीने प्रभुसे निवेदन किया—'आप इस सेवा-तालिकापर हस्ताक्षर कर दें।'

'कैसी सेवा-तालिका?' प्रभुके पूछनेपर माता जानकीने उत्तर दिया—'आपकी सेवाके लिये आपके तीनों भाइयोंने मेरी सहमतिसे यह तालिका तैयार की है।'

प्रभुने ध्यानपूर्वक आद्योपान्त पूरी तालिका देखी। उसमें हनुमानजीका नाम न देखकर उन्हें षड्यन्त्रका अनुमान तो हुआ, किंतु उन्होंने मुस्कुराते हुए उसपर हस्ताक्षर कर दिया। फिर माताजीने निवेदन किया—'इसपर राज-मुद्राकी छाप लग जानी चाहिये।'

प्रभुने कहा—'कल राज-सभामें राज-मुद्राकी छाप भी लग जायगी।'

दूसरे दिन उस सेवा-सूचीपर राज-मुद्राकी छाप भी लग गयी तथा उसकी एक-एक प्रति राज-सभामें वितरण कर दी गयी। भरतादि बन्धुओंके साथ माताजीकी इस गोष्ठीमें निर्णीत प्रस्तावसे हनुमानजी सर्वथा अपरिचित थे। वे प्रभुकी सेवाके लिये आगे बढ़े ही थे कि उन्हें रोककर कहा गया—'आजसे प्रभुकी सेवा बाँट दी गयी है। अतएव आप इस सेवासे तो पृथक् ही रहें।'

'सेवा-वितरणका कार्य कब हुआ !' हनुमानजीने पूछा ही था कि उनके हाथमें राजमुद्राङ्कित प्रभुकी सेवा-तालिका दे दी गयी ।

अत्यन्त ध्यानपूर्वक तालिका देख लेनेके अनन्तर हनुमानजीने कहा—'अरे, इसमें तो मेरा कहीं नाम ही नहीं है ।'

उत्तर मिला—'यह तालिका आपकी अनुपस्थितिमें बनी थी । हाँ, इस तालिकाके अतिरिक्त भी कोई सेवा हो तो आप उसे ले सकते हैं ।'

ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानजीने कहा—'भगवान्‌को जँभाई आनेपर चुटकी बजानेकी सेवा इस तालिकामें नहीं है ।'

लक्ष्मणजीने कहा—'चाहें तो आप यह सेवा ले लें ।'

'ठीक है, पर इस तालिकाकी तरह मेरी सेवापर भी प्रभुके हस्ताक्षर हो जायँ और उसपर राज-मुद्रा भी अङ्कित कर दी जाय ।'

इसमें किसीको कोई आपत्ति नहीं थी । भक्तवत्सल प्रभुने हनुमानजीकी सेवाके पत्रपर तुरंत हस्ताक्षर कर दिया और उसपर राज-मुद्राकी छाप भी लगा दी गयी । बस, हनुमानजी तुरंत चुटकी तानकर प्रभुके सम्मुख वीरासनसे बैठ गये । पता नहीं प्रभुको कब जँभाई आ जाय, इसलिये चुटकी बजानेकी सेवाके लिये उन्हें सतत सावधान रहना नितान्त आवश्यक था ।

प्रभु उठे और सेवा-दक्ष हनुमानजी भी उनके साथ ही उठे । प्रभु चले और उनकी ओर मुँह किये चुटकी ताने हनुमानजी भी पीछेकी ओर चले । प्रभु बैठे, हनुमानजी भी बैठे । हनुमानजी प्रतिक्षण चुटकी ताने परम प्रभुके मुखारविन्दकी ओर निहारते रहे ।

श्रीरघुनाथजी भोजन करने बैठे और हनुमानजी उनके सामने चुटकी ताने बैठ गये । हनुमानजीको अपनी सेवाकी ही चिन्ता थी । यहाँतक कि भोजन और जलपान भी प्रभुकी ओर चुटकी ताने हनुमानजीने बायें हाथसे ग्रहण किया । एक क्षणके लिये भी उनकी दृष्टि प्रभुके मुखारविन्दसे नहीं हटती थी ।

रात्रि आयी । हनुमानजी प्रभुकी शय्याके सम्मुख चुटकी ताने खड़े थे । अर्द्धरात्रि व्यतीत हो गयी, पर सेवाग्रगण्य हनुमानजी अपनी सेवासे चूकना नहीं जानते थे । किंतु माता जानकीकी आज्ञासे उन्हें रात्रिके समय प्रभुसे पृथक् होना पड़ा ।

हनुमानजीने सोचा कि जँभाई आनेका समय तो निश्चित है नहीं, यदि मेरे परम प्रभुको रात्रिमें जँभाई आ जाय, तब तो मैं अपनी सेवासे वञ्चित रह जाऊँगा । वे प्रभुके शयनागारके समीप ऊँचे छज्जेपर बैठकर प्रभुका नाम लेते हुए चुटकी बजाने लगे । उनकी चुटकी बजती ही रही ।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

—'जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी उसे उसी प्रकार भजता हूँ ।' प्रभुके परम भक्त हनुमानजी प्रभुको जँभाई आनेकी सम्भावनासे क्षुधा-तृषा एवं निद्राका परित्याग कर जब चुटकी बजाते जा रहे हैं, तब अपने वचनके अनुसार प्रभुको जँभाई भी आनी चाहिये ।

फिर क्या था ? श्रीरघुनाथजीको जँभाई आने लगी । एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, दस बार, पचास बार नहीं, अनवरत रूपसे उन्हें जँभाई-पर-जँभाई आने लगी । अब जँभाई लेते-लेते प्रभु थक गये तो कष्टसे उनका मुँह खुला ही रह गया ।

यह दृश्य देखकर माता सीता घबरायीं । व्याकुल होकर उन्होंने माता कौसल्याजीको बुलाया । माता कौसल्या चिन्तित उठीं । फिर तो माता सुमित्रा, कैकेयी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, उनकी पत्नियाँ—सभी एकत्र हो गये । सबने देखा, प्रभु श्रीरामका मुँह खुला-का-खुला पड़ा है । वह किसी प्रकार बंद ही नहीं हो पा रहा है ।

राज्यके प्रमुख चिकित्सक दौड़े । उन्होंने बहुमूल्य ओषधियाँ दीं, किंतु भक्तानुकम्पी लीलानाटक जगदाधार स्वामीको उन ओषधियोंसे तनिक भी लाभ नहीं हुआ । उनका मुँह खुला-का-खुला ही रहा । इतना ही नहीं, अब अधिक देरसे मुख खुला रहनेके कारण नेत्रोंसे धीरे-धीरे आँसू भी बहने लगा ।

माता कौसल्या, माता सुमित्रा, माता कैकेयी, तीनों भाई, भगवती सीता आदि सभी व्याकुल होकर रुदन करने लगे । अत्यन्त करुण दृश्य उपस्थित हो गया । समाचार सुनकर गुरु वसिष्ठजी भी पहुँचे ।

प्रभु श्रीरामने हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें प्रणाम

किया, किंतु मुँह खुला होनेसे कुछ बोल न सके । नेत्रोंसे आँसू बहते ही जा रहे थे ।

इस चिन्ताजनक करुण स्थितिमें प्रभुके अनन्य सेवक हनुमानजीको न देखकर वसिष्ठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने पूछा—'हनुमानजी कहाँ हैं ?'

माता जानकीने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'... हनुमानके साथ बड़ा अन्याय हुआ है ! उसकी सारी ... छीन ली गयी । तब उसने चुटकी बजानेकी सेवा ले... । वह दिनभर प्रभुके सम्मुख चुटकी ताने खड़ा था ... सिंहासनसे बैठा रहा । अपनी इस सेवाके लिये उसने भोजन और शयनकी भी चिन्ता त्याग दी । रात्रिमें अत्यन्त कष्टसे वह यहाँसे गया । वह दुःखसे व्याकुल होकर कहीं रुदन कर रहा होगा ।'

वसिष्ठजी तुरंत दौड़े । देखा, प्रभु शयनागारके सम्मुख ऊँचे छज्जेपर हनुमानजी प्रभुके ध्यानमें मग्न होकर उनके नामका कीर्तन कर रहे हैं और उनके दाहिने हाथसे निरन्तर ...की बजती जा रही है ।

वसिष्ठजीने उन्हें पकड़कर हिलाया तो हनुमानजीके नेत्र खुले । अपने सम्मुख महामुनि वसिष्ठके दर्शन कर हनुमानजीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया । वसिष्ठजीके आज्ञानुसार हनुमानजी उनके पीछे-पीछे चल पड़े ।

हनुमानजीने प्रभुका खुला मुखारविन्द एवं उनके नेत्रोंसे बहते आँसू देखे तो वे अत्यन्त व्याकुल हो गये । अधीर वज्राङ्गबली हनुमानके नेत्रोंसे भी आँसू बहने लगे । चिन्ता और दुःखके कारण उनकी चुटकी बंद हो गयी और चुटकी बंद होते ही प्रभुका मुखारविन्द भी बंद हो गया ।

हनुमानजीने प्रभुके युगल चरणोंमें अपना मस्तक रख दिया और वे अबोध शिशुकी भाँति सिसकने लगे ।

माता सीताने हनुमानजीको उठाकर अतिशय स्नेहसे कहा—'बेटा हनुमान ! अब प्रभुकी सारी सेवा तुम्हीं किया करो । तुम्हारी सेवामें कभी कोई किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करेगा ।'

मङ्गलगुणनिधान सरलतम हनुमानजीने जगज्जननी जानकीके परम पावन चरणोंमें सिर रख दिया और अपने आँसुओंसे उनका प्रक्षालन करने लगे ।

निखिलभुवनेश्वरी माता सीताका शाश्वत शान्तिप्रदायक स्नेहपूर्ण करकमल स्वतः हनुमानजीके मस्तकपर चला गया ।

'सुमिरि पवनसुत पावन नामू'

भावुक भक्तों और कथावाचकोंद्वारा कही जानेवाली ... तीसरी कथा भी मनोरञ्जक तो है ही, इससे भगवान् ...रामके नामकी महिमा भी प्रकट होती है और यह भी विदित होता है कि श्रीरामनाम-प्रेमी हनुमानजी अपने आराध्यके नाम जापककी रक्षाके लिये प्रभु श्रीरामका अमोघ शर भी झेल लेनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं । अत्यन्त संक्षेपमें कथा इस प्रकार है—

एक बार हनुमानजीने अपने प्रभु श्रीरघुनाथजीसे (राज्याभिषेकके अनन्तर) अपनी माता अञ्जनाके दर्शनार्थ जानेकी ...ा माँगी । प्रभुने उन्हें सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी ।

हनुमानजी अपनी माताके दर्शनार्थ जानेवाले थे, उसी समय काशी-नरेश श्रीरघुनाथजीके दर्शनार्थ आ रहे थे । मार्गमें उनसे देवर्षि नारद मिल गये । काशी-नरेशने ...र्षिके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ।

'तुम कहाँ जा रहे हो ?' नारदजीने पूछ लिया ।

'प्रभो ! मैं परम प्रभु श्रीरामके दर्शनार्थ उनकी राजसभामें जा रहा हूँ ।' काशी-नरेशका उत्तर सुनते ही देवर्षिने पूछा—'मेरा एक काम करोगे ?'

'धरतीपर ऐसा कौन पुरुष है, जो आपकी आज्ञाके पालनके लिये तुरंत न दौड़ पड़े ।' नरेशने तुरंत कहा—'आप आज्ञा प्रदान करें ।'

कुछ मुस्कुराते हुए नारदजीने नरेशसे कहा—'तुम राजसभामें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम तो अवश्य करना, किंतु उन्हींके समीप सिंहासनपर बैठे वयोवृद्ध तपस्वी विश्वामित्रजीकी उपेक्षा कर देना । उन्हें प्रणाम मत करना ।'

'ऐसा क्यों भगवन् ?'

नारदजीने उत्तर दिया—'इस प्रश्नका उत्तर पीछे मिल जायगा ।'

'नारायण हरि !' नारदजी चले गये और काशी-नरेश श्रीरामचन्द्रकी राजसभामें पहुँचे । उन्होंने देवर्षिके आदेशानुसार श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, किंतु महर्षि विश्वामित्रकी सर्वथा उपेक्षा करके बैठ गये ।

काशी-नरेशकी उपेक्षासे महर्षि विश्वामित्रके हृदयपर चोट पहुँची, किंतु वे राजसभामें चुप रहे । पीछे उन्होंने सीतापति श्रीरामसे कहा—'श्रीराम ! तुम मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हो, इसलिये तुम्हारी राजसभामें तुम्हारे उपस्थित रहते मर्यादाकी अवहेलना उचित नहीं ।'

'मेरे रहते कब और कहाँ मर्यादाका उल्लङ्घन हुआ, प्रभो !' आश्चर्यके साथ प्रभुने पूछा—'आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट करें ।'

'आज ही राजसभामें काशी-नरेशने तुम्हारे चरणोंमें तो प्रणाम किया, किंतु उसने मेरी सर्वथा उपेक्षा कर दी ।' विश्वामित्रजी जैसे अशान्त हो गये थे—'यह कदापि उचित नहीं ।

मेरी राजसभामें, मेरे ही सम्मुख आपकी उपेक्षा ! यह तो मेरा भयानक तिरस्कार है ।' मर्यादापुरुषोत्तम अवधनरेशकी भृकुटि वक्र हो गयी । प्रतिज्ञा की उन्होंने—'आपके समक्ष मैं अपने तीन तीक्ष्णतम शर पृथक् रख दे रहा हूँ । इन तीन शरोंसे आज सन्ध्यातक काशिराज मारा जायगा ।'

'इन तीन शरोंसे आज सन्ध्यातक काशिराज मारा जायगा ।'—परम पराक्रमी सत्यव्रती रावणारिकी यह प्रतिज्ञा वायु-वेगसे सर्वत्र फैल गयी । काशी-नरेशने सुना तो उनका कण्ठ शुष्क हो गया । जीवनसे सर्वथा निराश, वे दौड़े देवर्षिके समीप और उनके चरणोंमें गिरकर गिड़गिड़ाते हुए बोले—'भगवन् ! सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामने आज सायंकालतक मुझे मार डालनेकी प्रतिज्ञा की है ।'

'प्रतिज्ञा तो मैंने भी सुनी है ।' देवर्षि नारदने तत्परतासे उत्तर दिया—'और श्रीरामकी प्रतिज्ञा ! सर्वविदित है कि रघुकुलमें प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिये प्राणतक होम देनेमें आपत्ति नहीं होती ।'

'प्रभो ! मैंने तो आपके आदेशका पालन किया था ।' काशिराज रो पड़े—'जैसे भी हो, आप मेरा प्राण बचा लें ।'

'चिन्ताकी बात नहीं ।' श्रीनारदजीने काशी-नरेशको समझाया—'मृत्यु तो निश्चित होती है । वह किसी प्रकार टलती नहीं । यदि भगवान् श्रीरामके शरसे प्राण-पखेरू उड़ जायँ तो निश्चय ही जीवन सफल हो जाय, किंतु तुम एक काम करो ।'

नारदजीने काशी-नरेशसे धीरे-धीरे कहा—'तुम हनुमानजीकी माता अञ्जनाके समीप जाकर उनके चरण पकड़ लो । जब वे चरण छुड़ाने लगें, तब तुम अपनी रक्षाके लिये उनसे वचन ले लेना । जबतक वे तीन बार तुम्हारी रक्षाका वचन न दे दें, तबतक तुम उनके चरण पकड़े रहना । बस, तुम्हारा काम बन जायगा ।'

परम पावन देवर्षिके चरणोंमें प्रणाम करनेकी भी काशी-नरेशको सुधि न रही । वे भागे सीधे माता अञ्जनाके यहाँ । माता अञ्जना बैठी हुई भगवन्नामका जप कर रही थीं । रोते-कलपते काशिराज माताके चरणोंपर गिर पड़े । उनके चरणोंको पकड़कर उन्होंने कहा—'माँ ! मेरी रक्षा करो । आज सायंकालतक एक समर्थ व्यक्तिने मुझे मार डालनेका संकल्प किया है । तुम्हारे अतिरिक्त मेरा प्राण और कोई नहीं बचा सकता । रक्षा करो, माँ ! रक्षा करो ।'

'किसने और क्यों तुझे आज संध्याके पूर्व ही मार डालनेका प्रण कर लिया है ?' माताने प्रश्न किया तो काशिराज और क्रन्दन करने लगा । बोले—'माँ ! तुम मेरी रक्षाका वचन दे दो, अन्यथा मैं अभी तुम्हारे चरणोंमें ही प्राण-त्याग कर दूँगा ।'

'मेरे रहते तेरा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता । वात्सल्यमयी सरल जननीने कह दिया—'मैं तेरी प्राण-रक्षाका वचन देती हूँ ।'

फूट-फूटकर रोते हुए नरेशने अधीर होकर पुनः प्रार्थना की—'माँ ! मुझे संतोष नहीं हो रहा है । मेरे विश्वासके लिये तुम यही बात तीन बार कह दो ।'

'मैं तेरी प्राण-रक्षाका वचन देती हूँ ।' सरल दयामयी जननीने तीन बार कहते हुए पूछा—'अच्छा अब तो बता, तुझे मारनेकी किसने प्रतिज्ञा की है ?'

'भगवान् श्रीरामने।' नरेशने उत्तर दिया—'उन्होंने आज सायकालतक मेरे वधकी प्रतिज्ञा की है और इसके लिये उन्होंने अपने तीन तीक्ष्ण बाण भी निकालकर अलग रख लिये हैं।'

'श्रीरघुनन्दनकी प्रतिज्ञा कैसे अन्यथा हो सकती है!' माता अञ्जना चिन्तित हो गयीं। बोलीं—'पर मैंने तुझे वचन दिया है, अतः प्रयत्न तो करूँगी ही।'

उसी समय हनुमानजीने वहाँ पहुँचकर माताका चरण स्पर्श किया। आशीर्वाद देती हुई माताने कहा—'बेटा! तुम ठीक समयपर आये। अभी-अभी मैं एक आवश्यक कार्यसे चिन्तित होकर तुम्हारा स्मरण कर रही थी। वह कार्य हो जाय तो मेरा मन हल्का हो जाय।'

'आज्ञा दीजिये, माताजी!' हनुमानजीने कहा—'आपका कार्य करनेके लिये तो मैं प्रतिक्षण प्रस्तुत हूँ।'

'पर काम तो कठिन है, बेटा! इसी कारण मैं चिन्तित हो गयी हूँ।' माता अञ्जनाके वचन सुनकर हनुमानजीने उन्हें आश्वस्त करनेके लिये कहा—'आपकी कृपासे आपका पुत्र विद्या-बुद्धि, बल-पौरुष और पराक्रमसे ही सम्पन्न नहीं, उसपर निखिल भुवनपति श्रीरघुनाथजीकी अपार करुणाकी वृष्टि भी निरन्तर हो रही है। आप आज्ञा प्रदान करें।'

'यह सब कुछ मैं जानती हूँ, मेरे लाल! किंतु काम अत्यन्त कठिन है, इसीलिये कहनेमें झिझक रही हूँ।' माताने कहा—'किंतु उसकी चिन्ता भी मुझे सता रही है।'

'माताजी! आपके पवित्रतम चरणोंके सम्मुख मैं एक बार नहीं, तीन बार प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर काम चाहे जितना कठिन होगा, मैं उसे अवश्य पूरा कर आपकी चिन्ता दूर कर दूँगा।' हनुमानजीने अपनी जननीके सम्मुख यों तीन बार कहा।

'तुमसे मुझे यही आशा थी और ऐसा ही विश्वास था, पुत्र!' माता अञ्जनाने हनुमानजीके बल, पराक्रम और उनकी प्रभुभक्तिकी प्रशंसा करते हुए कहा—'बेटा! मैंने काशी नरेशको उसकी प्राण-रक्षाका वचन दे दिया है। आज सायकालतक श्रीरघुनन्दनने उसका वध करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है और उसके लिये उन्होंने तीन तीक्ष्ण शर भी निकालकर रख लिये हैं।'

माता अञ्जना अपने पुत्रका मुँह देखने लगीं। हनुमानजी गम्भीर हो गये थे। बोले—'मेरे प्रभु श्रीरामकी प्रतिज्ञा ...।'

'पर बेटा! मैं काशिराजको वचन दे चुकी हूँ।' माताने पुत्रको विचारमग्न देखकर कहा—'और तुमने मुझे तीन बार वचन दिया है। शरणागतकी रक्षा धर्म है, बेटा! और धर्मपालन तो ...।'

'कुछ करूँगा ही, माँ।' हनुमानजीने माताके चरणोंमें मस्तक रखकर कहा—'आज सायकालतककी ही अवधि है। अतएव मुझे शीघ्र जानेकी अनुमति दीजिये।'

माताकी आज्ञा प्राप्त होते ही हनुमानजी काशी-नरेशके साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजासे कहा—'तुम सकल कलुषनाशिनी परम पावनी सरयूमें कमरतक जलमें खड़े होकर अविराम 'राम-राम'का जप करते रहो।'

नरेशने पवनपुत्रके आदेशका पालन करना प्रारम्भ किया और इधर हनुमानजी तुरंत श्रीरामके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम कर उनके दोनों चरण पकड़ लिये। बोले—'स्वामी! आज मैं आपसे एक वरकी याचना करना चाहता हूँ।'

यह कैसे सम्भव है कि सर्वथा निःस्पृह और अत्यन्त संकोची हनुमानजी कभी कुछ माँगें और प्रभु अस्वीकार कर दें। श्रीरामजीने उत्साहपूर्वक कहा—'तुम्हारे लिये अदेय कुछ नहीं, हनुमान! तुम तो कभी कुछ चाहते ही नहीं। मैं तो सदा चाहता हूँ कि तुम मुझसे कुछ चाहो, कुछ माँगो, पर मेरी इस इच्छाकी पूर्ति तुमसे नहीं हो पाती। बोलो, तुम क्या चाहते हो?'

प्रसन्न होकर हनुमानजीने प्रभुका चरण सहलाते हुए कहा—'करुणामय स्वामी! मैं चाहता हूँ कि आपके अमित महिमामय नामका जप करनेवालेकी सदा रक्षा किया करूँ और मेरी उपस्थितिमें आपके नाम-जापकपर कभी, कहीं, कोई किसी प्रकार प्रहार न करे। यदि दुर्भाग्यवश निखिल सृष्टिका सर्वसमर्थ स्वामी भी प्रहार कर बैठे तो उसका भी प्रहार व्यर्थ सिद्ध हो जाय।'

दयामूर्ति भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीने तुरंत आशीर्वाद दिया—'तुम नाम-जापककी रक्षा करनेमें सर्वत्र सदा समर्थ होओगे और तुम्हारी उपस्थितिमें नाम जापकपर किया गया अमोघ प्रहार भी व्यर्थ सिद्ध होगा।'

'जय श्रीराम !' हनुमानजीने प्रभु-चरणोंपर मस्तक रख दिया और फिर तुरत सरयू-तटपर पहुँचे। वहाँ वे गदा तानकर अत्यन्त सावधानीसे खड़े हो गये और काशी नरेशसे बोले—'तुम बिना रुके निरन्तर 'राम-राम' रटते रहो।'

स्थिति विचित्र हो गयी। एक ओर सर्वाधार स्वामी श्रीराम-जीकी सायंकालतक नरेशके वधकी प्रतिज्ञा और दूसरी ओर अनन्य भक्त हनुमानजीका उनकी रक्षाके लिये परिकरबद्ध हो जाना। राजा सरयू-जलमें खड़े होकर प्राण-भयसे अनवरतरूपसे 'राम'-नामका जप कर रहे थे और वरप्राप्त हनुमानजी उनकी रक्षाके लिये गदा ताने खड़े थे। बात विद्युद्गतिसे फैल गयी। अयोध्यावासी समस्त बाल-वृद्ध-युवा नर-नारी कौतूहलवश सरयू-पुलिनपर पहुँचे। प्रभु और सेवकके प्रतिज्ञा-पालनका दृश्य देखनेके लिये वहाँ विशाल जन-समुदाय एकत्र हो गया।

सायंकाल हो चला था। यह समाचार सत्यव्रती श्रीरघुनाथजीको भी मिला। भगवान् श्रीराम कुपित हो गये। उन्होंने अपने प्रणका पालन करनेके लिये पृथक् रखे गये तीन बाणोंमेंसे एक शर उठाया और उसे अपने विशाल धनुषपर रखकर प्रत्यञ्चा कानतक खींची और बाण छोड़ दिया। बाण अत्यन्त शीघ्रतासे नरेशके समीप पहुँचा, किंतु उन्हें 'राम'-नामका जप करते देखकर वह उनका मस्तक छिन्न नहीं कर सका। वह नरेशके चुप होनेकी प्रतीक्षा करता रहा, किंतु हनुमानजीके द्वारा दीक्षित नरेश प्राण-भयसे अविराम पूरी शक्ति लगाकर 'राम-राम' जपते ही जा रहे थे।

निराश होकर बाण प्रभुके समीप लौट आया। उसने निवेदन किया—'प्रभो! नाम-जपककी सतत रक्षाके लिये आपने मारुतिको वर प्रदान कर दिया है और उसपर सभी प्रकार स्वयं सिद्ध होनेकी आपकी वाणी है। वह राजा निरन्तर आपके नामका जप कर रहा है और पवनपुत्र हनुमान गदा ताने उसकी रक्षामें सन्नद्ध हैं। इस कारण मैं असफल होकर लौट आया।'

भुवनपावन श्रीरघुनाथजीका क्रोध बढ़ा। उन्होंने दूसरा बाण धनुषपर चढ़ाकर छोड़ा। वह वायुवेगसे चला और काशी-नरेशका प्राण हरण करनेके लिये उनके समीप पहुँचा भी, किंतु अब तो राजा हनुमानजीके आदेशानुसार निरन्तर नाम—'सीताराम-सीताराम'का जप कर रहे थे।

दूसरे शरको भी नरेशके कण्ठका स्पर्श करनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। विवश वह भी प्रभुके समीप लौट आया। उसने भी राजाके 'सीताराम-सीताराम' रटने और गदाधर हनुमानजीके द्वारा उनकी रक्षाका वृत्तान्त सुना दिया।

'मैं स्वयं सरयू-तटपर चलकर उस धृष्ट नरेश और हनुमानको भी मार डालता हूँ।' सत्यप्रतिज्ञ भगवान् श्रीराम अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपना दिव्य धनुष तथा तीसरा बाण लिया और सरयू-तटकी ओर तीव्रगतिसे चल पड़े।

उधर हनुमानजीने सोचा—'प्रभु अपने भक्तोंके नामकी विरद रखते हैं, भक्तोंके लिये वे अपना प्रण त्याग देते हैं। भक्त उन्हें प्राणप्रिय हैं।' अतएव उन्होंने राजासे कहा—'अब तुम भगवती सीता और प्रभुके नामके साथ मेरे नामका भी जप करना प्रारम्भ कर दो।' राजा 'सियाराम जय जय हनुमान'का जप करने लगे। अत्यधिक देरसे जोर-जोरसे नाम-जप करते-करते नरेश थक गये थे और उनकी वाणी लड़खड़ाने लगी थी। वे सो मृत्यु-भयसे अत्यन्त कातरतापूर्वक बैठे नाम-जप चला रहे थे, किंतु मातृ-भक्त हनुमानजी एक अद्भुत कौशलसे काशिराजके कण्ठमें प्रविष्ट होकर स्वयं 'सियाराम जय जय हनुमान'का अनवरतरूपसे जप करने लगे।

क्रोधारुणलोचन श्रीरामको शर-सन्धान किये आते देख वसिष्ठजी व्याकुल हो गये। उन्होंने सोचा—'भगवान् श्रीरामकी प्रतिज्ञा अन्यथा नहीं हो सकती और कहीं उन्होंने नरेशके साथ हनुमानजीको भी मार डाला तो महान् अनर्थ हो जायगा।' तब हनुमानजीके समीप पहुँचकर वसिष्ठजीने उन्हें समझानेका प्रयत्न किया—'पवनकुमार! श्रीरघुनाथजी तुम्हारे सर्वस्व हैं। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो जाने दो। दिनान्त समीप होनेके कारण उनका क्रोध बढ़ता जा रहा है। यह राजा तो उन श्रीरामके पावन शर-स्पर्शसे जरा-मरणसे सदाके लिये मुक्त हो जायगा। एक तुच्छ जीवके लिये अपने स्वामीके सम्मुख तनकर खड़ा हो जाना तुम जैसे सेवकके लिये कदापि उचित नहीं।'

'गुरुदेव! मैं त्रिकालमें भी अपने सर्वसमर्थ प्रभुके समीप तनकर खड़ा होनेकी कल्पना भी नहीं कर सकता

हनुमानजीने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'मैं तो अपने प्रभुके नाम और उनके वरदानकी रक्षाके निमित्त प्राणाहुति देनेके लिये प्रस्तुत हो गया हूँ। मेरा इससे अधिक सौभाग्य और क्या होगा कि मैं अपने प्राणाधिक प्रभु श्रीरामके नाम एवं उनके वरदानकी रक्षामें उनके ही करकमलोंसे छोड़े हुए उन्हींके शराघातसे शरीर त्यागकर उनमें ही विलीन हो जाऊँ।'

'इन ज्ञानमूर्तिको विचलित करना सम्भव नहीं।' वसिष्ठजीने देखा—श्रीरघुनन्दन सरयू-तटपर पहुँचना ही चाहते हैं। महर्षि विश्वामित्र भी वहाँ उपस्थित होकर भगवान् और भक्तकी यह लीला देखकर चकित और चिन्तित हो गये। तब वसिष्ठजीने काशिराजसे कहा—'नरेश! तुम शीघ्र ही महर्षि विश्वामित्रके चरण पकड़ लो। वे सहज दयालु हैं।'

'जय सियाराम जय जय हनुमान!' का जप करते हुए काशिराजने दौड़कर महर्षि विश्वामित्रके दोनों चरण पकड़ लिये। उनके अश्रुओंसे महर्षिके चरण आर्द्र हो गये। वे रोते हुए कहते ही जा रहे थे—'जय सियाराम जय जय हनुमान!'

महर्षि द्रवित हो गये। उन्होंने शर-संधान किये क्रुद्ध श्रीराघवेन्द्रसे कहा—'श्रीराम! काशी-नरेशके अपराधका प्रायश्चित्त हो गया। मैंने इसे क्षमा कर दिया, अब तुम भी अपना अमोघ शर धनुषसे उतारकर तूणमें रख लो।'

महर्षिके संतुष्ट होते ही श्रीरामका क्रोध स्वतः शान्त हो गया। उन्होंने गुरुकी आज्ञाका पालन किया। तीसरा बाण धनुषसे तूणमें आ गया। राजाकी प्राण-रक्षा तो हुई ही, भगवान्‌के सम्मुख भक्त हनुमान विजयी हुए।

इस समाचारसे माता अञ्जनाकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

परमात्म-तत्त्वोपदेशकी प्राप्ति

जब प्रकृतिसे परे परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय और निखिल सृष्टिके स्वामी, मर्यादापुरुषोत्तम, कोटिसूर्य-सदृश भगवान् श्रीराम राज्याभिषेक हो जानेपर वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे घिरे भगवती सीताके साथ सिंहासनासीन हुए, उस समय मार्गेच्छारहित, प्रतिदानशून्य, परम सेवाके साकार विग्रह अञ्जनानन्दवर्धन पवनकुमारको करबद्ध अपनी ओर अनिमेष दृष्टिसे निहारते हुए देखकर परम प्रभु श्रीराघवेन्द्रने अपनी हृदयाधिकारिणी प्रियतमा भगवती सीतासे कहा—'विदेहनन्दिनि! यह हनुमान हम दोनोंमें अनन्य भक्ति रखनेके कारण सर्वथा निष्पाप और ज्ञान प्राप्तिका योग्यतम पात्र है। अतः तुम इसे मेरे तत्त्वका उपदेश प्रदान करो।'

अपने प्राणाधार परम प्रियतमका आदेश प्राप्त कर सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी जनकनन्दिनी शरणागत परम पावन आञ्जनेयको भगवान् श्रीरामका निश्चित तत्त्व बतलाने लगीं—

राम विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥
तत्संनिधानान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः।
(अ० रा० १।१।३२-३४½)

'वत्स हनुमान! तुम श्रीरामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो, ये निःसंदेह समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियोंके अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं। और मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाली मूलप्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी संनिधिमात्रसे इस विश्वकी रचना किया करती हूँ। तो भी इनकी संनिधिमात्रसे की हुई मेरी रचनाको बुद्धिहीन लोग इनमें आरोपित कर लेते हैं।'

इसके अनन्तर जगज्जननी जानकीने भगवान् श्रीरामके प्राकट्यसे लेकर राज्याभिषेकतककी समस्त परमपावनी लीलाका वर्णन करते हुए कहा—

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि॥

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किंचित्।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति॥
(अ० रा० १।१।४२-४३)

'इस प्रकार ये समस्त कर्म यद्यपि मेरे ही किये हुए हैं

तो भी अज्ञानी लोग उन्हें निर्विकार परमात्मा भगवान् श्रीराममें आरोपित करते हैं। ये श्रीराम तो (वास्तवमें) न चलते हैं, न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन हैं, केवल मायाके गुणोंमें व्याप्त होनेके कारण ही ये वैसे प्रतीत होते हैं।

इसके अनन्तर भक्तप्राणधन लोकपति श्रीराम अपने अनन्य भक्त पवनकुमारको स्वयं उपदेश देने लगे—

(श्रीराम-हृदय)

शृणु तात प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम्।
आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान्।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः॥
बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम्।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः॥
साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाबुधैः॥
आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते।
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः॥
अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा॥
ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः।
तदाविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः॥
एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम्।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि॥
इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो
मयैव साक्षात्कथितं तवानघ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया
दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम्॥
(अ० रा० १।१।४४—५२)

मैं तुम्हें आत्मा, अनात्मा और परमात्माका तत्त्व बताता हूँ, (सावधान होकर) सुनो। जलाशयमें आकाशके तीन भेद स्पष्ट दिखायी देते हैं—एक महाकाश[1], दूसरा जलावच्छिन्न आकाश[2] और तीसरा प्रतिबिम्बाकाश[3]। जैसे आकाशके ये तीन बड़े-बड़े भेद दिखायी देते हैं, उसी प्रकार चेतन भी तीन प्रकारका है—एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन (जो बुद्धिमें व्याप्त है), दूसरा जो सर्वत्र परिपूर्ण है और तीसरा जो बुद्धिमें प्रतिबिम्बित होता है—जिसे आभासचेतन कहते हैं। इनमेंसे केवल आभासचेतनके सहित बुद्धिमें ही कर्तृत्व है अर्थात् चिदाभासके सहित बुद्धि ही सब कार्य करती है। किंतु अज्ञजन भ्रान्तिवश निरवच्छिन्न, निर्विकार, साक्षी आत्मामें कर्तृत्व और जीवत्वका आरोप करते हैं अर्थात् उसे ही कर्ता भोक्ता मान लेते हैं। (हमने जिसे जीव कहा है, उसमें) आभासचेतन तो मिथ्या है (क्योंकि सभी आभास मिथ्या ही हुआ करते हैं), बुद्धि अविद्याका कार्य है और परब्रह्म परमात्मा वास्तवमें विच्छेदरहित है, अतः उसका विच्छेद भी विकल्पसे ही माना हुआ है। (इसी प्रकार उपाधियोंका बाध करते हुए) साभास अहंरूप अविच्छिन्न चेतन (जीव) की 'तत्त्वमसि' (तू वह है) आदि महावाक्योंद्वारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म) के साथ एकता बतलायी जाती है। जब महावाक्यद्वारा (इस प्रकार) जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, उस समय अपने कार्योंसहित अविद्या नष्ट हो ही जाती है—इसमें कोई संदेह नहीं। मेरा भक्त इस उपर्युक्त तत्त्वको समझकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होनेका पात्र हो जाता है, पर जो लोग मेरी भक्तिसे विमुख होकर शास्त्ररूप गड्ढेमें पड़े भटकते रहते हैं, उन्हें सौ जन्मतक भी न तो ज्ञान होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होता है। हे अनघ! यह परम रहस्य मुझ आत्मस्वरूप श्रीरामका हृदय है और साक्षात् मैंने ही तुम्हें सुनाया है। यदि तुम्हें इन्द्रलोकके राज्यसे भी अधिक सम्पत्ति मिले तो भी तुम इसे मेरी भक्तिसे हीन किसी दुष्ट पुरुषको मत सुनाना।*

---

१ जो सर्वत्र व्याप्त है। २ जो केवल जलाशयमें ही परिमित है। ३ जो जलमें प्रतिबिम्बित है।

* साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसङ्ग्रहम्। यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः॥
ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मार्जितान्यपि। नश्यन्त्येव न संदेहो रामस्य वचनं यथा॥
योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदारेषु नित्योद्यतो वा स्तेयी ब्रह्मघ्नमातापितृवधनिरतो योगिवृन्दापकारी।
यः सम्पूज्याभिरामं पठति च हृदयं रामचन्द्रस्य भक्त्या योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते सर्वदेवैः स पूज्यम्॥
(अ० रा० १।१।५३—५६)

परम कृतार्थ मरुराज हनुमानने अपने परमाराध्य प्राणधन सीतावल्लभ श्रीरामके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया और भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभु राघवेन्द्रका त्रैलोक्यपावन स्नेहमय कर-कमल सहज ही उनके सिरको स्पर्श करने लगा।

श्रीरामाश्वमेधके अश्वके साथ

कुछ समय बाद धर्मके साक्षात् विग्रह महामुनि अगस्त्यजीकी सत्प्रेरणासे भगवान् श्रीरामने अश्वमेध यज्ञ करनेका संकल्प किया। महर्षि वसिष्ठने अत्यन्त पुष्ट, अरुण मुख, पीताभ पुच्छ, अत्यन्त शुभ्र श्यामकर्ण, परम सुन्दर एवं समस्त लक्षणोंसे लक्षित अश्वका सविधि पूजन करवाया। तदुपरान्त उन्होंने अश्वके चन्दन-चर्चित, कुङ्कुम आदि गन्धोंसे युक्त उज्ज्वल ललाटपर अत्यन्त चमकता हुआ स्वर्णपत्र बाँध दिया। उसपर राजाधिराज भगवान् श्रीरामके यशोगानके साथ अश्वके छोड़नेका उद्देश्य अङ्कित था। उस पत्रमें इसका भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया था कि 'जिन नरेशोंके मनमें हमसे अधिक शक्तिका अभिमान हो, वे इस रत्नालङ्कारोंसे विभूषित अश्वको पकड़नेका साहस करें। हम उनके हाथसे इस अश्वको बलात् छुड़ा लेंगे।'

भगवान् श्रीरामने अश्वकी रक्षाका दायित्व अपने भाई शत्रुघ्नको सौंपकर अपने प्राणप्रिय, शम्भुतेज अनिला त्मजसे कहा—'महावीर हनुमान! मैंने तुम्हारे ही प्रसादसे यह अकण्टक राज्य प्राप्त किया है। हमलोगोंने मनुष्य होकर भी जो महान् जलधिको पार किया तथा मेरी प्राणप्रिया वैदेहीके साथ मेरा जो मिलाप हुआ, यह सब कुछ मैं तुम्हारे ही बलका प्रभाव समझता हूँ। मेरी आज्ञासे तुम मेरी सेनाके रक्षक होकर जाओ। मेरे भाई शत्रुघ्नकी तुम्हें मेरी ही भाँति रक्षा करनी चाहिये। महामते! जहाँ कहीं भाई शत्रुघ्नकी बुद्धि विचलित हो, वहाँ-वहाँ तुम इन्हें समझा-बुझाकर कर्तव्यका ज्ञान कराना।'

अपने परम प्रभु भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाते ही समरप्रिय अञ्जनानन्दवर्धन पुलकित हो गये। उन्होंने यात्राके लिये उद्यत होकर अपने आराध्यके लोकपावन चरणकमलोंमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। भगवान् श्रीरामके आदेशानुसार कालजित् नामक सेनापतिके साथ भरत-कुमार पुष्कल और जाम्बवान्‌के साथ अङ्गद, गवय, मैन्द, दधिमुख, वानरराज सुग्रीव, शतबलि, अक्षिक, नील, नल, मनोवेग तथा अधिमंता आदि वीराग्रणी वानर भी अश्वके पीछे चलनेके लिये प्रस्तुत हो गये। फिर श्रीराघवेन्द्रके श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्रके परामर्शके अनुसार शस्त्रास्त्रमें निपुण, महान् विद्वान्, धनुर्धर तथा परम पराक्रमी वीरवर प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उग्राश्व और शस्त्रवित् कवच एवं शिरस्त्राणसे सुसज्जित अपने अपने आयुध धारणकर चतुरङ्गिणी सेनाके साथ महायज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको आगे करके उल्लासपूर्वक चले। उस समय अश्वकी रक्षामें चलनेवाले प्रत्येक योद्धाके मन और प्राण उत्साहसे भरे थे। वे सभी हर्षमग्न थे। ऐसे रथी, हयारूढ एवं गजारोही शूरवीरोंसे सम्पन्न उस विशाल वाहिनीका सौन्दर्य अत्यन्त अद्भुत था।

भगवान् श्रीरामकी अजेय चतुरङ्गिणी सेनाका सर्वत्र सादर अभिनन्दन होता था। श्रीरामानुज शत्रुघ्न, पुष्कल तथा पवनकुमारके दर्शन कर राजे-महाराजे अपना जीवन सफल समझते थे। इस प्रकार श्रीरामाश्वमेधके अनुपम सुन्दर अश्वके साथ दशरथनन्दन शत्रुघ्नकी विशाल वाहिनी पयोष्णी नदीके तटपर पहुँचकर द्रुतगतिसे आगे चलने लगी। कपिश्रेष्ठ हनुमानके साथ शत्रुघ्न तथा पुष्कल अपने समस्त वीरोंके साथ भाँति भाँतिके आश्रम देखते तथा वहाँ जगत्पावन श्रीरघुनाथजीके गुणगान सुनते हुए यात्रा कर रहे थे। उस समय उन्हें चतुर्दिक् मुनियोंकी यह कल्याणकारिणी वाणी सुनायी पड़ती थी—'यह यज्ञका अश्व चला जा रहा है, जो श्रीहरिके अंशावतार श्रीशत्रुघ्नजीके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित है। भगवान्‌का अनुसरण करने

'यह समस्त वेदान्तका सार-सग्रह साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीका कहा हुआ है। जो कोई इसे भक्तिपूर्वक सदा पढ़ता है, वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है। इसके पठनमात्रसे अनेक जन्मोंके सञ्चित ब्रह्महत्यादि समस्त पाप निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि श्रीरामके वचन ऐसे ही हैं। जो कोई अत्यन्त भ्रष्ट, अतिशय पापी, परधन और परस्त्रियोंमें सदा प्रवृत्त रहनेवाला चोर, ब्रह्महत्यारा, माता पिताका वध करनेमें लगा हुआ और योगिजनोंका अहित करनेवाला मनुष्य भी श्रीरामचन्द्रजीका पूजन कर इस श्रीराम हृदयका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह समस्त देवताओंके पूज्य उस परम पदको प्राप्त होता है, जो योगिराजोंको भी दुर्लभ है।

वाले वानर तथा भगवद्भक्त भी उसकी रक्षा कर रहे हैं।'

निरन्तर भक्तिसे प्रभावित रहनेवाली चित्तवृत्तियोंवाले महर्षियोंके इन वचनोंसे प्रसन्न होते हुए सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न मनुपुत्र शर्यातिके महान् यज्ञमें इन्द्रका मान भङ्ग कर अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग देनेवाले, तपस्या और योगबलसे सम्पन्न भृगुपुत्र महर्षि च्यवनके पावनतम आश्रममें पहुँचे। वैरशून्य जन्तुओंसे भरा हुआ वह आश्रम सिद्ध तपस्वियोंसे सुशोभित था।

सुमित्रानन्दन शत्रुघ्नने तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप महर्षि च्यवनके सम्मुख अत्यन्त विनयपूर्वक अपना परिचय देते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

महर्षि च्यवनने शत्रुघ्नको यशस्वी होनेका आशीर्वाद प्रदान करते हुए समीपस्थ मुनियोंसे कहा—'ब्रह्मर्षियो! यह आश्चर्यकी बात देखो, जिनके नामका स्मरण और कीर्तन आदि मनुष्यके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं, महान् पातकी और परस्त्री-लम्पट पुरुष भी जिनका नाम-स्मरण करके आनन्दपूर्वक परमगतिको प्राप्त होते हैं, वे भगवान् श्रीराम भी यज्ञ करनेवाले हैं। जिह्वा वही उत्तम है, जो श्रीरघुनाथजीके नामोंका आदरके साथ कीर्तन करती है। जो इसके विपरीत आचरण करती है, वह तो साँपकी जीभके समान है*। आज मुझे अपनी तपस्याका फल प्राप्त हुआ है क्योंकि अब मैं उन निखिल सृष्टिपति परम करुणामय प्रभुके अनूप रूपका दर्शन प्राप्त करूँगा। उनके निखिलभुवनपावन चरणोंकी रजसे अपने शरीरको तथा उनकी अत्यन्त विचित्र वार्ताओंका पठन कर अपनी वाणीको पवित्र कर लूँगा।'

करुणामूर्ति श्रीरामके स्मरणसे महर्षि च्यवन प्रेममें निमग्न हो गये। प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण महर्षि गद्गद कण्ठसे पुकारने लगे—'हे श्रीरामचन्द्र! हे रघुनन्दन!! हे धर्ममूर्ति!!! हे महाराजाधिराज करुणामय प्रभो!!! आप अपने पावनतम चरणकमलोंकी रज प्रदान कर मेरा संसार सागरसे उद्धार कर दीजिये।'

'राम' और 'राम' के गानसे शून्य ध्यानमग्न महर्षिसे सुमित्रानन्दन शत्रुघ्नने अत्यन्त विनीत वाणीमें निवेदन किया—'मुनिराज! निश्चय ही सर्वपूज्य श्रीरघुनाथजी परम भाग्यशाली हैं, जो आप-जैसे तपस्वियोंके हृदयमें निवास करते हैं। ऋषिवर! आप अपने चरणकमलोंकी पवित्र धूलिसे हमारे यज्ञको पवित्र करनेकी कृपा करें।'

दशरथनन्दन शत्रुघ्नके वचन सुन महर्षि च्यवन सपरिवार अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए। उन्हें पैदल यात्रा करते देखकर पवननन्दनने शत्रुघ्नसे विनीत वाणीमें कहा—'स्वामिन्! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो इन श्रीरामभक्त महर्षिको मैं अपनी पीठपर पहुँचा आऊँ।'

श्रीरामानुजने तुरंत उत्तर दिया—'हाँ, आप इन्हें पहुँचा आइये।'

बस, परम पराक्रमी हनुमान्‌जीने परिवारसहित महर्षि च्यवनको अपनी पीठपर बैठाकर तुरंत अयोध्या पहुँचा दिया। महर्षिकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। समर्थ महर्षिका सहज आशीर्वाद मारुतात्मजने प्राप्त कर लिया।

राजा सुबाहुपर कृपा

भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वके साथ दशरथनन्दन शत्रुघ्नकी सायुध चतुरङ्गिणी सेना चक्राङ्का नगरीके समीप पहुँची। उस सुन्दर एवं सम्पन्न नगरीके नरेश धर्मात्मा सुबाहु थे। एकपत्नीव्रती महाराज सुबाहु सर्वगुणसम्पन्न, प्रजापालक, परम पराक्रमी, अनुपम योद्धा तो थे ही, श्रीरघुपतिशायी लक्ष्मीपति विष्णुके अनन्य भक्त भी थे। वे दयामय विष्णुकी मधुर-मनोहर लीला-कथाके अतिरिक्त अन्य वार्ता सुनना भी नहीं चाहते थे। वे धर्मप्राण आदर्श नरपति सदा विष्णुबुद्धिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। परधर्मसे विमुख वे महान् राजा स्वधर्म पालनमें सतत तत्पर रहते थे।

आखेटके लिये निकले हुए राजाके वीरात्मा कुमार दमनकी दृष्टि उस अश्वपर पड़ी। बस, वीरवर दमनने अश्व को पकड़ लिया। शत्रुघ्नकी विशाल सेनाके रक्षकोंके साथ राजकुमार दमनका भयानक संग्राम हुआ। पुष्कलने दमनके प्रबल पराक्रम एवं अद्भुत युद्धकौशलको देखकर

* महापातकयुक्तो [illegible] परदाररतो नरः। [illegible] मुक्तः [illegible] परां [illegible] ॥
सा जिह्वा रघुनाथस्य नामकीर्तनमाचरेत्। करोति विपरीता या फणिनो रसनासमा॥
(पद्म०, पा० खं० [illegible])

शत्रुघ्नकी सेना चकित हो गयी। शत्रुघ्नकी सेनाका भीषण संहार हुआ, किंतु भरतनन्दन पुष्कलके साथ भयानक युद्धमें वीरताके सजीव विग्रह दमन मूर्च्छित हो गये।

फिर तो वीराग्रणी राजा सुबाहु स्वयं सुवर्णभूषित रथपर आरूढ होकर निकले। गदायुद्धमें प्रवीण राजा सुबाहुके भाई सुकेतु और उनके युद्धकलामें निपुण पुत्र चित्राङ्ग और विचित्र भी अपने-अपने आयुध धारण कर युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए।

राजा सुबाहुने अपने वीर पुत्र दमनको रथमें बैठाकर अपनी सेना क्रौञ्च-व्यूहमें खड़ी कर दी। उसके मुखके स्थानपर सुकेतु और कण्ठकी जगह चित्राङ्ग सावधान होकर खड़े हो गये। पंखोंके स्थानपर नरेशके वीर पुत्र दमन और विचित्र डट गये। स्वयं वीरवर राजा सुबाहु पुच्छ-भागमें स्थित थे।

अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ गया। अतुल पराक्रमशाली राजकुमार चित्राङ्ग और भरत-पुत्र पुष्कल परस्पर एक दूसरेको पराजित करनेका पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। राजकुमार चित्राङ्गकी वीरता एवं शस्त्र-कौशलसे वीरवर पुष्कल अत्यन्त चकित थे, किंतु उनके तीक्ष्णतम शरसे सुबाहु-पुत्र चित्राङ्गका किरीट और कुण्डलोंसहित मस्तक कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

क्षात्र धर्मका पालन करते हुए वीरवर चित्राङ्गके स्वर्ग प्रयाणसे राजा सुबाहुके भाई, उनके पुत्र और समस्त सैनिक अतिशय क्रुद्ध होकर भयानक युद्ध करने लगे। स्वयं परम पराक्रमी श्रेष्ठ वीर धर्मात्मा सुबाहु भीषण युद्धमें तत्पर हो गये। उनके महान् संहारसे पार्श्वभागकी रक्षा करनेवाले अतुलित बलशाली वज्राङ्ग हनुमान उनकी ओर दौड़े। नखायुध महावीर पवन-पुत्र मेघकी भाँति विकट गर्जना कर रहे थे। महाराज सुबाहुने अपने सम्मुख समरप्रिय अञ्जनानन्दनको देखते ही उनपर तीक्ष्णतम दस शरोंसे प्रहार किया, किंतु महाशक्तिशाली वीरपुंगव हनुमानने उन शरोंको हाथसे पकड़कर उन्हें टुकड़े टुकड़े कर फेंक दिया और तुरंत उन्होंने राजा सुबाहुको रथसहित अपनी लंबी पूँछमें लपेट लिया। हनुमानजीको रथ लेकर जाते हुए देखकर महाराज सुबाहु कपिश्रेष्ठ हनुमानपर बड़े वेगसे तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा करने लगे। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग राजा सुबाहुके शरोंसे विद्ध हो रहे थे और उनकी स्वर्ण-तुल्य विशाल देहपर जपा पुष्पके तुल्य लाल-लाल रक्त-कण शोभा दे रहे थे। धर्मप्राण सुबाहुकी इस धर्ममय अर्चनासे मुदित होकर निखिलभुवनपावन भगवान् श्रीरामके अनन्यतम प्रीतिभाजन भक्तोद्धारक हनुमान बड़े वेगसे उछले और उन्होंने उत्तम योद्धाओंसे परिवेष्टित परम भाग्यवान् राजा सुबाहुके विशाल वक्षपर अपने चरणोंसे प्रहार किया। वातात्मजका भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला पाद प्रहार नरेश नहीं सह सके। वे मुखसे रक्त वमन करते हुए धरतीपर गिरकर मूर्च्छित हो गये।

सीतासमेत श्रीरामपादसेवाधुरंधर शिवपुत्र हनुमानका लोकपावन चरणस्पर्श! तत्क्षण चमत्कार हुआ। मूर्च्छितावस्थामें श्रमित धर्मानुरागी परम वैष्णव, वीरपुंगव नरेश सुबाहुने देखा—'परमपावन साकेत! वहाँ पुनीत सरयूके सुरम्य तटपर यज्ञ करनेवाले कौसल्यानन्दन श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे घिरे अलौकिक यज्ञ-मण्डपमें विराजमान हैं। चतुर्मुख ब्रह्मादि देवगण तथा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके प्राणी उन पद्मपत्रलोचन प्रभुके सम्मुख बद्धाञ्जलि खड़े होकर उनका श्रद्धा भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तवन कर रहे हैं। नवनीरदवपु कमल-लोचन श्रीरामने अपने हाथमें मृगका सींग धारण कर रखा है। नारद आदि देवर्षिगण वीणादिके मधुर तानपर सकल गुणगणनिलय दयामय प्रभुका सुयश गान कर रहे हैं। चारों वेद मूर्तिमान् होकर सीतापति श्रीरामकी उपासना करते हैं। निखिल सृष्टिमें सुन्दरतम श्रेष्ठ वस्तुओंको प्रदान करनेवाले भक्ततापनिवारक करुणामूर्ति पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीराम ही हैं।'

कृतार्थजीवन राजा सुबाहुकी मूर्च्छा दूर हुई तो उनके नेत्रोंसे आनन्दमय प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने तुरंत अपने भाई तथा पुत्रोंको युद्ध बंद कर देनेका संकेत किया। उन्होंने सबको बताया—"आज हमारा पुण्यमय दिवस है। आज ही मेरा सौभाग्य-सूर्य उदित हुआ है। प्राचीनकालकी बात है। मैं तत्त्वज्ञानकी इच्छासे तीर्थोंमें गया था। सौभाग्य वश मैं असिताङ्ग मुनिकी सेवामें पहुँच गया। वे वीतराग महात्मा मुझे दशरथनन्दन श्रीरामको परब्रह्म परमात्मा एवं उनकी हृदयाधिकारिणी विदेहजाको चिन्मयी शक्तिके मूर्तिमान् विग्रह बताने लगे। संसार-सागरसे तरनेके लिये उन्होंने श्रीसीता रामकी उपासनाका उपदेश देने लगे, किंतु मुझे उनके वचनों-पर विश्वास नहीं हुआ। 'अजन्माका जन्म कैसे! अकर्ताका संसारमें आनेका प्रयोजन?

“महर्षिने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया—‘नीच! तू श्रीरघुनाथजीके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानता, फिर भी प्रतिवाद कर रहा है। उन्हें साधारण मनुष्य बताकर उनका उपहास कर रहा है, इस कारण तू तत्त्वज्ञान तो प्राप्त ही नहीं कर सकेगा, केवल उदर-पोषणमें लगा रहेगा।’

“महामुनिके शाप भयसे व्याकुल होकर मैंने उनके चरण पकड़ लिये। मुझे रोते देखकर दयामय मुनिने कहा—‘राजन्! जब तुम भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वको पकड़कर उनके यज्ञमें विघ्न उपस्थित करोगे, तब ज्ञानमूर्ति बुद्धिविशुद्धिमुक्तिदाता हनुमानजी बड़े वेगसे तुम्हारे ऊपर पाद-प्रहार करेंगे। उन तत्त्वप्रकाशक पवननन्दनके स्पर्शसे ही तुम्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होगी।’

महाराज सुबाहुने आगे कहा—“और आज उन सुमति नामक परमपावन कृपामय श्रीरामदूतने अपने लोकपावन चरण कमलोंका प्रहारके मिषसे मेरे वक्षसे स्पर्श करा दिया। आज मेरी बुद्धि शुद्ध हो गयी, मैं पवित्र हो गया और मेरा जीवन तथा जन्म सफल हो गया। मैं ही नहीं, तुम सभी धन्य हो गये।”

भगवान् श्रीरामके अश्वके साथ प्रचुर समृद्धि-सम्पन्न कोष, हाथी, घोड़े, वस्त्र, रत्न, मोती तथा मूँगे आदि अगणित द्रव्य लेकर धर्मात्मा नरशिरोमणि सुबाहु विचित्र, दमन, सुकेतु तथा अन्यान्य शूर-वीरोंके साथ पैदल ही चले। भगवान् श्रीरामके ध्यान एवं हनुमानजीकी कृपाकी स्मृतिसे उनका हृदय उत्फुल्ल एवं आनन्दमग्न था, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी थी; पर उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रु प्रवाह चल रहा था।

उदार राजा सुबाहुके प्रेमपूर्ण आगमनका संवाद प्राप्त होते ही श्रीरामानुज शत्रुघ्न उनसे वहीं पधारकर मिले। अपना सर्वस्व समर्पित करनेकी कामना व्यक्त कर कुमार दमनके युद्धारम्भके लिये क्षमा-याचना करते हुए महाराज सुबाहुने अधीर होकर पूछा—“भगवान् श्रीरामके त्रैलोक्यवन्दित चरणकमलोंके अनन्य मधुकर भक्तानुरागी हनुमानजी कहाँ हैं? उन्हींकी कृपासे मुझ महामूढको भवतापनिवारक पद्म पलाशलोचन परम प्रभु श्रीरामके दर्शनकी लालसा उत्पन्न हुई है।”

जब उन्होंने भवतापनिवारक स्वर्णवर्ण हनुमानजीको देखा तो उनके मुक्तिदाता चरणोंपर गिर पड़े, किंतु विनीतात्मा महावीर हनुमानने उन्हें बीचसे ही ऊपर अपने अङ्कमें भर लिया।

महामुनि आरण्यकसे मिलन

वायुवंशोद्भव हनुमान शत्रुघ्नकी अक्षौहिणी सेनाके साथ भी उनकी रक्षाके लिये सतत सावधान रहते थे। अश्वके पीछे-पीछे विशाल चतुरङ्ग वाहिनी परमपावनी नर्मदाके तटपर पहुँची। वहाँ तपस्वी ऋषियोंका समुदाय निवास करता था। वहीं नर्मदाके तटपर पल्लवोंके पत्तोंसे बनी एक पुरानी पर्णशाला थी। उसे नर्मदाका जल स्पर्श कर रहा था। उसमें भगवान् श्रीरामके ध्यानपरायण महामुनि आरण्यक निवास करते थे। हनुमान, पुष्कल और अपने नीतिकुशल मन्त्री सुमतिके साथ श्रीरामानुजने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। महर्षिने जब उन्हें यज्ञाश्वके रक्षकके रूपमें देखा तो वे भगवान् श्रीरामकी भुवनमङ्गलकारिणी मनोहर लीला-कथा सुनते हुए कहने लगे—‘स्थिर ऐश्वर्यपदको देनेवाले एकमात्र रमानाथ भगवान् श्रीरघुवीरजी ही हैं। जो लोग उन भगवान्‌को छोड़कर दूसरेकी पूजा करते हैं, वे भूले हैं। जो स्मरण करनेमात्रसे मनुष्योंके पहाड़-जैसे पापोंका भी नाश कर डालते हैं, उन भगवान्‌को छोड़कर मूढ मनुष्य योग, याग और व्रत आदिके द्वारा क्लेश उठाते हैं। सकाम पुरुष अथवा निष्काम योगी भी जिनका अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं तथा जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं वे भगवान् श्रीराम स्मरण करनेमात्रसे सारे पापोंको दूर कर देते हैं।’*

फिर महामुनिने महर्षि लोमशका उपदेश सुनाते हुए आगे कहा—‘एक ही देवता हैं—श्रीराम, एक ही व्रत है—उनका पूजन, एक ही मन्त्र है—उनका नाम तथा एक ही शास्त्र है—उनकी स्तुति। अतः तुम सब प्रकारसे परम

* मूढा भ्रमन्ति हरिं त्यक्त्वा कुर्वन्त्यन्यं समर्चनम्। रघुवीरं रमानाथं स्थिरसर्वेश्वरप्रदम्॥
यो वै स्मरणमात्रेण हरते पापपर्वतम्। तं हित्वा क्लिश्यते मूढा योगयागव्रतादिभिः॥
ध्यायन्ते योगिनोऽपि यं निष्कामाः कामवर्जिताः। सकामा अपि मुक्तिदं स्मरणमात्राघनाशनम्॥
(प० पु०, पा० खं० ३५। ११। १२। १३)

मनोहर श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो, इससे तुम्हारे लिये यह महान् संसार-सागर गौके खुरके समान तुच्छ हो जायगा।'*

अपने परमाराध्य परम प्रभु श्रीरामका माहात्म्य सुनकर श्रमात्मज मन-ही-मन पुलकित हो रहे थे, उनका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया था और नेत्र प्रेमाश्रुओंसे भर गये थे। जब महामुनि आरण्यक भगवान् श्रीरामकी लीला-कथा सुनाने लगे तो उनके नेत्र बरसने लगे और जबतक श्रीराम लीलाका वर्णन होता रहा, उनके नेत्रोंसे अनवरत अश्रुपात होता ही रहा।

परमपावन श्रीरामकी भवतापतारिणी एवं मुनिमनोहारिणी मधुर कथाका वर्णन कर लेनेके उपरान्त जब महर्षि आरण्यकको ज्ञात हुआ कि मेरे आराध्यदेव भगवान् श्रीरामने ही अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ली है और मेरे आश्रमपर उनके अनुज शत्रुघ्न सहित उनका ही अश्व आया है, तब तो उनका मन-मयूर नृत्य कर उठा और जब उन्हें यह विदित हुआ कि संसार भयनाशन, अनन्तमङ्गल, श्रीरामपरायण महावीर हनुमान मेरे सम्मुख हाथ जोड़ खड़े हैं, तब वे जोरसे बोल उठे—'आज मेरी जननीका वरदान सफल हो गया। आज मेरा ध्यान, जप, तप और अग्निहोत्र सब सफल हो गया।'

दूसरे ही क्षण वयोवृद्ध महामुनि आरण्यकने श्रीरामप्राण हनुमानजीको अपने हृदयसे सटा लिया। हनुमानजीने भी स्नेहातिरेकसे उन्हें अपने अङ्कमें भर लिया। उस समय महामुनिके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी, किंतु उनके आनन्दकी सीमा न थी। यही दशा हनुमानजीकी भी थी। महामुनि आरण्यक और हनुमान—जैसे प्रेमके दो विग्रह परस्पर आलिङ्गनबद्ध हो गये थे।

दोनोंके हृदयसे प्रेमकी धारा फूटकर बह रही थी। दोनों ही आनन्दामृतमें डूबकर शिथिल एवं चित्रलिखित-से स्थित हो रहे थे। जगत्कारण श्रीरामकी प्रीतिसे दोनोंके हृदय पूर्ण थे। अतएव दोनों ही बैठकर भगवान् श्रीरामके मधुर मनोहर लीला-गुण-गानमें तन्मय हो गये।

भक्त और भगवान्

धर्मप्राण महाराज वीरमणि देवनिर्मित देवपुर नामक अमित वैभव-सम्पन्न नगरके नरेश थे। पूर्वकालमें पवित्र क्षिप्रा-तटस्थित महाकाल-मन्दिरमें उनके कठोर तपश्चरणसे संतुष्ट होकर देवाधिदेव महादेवने उन्हें वर प्रदान करते हुए कहा था—'देवपुरमें तुम्हारा राज्य होगा और भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञके अश्वके आनेतक तुम्हारी रक्षाके लिये मैं यहीं निवास करूँगा।' देवपुर-वासियोंके घरोंकी दीवारें स्फटिक-मणिकी बनी हुई थीं। मणि माणिक्य एवं अपरिमित धनसे सम्पन्न देवपुरमें समस्त भोग सदा सुलभ थे।

भगवान् श्रीरामके अश्वमेधका अश्व देवपुरके समीप पहुँचा ही था कि वीरवर वीरमणिके यशस्वी पुत्र रुक्माङ्गदने उसे पकड़ लिया और जब महाराज वीरमणिने सुना कि श्रीरामके अनुज शत्रुघ्नकी वाहिनी युद्धके लिये बढ़ती चली आ रही है, तब उन्होंने सशस्त्र चतुरङ्गिणी सेना तैयार करनेके लिये अपने प्रबल पराक्रमी सेनापति रिपुवारको आदेश दे दिया।

वीराग्रणी रिपुवारके सेनापतित्वमें महाराज वीरमणिके वीर सैनिक तो कुछ ही देरमें शस्त्रास्त्र सजकर तैयार हो ही गये, उनके भाई वीरसिंह, भानजा बलमित्र तथा राजकुमार रुक्माङ्गद और शुभाङ्गद भी युद्धके लिये रथपर आरूढ़ होकर प्रस्तुत हो गये। स्वयं शिव भक्त वीरवर महाराज वीरमणि भी अस्त्र शस्त्रोंसे भरे श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ होकर रणभूमिकी ओर अग्रसर हुए।

भयानक युद्ध छिड़ गया। पवनपुत्र हनुमान शत्रु-पक्षका संहार करते हुए पुष्कल और शत्रुघ्नकी रक्षाका सदा ध्यान रखते थे। उनकी महाराज वीरमणिके भाई वीरसिंहसे मुठभेड़ हो गयी। उनके तीक्ष्ण शरोंसे आकुल होकर हनुमानजीने उनकी छातीमें अपने वज्रके समान मुक्केसे आघात किया। वीरसिंह वज्राङ्ग हनुमानका वह प्रहार न सह सके और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अपने चाचाको मूर्च्छित होते देखकर रुक्माङ्गद और शुभाङ्गद—दोनों हनुमानजीसे भयंकर युद्ध करने लगे। महावीर हनुमानजीने उन्हें रथसहित अपनी पूँछमें लपेट लिया और रथको घुमाकर पृथ्वीपर इतने जोरसे पटका कि वह तो ध्वस्त हो ही गया, दोनों राजकुमार भी मूर्च्छित हो गये। इसी प्रकार बलमित्र भी रणस्थलमें मूर्च्छित होकर धराशायी हो गये। महाराज वीरमणिने वीर पुष्कलपर

---

* एको देवो रामचन्द्रो व्रतमेकं तदर्चनम्। मन्त्रोऽप्येकश्च तन्नाम शास्त्रं तद्ध्येव तत्स्तुतिः॥
तस्मात्सर्वात्मना रामचन्द्रं भज मनोहरम्। यथा गोष्पदवत्तुच्छो भवेत्संसारसागरः॥
(प० पु० पा० खं० ३५। ५१-५२)

ओषधि ही मुझे दे दो, जिससे मैं अपने मरे हुए वीरोंको प्राण दान दूँ।' पवनपुत्रके वचन सुनकर सबने उन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मृतसञ्जीवनी ओषधि उन्हें दे दी। हनुमानजी अत्यन्त वेगपूर्वक युद्धभूमिमें पहुँचे। वहाँ भक्तवत्सल भगवान् शिव अपने भक्तके अनुसार पुष्कल एवं शत्रुघ्नादि वीरपुङ्गवोंके शरीरोंकी रक्षा कर रहे थे।

हनुमानजीने पुष्कलके वक्षपर ओषधि रखी और उनके सिरको धड़से जोड़कर कहा—'यदि मैं मन, वाणी और क्रियाके द्वारा श्रीरघुनाथजीको ही अपना स्वामी समझता हूँ तो इस दवासे पुष्कल शीघ्र ही जीवित हो जायँ।'* पुष्कल तुरत ही उठ बैठे। वे युद्ध करनेके लिये वीरभद्रको ढूँढ़ने लगे।

हनुमानजी तुरत शिवके बाणसे मूर्च्छित शत्रुघ्नके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने शत्रुघ्नकी छातीपर ओषधि रखकर कहा—'यदि मैंने प्रयत्नपूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया है तो वीर शत्रुघ्न क्षणभरमें जीवित हो उठें।' †

शत्रुघ्न तत्काल ही जीवित हो उठे और वे युद्धके लिये भगवान् शंकरको ढूँढ़ने लगे। पराक्रमी हनुमानजीने उस ओषधिके द्वारा अपने पक्षके समस्त मृत सैनिकोंको जीवित कर दिया। फिर तो सभी योद्धा कवचादिसे सुसज्जित हो अपने-अपने रथपर आरूढ होकर शत्रुका मान-मर्दन करनेके लिये वेगपूर्वक चले।

इस बार राजा वीरमणि स्वयं शत्रुघ्नसे युद्ध करनेके लिये डट गये। यद्यपि महाराज वीरमणिने शत्रुघ्नके साथ भयानक युद्ध किया, किंतु शत्रुघ्नके तीक्ष्ण बाणोंके असह्य आघातसे वे मूर्च्छित हो गये। यह देखकर भगवान् शंकर अत्यन्त कुपित हो गये और उन्होंने स्वयं शत्रुघ्नसे युद्ध प्रारम्भ कर दिया। शिव और शत्रुघ्नका समर अत्यन्त भयानक था। शत्रुघ्न प्रलयंकर शिवके प्रहारोंको नहीं सह पाते थे। उन्हें व्याकुल देखकर हनुमानजीने उनसे कहा—'अपनी रक्षाके लिये इस समय आप अपने अग्रज श्रीरघुनाथजीका ही स्मरण करें, इसके अतिरिक्त प्राण-रक्षाका अन्य कोई मार्ग नहीं है।' हनुमानजी के सत्परामर्शसे शत्रुघ्नजी अपनी रक्षाके लिये श्रीरघुनाथजीसे अत्यन्त करुण स्वरमें प्रार्थना करने लगे।

फिर क्या था! नवदूर्वादलश्याम कमलनयन भगवान् श्रीराम हाथमें मृग शृङ्ग लिये यज्ञदीक्षित पुरुषके वेषमें वहाँ उपस्थित हो गये। युद्ध-स्थलमें उन्हें आया देखकर शत्रुघ्न अत्यन्त विस्मित किंतु सर्वथा निश्चिन्त हो गये।

हनुमानजीकी प्रसन्नताकी तो सीमा ही न थी। वे दौड़कर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'स्वामिन्! आपकी भक्तवत्सलता धन्य है! हम अत्यन्त धन्य हैं, जो इस समय श्रीचरणोंका दर्शन पा रहे हैं। प्रभो! अब आपकी कृपासे हमलोग शत्रुको कुछ ही क्षणोंमें पराजित कर देंगे।'

उसी समय जब देवाधिदेव महादेवजीने अपने हृदयधन भगवान् श्रीरामको वहाँ उपस्थित देखा तो आगे बढ़कर उन्होंने उनके चरणकमलोंमें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक कहा—'कृपामय प्रभो! आज मेरा परम सौभाग्य है, जो मैं यहाँ आपके दुर्लभतम दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ। कृपालो! मैंने अपने भक्तके हितके लिये आपके कार्यमें विघ्न उपस्थित किया है, कृपया मुझे क्षमा कीजिये। मैंने पूर्वकालमें इस नरेशको वरदान दिया था। उसी सत्यसे मैं इस समय बँधा हूँ। अब यह राजा अपना सम्पूर्ण जीवन आपके चरणोंकी सेवामें ही समर्पित कर देगा।'

कर्पूरगौर महेश्वरका कथन सुन भगवान् श्रीरामने कहा—'भगवन्! अपने भक्तोंका पालन करना तो देवताओंका धर्म ही है। आपने जो इस समय अपने भक्तकी रक्षा की है, आपके द्वारा यह बहुत उत्तम कार्य हुआ है। शिवजी! मेरे हृदयमें आप हैं और आपके हृदयमें मैं हूँ। हम दोनोंमें भेद नहीं है। जो मूर्ख हैं, जिनकी बुद्धि दूषित है, वे ही भेददृष्टि रखते हैं। हम दोनों एक रूप हैं। जो हमलोगोंमें भेद-बुद्धि करते हैं, वे मनुष्य हजार कल्पोंतक कुम्भीपाकमें पकाये जाते हैं। महादेवजी! जो सदा आपके भक्त रहे हैं, वे

* यद्यहं मनसा वाचा कर्मणा राघवं प्रति। जानामि तर्हि पथ्येन भेषजेनाशु जीवतु॥
(प० पु०, पा० ख० ४५। २३)

† यद्यहं ब्रह्मचर्यं च आजन्मपर्यन्तमुत्तमम्। पालयामि तदा वीरः शत्रुघ्नो जीवतु क्षणात्॥
(प० पु०, पा० ख० ४५। ३१)

धर्मात्मा पुरुष मेरे भी भक्त हैं तथा जो मेरे भक्त हैं, वे भी बड़ी भक्तिसे आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।' *

भगवान् श्रीरामचन्द्रके वचन सुन करुणामूर्ति शिवजीने अपने अमृतमय कर-स्पर्शसे मूर्च्छित राजा वीरमणिको जीवित कर दिया। इसी प्रकार उनके अन्य पुत्रादि भी मृत्युकर शिवकी कृपासे जीवित हो गये। फिर तो महाराज वीरमणिने अत्यन्त आदरपूर्वक यज्ञाश्वको प्रभुके सम्मुख उपस्थित किया तथा अपने पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित प्रभुकी सेवामें ही अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। यह देखकर परोपकारमूर्ति पवनकुमार आनन्दमग्न हो गये।

शापोद्धारक

भगवान् श्रीरामके अश्वमेधका अश्व घूमता हुआ हेमकूट पर्वतके एक विशाल उद्यानमें पहुँचा ही था कि वहाँ अकस्मात् उसका सारा शरीर अकड़ गया। वह हिल-डुल भी नहीं सकता था। अश्वरक्षकोंके मुखसे यह समाचार सुनते ही शत्रुघ्नजी तुरंत अपने सैनिकोंके साथ अश्वके समीप पहुँचे। वहाँ पुष्कलने उसे हिलाने डुलाने और उठानेका अत्यधिक प्रयत्न किया, किंतु अश्व तो जड-सा हो गया था। वह तनिक भी नहीं हिला।

अत्यन्त चिन्तित होकर शत्रुघ्नजीने अपने मन्त्री सुमतिसे पूछा—'मन्त्रिवर! अब क्या करना चाहिये?'

सुमतिने उत्तर दिया—'स्वामिन्! अब तो प्रत्यक्ष और परोक्ष समस्त बातोंको जाननेवाले किसी ऋषि-मुनिको ढूँढ़ना उचित प्रतीत होता है।'

महाराज शत्रुघ्नके आदेशानुसार सेवक तपस्वी ऋषिका पता लगाने दूर दूरतक दौड़ पड़े। कुछ ही देरमें उन्हें परम तपस्वी शौनक ऋषिके पवित्र आश्रमका पता चला। शत्रुघ्नजीने हनुमान और पुष्कल आदिके साथ वहाँ जाकर अपना परिचय देते हुए तपोमूर्ति मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया।

प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य, पाद्य आदिसे प्रभुभक्तोंका स्वागत करनेके अनन्तर महामुनि शौनकने उनका परिचय पूछा तो शत्रुघ्नजीने अत्यन्त विनयपूर्वक यज्ञाश्वके अकस्मात् गात्र-स्तम्भका समाचार सुनाते हुए उनसे प्रार्थना की—'मुनिनाथ! सौभाग्यवश हमें आपका दर्शन हो गया। अब कृपापूर्वक हमारी यह विपत्ति निवारण कीजिये।'

कुछ देरतक ध्यान करनेके अनन्तर शौनकजीने कहा—'राजन्! अत्यन्त प्राचीन कालकी बात है। एक ब्राह्मणको अपराधपर ऋषियोंने उसे राक्षस होनेका शाप दे दिया। ब्राह्मणकी करुण प्रार्थनापर ऋषियोंने पुनः कहा—'जिस समय तुम श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको अपने वेगसे स्तम्भित कर दोगे, उस समय तुम्हें श्रीरामकी कथा सुननेका अवसर मिलेगा। जिससे इस भयंकर शापसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।' उसी राक्षसने अश्वका गात्र-स्तम्भ किया है। अतः तुमलोग कीर्तनके द्वारा अश्वके साथ उसे भी मुक्ति प्रदान करो।'

शत्रुघ्नजीने हनुमान, पुष्कल तथा अन्य सबके साथ महामुनिके चरणोंमें सादर प्रणाम किया और फिर वे हेमकूट पर्वतके उद्यानमें अश्वके समीप चले।

वहाँ जाकर श्रीरामभक्त हनुमानजी अश्वको प्रसन्न करते हुए प्रीतिपूर्वक भयानक दुर्गतियोंका नाशक करनेवाला श्रीरघुनाथजीका पावन चरित्र सुनाने लगे। अन्तमें उन्होंने कहा—'देव! आप श्रीरामचन्द्रजीके कीर्तनके पुण्यसे इस विमानपर सवार होइये और स्वेच्छानुसार अपने लोकमें विचरण कीजिये। अब आप इस कुत्सित योनिसे मुक्त हो जायँ।'

हनुमानजीके वचनोंको सुनते ही देवताने प्रकट होकर उनका आभार स्वीकार किया और फिर वे विमानमें बैठकर स्वर्ग चले गये। साथ ही यज्ञके अश्वका भी गात्र-स्तम्भ निवारण हो गया और वह प्रसन्नतापूर्वक स्वच्छन्द भ्रमण करने लगा।

---

* [illegible] भक्तो [illegible]। [illegible] कर्म [illegible] ॥
ममापि [illegible] भक्तो [illegible]। [illegible] मपि [illegible] ॥
ये [illegible]। [illegible] ॥
ये [illegible]। [illegible] ॥
(प० पु० पा० खं० ४६। १०–११)

[illegible] रामकीर्तनपुण्यतः। [illegible] ॥
(प० पु० पा० खं० ४६। [illegible])

रावणकी सभामें [पृष्ठ २८८

लंका-दहन [पृष्ठ २९१

श्रीरामको श्रीसीताजीकी चूडामणि देना [पृष्ठ २९९

सुबेल पर्वतपर [पृष्ठ ३०८

श्रीभरतजीके सामने मूर्च्छित हनुमानजी [पृ ११४

श्रीभरतजीको श्रीरामागमनकी सूचना [पृ ११

पादुका राज्य-दान [पृ ११६

श्रीहनुमानजीद्वारा ज्ञानोपदेश [पृ

श्रीराम भक्तके बन्धनमें

श्रीरामाश्वमेधका अश्व भ्रमण करता हुआ प्रख्यात कुण्डलपुरके समीप पहुँचा। वहाँके अत्यन्त धर्मात्मा नरेशका नाम सुरथ था। वे वीर, धीर, बुद्धिमान् एवं परम पराक्रमी तो थे ही, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य भक्त थे। उनकी समस्त प्रजा भी श्रीरघुनाथजीकी भक्त और सद्धर्मपरायण थी। उनके राज्यमें घर-घर अश्वत्थ और तुलसीकी पूजा तथा भगवान् श्रीसीतारामकी कथा होती थी। अनीति और अधर्मके लिये वहाँ कोई स्थान नहीं था। पापपरायण नर-नारी उस राज्यमें रह ही नहीं सकते थे। एक बार विश्ववन्दित यमराजने उनकी श्रीरामभक्तिसे प्रसन्न होकर उन्हें इच्छानुसार वर प्रदान किया था—'राजन्! भगवान् श्रीरामके दर्शनके बिना तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी और तुम मुझसे सदा निर्भय रहोगे।'

अपने नगरके समीप चन्दनसे चर्चित अत्यन्त मनोहर अश्वको देखकर सेवकोंने महाराज सुरथको सूचना दी। हरिभक्तिपरायण नरेशने अश्वको पकड़नेका आदेश देते हुए कहा—'अहा! हम सभी धन्य हैं, क्योंकि हमें भुवनपावन श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दका दर्शन प्राप्त होगा। इस अश्वको मैं तभी छोड़ूँगा, जब अनाथनाथ भक्तवत्सल श्रीराम यहाँ स्वयं उपस्थित होकर मुझे कृतार्थ करेंगे।'

अश्व पकड़ लिया गया। धर्मात्मा राजा सुरथकी श्रीराम-चरणारविन्दमें अनुपम भक्तिका परिचय पाकर शत्रुघ्नजीने उनके समीप दूतके रूपमें अङ्गदजीको भेजा। महाराज सुरथने अङ्गदजीसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया—'मैं अपने प्रभु श्रीरामचन्द्रके मुखचन्द्रका दर्शन करना चाहता हूँ। इस अभिलाषाके पूर्ण हुए बिना मैं क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेसे पीछे नहीं हटूँगा।'

अङ्गदजीने राजासे अपने पक्षके वीरोंकी वीरताका गुणगान सुनाते हुए कहा—'राजन्! त्रिकूट पर्वतसहित समूची लङ्काको क्षणभरमें फूँक देनेवाले और दुर्बुद्धि असुरराज रावणके परम पराक्रमी पुत्र अक्षकुमारका प्राण हरण कर लेनेवाले श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंके अनन्य मधुकर हनुमानजीके पराक्रमसे तो तुम परिचित ही होगे। वे इस अश्वके रक्षक हैं। हनुमानजीका चरित्रबल कैसा है, इस बातको श्रीरघुनाथजी ही जानते हैं, दूसरा कोई मूढबुद्धि मनुष्य नहीं जानता, इसीलिये अपने प्रिय सेवक इन पवनकुमारको वे अपने मनसे तनिक भी नहीं बिसारते।* तुम्हें यह सब भलीभाँति सोचकर निर्णय लेना चाहिये।'

महाराज सुरथने सम्मानपूर्वक अङ्गदको उत्तर दिया—'वानरराज! यदि मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा परम प्रभु श्रीरामका ही स्मरण, चिन्तन और पूजन करता हूँ तो वे करुणानिधान स्वयं पधारकर मुझे कृतार्थ करें, अन्यथा महाबली श्रीरामभक्त हनुमान, शत्रुघ्नजी और भरतनन्दन पुष्कल आदि मुझे बलपूर्वक बाँधकर अश्व ले जायँ। तुम मेरा यह निश्चय शत्रुघ्नजीकी सेवामें निवेदन कर दो।'

अङ्गदके लौटते ही युद्धकी तैयारी हो गयी। उधर महाराज सुरथ अपने अनन्य वीर सेनापतिके संरक्षणमें विशाल वाहिनी एवं अपने वीर चम्पक, मोहक, रिपुंजय, दुर्वार, प्रतापी, बलमोदक, हर्यक्ष, सहदेव, भूरिदेव तथा असुतापन नामक दस पुत्रोंके साथ, जो युद्धमें शत्रुका मान मर्दन करनेवाले थे, डट गये। भयंकर संग्राम प्रारम्भ हो गया। भरतनन्दन पुष्कल सुरथकुमार चम्पकके साथ युद्ध करने लगे।

पुष्कल और चम्पक—दोनों वीर थे। दोनों ही एक दूसरेकी वीरता एवं युद्धमें दक्षताकी प्रशंसा करते हुए युद्ध कर रहे थे, किंतु वीरवर चम्पकने पुष्कलको बाँधकर अपने रथपर बिठा लिया।

शत्रुघ्नजीकी सेनामें हाहाकार मचते देख हनुमानजी कुपित होकर चम्पकके सम्मुख पहुँच गये। उन्होंने चम्पकपर कितने ही वृक्ष एवं शिलाओंसे आक्रमण किया, किंतु श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए चम्पकने उन सबको तिल-तिल करके काट गिराया। तब हनुमानजी अत्यधिक क्रुद्ध हो गये और चम्पकको पकड़कर आकाशमें उड़ गये। वहाँ उन्होंने उसका पैर पकड़कर पृथ्वीपर जोरसे पटक दिया। धर्मात्मा राजा सुरथका धार्मिक वीर पुत्र चम्पक धरतीपर गिरते ही घायल होकर मूर्च्छित हो गया।

हनुमानजी महाराज सुरथ और उनके पुत्रों तथा उनकी समस्त प्रजाकी श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दकी भक्तिसे परिचित

* जानाति रामश्चरित्रं नान्यो जानाति मूढधीः। स कपीन्द्र मनाक् स्वान्तान्न विसारति सेवकम्॥

(प० पु०, पा० ख० ५१। ४५)

हँसी उड़ायेगा, इसलिये अब आप विलम्ब न कीजिये, हमें शीघ्र छुड़ाइये।'*

प्राणप्रिय पवनकुमारके अन्तर्हृदयकी प्रार्थना सुनते ही परमप्रभु श्रीराम तुरंत पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर तीव्रतम गतिसे चलकर वहाँ आ पहुँचे। हनुमानजीने देखा, मेरे सर्वान्तर्यामी प्रभु श्रीराम आ गये। उनके पीछे लक्ष्मण, भरत एवं वीतराग ऋषियोंके समुदायको देखकर दयामय पवननन्दनने गद्गद कण्ठसे भाग्यवान् महाराज सुरथसे कहा—'राजन्! देखो, भक्तोंको संकटसे मुक्त करनेवाले मेरे प्राण-सर्वस्व श्रीरघुनाथजी हमें बन्धन-मुक्त करने आ गये।'

हनुमानजीका संकेत प्राप्त होते ही महाराज सुरथ प्रभुके चरणोंमें लोटकर बारंबार प्रणाम करने लगे। उन्होंने प्रभुके परम पावन चरणोंको अपने प्रेमाश्रुओंसे धो दिया और जब दयाधाम श्रीरामने चतुर्भुज रूप धारणकर राजा सुरथको छातीसे लगा लिया, तब हनुमानजीके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। प्रभुने राजासे कहा—'राजन्! तुमने यशस्वी क्षत्रिय धर्मका पालन कर बड़ा उत्तम कार्य किया है।'

श्रीरघुनाथजीकी दयादृष्टिसे हनुमानजी आदि सभी वीर बन्धनसे मुक्त और समस्त मूर्च्छित तथा मृत योद्धा जीवित हो गये।

राजा सुरथके आनन्दकी सीमा न थी। उन्होंने पुरोहित हर्षोल्लासपूर्वक प्रभुकी अर्चना की। राजा, मन्त्री, राजाके पुत्र, सैनिक एवं समस्त नागरिक भगवान् श्रीराम एवं उनके अनन्य भक्त भक्तराज हनुमानके दर्शन कर धन्य हो गये। सबने अपना जन्म और जीवन सफल कर लिया।

श्रीरामात्मजके साथ युद्ध

यज्ञका अश्व भ्रमण करता हुआ महर्षि वाल्मीकिके पुनीत आश्रमके समीप पहुँचा। प्रातःकालका समय था। सीतापुत्र लव मुनिकुमारोंके साथ समिधा लेने वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने यज्ञाश्वके भालपर स्वर्णपत्रपर अङ्कित पङ्क्तियाँ पढ़ते ही घोड़ेको तुरंत पकड़कर एक वृक्षसे बाँध दिया।

उसी समय शत्रुघ्नके सेवक वहाँ पहुँच गये। वे मुनि बालकोंसे अश्व बाँधनेवाले व्यक्तिका पता पूछ ही रहे थे कि लवने कहा—'इस सुन्दर अश्वको मैंने बाँधा है। इसे छुड़ानेवाला मृत्युका ग्रास बनेगा। अतः इससे दूर ही रहो।'

'बेचारा बालक है'—यों कहते हुए शत्रुघ्नजीके सेवक घोड़ेको खोलनेके लिये आगे बढ़े ही थे कि लवने अपने बाणसे उनकी भुजाएँ काट डालीं। सेवक व्याकुल होकर महाराज शत्रुघ्नके पास भागे। उन्होंने शत्रुघ्नजीसे कहा—'राजन्! प्रभु श्रीरामकी मुखाकृतिके तुल्य एक बालकने हमारी यह दुर्दशा की है और उसीने अश्वको भी बाँध लिया है।'

शत्रुघ्नजीने कुपित होकर बालकको दण्डित कर अश्व छुड़ा लानेके लिये चतुरङ्गिणी सेनाके साथ अपने सेनापति कालजित्को भेजा। सेनापति लवको देखकर समझानेका प्रयत्न करने लगे, किंतु लवने कहा—'मुझे इस घोड़ेकी आवश्यकता नहीं, किंतु इसके भालपर सुवर्णपत्रपर अङ्कित पङ्क्तियाँ मुझे युद्ध करनेके लिये विवश कर रही हैं। तुम सुवर्ण-पत्र यहाँ छोड़कर अश्वसहित सुरक्षित लौट सकते हो, अन्यथा युद्ध अनिवार्य है।'

---

* हा नाथ हा नरवरोत्तम हा दयालो सीतापते रुचिरकुण्डलशोभिवक्त्र।
भक्तार्तिदाहक मनोहररूपधारिन् मां बन्धनात् सपदि मोचय मा विलम्बम्॥
सम्मोचितास्तु भवता गजपुङ्गवाद्या देवाश्च दानवकुलाग्निसुदह्यमानाः।
तत्सुन्दरीनिरसि संस्थितकेशबन्धसम्मोचितासि करुणाकर मां स्मरस्व॥
त्वं यागकर्मनिरतोऽसि मुनीश्वरेन्द्रैर्धर्मं विचारयसि भूमिपतीश्च पासि।
अत्राहमद्य सुरथेन विगाढपाशबद्धोऽस्मि मोचय महापुरुषाद्य देव॥
न मोचयस्यथ यदि स्मरणादितोऽद्य त्वं सर्वदेववरपूजितपादपद्म।
कोऽन्यो भवन्तमिह मुक्तसितोऽहसिष्यत्यस्मात् विलम्बमिह माऽऽचर मोचयाशु॥

(प० पु० पा० ख० ५२। १४-१७)

माता सीताने दुःखसे व्याकुल होकर कहा—'पुत्रो! तुमलोगोंने यह बड़ा अनुचित किया। तुम्हें पता नहीं, यह घोड़ा तुम्हारे पिताका ही है। तुम शीघ्र ही उस अश्वको भी छोड़ दो।'

पुत्रोंने विनयपूर्वक निवेदन किया—'माँ! हमलोगोंने महर्षिके उपदेशानुसार क्षत्रिय धर्मका ही पालन किया है। अब उस उत्तम अश्वको भी छोड़ देते हैं।'

परम सती जनकनन्दिनीने अपने जीवन धन श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करते हुए कहा—'यदि मैं मन, वाणी और कर्मसे श्रीरघुनाथजीके अतिरिक्त अन्य किसीका स्मरण नहीं करती तो शत्रुघ्नसहित उनकी सारी सेना पुनः जीवित हो जाय।'

उसी समय शत्रुघ्नजीके साथ उनकी सारी सेना जीवित हो गयी। माता सीताने हनुमानजीसे पूछा—'हनुमान! तुम-जैसा अतुलित बलधाम एवं परमपराक्रमी वीर एक बालकसे कैसे पराजित हो गया?'

हनुमानजीने हाथ जोड़कर माता जानकीसे निवेदन किया—'*माँ! हम पराजित कहाँ हुए? पुत्र पिताकी आत्मा* होता है। इस प्रकार ये दोनों कुमार तो मेरे स्वामी ही हैं। मेरे करुणानिधान भगवान्‌ने हमलोगोंका अहंकार देखकर ही यह लीला रची है।'

हनुमानजीने अश्वकी रक्षामें अनेक स्थलोंपर जितने आश्चर्यजनक पराक्रम किये हैं, उन सबका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं, उनका विस्तृत वर्णन पद्मपुराण (पातालखण्ड) और जैमिनीयाश्वमेध आदि ग्रन्थोंमें ही देखना चाहिये।

रुद्र-रूपमें

सदा सौम्य रूपमें अवस्थित रहनेवाले उदारलोचन मारुतात्मज कभी-कभी अपने रुद्र-रूपमें भी दर्शन दे देते हैं। अमित महिमामयी माता जानकीका इनके प्रति अद्भुत वात्सल्य है। सहस्रों सेवक-सेविकाएँ जनकदुलारीकी सेवाके लिये प्रतिक्षण सजग और सावधान रहकर उनके आदेशकी प्रतीक्षा करती रहती थीं। माता जो चाहतीं, वह तत्काल हो जाता, किंतु इससे उन्हें तृप्ति नहीं होती। इस कारण एक दिन माता सीताने अपने प्राणप्रिय लाल हनुमानजीको भोजन करानेके लिये अपने ही हाथों विविध प्रकारके व्यञ्जन तैयार किये।

माताके आदेशानुसार हनुमानजी अत्यन्त प्रसन्न होकर भोजन करने बैठे। माताके हाथके बने भोजनकी तुलना कहाँ? यहाँ तो भगवती सीता-जैसी माता और हनुमानजी-जैसा पुत्र। हनुमानजीने भोजन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने माताके हाथों परोसा हुआ अमृतमय भोजन कितना खा लिया, इसका उन्हें ध्यान ही न रहा। वे आनन्दपूर्वक भोजन करते ही जा रहे थे।

माता सीताने हनुमानजीको इतना खाते कभी देखा नहीं था और वे अब भी खाते ही जा रहे थे। उधर माताजीके बनाये समस्त व्यञ्जन समाप्त हो गये। माता जानकी चकित थीं। विवश हो उन्होंने अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीरामका स्मरण किया। अब तो माता सीताने स्पष्ट देखा कि हनुमानके वेषमें स्वयं भगवान् शंकर भोजन आरोग रहे हैं। प्रलय कालमें निखिल सृष्टिको उदरस्थ कर लेनेवाले प्रलयंकरकी क्षुधा कुछ व्यञ्जनोंसे कैसे शान्त हो पाती?

भगवती सीताने पीछेसे जाकर उनके सिरके पिछले भागमें लिख दिया—'ॐ नमः शिवाय।' साथ ही उन्होंने मन ही-मन रुद्रदेवका स्तवन करते हुए उनसे तृप्त हो जानेकी प्रार्थना की। फिर क्या था? हनुमानजी तुरत तृप्त हो गये।

एक बार हनुमानजीने अपने भाई भीमसेनको भी रौद्र-रूप का दर्शन कराया था। बात है द्वापरयुगकी। तब पाण्डव अरण्य-वास कर रहे थे। अर्जुनसे मिलनेकी इच्छासे वे द्रौपदी सहित उत्तराखण्डके पवित्रतम श्रीनर-नारायण-आश्रममें पहुँचे। वहाँ एक दिन ईशानकोणसे वायुके सहारे सौगन्धिक नामक एक सहस्रदल कमल उड़ आया। उस सूर्य-तुल्य तेजस्वी दिव्य कमलमें अद्भुत मनोमोहक गन्ध थी। उसे देखते ही मुग्ध होकर द्रौपदीने भीमसेनसे कहा—'आर्य! यदि आपके मनमें मेरे प्रति वास्तविक प्रेम है तो आप ऐसे ही अद्भुत सुगन्धित दिव्य कमल और ला दीजिये। मैं उन्हें काम्यकवनमें अपने आश्रमपर ले चलूँगी।'

अपनी प्रियतमा द्रौपदीकी प्रसन्नताके लिये भीमसेनने तुरत अपने सुवर्णजटित पीठवाले विशाल धनुष और तीक्ष्णतम शरोंको उठाया और वायु जिस ओरसे उस अनुपम सुगन्धित दिव्य सहस्रदल कमलको उड़ाकर लाया था, उसी ओर तीव्र गतिसे चल पड़े। परम पराक्रमी भीमसेन मार्गमें भीषण गर्जना करते हुए जा रहे थे। उनकी गर्जनासे दिशाएँ गूँज उठती थीं

हनुमानजीने कहा—'भैया! मैं तो रोगी हूँ। तुम मुझे लाँघकर चले जाओ।'

भीमसेनने उत्तर दिया—'कपिश्रेष्ठ! निर्गुण परमात्मा समस्त प्राणियोंमें व्याप्त हैं। इस कारण मैं तुम्हारा लङ्घन नहीं कर सकता। शास्त्रोंके द्वारा यदि मुझे श्रीभगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान नहीं होता तो मैं तुम्हें तो क्या, इस गगनस्पर्शी पर्वतको उसी प्रकार लाँघ जाता, जैसे महावीर हनुमान सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघ गये थे।'

हनुमानजीने मुस्कुराते हुए भीमसेनसे पूछा—'अरे भैया! वह हनुमान कौन था, जो समुद्रको लाँघ गया था?'

'वे कपिपुंगव मेरे भाई हैं।' भीमसेनने उल्लासपूर्वक बताया—'वे अनुपम बल विक्रम-सम्पन्न तो हैं ही, ज्ञानियोंमें भी अग्रगण्य हैं। वे भगवान् श्रीरामकी सती पत्नी जनकनन्दिनीका पता लगानेके लिये शत योजन विस्तृत सागरको एक ही छलाँगमें पार कर गये थे। मैं उन्हीं वीराग्रणी हनुमानजीका भाई हूँ। अब तुम मेरा मार्ग छोड़कर हट जाओ। यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हें मृत्यु-मुखमें जाना पड़ेगा।'

'मुझ वृद्ध रोगीपर रोष मत करो, भैया!' हनुमानजीने धीरे-धीरे कहा—'अशक्तताके कारण मैं तो उठ नहीं पाऊँगा, अतः तुम मेरी पूँछ हटाकर चले जाओ।'

हनुमानजीकी बात सुनकर वायुपुत्र भीमसेन क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने बायें हाथसे पूँछ हटा देना चाहा, किंतु यह देखकर वे चकित हो गये कि पूँछ तो हिली भी नहीं। भीमसेनने ओर लगाकर उसे हटाना चाहा, पर वह टस-से-मस भी नहीं हुई। तब उन्होंने दोनों हाथोंसे अपनी पूरी शक्ति लगा दी। उनका मुख-मण्डल स्वेद-सिक्त हो गया, पर पूँछ अपने स्थानसे तिलभर भी न हट सकी। लज्जाके कारण वीरवर भीमसेनका सिर नत हो गया।

उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'कपिश्रेष्ठ! आप मेरे दुर्वचनोंके लिये कृपया क्षमा कर मुझपर प्रसन्न हो जायँ। आप इस वेषमें कोई सिद्ध, देवता, गन्धर्व अथवा गुह्यक तो नहीं हैं? मैं आपकी शरण हूँ। आप कृपापूर्वक मुझे अपना परिचय दीजिये।'

हनुमानजीने अपना परिचय देते हुए कहा—'पाण्डुनन्दन भीमसेन! मैं वानरराज केसरीके क्षेत्रमें वायुसे उत्पन्न वानर हनुमान हूँ।' इसके अनन्तर हनुमानजीने भगवान् श्रीरामकी संक्षिप्त कथा सुनाते हुए अपनी सेवाओंका वर्णन किया। फिर अन्तमें उन्होंने बताया—'भीमसेन! यहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ मुझे मेरे प्रभुके चरित सुना-सुनाकर आनन्द प्रदान करते रहते हैं और माता सीताके अनुग्रहसे मुझे यहाँ इच्छित दिव्य भोग प्राप्त हो जाते हैं।'

हनुमानजीने आगे कहा—'इस मार्गमें देवगण निवास करते हैं और मनुष्योंके लिये अगम्य होनेके कारण मैंने इसे रोक लिया था। सम्भव है, इस मार्गसे जानेमें तुम्हारा तिरस्कार हो जाय या कोई तुम्हें शाप दे दे। तुम जहाँ जाना चाहते हो, वह सरोवर तो यहाँ समीप ही है।'

महावीर हनुमानसे उनका परिचय प्राप्तकर भीमसेनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे अपने बड़े भाईके चरणोंपर गिर पड़े और फिर उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्ण कोमल वाणीमें कहा—'आज मेरे सौभाग्यका क्या कहना, जो आपने कृपापूर्वक मुझे अपना दर्शन दे दिया। अब आप कृपापूर्वक मुझे अपने समुद्रोल्लङ्घनके समयके अनुपम स्वरूपका भी दिखा दीजिये। उसके दर्शनकी मेरी बड़ी इच्छा है।'

हनुमानजीने हँसकर उत्तर दिया—'भाई भीमसेन! तुम तथा अन्य कोई मनुष्य उस रूपको नहीं देख सकता।' तदनन्तर चारों युग, उनके आचार, धर्म, अर्थ और कामके रहस्य, कर्म-फलका स्वरूप तथा उत्पत्ति और विनाशका वर्णन करते हुए हनुमानजीने भीमसेनसे कहा—'तुम मेरे उस स्वरूपको देखनेका आग्रह मत करो। अब सुखपूर्वक लौट जाओ।'

किंतु भीमसेनने साग्रह प्रार्थना की—'आप कृपापूर्वक मेरी इस इच्छाकी पूर्ति तो कर ही दीजिये, आपके उस अद्भुत रूपका दर्शन किये बिना मैं यहाँसे नहीं लौटूँगा।'

'अच्छा, तुम नहीं मानते हो तो मेरे उस रूपको देखो।' इतना कहकर हनुमानजीने अपने भाग्यवान् भाई भीमसेनको अपना वह विशाल रूप दिखाया, जो उन्होंने समुद्रोल्लङ्घनके समय धारण किया था। वे अमित तेजस्वी हनुमानजी वृक्षोंसहित समूचे कदलीवनको आच्छादित करते हुए गन्धमादन पर्वतकी ऊँचाईको भी लाँघकर वहाँ खड़े हो गये।

'उनका वह उन्नत विशाल शरीर दूसरे पर्वतके समान प्रतीत होता था। लाल आँखों, तीखी दाढ़ों और टेढ़ी भौंहोंसे युक्त उनका मुख था। हनुमानजी तेजमें सूर्यके ...

उसी प्रकार भक्तवत्सल श्रीभगवान् भी अपने भक्तोंका शिशु सरीखे निरन्तर ध्यान रखते हैं। भक्तका सुख-दुःख प्रभु अपना ही समझते हैं। वे दयामय सर्वेश्वर अपने भक्तको प्रत्येक रीतिसे अन्तर्बाह्य शुद्ध और पवित्र रखते हैं। समस्त दुःखोंका मूल अभिमान होता है। अतएव भक्तके हृदयमें तनिक भी अभिमानका अङ्कुर उत्पन्न हुआ कि करुणावरुणालय प्रभु उसे शीघ्र मिटाकर भक्तका अन्तःकरण निर्मल बना देते हैं।* उस समय भक्तको कुछ कष्टकी भी अनुभूति होती है, किंतु वह पीछे श्रीभगवान्‌की अद्भुत करुणा एवं प्रीतिका दर्शन कर आनन्द विभोर हो जाता है।

भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके नाम और रूपमें ही अन्तर है, वस्तुतः वे दो नहीं, एक ही हैं। इसी प्रकार जनकनन्दिनी सीता और वृषभानुदुलारी राधा भी एक ही हैं। इनमें कोई भेद नहीं। ज्ञानमूर्ति पवननन्दन इस अभेद-तत्त्वसे अपरिचित हों, यह बात नहीं, किंतु उन्हें तो अवधविहारी नवजलधरश्याम धनुर्धर श्रीराम एवं जनकदुलारी ही प्रिय लगती हैं। वे निरन्तर उन्हींके ध्यानमें आनन्दमग्न रहते हैं। प्रभु भी यह जानते हैं और उनके साथ वैसी ही लीला करके उन्हें सुख देते रहते हैं। वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए थे। उस समय उन्होंने अपने भक्तोंके गर्वापहरणके लिये पवनकुमारको निमित्त बनाया था।

द्वारकाधीश श्रीकृष्णने अपनी प्राणप्रिया सत्यभामाकी प्रसन्नताके लिये स्वर्गसे पारिजात लाकर उनके आँगनमें लगा दिया। बस, सत्यभामाजीके मनमें अभिमानका अङ्कुर उत्पन्न हो गया कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और अपने स्वामीको सर्वाधिक प्रिय हूँ। इतना ही नहीं, एक दिन उन्होंने श्यामसुन्दरसे कह भी दिया—'क्या जनकदुलारी मुझसे अधिक सुन्दरी थीं, जो आप (श्रीरामावतारमें) उनके लिये वन-वन भटकते फिरे?' श्रीभगवान्‌ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुप हो गये।

परम तेजस्वी चक्रने सुरेन्द्रके वज्रको भी पराजित कर दिया था। महामुनि दुर्वासा उनके भयसे सर्वत्र भागते फिरे। लोकालोक पर्वतका गहन तम भी उन्होंने नष्ट कर दिया था। थोड़ी-सी कठिनाई उपस्थित होते ही श्रीभगवान् उनका स्मरण करते हैं, इस कारण उनके मनमें भी अपने अमित बलशाली एवं अतुल पराक्रमी होनेका अभिमान हो गया था।

इसी प्रकार प्रभुके निजी वाहन गरुड़को भी अपनी शक्ति एवं वेगसे उड़नेका अभिमान हो गया था। उन्होंने एकाकी सुर-समुदायको परास्तकर अमृत हरण किया था। सुरेन्द्रका वज्र भी उनका कुछ नहीं कर सका। देवताओं एवं दानवोंके युद्धमें उन्होंने अपनी चोंच, नखों एवं पखोंके आघातसे अमितपराक्रमी राक्षसोंको मार डाला था। युद्धमें श्रीभगवान्‌को संतुष्ट कर उन्होंने प्रभुकी ध्वजामें स्थान प्राप्त कर लिया। वे श्रीभगवान्‌के आसन, वाहन, सेवक, सखा, ध्वजा और व्यजन आदि सब कुछ हो गये। अपने इन कार्योंकी स्मृतिसे एक दिन उनके मनमें भी अपने अप्रतिभट होनेका अहंकार उत्पन्न हो गया था।

अपने इन तीनों प्रीति-भाजनोंका गर्व दूर करनेके लिये लीलावपु प्रभुने हनुमानजीका स्मरण किया। भगवान्‌के मनमें संकल्प उदित होते ही हनुमानजी तत्काल द्वारका पहुँच गये। उन्होंने राजकीय उद्यानमें प्रवेश किया। प्रहरियोंने उन्हें रोकना चाहा, किंतु भूधराकार आञ्जनेयके आग्नेय नेत्रोंसे भयभीत होकर वे दुबक गये।

हनुमानजी उछलकर एक वृक्षपर चढ़ गये। वे उसके मधुर फल कुछ खाते, कुछ कुतरते, कुछ वैसे ही तोड़कर फेंक देते। फिर वे कच्चे फलोंको डालियोंसहित तोड़कर फेंकने लगे। इस प्रकार वे एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर कूदते, उसके फलों एवं डालियोंको तोड़-ताड़कर फेंकते हुए वाटिका ध्वंस करने लगे। कुछ ही देरमें समूची वाटिका तहस-नहस हो गयी। यह समाचार द्वारकाधीशके समीप पहुँचा।

वैनतेयको बुलाकर श्रीभगवान्‌ने कहा—'विनतानन्दन! कोई बलवान् वानर द्वारावतीके राजोद्यानमें बलात् प्रवेश कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है। तुम सशस्त्र सैन्य लेकर जाओ और उसे पकड़कर ले आओ।'

गरुड़को जैसे आघात लग गया। एक क्षुद्र वानरका

---

* संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥ (मानस ७।७४।३)

फिर प्रभुने चक्रको बुलाकर आदेश दिया—'तुम
ारपर अत्यन्त सावधान रहना। मेरी अनुमतिके बिना कोई
ाजसदनमें प्रविष्ट न होने पाये।'

सुदर्शनके चले जानेपर प्रभु स्वयं धनुर्बाणधर श्रीराम
रूपमें सिंहासनासीन हो गये।

गरुड़जी अत्यन्त वेगपूर्वक उड़े, किंतु वे हनुमानजीके
समीप जानेमें मन-ही-मन डर रहे थे। प्रभुकी आज्ञासे वे
मलयगिरिपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने हनुमानजीसे विनयपूर्वक
कहा—'द्वारकामें तुम्हें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी बुला रहे हैं।'

'मेरे करुणामय प्रभुने मुझे बुलाया है, यह जानकर
मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।' हनुमानजीने हर्षपूर्वक कहा—'तुम
चलो, मैं आता हूँ।'

वेगशाली वैनतेयको मारुतात्मजका उत्तर प्रिय नहीं
लगा। 'यह शाखामृग मुझसे बलवान् अवश्य है, किंतु गतिमें
मुझ खेचरसे इसकी क्या तुलना! पता नहीं, यह द्वारावती
कबतक पहुँचे!' किंतु भयवश उन्होंने हनुमानजीको कोई
उत्तर नहीं दिया और प्रभुके सम्मुख अपनी तीव्रतम
गतिके प्रदर्शनार्थ वेगपूर्वक उड़ चले।

पवनात्मज द्वारका पहुँचे। वे राजसदनमें प्रविष्ट
होना ही चाहते थे कि सुदर्शनने उन्हें रोक दिया।

प्राणनाथके दर्शनमें व्यर्थ विलम्ब होते देख हनुमानजीने
सुदर्शनको पकड़कर अपने मुखमें रख लिया और भीतर चले
गये। वे भगवान् श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े। फिर हाथ
जोड़े प्रभुके मुखारविन्दकी ओर अपलक दृष्टिसे देखते
हुए उन्होंने विनयपूर्वक पूछा—'नाथ! माताजी कहाँ हैं?
आज आप किसी दासीको गौरव प्रदान कर रहे हैं!'

सत्यभामाजी लज्जित हो गयीं। उनका सौन्दर्याभिमान
नष्ट हो गया। उसी समय अत्यन्त वेगपूर्वक उड़नेके कारण
हाँफते-काँपते गरुड़जी प्रभुके समीप पहुँचे तो वहाँ पहलेसे
ही हनुमानजीको विद्यमान देखकर उनका मुख नीचा हो
गया। उनका वेगपूर्वक उड़नेका अभिमान भी गल गया।

मुसकराते हुए भगवान् श्रीरामरूपधारी द्वारकेशने
हनुमानजीसे पूछा—'तुम्हें राजसदनमें प्रविष्ट होते समय
किसीने रोका तो नहीं?'

हनुमानजीने विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! द्वारपर
सहसा मुझे आपके चरणोंमें उपस्थित होनेमें व्यवधान
उत्पन्न कर रहा था। व्यर्थ विलम्ब होते देखकर मैंने उसे
अपने मुँहमें रख लिया।'

हनुमानजीने चक्रको मुँहसे निकालकर प्रभुके सामने रख
दिया। चक्र श्रीहत हो गये थे।

तीनोंका गर्व चूर्णकर हनुमानजीने अपने परम प्रभुके
चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी अनुमतिसे मलयाचलके
लिये प्रस्थित हो गये।

इसी प्रकार एक बार हनुमानजीने महाधनुर्धर अर्जुनका
भी गर्व हरण किया था। वह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस
प्रकार है—

बात है द्वापरके अन्तकी। एक दिन अर्जुन एकाकी ही
सारथिके स्थानपर स्वयं बैठकर अपना रथ हाँकते अरण्यमें
घूमते हुए दक्षिण दिशामें चले गये। मध्याह्नकाल हो जानेपर
उन्होंने रामेश्वरके धनुष्कोटि-तीर्थमें स्नान किया और फिर
कुछ गर्वपूर्वक इधर-उधर घूमने लगे। उसी समय उन्होंने
एक पर्वतके ऊपर सामान्य वानरके रूपमें महावीर
हनुमानजीको देखा। उनका शरीर सुन्दर पीले रंगके रोएँसे
सुशोभित था और वे राम-नामका जप कर रहे थे।*

उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—'अरे वानर! तुम कौन
हो और तुम्हारा नाम क्या है?'

हँसते हुए हनुमानजीने उत्तर दिया—'मैं समुद्रपर
शिलाओंका सौ योजन विस्तृत सेतु निर्माण करानेवाले प्रभु
श्रीरामका सेवक हनुमान हूँ।'

अर्जुनने गर्वमें भरकर कहा—'समुद्रपर सेतु तो कोई भी
महाधनुर्धर अपने बाणोंसे बना सकता। श्रीरामने क्यों व्यर्थ
प्रयास किया।'

हनुमानजीने तुरंत कहा—'बाणका सेतु हमारे जैसे
वानरोंका भार नहीं सह सकता था, इसी कारण प्रभुने शर-
सेतु-निर्माणका विचार नहीं किया।'

पाण्डुनन्दन अर्जुन बोले—'यदि वानर भालुओंके
आवागमनसे ही सेतु टूट जाय, तब तो धनुर्विद्या ही क्या! उन
[illegible] भी धनुर्विद्याका [illegible] देगा। मैं [illegible]

* [illegible] मारुति वार सामान्यकपिविग्रहम्। राम रामेति [illegible] विग्रहामयं [illegible]॥
[illegible]

कर्णके द्वारा मेरा रथ तनिक-सा पीछे सरका तो आप उसकी प्रशंसा करने लगे ।'

जनार्दनने तुरंत उत्तर दिया—'पार्थ ! तुम्हारे रथपर महावीर हनुमान बैठे हैं । उनके रहते हुए भी तुम्हारे रथका पीछे हट जाना कर्णकी वीरताका ही द्योतक है । यदि आञ्जनेय आसीन न होते तो तुम्हारा रथ कभीका भस्म हो गया होता ।'

भक्तवर हनुमान और शनि

भक्तवर हनुमान श्रीराम-कथाके अनन्य प्रेमी हैं । परम प्रभु श्रीरामकी मधुर लीला-कथा श्रवण करते ही उनका शरीर पुलकित हो जाता है, उनके नेत्र प्रेमाश्रुसे भर जाते हैं और उन की वाणी गद्गद हो जाती है ।* उन्हें अलौकिक आनन्दकी उपलब्धि होती है, इस कारण जहाँ भी श्रीराम-कथा होती है, श्रीराम-चरण-चञ्चरीक हनुमानजी वहाँ उपस्थित रहते हैं और जब अपने प्राणाराध्यकी कथामृत-सुधाके पानका अवसर नहीं रहता, तब वे अपने प्रभुके ध्यानमें तल्लीन हो जाते हैं ।

एक बारकी बात है । दिनान्त समीप था । सूर्यदेव अस्ताचलके समीप पहुँच चुके थे । शीतल-मन्द समीर बह रहा था । भक्तराज हनुमान राम-सेतुके समीप ध्यानमें अपने परमप्रभु श्रीरामकी भुवनमोहन झाँकी करते हुए आनन्द विह्वल थे । उनके रोम-रोम पुलकित थे । ध्यानावस्थित आञ्जनेयको बाह्य जगत्की स्मृति भी न थी ।

उसी समय सूर्यपुत्र शनि समुद्र-तटपर टहल रहे थे । उन्हें अपनी शक्ति एवं पराक्रमका अत्यधिक अहंकार था । वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'मुझमें अतुलनीय शक्ति है । सृष्टिमें मेरी समता करनेवाला कोई नहीं है । समताकी बात तो दूर, मेरे आगमनके संवादसे बड़े-बड़े रणधीर एवं पराक्रमशील मनुष्य ही नहीं, देव-दैत्यतक भी काँप उठते हैं, व्याकुल होने लगते हैं । मैं क्या करूँ, किसके पास जाऊँ, जहाँ दो हाथ कर सकूँ ? मेरी शक्तिका कोई उपयोग नहीं हो रहा है ।'

इस प्रकार विचार करते हुए शनिकी दृष्टि ध्यानमग्न श्रीरामभक्त हनुमानपर पड़ी । उन्होंने वज्राङ्ग महावीरको पराजित करनेका निश्चय किया । युद्धका निश्चय कर शनि आञ्जनेयके समीप पहुँचे । उस समय सूर्यदेवकी तीक्ष्णतम किरणोंमें शनिका रंग अत्यधिक काला हो गया था । भीषणतम आकृति थी उनकी ।

पवनकुमारके समीप पहुँचकर अतिशय उद्दण्डताका परिचय देते हुए शनिने अत्यन्त कर्कश स्वरमें कहा—'बंदर ! मैं प्रख्यात शक्तिशाली शनि तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हूँ और तुमसे युद्ध करना चाहता हूँ । तुम पाखण्ड त्यागकर खड़े हो जाओ ।'

तिरस्कार करनेवाली अत्यन्त कटुवाणी सुनते ही भक्तराज हनुमानने अपने नेत्र खोले और बड़ी ही शालीनता एवं शान्तिसे पूछा—'महाराज ! आप कौन हैं और यहाँ पधारनेका आपका उद्देश्य क्या है ?'

शनिने अहंकारपूर्वक उत्तर दिया—'मैं परम तेजस्वी सूर्यका परम पराक्रमी पुत्र शनि हूँ । जगत् मेरा नाम सुनते ही काँप उठता है । मैंने तुम्हारे बल-पौरुषकी कितनी गाथाएँ सुनी हैं । इसलिये मैं तुम्हारी शक्तिकी परीक्षा करना चाहता हूँ । सावधान हो जाओ, मैं तुम्हारी राशिपर आ रहा हूँ ।'

अञ्जनानन्दनने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा—'शनि देव ! मैं वृद्ध हो गया हूँ और अपने प्रभुका ध्यान कर रहा हूँ । इसमें व्यवधान मत डालिये । कृपापूर्वक अन्यत्र चले जाइये ।'

मदमत्त शनिने सगर्व कहा—'मैं कहीं जाकर लौटना नहीं जानता और जहाँ जाता हूँ, वहाँ अपना प्राबल्य और प्राधान्य तो स्थापित कर ही देता हूँ ।'

कपिश्रेष्ठने शनिदेवसे बार-बार प्रार्थना की—'महात्मन् ! मैं वृद्ध हो गया हूँ । युद्ध करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । मुझे अपने भगवान् श्रीरामका स्मरण करने दीजिये । आप यहाँसे जाकर किसी और वीरको ढूँढ़ लीजिये । मेरे भजन ध्यानमें विघ्न उपस्थित मत कीजिये ।'

'कायरता तुम्हें शोभा नहीं देती ।' अत्यन्त उद्धत शनिने मल्लविद्याके परमाराध्य वज्राङ्ग हनुमानकी अवमाननाके साथ व्यंग्यपूर्वक तीक्ष्णस्वरमें कहा—'तुम्हारी स्थिति देखकर मेरे मनमें करुणाका संचार हो रहा है, किंतु मैं तुमसे युद्ध अवश्य करूँगा ।'

इतना ही नहीं, शनिने दुष्टमर्दननिरत महावीरका हाथ पकड़ लिया और उन्हें युद्धके लिये ललकारने लगे । हनुमानने

* कथनि रामायण-श्रवण-समय रोमांच कोमल सजल, द्रवित वाणी ।　　(वि० प० २९।५)

गौराङ्ग महाप्रभु—नाम संकीर्तनके प्राण चैतन्यदेवके मित्रने महाप्रभुकी कृति देखी तो वे दुःखी ही नहीं हुए, उनके नेत्रोंसे आँसू बह चले। बोले—'इस महान् ग्रन्थके सम्मुख मेरी न्यायबोधिनी सर्वथा नगण्य सिद्ध हो जायगी। इसे कोई नहीं पूछेगा।'

तत्क्षण महाप्रभुने अपना अनमोल ग्रन्थ गङ्गा मैयाके अङ्कमें विसर्जित कर दिया। उनका यह महान् त्याग आजतक उनके ग्रन्थसे भी अधिक उनकी उज्ज्वल कीर्तिका बढ़ा रहा है। किंतु इस महत्तम आदर्शकी स्थापना श्रीरघुनाथजीके अमल-कमल-चरणानुरागी पवनकुमारने युगों पूर्व ही कर दी थी।

कथाश्रवणरूपा भक्तिके प्रथम एवं प्रधान आचार्य अञ्जनानन्दनको जब थोड़ा-सा भी अवकाश मिलता, तब वे समीपस्थ पर्वतपर चले जाते और वहाँके स्फटिक-तुल्य उज्ज्वल शिलाओंपर अपने परम प्रभुका स्मरण-चिन्तन करते हुए स्वान्तःसुखाय उनका चरित्र लिखते जाते। चरित्र पूरा हो गया। कहते हैं, हनुमानजीके आशीर्वाद एवं पद-पदपर उनके सहयोगसे श्रीतुलसीदासजीने लोकप्रिय रामचरितमानसकी रचना की थी, फिर स्वयं हनुमानजी-जैसे श्रीरघुनाथजीके ज्ञानमूर्ति सेवकके द्वारा तन्मयतापूर्वक लिखा गया अपने आराध्यका चरित्र किस कोटिका रहा होगा, सोचना भी सहज नहीं।

यह समाचार महर्षि वाल्मीकिजीको मिला। हनुमानजीके समीप पहुँचकर उन्होंने निवेदन किया—'आपके द्वारा रचित रामचरितको देखनेकी मेरी इच्छा है।'

सकोची हनुमानजी क्या उत्तर देते! वे महर्षिको अपने कंधेपर बैठाकर पर्वतपर पहुँचे। पवनकुमार एक ओर खड़े होकर हाथ जोड़े अपने प्रभुके स्मरणमें तल्लीन हो गये और महर्षि उनके द्वारा लिखे गये रामचरितका प्रत्येक शब्द ध्यानपूर्वक देखने लगे। महर्षि वाल्मीकि जैसे-जैसे उस रामचरितको देखते जाते, उनका मुख मलिन होता जाता और सम्पूर्ण रामचरित पढ़ लेनेपर तो वे अत्यन्त उदास हो गये।

उन्होंने श्रीरामभक्त हनुमानजीकी ओर देखकर कहा—'पवनपुत्र! भगवान् श्रीरामका श्रेष्ठतम पावन चरित्र है यह! अब इससे उच्चकोटिका श्रीरामचरित्र त्रिकालमें भी सम्भव नहीं। मैं आपसे एक वरकी याचना करना चाहता था।'

'आज्ञा करें। सेवक प्रस्तुत है।' हनुमानजीका उत्तर सुनते ही महर्षि वाल्मीकिने नतमस्तक होकर धीरे-धीरे कहा—'मेरी रामायणका सर्वत्र प्रचार हो गया है और यश कामनाके कारण मुझे घृणित स्वार्थ अशान्त कर रहा है। आपके इस रामायणके सम्मुख मेरी रामायण व्यर्थ सिद्ध …।'

'इतनी-सी बातके लिये चिन्ता उचित नहीं'—महर्षिका वाक्य पूरा होनेके पूर्व ही हनुमानजी बोल उठे।

हनुमानजीने तुरंत शिलाओंपर लिखे गये सम्पूर्ण रामचरितको एकत्र किया और फिर उन्हें लेकर एक कंधेपर महर्षिको बैठाया और समुद्रकी ओर चल पड़े। हनुमानजीने अपने आराध्यके उस महत्तम लीला-चरित्रको महर्षिके देखते ही-देखते समुद्रमें डुबाते हुए कहा—'अब इसे कभी कोई नहीं पढ़ सकेगा।'

यह सर्वथा निःस्पृह हनुमानजीका सहज त्याग था। उन्होंने इसे कभी त्याग नहीं समझा, किंतु महर्षिके नेत्र भर आये। रुँधे कण्ठसे उन्होंने कहा—'मारुतात्मज! मेरी इस घृणित स्वार्थपरताको जगत् अनादरपूर्वक स्मरण करेगा, किंतु आपका धवल यश आपकी निर्मल भगवद्भक्तिके साथ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा।'

महर्षि वाल्मीकि गद्गद कण्ठसे भक्तराज हनुमानका स्तवन करने लगे।

यत्र यत्र

परम भागवत श्रीहनुमानजी किम्पुरुषवर्षमें विराजित सीताहृदयाभिराम श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके समीप अत्यन्त श्रद्धापूर्वक बैठते हैं और किंनरोंके साथ अनन्य भक्तिपूर्ण हृदयसे उनकी उपासना करते हैं। वहाँ अन्य गन्धर्वोंके साथ आर्ष्टिषेण दयाधाम श्रीरामका मङ्गलमय गुणगान किया करते हैं। उसे हनुमानजी अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं। वे स्वयं इस मन्त्रका जप करते हैं—

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।

(श्रीमद्भागवत ५ । १[illegible] । [illegible]; देवीभागवत ८ । १[illegible] । १४)

मनो वाञ्छित वर यही है कि जबतक संसारमें आपका नाम रहे, तबतक मेरा शरीर भी रहे।'*

प्रसन्न नयनाभिराम श्रीरामने कह दिया—'ऐसा ही हो, तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। कल्पका अन्त होनेपर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे, इसमें संदेह नहीं।'†

कन्दर्पकोटिलावण्य भद्ररूप श्रीरघुनाथजीके हनुमानजीको वर प्रदान करते ही निखिलभुवनेश्वरी माता सीताने भी अपने लाड़ले पवनपुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—'हे मारुते! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे, वहाँ मेरी आज्ञासे तुम्हारे पास सम्पूर्ण भोग उपस्थित हो जायँगे।'‡

समस्त सुरवन्दित, ज्ञानमय, प्रेममय, रुद्राक्ष, कपिसत्तम माता सीता और परम प्रभु श्रीरामके वचन सुन अपरिसीम आनन्द-सिन्धुमें निमग्न हो गये। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे श्रीसीतारामके भुवनपावन चरणोंमें लोट गये।

करुणावारिधि परम प्रभु जगतीके मनुष्योंको सर्वथा निराधार, असहाय और निरुपाय नहीं छोड़ सकते थे, इस कारण उन्होंने अव्यक्त होते समय श्रीहनुमानजीकी इच्छापूर्तिके साथ-साथ उन्हें भक्तोंकी सेवा, सहायता एवं रक्षाके लिये भी नियुक्त किया। इस प्रकार ये कपिसत्तम निखिल भुवनपति भगवान् श्रीरामके प्रतिनिधि हुए—सच्चे प्रतिनिधि। समस्त सुरवन्दित मुक्तिदाता प्रभुका प्रतिनिधि साधारण सुर या नर तो हो ही नहीं सकता। उस महनीय पदके सर्वथा अनुरूप तो अनन्त-मङ्गल, सद्गतिनाशन, अचलादारक, दयामूर्ति, हेमवर्ण हनुमानजी ही हैं। ये हनुमानजी भक्तोंकी, दुःखियोंकी, पीड़ितोंकी, आर्तोंकी पुकार सुनते ही दौड़ पड़ते हैं—यह कहना भी उचित नहीं, क्योंकि ये सत्यमय, करुणासिन्धु, भक्तवत्सल तो सर्वत्र विद्यमान एवं घट-घटवासी हैं, अतः तुरंत सहायता करते हैं। इनकी गदा समस्त पाप तापको नष्ट कर देती है। इनके 'महावीर हनुमान' नामके उच्चारणमात्रसे ही शाकिनी, डाकिनी, भूत, प्रेत और पिशाचे आदि पलायित हो जाते हैं।

ये सङ्कटमोचनाख्य आञ्जनेय यद्यपि सर्वव्यापक हैं, किंतु जहाँ-जहाँ श्रीभगवान्‌का नाम-कीर्तन होता है, जहाँ श्री रघुनाथजीकी कथा होती है, वहाँ-वहाँ ये तत्क्षण उपस्थित हो जाते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

'जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी (के नाम, रूप, गुण, लीला आदि) का कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ मस्तकसे बँधा हुई अञ्जलि लगाये और नेत्रोंमें आँसू भरे हनुमानजी उपस्थित रहते हैं, राक्षसोंके काल उन मारुतिको नमस्कार करना चाहिये।'

कथा और कीर्तन—विद्वत्ता, मधुर स्वर और रूप आदिसे मारुतिका कुछ लेना-देना नहीं, उन्हें तो बस, श्रीरामचन्द्रका लीला-कथा या उनके नाम-गुणका कीर्तन होना चाहिये, वहाँ वे अवश्य ही उपस्थित हो जायँगे। इस कारण कथा और कीर्तनमें काम, क्रोधादि वासनाओंको त्यागकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सम्मिलित होनेमें ही यथार्थ लाभ है। वहाँ शान्तिपूर्वक कथा-श्रवण करें, कीर्तनमें सहयोग दें और प्रत्यक्ष दृष्टिसे अव्यवस्थासे बचें। ध्यान रखें, परमाराध्य हनुमानजी आपके सम्मुख बैठे हुए हैं।

शरणागतवत्सल हनुमानजीकी उपासना शीघ्र फल प्रदान करती है। ये यथाशीघ्र सङ्कट दूर कर देते हैं। इनका 'सङ्कटमोचन' नाम प्रसिद्ध ही है। पीड़ितोंके एकमात्र आश्रय हनुमानजीके वीर और दास—दोनों रूपोंकी उपासना होती है। विपत्ति-निवारणार्थ वीररूपकी और सुख-प्राप्त्यर्थ दासरूपकी आराधना की जाती है। दोनों प्रकारकी उपासना आराधनाके पृथक्-पृथक् नियम और विधान हैं। वीररूपके लिये राजस तथा दासरूपके लिये सात्त्विक उपचार कहे गये

* त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम॥
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले। यावत् स्थास्यति ते नाम लोके तावत् कलेवरम्॥
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः। (अ० रा० ६। १६। १२—१४)

† रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्॥
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः। (अ० रा० ६। १६। १४-१५)

‡ तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते॥
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया। (अ० रा० ६। १६। १५-१६)

मेरी आकांक्षा यह रही है कि जबतक संसारमें आपका नाम रहे, तबतक मेरा शरीर भी रहे।'*

प्रसन्न नयनाभिराम श्रीरामने कह दिया—'ऐसा ही हो, तुम जीवन्मुक्त होकर संसारमें सुखपूर्वक रहो। कल्पका अन्त होनेपर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे, इसमें संदेह नहीं।'†

कन्दर्पकोटिलावण्य भद्ररूप श्रीरघुनाथजीके हनुमानजीको वर प्रदान करते ही निखिलभुवनेश्वरी माता सीताने भी अपने लाल पवनपुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—'हे मारुते! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे, वहीं मेरी आज्ञासे तुम्हारे पास सम्पूर्ण भोग उपस्थित हो जायँगे।'‡

समस्त सुरवन्दित, ज्ञानमय, प्रेममय, रुद्रांश, कपिसत्तम माता सीता और परम प्रभु श्रीरामके वचन सुन अपरिसीम आनन्द-सिन्धुमें निमग्न हो गये। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे श्रीसीतारामके भुवनपावन चरणोंमें लोट गये।

करुणावारिधि परम प्रभु जगतीके मनुष्योंको सर्वथा निराधार, असहाय और निरुपाय नहीं छोड़ सकते थे, इस कारण उन्होंने अव्यक्त होते समय श्रीहनुमानजीको इच्छापूर्तिके साथ-साथ उन्हें भक्तोंकी सेवा, सहायता एवं रक्षाके लिये भी नियुक्त किया। इस प्रकार वे कपिसत्तम निखिल भुवनपति भगवान् श्रीरामके प्रतिनिधि हुए—सच्चे प्रतिनिधि। समस्त सुरवन्दित मुक्तिदाता प्रभुका प्रतिनिधि सामान्य सुर या नर तो हो ही नहीं सकता। उस महनीय पदके सर्वथा अनुरूप तो अनन्त-मङ्गल, संकटविनाशक, अधमोद्धारक, दयामूर्ति, हेमवर्ण हनुमानजी ही हैं। ये हनुमानजी भक्तोंकी, दुखियोंकी, पीड़ितोंकी, आर्तोंकी पुकार सुनते ही दौड़ पड़ते हैं—यह कहना भी उचित नहीं, क्योंकि ये रामभक्त, करुणासिन्धु, भक्तवत्सल तो सर्वत्र विद्यमान एवं घट-घटवासी हैं, अतः तुरंत सहायता करते हैं। इनकी गदा समस्त पाप-तापको नष्ट कर देती है। इनके 'महावीर हनुमान'-नामके उच्चारणमात्रसे ही शाकिनी, डाकिनी, भूत, प्रेत और पिशाच आदि पलायित हो जाते हैं।

ये संकटहरणनाशक आञ्जनेय यद्यपि सर्वव्यापक हैं, किंतु जहाँ-जहाँ श्रीभगवान्‌का नाम-कीर्तन होता है, जहाँ भी रघुनाथजीकी कथा होती है, वहाँ-वहाँ ये तत्क्षण उपस्थित हो जाते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

'जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी (के नाम, रूप, गुण, लीला आदि) का कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ मस्तकसे बँधी हुई अञ्जलि लगाये और नेत्रोंमें आँसू भरे हनुमानजी उपस्थित रहते हैं, उन राक्षसोंके कालरूप उन मारुतिको नमस्कार करना चाहिये।'

कथा और कीर्तन—विद्वत्ता, मधुर स्वर और कण्ठ आदिसे मारुतिको कुछ लेना-देना नहीं, उन्हें तो बस, श्रीराघवेन्द्रकी लीला-कथा या उनके नाम-गुणका कीर्तन होना चाहिये, वहाँ वे अवश्य ही उपस्थित हो जायँगे। इस कारण कथा और कीर्तनमें काम, क्रोधादि वासनाओंको त्यागकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सम्मिलित होनेमें ही यथार्थ लाभ है। वहाँ शान्तिपूर्वक कथा-श्रवण करें, कीर्तनमें सहयोग दें और प्रत्येक दृष्टिसे व्यवस्थासे चलें। ध्यान रखें, परमाराध्य हनुमानजी आपके सम्मुख बैठे हुए हैं।

शरणागतवत्सल हनुमानजीकी उपासना शीघ्र फल प्रदान करती है। ये यथाशीघ्र संकट दूर कर देते हैं। इनका 'संकटमोचन' नाम प्रसिद्ध ही है। पीड़ितोंके एकमात्र आश्रय हनुमानजीके वीर और दास—दोनों रूपोंकी उपासना होती है। विपत्ति-निवारणार्थ वीर-रूपकी और सुख-प्राप्त्यर्थ दास-रूपकी आराधना की जाती है। दोनों प्रकारकी उपासना-आराधनाके पृथक्-पृथक् नियम और विधान हैं। वीर-रूपके लिये राजसी तथा दास-रूपके लिये सात्त्विक उपचार कहे गये

* त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम॥
अतस्त्वन्नाम सततं शृण्वन् स्थास्यामि भूतले। यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्॥
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः। (अ० रा० ६। १६। १२—१४)

† रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम्॥
कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः। (अ० रा० ६। १६। १४-१५)

‡ तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते॥
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया। (अ० रा० ६। १६। १५)

हैं। मन्त्रानुष्ठानके 'अनुष्ठानप्रकाश,' 'मन्त्रमहोदधि,' 'मन्त्रमहार्णव,' 'मन्त्रसागर' और 'हनुमत् उपासना-कल्पद्रुम' आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

हनुमानजीकी सकाम भावसे तान्त्रिक पद्धतिके अनुसार उपासना करनेवालोंको निम्नलिखित सावधानी अवश्य रखनी चाहिये—

१–उपासना-कालमें यथासाध्य उन्हें पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिये, अन्यथा उपासकोंके लिये अनिष्टकी सम्भावना रहती है। ऐसे अनेक उदाहरण आज भी प्रत्यक्ष देखे गये हैं कि इस नियमकी अवहेलना करके जिन्होंने हनुमानजीकी सकाम उपासना की है, वे इष्टकी प्राप्तिमें सफल तो हुए ही नहीं, भयंकर शारीरिक व्याधिसे पीड़ित हुए अथवा दैवी प्रकोपसे ग्रस्त हो गये हैं।

२–तान्त्रिक मन्त्रोंका केवल पुस्तक पढ़कर अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। किसी सन्तसे श्रीरामभक्त अथवा हनुमानजीके भक्तकी आज्ञा प्राप्तकर इस दिशामें अग्रसर होना उपयोगी होता है।

निश्चय ही हनुमानजी सिद्धिदाता हैं। उनकी उपासनासे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, किंतु जो इस भवाटवीसे पार जानेके लिये व्यग्र हैं, जो जन्म-मरणसे भयभीत होकर आत्यन्तिक शान्तिके लिये आतुर हैं, जो मुक्तिपथके पथिक हैं, उन्हें सिद्धियाँ अभीष्ट नहीं। वे तो आयी हुई सिद्धियोंको भी लौटा देते हैं। वे भलीभाँति जानते हैं कि ये सिद्धियाँ सुखद नहीं, अपितु आत्मसाक्षात्कारमें, प्रभुपद-प्राप्तिमें तथा जीवनके चरम और परम उद्देश्यकी प्राप्तिमें भयानक विघ्न रूप हैं। अतएव वे इनसे सदा सावधान रहते हैं। यहाँतक कि उनकी ओर देखना भी अपराध मानते हैं।

निश्चय ही हनुमानजी वाञ्छा सिद्ध करते हैं। वे दुःखी, पीड़ित एवं आर्तके आह्वानपर तुरत दौड़ पड़ते हैं। वे हृदयसे चाहते हैं कि प्राणियोंके दुःख-दारिद्र्य, आधि-व्याधि तथा समस्त विपत्तियाँ सदाके लिये मिट जायँ। वे परम प्रभुके शाश्वत सुख-शान्ति-निकेतन चरणकमलोंके दर्शन कर निहाल हो जायँ, किंतु जब वे उन्हें तुच्छतम नश्वर सांसारिक कामनाओं और वासनाओंकी पूर्तिके लिये आतुर और व्यग्र देखते हैं तो निराश और उदास हो जाते हैं। अतएव सर्वोत्तम तो यही है कि सत्यरूप, अभयप्रद, पवननन्दनकी उपासना आत्म-कल्याणके लिये, प्रभु-प्राप्तिके लिये ही की जाय और जो इसके लिये हनुमानजीका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें उनकी कृपासे यथाशीघ्र सफलता प्राप्त होती है और वे निहाल हो जाते हैं। उनका जीवन और जन्म सफल हो जाता है।

कृपामूर्ति

सकल सद्गुणगणनिलय अञ्जनानन्दन दयाधाम हैं। कृपाकी मूर्ति हैं। जो पवनकुमार अपने परम प्रभुका दर्शन करते ही आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं, वे श्रीरामचरणानुरागी कल्पान्ततक इस भूतलपर क्यों रहना चाहते? निश्चय ही वे श्रीरामके मङ्गलमय नाम एवं चरित्र-कथाके अनुपम प्रेमी हैं, किंतु इसके साथ ही पृथ्वीके नर-नारियोंके प्रति उनकी सहज कृपा ही इसमें हेतु है। पाण्डुनन्दन भीमसेनने अपने अग्रज हनुमानजीकी कथा ही सुनी थी। उनके दर्शनकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी, किंतु श्रीकृष्ण-प्रीति-भाजन भीमसेनके अनिष्टकी कल्पनासे ही हनुमानजीने उन्हें उत्तराखण्डके देव-मार्गमें जानेसे रोका और उन्हें दर्शन देकर भी कृतार्थ कर दिया।

पाण्डुनन्दन भीमसेन तो उनके अनुज थे, यहाँतो श्रीरघुनाथजीके अव्यक्त होनेके समयसे ही दयामय हनुमानजी भगवद्भक्त नर-नारियोंका उपकार करते आ रहे हैं। प्रभु-पथ-पथिकोंको तो वे अहर्निश सहयोग देते रहते हैं, उनकी साधनाकी बाधाओंका निवारण करते रहते हैं। उन्होंने कितने भाग्यवान् भक्तोंको सर्वलोकेश्वर श्रीभगवान्‌का दर्शन कराकर उनका जीवन सफल कर दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

हिंदूमात्रका प्रिय ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस—कहते हैं, श्रीहनुमानजीकी प्रेरणासे ही श्रीतुलसीदासजीने उसकी रचना प्रारम्भ की और वे पद-पदपर उनकी सहायता करते गये। श्रीतुलसीदासजीने स्वयं कृपामूर्ति श्रीआञ्जनेयके सम्बन्धमें कहा है कि 'जिसपर सब प्रकारके कल्याणोंकी खानि श्रीहनुमानजीकी कृपादृष्टि है, उसपर पार्वती, शंकर, लक्ष्मण, श्रीराम और जानकीजी सदा कृपा किया करते हैं।'*

* ताहि सानुकूल गिरिजा हर लखन राम अरु जानकी। तुलसी कपिकी कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यानकी॥
(वि० [illegible])

श्रीतुलसीदासजीका जीवन भी इसका साक्षी है। प्रसिद्ध है कि वे नित्य शौचसे लौटते समय शौचका बचा जल एक पेड़के वृक्ष-मूलमें डाल देते थे। उस वृक्षपर एक प्रेत रहता था। प्रेतयोनिकी तृप्ति ऐसी ही निकृष्ट वस्तुओंसे होती है। प्रेत उस अशुद्ध जलसे प्रसन्न हो गया। एक दिन उसने प्रकट होकर श्रीतुलसीदासजीसे कहा—'मैं आपपर प्रसन्न हूँ। बताइये, आपकी क्या सेवा करूँ?'

'मुझे श्रीरघुनाथजीके दर्शन करा दो।' श्रीतुलसीदासजीके कहनेपर प्रेतने उत्तर दिया—'यदि मैं प्रभुका दर्शन करा सकता तो अधम प्रेत ही क्यों रहता, किंतु मैं आपको एक उपाय बता सकता हूँ। अमुक स्थानपर श्रीरामायणकी कथा होती है। वहाँ सर्वप्रथम वृद्ध कुष्ठीके वेषमें श्रीहनुमानजी नित्य पधारते हैं और सबसे दूर बैठकर कथा सुनकर सबसे पीछे जाते हैं। आप उनके चरण पकड़ लें। उनकी कृपासे आपकी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है।'

तुलसीदासजी उसी दिन श्रीरामायणकी कथामें पहुँचे। उन्होंने वृद्ध कुष्ठीके वेषमें श्रीहनुमानजीको पहचान लिया और कथाके अन्तमें उनके चरण पकड़ लिये। श्रीहनुमानजी गिड़गिड़ाने लगे, किंतु श्रीतुलसीदासजीकी निष्ठा एवं प्रेमाग्रहसे दयामूर्ति पवनकुमारने उन्हें मन्त्र देकर चित्रकूटमें अनुष्ठान करनेकी आज्ञा दी। उन्होंने श्रीतुलसीदासजीको प्रभु-दर्शन करानेका भी वचन दे दिया।

भवाब्धिपोत महावीर हनुमानकी कृपाका प्रत्यक्ष फल उदित होने लगा। श्रीतुलसीदासजी चित्रकूट पहुँचे और अञ्जनानन्दनके बताये मन्त्रका अनुष्ठान करने लगे। एक दिन उन्होंने अश्वपर आरूढ़ श्याम और गौर दो कुमारोंको देखा, किंतु देखकर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। श्रीहनुमानजीने प्रत्यक्ष प्रकट होकर श्रीतुलसीदासजीसे पूछा—'प्रभुके दर्शन हो गये न?'

'प्रभु कहाँ थे?' श्रीतुलसीदासजीके चकित होकर पूछनेपर हनुमानजीने कहा—'अश्वारोही श्याम-गौर कुमार, जो तुम्हारे सामनेसे निकले थे।'

'आह!' श्रीतुलसीदासजी अत्यन्त व्याकुल हो गये—'मैं प्रभुको पाकर भी उनसे वञ्चित रहा।' वे छटपटाने लगे। उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे और उन्हें अपने शरीरकी सुध नहीं थी।

कृपामूर्ति श्रीहनुमानजीने उन्हें प्रेमपूर्वक धैर्य बँधाया—'तुम्हें पुनः प्रभुके दर्शन हो जायँगे।' और दयाधाम श्रीमारुतिकी कृपासे उन्हें परम प्रभु श्रीरामके ही नहीं, रत्न सिंहासनपर आसीन भगवती सीतासहित श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नके साथ सुग्रीव और विभीषणादि सखा तथा वसिष्ठ आदि समस्त प्रमुख जनोंके भी दर्शन प्राप्त हो गये।

कृपामूर्ति हनुमानजीकी कृपासे प्रभुकी इस अपूर्व छटाका ही दर्शन कर श्रीगोस्वामीजी कृतार्थ नहीं हुए, अपितु मन्दाकिनीके पावन तटपर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणको अपने हाथों चन्दन घिसकर तिलक भी कराया—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसैं तिलक करैं रघुबीर॥

मानस-मर्मज्ञ कहते हैं कि श्रीरामचरितमानसकी रचनाके समय श्रीतुलसीदासजीको कठिनाइका अनुभव होते ही भक्ति-सुधापानेच्छु कृपामूर्ति श्रीहनुमानजी स्वयं प्रकट होकर उनकी सहायता किया करते थे। दो स्थल तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

(१) श्रीशंकरजीके तपके समय कामदेवके व्यापक प्रभावका वर्णन करते हुए श्रीतुलसीदासजीने लिखा—'धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।' आधा सोरठा लिख लेनेपर लिखा हुई। 'काहूँ' और 'सबके' में तो श्रीनारदादि देवर्षि और विरक्त भक्त भी आ गये, जिन्हें काम-विकार स्पर्श भी नहीं करता। श्रीतुलसीदासजीने आञ्जनेयका स्मरण किया और उन्होंने प्रकट होकर सोरठेके दूसरे चरणकी पूर्ति कर दी—'**जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।**'

और—

(२) धनुष-यज्ञका वर्णन करते समय श्रीतुलसीदासजीने सोरठा लिखा—

'**संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु। बूड़ सो सकल समाजु** —श्रीतुलसीदासजी रुके। सकल समाजमें तो महर्षि विश्वामित्र और धनुषको स्पर्श भी न करनेवाले नरेश तथा न जाने कितने लोग आ गये। श्रीतुलसीदासजीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी, उनकी प्रार्थना सुनते ही हनुमानजीने कृपा की और प्रकट होकर उन्होंने सोरठा पूरा कर दिया—'**चढ़ जो प्रथमहिं मोहबस।**'

इतना ही नहीं, श्रीतुलसीदासजीने जब-जब कठिनाई अनुभव की, तब-तब मङ्गलमूर्ति पवननन्दनका स्मरण किया। वायु

पीड़ाके समय महावीर हनुमानजीसे प्रार्थना करते हुए उन्होंने 'हनुमानबाहुक'की रचना की। श्रीरामचरितमानस, विनयपत्रिका और कवितावलीमें तो उनका स्तवन एवं गुणगान हुआ ही है, 'हनुमानचालीसा' और 'संकटमोचन' आदि स्वतन्त्र पुस्तिकाओंमें भी श्रीतुलसीदासजीने अत्यन्त प्रेमसे कृपामय महावीर हनुमानजीकी वन्दना की है।

परम प्रभु श्रीरामका दर्शन समस्त लौकिक-पारलौकिक सुखोंका मूल है। अनिर्वचनीय सुख-शान्तिप्रदायक है वह। यह दर्शन श्रीरामकी प्रेमा भक्तिके बिना सम्भव नहीं और उस प्रेमा भक्तिकी प्राप्ति कामना-वासनादिसे ग्रस्त हम संसारी जीवोंको सहज नहीं। यह साधनसाध्य नहीं। दयामय प्रभुकी अहैतुकी कृपासे ही यह सम्भव है। किंतु जिसपर आञ्जनेयकी अहैतुकी कृपादृष्टि पड़ जाती है, वह प्रभुकी उस प्रेमा भक्तिको प्राप्त कर लेता है और कृपामूर्ति श्रीहनुमानजी इसके लिये सदा प्रस्तुत हैं। जीवमात्रको प्रभुके मङ्गलमय चरण-कमलोंमें पहुँचाकर उनका कल्याण करनेके लिये वे आतुर रहते हैं, किंतु हमारी ही प्रभु-प्राप्तिकी इच्छा नहीं होती। हम वासनाओंके प्रवाहमें आकण्ठ-मग्न होकर सुखका अनुभव कर रहे हैं। इनसे पृथक् होना हम नहीं चाहते। गदाधारी कृपामय हनुमानजीकी ओर झाँकना भी नहीं चाहते, इसी कारण वे दयाधाम विवश हो जाते हैं। उनकी इच्छा अपूर्ण रह जाती है।

संतुष्ट होनेपर हनुमानजीको जीवका परम कल्याण करते देर नहीं लगती, पर उन्हें संतुष्ट करनेकी इच्छा हो तब न। आजन्म ब्रह्मचारी हनुमानजी सदाचार, धर्मपालन, ब्रह्मचर्य-पालन, दीनदुःखियोंकी सेवा-सहायता, शास्त्रों, संतों, महापुरुषों, भक्तों एवं भगवान्के प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं प्रीतिसे सहज ही तुष्ट हो जाते हैं और अपने प्रिय सहचर श्रीहनुमानजीके संतुष्ट होते ही श्रीरघुनाथजी तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान्की प्रसन्नतामें ही जीवका और जगत्का कल्याण तथा मङ्गल है।

अनन्त मङ्गलालय कृपामूर्ति अञ्जनानन्दनका पावन चरित्र वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण और पुराणोंमें विस्तारपूर्वक गाया गया है। यहाँ तो उसका संकेतमात्र ही है, पर जो भी है, वह निश्चय ही मारुतिकी कृपाका प्रसाद है। कृपामूर्ति महावीर हनुमानजी कृपा करें, उनके [illegible] चरणकमलोंमें यही विनीत निवेदन है।

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

अञ्जनीकुमारकी गुण-गाथा

(रचयिता—पं० श्री[illegible]जी झा 'कलाधर')

विपद-विनाशिनी विघ्न-भञ्जनी [illegible]
है, दायिनी समूल कष्ट दारिद-दलनकी।
शान्ति-सुखदायिनी, विजयिनी [illegible]
है, [illegible] जन्मभूमि, निधि विचार-विज्ञानकी॥
पापमर्दिनी ज्यों 'आनन्दघन' [illegible]
[illegible] है नाथ मुझे मनभावनी।
मोह-भञ्जिनी है, भय-भञ्जिनी है, गुण-
गाथा [illegible] है अञ्जनीकुमारकी॥

रोम-रोममें राम

'मारुतिके रोम-रोम व्यापक राम-नाम है

[पृष्ठ १७

रोम-रोममें राम

श्रीहनुमानजी

जिस वस्तुमें श्रीराम-नाम नहीं, वह वस्तु तो कौड़ी-की भी नहीं। उसके रखनेसे लाभ? श्रीहनुमान-जीने अयोध्याके भरे दरबारमें यह बात कही।

स्वयं जानकी मैयाने बहुमूल्य मणियोंकी माला हनुमानजीके गलेमें डाल दी थी। राज्याभिषेक समारोहका यह उपहार था—सबसे मूल्यवान् उपहार। अयोध्याके रत्नभण्डारमें भी वैसी मणियाँ नहीं थीं। सभी उन मणियोंके प्रकाश एवं सौन्दर्यसे मुग्ध थे। मर्यादापुरुपात्तमको श्रीहनुमानजी सबसे प्रिय हैं—सर्वश्रेष्ठ सेवक हैं पवनकुमार, यह सर्वमान्य सत्य है। उन श्रीआञ्जनेयको सर्वश्रेष्ठ उपहार प्राप्त हुआ—यह न आश्चर्यकी बात थी, न ईर्ष्याकी।

अश्चर्यकी बात तो तब हो गयी, जब हनुमानजी अलग बैठकर उस हारकी महामूल्यवान् मणियोंको अपने दाँतोंसे पटापट फोड़ने लगे।

एक दरबारी जौहरीने टोका तो उन्हें बड़ा विचित्र उत्तर मिला।

आपके शरीरमें श्रीराम-नाम लिखा है? जौहरीने कुढ़कर पूछा था। किंतु मुँहकी खानी पड़ी उसे। हनुमानजीने अपने वज्रनखसे अपनी छातीका चमड़ा उधेड़कर दिखा दिया। श्रीराम हृदयमें विराजित थे और रोम-रोममें श्रीराम लिखा था उन श्रीराम-दूतके।

'जिस वस्तुमें श्रीराम-नाम नहीं, वह वस्तु तो दो कौड़ीकी है। उसे रखनेसे लाभ?' श्रीहनुमानजीकी यह वाणी। उन केसरीकुमारका शरीर श्रीराम-नामसे ही निर्मित हुआ। उनके रोम-रोममें श्रीराम-नाम अङ्कित है।

उनके वस्त्र, आभूषण, आयुध—सब श्रीराम नामसे बने हैं। उनके कण-कणमें श्रीराम-नाम है। जिस वस्तुमें श्रीराम-नाम न हो, वह वस्तु उन पवन-पुत्रके पास रह कैसे सकती है?

श्रीराम-नाममय है श्रीहनुमानजीका श्रीविग्रह—

राम माथ, मुकुट राम, राम सिर, नयन राम,
　　राम कान, नासा राम, ठोढ़ी राम-नाम है।
राम कंठ, कंध राम, राम भुजा बाजूबंद,
　　राम हृदय अलंकार, हार राम-नाम है॥
राम उदर, नाभि राम, राम कटी, कटी-सूत,
　　राम बसन, जंघ राम, जानु-पैर राम-नाम है।
राम मन, वचन राम, राम गदा, कटक राम,
　　मारुति के रोम राम व्यापक राम-नाम है।'

वेद-मन्त्रोंमें श्रीहनुमानका चरित्र चित्रण

श्रीहनुमानजीका स्वरूप चिन्मय अथवा दिव्य है। वे विज्ञानस्वरूप हैं। उनके रूप, गुण और चरित्र यद्यपि वेदोंमें वर्णित हैं, तथापि विज्ञानस्वरूप होनेके कारण वे अरूप हैं—अमत्यन्त हैं। निगमागमसम्मत रामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजीने सीताराम-गुणग्रामके पुण्यारण्यमें विहार करनेवाले कवीश्वर श्रीहनुमानको विशुद्ध विज्ञान—सम्पूर्ण चिन्मय स्वीकार किया है। रामचरितमानसके प्रारम्भिक मङ्गल-श्लोकमें उनके द्वारा की गयी श्रीवाल्मीकिजी और श्रीहनुमानजीकी वन्दना उपयुक्त तथ्यकी परिचायिका है—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥
(रामचरितमानस बाल० श्लोक ४)

वेद श्रीरामके चरित्र और लीलाका वर्णन करते हैं, इसलिये उनके द्वारा श्रीरामभक्त हनुमानजीके चरित्रका भी चित्रण किया जाना सर्वथा स्वाभाविक है। हनुमानके लीला-चरित्र-चित्रणके बिना भगवान् श्रीरामका चरित्र वर्णन पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

जिस प्रकार श्रीरामके अपार चरित्रका पार पाना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है, ठीक इसी तरह श्रीहनुमानका चरित्र भी अपार है। श्रीहनुमानके परब्रह्म तो श्रीराम हैं। प्रभुकी सेवामें उनका जीवन पूर्णरूपसे समर्पित निश्चित किया गया है। वानररूपमें अवतरित देवताओंद्वारा की गयी अपनी सेवाके प्रति श्रीरामने जो कृतज्ञता प्रकट की है, उसमें श्रीहनुमानके यशपर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। श्रीनीलकण्ठद्वारा उद्धृत 'मन्त्ररामायण'में एक ऋचाके भाष्यमें कहा गया है कि वानररूपमें अवतरित देवताओंने मेरा (भगवान्‌का) कार्य पूरा किया—

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो
वेनन्ति वेना पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो
देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥
(ऋक् १० । ६४ । २)

मन्त्रका भाष्य

'क्रतवः साक्षात् सम्पूर्णदेवता इत्यर्थः । क्रतूयन्ति क्रियामागमनं इच्छन्ति अस्मत्सेवां कर्तुमिच्छन्ति। हृत्सु धीतय हृदयेषु धीमन्तः वेनन्ति शोभन्ते। वेना कमनीयाः। आसमन्ताद् दिशः पतयन्ति गच्छन्ति। एभ्यो वानररूपेभ्यो देवेभ्योऽन्यो न मर्डिता सुखयिता न विद्यते। मे मम कामा मनोरथा देवेषु एषु अयंसत उपपन्नाः।'

(मन्त्ररामायण १८)

इस भाष्यमें नीलकण्ठने भगवान् श्रीरामको यह कहते हुए अभिव्यक्त किया है कि 'वानररूपमें अवतरित सम्पूर्ण देवता मेरी सेवा करनेकी इच्छा करते हैं। वे हृदयके बड़े सरस हैं, अथवा पूर्ण यशके रूपमें शोभित हैं तथा जनकनन्दिनी सीताकी खोजमें वे चारों ओर सभी दिशाओंमें जाते हैं। इन वानररूप देवताओंसे बढ़कर दूसरा कोई भी मेरे लिये सुखदाता नहीं है। मेरे मनोरथ इन्हीं देवताओंके द्वारा (सदा) पूर्ण हुए हैं।'

इस कथनमें हनुमानजीके पराक्रमयुक्त यशका अनुभव उपलब्ध होता है। प्रभु स्वयं उनके यशका बखान करते हैं—

राम आपु जस आपु बखाना ॥
(रामचरितमानस, बालकाण्ड १६ । १०)

'मन्त्ररामायण'के मङ्गलाचरणमें वेदमय मूल गायत्रीरूप बीज तथा रामरक्षारूपी नूतन अङ्कुरसे युक्त मोक्षरूप महाफलदायक रामायणद्रुमकी वन्दना करते हुए महामति नीलकण्ठकी उक्ति है—

रामायणद्रुमं नौमि रामरक्षानवाङ्कुरम् ।
गायत्रीबीजमाम्नायमूलं मोक्षमहाफलम् ॥

आम्नायमूल रामायणमें श्रीरामके अनन्य तथा अतीव सेवक श्रीहनुमानका वृत्तान्त इस तरह स्वाभाविक रूपसे ही वेदमन्त्र सिद्ध होता है। वाल्मीकि आदि काव्यरचना-समर्थ कवि भगवद्गुणगानसे अपनी वाणी पवित्र करते हैं। साक्षात् शिवके अवतारने तत्पर हनुमानजीके रूपमें प्रकट रहने रामायणकी रचना की। ऋग्वेदके उक्त एक मन्त्रमें श्रीरामरूपमें तत्पर हनुमानजीका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हुए टीकाकार नीलकण्ठने मन्त्ररामायण (८) में इस आशयकी बात कही है। यथा—

> सहस्रधारे वितते पवित्र आ
> वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
> रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः
> स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥
> (ऋग्वेद ९ । ७३ । ७)

उपर्युक्त मन्त्रके भाष्यमें नीलकण्ठके शब्द हैं—

'सहस्रेति । आ समन्ताद् वितते व्याप्ते महाविष्णौ सहस्रधारे सोमांशुरूपेण सततदिव्यरूपधाराभिर्व्याप्नुवता सा सरूपेण वानन्तप्रवाहे पवित्रे पावने निमित्तभूते सति मनीषिणो जितचेतस कवय काव्यरचनसमर्था वाच स्वीयां पुनन्ति भगवद्गुणगणकीर्तनेन पवित्रीकुर्वन्ति वाल्मीकिप्रभृतय । एषां कवीनां मध्ये रुद्रास —बहुत्व पूजायां रुद्रो हनूमान् इषिराय, इषिरोऽद्भुतगति अद्रुह अद्रोही स्पशः चार सीतान्वेषक चरोऽभूदित्यर्थ । स च स्वञ्च शोभनगमनः । सुदृशा सम्यक्परीक्षक । नृचक्षस नर सीतारूप चष्ट पश्यतीति नृचक्षा सीतां ददर्शेत्यर्थ । यद्वत् रुद्रोऽपि रामायणमकरोत्तत्र च रामदास्यमधिकम् ।' एवमन्योऽपि रामस्तोत्रेण वाच दास्येन देह च पुनीयादित्यर्थ ।

उपर्युक्त भाष्यका आशय है कि सोम-किरणोंके रूपमें सुधाकी सहस्र-सहस्र धाराएँ अथवा स्वरूपसे ही सच्चिदानन्दमय अनन्त प्रवाह प्रकट करनेवाले, सर्वत्र व्यापक, परम पवित्र महाविष्णु (श्रीराम)के निमित्त मनीषी कवि वाल्मीकि आदि उनके गुणगानके द्वारा अपनी वाणीको पवित्र करते हैं । इन्हीं कवियोंमें रुद्र (के अवतार) हनुमानजी भी हैं, जो स्वभावतः अद्रोही (किसीके साथ द्रोह न रखनेवाले) हैं । ये इषिर—अद्भुत गतिवाले, स्पश—गुप्तचर (अर्थात् सीताका अन्वेषण करनेवाले दूत), स्वञ्च—बहुत सुन्दर सञ्चरणवाले और नृचक्षा मानवमूर्ति सीताके प्रत्यक्षदर्शी हैं । इन्होंने सीताको लङ्कामें ढूँढ़ निकाला और उनका साक्षात् दर्शन किया । वाल्मीकिकी भाँति रुद्र (हनुमान) भी रामायण (हनुमन्नाटक आदि) की रचना करनेवाले हैं, किंतु उनमें श्रीरामके प्रति दास्यभावकी अभिव्यक्ति अधिक हुई है । इसी तरह दूसरे लोगोंको भी चाहिये कि वे श्रीरामके स्तवनसे वाणीको तथा दास्य—सेवासे अपने शरीरको पवित्र करें ।

जिस तरह श्रीरामका चरित्र वेदोंमें वर्णित हुआ है, उसी तरह उनके लीलाचरित्रके प्रमुखतम आधार स्तम्भ श्रीहनुमानका भी वृत्तान्त वेदोंमें परिलक्षित होता है । दोनोंके चरित्रोंमें अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध है । रामचरितमानसके बालकाण्डकी 'सूझहिं रामचरित मनि मानिक,' चौपाईमें रामचरितके गुप्त और प्रकटरूपके सम्बन्धमें 'मानस-मयंक'के रचयिता सुखलाल पाठककी सारगर्भित उक्तिमें 'मन्त्ररामायण'के उपर्युक्त भाष्यमें वर्णित श्रीराम-रूपमें अवतरित विष्णु और हनुमान-रूपमें अवतरित रुद्रकी वैदिकताका स्पष्टीकरण हो जाता है—

> गूढ़ चराचर चरित मणि, गूढ़ राम जस वेद ।
> (मानसमयंक, बालकाण्ड ४)

श्रीरामकी कीर्तिका वर्णन ब्रह्माकी बुद्धिमें भी पूर्णरूपसे नहीं समा पाता । शेषनाग भी अपने सहस्र मुखोंसे उसे गाते-गाते थक जाते हैं । उनकी उक्ति है कि 'जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी मोहित होकर कुछ नहीं जान पाते, उस श्रीरामरूपी कथा-महासागरकी थाह लगानेके लिये मेरे-जैसे मशकके समान तुच्छ जीवकी कितनी शक्ति है । श्रीरामका चरित्र करोड़ों श्लोकोंमें वर्णित है, जिनकी जैसी बुद्धि है, वे उसका वैसा ही वर्णन करते हैं ।'—

> रावणारिकथाब्धौ मशको मादृशः कियान् ।
> यत्र ब्रह्मादयो देवा मोहिता न विदन्त्यपि ॥
> चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् । । ।
> येषां वै यादृशी बुद्धिस्ते वदन्त्येव तादृशम् ॥
> (पद्मपुराण पाताल० १ । १२, १४)

श्रीरामके गुण-वैभवके कीर्तनमें श्रीहनुमान जैसे परम भागवतकी विरुदावलीका वर्णन सहज सुलभ है । उनकी वन्दना करते हुए श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने 'विनय-पत्रिका'में कहा है कि 'हे आञ्जनेय ! विद्वान् और वेद अपनी विमल वाणीमें आपकी स्तुति करते हैं—

> विबुध बरनत वेद विमल बानी ।
> (विनयपत्रिका २०)

गोस्वामी तुलसीदासकी उक्ति है कि 'हे हनुमानजी ! आप बन्धनोंसे छुड़ानेवाले हैं—आपका ऐसा यश वेद शास्त्र गाते हैं ।'—

> बंदिछोर बिरदावली निगमागम गाई ।
> (विनयपत्रिका १५)

हैं। वे धनुष धारण किये हुए हैं और उनका चित्त स्वभावतः प्रसन्न है। श्रीरामके उत्तर और दक्षिण भागमें क्रमशः शत्रुघ्न और भरत स्थित हैं। श्रीहनुमान श्रोताके रूपमें भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़कर त्रिकोण-मण्डलमें खड़े हैं—

हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणगम् ॥

(श्रीरामपूर्वतापनीय-उप० ४ । १२)

श्रीहनुमानजीका यश वेदविदित है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी वाणी है—

'बाँकी बिरदावली बिदित बेद गाइअत ।'

(हनुमानबाहुक ११)

हनुमानजीके सम्बन्धमें वेदरूपी बन्दीजन कहते हैं कि आप पूरी प्रतिज्ञावाले हैं—

'बेद-बंदी बदत पैज पूरो ।'

(हनुमानबाहुक १)

श्रीरामपूर्वतापनीय उपनिषद्‌में उल्लेख है कि (सीतान्वेषण कालमें) श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंके आगे बढ़नेपर उन्हें वायुपुत्र मरुत्पुत्र हनुमानजी मिले, जिन्होंने कपिराज सुग्रीवको बुलाकर उनके साथ दोनों भाइयोंकी मैत्री करवायी—

पूजितावीरपुत्रेण भक्तेन च कपीश्वरम् ।

आहूय सख्यं सर्वमाख्यन्त रामलक्ष्मणौ ॥

(४ । २०)

श्रीनारायणविरचित 'दीपिका' टीकामें उपर्युक्त श्लोकका भाष्य है—

'पूजितौ सन्तौ ईरो वायुस्तस्य पुत्रेण भक्तेन भजनपरेण हनुमता ...।'

श्रीहनुमानने सुग्रीवकी आज्ञासे श्रीरामकी अँगूठी लेकर समुद्रको पार करके लङ्कामें जाकर अशोकवनमें भगवती सीताका दर्शन किया और फिर लङ्काको जलाकर श्रीरामके पास वापस आ गये। श्रीरामपूर्वतापनीय उपनिषद्‌में इसका संक्षिप्त विवरण मिलता है—

ततस्तत्तार हनुमानब्धिं लङ्कां समाययौ ॥

सीतां दृष्ट्वासुरान् हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम् ।

आगम्य रामाय न्यवेदयत तत्त्वतः ॥

(श्रीरामपूर्वता० उप० ४ । २५-२६)

'हनुमानजीने (अशोक-वाटिकामें) सीताजीका दर्शन किया और राक्षसोंका संहार करके लङ्कापुरीको भस्म कर दिया। पुनः लौटकर उन्होंने श्रीरामजीसे सारी बातें यथार्थ रूपमें निवेदित कर दीं।'

ऋग्वेदकी एक ऋचामें श्रीहनुमानके समुद्र-लङ्घनकी इच्छाका अभिव्यञ्जन मिलता है—

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन् कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥

(१० । ७९ । ३)

उपर्युक्त ऋचापर नीलकण्ठका भाष्य इस प्रकार है—

'प्रमातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्निरयुत्तरमत्र प्रकर्षेण तीर्त्वा मातुर्गुह्यमिच्छतीति लिङ्गाद्धनू गुहा चिरं इत्यादि लिङ्गाच्च सीतान्वेषणाय समुद्रं तरितुकामस्य हनुमत एवैतद्रूपं वर्ण्यत इति मद्धृदयैरेव ज्ञेयम् ।' (मन्त्ररामायण ७४)

इसी प्रकार ऋग्वेदकी एक अन्य ऋचामें मैनाकका स्पर्श करते हुए समुद्र लाँघनेका उल्लेख है—

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥

(९ । ७१ । ३)

इस मन्त्रका भाष्य है—

'अद्रिभिरिति—स हरिः मध्येमार्गम् अद्रिभिः मैनाकपर्वतेन समुद्रमध्यादुद्गतेन सुतः प्रसुतो मयि विश्रमस्वेति आज्ञप्तः सन् स गभस्त्योः बाहुभ्यां पवते गच्छति। इदं स्पर्शमात्रेण तं सम्भावयति, न तु तस्य पृष्ठे तिष्ठतीत्यर्थः। यतः वृषायते वृषवद् स्वीयं प्रकाशयति, अत एव नभसा आकाशेन वेपते सर्वत्र गच्छति ।' (मन्त्ररामायण ८८)

'यहाँ समुद्र-लङ्घनके समय श्रीहनुमानद्वारा मैनाक-पर्वतके स्पर्शमात्रका वर्णन है। मैनाकने समुद्रके मध्यसे उद्गत होकर उनसे विश्राम करनेका संकेत किया, किंतु श्रीहनुमानने हाथसे छूकर उसको सम्मानित किया, उसके पृष्ठभागपर विश्राम नहीं किया।'

श्रीहनुमानजीने समुद्रको पार किया और अत्यन्त रमणीय लङ्कामें पहुँच गये। उन्होंने अशोक-वाटिकामें सीताजीका दर्शन कर उनके श्रवणोंको अमृत-तुल्य मधुर वचनोंसे सींचना आरम्भ किया—

दृष्टो मर्कः ... दृश्यते ... ते मधु ... चोदते अन्तराकाले ।

(ऋग्वेद ९ । ११ । २)

वाल्मीकि-रामायण, हनुमन्नाटक एवं मानसमें श्रीहनुमान

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशव्रत राय, एम्० ए०, डी० फिल्, एल्-एल्० बी०)

लङ्का-अभियान ही श्रीराम-लीलाका आधारभूत घटनाचक्र है और इस घटनाचक्रके सूत्रधार रामायणके नायक श्रीरामकी अपेक्षा अञ्जनी-पुत्र श्रीहनुमान ही अधिक उपयुक्त दीखते हैं। दास्य-भावकी प्रधानताके कारण तुलसीदासजीके रामचरितमानसमें श्रीहनुमानका प्रथम दर्शन दासके रूपमें ही होता है। रावण-दरबारमें पकड़कर लाये गये श्रीहनुमान अत्यन्त निर्भीक एवं स्पष्टवक्ता हैं। इस बातकी पुष्टि होती है 'भृकुटि बिलोकत सकल सभीता' जैसे आतङ्कपूर्ण रावणके सामने 'देखि प्रताप न कपि मन संका' से पवनपुत्रके चातुर्य एवं पराक्रमपर रीझकर भगवान् श्रीरामने अत्यन्त विह्वल एवं कृतज्ञतापूर्ण स्वरमें कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥

(रामचरितमानस ५ । ३१ । २½)

परंतु तेजस्वी एवं पराक्रमी पवनपुत्र अपनी प्रशंसा सुनकर भावुक सेवककी भाँति प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ते हैं। शालीनता एवं नम्रताके आदर्श श्रीहनुमानने अपनी प्रशंसाके उत्तरमें—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

(रामचरितमानस ५ । ३२ । ४½)

—केवल इतना ही कहते हैं और पुरस्कारस्वरूप याचना करते हैं—श्रीराम-भक्ति ही। यही भक्तिमार्ग और भक्ति भावना तुलसीके मानसका प्रतिपाद्य विषय है। श्रीहनुमानके पराक्रम एवं निःसीम क्षमतासे दूरवर्ती प्रदेशके लोग भी परिचित थे। लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर सुषेण वैद्यने औषधि बतलानेके साथ ही सीधे श्रीहनुमानसे उसे लानेके लिये भी कहा और उन्होंने उसे पूरा किया। जगाये जानेपर कुम्भकर्णने रावणसे कहा—'जिनके हनुमान-जैसे सेवक हों, उन श्रीरामको कौन जीत सकता है।' राज्याभिषेकके उपरान्त श्रीरामने समस्त वानरोंको सम्मानसहित विदा किया, केवल श्रीहनुमान ही एकमात्र अपवाद थे।

श्रेष्ठ, अद्वितीय एवं उदात्त चरित्रके धनी श्रीहनुमान तुलसीदासजीके रामचरितमानसमें सर्वत्र आदर्श श्रीराम-सेवकके रूपमें चित्रित हुए हैं।

चौदह अङ्कोंवाले 'हनुमन्नाटक' की कथावस्तु रामचरित मानस-जैसी ही है। उसका नाम तो 'हनुमन्नाटक' अवश्य है, परंतु उसके नायक श्रीराम ही हैं। जन्म, उपरिचय आदिकी अपेक्षा श्रीहनुमानका प्रथम परिचय पम्पापुरसे भेजे गये दूतके रूपमें मिलता है। सीताकी खोजके लिये प्रस्थान करते समय उपस्थित सवादमें पवनपुत्रका पराक्रमी व्यक्तित्व प्रथम बार मुखरित होता है। उस समय वे कहते हैं—'प्रभो! आज्ञा दीजिये, क्या मैं समुद्रको सोख लूँ, या रावण और जानकीसहित लङ्काको ही यहाँ उठा लाऊँ, अथवा पर्वतोंद्वारा समुद्रको ही पाट दूँ।'

देवाज्ञां देहि रामा त्वमसि कुलगुरुः शोषये किं पयोधिं
किं वा लङ्कां सलङ्काधिपतिमुपनय जानकीं मानकीर्णाम्।
सेतुं बध्नामि मत्त स्फुटितगिरितटीमूलभाग्नातरङ्गा
दुर्लङ्घ्यद्यककोऽपि च मकरकुलग्राहघोरम्॥

(हनुमन्नाटक ६ । ५)

इसमें अन्य प्रचलित कथाओंकी भाँति श्रीहनुमानकी लङ्कामें न तो विभीषणसे भेंट होती है और न अशोक-वाटिकाकी खोजमें वे किसीकी सहायता ही लेते हैं। अशोक-वाटिका विध्वंसके अनन्तर अपने दरबारमें रावण श्रीहनुमानको दुर्वचन कहता हुआ डींगें अवश्य मारता है, परंतु पराक्रमी पवनपुत्रसे वह भयभीत एवं चकित भी होता है। उसकी भरी सभामें अकेले हनुमानने उसकी भर्त्सनापूर्ण स्वरमें प्रताडना की।

लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर जब श्रीरामसहित सारी वानर-सेना हताश हो जाती है, तब पवनपुत्र अपनी ओजस्वी वाणीसे सबके मनमें आशाका संचार करते हैं और द्रोणगिरिपर पहुँचकर संजीवनीयुक्त शैलखण्डको उखाड़कर तीरकी भाँति चलते हुए शिविरमें आ पहुँचते हैं। अन्तमें नम्र एवं विनयशील अञ्जनी पुत्र अपने बल, प्रताप एवं पराक्रमका सारा श्रेय प्रभु श्रीरामको ही देते हैं। इस अर्चनाके साथ 'हनुमन्नाटक' का समापन होता है।

स्पष्टतः 'रामचरितमानस' एवं 'हनुमन्नाटक' में श्रीहनुमानका चरित्र-चित्रण लगभग एक-जैसा ही मिलता है। तटस्थ एवं समालोचनात्मक विवेचन करते हैं कि 'सीताकी खोज', 'अहिरावणके पाशसे श्रीराम-लक्ष्मणकी मुक्ति', 'सुषेण वैद्य और तदनन्तर संजीवनी ओषधिको लाना-जैसी कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाएँ एकमात्र अञ्जनी-पुत्रके शौर्य एवं पराक्रमका ही

सामान्य चपल वानरके रूपमें प्रस्तुत किया गया है, जिसे अशोक-वाटिकाके रसीले फलोंको देखकर भूख लग जाती है और वह सीतासे आज्ञा लेकर वानर-स्वभावके कारण तोड़-फोड़ करता हुआ फल खाने लगता है, किंतु वाल्मीकिके हनुमान इससे सर्वथा भिन्न, धीर एवं गम्भीर हैं। पवनपुत्रके स्वगत-कथनसे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि अशोक-वाटिका विध्वंस करनेमें इनके तीन उद्देश्य थे—१ साम, दाम एवं भेदसे अभेद्य शत्रुको अपने पराक्रम-प्रदर्शनद्वारा मुख्य आक्रमणके पूर्व आतङ्कित करना, २ रावणकी सैन्य शक्तिका अनुमान लगाना और ३ जानकीको दिये गये आश्वासनोंका उन्हें विश्वास दिलाना। अशोक-वाटिका-विध्वंस ही संघर्षका एकमात्र मार्ग था। इस 'मिनी'-युद्धमें ही किंकर नामक राक्षस, प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली, मन्त्रियोंके सात पुत्र, विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण नामक सेनापति, रावणपुत्र अक्षकुमार तथा असंख्य योद्धा मारे गये। इसी संघर्षके कारण श्रीहनुमानजी रावणके राजदरबारमें पहुँचकर वहाँ निर्भीकतापूर्वक रावणको प्रताड़ित कर सके और उनकी सैन्य शक्तिकी जानकारी भी प्राप्त कर सके। लंकासे लौटनेपर श्रीरामने श्रीहनुमानसे वहाँकी सैन्य व्यवस्थाके विषयमें जो प्रश्न पूछा और उसका जो सही और विस्तृत विवरणात्मक उत्तर उन्होंने दिया, उससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति एवं स्मृतिका पूर्ण परिचय मिलता है। अकेले अपने बम्बर विवरणात्मक गुप्तचर-कार्य करना श्रीहनुमानद्वारा ही सम्भव था।

संजीवनी ओषधिको न पहचाननेके कारण समूचे पर्वत शृङ्गको ही उखाड़ लानेकी अज्ञतासूचक कथा वाल्मीकिको स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार सुषेण वैद्यकी रातों-रात हिमालयतक जाकर संजीवनी लानेकी टेढ़ी बातको पूरा करना श्रीहनुमानके अतिरिक्त अन्य किसीके द्वारा सम्भव न था। ऋषभ एवं कैलासके बीच दीप्तिमान् ओषधि पर्वतपर मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और सन्धानी ओषधियाँ श्रीहनुमानके वहाँ पहुँचते ही तत्काल अदृश्य हो गयीं। ओषधियोंको न देखकर हनुमानजी रोषसे गर्जना करने लगे और विपत्तिके समय श्रीरामकी सहायता करनेकी अपेक्षा उसमें और बाधा उपस्थित करनेवाले उस धातुयुक्त पर्वतको ही उखाड़ लिया। उसकी चोटियाँ टूट-टूटकर इधर उधर बिखर गयीं।

रावण-वधके पश्चात् श्रीरामकी आज्ञासे वैदेहीको संदेश देनेके लिये विजयी योद्धाके रूपमें सीधे चले जानेकी अपेक्षा पवनपुत्रने विभीषणसे आज्ञा माँगकर लंकामें प्रवेश किया, यह थी उनकी नम्रता और शिष्टता तथा अनुशासन-परायणता। इन्होंने ही शोकमग्न एवं श्रीरामकी प्रतीक्षामें व्याकुल भरतको भी शुभ संवाद सुनाया था। श्रीराम-कथामें हनुमानकी निर्णायक भूमिकाका समापन-परिचय श्रीरामद्वारा अवरुद्ध-कण्ठयुक्त कृतज्ञता ज्ञापनसे मिलता है।

हनुमानजी केवल श्रीरामकालीन ही नहीं, अपितु रामायण कालसे आजतक जन-जीवनकी भक्ति, शक्ति, पराक्रम और विश्वासके स्रोत रहे हैं। चाहे पहलवान हो चाहे दुर्बल, चाहे बच्चे-बूढ़े हों चाहे धनी निर्धन—आप सबके आराध्य हैं। रामचरितमानस, हनुमन्नाटक एवं वाल्मीकि-रामायण—ये सभी ऐसे ग्रन्थ हैं, जो समाजको दिशा-ज्ञान कराते हैं। इन सभी ग्रन्थोंमें श्रीराम भक्त श्रीहनुमानका ऐसा अनोखा स्वरूप अङ्कित हुआ है कि ये श्रीरामके समान ही आराध्य एवं आदर्श रूपमें प्रतिष्ठित हो गये।

महावीर हनुमान !

(रचयिता—श्रीगोपीनाथजी उपाध्याय, साहित्यरत्न)

रामसे है नेह, स्वर्ण-शैलके समान देह,
ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, गुणके निधान हैं।
महाबलशाली हैं, अखण्ड ब्रह्मचारी, यती,
वायुके समान वेग, शौर्यमें महान हैं॥
राघवके दूत बन लंकमें निशंक गये,
सीता-सुधि लाये, कपि यूथके प्रधान हैं।
भक्त प्रतिपाल, क्रूर दानवोंके काल-व्याल,
अञ्जनीके लाल महावीर हनुमान हैं॥

द्वारा प्रेषित सर्वश्रेष्ठ हार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने वैदेहीको दिया। उसे भगवती जगदम्बा जानकीजीने वानरी सेनाके प्रमुख सुग्रीव आदि प्रधान वीरोंके रहते हुए भी अत्यन्त सम्मान एवं स्नेहके साथ श्रीहनुमानजीको दे दिया (सौगन्धिकाहरण ६ । २२) । यह प्रसङ्ग वाल्मीकि रामायण (६ । १२८ । ७८-७९) में भी मिलता है। परवर्ती साहित्यमें यह घटना श्रीहनुमानकी श्रीरामभक्तिविषयक उद्देश्यसे विशेष उत्कर्षके साथ प्रस्तुत की गयी है।

'कल्याण-सौगन्धिक'में भीम एवं श्रीहनुमानके द्वन्द्व-युद्धके बीच एक विद्याधर उपस्थित होकर कहता है—'मुझे इन्द्रने मातलेगोंके पास भेजा है । उनका संदेश है—आप दोनों श्रीराम-लक्ष्मणके समान परस्पर भ्रातृभाव प्रतिष्ठित रखें।' हनुमानजी श्रीरामका नाम सुनते ही श्रीरामविषयक भक्तिभावसे विह्वल हो उठे। उन्होंने भीमको श्रीरामका चरित सुनाया—

> हित्वा राज्यसुखं पितुर्वचनतो भक्तवरान् काननं
> हत्वा शूर्पणखानिकारमुषितामन्विष्य सीतां हवाम्।
> कृत्वा वालिवधार्जितेन सुहृदा सेतुं व्यतीत्याम्बुधिं
> लङ्केशं हतवांश्च मन्यमकरोद् मायाद्‌योध्यां पुनः ॥
>
> (कल्याण-सौगन्धिक)

नीलकण्ठने उपर्युक्त प्रसङ्गमें श्रीहनुमानकी श्रीरामविषयक भक्तिका वर्णन किया है। नाटककार उक्त प्रसङ्गके लिये महाभारत (वनपर्व, अध्याय १४८)से प्रभावित हैं, जहाँ श्रीहनुमान भीमको संक्षिप्त श्रीरामचरित सुनाते हैं।

ऊपरके विवरणसे स्पष्ट है कि संस्कृत-नाटककार भी हनुमानकी श्रीरामविषयक भक्तिके लिये वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, भागवतपुराण या अन्यान्य श्रीरामकथा विषयक ग्रन्थोंके ऋणी हैं । ऐसा होते हुए भी नाटकोंमें उन्हें आदर्श श्रीराम-भक्तके ही रूपमें उपस्थित किया गया है। उनके श्रीराम 'इन्द्र-तुल्य भुवनैकनाथ' (अभिषेक ३ । २१) हैं। उनके द्वारा अद्भुत पराक्रमपूर्ण—दिव्य अलौकिक कृत्य—उन्हीं भगवान् श्रीरामकी कृपासे सम्पन्न होते हैं । भगवान् श्रीराम एवं जगदम्बा जानकीजीकी उनपर अगाध अनुकम्पा है।

अपभ्रंश-रामायण 'पउमचरिउ' के श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीश्रीरंजन सूरिदेवजी एम्० ए० [प्राकृत, जैनशास्त्र एवं संस्कृत] साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-पालि-जैनदर्शनाचार्य व्याकरण-तीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

भारतीय जन भावनामें श्रीरामभक्त हनुमानकी प्रतिष्ठा वीरता, जितेन्द्रियता और परिनिष्ठित ज्ञानके आगारके रूपमें हुई है। अन्तर केवल इतना ही है कि वैदिक साहित्यमें हनुमानको दिव्य व्यक्तित्वसे विभूषित बतलाया गया है और वैदिकेतर जैन-साहित्यमें उनके विभूतिमान् लोकोत्तर व्यक्तित्वको मानवीय धरातलपर प्रतिष्ठित किया गया है। किंतु जहाँतक आदर भावका प्रश्न है, सम्पूर्ण भारतीय साहित्यमें उन्हें समानरूपसे समादरणीय स्थान प्राप्त है। वे जन-जनको विभिन्न संकटोंसे मुक्त करनेकी क्षमता रखते हैं, इसीलिये लोक-जीवनमें उनका 'संकटमोचन' नाम सर्व प्रथित है। इस प्रकार अपनी गुणातिशयताके कारण ही वे सदा लोकाराध्य बने हुए हैं। हम यहाँ अतुलितबल-धाम हनुमानजीके व्यक्तित्व-वैशिष्ट्यके संदर्भमें बहुप्रसिद्ध अप भ्रंश-कवि स्वयम्भूकी रामायण 'पउमचरिउ'के आधारपर संक्षिप्त चर्चा उपन्यस्त करेंगे।

जैन कवि स्वयम्भूके अनुसार चैत्रमासके कृष्णपक्षकी श्रवणनक्षत्रयुक्त अष्टमीको, रात्रिके अन्तिम प्रहरमें, पवनंजय की पत्नी अञ्जनाने हनुमानको जन्म दिया था। नवजात शिशुके हाथ पैरोंमें हल, कमल, वज्र मत्स्य आदिक शुभ चिह्न अङ्कित थे । फलित ज्योतिषके अनुसार ये चिह्न किसी शिशुके भावी महिमाशाली राजोचित जीवनके संकेतक माने जाते हैं। कहना न होगा कि प्रतापी हनुमानने अपनी उत्कृष्ट रागानुगा भक्तिके द्वारा अपने परम सेव्य मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामको भी वरावद बना लिया था और स्वयं 'वानराधीश' पदवीको अलङ्कृत किया था । साथ ही हनुरुह द्वीपमें लालन-पालन होनेके कारण ही उनका 'हनुमान' नाम पड़ा था।

'पउमचरिउ'के रचयिता कवि स्वयम्भूने हनुमानजीका 'भटश्रेष्ठ'के रूपमें स्मरण किया है। हनुमानजीकी पूँछ बड़ी मायामयी थी, जिससे प्रचण्ड पराक्रमी शत्रु भी भय-कम्पित हो जाते थे। 'पउमचरिउ'के श्रीहनुमानकी ध्वजमें उनका अपना ही रूप चित्रित था। श्रीराम जानते थे कि हनुमान जिसके पक्षमें रहेंगे, विजयलक्ष्मी उसीका वरण करेगी। रण पूछिये तो श्रीरामकी सेनामें 'बलवान्' शब्दको सार्थक करनेवाला कोई था तो वे हनुमान ही थे, दूसरा नहीं।

स्वार्थवश मुँहके मीठे और प्रियभाषी होते हैं। अपने इष्टदेवका धर्म छोड़कर इस जीवका कोई भी अपना नहीं है।*

अपने प्रबोधन प्रवाहको जारी रखते हुए स्फुरिताधर हनुमानजीने बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें रावणसे कहा—

'हे रावण! मैं स्नेहपूर्वक कह रहा हूँ कि तुम पर-स्त्रीको असार समझो। अपने मनमें संवर-तत्त्वका ध्यान करो और पर-स्त्रीसे बचते रहो। त्रिभुवन-लक्ष्मीके निकेतन हे रावण! तुम 'संवर-अनुप्रेक्षा' सुनो—राग-रहित होकर इस जीवको इस प्रकार रखना चाहिये कि इसे किसी तरहका कलङ्क न लगे। जो जिसका प्रतिद्वन्द्वी है, उससे उसकी रक्षा करो—कामसे अकामको, शल्यसे अशल्यको, दम्भसे अदम्भको, दोषसे अदोषको, पापसे अपापको, रोषसे अरोषको, हिंसासे अहिंसाको, मोहसे अमोहको, मानसे अमानको, लोभसे अलोभको, अज्ञानसे दृढ ज्ञानको, मत्सरसे दर्पनाशक अमत्सरको, दुर्निवार वियोगसे अवियोगको, अपथसे दुष्प्रवेश्य सत्पथको और मिथ्यात्वसे दृढ सम्यक्त्वको बचाओ, जिससे देहरूपी नगर नष्ट न होने पाये। हे नवनीलकमलनयन रावण! यह सब जानकर तुम जाकर श्रीरामको जनकसुता अर्पित कर दो।'†

इस प्रकार स्वयम्भू कविने अपनी अपभ्रंश-रामायण 'पउमचरिउ' अर्थात् 'पद्मचरित'में श्रीहनुमानके जिस विराट् व्यक्तित्वकी अवतारणा की है, उससे उनकी लोकोत्तर श्रेष्ठताका प्रतिपादन होता है। यही कारण है कि सीताके अनुसंधानके बाद उनकी चूडामणिके साथ हनुमानके किष्किन्धानगर वापस आनेपर स्वयं राघवसिंह श्रीरामने बरगदकी तरह विशाल हनुमानको अपनी भुजाओंमें भर लिया।

स्वयम्भू (८वीं शती) और तुलसीदास (१६वीं शती)—दोनों श्रीरामकथाके समर्थ भाषा-कवि हुए हैं। यद्यपि इन दोनोंके तथ्य-कथ्य और दार्शनिक उपस्थापनाओंमें पर्याप्त पार्थक्य है, तथापि कई बातोंमें वे समान भी हैं। अपभ्रंश और हिंदी—दोनों रामायणोंमें कवियोंकी भावनाओंके अनुरूप ही क्रमशः मानव और अतिमानवके प्रतीकरूपमें श्रीहनुमानके व्यक्तित्व और कृतित्वका विनियोग हुआ है।

जैन-मान्यताके अनुसार श्रीहनुमानजी

(लेखक—श्रीताराचंदजी पाण्ड्या)

जैन-मान्यताके अनुसार प्रत्येक कल्पमें चौबीस तीर्थंकर (आध्यात्मिक नेता), बारह चक्रवर्ती (छः खण्डभूमिके स्वामी), नौ प्रतिनारायण (तीन खण्डपृथ्वीके स्वामी), नौ नारायण (प्रतिनारायणसे तीन खण्डपृथ्वीको जीतनेवाले) और नौ बलभद्र (नारायणके बड़े भाई)—इस तरह तिरसठ शलाका (उत्तम पदधारी) पुरुष होते हैं। इनके अतिरिक्त तीर्थंकरोंके चौबीस-चौबीस माता-पिता, नौ नारद, ग्यारह रुद्र, चौबीस कामदेव (अत्यन्त सुन्दर पुरुष)—ये विशिष्ट पुण्यशाली व्यक्ति भी प्रत्येक कल्पमें होते हैं। ये सभी उत्तम पदधारी उसी जन्ममें या थोड़ेसे जन्म लेकर परमात्मा बननेवाले होते हैं। इनमेंसे चौबीस कामदेव उसी जन्ममें मुक्त परमात्मा बन जाते हैं। इनके-जैसा सुन्दर मनोमोहक रूप स्वर्गमें भी नहीं होता। श्रीहनुमान अठारहवें कामदेव थे। ये बंदर नहीं थे, किंतु वानर-वंशी थे, अर्थात् जैन-मतानुसार इनके वंशके राज्य ध्वजमें बंदरका चिह्न था, इसलिये इनका कुल (वंश) वानर-वंशके तौर-से विख्यात था। इनके पिता राजकुमार पवनकुमार थे और इनकी माता अञ्जना थीं। बचपनमें एक दिन जब श्रीहनुमान अपने मामाके विमानमें बैठकर आकाश-मार्गसे जा रहे थे, तब खेलमें उछलकर ये नीचे पहाड़पर गिर पड़े, इससे इनकी कोई हानि नहीं हुई, बल्कि वह पहाड़ ही टूट गया। इनकी हड्डियाँ वज्रकी थीं और वज्रके ही वेष्टन और वज्रका ही संहनन था। ये रावण प्रति-नारायणके निकट सम्बन्धी थे, किंतु जब उसने इनकी नीति-सम्मत सलाह नहीं मानी तो ये श्रीराम (बलभद्र)के परम सहायक बन गये और उनकी हर प्रकारसे सहायता की। ये विद्याधर थे, इसलिये जन्मजात, कुलजात और मन्त्र-सिद्ध सिद्धियोंसे सम्पन्न थे। जैन-मान्यताके अनुसार ये बालब्रह्मचारी नहीं थे। गृहस्थाश्रमके अन्तमें राज-पाट-परिग्रह-स्त्री आदिका त्याग कर साधु हो गये और तपस्या करके श्रीरामकी भाँति उसी जन्ममें त्रैलोक्य-पूजित अनन्तकालीन परमात्मा बन गये।

---

* पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ५४, ८। १—१०

† पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड संधि ५४, १३। १—१०

पवनपुत्र हनुमानके 'हनुरुह' द्वीपमें निवास करनेके कारण वह द्वीप धरतीपर अवतीर्ण स्वर्गके एक खण्डकी तरह प्रतीत होता था। हनुरुह द्वीपमें रहनेवाले हनुमान शिशिर कालीन नयनानन्दकारी दिवाकरकी भाँति सबकी आँखोंके प्रिय थे। किंतु जब वे क्रुद्ध होते थे, तब गजकी भाँति निरंकुश, सिंहकी भाँति रोषपूर्ण और शनिकी भाँति भयावह बन जाते थे। सूर्यकी भाँति दुर्निवार वेगवाली, यमके समान निष्ठुर दृष्टि, अष्टमीके चन्द्रमाकी नाईं वक्र एवं बुद्धिमें बृहस्पतिके समान श्रीहनुमानके कुपित होनेपर श्रीराम-लक्ष्मण भी विस्मित हो जाते थे। फड़कती हुई लाल-लाल आँखोंवाले श्रीहनुमानका दर्पदीप्त व्यक्तित्व उपमा प्रयोग-पटु स्वयम्भू कविके शब्दोंमें द्रष्टव्य है—

> समुट्ठिओऽरि भञ्जणो। समीरणस्स णन्दणो॥
> पलंबबाहु-पञ्जरो। णिरंकुसो व्व कुञ्जरो॥
> महीहरस्स उप्परी। विरुद्धउ व्व केसरी॥
> पुरन्दरस्स-कोपणो। सणि व्व सायलोयणो॥
> दुवारसो व्व भक्खरो। जमो व्व दिट्ठि णिट्ठुरो॥
> विहिव्व किंचिदुट्ठिओ। ससि व्व अट्ठमो ठिओ॥
> विहप्फइ व्व अम्मणो। भट्टि व्व कूर-कम्मणे॥
>
> (पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड संधि ४५)

'पउमचरिउ'के अनुसार श्रीरामके हृदयमें हनुमानजीके प्रति अत्यधिक सम्मानकी भावना रहती थी। यही कारण था कि वे श्रीहनुमानको आधे आसनपर बैठाते थे। जब आसनके एक ओर हनुमान एवं दूसरी ओर श्रीराम बैठते तो वे दोनों मनोमोहक वसन्त और कामदेवकी तरह शोभित होते थे। स्वयम्भू कविने श्रीरामके मुखसे हनुमानकी प्रशंसामें ये शब्द कहलवाये हैं—'आज ही मेरा मनोरथ सफल हुआ है, आज ही मेरा भाग्योदय हुआ है, आज ही मेरी सेना प्रचण्ड हुई है क्योंकि आज ही चिन्ता-सागरमें निमग्न मुझे श्रीहनुमानरूपी नाव मिली है। पवनपुत्रके मिलनेपर मुझे त्रिलोकीका राज्य ही मिल गया। शत्रुकी सेनामें हनुमानका भार कोई भी नहीं सँभाल सकता।'*

विमानमें बैठकर हनुमानजी जिस समय सीताकी खोजके लिये प्रस्थित हुए, उस समयका जो वर्णन कवि स्वयम्भूने उपस्थित किया है, वह हनुमानके प्रभावशाली महामहिम व्यक्तित्व। बड़ी चमत्कारिताके साथ व्यक्त करता है—

'चन्द्रकान्तमणिकी किरण-कान्तिके सदृश चमकते विमानपर समासीन हनुमान आकाशमें रथसहित आनेवाले सूर्यकी तरह भास्वर प्रतीत होते थे। उनका विमान चन्द्रशालाकी भाँति विशाल था तथा वह घण्टाकी ध्वनिसे मुखरित हो रहा था। वह 'घव घव' और 'घर-घर' शब्दसे अनुगुञ्जित होता हुआ रुन-झुन करती हुई किंकिणियोंके मधुर-स्वरसे सहृत था। हवामें उड़ती हुई सफेद ध्वजाओंके विस्तृत आटोपसे वह नाचता हुआ-सा लग रहा था। वह छत्रदण्डसे उन्नत और श्वेत सुन्दर चामरोंके भारसे भासमान था। उसमें मणियोंके झरोखे, छज्जे, किंवाड़ और तोरणद्वार थे एवं मूँगा-मोतियोंके झूमर लटक रहे थे। मँडराते हुए भ्रमरोंका समूह उसको चूम रहा था।' †

स्वयम्भू कविने हनुमानके युद्धवीर रूपका विन्यास बड़े मनोयोगसे किया है। इस क्रममें कविने अपभ्रंश भाषाकी समृद्धिकी पराकाष्ठाका प्रदर्शन करते हुए हनुमानको 'विजयलक्ष्मीसे विभूषित', 'शत्रुसंहारक', 'शत्रुसेनाविध्वंसक', 'अस्खलितमान', 'सौभाग्यराशि', 'सत्पुरुषरत्न', 'साक्षात् कामदेव', 'कंदर्पदर्पदलनकारी', 'दृढविशालवक्षःस्थल', 'प्रचण्डबाहुदण्ड', 'तनुतेजपिण्ड' आदि अनेक विस्मयकारी वीरोचित विशेषणोंसे समलङ्कृत किया है।

हनुमान जिस समय रावणके उद्यानमें बंदिनी सीताकी आज्ञा लेकर लंकासे वापस जानेको उद्यत हुए, उस समय उनके मनमें उद्यानको रौंद डालनेका संकल्प उदित हुआ। हनुमानके वीरोचित संकल्पका कवि स्वयम्भूने सातिशय चमत्कार उत्पन्न करनेवाली नामधातु-बहुल भाषामें लिपिबद्ध किया है।

नागपाशमें आबद्ध हनुमानने रावणके दरबारमें उपस्थित होकर सीताके संदर्भमें जिन शब्दोंके द्वारा रावणकी भर्त्सना की, उनसे उनकी परिष्कृत शास्त्रज्ञताका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। 'जिन' शासनकी बारह 'अनुप्रेक्षाओं'के रूपमें उनके द्वारा रावणसे कही गयी ज्ञान और वैराग्यकी बातें पर्याप्त उद्बोधक हैं। उनमेंसे दो-एक उदाहरणोंकी बानगी देखिये—

'हे रावण! शरीर अन्य है और जीवका स्वभाव अन्य। धन-धान्य और यौवन—ये सब पराये हैं। घरके स्वजन परिजन भी पराये हैं। स्त्री भी अपनी नहीं होती। पुत्र भी पराया हो जाता है। इन सबके साथ मेल-मिलाप कुछ ही दिनोंका होता है, फिर मरकर सब एकाकी भटकते फिरते हैं। लोग

* पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ४५। ११। १०, १४। १

† पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ४६। १। १०

स्वार्थवश मुँहके मीठे और प्रियभाषी होते हैं। अपने इष्टदेवका भ्रम छोड़कर इस जीवका कोई भी अपना नहीं है।*

अपने प्रबोधन प्रवाहको जारी रखते हुए स्फुरिताधर हनुमानजीने बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें रावणसे कहा—

'हे रावण! मैं स्नेहपूर्वक कह रहा हूँ कि तुम पर-स्त्रीको अगर समझो। अपने मनमें संवर-तत्त्वका ध्यान करो और पर-स्त्रीसे बचते रहो। त्रिभुवन-लक्ष्मीके निकेतन हे रावण! तुम 'संवर-अनुप्रेक्षा' सुनो—राग-रहित होकर इस जीवको इस प्रकार रखना चाहिये कि इसे किसी तरहका कलङ्क न लगे। जो जिसका प्रतिद्वन्द्वी है, उससे उसकी रक्षा करो—कामसे अकामको, शल्यसे अशल्यको, दम्भसे अदम्भको, दोषसे अदोषको, पापसे अपापको, रोषसे अरोषको, हिंसासे अहिंसाको, मोहसे अमोहको, मानसे अमानको, लोभसे अलोभको, मदनसे दृढ़ ज्ञानको, मत्सरसे दर्पनाशक अमत्सरको, दुर्निवार वियोगसे अवियोगको, अपथसे दुष्प्रवेश्य सत्पथको और मिथ्यात्वसे दृढ़ सम्यक्त्वको बचाओ, जिससे देहरूपी नगर नष्ट न होने पाये। हे नवनीलकमलनयन रावण! यह सब जानकर तुम जाकर श्रीरामको जनकसुता अर्पित कर दो।'†

इस प्रकार स्वयम्भू कविने अपनी अपभ्रंश-रामायण 'पउमचरिउ' अर्थात् 'पद्मचरित'में श्रीहनुमानके जिस विराट् व्यक्तित्वकी अवतारणा की है, उससे उनकी लोकोत्तर श्रेष्ठताका प्रतिपादन होता है। यही कारण है कि सीताके अनुसंधानके बाद उनकी चूड़ामणिके साथ हनुमानके किष्किन्धानगर वापस आनेपर स्वयं राघवसिंह श्रीरामने बरगदकी तरह विशाल हनुमानको अपनी भुजाओंमें भर लिया।

स्वयम्भू (८वीं शती) और तुलसीदास (१६वीं शती)—दोनों श्रीरामकथाके समर्थ भाषा-कवि हुए हैं। यद्यपि इन दोनोंके तथ्य-कथ्य और दार्शनिक उपस्थापनाओंमें पर्याप्त पार्थक्य है, तथापि कई बातोंमें ये समान भी हैं। अपभ्रंश और हिंदी—दोनों रामायणोंमें कवियोंकी भावनाओंके अनुरूप ही क्रमशः मानव और अतिमानवके प्रतीकरूपमें श्रीहनुमानके व्यक्तित्व और कृतित्वका विनियोग हुआ है।

जैन-मान्यताके अनुसार श्रीहनुमानजी

(लेखक—श्रीतारावदजी पाण्ड्या)

जैन-मान्यताके अनुसार प्रत्येक कल्पमें चौबीस तीर्थंकर (आध्यात्मिक नेता), बारह चक्रवर्ती (छः खण्डभूमिके स्वामी), नौ प्रतिनारायण (तीन खण्डपृथ्वीके स्वामी), नौ नारायण (प्रतिनारायणसे तीन खण्डपृथ्वीको जीतनेवाले) और नौ बलभद्र (नारायणके बड़े भाई)—इस तरह तिरसठ शलाका (उत्तम पदधारी) पुरुष होते हैं। इनके अतिरिक्त तीर्थंकरोंके चौबीस-चौबीस माता पिता, नौ नारद, ग्यारह रुद्र, चौबीस कामदेव (अत्यन्त सुन्दर-पुरुष)—ये विशिष्ट पुण्यशाली व्यक्ति भी प्रत्येक कल्पमें होते हैं। ये सभी उत्तम पदधारी उसी जन्ममें या थोड़ेसे जन्म लेकर परमात्मा बननेवाले होते हैं। इनमेंसे चौबीस कामदेव उसी जन्ममें मुक्त परमात्मा बन जाते हैं। इनके-जैसा सुन्दर मनोमोहक रूप स्वर्गमें भी नहीं होता। श्रीहनुमान अठारहवें कामदेव थे। ये बंदर नहीं थे, किंतु वानरवंशी थे, अर्थात् जैन-मतानुसार इनके वंशके राज्य ध्वजमें बंदरका चिह्न था, इसलिये इनका कुल (वंश) वानर-वंशके तौर-से विख्यात था। इनके पिता राजकुमार पवनकुमार थे और इनकी माता अञ्जना थीं। बचपनमें एक दिन जब श्रीहनुमान अपने मामाके विमानमें बैठकर आकाश-मार्गसे जा रहे थे, तब खेलमें उछलकर ये नीचे पहाड़पर गिर पड़े, इससे इनकी कोई हानि नहीं हुई, बल्कि वह पहाड़ ही टूट गया। इनकी हड्डियाँ वज्रकी थीं और वज्रके ही बेठन और वज्रका ही संहनन था। ये रावण प्रति-नारायणके निकट सम्बन्धी थे, किंतु जब उसने इनकी नीति-सम्मत सलाह नहीं मानी तो ये श्रीराम (बलभद्र)के परम सहायक बन गये और उनकी हर प्रकारसे सहायता की। ये विद्याधर थे, इसलिये जन्मजात, कुलजात और मन्त्र-सिद्ध सिद्धियोंसे सम्पन्न थे। जैन-मान्यताके अनुसार ये बालब्रह्मचारी नहीं थे। गृहस्थाश्रमके अन्तमें राज-पाट-परिग्रह-स्त्री आदिका त्याग कर साधु हो गये और तपस्या करके श्रीरामकी भाँति उसी जन्ममें त्रैलोक्य-पूजित अनन्तकालीन परमात्मा बन गये।

* पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ५४, ८। १—१०

† पउमचरिउ, सुन्दरकाण्ड, संधि ५४, १२। १—१०

संगीताचार्य श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीब्रजकिशोरप्रसादजी शास्त्री)

‘संगीतपारिजात’में श्रीहनुमानजी संगीत-शास्त्रके प्रमुख प्रवर्तक कहे गये हैं—

कर्ता संगीतशास्त्रस्य हनूमांश्च महाकपि ।
शार्दूलकाहलावेतौ संगीतग्रन्थकारिणौ ॥
(१।१)

अर्थात् हनुमानजी, शार्दूल और काहल—ये तीन व्यक्ति संगीत शास्त्रके निर्माता आचार्य हैं।

इसके भाष्यकार कलिन्दजीके मतानुसार शिवजीने जो संगीत-शास्त्र बनाया, उसे ‘शिवमत’, भरतने जो संगीत-शास्त्र बनाया, उसे ‘भरतमत’ एवं श्रीहनुमानजीने जो संगीत-शास्त्र बनाया, उसे ‘हनुमन्मत’ कहते हैं—

शास्त्रं चकार प्रथमालविभूषिताङ्गः
पूर्वं च लक्ष्मिवमतं भरतस्त्वनन्ते ।
तद् भारतं कपिवरश्च विलोकितवद् यत्
पश्चादिदं हनुमतो मतमीरितं तम् ॥

‘संगीतपारिजात’ ‘हनुमन्मत’का ग्रन्थ है। इसलिये इसके भाष्यके मङ्गलाचरणमें कलिन्दजीने बड़े ही भावपूर्ण शब्दोंमें हनुमानजीका स्मरण किया है—

संगीतेन वशीकरोति वरदं क्ष्माजाधवं राघवं
यश्चामीकरचारुगात्ररुचिरां विस्तारयन्नद्भुताम् ।
नानातालकलाकलापनिपुणः कौशल्यवद् गीयते
स प्रीणातु प्रशस्तगानरसिकप्रामोदिशाखामृगः ॥

अर्थात् जो अपने संगीतके द्वारा वरदायक सीतापति श्रीरामको वशमें कर लेते हैं, जो भक्तोंके समक्ष अपने सोने-जैसी सुन्दर एवं अत्यन्त अद्भुत शोभाका करते हैं, भाँति भाँतिके ताल और उनके कलाके समूहको उच्चारण करनेमें निपुण हैं और बड़ी कुशलतासे गान करते हैं, वे प्रशंसनीय संगीत-रसिकोंको अतिशय आनन्दित करनेवाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजी मुझपर प्रसन्न हों।

‘संगीतपारिजात’के अध्ययनसे श्रीहनुमत्संगीत शास्त्रकी महत्ता एवं स्वरूप ज्ञात होता है।

संगीतमर्मज्ञ भावभट्टविरचित ‘अनूपसंगीतविलास’-में श्रीहनुमानजीके नामपर अनेक संगीतालंकारोंका कथन उपलब्ध होता है। यथा—

भद्र—

भद्रसंज्ञमलंकारमाञ्जनेयोऽवदत् सुधी ।
एकैकस्य स्वरस्यात्र हननाच्च क्रमो भवेत् ॥

‘भद्र’नामक संगीतालंकारको विद्वद्वर श्रीहनुमानजीने इस प्रकार कहा है कि इसका क्रम एक-एक स्वरके हनन-क्रमसे उत्पन्न होता है।

श्रीव—

स-गौ-रि-गौ समुच्चार्य म-गौ-रि-सौ तथैव च ।
श्रीवं लघुद्वयेनात्र हनुमानवदत् सुधी ॥

स, गौ, रि, गौका उच्चारण करनेके पश्चात् म, गौ, रि, सौका उच्चारण करे, पुनः उसे दो लघु मात्राओंसे संयुक्त करे तो ‘श्रीव’ नामक संगीतालंकार बनता है। बुद्धिमान् हनुमानजीका ऐसा कथन है।

भाल—

स-गौ-रि-गौ समुच्चार्य म-गौ-रि-सौ तथैव च ।
द्रुताभ्यां लघुकालेन भालं वदति मारुतिः ॥

मारुतिका कथन है कि स, गौ, रि, गौका उच्चारण कर, म, गौ, रि, सौका उच्चारण करे और शीघ्र ही दो द्रुत स्वरोंसे संयुक्त करे तो ‘भाल’ नामक संगीतालंकार बनता है।

प्रकाश—

सौ-री-गौ-मो-ग-री-गश्च रि-साविति स्वरैश्च तैः ।
हनुमानष्टतालेन प्रकाशाख्यं समब्रवीत् ॥

सौ, री, गौ, मो, ग, री, ग, रि और सौ तथा इन्हीं स्वरों एवं अष्टतालके प्रयोगसे ‘प्रकाश’ नामक संगीतालंकार बनता है, ऐसा हनुमानजीका मत है।

बिन्दु—

आद्यं दीर्घत्रयं चाद्यं द्वितीयं ह्रस्वमेव च ।
बिन्दुर्बिन्दुत्रयेणापि हनूमान् साधबिन्दुमान् ॥

पहले तीन दीर्घ स्वर, पुनः दो ह्रस्व स्वर, फिर तीन एवं क्रमसे बिन्दुओंके योगसे ‘बिन्दु’ नामक अलंकार बनता है। ऐसा हनुमानजीका मत है।

सधिप्रच्छादन—

इस्वमाद्यद्वय कृत्वा दीर्घं कृत्वा तृतीयकम्।
हनुमानाह सयश संधिप्रच्छादन परम्॥

जिसमें पहले दो स्वर ह्रस्व और तीसरा दीर्घ उच्चारण किया जाता है, उसे सर्वज्ञ हनुमानजीने 'सधिप्रच्छादन' नामक सगीतालकार बतलाया है।

उद्घाटित—

आद्य स्वर चतुर्वारं द्विवार च द्वितीयकम्।
सकृदुक्त तृतीय तु तथा सकृच्चतुर्थकम्।
उद्घाटितस्वलकारो हनूमता प्रकीर्तित॥

जिसमें प्रथम स्वर चार बार, दूसरा दो बार, तीसरा एक बार और चौथा भी एक ही बार उच्चारण किया जाता हो, वह 'उद्घाटित' नामक सगीतालकार बनता है, ऐसा हनुमानजी कहते हैं।

इस प्रकार अभी भी अनेकों सगीतालकार श्रीहनुमानजीके नामसे उपलब्ध हो रहे हैं।

'अनूपसगीतरत्नाकर'के मङ्गलाचरणमें भट्टजीने श्रीहनुमानजीको सगीताचार्यके रूपमें इस प्रकार स्मरण किया है—

आञ्जनेयो मातृगुप्तो रावणो नन्दिकेश्वर।
स्वातिगणो बिन्दुराज क्षेमराजश्च काहल॥

अर्थात् अञ्जनी-पुत्र श्रीहनुमानजी, मातृगुप्त, रावण, नन्दिकेश्वर, स्वातिगण, बिन्दुराज, क्षेमराज और काहल—ये आठ सगीत-शास्त्रके प्रवर्तक परमाचार्य कहे गये हैं।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी सुप्रसिद्ध सगीताचार्य हैं, वे शास्त्रीय सगीतके प्रवर्तक हैं और भक्ति-सगीतके तो मानो मूल स्रोत ही हैं।

वैखानस-सम्प्रदायमें श्रीहनुमदुपासना

(लेखक—श्रीवटपत्रि भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु बी० ए०, बी० एड०)

ज्ञानानन्दमय देव निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधार सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥
श्रौतस्मार्तादिक कर्म निखिल येन सूत्रितम्।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नम॥

'जो ज्ञान तथा आनन्दके स्वरूप हैं, जिनकी निर्मल स्फटिक जैसी शरीर-कान्ति है, जो समस्त विद्याओंके आधार हैं, उन हयग्रीवजीकी हम उपासना करते हैं। जिनके द्वारा सम्पूर्ण श्रौत तथा स्मार्त कर्म सूत्रित हुए हैं, उन समस्त वेदार्थविद् विखनस् (ब्रह्माजी)को हमारा नमस्कार है।'

शास्त्रका ऐसा कथन है कि भगवान् विष्णुके सकल्पसे श्रीविखनस् (ब्रह्मा)जीका आविर्भाव हुआ। उनके द्वारा प्रवर्तित यह सम्प्रदाय स्वायम्भुव मन्वन्तरसे ही चला आ रहा है। इस वैखानस-सम्प्रदायमें वैदिक ढगसे भगवान् विष्णुकी उपासना की जाती है, जिससे लोक-परलोक-परमार्थ—सभी सिद्ध होते हैं। अन्य ग्रन्थ भी इसका समर्थन करते हैं। इस सम्प्रदायमें भगवान् ब्रह्माके पुत्र एव शिष्य महर्षि मरीचिद्वारा रचित 'विमानार्चनकल्प' नामक ग्रन्थमें श्रीहनुमानजीकी उपासनाके विषयमें निम्नाङ्कित वर्णन मिलता है—

'(रामस्य) दक्षिणे पुरतोऽञ्जनेय' श्वेतवर्णधर' कपिरूप' सर्वाभरणभूषितो द्विभुजो दक्षिणहस्तेनास्य पिधाय वामहस्तेन वस्त्र पिधायावनतगात्र' स्थितो वार्ताविज्ञापनपरो मृगवाहनो दण्डध्वजो महानाद श्रावणे मासि श्रवणजात कलाक्षरबीजो हनुमान् 'कपिराज हनूमन्त शब्दराशिं महामतिमिति।'

इसके अनुसार श्रीहनुमानजीके शरीरका वर्ण काला तथा उनके वस्त्रका रग श्वेत है और दक्षिण हस्तसे मुख तथा वाम हस्तसे वस्त्रको आच्छादित करके वे श्रीरामजीको सदेश सुना रहे हैं ऐसे श्रीहनुमानजीका ध्यान करना चाहिये। यह वर्णन अपूर्व तथा विशिष्ट है। इसके अनुसार निर्मित हनुमानजीका एक चित्र 'कल्याण'के 'हिंदू-सस्कृति-अङ्क'के ४२५ वें पृष्ठपर प्रदर्शित है। इससे सिद्ध होता है कि वैखानस आगमकी रीतिसे निर्मित हनुमानजीकी उपासना प्राचीनकालसे की जाती रही है। उक्त वर्णनमें एक और ध्यान देनेयोग्य अश है—हनुमानजीकी जन्म-तिथि। यह 'श्रावणे मासि श्रवणजात'के अनुसार श्रावणमासकी पूर्णिमा सिद्ध होती है। यह मत वाल्मीकि-रामायणसे भिन्न है। उसमें श्रीहनुमानजीके आश्विन मासके स्वाती नक्षत्रमें जन्म लेनेका वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि महर्षि वाल्मीकिके द्वारा प्रथित रामावतारके अतिरिक्त पूर्व कल्पके श्रीराम, लक्ष्मण एव हनुमानजीके विषयमें ही उक्त वैखानसभगवच्छास्त्रमें

उल्लेख किया गया है। इससे भी इस सम्प्रदायकी प्राचीनता सिद्ध होती है। इस सम्प्रदायमें हनुमानजीकी अर्चना तथा उत्सव करनेकी विधिका स्वरूप विस्तृत है, जो 'श्रीहनुमदर्चनात्सवविधि' नामक ग्रन्थमें ग्रथित है। इस ग्रन्थमें वैखानस-सम्प्रदायके अनुसार यथाधर्म—यथासूत्रके अनुसार अभिव्यक्त भगवान्‌की उपासना स्वयं करके या अन्यके द्वारा कराकर लौकिक और पारलौकिक लाभ प्राप्तिके उद्देश्यसे अर्चना तथा महोत्सव आदि करनेकी समग्र विधिका वर्णन है।

मध्व-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीभाऊ आचार्य रोणसे)

प्रथमो हनुमान् नाम द्वितीयो भीम एव च।
पूर्णप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधकः॥

मध्व-सम्प्रदायमें हनुमानजीको वायुदेवका अवतार माना जाता है। वायुदेव अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त हैं। परमशक्तिमान् विष्णुकी सेवाके लिये वायुदेव सदा तत्पर रहते हैं और उनको वे अपनी विभिन्न चेष्टाओंद्वारा प्रसन्न रखते हैं।

द्वैत-मतके अनुसार वायुदेवने भगवान् विष्णुके कार्योंके साधना हेतु तथा उनकी सेवाको दृष्टिमें रखते हुए तीन विशिष्ट अवतार लिये हैं, जिनमें उन्होंने श्रीहनुमानके रूपमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामकी, महाबली भीमके रूपमें श्रीकृष्णभगवानकी और महाज्ञानी मध्वाचार्यके रूपमें भगवान् वेदव्यासकी सेवा की। वायुदेवद्वारा उपर्युक्त तीनों अवतारोंके लिये आका एक अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है—'धर्म रक्षा'। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि भगवान् विष्णुद्वारा संचालित 'धर्म'की सुरक्षाके लिये वायुदेवने इन तीनों अवतारोंको ग्रहण किया—

'वाह्नेर्बलाद् ज्ञानबलाच्च रक्ष्यो धर्मः।

हनुमानजी वायुदेवके प्रथम अवतार हैं। मध्व-मतमें इन्हें 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' कहा गया है। श्रीमध्वाचार्यजीरचित 'ऐतरेय-भाष्य'में हनुमान एवं हनूमान—इन दोनों नामोंको पर्यायवाची कहा गया है। मध्व सम्प्रदायके अनुसार 'हनु'-शब्द परम ज्ञानके अर्थमें प्रयुक्त होता है और इस 'परम-ज्ञान'का जो अधिकारी देवता है, उसे 'हनुमान' या 'हनूमान'के नामसे सम्बोधित किया जाता है। उपर्युक्त कथन 'ऐतरेय भाष्य'में वर्णित निम्नलिखित उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है—

हनुमन्तो ज्ञानयन्तो हनूमानितिविश्रुतः।

एक अन्य मध्व-ग्रन्थ 'सुमध्व-विजय' महाकाव्य—जो श्रीनारायणपण्डिताचार्यद्वारा लिखा गया है—के अनुसार समाजमें जिन-जिन धर्मोंको गुणकी संज्ञा दी जाती है, वे सभी गुण 'हनु' शब्दके अन्तर्गत आ जाते हैं अर्थात् 'हनु' शब्दके अन्तरालमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि—सभी गुण निवास करते हैं। इस प्रकार (मध्व-मतमें) 'हनु' शब्दका अर्थ है—ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि गुण। वायुदेवके पुत्रमें ये सभी गुण पूर्णरूपसे समाविष्ट हैं, अतः इनका नाम 'हनुमान' पड़ा। दूसरे शब्दोंमें भगवद्धर्मोंमें श्रेष्ठ, अत्यन्त ज्ञानी एवं सभी गुणोंसे युक्त देवताको 'हनुमान'के नामसे सम्बोधित किया जाता है—

ये ये गुणा नाम जगत्प्रसिद्धा
य तेषु तेषु च विनिर्दिशन्ति।
साक्षान्महाभागवतप्रवाह
श्रीमन्तमेन हनुमन्तमाहुः॥
(सुमध्वविजय)

द्वैत-मतमें हनुमानजीको एक आदर्श देवताके रूपमें देखा जाता है। श्रीराममें अनन्य विश्वास और उनके प्रति सेवकत्वकी भावना ही इनका परम आदर्श है। यद्यपि हनुमानजी श्रीरामके अत्यन्त प्रिय पात्र थे तथा श्रीरामराज्यमें इनके लिये कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं था, तथापि श्रीरामके चरणोंकी सेवामें अनुरक्त हनुमानको किसी प्रकारकी उपाधि या सुख भोगकी अपेक्षा न थी। सम्भवतः इसी कारण मध्व सम्प्रदायमें हनुमानजीको 'आदर्श रूप' माना जाता है—

प्रीतो न रामस्य बभूव तस्मा
न रामराज्येऽप्युल्म च किंचित्।
सन्ताद्मवारितेष वैष्णव
तथापि भोगजनु न विचि॥
(सुमध्वविजय)

श्रीरामके प्रति हनुमानजीकी अद्वितीय भक्ति 'न भूतो न भविष्यति'—इस कहावतको पूर्णतया चरितार्थ करती है। श्रीरामके साथ प्रवासकालमें ये सदा श्रीराम-नामका ही जप करते थे। 'हे नाथ! तुम्हें प्रणाम है, हे श्रीराम! तुम्हें प्रणाम है, हे प्रभो! तुम्हारे चरणोंमें सेवकका प्रणाम है'—इस प्रकारके शब्दोंका बारबार उच्चारण करते हुए हनुमान सदा सर्वदा श्रीराम भक्तिमें तल्लीन रहते थे—

नमो नमो नाथ नमः नमस्ते
नमो नमो राम नमो नमस्ते।
पुनः पुनस्ते चरणारविन्द
नमामि नाथेति नमन् स रेमे॥
(सुमध्व-विजय)

हनुमानजीकी 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' उपाधिकी सत्यता 'सुमध्व-विजय'के निम्नलिखित श्लोकसे प्रमाणित की जा सकती है—

निबध्य सेतुं रघुवंशकेतु
भ्रूभङ्गसम्भ्रान्तपयोधिमध्ये।
मुष्टिप्रहारं दशकाय सीता
सतर्जनाक्योत्तरमेषकोऽदात्॥

अर्थात् रघुवंशकेतु श्रीरामके भ्रूभङ्ग-मात्रसे उद्विग्न होकर हनुमानने समुद्रपर अन्य सेनापतियोंकी सहायतासे सेतुकी रचना कर वानरसेनाके लिये लंकातक जानेका मार्ग प्रशस्त किया। इनके इस कार्यने रावणके हृदयमें एक विशेष पीड़ाको जन्म दिया। उसके हृदयपर यह प्रहार मानो सीताको दिये गये कष्टोंका समुचित उत्तर था।

मध्व सम्प्रदायके अनुसार महावीर हनुमान आज भी हमारा मार्ग-दर्शन करनेके लिये इस लोकमें निवास कर रहे हैं। वे सभी आदर्शोंके आदर्श हैं। श्रवण-मनन आदिद्वारा भगवत्सेवा करनेवाले तथा मुक्तिजीवियोंके बीच आत्मानन्दप्राप्ति हेतु श्रीरामके कथामृतमें सदा लीन रहनेवाले हनुमानजी आज भी हमारे लोक हृदयमें विराजमान हैं—

स्वानन्दहेतौ भजतां जनानां
मग्नः सदा रामकथासुधायाम्।
असाविदानीं च निषेव्यमाणो
रामं पतिं किम्पुरुषे किलास्ते॥
(सुमध्वविजय)

मध्व-मतमें श्रीहनुमानकी सर्वशक्तिशाली एवं अभिलाषा पूरक देवताके रूपमें पूजा की जाती है। विद्या, धन, राज्यश्री, शत्रुनिग्रह आदि सभी कामनाओंकी पूर्ति हनुमानजीके पूजनसे सम्भव है। श्रीमन्मध्वाचार्यजीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तन्त्रसार'में लिखा है—

विद्या चापि धनं चापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्॥

हनुमानके स्मरणकी महत्ता

मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि कर कमल तल सुमिरत रघुबर दूत॥
धीर बीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमार।
अगम सुगम सब काज करु करतल सिद्धि बिचार॥
(दोहावली २२९-३०)

श्रीरामजीके दूत वायुपुत्र श्रीहनुमानजी मनोहर मङ्गल और आनन्दकी मूर्ति हैं। उनका स्मरण करते ही समस्त सिद्धियाँ करतलगत (सुलभ) हो जाती हैं।

धीर, वीर श्रीरघुवीरके प्यारे पवनकुमार श्रीहनुमानजीका स्मरण करके चाहे जैसे दुर्लभ या सुलभ सब काम करो, निश्चय रखो कि उनकी सफलता तुम्हारे हाथमें ही रखी है।

गौडीय वैष्णव-सम्प्रदाय और श्रीहनुमान

(लेखक—डा० श्रीराधमादन चक्रवर्ती, एम्० ए०, पी-एच्० डी)

वङ्गमण्डलमें गौडीय वैष्णव-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान दास्य भक्तिके आदर्शके रूपमें पूजित होते हैं। इस सम्प्रदायके प्रवर्तक श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रधान परिकर श्रीमुरारिगुप्त श्रीहनुमानजीके अवतार माने जाते थे। कवि कर्णपूर (सोलहवीं शताब्दी) 'गौरगणोद्देश-दीपिका' नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—

मुरारिगुप्तो हनूमानङ्गद श्रीपुरंदर ।
य श्रीसुग्रीवनामासीद् गोविन्दानन्द एव स ॥

पूर्व त्रेतायुगमें जो हनुमान थे, श्रीचैतन्य-लीलामें वे ही मुरारिगुप्त नामसे अभिहित हैं, अङ्गद भी पुरंदर हैं और जो सुग्रीव थे, वे ही इस समय गोविन्दानन्द हैं।

वैष्णव-वन्दनामें लिखा है—

वन्दियो मुरारि गुप्त मनिश्राधिमन्त ।
पूर्वे अवतार याँर नाम हनुमन्त ॥

श्रीमुरारिगुप्तमें प्राय श्रीहनुमानजीका आवेश होता रहता था, उस समय उनके शरीरमें अपार बल आ जाता था। जिस समय जगाइ-मधाइ नवद्वीपमें उद्दण्डताकी चरम सीमापर थे, उस समय उनके मनमें यह गर्व था कि नवद्वीपमें उनके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं है। किंतु जिस दिन श्रीगौराङ्गने उनका उद्धार किया, उसी दिन महाप्रभुके आदेशसे श्रीमुरारिगुप्त उन दोनों भाइयोंको दोनों कंधोंमें दबाकर उनके प्राङ्गणमें लाकर उपस्थित किया था।

श्रीमन्मुरारिगुप्तप्रणीत 'श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत' नामक काव्यके द्वितीय प्रक्रमके सप्तम सर्गमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक दिन श्रीगौराङ्गने श्रीमुरारिसे कहा कि "तुम अपनद्वारा रचित 'श्रीरघुनाथाष्टक' नामक स्तोत्रका पाठ करो।" श्रीमुरारि भक्ति-गद्गद-कण्ठसे स्वरचित श्लोकोंका पाठ करने लगे, जिसे सुनकर प्रभु अत्यन्त संतुष्ट हुए और उनके कपालमें उन्होंने 'रामदास' नाम लिख दिया। तत्पश्चात् उनको हृदयसे लगाकर उन्हें प्रगाढ आलिङ्गन प्रदान किया।

प्रसिद्ध गौडीय वैष्णवाचार्य श्रीमद्रूपगोस्वामीद्वारा प्रणीत 'पद्यावली' नामक सुभाषित काव्य-ग्रन्थमें (सोलहवीं शताब्दी) 'भक्तानां माहात्म्यम्'-प्रकरणमें निम्न श्लोक मिलता है, जहाँ उन्होंने श्रीहनुमानजीको दास्य-भक्तिके आदर्शके रूपमें स्वीकार किया है—

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥
(पद्यावली ५३)

श्रीविष्णुकी कथा सुननेमें परीक्षित्, महिमा-कीर्तनमें व्यासपुत्र श्रीशुकदेव, भगवत्स्मरणमें प्रह्लाद, चरण-सेवामें लक्ष्मी, भगवत्पूजनमें पृथु, वन्दनामें अक्रूर, दास्य-भावकी साधनामें हनुमान, सख्य भावकी साधनामें अर्जुन तथा सर्वस्व आत्मनिवेदनमें महाराज बलि श्रीकृष्णको प्राप्त करके कृतार्थ हुए थे।

गौडीय वैष्णवाचार्य श्रीजीवगोस्वामी भी श्रीरूप गोस्वामिपादके समान ही श्रीहनुमानजीको आदर्श दास्य मानते हैं तथा 'दास्य-भाव'की व्याख्या करते हुए श्रीमद्भागवतकी अपनी 'क्रम-सन्दर्भ' टीकामें लिखते हैं—

'अस्तु तावत् तद्भजनप्रयासम्। केवल तादृशत्वाभिमानेनापि सिद्धिर्भवति।' (७। ५)

'मैं प्रभुका दास हूँ'—इस प्रकारके अभिमानके साथ उपासकी सेवा करनेसे ही भजन सिद्ध होता है। श्रीरामावतारमें हनुमानजीने दास्य भावकी साधनासे सिद्धि प्राप्त की।

महर्षि शाण्डिल्यने अपने 'भक्तिसूत्र'(४४) में भगवान्के प्रति भक्तके अनुरागकी परीक्षाके लिये कुछ विशेष लक्षण बतलाये हैं। यथा—

'सम्मानबहुमानप्रीतिविरहेतरविचिकित्सामहिमख्यातितदर्थप्राणस्थानतदीयतासर्वतद्भावाप्रातिकूल्यादीनि च स्मरणेभ्यो बाहुल्यात्।'

(१) सम्मान, (२) बहुमान, (३) प्रीति, (४) विरह, (५) इतर विचिकित्सा, (६) महिमाख्याति, (७) तदर्थप्राणस्थान, (८) तदीयता, (९) सर्वतद्भाव, (१०) अप्रातिकूल्य आदि।

शाण्डिल्य भक्ति-सूत्रके भाष्यकार श्रीस्वप्नेश्वरने प्रत्यक्ष स्थलके विशेष दृष्टान्त दिये हैं। भावको जाननेके लिये उन्होंने श्रीहनुमानजीका ही उदाहरण प्रस्तुत किया है। हनुमानजी 'तदर्थप्राणस्थान' हैं अर्थात् श्रीरामके लिये ही वे जीवन धारण करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीसे उन्होंने यह याचना की थी—

यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी ॥
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ।
(वा० रा० ७ । १०८ । ३५-३६)

'जबतक आपकी पवित्र कथा संसारमें प्रचलित रहेगी, तबतक आपके आदेशोंका पालन करते हुए मैं पृथ्वीपर रहूँगा।'

श्रीमद्भागवत (५ । १९ । १-८)में परमभागवत श्रीहनुमानद्वारा की गयी 'श्रीरामचन्द्र-स्तुति' देखनेमें आती है। गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीजीवगोस्वामीने अपने 'क्रम-सन्दर्भ' ग्रन्थमें इसके गम्भीर तात्पर्यको उद्घाटित किया है। वे कहते हैं कि 'श्रीरामचन्द्रकी लीला केवल माधुर्यमयी है। हनुमानजी केवल माधुर्यमय दास्यभाव-स्वरूप हैं और ऐश्वर्य आदिके ज्ञानके साथ मिले होनेपर भी अन्तमें उसका पर्यवसान माधुर्यभावमें हो जाता है।'

गौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजी दास्य भक्तिके आदर्श माने जाते हैं। इस मान्यताकी प्रतिष्ठा श्रीचैतन्यमहाप्रभुने स्वयं अपनी मानवी लीलामें श्रीमन्मुरारिगुप्तके माध्यमसे तथा परवर्ती वैष्णवाचार्योंने अपनी टीकाओंमें दृष्टान्तोंके माध्यमसे की है।

वल्लभ-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीप्रभुदासजी वैरागी एम्० ए०)

भारतवर्ष देवभूमि है। यहाँ समय-समयपर देवता अपनी लीला करनेके लिये अवतरित होते रहते हैं। स्वयं नारायण भी नररूप धारणकर इसी पुण्य भूमिपर पधारते हैं और अपनी दिव्यातिदिव्य लीलाओंसे संसारको आश्चर्यचकित कर धर्मकी स्थापना करते हुए पुनः अपने श्रीविग्रहको तिरोहित कर लेते हैं। इस प्रकार जितने भी देवता हैं, वे सब सनातन धर्ममें पूजनीय हैं। वैष्णव धर्म भी सनातन धर्मका ही एक अङ्ग है, अतः अन्यान्य देवताओंके साथ वल्लभ-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीकी पूजा भी एक विशेष स्थान रखती है, जो सम्प्रदायाचार्योंद्वारा विविध अवसरोंपर निरन्तर होती चली आ रही है।

वल्लभ-सम्प्रदायका प्रारम्भ भगवान् श्रीपुरुषोत्तमसे आरम्भ होकर भगवान् शंकरके द्वारा आगे-से-आगे बढ़ाया गया है। भगवान् आशुतोष इस सम्प्रदायमें वैष्णवाग्रगण्य हैं और भावतिरोध शंकर-सुवन होनेके कारण इस सम्प्रदायमें यथाविधि पूजित एवं अर्चित हैं।

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥

वल्लभ-सम्प्रदायमें उपर्युक्त चार प्रमाणोंको ही प्रधानता दी गयी है। इनमें समाधि-भाषाके अन्तर्गत श्रीमद्भागवतकी गणना है, जो वल्लभ-सम्प्रदायमें जीवित प्रत्यक्ष वैष्णवका जीवन-प्राण है। इस सम्प्रदायमें इसे भगवान् श्रीकृष्णका वाङ्मयस्वरूप माना जाता है। इसके विभूतियोगमें—'किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः।' (११ । १६ । २९) कहा गया है तथा पञ्चम स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें—'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते।' —कहकर भगवान् बादरायणने श्रीहनुमानजीकी स्तुति की है। ऐसी दशामें इसी श्रीमद्भागवतको आधार प्राय माननेवाला वल्लभ-सम्प्रदाय हनुमानजीकी आराधना एवं पूजासे वञ्चित कैसे रह सकता है।

यह तो सर्वविदित ही है कि इस सम्प्रदायके आद्याचार्य श्रीमद्वल्लभमहाप्रभुने अनेक बार भारत-भ्रमण किया और प्रत्येक भ्रमणके पश्चात् वे गोवर्धन पधारकर गिरिराजधरण प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा सँभालते रहे हैं। इसी प्रसङ्गमें बैठक-विवरणसे पता चलता है कि श्रीआचार्य भ्रमणसे अनायास जब चित्रकूट पधारे, तब वहाँ उन्होंने लक्ष्मणाग्रजकारी श्रीमद्वाल्मीकि रामायणका पारायण पाठ करके श्रीहनुमानजीको सुनाया, जिसे पवनकुमार कई दिनोंतक गद्गद हृदयसे सुनते रहे (बैठक-चरित्र २४)। आज भी श्रीहनुमानजी

श्रीहनुमानजीमें विलक्षणताकी अटूट श्रद्धा है, तब अन्य वैष्णवाचार्योंमें वह किसी भाँति कम कैसे हो सकती है ! सभी वैष्णवाचार्योंने भी यथासमय केसरीनन्दन मारुति श्रीहनुमानजीकी सेवा किसी-न-किसी रूपमें करके अपने जीवनको कृतकृत्य किया ही है।

आचार्य, सम्प्रदाय और ठाकुरजीकी सेवामें श्री हनुमानजीका वैशिष्ट्य है, तब फिर वल्लभ सम्प्रदायाश्रयी भावुक वैष्णव भक्त श्रीहनुमानजीकी आराधनासे क्यों दूर रहें ! किंतु इस सम्प्रदायमें अन्याश्रय वर्जित है। खुले रूपसे श्रीकृष्ण भगवान्‌के साथ अन्य देवी-देवताओंकी आराधना नहीं की जा सकती। अतः वैष्णवजन अपने ठाकुरजीके साथ ही प्रच्छन्नरूपसे श्रीहनुमानजीका जयघोष कर अपनी भक्ति-भावना दास्य भक्त श्रीहनुमानजीके पास भी पहुँचा देते हैं। यह सभी जानते हैं कि प्रत्येक वैष्णव अपने इष्टदेवके जय जयकारके साथ ही 'पूँछड़ीके लौंठाकी जय—बाल प्यारे'की आवाज भी बुलन्द करता है। सम्भवतः स्वर्गमें गुञ्जायमान इस जयघोषमें मारुतिरायका ही जय निनाद छिपा हुआ है। गिरिराज गोवर्धनके एक छोरपर जो बस्ती है, उसका नाम है 'पूँछड़ीका लौंठा' और वहींपर जो सर्वकामनापूरक श्रीहनुमानजी विराजमान हैं, उन्हें 'बाल प्यारे' कहकर सम्बोधित किया जाता है। अतः प्रत्येक वैष्णव अपने इष्टदेवके जय-जयकारके साथ इस पङ्क्तिका उच्चारित करना नहीं भूलता और प्रतिदिन प्रभञ्जन-सुत श्रीहनुमानजी का स्मरण कर ही लेता है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण भक्तिका सुदृढ़ गढ़ यह वल्लभ सम्प्रदाय श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाओंके नयनाभिराम दृश्योंसे आच्छादित होते हुए भी श्रीहनुमत् आराधनाको आदरपूर्वक उचित स्थान देता है, जो बारबार स्तुत्य है।

सूरदासके हनुमान

(लेखक—डा० श्रीगोकुलानन्दजी तैलङ्ग बी० ए०, साहित्यरत्न)

श्रीहनुमान कोसलाधीश श्रीरामके सतत सेवक, सहचर और अनुचर हैं, किंतु किष्किन्धामें दूतत्व-ग्रहण, फिर सागर संतरण, सञ्जीवनी बूटी-आनयन—ये सब चरित्र सूर काव्यमें अनुपद वर्णित हैं। वस्तुतः देखा जाय तो श्रीहनुमानका व्यक्तित्व एक 'सञ्जीवनी-सम्पुटित' चरित्र है। प्रारम्भमें श्रीरामके लिये उनके द्वारा लायी हुई 'सीताकी सुधि' सञ्जीवनी रूप ही है, उधर लङ्काके भीषण युद्ध प्रसङ्गमें उनके द्वारा लायी हुई श्रीलक्ष्मणको पुनर्जीवनदायिनी बूटी भी प्रत्यक्ष 'सञ्जीवनी' है ही। रामायणके चरितनायक श्रीराम और उनके अनुज श्रीलक्ष्मण—दोनोंको सञ्जीवनी प्रदान करनेका श्रेय श्रीहनुमानको ही है।

समस्त वानरदलको एकत्र करके सुग्रीव श्रीजनकनन्दिनी की खोज करनेकी योजनापर मन्त्रणा कर रहे हैं। सभी दिशाओंमें दूत भेज जाने सम्भव हैं, किंतु समुद्रोल्लङ्घन करके लङ्काका दूतत्व कौन स्वीकार करे ! श्रीहनुमानजी तो अपनी अतुल शक्तिको विस्मृत किये बैठे हैं, शापगत होकर अथवा अपनी सहज प्रकृतिके अनुसार। सब जाम्बवान उन्हें उनके सामर्थ्यका स्मरण दिला रहे हैं—

या दल मध्य प्रगट केसरि-सुत आहि नाम हनुमंत।
वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन मैं, अरु आइहै तुरत॥
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौ, याके बलहि न अंत।

(सूरसागर । ७४)

कितनी अलौकिक अनुपम शक्ति है ! और लीजिये, श्रीहनुमानके अदम्य एवं अव्यक्त विक्रमकी अभिव्यक्ति कितनी स्पष्ट है। आत्म-विस्मरणकी हल्की परत हट गयी और उनका प्रच्छन्न आज उद्योतित हो उठा—

चढ़ि गिरि-सिखर सब्द इक उचर्‌यौ गगन उठ्यौ आघात।
कंपत कमठ-सेष-बसुधा-नभ रवि-रथ भयौ उतपात॥
मानौ पच्छ सुमेरहिं लागे, उड़्यौ अकासहिं जात।
चकित सकल परस्पर बानर बीच परौ किलकात॥

(सूरसागर । ७८)

अब सागर-संतरण 'समस्या' नहीं रह गया। किष्किन्धा और लङ्काके बीचकी दूरी श्रीहनुमानके लिये अब असमिन्द अनुल्लङ्घ्य न रही। [illegible] तत्काल ही [illegible] जनकनन्दिनीके समक्ष अशोक-वाटिकामें [illegible]— विनीत और समर्पित मुद्रामें—

जननी हौं अनुचर रघुपति कौ।
मति माता करि कोप सरापै नहिं दानव ठग मति कौ॥
आज्ञा होइ देउँ कर-मुँदरी कहौ सँदेसौ [illegible]।
मति हिय बिलख करौ सिय रघुवर [illegible]

हनुमान सजीवनि ल्यायौ।
महाराज रघुबीर धीर कौं, हाथ जोरि सिर नायौ ॥
परबत आनि धर्‍यौ सागर-तट, भरत सँदेस सुनायौ।
'सूर' सँजीवनि दै लछिमन कौं, मूर्छित फेरि जगायौ ॥
(सूरसागर ९। १५८)

सजीवनी श्रीलक्ष्मणको ही नहीं मिली, मानो समग्र श्रीराम-दलको प्राप्त हो गयी। स्वयं हेमशैलाभदेह पवनपुत्र हनुमान, फिर उनके वाम करपर दिव्यज्योतिष्मान् कान्तिमान् शैलखण्ड, कितना कुतूहलमय दृश्य है। सागर तटपर सजीवन पर्वतको प्रस्थापित कर श्रीरघुवीरके चरणोंमें श्रीहनुमान विनयावनत हो रहे हैं, साथ ही अयोध्या-मार्गसे आते हुए श्रीभरतका प्राप्त संदेश भी सुना रहे हैं। प्रभु गद्गद हो उठे। समग्र निराशा, उद्वेग और अन्तःपीड़ा, जो प्रभुको आकुलित कर रही थी, निरस्त हो गयी। भक्त कवि सूरदासके वीर हनुमान, सजीवनी-समुदित व्यक्तित्वसे समन्वित श्रीहनुमानको वारंवार प्रणाम है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीवैदेहीकान्तशरणजी)

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥
(श्रीरामरक्षास्तोत्र ३१)

समस्त हिंदू-परिवारोंमें संकटमोचन श्रीहनुमानजीकी पूजा भिन्न प्रकारसे होती है, परंतु श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीका एक अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। सामान्य हिंदू-जगत् इन्हें देवता अथवा भगवान् श्रीरामके दूतके रूपमें ही मानता और पूजता है, परंतु श्रीरामानन्द सम्प्रदायमें इनकी साकेताधीश श्रीरामके नित्य परिकर और श्रीराम-मन्त्रके प्रधान आचार्यके रूपमें उपासना की जाती है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अनुसार ससावरण-संज्ञक प्रकृति मण्डलके ऊपर परम प्रकाशमय 'महावैकुण्ठ'-संज्ञक दिव्य लोक है, [illegible] है। उसके मध्यमें 'साकेत'-संज्ञक दिव्य लोक है, जो नित्य है और यहाँ परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीराम अपने समस्त परिकर, परिच्छद एवं परिजनोंके साथ सदा विराजमान रहते हैं। यहाँ श्रीहनुमानजी सदा उनकी [illegible]में तत्पर रहते हैं। यहीं श्रीरामतारक-मन्त्रका [illegible] देकर श्रीरामजीने श्रीसीताजीको दिया और श्रीसीताजीने [illegible] हनुमानजीको। फिर श्रीहनुमानजीने ब्रह्माको दिया और ब्रह्माके द्वारा यह मन्त्र परम्परारूपसे विस्तृत हुआ—

भगवान् रामचन्द्रो वै परं ब्रह्म श्रुतिश्रुतम्।
कृपालुः शरणं नित्यं दासानां दीनचेतसाम् ॥
इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम् ॥
तारकं मन्त्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनूमन्तं गुणाकरम् ॥
श्रावयामास नूनं हि ब्रह्माणं सुधियां वरम्।
तस्मादेव वसिष्ठर्षिः ब्रह्मादस्मादवाप्तवान् ॥
(वाल्मीकिसंहिता)

इस प्रकार ये श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके सम्प्रदायाचार्यके रूपमें मान्य और पूजित हैं। सम्प्रदायाचार्य श्रीमदनन्ताचार्यजीने अपने ग्रन्थ 'सिद्धान्तदीपक'में इन्हें श्रीराम-मन्त्र प्रवर्तकके रूपमें नमन किया है—

मारुतिं वीरवर्याग्र्यं भक्तरक्षणदीक्षितम्।
हनूमन्तं सदा वन्दे राममन्त्रप्रचारकम् ॥

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें आचार्य श्रीहनुमानजीकी उपासना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है—

आचार्यं हनूमन्तं त्यक्त्वा यो ह्यन्यमुपासते।
विलश्यन्ति चैव ते मुग्धा मूल्हा पस्त्याकिता ॥
हनुमत्परमाचार्यं विनाऽऽचार्यो न कोऽपि च।
इति पद्धतिनिर्णीतं पूर्वोक्तं च मयोदितम् ॥
(महाशिवसंहिता)

श्रीहनुमानजी भक्तिके आचार्य माने गये हैं—

[illegible] वदन्ति जनाः [illegible] कुमारव्यास [illegible] हनुमद्[illegible] [illegible] ॥
(नारदभक्तिसूत्र ३)

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीहनुमानजीकी उपासनाके साथ श्रीहनुमानजीकी उपासना अनिवार्यरूपसे प्रतिपादित है। श्रीराममन्त्र (रां रामाय नमः)के साथ ही हनुमन्मन्त्र (हं हनुमते नमः) का जप होता है तथा श्रीराम-(दशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि

श्रीहनुमानजीके रोम-रोममें श्रीराम विराजमान हैं और वे सतत उनकी भक्तिमें तल्लीन रहते हैं। इसलिये वे श्रीरामजीको अतिशय प्रिय हैं। उनके हृदयमें सतत श्रीरामजी निवास करते हैं। सन्त श्रीतुलसीदासजीने इनकी इसी रूपमें वन्दना की है—

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥
प्रनवउँ पवन कुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायानुसार श्रीहनुमानजीका जन्म नहीं होता, वे तो श्रीरामके नित्य-परिकर हैं। उनका केवल अवतार होता है—

गर्भजन्मादिदुःखं मेऽननुभूय स्थिताः सदा।
सीतारामप्रिया दासास्ते हनुमन्मुखा मताः॥
(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ११८)

दिव्यदेहधरा धीरा सुग्रीवादिकपीश्वराः।
सुग्रीवो हनुमांश्चाद्यो नलश्च पनसस्तथा॥

श्रीहनुमानजी श्रीराम-मन्त्र और श्रीराम-भक्तिके आचार्य होनेके साथ ही अहङ्कारशून्य श्रीराम-सेवक हैं। उनका समस्त जीवन श्रीरामके कार्य-सम्पादनके लिये ही है। वे सभी कार्य श्रीरामजीको हृदयमें रखकर ही करते हैं। प्रभुका कार्य कर लेनेपर भी इनके मनमें अभिमान या अहङ्कार नहीं होता, क्योंकि वे तो उस कार्यकी पूर्ति होना श्रीरामजीकी कृपासे ही मानते हैं। इस प्रकारके दिव्य आचरणके द्वारा वे सभी श्रीराम-भक्तोंको कर्तव्य-पालनका उपदेश देते हैं।

जिस प्रकार श्रीविष्णुमहायज्ञ, श्रीरुद्रमहायज्ञ आदि महायज्ञ होते हैं, उसी प्रकार श्रीरामानन्द-सम्प्रदायानुसार श्रीमारुतियज्ञ भी होता है। जैसे मन्दिरोंमें अवतारानुसार भगवद्विग्रहके धनुर्धारी, श्रीराम, श्रीरघुनाथजी, श्रीकमलकिशोर आदि नाम होते हैं, वैसे ही मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित श्रीहनुमानजीके विग्रहके भी बाला हनुमान, मन कामना सिद्ध हनुमान, पञ्चमुखी हनुमान, सङ्कटमोचन हनुमान आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ अन्य सम्प्रदायोंमें श्रीहनुमानजी केवल देवता और अर्थसिद्धिप्रदाता आदि माने जाते हैं, वहाँ श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें ये सम्प्रदायाचार्य, भगवत्-परिकर और नित्य उपास्य हैं। अन्य सम्प्रदायोंमें इनकी उपासना ऐच्छिक हो सकती है, परंतु श्रीरामानन्द सम्प्रदायमें यह अनिवार्य है। तभी तो श्रीरामके आवाहनके साथ ही इनका भी आवाहन करनेकी विधि है—

सानुगच्छ जानकीनाथ जानक्या सह राघव।
गृहाण मम पूजां च वायुपुत्रादिभिर्युत॥

सङ्कटमोचन श्रीहनुमान

(रचयिता—पं० श्रीजगन्नारायणजी शास्त्री, आचार्यत्रय, साहित्यरत्न, मानसशिरोमणि)

जय सङ्कटमोचन श्रीहनुमान।
शङ्करसुवन, केसरीनन्दन, पवनतनय, प्रिय राम सुजान॥ १॥
रुद्रैकादश-रूप, अरुणमुख, मङ्गलमूर्ति, सदा कल्यान।
पिङ्गनयन, तप्तकनक-कान्ति, कर-गदा, सदा वर-अभय प्रदान॥ २॥
ब्रह्मचर्य-व्रत-निरत, सूत्र-शुभमाल-तुलसिका, तिलक महान।
कटि-कौपीन, पादुका-पद-तल, परम प्रसन्न सुभग, श्रीमान॥ ३॥
आञ्जनेय, आनन्दसिन्धु, शुचि, मति-आगार, गुण ज्ञान निधान।
महावीर, विक्रम-विशाल-वपु विशद कीर्ति यश विदित-विधान॥ ४॥
राम-कथामृत-सुरस श्रवण पुट-पान-निपुण शरणागत-त्राण।
जानकि 'रमण'-चरण-पङ्कज मधु मानस मधुप, मम जन प्राण॥ ५॥

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥

(१२ । २)

हनुमानजीने अपनी प्रशस्तिके उत्तरमें इतना ही कहा—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

(३२ । ५)

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥

(३३)

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

(३३ । १)

अब कहिये! भगवान्ने वरदान दिया हनुमानजीको और आशुतोष यह रहस्य किस आनन्दके साथ अन्नपूर्णाको बतला रहे हैं।

वे आगे कहते हैं—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥

(३३ । २)

यह है सदाशिवका निष्कर्ष, जो स्वयं अपने अनुभवपर आधारित है। एक संकेत लङ्काकाण्डमें रावण-अङ्गद-संवादमें मिलता है। अङ्गद कहते हैं—

सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥

(२१)

अङ्गद जानते थे कि हनुमानजी क्या हैं!

गोस्वामीजी श्रीरामके बाद सबसे अधिक श्रीशंकरकी ही भक्ति करते थे। हनुमानजीकी स्तुतिमें उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। काशीमें 'संकटमोचन'की स्थापना उन्हींके द्वारा हुई है—ऐसा माना जाता है और इसके साथ ही सारे देशमें हनुमानजीकी पूजाका प्रचार हुआ। किसी अन्य वानरकी पूजाका विधान नहीं है। वस्तुतः यह सदाशिवकी पूजा है, जो देशभरमें व्याप्त है। भगवान् श्रीरामने हनुमानजीको जो प्रेम दान दिया, वह अन्य वानर नहीं प्राप्त कर सके। अयोध्यामें श्रीरामका सांनिध्य केवल हनुमानजीको ही प्राप्त हुआ। इसका कारण यही था कि भगवान् श्रीरामका कोई भक्त शंकरके समान नहीं था। भगवान्ने स्वयं कहा है—

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥

(बाल० १३८ । ४)

जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहिं बंदि महा सुख होई॥
जो यह पढ़ै हनुमानचालीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा॥

हनुमानजीकी उपासना अकारण नहीं की जाती। श्रीरामकी भक्ति करनेवाले हनुमानके भी भक्त हैं। इसका कारण यह है—

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

(उत्तर० ४५)

तुलसीदासजी द्वारा वर्णित हनुमानजीका चरित्र अत्यन्त उदात्त और पवित्र है। श्रीरामके अतिरिक्त उनका कोई आश्रय, कोई परिग्रह नहीं है। श्रीरामके कार्यके अतिरिक्त उनका कोई व्यक्तिगत कार्य नहीं है। श्रीरामका प्रेम ही उनका साधन है। वही उनकी सिद्धि है। कहीं भी उनका व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं दिखायी देता। वे श्रीराममय हैं। स्वयं श्रीराम ही उनके माध्यमसे कार्य कर रहे हैं। सुग्रीवके समान उनका राज्य, पुत्र, कलत्र आदि प्रपञ्च नहीं है। अपने बलका अभिमान तो क्या, उसका उन्हें बोध भी नहीं है। जब याद दिलाया जाता है, तभी उन्हें उसका स्मरण होता है। उन्होंने भक्तिके चरम मापदण्डको स्थापित किया है। अपने विषयमें उन्होंने कहा है—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

(सु० ६ । ४)

और भी—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥

(सु० ३२ । ४)

गोस्वामीजीने जो यह कहा है—

राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आग्या बिनु पैसारे॥

—इसमें मुझे यह अर्थ दिखायी देता है कि बिना हनुमानजीका उदाहरण बनाये श्रीरामको नहीं पाया

आज महाराष्ट्रकी तो ऐसी स्थिति है कि वहाँ एक भी गाँव ऐसा नहीं है, जिसमें श्रीहनुमान-मन्दिर न हो।

ऐसी मान्यता है कि श्रीसमर्थ भक्तोंकी प्रार्थनापर श्री हनुमानस्वामीजी महाराजने प्रवचनके रूपमें श्रीसमर्थ-चरित्रका वर्णन चाफळमें किया था। उनके इन प्रवचनोंको किसीने 'श्रीहनुमतस्वामिकृत श्रीसमर्थांची बखर' नामक ग्रन्थमें संगृहीत किया है। इस बखरका संशोधन तथा प्रकाशन धुळियाके 'समर्थ वाग्देवता-मन्दिर'के द्वारा किया गया है। इस ग्रन्थमें श्रीसमर्थ रामदास स्वामीद्वारा स्थापित श्रीहनुमानजीके अनेकों मन्दिरोंका विवरण है, जिनमें महाराष्ट्रके ग्यारह मारुति-मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये ग्यारह विग्रहस्थल श्रीसमर्थ सम्प्रदायके महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थान माने जाते हैं। तत्कालीन धर्म-संरक्षणके कार्यमें उनका असाधारण महत्त्व रहा है। कहा जाता है कि श्रीसमर्थके संकेतपर श्रीछत्रपति शिवाजी महाराजने इन मन्दिरोंके व्यवस्था-हेतु प्रत्येक मन्दिरके लिये ग्यारह एकड़ जमीन पुरस्काररूपमें प्रदान की थी। इन मन्दिरोंकी स्थापनाका क्रम तथा स्थान इस प्रकार है—(१) शहापुर, (२) मसूर, (३) चाफळ, (४) उम्ब्रज, (५) शिराळे, (६) मनपाडळे, (७) पारगाँव, (८) मानेगाँव, (९) शिंगणवाडी और (१०) बहेबोरगाँव। ये ग्यारह श्रीसमर्थ सम्प्रदायके नितान्त श्रद्धास्थान हैं।*

श्रीसमर्थ रामदासजी श्रीहनुमानके महान् उपासक थे। उनके साहित्यमें श्रीहनुमानजी ब्रह्मचारी, प्रतापी, बुद्धिमान्, ज्ञानी, आदर्श श्रीराम-भक्तके रूपमें चित्रित हुए हैं। श्रीसमर्थद्वारा रचित 'मनोबोध'के श्लोक ८७वें, 'श्रीदासबोध'के सोलहवें दशकके छठे समासमें तथा किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्डमें श्रीहनुमानजीके विविध एवं सरस वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं। उपरिनिर्दिष्ट ग्यारह मन्दिरोंमें श्रीहनुमान उपासना-हेतु उन्होंने अलग-अलग ग्यारह स्तोत्र लिखे हैं। इनमें पहला और पाँचवाँ स्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रचलित है। श्रीहनुमानजीके वर्णनमें उनके चौदह अभंग, ग्यारह पद और कई आरतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें कुछ हिंदी-भाषामें भी प्राप्त हुई हैं। श्रीसमर्थद्वारा रचित श्रीहनुमानजीकी चार आरतियाँ भी उपलब्ध हैं, उनमेंसे दोका प्रचलन आज भी महाराष्ट्रमें प्रायः सर्वत्र दिखायी देता है। उनकी सरस शैली, प्रवाहपूर्ण वाक्य रचना तथा ओजस्वी भाषाके कारण श्रीहनुमानजीका श्रीरघुवीर-सेवा परायण, परमप्रतापी वीरतायुक्त सर्वांगीण चित्र आँखोंके सामने अनायास खिंच जाता है। श्रीसमर्थ सम्प्रदायमें इस समूचे साहित्यका बड़ी श्रद्धा और सम्मानके साथ चिन्तन मनन होता है।

विजय तथा सफलताकी प्राप्तिके लिये कवचके रूपमें तावीजको भुजापर या गलेमें धारण करनेकी प्रथा भी उन्होंने आरम्भ की थी। इस तावीजको पहले सिद्ध करना पड़ता है, जिसके लिये विधि-मन्त्र श्रीसमर्थजीने बताया है।

श्रीसमर्थद्वारा प्रचलित उपासनामें श्रीहनुमानजीका स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। यह तथ्य इस बातसे स्पष्ट हो जाता है कि नित्यकर्मके अन्तमें श्रीदासबोधका पाठ करनेके पश्चात् [illegible] श्लोकोंके कहनेकी प्रथा रही है। इन श्लोकोंका भावार्थ यह है कि 'हमारी वंशवेलि श्रीहनुमानजीसे प्रस्फुटित हुई है, जो प्रभु श्रीरामरूपी मण्डपतक पहुँच गयी है। इस बेलिमें श्रीराम भक्तिके फल लगे हैं। श्रीहनुमान ही हमारे कुलपुरुष हैं। वे ही हमारे मुख्य देवता हैं। उनके बिना हमारा परमार्थ सिद्ध नहीं हो सकता। श्रीहनुमानजी ही हमारे सहायक हैं और प्रभु श्रीरघुनाथजी हमारे परमाराध्य हैं। जब हमें श्रीहनुमानजी-जैसे समर्थ गुरुकी कृपा प्राप्त हुई है, तब हम दासोंको किस बातकी कमी है? जब श्रीहनुमान-जैसे दाता हैं, तब अन्य कौन हमें इससे बढ़कर क्या दे सकता है? अतः इन्हें छोड़कर हम [illegible] किससे याचना करेंगे? इसलिये हम श्रीरामके दास हैं। प्रभु श्रीरामचन्द्रके चरणोंमें ही हमारा विश्राम है। यदि आकाश भी टूट पड़े तो भी हम किसी औरके पास नहीं जायँगे। श्रीरामका [illegible] हमारा सम्प्रदाय है, आत्माराम हमारा [illegible] है, माता जानकी तथा श्रीरघुनाथजी हमारे देवता हैं और श्रीहनुमानजीकी उपासना ही हमारा नियम है।' इस प्रकार श्रीसमर्थ [illegible] सिद्ध करते हैं।

* श्रीसमर्थने चाफळमें (१) प्रताप मारुति तथा (२) दास मारुति—दो विग्रहोंकी स्थापना की थी। बाहू[illegible]में इन्होंने ग्यारह मारुति विग्रह स्थापित किये हैं।

प्रथमत 'रामस्नेही' बने । इनके इस स्नेहकी स्वीकृतिके लिये भगवान् श्रीरामका निम्न वाक्य कितनी विशेषता लिये हुए है—

> सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना ।
> तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥
>
> (रामचरितमानस ४ । २ । ४)

'रामस्नेही' बन जानेके बाद श्रीहनुमानजी तन-मन वचनसे निरन्तर अपने स्वामीकी सेवामें तल्लीन हो गये ।

अपने स्वामीके लिये समुद्रको लाँघकर लङ्का जला देनेवाले, जनकनन्दिनी श्रीसीताको श्रीरामका संदेश पहुँचानेवाले, द्रोणाचल पर्वत लाकर लक्ष्मणको जीवनदान दिलानेवाले, युद्धमें असंख्य दुर्जेय राक्षसोंका दमन करनेवाले तथा ऐसे ही अनेकानेक अत्यन्त दुष्कर कार्य करनेवाले सेवारत श्रीहनुमानजीको बारंबार प्रणाम करते हुए हमारे आचार्य श्रीदयालुदासजी महाराजने उनके बल, वीर्य, प्रताप, साहस, ज्ञान, सेवा-परायणता तथा निष्ठा आदिका कैसा प्रभावशाली वर्णन किया है—

> धीर वीर रघुवीरके, नमो नमो हनुमान बल ॥
> राम हेत तन धार, मनस वच राम सनेही ।
> कियै सिन्धु पर सिन्धु काज कारन बैदेही ॥
> लङ्क दहन पर लङ्क, सुर-दुःखगर कायक ।
> जती दास भज राम, पुत्र मारुत दुखदायक ॥
> कंतान काम महाराज के भगत साथ चिरजीव फल ।
> धीर वीर रघुवीरके नमो नमो हनुमान बल ॥
> कहाँ लूँ बरणूँ अगम अत, रामदास प्रिये चरित नित ॥
> राम परम दृढ सेवसू वचन कृपा व्रत-पालक ।
> एक समै रघु संग, जीमकर राग पखालक ॥
> मोहि नहीं रकार माल मुगता तज दीनी ।
> पिंड प्राण ररकार, सुधा कारा पद भीनी ॥
> हर इच्छा कारन प्रकट, नारद गुरु उपकार चित ।
> कहाँ लूँ बरणूँ अगम अत, रामदास प्रिये चरित नित ॥

श्रीहनुमानजी सदा केवल अपने स्वामी 'राम' की प्रियताके ...ने ही सारा कार्य करते रहे । अत वे सच्चे 'रामदास' हैं । श्रीगुरु नानकजीके वचन 'हउ तेरा सेवक दासनदासा ।' तथा संत कबीरके वचन 'सामी होणो सोहरो, दोरो होणो दास' को पूर्णतया चरितार्थ करनेवाले परमदास हैं—भक्तवर हनुमानजी ।

> 'हणवन्त भगत परतापीक, पदवी दास गदपापीक ।'
>
> (श्रीदयालुदास—पैगावली)

हमारे शास्त्र एवं नीतिकार भी श्रीहनुमानजीको एक मतसे श्रीरामका सच्चा दास स्वीकार करते हुए नवधा भक्तिके अन्तर्गत 'दास्य'-भक्तिके लिये उन्हींका नाम दर्शाते हैं—

> श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने
> प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ।
> अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
> सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम् ॥
>
> (पद्यावली ५३)

एक बार लङ्केश विभीषणने एक अमूल्य रत्नगुम्फित हार भगवान् श्रीरामचन्द्रको भेंट किया । भक्तवत्सल श्रीरामने वह रत्नहार चरणावनत श्रीहनुमानजीके गलेमें पहना दिया । पर श्रीहनुमान ठहरे विचित्र 'रामस्नेही' भक्त । वे सोचने लगे—'जिसे मेरे प्रभुने त्याग दिया, वह वस्तु मेरे लिये किस कामकी ! पर नहीं, सम्भवत मेरे समान ही इन रत्नोंके हृदयमें भी श्रीरामका वास हो । यदि ऐसा ही हुआ तो मैं इन्हें अवश्यमेव धारण करूँगा ।' ऐसा निश्चय कर मालाके रत्नोंको दाँतोंसे तोड़ने एवं उन्हें श्रीरामसे रहित देखकर फेंकने लगे । उनके समीप स्थित विभीषणने इस घटनाको देखा तो कुछ रुष्ट होकर श्रीहनुमानजीसे पूछा—'अरे भाई ! तुमने यह क्या किया ? इन अमूल्य रत्नोंको इस तरह क्यों नष्ट कर दिया ? क्या इसीलिये श्रीरामने यह बहुमूल्य हार तुम्हें दिया था ?' इसपर श्रीहनुमानजीने कहा—'मैं इनमें अपने इष्टदेव श्रीरामको देख रहा था, किंतु वे इनमें नहीं मिले तो ये कंकड़-पत्थर मेरे लिये किस कामके ?' उत्तर सुनकर विस्मित हुए विभीषणने पुन प्रश्न किया—'यदि श्रीरामके न मिलनेसे तुमने इन रत्नोंको कंकड़-पत्थर मानकर फेंक दिया तो पाँच तत्त्वसे निर्मित इस मिट्टीके पुतले शरीरको क्यों धारण कर रखा है ? क्या इसमें भी श्रीराम विद्यमान हैं ?'

इतना सुनते ही पूर्वसंचित नाम-साधनासे जिनका सम्पूर्ण शरीर 'राम'मय ही बना हुआ है, उन भक्तप्रवर श्रीहनुमानजीने नाखूनोंसे अपनी त्वचाको चीर कर

रामस्नेही भक्तमालमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीरामस्नेही-सम्प्रदाय (हरिनगर) रेणमठाचार्य श्रीहरिनारायणजी शास्त्री)

गुरुओंका परिवार अपने इष्टका निरूपण ही होता है। इसके अनुसार इसमें दीन रटनेवाले गुरु, श्रीरामजीको भजनेवाले नाती और श्रीरामभावके रसिक ही पड़पोती होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य किसीसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता—

राम सिमरे सो गुरु हमारा राम भजे सो नाती।
रसना रटे सो वाही पड़पोती 'सुखिया' मान न साती॥

(भक्तमाल—सन्त श्रीसुखरामदासजी महाराज)

इस गुरुपरिवारके परम आत्मीय श्रीहनुमानजी हैं, जो उदार हैं, श्रीरामजीके अनन्य सेवक हैं, उनकी भक्ति, आज्ञाका पालन करनेके लिये सदैव उद्यत रहते हैं और जन्म-मरणसे अतीत होकर सदैव परब्रह्म श्रीरामजीमें वास करते हैं—

सूर वीर सन्मुख सदा एक राम का दास।
जनम मरन मिटि भेद कर किया ब्रह्म में बास॥

(रामस्नेही धर्माचार्य श्रीहरिरामजी महाराज)

श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायके भक्तमालमें ऐसे ही आदर्श भक्तोंका वर्णन है। श्रीहनुमानजीका वर्णन करते हुए रामस्नेही-भक्तमालकार श्रीरघुरामजी कहते हैं कि श्रीहनुमानजीने श्रीराम-नाम रटते हुए श्रीरघुनाथजीके चरणोंका आश्रय लिया। तन-मनसे दास बननेके पश्चात् उन्होंने किसी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया। सौ योजन विस्तृत समुद्रको लाँघकर उस पार लङ्काके दुर्गम गढ़को उलट (नष्ट) कर आये। माँ सीताको धैर्य बँधाया और भक्तोंके प्राण बचाये। शरणागत जन (श्रीहनुमानजी)ने ऐसे कितने ही काम किये। उन अञ्जनासुत श्रीहनुमानके अलौकिक सुयशका स्वयं श्रीरघुनाथजी वर्णन करते हुए अघाते नहीं।

हनुमान रट राम, चरण-रघुपति का भेट्या।
दासा तन मन लाय, स्वामि कबहूँ नहिं मेट्या॥
मार फलाँग दध पार, उलट लंका गढ़ आयो।
सीताँ धीर बँधाय, भक्ताँ प्राण बचायो॥
ऐसा काम केता किया, शरण सरन जन आय।
भजनी सुत हनुमान की, रघुपति कहे सुनाय॥

(भक्तमाल—सन्त श्रीरघुरामजी महाराज)

सन्त श्रीसुखसारणजीकृत 'वृहद् रामस्नेहीभक्तमाल'में श्रीहनुमच्चरित्रका विस्तार वर्णन मिलता है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—"श्रीहनुमानजीने रत्नोंकी अमूल्य माला तोड़कर फेंक दी और अपने रोम-रोममें व्याप्त 'राम-राम' दिखा दिया। इसपर लक्ष्मणजीने पूछा—'हे हनुमान! यह सार-तत्त्व आपको कहाँसे मिला?' हनुमानजीने कहा—'मैं गुप्त रीतिसे नाम जप करता हूँ। मैया श्रीसीताने मेरे मस्तकपर अपना करकमल रखते हुए यह मन्त्र (राम-नाम) मुझे दिया है। उस समय मैयाने कहा—"हनुमान! मैं तुम्हें एक मन्त्र बताती हूँ, जिसके प्रभावसे तुम किसीके भी मारनेसे मरोगे नहीं। मुझे विश्वास है कि तुम (हनुमान) सब कार्य सिद्ध करोगे।"' तत्पश्चात् उन्होंने मैया सीताका दिया हुआ दो अक्षरका मन्त्र 'रकार-मकार' सबको सुनाया। वही बीज-मन्त्र 'र-रकार' श्रीहनुमानजीके रोम-रोमसे प्रकट हुआ। सन्त सुखसारणजी कहते हैं—इस प्रकार लक्ष्मणजीको तथा सेनाके समक्ष यह बात श्रीहनुमानजीने सुनायी, जिससे सबने उनके गुणोंको ग्रहण किया तथा उनका (मुक्ताहारको खण्डित करनारूप) अवगुण भुला दिया"—

सकल सभा सुन लछमण पूछ्यो हनु,
गोप सो बतावो भेद याहि ततसार ही।
तुमया किप्यो छाने मैं तो राम नाम जपूँ बाला,
सीता माता कह्यो सती धरो सिर धार ही॥
मगर सुनाऊँ ताहि मार्यो हू न मरै कोई,
माय तो भरोसा काज करे सिद्धकार ही॥
रकार मकार उभे आखर सुणाया आय,
रग रग रोम रोम हुयो र-रकार ही।
'सुखसारण' ऐसी धुन सभा कूँ सुणाई हनु,
सेना सुण गह्यो गुण औगुण बिसार ही॥

इस प्रकार रामस्नेही-सम्प्रदायके भक्तमालमें सन्तोंने श्रीहनुमानजीको ब्रह्मज्ञानी गुरु, नाम-प्रेमी नाती, कथारसिक पड़ोसी, आदर्श सेवक, आज्ञापालक, शक्तिप्रदाता और तत्त्व प्रेमीके रूपमें स्मरण किया है।

अभयदाता श्री हनुमान

किये रहते हैं, उनसे अन्य नहीं। इसलिये वे हनुमान् भक्तोंके गुरु तथा मार्गदर्शक हैं। ... गीत ही गाता है—

देखो हनुमानको, और गुरुको
माँगो उनसे मार्गदर्शन सदा ॥
एक हैं परशक्ति हाथ एक है अमर नाथ।
एक पद विनाश, एक सौजन्य ॥
माँ विराजित मारुति ही गुरु हैं हमारा।
निर्गुण का फल उसके पथमें ॥
मनमें स्थित करो रामका सन्मति
आगम का करत है साधक है हनुमद्गुरु ॥
(बालिगोड़ु नविक पृ० — २)

वङ्गीय स्मृति एवं तान्त्रिक निबन्धोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—श्री [illegible] पी-एच्० डी०)

वङ्गीय स्मृति-निबन्धकारोंमें महामहोपाध्याय श्रीरघुनन्दन भट्टाचार्यका नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इनका आविर्भाव सोलहवीं शताब्दीमें हुआ था। इनके प्रसिद्ध स्मृति-निबन्ध 'अष्टाविंशति तत्त्व' में उन्होंने विभिन्न आचार-व्यवहार, व्रत, पर्व, त्योहारों और पूजा-विधानका परिचय दिया है, यह अत्यन्त लोकप्रिय है। महामहोपाध्याय श्रीरघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने 'कृत्यतत्त्व' निबन्धके चैत्रकृत्यमें श्रीरामनवमी-व्रतका उल्लेख किया है और उसमें यज्ञाङ्गके रूपमें श्रीहनुमान्‌की पूजाका विधान है। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए थे। इस तिथिपर श्रीरामनवमी-व्रत करनेसे सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं। यह बात वङ्गदेशमें सुप्रसिद्ध है। श्रीरघुनन्दनने 'कृत्यतत्त्व'-निबन्धमें श्रीरामचन्द्रजीके जिस ध्यानका उल्लेख किया है, उसमें अवस्थित श्रीरामानुचरोंमें श्रीहनुमान्‌का भी उल्लेख है। श्रीरामनवमी-व्रतानुष्ठानमें अङ्गदेवताके रूपमें ॐ हनुमते नमः—इस मन्त्रके द्वारा श्रीहनुमान्‌की पूजाका विधान है।

महामहोपाध्याय श्रीकृष्णानन्द आगमवागीशके प्रसिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ 'तन्त्रसार'के तृतीय परिच्छेदमें श्रीहनुमान्‌की उपासना-विधि (हनुमत्कल्प) तथा श्रीहनुमान्‌की अति गुह्य वीरसाधना-पद्धतिकी विवृति हुई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वङ्गदेशमें मध्ययुगमें श्रीहनुमदुपासना प्रचलित थी और इसका साधक-सम्प्रदाय सक्रिय था। श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश श्रीचैतन्यमहाप्रभुके समकालीन या कुछ परवर्ती सोलहवीं शताब्दीमें हुए थे।

तन्त्रसार ग्रन्थमें श्रीहनुमान्‌के विभिन्न मन्त्रोंद्वारा विशेष विशेष रूपमें विभिन्न प्रकारकी पूजाका विधान है। भगवान् महादेव इस ग्रन्थमें पार्वती देवीसे कहते हैं—'हे देवि! अब मैं हनुमत्साधन कहूँगा। तुम सावधान होकर सुनो। यह साधन महान् पुण्यप्रद तथा महापातक-नाशक है। यह साधन प्रणाली अति गुह्य और शीघ्र सिद्धिप्रद है। इसीके प्रसादसे अर्जुन त्रिलोक-विजयी हुए थे। मनुष्यके लिये जो शीघ्र सिद्धिप्रद है, उसी साधन-विधिको मैं तुमसे कहता हूँ। श्रीहनुमान्‌जीका द्वादशाक्षर मन्त्र है—हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना। यह द्वादशाक्षर हनुमन्मन्त्र अति गोपनीय और शीघ्र सिद्धिप्रद है। रुद्ररूपी श्रीहनुमान्‌का ध्यान करके इस मन्त्रका जप करना चाहिये। एक लाख मन्त्र पूर्ण होनेपर श्रीहनुमान्‌जी उस साधकपर प्रसन्न हो जाते हैं। हे देवि! मैंने तुमसे यह सत्य कह दिया।'

तन्त्रसार ग्रन्थमें श्रीहनुमान्‌जीकी अति गुह्य वीरसाधन पद्धति वर्णित है। पद्धतिके अनुसार साधना करते रहनेपर मध्य-चतुर्थ याममें श्रीहनुमान्‌जी साधकके सामने उपस्थित होकर महाभय प्रदर्शित करते हैं। यदि इस अवस्थामें भी साधक भय और मायाका परित्याग कर अविचलित रूपसे जप करता रहता है तो वह विद्या, धन, राज्य या शत्रुनिग्रह, जो कुछ भी चाहता है, उसे तत्काल सब प्राप्त होता है और वह धन्य हो जाता है—

विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ॥
(तन्त्रसार तृतीय परिच्छेद)

अपने कुलदेवता श्रीरघुवीरजीकी ओर उनका मन आकर्षित हुआ। श्रीहनुमानजीकी भाँति अनन्य भक्ति ही श्रीरामचन्द्र जैसा दर्शन सम्भव है—यह जानकर दास्यभक्तिमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये उन्होंने अपनेमें श्रीमहावीरजीका आरोपण करके कुछ समयके लिये साधना प्रारम्भ कर दी। निरन्तर श्रीहनुमानजीका चिन्तन करते-करते वे इस आदर्शमें इतना अधिक तन्मय हो गये कि कुछ समयके लिये अपनी पृथक् सत्ता और व्यक्तित्वकी बात पूर्णतया भूल ही गये। इस विषयमें उन्होंने स्वयं अपने शिष्योंसे कहा था—'उस समय आहार-विहार आदि सब कार्य श्रीहनुमानजीके समान किये जाते थे। उन्हें मैं जान-बूझकर करता था—ऐसी बात नहीं थी, प्रत्युत वे स्वयं अपने-आप होते थे। पहननेके कपड़ेको पूँछके समान बाँधकर कमरमें कस लेता था, कूदता हुआ चलता था, फल-मूल आदिके सिवा और कुछ नहीं खाता था, उनका छिलका निकालकर नहीं फेंकता था, अधिक समय वृक्षके ऊपर ही व्यतीत होता था तथा निरन्तर 'रघुवीर, रघुवीर' कहकर गम्भीर स्वरमें चीत्कार करता था। उस समय दोनों नेत्रोंमें चञ्चलता आ गयी थी और आश्चर्यकी बात है कि मेरुदण्डका अन्तिम भाग लगभग एक इंच बढ़ गया था।' 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसङ्ग' नामक ग्रन्थके रचयिता स्वामी शारदानन्दजीने लिखा है कि उपर्युक्त बात सुनकर हमने पूछा था कि 'महाराज! क्या आपके शरीरका वह अङ्ग अब भी वैसा ही है?' उन्होंने उत्तरमें कहा था—'नहीं, मनके ऊपरसे उस भावका प्रभुत्व निवृत्त हो जानेपर उसने धीरे-धीरे पहलेके समान स्वाभाविक आकार धारण कर लिया है।'

श्रीरामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वरमें आये हुए भक्तोंको बातचीतके प्रसङ्गमें उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए नाना प्रकारके उपदेश देते थे। छोटी-छोटी कहानियों और दृष्टान्तोंके माध्यमसे अमूल्य धर्मोपदेश सहज ढंगसे दे देना उनकी अनोखी विशेषता थी। श्रीरामकृष्णने श्रीहनुमानजीके भावादर्शके सम्बन्धमें जो अमूल्य उपदेश दिये हैं, उन सबको उन्होंने अपने जीवनमें साधनाके द्वारा उपलब्ध किया था। उनमेंसे कुछ प्रसङ्ग नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) श्रीहनुमानजीका एक चित्रपट दक्षिणेश्वर मन्दिरकी दीवालपर टँगा था। ठाकुर श्रीरामकृष्णने कहा—'देखो, श्रीहनुमानका क्या भाव है! वे धन, मान, देह-सुख कुछ भी नहीं चाहते, केवल भगवान्‌को चाहते हैं। जब वे स्फटिक-स्तम्भसे उछलकर ब्रह्मास्त्र लिये हुए भागने लगते हैं, तब मन्दोदरी नाना प्रकारके फल लेकर उन्हें लोभ दिखाने लगती है, यह सोचकर कि वह फलके लोभसे नीचे आकर अस्त्र फेंक दे, किंतु श्रीहनुमानजी भुलानेमें आनेवाले साधारण वानर नहीं थे। उस समय वे मन्दोदरीसे कहते हैं—

आमार कि फलेर अभाव?
पेयेछि जे फल, जनम सफल,
मोक्षफलेर वृक्ष राम हृदये।
श्रीरामकल्पतरुमूले बसे रई।
जखन जे फल वाञ्छा, सेइ फल प्राप्त हइ॥

'मुझे क्या फलकी कमी है! मुझे जो फल प्राप्त है, उससे मेरा जन्म सफल हो गया है। मोक्ष-फलके वृक्ष श्रीराम मेरे हृदयमें हैं। मैं श्रीरामरूपी कल्पवृक्षके मूलमें बैठा हूँ। जब जिस फलकी इच्छा होती है, वह फल मुझे उसी समय प्राप्त हो जाता है।'

(२) श्रीहनुमानजीका श्रीराम-नामपर दृढ़ विश्वास था, इस सम्बन्धमें ठाकुर भक्तोंको उपदेश देते हुए कहते हैं—'नामके गुणसे श्रीहनुमान समुद्र पार हो गये। मैं श्रीरामका दास हूँ और श्रीराम-नाम जपता हूँ, अतः मैं क्या नहीं कर सकता!' ऐसा श्रीहनुमानजीका सहज विश्वास है।

(३) ईश्वरमें तन्मय हो जानेके सम्बन्धमें उपदेश देते समय ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्रीहनुमानजीका दृष्टान्त दिया करते थे। वे कहते थे कि श्रीहनुमानजी यही सोचा करते थे—'मेरे प्रभु श्रीरामकी कृतिको मनुष्य क्या समझेगा! उनके कार्य अनन्त हैं, इसी कारण मैं उनको समझनेकी बिल्कुल ही चेष्टा नहीं करता। मैंने सुन रखा है कि संसारमें वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। इसलिये उन सब कार्योंका चिन्तन न करके मैं केवल उनका ही चिन्तन करता हूँ।' श्रीहनुमानजीसे मैंने पूछा था कि 'आज कौन-सी तिथि है?' वे बोले—'मैं तिथि-नक्षत्र आदि कुछ नहीं जानता, मैं तो केवल एक श्रीरामका चिन्तन करता हूँ।'

(४) श्रीहनुमानजीकी दिव्य साधनाकी उपलब्धिमें द्वैत और अद्वैत—दोनों भावोंका समन्वय होनेपर भी वे दास्य-भावको ही विशेषरूपसे प्रतिष्ठित कर गये हैं। इस विषयमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते थे—''भगवान् श्रीरामने पूछा कि 'हनुमान! तुम मुझको किस भावसे देखते हो?' श्रीहनुमानजी बोले—'प्रभो! जब मुझमें 'मैं'का बोध होता है, तब देखता हूँ कि आप पूर्ण हैं और मैं अंश हूँ, आप　हैं

तो मैं दास हूँ और जब तत्त्वका बोध होता है, तब देखता हूँ कि आप ही मैं हूँ और मैं ही आप हैं।'

सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है। जब मैं-पन जाता नहीं है, तो यह दुष्ट मैं रहे किंतु 'दास मैं' बनकर। श्रीहनुमानजीने साकार निराकारके प्रपञ्चमें न पड़कर 'दास मैं' को ही रखा था।

(५) श्रीहनुमानजीकी शुद्धा भक्ति और शरणागतिके सम्बन्धमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते हैं—'हनुमानजीने कहा था कि हे श्रीराम! मैं शरणागत हूँ। आप मुझे यही आशीर्वाद दें कि आपके पादपद्मोंमें मेरी शुद्धा भक्ति हो और आपकी भुवनमोहिनी मायासे मैं भ्रमित न होऊँ।'

श्रीरामकृष्ण परमहंसके प्रधान शिष्य स्वामी विवेकानन्द बाल्यकालसे ही श्रीहनुमानजीके प्रति भक्तिमान् थे। श्रीराम-कार्यमें उत्सर्गीकृत जीवनकी गाथाका—वीर भक्त श्रीहनुमानजीके क्रिया-कलापका श्रवण बालक नरेन्द्रनाथ (भावी विवेकानन्द) को बहुत प्रिय था। अपनी मातासे जब उन्होंने सुना कि महावीर श्रीहनुमान अमर हैं और इस समय भी जीवित हैं, तबसे उनका दर्शन करनेके लिये नरेन्द्रके प्राण आकुल हो गये। एक बार बालक नरेन्द्रनाथ गाँवमें रामायणकी कथा सुनने गये। कथावाचक महाशय नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करके हास्यरसके साथ श्रीहनुमानजीके चरित्रका वर्णन कर रहे थे, उसी समय नरेन्द्र धीरेसे उनके समीप जाकर पूछ बैठे—'महाशय! आपने कहा है कि श्रीहनुमानजी केला खाना पसन्द करते हैं और केलेके बगीचेमें रहते हैं तो क्या मैं वहाँ जाकर उनको देख सकता हूँ?' कैसा गम्भीर विश्वास है! कितनी दृढ़ आन्तरिकताके साथ बालकने ऐसा प्रश्न किया! आकुल प्राणोंके प्रश्नकी गम्भीरताको समझनेकी शक्ति कथावाचक महाशयमें न थी। वे हँसकर बोले—'हाँ बच्चा! केलेके बगीचेमें खोजनेपर तुम उनको पा सकते हो।' बालक नरेन्द्रनाथ घर नहीं लौटे, वे सन्ध्या ही पासके बगीचेमें पहुँचकर, केलेके पौधोंके नीचे बैठकर श्रीहनुमानजीकी प्रतीक्षा करने लगे। बहुत समय बीत गया, रात्रि आ पहुँची, परंतु श्रीहनुमानजी नहीं आये, अधिक रात बीत जानेपर निराश होकर नरेन्द्र घर लौटे। माताको अपनी व्यथा कहते समय सब बातें खोलकर कह दीं और श्रीहनुमानजीके न आनेका कारण पूछा। बालकके विश्वासपर आघात करना बुद्धिमती माता भुवनेश्वरी देवीने सङ्गत नहीं समझा। उन्होंने पुत्रके विषादयुक्त वदनका चुम्बन करते हुए कहा—'पुत्र दुःख मत करना, आज हो सकता है श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामके कार्यसे कहीं अन्यत्र चले गये हों, पर किसी दिन वे अवश्य मिल जायँगे।' आशासे मुग्ध बालक शान्त हो गया। उसके मुँहपर फिर हँसी फूट पड़ी।

आगे चलकर स्वामी विवेकानन्दजी ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहणाभिलाषी युवकमात्रको महावीर श्रीहनुमानजीके चरित्रको आदर्श बनानेका उपदेश देते थे। परहितार्थ आत्मत्याग करनेका सङ्कल्प करनेवाले शिष्यवृन्दसे दास्य भक्तिके जीवन्त विग्रह श्रीहनुमानजीकी कथा कहते कहते उनका मुख-मण्डल दीप्त आभासे रक्तिम हो उठता था। एक बार स्वामीजी सिंहके समान गरजते हुए बोले—'देशके कोने-कोनेमें महावीर श्रीहनुमानजीकी पूजा चलाओ। दुर्बल जातिके सामने इस महावीरका आदर्श उपस्थित करो। देहमें बल नहीं, हृदयमें साहस नहीं तो फिर क्या होगा इस जड़ पिण्डको धारण करनेसे। मेरी इच्छा है कि घर घर महावीर श्रीहनुमानजीकी पूजा हो।' एक बार उन्होंने बेलूरमठमें महावीरजीकी एक पाषाण-प्रतिमा स्थापित करनेका सङ्कल्प किया, परंतु उसे सफल न कर सके।

१९०१ ई०में बेलूर-मठमें शिष्य श्रीशरच्चन्द्र चक्रवर्तीने स्वामी विवेकानन्दसे प्रश्न किया था—'जनसाधारणको इस समय कैसा आदर्श ग्रहण करना उचित है?' इसके उत्तरमें स्वामीजीने कहा था—'महावीर श्रीहनुमानके चरित्रको ही तुम लोगोंको अपना आदर्श बनाना पड़ेगा। देखो, श्रीरामकी आज्ञासे वे सागर पार करने चले गये। जीवन-मरणकी ओर उनकी दृष्टि न थी। महान् जितेन्द्रिय, महान् बुद्धिमान् महान् दास्य भाववाले, इन महावीरके अनुरूप गुणोंका अनुसरण कर जीवन गठित करना पड़ेगा। ऐसा करनेपर अन्य सब भावोंका स्फुरण समय-समयपर अपने-आप हो जायगा। दुविधाको त्यागकर गुरुकी आज्ञाका पालन करना और ब्रह्मचर्यकी रक्षा करना ही सफलताका मूलमन्त्र है। हनुमानका एक ओर जैसे सेवाभाव है वैसे ही दूसरी ओर सिंहसदृश विक्रम है।

श्रीरामके लिये अपना जीवन अर्पण करनेमें वे किंचित् भी नहीं हिचके। श्रीरामकी सेवाके लिये वे अपना सर्वस्व त्याग करनेके लिये उत्सुक हैं, यहाँतक कि प्राण निछावर करनेको भी उद्यत हैं। केवल श्रीरामनामका आदेशपालन ही उनके जीवनका एकमात्र अनुष्ठान व्रत है। इस प्रकार एकनिष्ठ होना चाहिये। ऐसे आदर्शका अनुसरण करनेसे ही इस समय देशका और लोगोंका कल्याण होगा, अन्यथा कोई उपाय नहीं है।'

श्रीरामकृष्ण-मठ और मिशनके प्रथम प्रेसिडेंट स्वामी ब्रह्मानन्द (१८६०-१९२२) ने दक्षिणभारतके भ्रमण-प्रवासमें श्रीराम-नाम-कीर्तन सुनकर बंगालमें भी उसका प्रचार करनेके लिये विशेषरूपसे आग्रह किया था। एक बार स्वामी विवेकानन्दने बंगालमें महावीर त्याग, भक्ति और ज्ञानकी आदर्श मूर्ति श्रीमहावीरकी पूजा प्रवर्तित करनेकी इच्छा प्रकट की थी। इसी कारण श्रीराम-नामकीर्तनके साथ श्रीमहावीरजीकी पूजा प्रचलनकी इच्छा स्वामी ब्रह्मानन्दके मनमें उदय हुई।

बेलूर-मठद्वारा १९१० ई० में 'श्रीराम-नाम संकीर्तनम्' नामक पुस्तिका पहले-पहल प्रकाशित हुई। उस पुस्तिकाके निवेदनमें स्वामी ब्रह्मानन्द कहते हैं कि 'कतिपय वर्ष पूर्व जब मैं दक्षिण भारतमें भ्रमण कर रहा था तो वहाँ दाक्षिणात्य लोगोंसे श्रीरामनाम-कीर्तन सुनकर मुग्ध हो गया। हमारे बंगालमें उसका अभ्यास और प्रचार हो, इस उद्देश्यसे संग्रहके रूपमें उस संकीर्तनके प्रचलनका प्रयास किया गया है। आनन्दकी बात है कि आज बंगालमें अनेक स्थानोंपर इसका आदरपूर्वक श्रीगणेश हो गया है। आपका मूल उद्देश्य पूर्णरूपसे सिद्ध न होनेपर भी अंशतः सफलता मिली है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

पूज्यपाद श्रीमत्स्वामी विवेकानन्दजीकी यही साध थी कि बंगालमें महावीर-मूर्ति श्रीमहावीरजीकी उपासना प्रचलित हो। इसीलिये हमलोगोंने मठमें श्रीराम-नाम संकीर्तनके पूर्व श्रीमहावीरजीकी आराधनाका नियम बना रखा है। अनुरोध करनेपर सभी इसका अनुवर्तन करते हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भगवत्प्रीतिके अधिकारी बनकर सब लोग जन्मभूमिको कृतार्थ और पवित्र करें, यही हृदयकी निष्कपट प्रार्थना है।'

'श्रीराम-नाम-संकीर्तनम्' पुस्तिकाके प्रारम्भमें महावीर श्रीहनुमानजीका एक चित्र है। उस चित्रमें श्रीमहावीरजी घुटनेके बल बैठे हैं, पूँछ ऊपर उठी है, दोनों हाथोंसे वक्षःस्थलको विदीर्ण करके हृदयमें विराजित श्रीराम-सीताकी मूर्ति दिखला रहे हैं और कण्ठमें सीतादेवीद्वारा दी हुई उपहारस्वरूप मणिमाला धारण किये हैं। इस मूर्तिके नीचे यह श्लोक है—

श्रीनाथे जानकीनाथे ह्यभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः॥

'यद्यपि परमात्मदृष्टिसे लक्ष्मीनाथ नारायण और जानकीनाथ श्रीराममें कोई भेद नहीं है, तथापि कमललोचन श्रीराम ही मेरे सर्वस्व हैं।'

मङ्गलागार श्रीहनुमानजी

जयति मंगलागार, संसारभारापहर, वानराकार विग्रह पुरारी।
राम-रोषानल-ज्वालमाला-मिष ध्वान्तचर-सलभ-संहारकारी॥
जयति मरुदंजनामोद-मंदिर, नतग्रीव सुग्रीव-दुःखैकबंधो।
यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंद-सिंधो॥
जयति रुद्राग्रणी, विश्व-वंद्याग्रणी, विश्वविख्यात-भट-चक्रवर्ती।
सामगाताग्रणी, कामजेताग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्ती॥
जयति संग्रामजय, रामसंदेशहर, कौशला-कुशल-कल्याणभाषी।
राम-विरहार्क-संतप्त-भरतादि-नर-नारि-शीतलकरणकल्पशाखी॥
जयति सिंहासनासीन सीतारमण, निरखि निर्भर हरष नृत्यकारी।
राम-संभ्राजशोभा-सहित सर्वदा तुलसि-मानस-रामपुर-विहारी॥

(विनय-पत्रिका २७)

रही, यद्यपि बुन्देलखण्डमें प्रतिहार-प्रभाव होनेके कारण श्रीहनुमानकी आकृति-विधानपर आदित्यदेव-मूर्तिकी छाप पड़ी थी।

जिस प्रकार कलचुरि और चन्देल सिक्कोंपर हनुमानका अङ्कन मिलता है, उसी प्रकार कर्णाटक-महाराष्ट्र-भागके देवगिरिके यादवोंका गदाङ्क भी 'गरुड़ाङ्कित हनुमान' है। ये यादव नृपति अपनेको 'द्वारावतीपुरवराधीश्वर' और विष्णुवंशोद्भव कहते थे। इनके ताम्र-शासनोंमें लगी राजमुद्राएँ हैं, उनमें प्रायः 'गरुड़-हनुमान' अङ्कित हैं, किंतु एक राजमुद्रापर केवल हनुमान ही अङ्कित हैं। इस वंशके प्रवर्तक 'दृढ़प्रहार'की तिथि निश्चित करनेके लिये निस्संदिग्ध साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, किंतु इसके पश्चात् नवम शतीका उत्तरार्ध साधारणतया इसका काल माना जाता है। मध्यकालमें कर्णाटक श्रीहनुमान-भक्तिका प्रमुख क्षेत्र दिखायी पड़ता है। यहाँके राजाओं एवं राजप्रासादोंमें वानर-आकृति प्रयुक्त होती थी। यादव-नरेशोंकी राजमुद्रा हनुमानकी आकृतिवाली है।

रत्नपुर-छत्तीसगढ़के कलचुरि-नरेशोंका सम्बन्ध कर्णाटक महाराष्ट्र-भागसे था। उदाहरणार्थ तेवरदेवके समीपवर्ती दण्डकपुरका राजा कलचुरि-नृपति जाजल्लदेव प्रथमका करद शासक था। अतः इस अनुमानके लिये यथेष्ट आधार है कि कलचुरि-क्षेत्रमें श्रीहनुमानकी आकृतिका राजमुद्राओंपर जो अङ्कन हुआ, उसका कारण कर्णाटक भागसे आगत प्रभाव ही होगा।

स्थापत्य एवं मूर्ति-कलामें श्रीहनुमान

(लेखक—डा० श्रीब्रजेन्द्रनाथजी शर्मा एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, एफ्० आर्० ए० एस्०; अध्यक्ष (पुरातत्त्व) राष्ट्रीय-संग्रहालय, नयी दिल्ली)

श्रीहनुमानजी वायुदेवताके प्रसादसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम वानरराज केसरी तथा माताका नाम अञ्जनी था। जन्मके समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, वायु तथा इन्द्र आदिने इन्हें अजर-अमर बना दिया तथा अनेकों प्रकारके और भी वर प्रदान किये।

श्रीहनुमानजी अत्यन्त पराक्रमी, तेजस्वी एवं विद्वान् थे। इनके अनेक नामोंमें अञ्जनीनन्दन, महावीर तथा मारुति विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। ये भगवान् श्रीरामके परम भक्त थे और उनकी अनेकों प्रकारसे सेवा करते थे। वाल्मीकीय रामायण तथा गोस्वामी तुलसीदासकी रामायणमें अनेक स्थलोंपर इनके नामका उल्लेख बड़े आदरसे हुआ है। स्वयं इनकी रामायण-रचना 'नाटक रामायण' या 'हनुमन्नाटक'के नामसे प्रसिद्ध है। इनके जीवनकी अनेक घटनाओंमें सीताकी खोज करना, लङ्का दहन करना, लक्ष्मणजीको जीवित करनेके हेतु द्रोणाचल लाना, रावणका गर्व नष्ट करना, गरुड़का गर्व-हरण करना, भीम-गर्व-गञ्जन और महाभारत-युद्धके समय अर्जुनके रथके ध्वजपर बैठना विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।

भारतवर्षमें श्रीहनुमानजीकी पूजा अत्यन्त प्राचीन कालसे होती आ रही है। प्राचीन साहित्य एवं शिला-लेखोंमें इनका उल्लेख मिलता है। साथ ही साथ स्थापत्य एवं मूर्तिकला-शिल्पों एवं लघु चित्रोंमें भी इनके जीवनसे सम्बन्धित अनेक घटनाओंका अङ्कन प्राप्त है। यहाँपर केवल स्थापत्य एवं मूर्तिकलामें श्रीहनुमानके चित्रणका संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है।

श्रीहनुमानकी अबतक प्राप्त प्राचीनतम प्रतिमाएँ गुप्त काल (५वीं-६ठी शताब्दी)की हैं। उत्तरप्रदेशके झाँसी जिलेमें स्थित देवगढ़के प्रसिद्ध दशावतार-मन्दिरकी बाह्य दीवारोंपर अनेक पौराणिक कथाओंके दृश्य मिलते हैं। यहींसे प्राप्त एक पाषाण-खण्डपर युद्धमें मेघनादद्वारा लक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर श्रीहनुमान द्रोणाचल पर्वत, जिसपर मृत-संजीवनी बूटी लगी है, लाते हुए दिखाये गये हैं। एक अन्य मूर्तिमें वे श्रीरामसे मिलते हुए दिखलाये गये हैं। ऐसे ही वाली-सुग्रीवके युद्धके समय वे पीछे खड़े हैं। मध्यप्रदेशके नचना नामक स्थानसे प्राप्त एक शिलाखण्डपर श्रीहनुमान सुग्रीवके साथ श्रीरामके सामने खड़े हैं और श्रीरामके पीछे लक्ष्मणजी स्थित हैं।

शृङ्गवेरपुरसे प्राप्त तथा प्रयाग-संग्रहालयमें प्रदर्शित एक प्रतिमामें श्रीराम-लक्ष्मणके साथ श्रीहनुमान एवं सुग्रीव भी

उस प्रदेशमें गहड़वाल राजाओंके समय (१२ वीं शती ई०)की बनी एक कलात्मक मूर्ति प्रयाग-संग्रहालयमें प्रदर्शित है, परंतु अभाग्यवश इसका अधोभाग खण्डित है। इसी संग्रहालयमें पावामऊसे मिली एक शीशरहित मूर्ति भी रखी है। इसी कालकी कंकड़ और बलुए पत्थरकी बनी हुई एक आदमकदमूर्ति लखनऊ-संग्रहालयमें प्रदर्शित है। ये सभी मूर्तियाँ अवश्य ही प्राचीन कालमें पूजी जाती रही होंगी।

राजस्थानके विभिन्न स्थानोंपर बने मध्ययुगीन मन्दिरोंपर उत्कीर्ण रामायणके अनेकों दृश्योंमें भी श्रीहनुमानका अङ्कन किया गया है। केकिन्दके प्रसिद्ध नीलकण्ठ-मन्दिरपर बने निम्नलिखित दृश्य विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं—

१—श्रीहनुमान पर्वत उठाये आकाशमार्गसे जा रहे हैं।

२—श्रीहनुमान वानरोंसहित खड़े हैं।

३—श्रीहनुमान पर्वत लाकर उसे वैद्यराज सुषेणको भेंट कर रहे हैं।

४—श्रीहनुमान हाथ जोड़े खड़े हैं।

राजस्थानमें विराट्के एक मन्दिरपर सीताजी अशोक वनमें चिन्तात्मक मुद्रामें बैठी हैं और साथ ही अशोकवृक्ष पर श्रीहनुमान अपना परिचय देनेसे पूर्व विराजमान हैं। उपर्युक्त मन्दिरसे पास शिवका एक अन्य मन्दिर है। इसपर श्रीहनुमान संजीवनी-बूटीसहित पूरा पर्वत उठाये लिये आ रहे हैं। इसीके समीप एक अन्य दृश्यमें मेघनादकी शक्तिके प्रहारसे मूर्च्छित लक्ष्मण अचेत पड़े हैं और उनका सिर श्रीरामकी गोदमें रखा है। श्रीराम तथा उनके सामने बैठे वानरगण लक्ष्मणकी इस दशापर अत्यन्त दुःखी दिखायी दे रहे हैं।

राजस्थानकी भूतपूर्व रियासत बाँसवाड़ासे लगभग तीस मील दक्षिण-पश्चिममें अर्थूणाका प्राचीन नगर है। यहाँके प्राचीन मन्दिरोंके समूहमें श्रीहनुमान-गढ़ी नामक देवालय बड़ा प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीहनुमानका एक छोटा अन्य मन्दिर भी है। इस मन्दिरमें श्रीहनुमानकी एक विशाल मूर्ति है, जिसकी चरण-चौकीपर विक्रम संवत् ११६५ का परमार राजा विजयराजके समयका नौ पङ्क्तियोंका लेख उत्कीर्ण है, जिससे परमार-कालमें श्रीहनुमानकी पूजाका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। भूतपूर्व जोधपुर रियासतमें बूता-खेड़ा नामक स्थानपर बने अनेक मन्दिरोंमें श्रीहनुमानका मन्दिर सबसे प्राचीन माना जाता है। नाडोलमें भी श्रीहनुमानका एक प्राचीन देवालय है। मध्यप्रदेशमें सुहानियाँ नामक ग्रामसे लगभग दो फर्लांगकी दूरीपर श्रीहनुमानकी एक विशाल मूर्ति विद्यमान है। यह मूर्ति लगभग १०वीं शताब्दीमें किसी देवालयमें स्थापित की गयी होगी, जिसके उस स्थानपर अब केवल भग्नावशेष रह गये हैं। इसी प्रदेशमें नरवारसे प्राप्त ५ फीट ऊँची मूर्ति ग्वालियर संग्रहालयमें रखी है, जो १६वीं शतीकी बनी प्रतीत होती है।

प्राचीन कालकी बनी श्रीहनुमानकी एक अद्वितीय मूर्ति काठियावाड़की भूतपूर्व रियासत लल्लासे मिली है। यह चतुर्भुजी है। इस पञ्चमुखी मूर्तिमें सिंह, वानर, गरुड़, शूकर तथा मुकुटके ऊपर अश्वके मुख हैं। यह मूर्ति अपने ऊपरवाले दो हाथोंमें पर्वत एवं गदा लिये है तथा निचले दो हाथोंमें धनुष और बाण पकड़े है।

प्राचीन उत्कलके गगनरेश अनङ्गभीम तृतीयकी चन्द्रिकादेवी नाम्नी पुत्रीद्वारा १२७८ ई०में बनवाये गये भुवनेश्वरके सुप्रसिद्ध अनन्त-वासुदेव-मन्दिरके ऊपर श्रीराम, सीता, लक्ष्मणके अतिरिक्त अन्य वानरोंसहित श्रीहनुमानका अङ्कन भी प्राप्त होता है।

आसाममें देवपर्वत नामक स्थानपर दसवीं शतीके शिव-मन्दिरके भग्नावशेषोंमेंसे एक पत्थरपर आगे श्रीराम और उनके पीछे लक्ष्मण विराजमान हैं। सुग्रीव श्रीरामके आगे आदरपूर्वक झुके हैं तथा श्रीहनुमान इस दृश्यको अन्य वानरोंसहित खड़े ध्यानसे देख रहे हैं। यह दृश्य सम्भवतः उस समयका है, जब श्रीहनुमानने सुग्रीवकी वालीसे रक्षाके लिये श्रीरामसे मैत्री करवायी थी। आसाममें ही त्रिपुरा नामक स्थानसे श्रीहनुमानकी एक विशाल प्रतिमा भी मिली है, जिसमें वे एक खण्डित स्त्री-मूर्तिको लाँघते हुए दिखाये गये हैं। यह मध्यकालीन मूर्ति अपने उठे दाहिने हाथमें एक गदा लिये प्रतीत होती है।

मूर्ति-कलामें श्रीहनुमानका संकटमोचक रूप

(लेखक—प्रो॰ श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

श्रीरामके अनन्य भक्तके रूपमें श्रीहनुमानका नाम मख्यात है। अत्याचारके प्रतिनिधि रावण तथा उसके सहयोगियोंके दमनमें श्रीहनुमानजीने निस्संदेह अतुलितबलका परिचय दिया। इस कार्यमें श्रीरामके नेतृत्वमें उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही। उनको जो प्रभूत सम्मान प्राप्त हुआ, उसके मूलमें यही तत्त्व विद्यमान है।

रावणकी दुर्दान्त पाशविक शक्तिका उन्मूलन सहज सम्भव न था। इसके लिये श्रीरामको वानरों तथा ऋक्षोंका विशेष रूपसे सहयोग लेना पड़ा। राक्षसोंके साथ महायुद्धमें श्रीहनुमानका शौर्य तथा कौशल महान् था। उनके इन गुणों तथा अपने प्रति असीम निष्ठाके कारण ही श्रीराम उन्हें अपना अनन्य भक्त मानते थे। गोस्वामी तुलसीदासजीने उनके महत्त्वको विशेषरूपसे बढ़ाया। उनकी पूजा व्यापक रूपमें भारतके विभिन्न भागोंमें प्रचलित है।

प्राचीन भारतीय साहित्य और कलामें श्रीहनुमानजीका यशोगान विविध रूपोंमें उपलब्ध है। संस्कृत, प्राकृत, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओंमें उनका गुणगान अनुपम श्रीरामभक्तके रूपमें मिलता है। साथ ही उन्हें अत्याचारका विध्वंसक और असीम शक्तिवाला देव माना गया है, क्योंकि उनमें असम्भवको भी सम्भव बनानेकी क्षमता है।

मूर्ति-कलामें ईसवी ७००के लगभग वीरभावमें श्रीहनुमानकी विशाल प्रतिमाएँ बननी प्रारम्भ हुईं। उनके मन्दिरोंका भी निर्माण पूर्वमध्यकालसे होने लगा। मध्यप्रदेशके गुना जिलेमें इंदौर (प्राचीन इन्द्रपुर)में श्रीहनुमानजीके मन्दिरके अवशेष मिले हैं। वहाँ उनकी विशाल प्रतिमा सुरक्षित है। मूर्तिकी चरण-चौकीपर उत्कीर्ण लेखसे ज्ञात होता है कि मूर्तिका निर्माण ई॰ नवीं शतीमें हुआ था। मूर्तिमें दायाँ हाथ ऊपर उठा है और बायाँ भग्न है। उनका बायाँ पैर अपस्मार पुरुषके ऊपर रखा है। कमरका कटिसूत्र दर्शनीय है।

श्रीहनुमानजीकी एक महाकाय मूर्ति मथुरामें मिली थी, जो अब वहाँके संग्रहालयमें सुरक्षित है। इसमें श्रीहनुमानजीका वीरभाव बड़े प्रभावोत्पादक ढंगसे प्रदर्शित हुआ है। यह मूर्ति लाल बलुए पत्थरकी है और इसका निर्माणकाल ई॰ आठवीं शती है।

खजुराहोमें श्रीहनुमानजीकी तीन उल्लेखनीय स्वतन्त्र प्रतिमाएँ मिली हैं। पहली महाकाय मूर्ति खजुराहोके पश्चिमी मन्दिर-समूहसे गाँवकी ओर जाती हुई सड़कके किनारे बनी हुई मठियामें प्रतिष्ठापित है। यहाँ पहले श्रीहनुमानका मन्दिर रहा होगा। यह प्रतिमा विशेष महत्त्वकी है। इसकी चरण-चौकीपर हर्ष-संवत् ३१६ (९२२ ई॰)का लेख उत्कीर्ण है। खजुराहोमें उपलब्ध लेखोंमें यह सबसे अधिक प्राचीन माना जाता है। मूर्तिमें वानरमुख श्रीहनुमानका दायाँ पैर पादपीठपर रखा है। कुछ ऊपर उठा हुआ बायाँ चरण पद्मपत्रपर टिका है। नीचे अपस्मार पुरुष दिखाया गया है। ऊपर उठा हुआ दायाँ हाथ सिरपर है, मुड़ा हुआ बायाँ हाथ वक्षःस्थलपर रखा है, लम्बी लाङ्गूल ऊपर मुड़ी हुई दिखायी गयी है। उनके गलेमें लम्बी वनमाला सुशोभित है। उनकी दायीं ओर कटिके समीप अञ्जलि-मुद्रामें हाथ जोड़कर बैठे हुए भक्तकी लघु आकृति है। खजुराहोमें श्रीहनुमानकी दूसरी मूर्ति वर्तमान 'वनखण्डी महादेव'-मन्दिरके भीतर है। इस मूर्तिका भी निर्माण-काल ई॰ दसवीं शती है। पहली मूर्तिके समान यह भी वीरभावमें है। इसमें नीचे अपस्मार पुरुष सपत्नीक न होकर अकेला है। मूर्तिमें लम्बी लाङ्गूल नहीं दिखायी गयी है। उनका मुख सामनेकी ओर है और पृष्ठभाग नहीं दिखाया गया है। तीसरी प्राचीन मूर्ति खजुराहो गाँवके पास निनोरा तालके किनारेपर बनी एक मठियामें सुरक्षित है। इसकी रचना पहली दोनों प्रतिमाओं जैसी ही है। इन तीनों प्रतिमाओंकी पूजा अभी भी होती है। उनपर चढ़ी हुई सिंदूरकी परतोंसे इनकी प्राचीनताका अनुमान लगाया जा सकता है। श्रीहनुमानकी इन स्वतन्त्र मूर्तियोंके अतिरिक्त खजुराहोके शिलापट्टपर श्रीराम तथा श्रीसीताजीके साथ श्रीहनुमान दिखाये गये हैं। यह शिलापट्ट मठियाके बहिर्भागमें लगा है। इसमें श्रीरामके पार्श्वमें श्रीसीता खड़ी हैं। दायीं ओर खड़े हुए लक्ष्मणजीकी लघु आकृति बनी है। वे करण्ड-मुकुट धारण किये हुए हैं। उनके मस्तकपर श्रीराम अपना दक्षिण कर पालित-मुद्रामें रखे हुए हैं। इस शिलापट्टका निर्माण-काल इसवी दसवीं शती है।

मध्यप्रदेशमें मल्लार (जि॰ बिलासपुर) एक उल्लेखनीय कला-केन्द्र है। यहाँ शुंगकालसे

भारतके प्रमुख श्रीहनुमान विग्रह

हनुमानगढ़ी श्रीहनुमानजी, अयोध्या
[पृष्ठ ४१२

श्रीबालाजी, सालासर
(राजस्थान) [पृष्ठ ४६५

सिद्धपीठ श्रीहनुमानजी, सीतामढ़ी
(बिहार) [पृष्ठ ४४०

कनकभूधराकार श्रीहनुमान विग्रह,
(दक्षिण) [

पूर्वी द्वीपोंमें श्रीहनुमान

(लेखक—डा० श्रीलोकेशचन्द्रजी, निदेशक सरस्वती विहार)
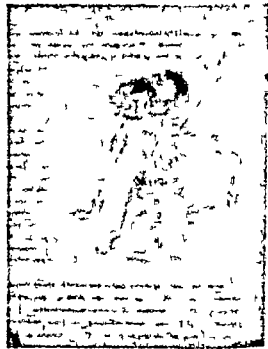
इंडोनीसियामें दसवीं शतीमें महाराजाधिराज बलितुङ्ने प्राम्बानन् ग्राममें विराट् शिवालयका निर्माण किया। इसका शिखर १४० फुट ऊँचा है और यह कभी २२४ मन्दिरोंसे घिरा हुआ भी था। इस शिवालयके प्रदक्षिणा-पथमें सम्पूर्ण रामायण उत्कीर्ण है। आज यह विश्वकी प्राचीनतम श्रीरामाश्रित कलाका भव्य निदर्शन है। श्रीरामभक्त कपीन्द्र हनुमानजीका इसमें अनेक बार चित्रण हुआ है। प्रस्तुत चित्रमें हनुमानजी सीताजीके पास भगवान् श्रीरामकी अँगूठी लेकर पहुँचे हैं।

इंडोनीसियामें आजतक रामायणका उदात्त अभिनय प्रचलित है। यहाँ चमपुत्तलिकाओंकी छाया यवनिकापर डालकर दिखाये जानेवाले छाया-नाटकोंकी परम्परा बहुत लोकप्रिय है। इनमें शुभ्र-वेषधारी हनुमानजी बच्चोंसे लेकर वयोवृद्धतक अपनी लीलाओं और श्रीरामभक्तिके लिये आह्लादक हैं। इन छाया-नाटकोंको वायाङ् कहा जाता है। हनुमानजीकी वायाङ् छायापुत्तलिका ही प्रचलित है। यह छाया-पुत्तलिकाका अभिनय कलिंगके तटोंसे इंडोनीसिया पहुँचा था, जो आज उड़ीसामें लुप्तप्राय और इंडोनीसियामें सर्वव्याप्त है।

इंडोनीसियाके काष्ठशिल्पोंमें भी हनुमानजी वज्राङ्गबलीके रूपमें विख्यात हैं। चित्रमें हनुमानजी नागका दमन करते हुए प्रदर्शित हैं। यह काष्ठाकृति आधुनिक है। इसकी परिचायिका यह है कि आज भी बजरंगबली बालिद्वीपवासी हिंदुओंको शौर्यकी प्रेरणा देते हैं।

कम्बोडिया (संस्कृतमें—कम्बुज)में भी रामायणका व्यापक प्रसार है। यहाँ 'रामकीर्ति'के नामसे श्रीराम-कथा सौ खण्डोंमें प्रकाशित हुई है। जहाँ भगवान् श्रीराम हैं, वहाँ हनुमानजी भी रहेंगे। तदनुरूप ही कम्बुजदेशमें हनुमानजी घरोंको सुशोभित करते हैं।

थाईलैंडमें १३वीं शतीमें तत्कालीन महाराजाने थाई भाषामें काव्य लिखकर रामायणको थाई-साहित्यका अभिन्न अङ्ग बना दिया। अनेक थाई-नरेशोंने श्रीराम-कथाके थाई रूपान्तर लिखे हैं। आज भी हनुमानजीसे सम्बन्धित प्रसङ्गोंका थाईदेशमें सामान्यतः प्रतिदिन अभिनय होता है।

दक्षिण-पूर्वी एशियामें श्रीहनुमान

(लेखक—आयुर्वेदरत्नचक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० श्रीदुर्गाप्रसादजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य)

मुझे लंका, बर्मा, मलेशिया, इंडोनेशिया, बाली द्वीप, थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस आदि देशोंकी यात्रा करनेका अवसर मिला है, परंतु इनमेंसे प्रत्येक देशसे मैं श्रीहनुमानजीकी मान्यताके स्वरूपका यथेष्ट संग्रह न कर सका। निकटसे देखनेपर यह तो पता चल ही जाता है कि इन सभी देशोंमें श्रीरामलीला तथा श्रीराम-कथाका प्रचलन है। अतः इसीके साथ श्रीहनुमानजीका प्रचार भी स्वाभाविक है, किंतु देश-भेदके अनुसार तत्तत्स्थानीय प्रभावके कारण देश-देशमें श्रीहनुमानजीके स्वरूपमें किंचित् परिवर्तन पाया जाता है।

जिस प्रकार देश-देशकी श्रीराम-कथामें कुछ-न-कुछ परिवर्तन मिलता ही है, उसी प्रकार श्रीहनुमान-कथामें भी यत्र-तत्र परिवर्तनका प्राप्त होना अस्वाभाविक नहीं है। उदाहरणार्थ, लाओसकी 'फलकफलाम' नामक रामायणमें श्रीहनुमानजीको श्रीरामका पुत्र बताया गया है।

भारतसे उत्तर न केवल नेपालमें, अपितु चीनमें भी रामायण और श्रीहनुमानजीका प्रचार है। नेपाल तथा भारतमें तो श्रीहनुमानजीके स्वरूपोंमें भेद होनेका कोई प्रश्न नहीं है, परंतु चीनमें कुछ भेद होनेका अनुमान लगाया जा सकता है, इसलिये कि वहाँ रामायण भी 'दशरथजातक'के नामसे ही प्रचलित है। नेपालके सदृश ही लंकामें भी मुझे श्रीहनुमानजीके स्वरूपमें कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं प्रतीत हुआ। मारीशसमें श्रीहनुमानजीका स्वरूप भारत-जैसा ही पाया जाता है और उनकी आकृतिसे अङ्कित झंडे तो प्रायः प्रत्येक हिंदूके घरमें देखनेको मिलते हैं।

श्रीहनुमानजीकी सेवा-परायणता एवं समर्पण भावनाके प्रति सभी नत-मस्तक हैं। सर्वत्र ये सेवाके आदर्श रूपमें माने जाते हैं और लोग उनसे सेवा तथा समर्पणकी प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

भारतसे बाहर प्रायः उन्हें पौराणिक एवं ऐतिहासिक व्यक्तिके रूपमें स्वीकार किया गया है। श्रीरामलीलाके क्रममें भी सर्वत्र भगवान् श्रीरामकी लीलाके साथ-साथ श्रीहनुमानलीला भी होती ही है। उनकी लीलाओंमें लंका-दहन-लीलाको अत्यन्त रोमाञ्चकारी माना जाता है। उनके अद्भुत सीता-न्वेषण-कार्यको सभी परम पावन दृष्टिसे देखते हैं। हम भारतीयोंके लिये तो उनकी प्रत्येक लीला अत्यन्त प्राणदायिनी एवं प्रेरणाप्रदायिनी है, यही बात विदेशी श्रीहनुमानभक्तोंके लिये भी कही जा सकती है।

थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस और इंडोनीशियामें श्रीरामकीर्ति नृत्य-नाटकोंके माध्यमसे प्रदर्शित होती है, जिसमें श्रीहनुमानजीका यही वानररूप है और श्रीरामके सैनिकके रूपमें बड़ी ओजस्वी और तेजस्वी स्वरूप है। कम्बोडियाके अंगकोर, इंडोनीशियाके प्राम्बानन् और थाईलैंडके आदि बौद्ध मन्दिरकी दीवारोंपर श्रीहनुमानजीका यह स्वरूप देखा जा सकता है। प्रवासी भारतीयोंने भी अपने मन्दिरोंमें श्रीहनुमानजीकी प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार भगवान् श्रीराम जहाँ भी हैं, उनके भक्तश्रेष्ठ श्रीहनुमानजी भी वहाँ अवश्य हैं।

श्रीहनुमान-सम्बन्धी प्रमुख तीर्थस्थलों एवं मन्दिरोंके विषयमें निवेदन

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण विश्वके एक महान् आदर्श हैं और हिंदुओंके तो वे सर्वस्व ही हैं। श्रीराम हिंदू-जातिके तन, मन, प्राण ही नहीं—रोम-रोममें व्याप्त हैं और उन मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके अत्यन्त प्रीति-भाजन हैं—पवनपुत्र श्रीहनुमानजी। ये अञ्जनानन्दन अपने प्राणाराध्य श्रीरामके बिना एक क्षण भी नहीं रह पाते। इसी कारण जहाँ-जहाँ श्रीसीतारामका मन्दिर है, वहाँ श्रीहनुमानजी उनके रक्षक और सेवकके रूपमें अवश्य उपस्थित मिलेंगे। यही हेतु है कि पवनकुमारसे रहित श्रीसीतारामका प्रायः कोई भी मन्दिर नहीं है और विद्या, बुद्धि, सत्य, तेज, वीरता, पराक्रम आदिके मूर्तस्वरूप, आदर्श-सेवक, आजन्म ब्रह्मचारी श्रीहनुमानजीके प्रति हिंदुओंमें इतना आकर्षण, इतनी निष्ठा, इतनी श्रद्धा और इतनी भक्ति है कि सर्वथा स्वतन्त्ररीतिसे भी वे श्रीहनुमानजीकी पूजा अर्चा करते हैं। वहाँ भक्त श्रीसीतारामको श्रीहनुमानके हृदयमें अनुभव करते हैं। करुणावतार श्रीहनुमानजीके मन्दिर उत्तरभारतमें तो सर्वत्र हैं ही, दक्षिणभारतमें भी गाँव-गाँवमें इनके मन्दिर हैं। श्रीहनुमानजीके बिना दक्षिणभारतके गाँवकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इन संकटमोचनके मन्दिर इस आर्यधरापर ही नहीं—जावा, सुमात्रा, इंडोनेसिया, थाईलैंड आदि देशोंमें भी पाये जाते हैं। भक्तप्राण धन श्रीहनुमानजीके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पावन स्थलों एवं मन्दिरोंका विवरण संक्षेपमें यहाँ दिया जा रहा है।

कुछ प्रदेशोंका विवरण किंचित् विस्तारसे, कुछका संक्षिप्तरूपमें प्राप्त हुआ है और किसी-किसी प्रदेशका विवरण तो प्रयास करनेपर भी प्राप्त नहीं हो पाया है। इस विवशताके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। जिन प्रदेशोंका विवरण प्राप्त हुआ है, वहाँके भी अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलोंका विवरण संतोषजनकरूपमें प्राप्त नहीं हो सका और कुछ स्थलोंका विवरण विस्तृतरूपमें प्राप्त हुआ है, जो स्थानाभावके कारण संक्षिप्त किया गया है। ये विवरण 'कल्याण'-प्रेमी अनेक महानुभावोंद्वारा प्राप्त हुए हैं, अतएव सम्भव है, उनमें कहीं त्रुटि रह गयी हो, पर यह निश्चय है कि इससे पाठकोंको श्रीहनुमदुपासनाकी व्यापकताकी एक झाँकी अवश्य प्राप्त हो जायगी।

विवरण भेजकर इस कार्यमें सहयोग प्रदान करनेवाले महानुभावोंके हम हृदयसे आभारी हैं। इस विवरणको तैयार करनेमें विभिन्न भाषाओंकी अनेक पुस्तकों एवं पत्रिकाओंसे भी पर्याप्त सहायता ली गयी है। हम उन पुस्तकों एवं पत्रिकाओंके लेखक एवं सम्पादक महानुभावोंके भी कृतज्ञ हैं। —सम्पादक

'जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजीका कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ मस्तकपर अञ्जलि बाँधे और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरे राक्षसोंका नाश करनेवाले हनुमानजी विराजमान रहते हैं, उन मारुतिको हम नमन करते हैं।'

श्रीराम भक्त हनुमानजीके इस भावका यह श्रीविग्रह अत्यन्त रमणीय है। इसका दर्शन करके मन मुग्ध हो जाता है। अयोध्याके विद्वान्, सन्त एवं श्रीहनुमानजीके प्रेमी भक्त इसके दर्शनार्थ प्रायः आया करते हैं। यह अद्भुत मूर्ति श्री श्री १०८ स्वामी श्रीसार्वभौम स्वामी वासुदेवाचार्यजी महाराजके द्वारा स्थापित की गयी थी। यह स्थान जानकी घाटपर श्रीवेदान्तीजीके मन्दिरके अत्यन्त समीप ठीक सामने ही है।

कुछ महात्माओंका कहना है कि श्रीहनुमानजीका यह विग्रह भगवान् भुवनभास्करसे उनके विद्या प्राप्त करनेकी श्रद्धा भक्तिमयी विनीत मुद्रामें प्रतिष्ठित है। जो हो, इस विग्रहकी आराधनासे यथाशीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

एक ऐसा प्रसङ्ग भी सुननेमें आता है कि एक महंतजी कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो गये थे। उनका यह असाध्य रोग जब किसी प्रकार दूर न हो सका, तब उन्होंने इन दास-भावके श्रीहनुमानजीकी श्रद्धा भक्तिपूर्वक आराधना प्रारम्भ की। कुछ ही समयमें श्रीहनुमानजी प्रसन्न हो गये और महंतजी महाराज इस व्याधिसे सर्वथा मुक्त हो गये।

(ख) व्यास हनुमान—

भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
(मानस ७। २५। २१)

चतुर्दश वर्षके बाद अरण्यसे लौटनेपर भगवान् श्रीराम राज्य सिंहासनपर आसीन हुए। राज्य-कार्य अत्यन्त सुखपूर्वक निर्विघ्न चल रहा था। उस समय श्रीभरतजी और श्रीशत्रुघ्नजी प्रायः एकान्त उपवनमें पवनकुमारके साथ बैठकर भगवान् श्रीरामका लीला-गुण-गान श्रवण किया करते थे। वक्ता थे सकलगुणनिधान ज्ञानिनामग्रगण्य भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त वायुपुत्र श्रीहनुमानजी। ये दोनों भाई अतिशय भक्तिपूर्वक पवनकुमारसे भगवान् श्रीसीतारामकी मधुर एवं मनोहर लीलाओंका रहस्य आदि पूछते और श्रीहनुमानजी गद्गद कण्ठसे उन्हें प्रभुका नाम, गुण और यश सुनाया करते थे। इसी भावमें मारुतिकी यह मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह प्रतिमा अत्यन्त मनोहर एवं विलक्षण शक्ति-सम्पन्न है। इस विग्रहके आराधनसे कुछ महानुभावोंने अपनी दुर्लभ कामनाओंकी पूर्ति की है और कुछने जीवनमें तो अद्भुत चमत्कार देखनेमें आये हैं। इस विषयका विस्तृत विवरण यहाँके विद्वान् पुजारी महोदय गद्गद कण्ठसे सुनाया करते हैं।

व्यास-रूपमें मारुतिका यह श्रीविग्रह अयोध्याके रघुबीरगंज (रायगंज) मुहल्लेमें प्रतिष्ठित है। यह मुहल्ला मणिपर्वतके निकट पड़ता है। कहते हैं कि यह स्थान वही है, जहाँ पवनपुत्र भरतादि बन्धुओंके सम्मुख भगवान् श्रीरामकी कथा सुनाया करते थे। श्रीहनुमानजीके प्रेमी भक्त अयोध्या जानेपर इनका दर्शन करना आवश्यक समझते हैं। —श्रीश्रीराम दुबे, बी० एस्-सी०

वाराणसी—(क) श्रीसंकटमोचन-मन्दिर—श्रीसंकट मोचन हनुमानजीका मन्दिर शहरके दक्षिण हिंदू विश्वविद्यालयके समीप लंकामें स्थित है। मन्दिरके चारों ओर एक छोटा-सा वन है। यहाँका वातावरण एकान्त, शान्त एवं उपासकोंके लिये दिव्य साधन-स्थलीके योग्य है। मन्दिरके प्राङ्गणमें श्रीहनुमानजी दिव्य विग्रहके सम्मुख श्रीरामचन्द्र सरकार श्रीकिशोरीजी एवं श्रीलक्ष्मणलालजीके साथ विराजमान हैं। श्रीहनुमानजीके मन्दिरमें अलग एक ओर भगवान् विश्वनाथजीकी लिङ्गमयी एक मूर्ति भी विराजमान है। श्रीसंकटमोचन हनुमानजीके समीप ही श्रीठाकुरजी भगवान् श्रीनृसिंहके रूपमें विराजमान हैं।

भगवान्‌के परम कृपापात्र श्रीतुलसीदासजीको कर्ण घण्टा-स्थलपर कथाके समय जब श्रीहनुमानजीका दर्शन कोढ़ी-रूपमें हुआ, तब गोस्वामीजी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। असी मुहल्लेसे दक्षिण घोर जंगल (वर्तमान लंका) में पहुँचकर तुलसीदासजी उनके चरणोंपर गिर पड़े। अत्यन्त विनम्र प्रार्थना करनेपर श्रीहनुमानजी प्रकट हो गये और बोले—'तुम क्या चाहते हो?' गोस्वामीजीने कहा—'मैं श्रीराम-दर्शन चाहता हूँ।' श्रीहनुमानजीने अपना दक्षिण बाहु उठाकर कहा—'जाओ, चित्रकूटमें प्रभु-दर्शन होगा।' पुनः वाम बाहुको अपने हृदयपर रखकर बोले—'हम दर्शन करा देंगे।' गोस्वामीजीने कहा—'प्रभो! आप इसी रूपसे भक्तोंके लिये यहींपर निवास करें।' श्रीहनुमानजीने

जयन्ती एवं निधन तिथि महोत्सव यहीं धूमधामसे मनाया जाता है।

पुजारी हनुमानजीको श्रीराम-नाम एवं श्रीरामका मङ्गल चरित सुननेसे अतीव प्रसन्न होते हैं। अनेक लोगोंने यहाँ रामचरितमानसके किष्किन्धाकाण्डके पाठका अनुष्ठान कर आशातीत लाभ प्राप्त किया है।

(ग) हनुमानघाट—हनुमानघाट यहाँका एक प्रसिद्ध घाट है। यहाँ श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। मन्दिरके श्रीविग्रहकी स्थापना समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी महाराजद्वारा हुई थी। तीर्थाटन करते हुए जब श्रीसमर्थ यहाँ पधारे, तब उन्होंने इस मूर्तिको स्थापित किया था। —श्रीश्रीभद्रजी

(घ) बालरूप श्रीहनुमान-मन्दिर—भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त अञ्जनानन्दनका बाल-विग्रह कहीं देखनेमें नहीं आता, किंतु वाराणसीके उत्तराखण्ड मुहल्ला हनुमानफाटकमें बालरूप श्रीहनुमानजीका अत्यन्त मनोरम विग्रह है। ऐसा वपुसे उछलकर भागनेकी मुद्राका बाल-विग्रह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। इस मनोहर विग्रहकी विशेषता यह है कि इसकी स्थापना गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने अपने करकमलोंद्वारा की थी। इतना ही नहीं, कुछ वर्षोतक यहीं रहकर उन्होंने श्रीरामचरितमानसके कुछ काण्डोंकी रचना भी की थी। यहाँ श्रीतुलसीदासजी जिस कमरेमें रहते थे, वह कमरा अभीतक सुरक्षित तो है, किंतु उन महापुरुषकी यह गौरवमयी साधना-स्थली उपेक्षित पड़ी है।*

—श्रीशिवनाथ दुबे

प्रयाग—यहाँका त्रिवेणी-सङ्गम सुप्रसिद्ध है। इसके पास ही एक विशाल किला है। उस किलेके समीप श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी विशाल मूर्ति है। मूर्तिकी विशेषता यह है कि वह भूशायिनी है। सब वर्षाके दिनोंमें बाढ़ आती है और सारा स्थान जलमग्न हो जाता है, तब हनुमानजीकी वह मूर्ति कहीं अन्यत्र ले जायी जाती है।

चित्रकूट-हनुमानधारा—कोटितीर्थसे पहाड़के ऊपर ही-ऊपर करीब दो मील जानेपर हनुमानधारा मिलती है। कुछ यात्री कोटितीर्थ न जाकर सीतापुरसे सीधे हनुमानधारा आते हैं। सीतापुरसे हनुमानधारा तीन मील है। यह स्थान पर्वतमालाके मध्यभागमें स्थित है। पहाड़के सहारे हनुमानजीकी एक विशाल मूर्तिके ठीक सिरपर दो जलके कुण्ड हैं, जो सदा भरे रहते हैं और उनमेंसे निरन्तर पानी बहता रहता है। इस धाराका जल हनुमानजीको स्पर्श करता हुआ बहता है। इसीलिये इसे हनुमानधारा कहते हैं। धाराका जल पहाड़में ही विलीन हो जाता है। उसे लोग प्रभाती नदी या पातालगङ्गा कहते हैं। यह स्थान बड़ा ही रमणीक है। लगभग साढ़े तीन सौ सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद हनुमानजीके दर्शन होते हैं। यह स्थान वृक्षोंसे आच्छादित और शीतल है। कुछ धर्मात्मा लोगोंने यात्रियोंके विश्रामार्थ श्रीहनुमानजीके समीप एक चौड़ी दालान बनवा दी है।

इस स्थानके बारेमें एक कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है—श्रीरामके अयोध्यामें राज्याभिषेक होनेके उपरान्त एक दिन हनुमानजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाराज! मुझे कोई ऐसा स्थान बतलाइये, जहाँ लङ्का-दहनसे उत्पन्न मेरे शरीरका ताप मिटे।' तब भगवान्‌ने हनुमानजीको यह स्थान बतलाया। यह स्थान सचमुच बड़ा ही सुन्दर है।

लखनऊ—यहाँ अलीगंजका श्रीहनुमान-मेला विख्यात है। कभी लक्ष्मणपुर कहलानेवाली इस नगरीसे होकर प्रवाहित होती हुई गोमतीके उस पार १९वीं शतीके आरम्भमें नवाब शुजाउद्दौलाकी पत्नी, नवाब वाजिद अली शाहकी दादी तथा दिल्लीके मुगलिया खानदानकी बेटी आलिया बेगमद्वारा बसाये गये अलीगंज मुहल्लेमें एक श्रीहनुमान-मन्दिर है, जिसपर पूरे ज्येष्ठ मासके प्रत्येक मङ्गलवारको मुख्यतः हिंदुओं और मुसल्मानोंकी ओरसे तथा कुछ ईसाइयोंकी ओरसे भी श्रद्धापूर्वक मनौतियाँ मानी जाती हैं, चढ़ावा चढ़ाया जाता है और उन्हें प्रसाद दिया जाता है। लखनऊमें मुहर्रम और अलीगंजका महावीर-मेला—ये ही दो सबसे बड़े मेले होते हैं। मेलेसे लगभग एक सप्ताह पहलेसे ही शहरके दूर-दूर भागोंसे आकर हजारों लोग केवल एक लाल लंगोटा पहने सड़कोंपर पेटके बल लेट-लेटकर दण्डवती परिक्रमा करते हुए मन्दिर जाते हैं। हनुमानजीके इस मन्दिरका महत्त्व या 'मान्यता' इतनी अधिक है कि लखनऊमें ही नहीं, दूर-दूरतक जहाँ भी हनुमानजीका

* कहते हैं कि वाराणसीमें बालरूप श्रीहनुमानजीके चार विग्रहोंकी स्थापना श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने की थी, जिनमें दो विग्रहोंका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा सका है। प्रयत्न करनेपर भी शेष दो विग्रहोंका संतोषजनक विवरण हमें नहीं प्राप्त हो सका। —सम्पादक

कोई नया मन्दिर बनता है, वहाँ उसकी मूर्तिके लिये पोशाक, सिंदूर, लंगोट, पंखा और छत्र आदि यहींसे बिना मूल्य दिये जाते हैं और तभी वहाँकी मूर्ति-स्थापना प्रामाणिक मानी जाती है।

इस मन्दिरका इतना महत्त्व होनेसे आम तौरपर लोगोंमें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। विशेषकर इसलिये कि एक तो यह नया मन्दिर है, दूसरे, इसकी स्थापना, जीर्णोद्धार तथा रख-रखाव एवं देखभालमें अवधके उदार मुसल्मानोंका मुख्य हाथ रहा है और तीसरे, इससे थोड़ा ही दूरपर अलीगंजके अन्तिम छोरपर हनुमानजीका ही एक बहुत पुराना मन्दिर है, उसकी इतनी मान्यता नहीं है।

कुछ पौराणिक तथ्योंके अनुसार रामायणकालमें इसका आदिस्थान महानगर कालोनीमें हीवट पालिटेक्निकके निकट स्थित इस्लामबाड़ीमें था। कहते हैं, जब अयोध्या लौटनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीका त्यागनेका निश्चय कर लिया और श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजीके साथ श्रीसीताजीको लेकर कानपुर जिलेके बिठूर, जहाँ वाल्मीकि-आश्रम था, के वनमें छोड़ने जा रहे थे, तब वर्तमान अलीगंजके पास आते-आते काफी अँधेरा हो गया और रातभर रास्तेमें ही विश्राम करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः वे तीनों रास्तेमें ही सोच विचारके लिये रुक गये। जिस स्थानपर वे रुके थे, वहाँ हीवट पालिटेक्निककी बगलसे पुराने अलीगंज मन्दिरको जानेवाली सड़कपर एक बड़ा-सा बाग था। यद्यपि लक्ष्मणजी चाहते थे कि कुछ दूर और चलकर गोमतीके उस पार (शहरकी ओर) बनी अयोध्याराजकी चौकीमें विश्राम करें, जिसे बादमें लक्ष्मणटीलाकी संज्ञा दी गयी किंतु सीताजी अब किसी भी राजभवनमें पैर रखनेको तैयार न थीं। फलतः लक्ष्मणजी तो उस चौकी अर्थात् अपने महलको चले गये और सीताजी उसी बागमें रुक गयीं, जहाँ हनुमान जी रातभर उनका पहरा देते रहे। बादमें दूसरे दिन वे लोग यहाँसे बिठूरके लिये चल दिये।

कालान्तरमें उसी बागमें एक मन्दिर बन गया, जिसमें हनुमानजीकी मूर्ति स्थापित थी और उस बागको हनुमानबाड़ी कहा जाने लगा। यह मन्दिर शताब्दियोंतक बना रहा। १४वीं शतीके आरम्भमें बख्तियार खिलजीने इस बाड़ीका नाम बदलकर इस्लामबाड़ी कर दिया, जो आजतक चला आ रहा है।

इसके बहुत दिन बाद (सन् १७९२ से १८ ... के) अवधके तत्कालीन नवाब मुहम्मदअली शाह की बेगम रबियाके जब कई वर्षोंतक कोई संतान नहीं हुई और बहुत-से हकीम-वैद्योंकी दवाइयों और पीर-फकीरोंकी दुआओंने भी जवाब दे दिया, तब कुछ लोगोंने उन्हें इस्लामबाड़ीके बाबाके पास जाकर दुआ माँगनेकी सलाह दी। कहते हैं, एक दिन उन्हें स्वप्नमें हनुमानजीने दर्शन देकर कहा कि वे इस्लामबाड़ी जायँ और संतानकी कामना करें, उनकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।' ऐसी किंवदन्ती है कि जब वे गर्भवती थीं, तब उन्हें फिर स्वप्न हुआ, जिसमें उनके (गर्भस्थ) पुत्रने उनसे कहा कि 'इस्लामबाड़ीमें जमीनमें हनुमानजीकी मूर्ति गड़ी है, उसे निकलवाकर किसी अच्छे स्थानपर प्रतिष्ठित किया जाय।'

फलतः बच्चेके जन्मके बाद रबिया बेगम वहाँ गयीं और नवाबके कारिन्दोंने टीला खोद डाला तथा नीचेसे मूर्ति निकाल ली गयी। बादमें उसे साफ-सुथरा करके, नवाबी ढंगसे सोने-चाँदी तथा हीरे-जवाहरातसे मण्डित एक हौदेपर रखकर हाथीपर रखा गया, जिससे आसफुद्दौलाके बड़े इमामबाड़ेके पास ही उसे प्रतिष्ठापित करके मन्दिर बनवाया जाय। हाथीको लेकर जब सब लोग वर्तमान अलीगंजकी ओर जा रहे थे (जो उस समय एक गलियारा था), तब सड़कके छोरपर पहुँचकर उस हाथीने आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया। महावतने लाख चेष्टाएँ कीं, किंतु हाथी ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। अन्तमें बेगम साहिबाने उसकी पीठसे हौदा उतरवा दिया, तब वह चलने लगा, किंतु बादमें जब वह हौदा फिर उसपर रखा गया तो वह पुनः बैठ गया। अन्तमें जब उस बाबाने कहा कि 'रानी साहिबा! हनुमानजी गोमतीके उस पार नहीं जाना चाहते, क्योंकि वह लक्ष्मणजीका क्षेत्र है', तब बेगम साहिबाने वहीं सड़कके किनारे, गोमती-तटके निकट (जो अब अपनी वर्तमान स्थितिसे हटकर अलीगंजके निकटसे बहती थी) मूर्ति स्थापित करा दी और उसपर एक छायादार मन्दिर भी बनवा दिया। साथ ही उसी साधुको सरकारी सर्वेसर्वा मन्दिरका महन्त नियुक्त कर दिया गया और उसकी व्यवस्थाके लिये कुछ सरकारी रकम नियुक्त कर दी गयी। मन्दिरके लिये आस-पासकी अधिकांश जमीन महमूदाबाद रियासतकी ओरसे मुफ्तमें दे दी गयी।

किंतु मेला अभी नहीं आरम्भ हुआ था। कहते हैं, इसके मन्दिर-स्थापनाके दो-तीन वर्ष बाद ही उस क्षेत्रमें एक भ…

बहुत दूर-दूरतक प्लेग महामारी फैली और उससे हजारों लोग इस घातक रोगसे बचनेके लिये पुराने मन्दिरके हनुमानजीकी शरणमें गये, तभी वहाँके पुजारीको स्वप्न हुआ, जिसमें हनुमानजीने कहा कि 'ये लोग यहाँ नहीं, उस नये मन्दिरमें जायँ, मैं वहाँ वास करता हूँ, मेरी शक्ति वहाँकी मूर्तिमें है।' फलतः वह पूरी भीड़ नये मन्दिरमें चली आयी और उनमेंसे बहुतोंको स्वास्थ्य लाभ हुआ। तभीसे इस नये मन्दिरपर मेला लगने लगा। किंतु इसी सम्बन्धमें एक दूसरी किंवदन्ती यह है कि एक बार नवाब वाजिदअली शाहकी दादी आलिया बेगम बहुत बीमार पड़ीं। उन्होंने दुआ की और वह रोग समाप्त हो गया। इसके फलस्वरूप उन्होंने यहाँ बहुत बड़ा उत्सव मनाया, लाखोंकी खैरात बाँटी और तभीसे मलेकी परम्परा चालू हो गयी। इसीके साथ-साथ आलिया बेगमके नामपर इस पूरे मुहल्ले (अर्थात् तत्कालीन गाँव) का नाम अलीगंज रख दिया गया।

इन दोनोंके अतिरिक्त एक तीसरी किंवदन्ती और भी है—नवाब वाजिदअली शाहके समयमें कस्तूरी या केसरका एक मारवाड़ी व्यापारी जटमल लखनऊ आया और चौकसे निकली तत्कालीन सबसे बड़ी सआदतगंजकी मंडीमें कई दिनतक पड़ा रहा, किंतु अधिक महँगी होनेके कारण उसके दर्जनों ऊँटोंपर लदी कस्तूरी ज्यों-की-त्यों पड़ी रह गयी, कोई खरीदार ही नहीं मिला। ज्ञातव्य है कि इस मंडीकी प्रशंसा बड़ी दूर-दूरतक थी, कारण, अफगानिस्तान तथा कश्मीर आदिसे मेवों, फलों तथा जेवरात आदिके बड़े-बड़े व्यापारी वहाँ आते थे। मारवाड़ी व्यापारी बड़ा निराश हुआ और लोगोंसे कहने लगा कि 'अवधके नवाबोंका मैंने बड़ा नाम सुना था, किंतु वह सब झूठ निकला।' इतनी दूर आकर भी खाली हाथ लौटनेके विचारमात्रसे वह बड़ा दुःखी हुआ और अयोध्याकी ओर चल दिया। रास्तेमें इसी नये मन्दिरके पास थककर जब वह विश्रामके लिये रुका, तब लोगोंके कहनेसे उसने हनुमानजीसे अपने मालकी बिक्रीके लिये मनौती मानी।

संयोगवश उन्हीं दिनों नवाब वाजिदअली शाह अपनी कैसर बेगमके नामपर कैसरबागका निर्माण करा रहे थे। किसीने उनको राय दी कि यदि इस कैसरबागकी इमारतको केसर-कस्तूरीसे पुतवा दिया जाय तो सारा इलाका ही अत्यन्त सुवासित हो जायगा! और फिर कैसर और केसरकी तुक भी मिल गयी। नवाबसाहबको यह सलाह जँच गयी और जटमलकी सारी कस्तूरी उसके मुँहमाँगे दामपर खरीद ली गयी। स्वभावतः जटमलके हर्षका कोई ठिकाना नहीं रहा, उसने हृदय खोलकर मन्दिरके लिये खर्च किया। आज भी मन्दिरके भीतर मूर्तिपर सोनेका जो छत्र लगा है, वह इसी व्यापारीका बनवाया हुआ है। उसने पूरे मन्दिरको ही नये सिरसे बनवाया। वर्तमान स्तूप (गुंबद) भी तभीका है। तभीसे यहाँ मेला भी लगने लगा।

—श्रीसूरजनारायणजी निगम

गोरखपुर—यहाँ राप्ती नदीके तटपर 'श्रीहनुमानगढ़ी'के नामसे हनुमानजीका प्रसिद्ध स्थान है। प्रसिद्ध श्रीगोरक्ष-पीठमें श्रीगोरखनाथजीके मन्दिरके उत्तरमें हनुमानजीका प्राचीन मन्दिर था अब उसको नया रूप दिया गया है और उसमें बहुत ही भव्य एवं विशाल प्रतिमाकी प्रतिष्ठा हुई है। बेतियाहातामें कुछ वर्ष पूर्व एक सुन्दर श्रीहनुमान मन्दिरका निर्माण हुआ है, जिसका शिलान्यास हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके कर-कमलोंद्वारा हुआ था। शहरमें और भी अनेक प्रसिद्ध हनुमान विग्रह हैं।

वृन्दावन—श्रीसिंहपौर हनुमानजीका मन्दिर इतिहास प्रसिद्ध श्रीगोविन्ददेवजीके पास है। धर्मान्ध औरंगजेब जब श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरको तोड़वा रहा था, उस समय सिद्ध संत श्रीविहारिनीदेवजीने प्रार्थना की और श्रीहनुमानजीकी प्रेरणासे तत्काल असंख्य बंदर इकट्ठे हो गये। इस वानरी-सेनाकी किलकिलाहटसे यवन-सेनाको श्रीधामसे दूर हट जाना पड़ा। श्रीहनुमानजीकी कृपासे श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरका एक तला बच गया, जो यवन धर्मान्धताकी गाथा सुना रहा है। यहाँ श्रीवृन्दावनके प्राचीन आचार्य श्रीभट्टदेवजी महाराजद्वारा निर्मित श्रीवृन्दादेवीका मन्दिर पहले था। उस मन्दिरके सिंहपौरपर उनके द्वारा ही श्रीहनुमानजी विराजमान किये गये थे। कालचक्रसे मन्दिरका तो नाम भी मिट गया, किंतु 'श्रीसिंहपौर हनुमानजी' अब भी हैं।

—आचार्य स्वामी श्रीराधाभजनशरणदेवजी महाराज

मौंच—जालौन जिलेमें यह मौञ्ज ऋषिकी तपाभूमि है। यहाँका 'श्रीमन्दिर बजरंग घोहर' बड़ा विख्यात है। यहाँपर बैरागी, साधु-महात्माओंने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। कहा जाता है कि यह मन्दिर 'आल्हा ऊदल'के समयमें बना था। अब इसका जीर्णोद्धार करा दिया गया

है। यहाँपर प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी (अनन्त चतुर्दशी) को मेला लगता है। —श्रीबाबूरामजी बामपदी

बदरीनाथ धाम—मन्दिरकी परिक्रमामें गणेशजीके समीप ही हनुमानजीकी मूर्ति है तथा मन्दिरके पृष्ठभागमें भी हनुमानजीकी संगमरमरकी बनी हुई विशाल प्रतिमा है। यात्रियोंके लिये यह एक आकर्षक एवं आराधनाका केन्द्र है।

—स्वामी श्रीशंकरानन्दजी महाराज

हनुमानचट्टी—पाण्डुकेश्वरसे सात मीलकी दूरीपर हनुमानचट्टी है। यहाँ हनुमानजीकी मूर्ति है। यह हनुमानजीकी तपोभूमि बतलायी जाती है। यहाँ अलकनन्दाके किनारे सुन्दर वृक्षोंकी पङ्क्तियाँ बड़ी मनोरम हैं।

पवाली—हिमालयमें बारह हजार फीटकी ऊँचाईपर टिहरी जनपदमें त्रियुगीनारायणके मार्गमें यात्रियोंका यह एक विश्राम-स्थल है। पवालीमें एक बगलमें छोटा-सा मन्दिर वीर हनुमानका है। इस मन्दिरकी मूर्ति वैशिष्ट्यपूर्ण है। दो फुट ऊँची इस मूर्तिके बायें हाथमें नंगी तलवार और दाहिने हाथमें गदा है। श्रीमारुतिका मुख सामने नहीं है, दाहिना अङ्ग देखनेमें आता है।

अञ्जनी (हरद्वार)—हनुमानजीकी माँ अञ्जनीदेवीका मन्दिर चण्डीदेवीके मन्दिरके पास ही पहाड़के दूसरी ओर है।

व्रजके प्रसिद्ध श्रीहनुमान-विग्रह

(लेखक—पं० श्रीरामदासजी शास्त्री)

चौरासी कोस व्रज और उसके आस-पासका विस्तृत क्षेत्र श्रीहनुमानजीके प्रति श्रद्धा एवं विश्वासपूर्ण भक्तिसे ओत-प्रोत है। यहाँके आबालवृद्ध नर-नारी बजरंगबलीको इष्टदेवताकी भाँति पूजते हैं। व्रज-भूमि क्षेत्रके शिक्षित समाजमें तो हनुमानजीकी घर-घर पूजा होती ही है, यहाँकी ग्रामीण जनतामें भी इस चमत्कारपूर्ण देवके प्रति अटूट श्रद्धा देखते ही बनती है। व्रजका कौन ऐसा ग्राम है, जहाँ श्रीहनुमानके दो-चार छोटे-बड़े मन्दिर न हों। व्रजवासी प्रायः साय इन दिव्य मन्दिरोंपर पहुँचकर अपनी साधना-आराधना करते हैं और मन कामना-पूर्तिकी मनौती मानते हैं।

व्रजमें बालकोंके मनमें बाल्यकालसे ही श्रीहनुमानजीके प्रति एक विशिष्ट श्रद्धा-भावना जाग्रत् की जाती है। माताएँ अपनी गोदीके शिशुकी आधि-व्याधिको दूर करनेके लिये अन्य किसी भूत-प्रेत या पीर-पैगम्बरको न मानकर श्रीहनुमान मन्दिरके पुजारीसे झाड़-फूँकका सहारा लगवाती हैं और चमत्कारके साथ नन्हा-सा शिशु भयंकर पीड़ासे मुक्त हो खेलने-कूदने लगता है।

व्रजके छोटे बालक जब प्रथम बार पाठशालामें प्रवेश करते हैं, तब पट्टी पूजनके अवसरपर श्रीहनुमानके नामकी मिश्री (मिठाई) बाँटते हैं। व्रजवासियोंमें एक और भी उत्तम बात पायी जाती है—जब बच्चेका अन्न प्राशन-संस्कार कराया जाता है, तब भी श्रीहनुमानके भोगकी भावनासे उस अन्नको पहले बंदर और लंगूरोंको खिलाकर तत्पश्चात् शिशुको खिलाते हैं। नववधूके गृह प्रवेशके समय जहाँ अन्य देवी-देवताओंकी पूजा होती है, वहाँ प्रथम बार पड़नेवाले मंगलवार या शनिवारको व्रत रखकर वर-वधू श्रीहनुमानका पूजन करते हैं।

व्रजके युवकोंको कुश्ती-कसरत करनेका बड़ा शौक होता है, इसलिये प्रत्येक श्रीहनुमान-मन्दिरपर एक अखाड़ा अवश्य बना होता है, अथिक नहीं तो प्रत्येक अखाड़ेपर एक छोटेसे आलेमें श्रीहनुमानजी अवश्य बैठे होंगे और एक छोटी गदा उनके पार्श्वमें रखी होगी। कोई भी पहलवान अखाड़ेमें उतरनेसे पहले श्रीहनुमानजीपर चोला चढ़ाकर धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करनेके बाद मनौती मानेगा और बजरंगबलीकी 'जय-जयकार' बोलकर लंगोट घुमायेगा। आश्चर्य यह है कि अखाड़ेकी कुश्तीमें हारनेवाला पहलवान भी पुनः श्रीहनुमानकी साधनामें लग जाता है।

इस तरह व्रज संस्कृतिमें श्रीहनुमानके प्रति श्रद्धा भक्ति जन-जनमें व्याप्त दीखती है। श्रीहनुमदुपासनाकी संस्कृतिके पीछे सृष्टिके प्रारम्भका एक समुज्ज्वल इतिहास है।

श्रीहनुमानको व्रजके लोग तबसे पहचानते हैं, जब मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने समुद्रपर पुल बाँधा था। कथा प्रसिद्ध है—पुल बाँधते समय श्रीहनुमान हिमालयकी गोदसे एक विशाल पर्वतको उठाकर ला रहे थे, तभी भगवान्‌की आज्ञा

हा गयी कि सभी वानर पर्वतोंको जहाँ का तहाँ स्थापित कर दें। तब श्रीहनुमानने इस पर्वतराज (गिरिराज) को व्रजभूमिमें स्थापित कर दिया। गिरिराज अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगा—'पवनपुत्र! तुमने तो मुझे कहींका भी नहीं रहने दिया, इधर तो भगवान् की सेवा नहीं हुई और उधर भगवान् श्रीरामकी सेवा एवं दर्शनसे भी मैं वञ्चित रह गया।' तब श्रीहनुमानने कहा—'गिरीश! तुम चिन्ता न करो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हें भगवान्का दर्शन अवश्य कराऊँगा। श्रीरामरूपमें नहीं तो श्रीकृष्णरूपमें भगवान् तुम्हें अपने हाथोंपर उठायेंगे।' गिरिराजने फिर कहा—'अञ्जनीनन्दन! आपका आशीर्वाद स्वीकार है, किंतु एक प्रार्थना और है, श्रीकृष्णके साथ आप भी रहेंगे, तभी मेरी आत्माको शान्ति मिलेगी।' श्रीहनुमान वचनबद्ध हो गये और बोले—'पर्वत राज! क्या यह भी कहनेकी बात है! जहाँ-जहाँ श्रीराम और श्रीकृष्ण होंगे, वहाँ-वहाँ हनुमान तो अवश्य रहेंगे ही। मैं भी तुम्हारी कन्दराओंमें श्रीकृष्णकी लीलाका दर्शन करूँगा।'

ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहनुमानके ऋणसे मुक्त होनेके लिये ही भगवान् श्रीरामने श्रीकृष्णावतारमें श्रीहनुमान को सखा बना लिया था, क्योंकि श्रीरामरूपमें तो वे इतना ही कहकर चुप हो गये थे—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
(मानस ५। ३२। १४)

—सो श्रीकृष्णावतारमें वानर ही उनके सच्चे सखा थे, खान पान और क्रीडा-कौतुकमें श्रीहनुमानकी मण्डली सदा उनके साथ रही रहती थी।

व्रजवासियोंके कथानकोंमें कहा जाता है कि श्रीगिरिराजकी सात कोसकी परिक्रमामें दस स्थानोंपर श्रीहनुमान विराजमान हो गये थे, इसलिये कि जिस किसी दिशासे श्रीकृष्ण पधारेंगे, श्रीहनुमान उन्हें गिरिराजपर ले आयेंगे। आज भी गिरिराजके चारों ओर दस चमत्कारपूर्ण हनुमान-विग्रह विराजमान हैं। वानरोंकी सेना तो पूरे पर्वतराजको घेरे ही रहती है। श्रीकृष्णकी बाललीला और माखन-चोरीमें ये श्रीहनुमान सखा ही साथ देते हैं।

व्रजमें ऐसे अनेक आख्यान प्रचलित हैं, जिनमें श्रीकृष्ण और श्रीहनुमानका परस्पर प्रगाढ़ प्रेम प्रकट होता है। व्रजमें दीपावलीका महोत्सव सुप्रसिद्ध है। उस दिन व्रजके घर-घरमें गौके गोबरका गोवर्धन बनाकर उसकी पूजा होती है। जिस समय गोबरका गोवर्धन बनाया जाता है, उसीके साथ ही गोबरके 'लँगुरिया'की मूर्ति बनाकर उसकी भी पूजा होती है। यह 'लँगुरिया' हनुमानका ही प्रतीक है। 'लाङ्गूली' 'पुच्छवान्'का अपभ्रंश 'लंगूर' या व्रजबोलीमें 'लंगुरिया' हो गया है। लंगुरियाकी पूजाके उपरान्त पूजन सामग्रीको बंदर—लंगूरोंको ही खिला दिया जाता है।

व्रजके अनेक चमत्कारी श्रीहनुमान विग्रहोंका सम्बन्ध श्रीकृष्णके साथ जुड़ा हुआ है। गोकुलके पास वनमार्गमें एक 'हनुमान हठीले' नामसे प्रसिद्ध स्थान है। यहाँकी प्राचीन श्रीहनुमान-मूर्तिके सम्बन्धमें ख्याति है कि जब श्रीयशोदा मैया लालाको प्रात माखन-मिश्री खिलाती थीं, तब एक वानर हठपूर्वक श्रीकृष्णके पास बैठकर उनके मुखसे गिरे क्षीर-कणोंको उठा-उठाकर खाता था, माँके हजार चेष्टा करनेपर भी वह वानर हटता नहीं था। मैयाने उसका नाम 'हठीलो हनुमान' रख दिया था।

मथुरासे वृन्दावन जाते समय वृन्दावनके पास 'लुटेरिया हनुमान' प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्णने इनको वृन्दावनके द्वारपर इसलिये बिठा दिया था कि मथुराकी दधि बेचनेवाली गोपियोंका पता ये देते थे और दधि लूटनेमें सहयोग करते थे। भावुक जनोंकी एक धारणा यह भी है कि ये हनुमान चित्तके विकारोंको लूट लेते हैं।

गोवर्धनमें 'पूँछरीका लौंठा' भी हनुमानका ही रूप है, उसे भी भगवान्ने दधि लूटनेको ही बिठाया था। कथा वार्ताओंमें यह भी कहा जाता है कि भगवान् व्रजसे बाहर मथुरा-द्वारकामें अपने साथ केवल एक सखा श्रीहनुमानको ही ले गये थे। महाभारतमें भी अर्जुनके रथकी सुरक्षामें श्रीकृष्णके साथ श्रीहनुमानजीका पूर्ण दायित्व है।

इस प्रकार व्रज-संस्कृतिमें श्रीकृष्ण-लीलाके साथ श्रीहनुमानका नित्य सम्बन्ध है।

बिहार-प्रान्तके कुछ प्रसिद्ध हनुमान-मन्दिर

आँजन—राँची मण्डलान्तर्गत गुमला थानेमें आँजन नामक एक ग्राम है, जिसके विषयमें कहा जाता है कि यहाँ महावीर हनुमानजीका जन्म हुआ था। हनुमानजीकी माता अञ्जनादेवीका स्थान गाँवसे पश्चिम तीन मील दूर एक सघन-गुफामें है। उस गुफामें माता अञ्जनादेवी और बाल हनुमानकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँ प्रतिवर्ष देशके कोने-कोनेसे दर्शनार्थी आकर अपनी मनःकामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करते हैं। माता अञ्जनाके नामपर ही इस स्थानका नाम 'आँजन' रखा गया है।

इस ग्राममें मुख्यतः 'उराँव' जातिके आदिवासी लोग बसते हैं, जो अपनेको हनुमानभक्त मानते हैं। यही नहीं, ये अपनेको हनुमानजीका वंशज भी मानते हैं। 'उराँव' शब्द 'ओ! रामका' ही अपभ्रंश है। त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कर ये वनवासी भक्त 'ओ राम, ओ राम' कहकर नाचने-कूदने लगे। इसी कारण तभीसे ये जातियाँ 'उराँव' कही जाने लगीं। अभी भी इनका जीवन बहुत ही सीधा-सादा है तथा शाक, कन्द, मूल, फल इनका प्रधान आहार है। पुरुषवर्ग अपने परिधानमें लँगोटी लगाते हैं एवं पूँछकी तरह लँगोटीका एक सिरा लटकाये रहते हैं।

—श्रीपरशुरामजी मिश्र

जनकपुर—जनकपुरधामके समीप परिक्रमा-मार्गमें हनुमाननगर नामक एक गाँव है। यहाँकी हनुमानगढ़ीमें हनुमानजीका श्रीविग्रह प्रसिद्ध है। स्वयं जनकपुरधाममें सङ्कटमोचन-मन्दिर भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीरामप्रसाद-आश्रममें मनःकामना-सिद्ध हनुमानजीकी मूर्ति है। ये भक्तोंकी मनःकामना पूर्ण करते हैं।

—श्रीवैदेहीशरणजी

सीतामढ़ी—इस स्थानको भगवती सीताजीके प्राकट्य-स्थली होनेका गौरव प्राप्त है। यहीं मिथिला-नरेश जनकको यज्ञार्थ हल जोतते हुए मही (पृथ्वी) से सीताजीकी प्राप्ति हुई थी। इसीलिये इस स्थानका नाम सीतामही (सीतामढ़ी) है। यह भूमि सिद्धों, भक्तों और सन्तोंकी सदासे साधना-स्थली और निवास-स्थली रही है।

यहाँका मुख्य मन्दिर श्रीजानकी-मन्दिर है। इस मन्दिरके श्रीविग्रहके सामने श्रीहनुमानजीकी विनयावनत मनोज्ञ लघुमूर्ति और दक्षिण पार्श्वमें विशाल वीरमूर्ति भक्ताभीष्टदाताके रूपमें अत्यन्त विख्यात है। श्रीजानकीजीके मन्दिरसे कुछ ही दूर पूर्वभागमें दक्षिणामूर्ति लघुमूर्ति हनुमानजी प्रतिष्ठित हैं। कहा जाता है कि उक्त हनुमन्मूर्ति काशीमें किसी श्रीरामभक्त सन्तको मिली थी। उन्होंने श्रीअवधमें किसी वैष्णव महात्माको अर्पित कर दी। कुछ काल व्यतीत होनेपर उन महात्माको हनुमानजीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि 'मुझे श्रीजानकी-जन्मभूमि सीतामही (सीतामढ़ी) में पहुँचा दो।' संयोगवश उन दिनों सीतामढ़ीके सात्त्विक गौड़ ब्राह्मण पण्डित बलदेवजी नामक कर्मकाण्डी तीर्थाटन करते श्रीअवध गये हुए थे। पूर्वोक्त महात्माने इनको योग्य अधिकारी समझकर यह मूर्ति इन्हें प्रदान कर दी। महात्माका प्रसाद जानकर इन्होंने उनके सङ्केतानुसार निजी व्ययसे निजी भूमिमें उस मूर्तिकी स्थापना की और अद्यावधि नियमितरूपसे इनकी विशेष अर्चा इन्हींके वंशज करते आ रहे हैं।

दक्षिणामूर्ति श्रीहनुमानजीका छोटा-सा दिव्य मन्दिर बड़ा ही सुहावना है। इसे सन्तजन सिद्धपीठ-भूमि कहते हैं। यहाँ रामजप, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, श्रीरामचरितमानस और हनुमानचालीसाके पाठसे सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है। श्रीजानकी-मन्दिर आनेवाले भक्तजन पहले इनका दर्शन करके ही यहाँ आते हैं।

—पं० श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल' कर्मकाण्डी

बंगाल-प्रान्तके प्रमुख श्रीहनुमान मन्दिर एवं उनके विग्रह

(लेखक—श्रीरामशरणजी निगम 'अखेद', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

कलकत्ता—हनुमानजीका सुप्रसिद्ध हनुमान-मन्दिर एवं सिद्ध-पीठ—महानगरी कलकत्तामें पदार्पण करते ही हावड़ाका पुल पार करनेके बाद हरीसन-रोडमें प्रवेश करके एक फर्लांग आगे बढ़नेपर सड़ककी बायीं ओर एक छोटी-सी गली है, जो 'हनुमान-गली'के नामसे प्रसिद्ध है। उसी गलीमें यह मन्दिर स्थापित है। केवल कलकत्तेका ही नहीं, अपितु सारे बंगालका अत्यन्त प्राचीन हनुमान-स्थल होनेके कारण यह एक प्रकारसे सिद्ध-पीठ माना जाता है। यहाँ दूर-दूरसे आये हुए दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ बराबर लगी रहती है। इस सिद्ध-पीठके हनुमानजी बड़े ही चमत्कारपूर्ण एवं फलदाता माने गये हैं, जो अपने श्रद्धालु भक्तोंकी कामना सदैव पूरी करते रहते हैं। असंख्य लोगोंको इनकी कृपाकी अनुभूति हुई है। इनकी स्थापना आजसे लगभग २०० वर्ष पहले जब कलकत्ता एक छोटा-सा गाँव था, तब एक संन्यासी महात्माद्वारा हुई थी। उन महात्माको हनुमानजी सिद्ध थे और अपने भक्तके इच्छानुसार स्वयं वसुधराके अन्तस्तलसे विग्रहरूपमें प्रकट हुए थे। ये संन्यासी अन्यप्रान्तीय थे एवं उनका शरीर पंजाबीका सा लगता था। सारे तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए जब वे यहाँ आये तो हनुमानजीने इन्हें यहीं अपनेको स्थापित करनेका स्वप्नादेश दिया। ये संन्यासी महात्मा जबतक जीवित रहे, तबतक उसी जगह उन्हींकी साधनोपासनामें लगे रहे।

तदनन्तर लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व इस मन्दिरका निर्माण स्थानीय धर्मबन्धुओंके सहयोगसे हुआ एवं हनुमानजीकी नित्य अर्चना-पूजा, भोग आदिकी समुचित व्यवस्था सुचारु ढंगसे की गयी, जो आज भी उसी रूपमें चल रही है। यों कलकत्तेमें खत्रियोंके अलग-अलग कई संगठन हैं—जैसे पूर्वी, पश्चिमी, पंजाबी पर इन हनुमानजीका कुछ ऐसा चमत्कार है, जो यहाँ सबको एक करके एक ही धागेमें पिरो दिया है। हनुमानजीकी सेवा-आराधनाके लिये समस्त खत्री-समाज एकमत हो गया—यह विलक्षण बात आज भी देखी जाती है।

मन्दिरमें हनुमानजीका 'संकट-मोचन' विग्रह है, जो सर्वाभीष्टदायक है। विग्रहमें हनुमानजीके मुखका ही दर्शन होता है। यह विग्रह किस धातु या प्रकारका बना है, आजतक अनेकों चेष्टाएँ होनेपर भी ज्ञात न हो सका। स्वयं प्रकट हुए विग्रहोंमें प्रायः यही विशिष्टता रहती है। मूर्ति प्रसन्न-मुद्रामें है एवं दर्शकोंको अपूर्व आत्मबल, साहस, शक्ति, अभय एवं शान्ति प्रदान करती है। बादमें इस मन्दिरमें अन्यान्य देवी-देवताओंके विग्रह भी स्थापित किये गये। जैसे—शीतलाजी, शेषशायी विष्णु, गणेशजी आदि।

सन् १९२८ ई०में मन्दिरकी निरन्तर उन्नति एवं सुचारु स्थायी प्रबन्धके लिये 'हनुमान टम्पल ट्रस्ट, १, हनुमान गली कलकत्ता-७' की स्थापना हुई, जिसमें योग्य एवं अधिकारी व्यक्तियोंको ही चुना जाता है।

यही नहीं, हनुमानजीकी असीम कृपासे इस मन्दिर एवं सिद्ध-पीठकी इतनी ख्याति एवं लोकप्रियता बढ़ गयी है कि आठ-दस वर्षोंसे हनुमानन्यासद्वारा प्रवर्तित हनुमान मन्दिर-साहित्य अनुसंधान-संस्थानद्वारा भारतके अनेक धर्मों, भाषाओं तथा बहुविध विकीर्ण शक्तियोंके समन्वयके द्योतक रूपमें हनुमदीय प्रतीकसे अङ्कित विद्यावृत्ति-प्रपत्र देशके तीन श्रेष्ठ साहित्य शिरोमणियोंको साढ़े बारह हजार रुपयकी राशिके साथ प्रतिवर्ष अर्पित किये जाते हैं। यही नहीं, यह सिद्ध-पीठ और भी कई प्रकारके जनहित-कार्योंमें संलग्न है। जैसे—

(१) अनुसंधान विभाग—जिसके द्वारा यहाँ साहित्यके अङ्गोंपर अनुसंधान करानेकी समुचित व्यवस्था है। इससे पी-एच्० डी० आदिके निमित्त शोधकार्यमें संलग्न बहुत-से व्यक्ति लाभान्वित हुए हैं एवं हो रहे हैं।

(२) निःशुल्क शिक्षालय—बी० ए० तथा एम्० ए० के हिंदी विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा देनेकी व्यवस्था।

(३) निःशुल्क पुस्तकालय।

(४) प्रकाशन और चित्र-संचय।

(५) कवि-सत्र—जिसके द्वारा राष्ट्रोन्मुख तथा धर्मोन्मुख काव्य प्रतिभाओंका चयनादि किया जाता है।

(६) प्रतिमास किसी विद्वान्‌द्वारा निबन्ध-पाठ और बादमें उसकी पुस्तकाकार छपाई।

(७) सुधी-वन्दना—इसके द्वारा प्रख्यात साहित्यकारोंकी अभ्यर्थना एवं प्रवचनकी व्यवस्था की जाती है।

(८) विद्यार्थी-सत्र—जिसमें साहित्यिक रुचि निर्माणके लिये छात्र-छात्राओंको नाना पुरस्कार दिये जाते हैं।

(९) महिला-सत्र—इसकी समय-समयपर बैठक होती है, जिसमें अन्त्याक्षरी, वाद-विवाद और भाषण-प्रतियोगिता आदिका आयोजन होते हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध-पीठ अपने नामको सार्थक करते हुए जनता-जनार्दनकी महती सेवासे अपनेको धन्य किये हुए है। इसी कारण यह मन्दिर केवल प्रेमी-समाजका ही नहीं, अपितु समस्त श्रद्धालु भक्तजनोंके प्रबल आकर्षण एवं श्रद्धाभावका केन्द्र बना हुआ है।

राजाकटराका सुप्रसिद्ध पञ्चमुखी हनुमान मन्दिर—दाराका पुलके सामने सुप्रसिद्ध राजाकटरामें सड़कके किनारे यह सुन्दर मन्दिर स्थित है, जिसमें श्रीहनुमानजीका पञ्चमुखी विग्रह स्थापित है। मूर्तिकी विशेषता यह है कि हनुमानजीका एक मुखारविन्द ऊपर आकाशकी ओर है एवं एक पीछे है, जो परिलक्षित नहीं होते, शेष तीनके दर्शन होते हैं। यह मूर्ति बड़ी ही भव्य, चित्ताकर्षक और नयनाभिराम है। इसके दर्शनमात्रसे अपूर्व बल एवं साहसका संचार होता है। यद्यपि इसे स्थापित हुए १२५ वर्षोंसे भी अधिक समय व्यतीत हो चुका है, तथापि दर्शन करनेसे ऐसा आभास होता है मानो अभी-अभी यह विग्रह कहींसे प्रकट हुआ है। विग्रहमें सदा एक-सा तेज तथा ताजगी बनी रहती है, यह इसकी सबसे विलक्षण एवं चमत्कारपूर्ण बात है। यह मूर्ति ऐसे पत्थरकी बनी हुई है, जो आजकल कहीं देखनेमें नहीं आता। यह विलक्षण मूर्ति जयपुरके एक कुशल शिल्पीद्वारा निर्मित हुई थी, जिसके दाहिने हाथकी तीन अँगुलियाँ बेकाम थीं। पहले तो उसने मूर्ति निर्माणके लिये अपनी असमर्थता प्रकट की, परंतु बादमें हनुमानजीने उसे स्वप्नादेश देकर कहा कि 'तुम काम आरम्भ करो। जबतक विग्रह प्रस्तुत नहीं हो जायगा, तबतक तुम्हारी अँगुलियाँ काम करेंगी एवं विग्रहके सम्पूर्ण होते ही पुनः वे बेकाम हो जायँगी।' और ऐसा ही हुआ भी।

यह विग्रह उस समय स्थापित हुआ, जब आजकी यह महानगरी कलकत्ता एक भूभागमें छोटा-सा गाँव था। मन्दिरके किनारे ही गङ्गा नदी बहती थी। गङ्गाका किनारा होनेसे रेती एवं दलदलके कारण दर्शनार्थियोंको कुछ असुविधा होती थी। जिसके लिये मन्दिरके तत्कालीन पुजारीने हनुमानजीसे प्रार्थना की। रातमें ही हनुमानजीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि 'घबरानेकी बात नहीं है। गङ्गा मैया स्वयं ही मन्दिरसे सदाके लिये एक-डेढ़ फर्लांग दूर हट जायँगी।' दूसरे ही दिनसे गङ्गाजी धीरे-धीरे पीछे हटने लगीं और एक मासके भीतर ही लगभग डेढ़ फर्लांग पूरबकी ओर बह गयीं एवं छोड़ा किनारेका भाग छोड़ दिया, जिसपर कालान्तरमें पक्की सड़क एवं मकानात बन गये। बादमें ही राजाकटरा बना। प्रारम्भमें श्रीविग्रहको हटवानेके लिये अधिक चेष्टाएँ हुईं, पर हनुमानजीकी इच्छा भक्तोंके हितार्थ यहीं रहनेकी थी। अन्ततोगत्वा सबको झुकना ही पड़ा। यहाँ श्रद्धालु दर्शनार्थियोंकी सदैव भीड़ लगी रहती है। मंगल और शनिवारको विशेष रूपसे तो मेला-सा लग जाता है। अपने भक्तोंकी मनोवाञ्छित फल देनेमें ये सारे कलकत्तामें विख्यात हैं। इनकी पूजा-अर्चना आदिकी भी व्यवस्था सुन्दर है। मन्दिरके एक कोनेमें एक प्राचीन शिव-लिङ्ग भी स्थापित है।

नवाब छत्रस्थित संकटमोचन एवं पञ्चमुखी हनुमानजीके अलग-अलग मन्दिर—स्टाण्ड-रोडस्थित राजाकटराके उत्तरकी ओर लगभग एक-डेढ़ फर्लांग आगे सड़ककी दाहिनी ओर नवाब लेनमें प्रवेश करते ही ये दोनों मन्दिर प्राप्त होते हैं। पहले मन्दिरमें हनुमानजीका संकटमोचन विग्रह लगभग ८०-८५ वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। यह विग्रह अत्यन्त सिन्दूरसे बराबर आच्छादित रहता है एवं इसके दर्शनसे अपूर्व उमङ्ग और उत्साहकी वृद्धि होती है। ये हनुमानजी भी अपने भक्तोंकी कामनाओंकी पूर्ति करनेमें विख्यात हैं एवं प्रत्येक संकट दूर करते हैं, ऐसा बहुधा देखा गया है। मन्दिरके एक कोनेमें श्रीकालीजीकी भी भव्य प्रस्तर-प्रतिमा विराजमान है।

इस मन्दिरके बगलमें ही एक अन्य पञ्चमुखी हनुमानजीका सुप्रसिद्ध मन्दिर है, जिसमें हनुमानजीका अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक, मनोहर एवं भव्य विग्रह लगभग ५० वर्षोंसे स्थापित है। मैंने भारतके बहुत-से हनुमान-मन्दिरोंके दर्शन किये हैं, पर ऐसा भव्य विग्रह आजतक अन्यत्र कहीं नहीं देखा। विग्रहमें हनुमानजीके पाँचों मुखारविन्द स्पष्टरूपसे परिलक्षित होते हैं।

यहाँ हयग्रीव, नरसिंह, वराह, कपिस्वरूप, गरुड एवं दशभुजाकी सुन्दर आकारवाली ऐसी प्रतिमा है। इनके हाथोंमें तलवार, त्रिशूल, चक्र, गदा, परशु, अभयमुद्रा, माला, कमण्डलु, तीर, कमान, कमल आदि हैं। हनुमानजीका यह विग्रह उस भावका परिचायक है, जब वे श्रीराम-लक्ष्मणको पातालसे अहिरावणके चंगुलसे छुड़ाकर लाये, जो उन्हें अपनी इष्टदेवीकी बलि चढ़ा रहा था। हनुमानजीके चरणारविन्दके नीचे देवी भी स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। ये हनुमानजी अपने साधक भक्तोंकी सर्वकामना-पूर्ति करते हैं, अतः इनके दर्शनार्थ दूर-दूरसे भी बहुसंख्यक लोग आते रहते हैं। इनके दर्शनमात्रसे दर्शकमें अपूर्व मानसिक बल, साहस एवं धीरता आदिका संचार होता है एवं वह आत्म-विभोर हो उठता है। इस चित्ताकर्षक एवं मनोरम विग्रहका निर्माण जयपुरके एक विख्यात शिल्पीने किया था, जो अन्धा था। उसके निर्देशानुसार जब कोई अन्य शिल्पी वैसी मनचाही प्रतिमाका निर्माण करनेमें समर्थ न हो सका, तब वह एवं भक्तगण—सभी निराश हो गये, क्योंकि दूसरा कोई वैसा निपुण कारीगर उस समय नहीं था और वह स्वयं लाचार था। तब भक्तोंके आग्रहपर हनुमानजीने उसे स्वप्नमें यह आदेश दिया कि 'जबतक तुम विग्रहके निर्माण कार्यमें संलग्न रहोगे, तबतक तुम्हारी आँखोंकी ज्योति बराबर कायम रहेगी। जब इस कामको छोड़कर अन्य काममें लगोगे तो यह ज्योति चली जायगी।' उसने जी-जानसे परिश्रम करके यह विलक्षण विग्रह प्रस्तुत किया।

विग्रहके स्थापित होनेके कुछ ही दिनों बाद एक चमत्कारपूर्ण घटना घटी। मन्दिरके तत्कालीन पुजारीको हनुमानजीने स्वप्नादेश दिया कि 'उनके विग्रहपर यज्ञोपवीत नहीं है, अतः स्वर्णका जनेऊ पहना दिया जाय।' स्वर्णके जनेऊमें अधिक सोना लगता, जिसका प्रबन्ध ब्राह्मण पुजारी निर्दिष्ट समयपर न कर सका। अतः उसने दीन एवं आतुर भावसे हनुमानजीसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! यह गरीब ब्राह्मण पुजारी कहाँसे इतना स्वर्ण प्राप्त कर सकेगा। आप ही बतायें, मैं क्या करूँ?' हनुमानजी अपने भक्तकी शुद्ध भक्तिसे प्रसन्न होकर बोले—'चिन्ता मत करो। यज्ञोपवीत अपने आप मेरे विग्रहसे प्रकट हो जायगा।' दूसरे दिन यही हुआ—विग्रहमें अपने-आप यज्ञोपवीत प्रकट हो गया। विग्रहपर एकाएक ऐसे जनेऊका बन जाना मानवीय शक्तिसे परे है। दूसरी महान् विस्मयकारी बात यह भी थी कि मूर्तिका वर्ण दूसरा एवं यज्ञोपवीतका वर्ण दूसरा। ऐसा यज्ञोपवीत यथास्थान प्रकट होकर एक महान् आश्चर्य उत्पन्न करता है।

श्रीजवरेश्वर हनुमानजीका मन्दिर—कलकत्ताके बड़ाबाजार एरियाके सुप्रसिद्ध सत्यनारायण पार्कके सामने जैन-कटराके बगलमें हनुमानजीका यह प्रसिद्ध मन्दिर लगभग ५० वर्षोंसे स्थापित है। विग्रह बहुत ही विशाल, भव्य एवं मनोहारिणी झाँकी उपस्थित करता है, जिसके दर्शनसे दर्शकको अपूर्व बल एवं साहस प्राप्त होता है। विग्रहके कंधोंपर भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण विराजमान हैं।

हनुमानजीका यह विग्रह अत्यन्त चित्ताकर्षक है एवं सोनेके वर्क (पत्रों) से बड़े आकर्षक ढंगसे सदैव भलीभाँति आच्छादित रहता है। प्रतिवर्ष वर्क (स्वर्ण-पत्र) बदल दिये जाते हैं। इनकी भी भक्तलोगोंमें बड़ी मान्यता एवं आस्था है। यहाँ भी दर्शनार्थियोंकी अधिक भीड़ रहती है एवं मन्दिरमें पाठादिका कार्यक्रम बराबर चलता रहता है। बहुत पहलेसे यहाँ महादेवजीके दो लिङ्ग 'जवरेश्वर महादेव' नामसे विराजमान हैं। बादमें जब यहाँ ५० वर्षों पूर्व हनुमानजीके विग्रहकी स्थापना हुई, तबसे यह मन्दिर 'जवरेश्वर हनुमानजी' के नामसे प्रसिद्ध हो गया।

यह विग्रह राजस्थानके सुप्रसिद्ध सालासरवाले हनुमानजीका ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। यहाँ भूत-प्रेतादि जनित बाधासे पीड़ित लोग भी आते हैं और कष्ट-मुक्त होकर लौटते हैं।*

---

* बंगालके अन्य हनुमान-मन्दिरोंके विषयमें प्रयास करनेपर भी उनका परिचय प्राप्त न हो सका।—सम्पादक

असम-प्रदेशके कुछ हनुमान मन्दिर

श्रीकमलाबारी-सत्र—शहरसे लगभग २५ किलोमीटर दूर ब्रह्मपुत्र नदीके उस पार महात्मा श्रीकमला कान्तद्वारा स्थापित कमलाबारी-सत्र है। यहाँ एक श्रीविष्णु मन्दिर और विशाल कीर्तन-घर है। इसमें सिंहासनपर भगवान्‌का वाङ्मय-स्वरूप श्रीमद्भागवत पुराण स्थापित है। इस वाङ्मय विग्रहके सम्मुख लगभग ६ फुट ऊँचा श्रीहनुमानजीका एक दारुमय श्रीविग्रह है। यह विग्रह लगभग दो सौ वर्ष पुराना निर्मित है और अत्यन्त प्रसिद्ध है।

—श्रीपरमेश्वर शर्मा[illegible]

मणिपुर—यहाँ एक मराठी आश्रम है, जो पुष्प एवं फलोंसे हरे-भरे वृक्ष-लता आदिसे सुशोभित है। उसीमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्राचीन फलदायक हनुमानजीका प्राचीन मन्दिर है जिसका निर्माण राजर्षि भूपतिराजद्वारा हुआ है। यहाँ बहुतसे साधु निवास करते हैं एवं यह सदा वानरोंसे घिरा रहता है। प्रति मंगलवारको एवं प्रत्येक पर्वके अवसरपर इन रुद्रात्मक श्रीहनुमानजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा-अर्चना होती है। इससे श्रद्धालु उपासकोंकी मनःकामनाएँ शीघ्र ही सिद्ध हो जाती हैं।

—श्रीराकेशीशर्मा [illegible]

चूमाथान-नागालैंड—यह स्थान असमप्रदेशके दीमापुर जिलेमें है। यहाँ बहुत वर्षों पहले बाबा शंकरदासजी त्यागी नामक एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। कहते हैं, इनको श्रीहनुमानजीके दर्शन हुए थे। जहाँ बाबाको दर्शन प्राप्त हुआ था, उसी स्थानपर आज श्रीहनुमानजीका विशाल मन्दिर बना हुआ है। यह सिद्ध स्थान है। यहाँ मनौती माननेसे लोगोंके दुःख दूर होते हैं।

उत्कल-प्रदेशके प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

श्रीजगन्नाथपुरी—(क) श्रीजगन्नाथ-मन्दिर—उड़ीसामें हनुमानजीकी उपासना बहुत दिनोंसे प्रचलित है। स्कन्दपुराणीय पुराण श्रीजगन्नाथजीका मुख्य पुराण है, उसमें भगवान्‌ने श्रीहनुमानजीको यह वर दिया है कि 'मेरे मन्दिर पुरुषोत्तम-क्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीमें मेरे अन्तरङ्ग भक्तके रूपमें स्थान मिलेगा और इस क्षेत्रमें घर-घरमें तुम्हारी पूजा होगी। केवल इतना ही नहीं, यहाँकी ध्वजापर भी वह सिद्ध बना रहेगा।' इसलिये श्रीजगन्नाथ मन्दिरके पूर्व द्वारपर फतेह हनुमान, पश्चिम द्वारपर चार हनुमान, उत्तर द्वारपर तपस्वी हनुमान और दक्षिण द्वारपर [illegible] हनुमान विद्यमान हैं। मन्दिरमें आनेवाले यात्रीगण हनुमानजीके इन विग्रहोंका दर्शन करते हुए भीतर जाते हैं।

(ख) श्रीमकरध्वज हनुमान—श्रीजगन्नाथपुरीके मुख्य मार्गपर श्रीमकरध्वज हनुमानजीका अत्यन्त विशाल मन्दिर है। इनके विषयमें एक किंवदन्ती है कि जब कामदेव इस देशमें प्रवेश करने लगा, तब उन्हें हनुमानजीसे युद्ध करना पड़ा तथा अन्तमें श्रीहनुमानजी विजयी हुए। इसलिये इनका नाम मकरध्वज हनुमान पड़ गया। इनकी एक मुख्य विशेषता यह है कि मूर्तिके एक हाथमें तलवार तथा दूसरेमें कामविजय प्रतीक स्वरूप विजय-ध्वज है। यहाँ श्रीहनुमानजीका दर्शन करनेसे हृदयका कामभाव निवृत्त होता है।

(ग) माता अञ्जना—श्रीजगन्नाथजीके प्रिय उद्यानमें, जिसे 'जगन्नाथवल्लभ उपवन' कहा जाता है, हनुमानजीकी माता अञ्जनादेवीका एक स्वतन्त्र मन्दिर है। उसमें माता अञ्जनाकी एक पाषाण-मूर्ति स्थापित है। उनका ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

> तप्तकाञ्चनवर्णाभां वानरास्यां शुभाननाम्।
> नानाभरणभूषाढ्यां वराभयकरान्विताम्॥
> सर्वसौभाग्यदात्रीं च पद्मासनगतां सदा।
> मरुन्नन्दनमातरं महाध्यानतपस्विनीम्॥

'तपाये हुए सुवर्णके समान जिनकी शरीरकान्ति है, जिनका अत्यन्त सुन्दर वानराकार मुख है, जो विविध प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके हाथ वरद एवं अभय मुद्रासे युक्त हैं, जो सम्पूर्ण सौभाग्यको देनेवाली, जिनका पद्मासनमें निवास करनेवाली और सदा महाध्यानमें लीन रहती हैं, उन हनुमान्‌की माता अञ्जनादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

(घ) श्रीगुरुग हनुमान—कहा जाता है कि श्रीजगन्नाथ मन्दिरसे अञ्जनादेवीतक एक गुप्त सुरंग है। उसी सुरंगके द्वारपर प्रायः ढाई फुट ऊँची आग्नेय हनुमान्‌की भव्य मूर्ति है। ये हनुमानजी श्रीजगन्नाथजीके उद्यानके रक्षक हैं। अक्षय तृतीयाके दिन जिस समय श्रीजगन्नाथजीकी प्रतिमूर्ति नौका-विहारके लिये उद्यानमें आती है, उस समय ये श्रीगुरुग हनुमानजीकी अनुमति लेकर ही उस उद्यानमें प्रवेश करते हैं।

भगवान् सर्वाभिमान् होते हुए भी इन हनुमानजीकी मर्यादा की सुरक्षा रखनेके लिये इस प्रकारका पालन करते हैं।

(ङ) श्रीकानपाता हनुमान—समुद्रका भीषण गर्जन श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके दर्शकोंके भजन तथा स्मरणमें बाधा दिया करता था। गर्जनकी उस भीषण ध्वनिको रोकनेके लिये भगवान्‌ने हनुमानजीको आदेश दिया। आदेश पाकर हनुमानजीने अपना विशाल रूप धारण किया और उस भीषण शब्दको रोक दिया। विशालकाय हनुमानजीके उस शरीरको भेदकर समुद्रका गर्जन-स्वर मन्दिरके भीतर प्रवेश न कर सका। यह एक सत्य बात है कि नगरके चारों ओर समुद्रका गर्जन होते हुए भी श्रीजगन्नाथजीके प्राचीरके अंदर यह शब्द सुनायी नहीं पड़ता। ये हनुमानजी श्रीजगन्नाथ मन्दिरके दक्षिण द्वारपर अवस्थित हैं और इनके विग्रहकी ऊँचाई लगभग १८ फुट है। इन्हीं बृहदाकार हनुमानजीको 'कानपाता हनुमान' या 'शब्दभेदी हनुमान' कहा जाता है।

(च) श्रीबेदी हनुमान (बेड़ीवाला हनुमान)—

पुरीके बेड़ी हनुमानकी बड़ी प्रसिद्धि है। इनको पुरीके लोग दरिया (हद) हनुमान कहते हैं। इनका इतिहास भी बड़ा अनोखा एवं रमणीय है। पहले समुद्रकी उत्ताल तरंग-मालाएँ बारबार श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र पुरीमें प्रवेश करके प्राचीन बस्तियोंको नष्ट कर देती थीं। इन बस्तियोंमें आगवण आङ्गिरसोंके प्रसिद्ध आश्रम थे। बार-बार समुद्रद्वारा क्षतिग्रस्त होनेपर उन्होंने श्रीजगन्नाथजीसे अपने संरक्षणार्थ प्रार्थना की। यह सुनते ही भगवान्‌ने हनुमानजीसे आनेवाली लहरोंको रोकनेके लिये कहा। महाविक्रमी हनुमानके चक्रतीर्थपर दण्डायमान होते ही समुद्र उनका उल्लङ्घन न कर सका। परंतु हनुमानजी कभी-कभी श्रीजगन्नाथजीके दर्शनार्थ चले जाते थे। उनके चले जानेपर समुद्र आङ्गिरसोंके स्थानको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया करता था। इसपर उन्होंने भगवान्‌से पुनः प्रार्थना की। तब श्रीजगन्नाथजीने एक स्वर्ण-शृङ्खला देते हुए उनसे कहा कि 'इससे आपलोग श्रीहनुमानजीको बाँध लें।' वास्तवमें श्रीहनुमानजीको कोई भी बाँध नहीं सकता परंतु वहाँके प्रत्येक भागमें 'राम-नाम' लिखा रहनेके कारण श्रीहनुमानजी उसे तोड़ न सके, जिससे चिरकालके लिये समुद्रकी सीमा निर्धारित हो गयी। चक्रतीर्थके निकट इन्हीं बेड़ी हनुमानजीका स्थान है।

(छ) श्रीसिद्ध हनुमान—इन सिद्ध हनुमानजीका इतिहास श्रीजगन्नाथजीके इतिहाससे ही गुम्फित है। 'इन्द्रनील-मणिपुराण'के वर्णनानुसार राजा इन्द्रद्युम्न जिस समय श्रीजगन्नाथ क्षेत्रके उन्मीलनके लिये आये, उस समय वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। यहाँतक कि वे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन पानेकी आशातक छोड़ चुके थे। उसी समय सहसा एक उज्ज्वल प्रकाश दिखायी पड़ा और उस प्रकाशसे वीर हनुमानजीने प्रकट होकर कहा—'मैं युग-युगसे इस मन्दिरकी रक्षा करता आ रहा हूँ। मेरे बलसे बलवान् होकर आप एक हजार हाथ ऊँचे एक मन्दिरका निर्माण कीजिये और उसीमें श्रीजगन्नाथजीकी प्रतिष्ठा कीजिये। मैं 'सिद्ध हनुमान'के रूपमें विख्यात होऊँगा। मेरे सिद्धाश्रममें रहकर आप पुरुषोत्तम-क्षेत्रके निर्माण हेतु यत्न कीजिये। जो लोग विपत्तिकालमें यहाँ सुन्दरकाण्डका पाठ करेंगे, उनके सब कार्य सिद्ध होंगे।' आज पुरी-क्षेत्रकी उत्तर दिशामें इन्द्रद्युम्न-सरोवर है। यहाँ सिद्ध महावीरजीका मन्दिर है। इसका निर्माण-कौशल तथा कारीगरी भी दर्शनीय है। इन्हीं हनुमानजीकी पूजा करके श्रीजगन्नाथ-मन्दिरका निर्माण किया गया था।

(ज) डबन्ता (उड़ते हुए) हनुमान—ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें श्रीसंतदास नामक एक श्रेष्ठ हनुमद्भक्त विद्यमान थे। उनकी उपासनासे एक महान् कार्य चमत्कारिक रीतिसे सम्पन्न हो गया। एक समयकी घटना है, भयंकर आँधी-तूफानके कारण श्रीजगन्नाथजीका विशाल नीलचक्र टेढ़ा हो गया। किसी भी कारीगरद्वारा उस नीलचक्रको पूर्ववत् कर सकना असम्भव-सा था। महात्मा श्रीसंतदासने कहा कि इस क्षेत्रके रक्षक श्रीहनुमानजीसे प्रार्थना करनी चाहिये। इसपर मन्दिरके सभी पुजारी तथा भक्तगणने हनुमानजीसे प्रार्थना की। तब अकस्मात् एक विशालकाय वानर कहींसे आया और उस वक्र नीलचक्रको मुहूर्तभरमें पूर्ववत् सीधा करके हुंकार करते हुए मन्दिरकी दक्षिण दिशाकी ओर कूद पड़ा। जिस स्थानपर वे हनुमानजी कूदकर अन्तर्धान हुए थे, उसी स्थानपर राजा श्रीप्रतापरुद्रने 'डबन्ता हनुमानजी'की स्थापना कर दी।

वस्तुतः सारे जगन्नाथ धाममें श्रीजगन्नाथजीके सेवकके रूपमें श्रीहनुमानजी पूजित होते हैं एवं यहाँका प्रत्येक व्यक्ति श्रीहनुमानका भक्त ही है।—पद्मभूषण श्रीसदाशिवजी रथ शर्मा

सिरुली—भुवनेश्वर-पुरी-सड़कपर स्थित चन्दनपुरसे लगभग १२ किलोमीटरकी दूरीपर सिरुली ग्राम है। इस ग्रामके पश्चिम भागमें महावीर हनुमानजीका मन्दिर अवस्थित है। 'सिरुली महावीर-मन्दिर' उड़ीसामें हनुमानजीका प्रसिद्ध मन्दिर एवं तीर्थ है। उड़ीसाके विभिन्न भागोंसे तीर्थयात्री एवं भक्त प्रायः प्रतिदिन हनुमानजीके दर्शन-पूजन एवं मनौतीके लिये यहाँ आते रहते हैं। लोगोंमें ऐसी दृढ़ आस्था एवं श्रद्धा है कि 'सिरुली महावीरजीके' दर्शनका अत्यन्त मङ्गलदायक प्रभाव होता है। इनकी प्रतिमा १० फुट ऊँची है। कहा जाता है कि यह प्रतिमा बहुत पुरानी

मार्ग अच्छा नहीं है। पर्वतपर एक गुफा-मन्दिर है, जिसमें माता अञ्जनी तथा हनुमानजीकी मूर्तियाँ हैं। कहते हैं कि माता अञ्जनीका निवास यहीं था।

माल्यवान् पर्वत (स्फटिकशिला)—विरूपाक्ष-मन्दिर से ४ मील पूर्वोत्तर माल्यवान् पर्वत है। इसके एक भागका नाम प्रवर्षणगिरि है। इसीपर स्फटिकशिला-मन्दिर है। हासपेट यहाँतक सीधी सड़क आती है। मोटरबससे सीधे स्फटिकशिला आ सकते हैं। श्रीराम-लक्ष्मणने वर्षाके चार महीने यहीं व्यतीत किये थे। इसी पर्वतपर लङ्कासे लौटकर श्रीहनुमान्‌जीने अशोक-वाटिकाकी मदिनी भगवती सीताके अनुसंधानका विवरण तथा उनका संदेश भगवान् श्रीरामको सुनाया था।

वाई—यह तीर्थ कृष्णानदीके किनारेपर है। यहाँ कृष्णा नदीपर अनेक घाट हैं। पञ्चवायाटपर गणेश्वर-शिव तथा मारुति-मन्दिर हैं। भानुघाटके पास ही मण्डपमें सिंहासन है, जिसमें उत्सवके समय श्रीकृष्णा (नदीकी अधिष्ठात्री देवी) की मूर्ति स्थापित की जाती है। इस स्थानके पीछे मारुति-मन्दिर है। धर्मपुरी मुहल्लेमें घाटपर रामेश्वर मन्दिर है। रामेश्वर-मन्दिरके उत्तर मारुति-घाट तथा मारुति-मन्दिर हैं। यहाँसे उत्तर दारेश्वर तथा दत्तात्रेय—ये दो मन्दिर और हैं। दत्त-मन्दिरके पश्चिम पञ्चमुख मारुति-मन्दिर और नागेश-मन्दिर हैं।

औंढ्या नागनाथ (नागेश)—द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें नागेश लिङ्ग यही है। बहुत-से विद्वान् सौराष्ट्रमें द्वारका (गोपीतालाब) के समीप स्थित नागनाथ-मन्दिरका नागेश-ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं, किंतु नागेशलिङ्गका दारुकावनमें होना वर्णित है। दारुकावन यही है। इस क्षेत्रमें ६८ तीर्थ थे, जिनमेंसे बहुत-से नष्ट हो गये हैं। जितने तीर्थ आजकल प्राप्त हैं, उनमेंसे एक तीर्थ श्रीहनुमानतीर्थ भी है।

भद्राचलम्—भद्राचलम् आन्ध्रप्रदेशमें वाईसे १९ मील दूर स्थित है। यह स्थान राजमहेन्द्रीसे ८० मीलपर गोदावरीके तटपर है। गोदावरीके तटके समीप एक प्राचीन श्रीराम-मन्दिर है, जो समर्थ श्रीरामदास स्वामीके द्वारा निर्मित हुआ बताया जाता है। श्रीरामके मुख्य मन्दिरके पास ही श्रीहनुमानजीका एक विशाल मन्दिर है। उसमें श्रीमारुतिकी स्थापना श्रीसमर्थके हाथसे हुई है, ऐसा कहा जाता है।

कूर्मक्षेत्र—यह स्थान आन्ध्रप्रदेशके श्रीकाकुलम्‌ नगरसे नौ मील दूरीपर है। यहाँ शालग्रामरूपमें भगवान् श्रीकूर्मराजकी अर्चना-उपासना होती है। इस मन्दिरको कूर्मविमान भी कहा जाता है। श्रीशंकराचार्यजी, श्रीरामानुजाचार्यजी एवं श्रीमध्वाचार्यजी यहाँ आ चुके हैं। इस क्षेत्रके चारों ओर आठ तीर्थ हैं। तीसरे तीर्थ श्रीचक्रतीर्थमें श्रीकूर्मराजका अवतार हुआ था। श्रीचक्रतीर्थमें श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। पद्मपुराणमें ऐसा उल्लेख आया है कि श्रीब्रह्माजीने श्रीनारदजीको यहाँ तप करनेके लिये कहा था, क्योंकि यह तीर्थ हनुमानजीद्वारा सुरक्षित है। कूर्मग्रामसे पुजारी नित्य यहाँ आकर श्रीहनुमानजीकी सेवा-पूजा करते हैं।

—श्री पी० बरारा

गुत्तेनदीवि—यह क्षेत्र पूर्व गोदावरी जिलेके मुम्मिडिवरम् ताल्लुकामें गोदावरी नदीकी एक शाखा भारद्वाजीके तीरपर स्थित है। यह छोटा-सा गाँव है। यहाँ श्रीआञ्जनेयजीका अत्यन्त प्रभावशाली विग्रह है। पहले जब उनके सिरपर श्रीसीतारामजी प्रतिष्ठित नहीं थे, तब वृद्धजनोंको ऐसा अनुभव होता था कि वे ताण्डव-नृत्य कर रहे हैं। उस समय दो या तीन माससे अधिक कोई भी पुजारी वहाँ पूजा नहीं कर पाता था। आजसे २५ वर्ष पूर्व श्रीसीतारामजीकी स्थापना करनेके बादसे अब श्रीहनुमानजी यहाँ शान्त होकर विराज रहे हैं। कहा जाता है कि यहाँपर इन हनुमानजीकी प्रतिष्ठा महर्षि गौतमने की थी। इनकी उपासना करनेसे भक्तोंको श्री एवं विद्याकी प्राप्ति होती है। —वास्तुपण्डित भास्कर श्रीरामकृष्णमाचार्युलु

औरंगाबाद—नगरके बिल्कुल मध्य बस्तीमें 'श्रीसुपारी हनुमान'का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसमें श्रीहनुमानजीकी बैठी हुई पूर्वाभिमुखी मूर्ति है। मारुतिके नेत्र चक्राकार होनेके कारण मुँहपर दीप्ति छायी रहती है, जिससे मूर्ति अत्यन्त भव्य लगती है। ऐसा कहा जाता है कि ये मारुति स्वयम्भू होनेके कारण पहले सुपारीके आकारके थे और धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते वर्तमान आकारको प्राप्त हो गये हैं। अतः ये 'श्रीसुपारी मारुति' कहलाते हैं। ऐसी भी सम्भावना है कि भावुक भक्तोंको पूजाके बाद प्रसादरूपमें सुपारीकी प्राप्ति होती थी, इस कारण इनका 'श्रीसुपारी मारुति' नाम पड़ गया। इनके प्रभावशाली होनेके कारण परीक्षा-स्वरूपमें आनेवाले विद्यार्थी छात्रोंकी भीड़ यहाँ अधिक संख्यामें होती है।

हम्पी—बेल्लारी जिलेके हम्पी नामक नगरमें एक हनुमान-मन्दिर स्थापित है। इस मन्दिरमें प्रतिष्ठित हनुमान जीको 'यन्त्रोद्धारक हनुमान' कहा जाता है। विद्वानोंके मतानुसार यही क्षेत्र प्राचीन किष्किन्धा है। यह श्रीराम चन्द्रजीके समयमें वानरोंका आवास-स्थान था। आज भी वे गुफाएँ प्राप्त हैं। इस मन्दिरमें श्रीरामनवमीके दिनसे लेकर सात दिनतक विशाल उत्सव होता है तथा गरीबोंको भोजन कराया जाता है।

कोरवार—यह हनुमान-मन्दिर कोरवार-क्षेत्रमें स्थित है। यह है तो एक छोटा मन्दिर, किंतु यहाँका उत्सव बहुत बृहद् होता है। श्रीरामनवमी तथा हनुमज्जयन्ती—दोनों अवसरोंपर ग्रामवासी बड़ी संख्यामें एकत्र होते हैं और उत्सव मनाते हैं।

कोल्हार—बीजापुर जिलेके कोल्हार ग्राममें कृष्णानदीके तटपर 'मायिन्दिनी हनुमान' स्थित हैं। यद्यपि यहाँका दृश्य वन्यप्रदेशके समान है, तथापि इस मन्दिरमें नित्य माध्व पूजापद्धतिके अनुसार श्रीहनुमानजीकी पूजा होती है।

मणूर—यहाँके श्रीहनुमान-मन्दिरकी स्थापना श्रीकृष्ण द्वैपायनाचार्यने की थी। यह मन्दिर मणूर-क्षेत्रमें भीमानदी (जिसे चन्द्रभागानदी भी कहा जाता है)के तटपर अवस्थित है। यहाँ भी हनुमज्जयन्तीके अवसरपर रथोत्सव आदि कार्यक्रम होते हैं।

मन्त्रालय—कर्नाटकके मन्त्रालय नामक अति प्रसिद्ध ग्राममें 'श्रीपञ्चमुखी हनुमान'का एक भव्य मन्दिर है। स्वामी श्रीराघवेन्द्र तीर्थजीने इस मन्दिरको स्थापित किया था। यहाँका पूजा-महोत्सव बहुत आकर्षक होता है। ये श्रीहनुमानजी इष्टफलप्रदायक कहे जाते हैं।

अगरखेड़ क्षेत्र—कर्नाटकके अगरखेड़ ग्राममें भीमा नदीके तटपर एक मारुति मन्दिर है। मन्दिर अत्यन्त छोटा है, किंतु यहाँ दर्शनार्थियोंका जमघट लगा रहता है।

दोड्डदारापुरम्—कोयम्बटूर जिलेके दोड्डदारापुरम् ग्राममें एक आञ्जनेय-मन्दिर है। यह मन्दिर अपने आपमें एक विशेष स्थान रखता है। इसमें श्री हनुमानजीकी जो मूर्ति प्रतिष्ठित है, वह इतनी विशाल है कि सीढ़ी लगाकर अभिषेक करना पड़ता है। इस विशाल मूर्तिकी पूजा माध्वपद्धतिके अनुसार ही होती है। यहाँ हनुमज्जयन्तीके अवसरपर दशदिनसीय उत्सव मनाया जाता है और नित्य प्रसाद वितरण होता है। यहाँका रथोत्सव बड़ा ही मनोरम होता है।

यसवनगुड़ीक्षेत्र—कर्नाटकके यसवनगुड़ी ग्राममें हनुमानजीका एक मन्दिर है। इस मन्दिरकी स्थापना द्वैताचार्य स्वामी श्रीव्यासरायजीके द्वारा हुई है। इसमें जो मूर्ति प्रतिष्ठित है, उसका मुँह दक्षिणकी ओर है और उसकी पूँछमें स्वर्णकी घंटी लगी हुई है। यहाँ भी श्रीरामनवमीको बृहद् उत्सव होता है।

शोलंगीपुरम् क्षेत्र—तमिळनाडु प्रदेशके शोलंगीपुरम् क्षेत्रमें एक पहाड़ीपर हनुमानजीका मन्दिर है। इन हनुमानजीको 'योग हनुमान'के नामसे सम्बोधित किया जाता है।

शियाली क्षेत्र—चिदम्बरम् जिलेसे यह स्थान बारह मील दूर है। यहाँका हनुमान-मन्दिर अति प्रसिद्ध है। इस मन्दिरकी पूजा-व्यवस्था आदि माध्वलोगोंद्वारा ही होती है।

कुत्तालम—मायवरम् जिलेके कुत्तालम ग्राममें हनुमानजीकी एक प्राचीन प्रतिमा है। किंवदन्तियाँ हैं कि इस प्रतिमाकी स्थापना श्रीमन्मध्वाचार्यने ही की थी। मन्दिरमें नित्य माध्व-रीतिसे पूजा होती है और हनुमज्जयन्तीपर विशेष शृङ्गार किया जाता है।

मध्यार्जुनम्—तंजौर जिलेके तिरुविडैमरदूर कस्बेमें एक छोटा-सा हनुमानजीका मन्दिर है। इस मन्दिरकी पूजा द्वैत-सम्प्रदायानुसार होती है। यहाँ भी श्रीरामनवमीको उत्सव आदि होते हैं। —भाऊ आचार्य टोणपे

मजरथ—श्रीहनुमानजीने अपनी विमाताको मार्जारी रूपसे यहाँ विमुक्ति दिलायी थी, इसी कारण यह मार्जारक्षेत्र कहलाता है। यहाँ फेना तथा गोदा नदियोंके संगमपर वृषाकपि, सोमेश्वर, हनुमदीश्वर, गणेश तथा त्रिविक्रमजीके विशाल मन्दिर हैं। मन्दिरमें मार्जारी प्रतिमा है। मार्जार हत्या दूर करनेवाला यही एक क्षेत्र है। औरंगाबादसे मानमाडके लिये बस मिलती है। माजलगाँवसे मंजरथ उत्तर दिशामें ६ मील दूर है। यह एक महत्त्वपूर्ण हनुमत्तीर्थ है।

—श्रीगोविन्द राजाराम जी जोशी

स्वयंप्रभा-तीर्थ—शंकरनयनार्कोइल्से १३ मील आगे पट्टयनल्लूर स्टेशन है। स्टेशनसे लगभग आधा

यह खेद था कि रावण ब्राह्मण था। उसे और उसके कुलके लोगोंको मारना ब्रह्महत्याके पापके समान ही हुआ।' इसका प्रायश्चित्त जाननेके लिये भगवान्‌ने समुद्रपार अगस्त्यजीके आश्रमके पास विमानको उतार दिया। अगस्त्यजीके आदेशसे रावण-वधके प्रायश्चित्तस्वरूप प्रभुने शिव-लिङ्गके स्थापनका निश्चय किया और हनुमानजीको कैलासपर दिव्य लिङ्ग-मूर्ति लानेके लिये भेजा। हनुमानजी कैलास गये, किंतु उन्हें भगवान् शंकरके दर्शन नहीं हुए। इससे वे तप करते हुए भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे। अन्तमें भगवान् शंकर प्रकट हुए और उन्होंने हनुमानजीको अपनी दिव्य लिङ्ग-मूर्ति दी।

इधर मूर्ति-स्थापनाका मुहूर्त बीता जा रहा था। श्रीजानकीजीने क्रीडापूर्वक बालुका एक लिङ्ग बना लिया था। ऋषियोंके आदेशसे श्रीरघुनाथजीने उसीको स्थापित कर दिया। वही श्रीरामेश्वर लिङ्ग है, जिसे स्थानीय लोग श्रीरामनाथलिङ्गम् भी कहते हैं।

श्रीहनुमानजी लौटे तो उन्हें एक अन्य लिङ्गकी स्थापनासे बड़ा खेद हुआ। इससे प्रभुने कहा—'तुम यदि मेरे द्वारा स्थापित लिङ्गको हटा सको तो मैं तुम्हारा लाया लिङ्ग विग्रह ही यहाँ स्थापित कर दूँ।' हनुमानजीने श्रीरामेश्वर लिङ्गको अपनी पूँछसे लपेटकर उसे उखाड़नेका पूरा प्रयत्न किया, किंतु वे सफल नहीं हुए। उलटे पूँछका बन्धन खिसक जानेसे वे दूर जा गिरे और मूर्च्छित हो गये। श्रीजानकीजीने उन्हें सचेत किया।

भगवान् श्रीरामने कहा—'जानकीजीद्वारा निर्मित और मेरेद्वारा स्थापित मूर्ति तो अविचल है, वह हटायी नहीं जा सकती। तुम अपनी लायी मूर्ति उसीके पास स्थापित कर दो। जो तुम्हारेद्वारा लायी हुई मूर्तिका दर्शन नहीं करेगा, उसे श्रीरामेश्वर-दर्शनका फल नहीं प्राप्त होगा।' हनुमानजीने कैलाससे लायी हुई मूर्ति वहीं स्थापित कर दी। भगवान्‌ने उसका पूजन किया। वही मूर्ति काशी विश्वनाथ (हनुमदीश्वर)के नामसे प्रसिद्ध है।

हनुमत्कुण्ड—गन्धमादन-पर्वतपर श्रीरामेश्वर-मन्दिरसे उत्तर-पश्चिम तीन फर्लांगपर हनुमत्कुण्ड है। इसको श्रीहनुमानजीने बनाया था। भगवान् श्रीरामचन्द्र रावणका वध करके लंकासे यहींपर आये थे। उनकी सेनाने इसी स्थानपर युद्धजनित श्रम दूर करनेके लिये विश्राम किया था। ऐसी जनश्रुति है कि जो स्त्री पुत्रकी कामनासे इस पवित्र कुण्डमें स्नान करती है, वह अवश्य ही पुत्र-रत्न प्राप्त करती है। इस सम्बन्धमें एक लोकविश्रुत प्राचीन आख्यान है—

प्राचीन कालकी बात है। अत्यन्त नीतिज्ञ, प्रजापालक, शत्रुविजयी एवं परम धार्मिक एक धर्मसख नामक प्रख्यात नरेश राज्य करते थे। नरेशके सौ विवाह किये, किंतु उन्हें कोई संतान न हुई। धीरे-धीरे राजाकी आयु ढलने लगी और राज्यके उत्तराधिकारीके बिना वे अत्यधिक चिन्तित रहने लगे।

एक दिन नरेशने विद्वान् ब्राह्मणों एवं दैवज्ञोंको बुलाकर उनके सम्मुख अपनी चिन्ता इस प्रकार व्यक्त कर दी—'पूज्यचरण द्विजवरो! संतान प्राप्तिकी कामनासे मैंने सौ विवाह किये, किंतु मेरी किसी भी पत्नीसे कोई संतान नहीं हुई। अब मेरी वृद्धावस्था आ चली है और राज्यका कोई उत्तराधिकारी नहीं है। अतएव मेरी प्रत्येक पत्नी एक-एक योग्यतम पुत्र प्राप्त कर ले, इसके लिये कृपापूर्वक कोई यत्न बतलाइये। एतदर्थ मैं प्रत्येक व्रत, उपवास एवं कठोरतम तपश्चरणके लिये प्रस्तुत हूँ।'

समस्त ऋत्विज एवं पुरोहितोंने गम्भीर मन्त्रणाके अनन्तर राजा धर्मसखसे कहा—'राजन्! दक्षिण सागरके मध्य सेतुके रूपमें गन्धमादन नामक पर्वत है। वहाँ दुःख-दारिद्र्यका नाश एवं समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला मोक्षप्रदाता हनुमत्कुण्ड है। वहाँ मन एवं इन्द्रियोंको संयमितकर स्नानोपरान्त सविधि पुत्रेष्टि-यज्ञ करनेसे तुम्हारी पत्नियोंको एक-एक पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है। उस कुण्डकी अमित महिमा है।'

महाराज धर्मसख अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे यज्ञोपयोगी सामग्रियोंसहित अपनी पत्नियों, मन्त्रियों और सेवकोंके साथ गन्धमादन पर्वतके लिये प्रस्थित हुए। वहाँ जाकर उन्होंने श्रद्धा-विश्वासपूर्वक हनुमत्कुण्डमें स्नान किया। वे अपनी स्त्रियों आदिके सहित उस पवित्र कुण्डमें प्रतिदिन स्नानकर श्रीपवनकुमारका स्मरण एवं उनके चरणोंकी वन्दना करने लगे। चैत्र मास आनेपर नरेशने विधिपूर्वक पुत्रेष्टि-यज्ञका संकल्प ग्रहण किया। पुरोहित और ऋत्विजोंके शुभ सहयोगसे यज्ञ-कर्म विधिवत् सम्पन्न हुआ। तदनन्तर पुरोहितने हवनसे बचे हुए हविष्यको नरेशकी समस्त पत्नियोंको ग्रहण करनेके लिये दे दिया। धर्मपरायण नरेश धर्मसखने अपनी

लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये। तब जाम्बवान् और सुषेणने श्रीमारुतिको धवलागिरिसे ओषधि लानेके लिये प्रेरित किया। श्रीमारुतिने धवलगिरिको ही उखाड़ लिया। उसे लेकर आते समय उसका एक भाग यहाँ गिर पड़ा, वही यह जटेश्वरकी पहाड़ी है। इस पहाड़ीपर अनेक ओषधियाँ मिलती हैं, यहाँके मुख्य देवता श्रीहनुमानके होनेका यही कारण है। कालान्तरमें श्रीराम मन्दिर भी बन गया।

सुर्जी अंजनगाँव—विदर्भमें अमरावती नगरीसे पश्चिम पचास मीलकी दूरीपर यह गाँव है। इस गाँवमें शहानूर नदीके तटपर देवनाथ मठ है। १७०० शक-संवत्के लगभग श्रीदेवनाथ महाराज नामक एक सिद्ध महापुरुषने इस मठको स्थापित किया था। श्रीदेवनाथ महाराजके महान्‌ श्रीहनुमानजी आराध्य देव थे। इन्हें मारुतिका अवतार माना जाता था। मारुतिके आदेशानुसार उन्होंने गत एकनाथ महाराजकी गद्दीके तत्कालीन महापुरुष श्रीगोविन्दनाथ महाराजपर अनुग्रह किया था। यहाँके मठमें श्रीचार मारुतियोंकी स्थापना इन्होंने ही की थी। इस क्षेत्रमें हनुमानजीका यह स्थान तभीसे प्रसिद्ध है। मठमें और भी कई देव-विग्रह हैं।

सांगली—सांगली रेलवे-स्टेशनसे दो मीलकी दूरीपर कृष्णा नदीके विष्णुघाटपर हनुमानजीका एक मन्दिर है, इसका नाम तपोवन हनुमानजी-मन्दिर है। यह मन्दिर प्रायः ३०५ वर्ष पूर्वका है। इसका द्वार पूर्वाभिमुख है और सामने कृष्णाका प्रवाह है। श्रीहनुमानजीकी मूर्ति लगभग १५ इंच ऊँची है। इस मूर्तिकी स्थापना श्रीरामदास-पञ्चायतनके श्रीआनन्दमूर्तिजीने १९९१ शकाब्दके भाद्रपद मासमें की थी। श्रीरामदास-पञ्चायतनमें १—श्रीसमर्थ रामदास स्वामी, २—जयराम स्वामी, ३—रंगनाथ स्वामी, ४—केशव स्वामी और ५—आनन्दमूर्ति थे।

अष्टे—सांगलीसे १८ किलोमीटरकी दूरीपर अष्टे (या अष्टा) है। यहाँके मन्दिरमें हनुमानजीकी मूर्ति प्राचीन होते हुए भव्य भी है। वह दक्षिणाभिमुख है और लगभग साढ़े पाँच फुट ऊँची, साढ़े तीन फुट चौड़ी और खड़ी है। मूर्तिका दाहिना हाथ कमरसे कुछ ऊपर स्थित है, बायाँ हाथ अभय-मुद्रामें है, मानो मारुति भक्तजनोंको अभय वरदान दे रहे हैं। श्रीमूर्तिकी मुद्रा तेजस्वी और गम्भीर है। इस मूर्तिकी स्थापना लगभग ७०० वर्ष पूर्व की गयी होगी। हनुमानजीका मन्दिर अत्यन्त विशाल आकारका है, इसकी बनावट चौकोर है और सम्पूर्ण मन्दिर पत्थरका बना हुआ है। मन्दिरका ऊपरी भाग छतानुमा होनेके कारण उसके ऊपर कलश नहीं है। लोगोंका विश्वास है कि ग्यारह शनिवारतक इनकी प्रदक्षिणा करने और रुईकी माला चढ़ानेसे मनुष्यकी मन कामना पूरी होती है।

बेलगाँव—यहाँसे चार-पाँच मीलकी दूरीपर श्रीमाल-मारुतिका सुप्रसिद्ध हनुमान-मन्दिर है। इस मन्दिरमें हनुमानजीकी पुरानी स्वयम्भू मूर्ति है। ये मारुति मनौती पूर्ण करते हैं, ऐसी लोगोंकी दृढ़ धारणा है। बेलगाँव और आस-पासकी बड़ी-बड़ी मण्डलियाँ नित्य नियमसे इन मारुतिके दर्शनके लिये जाती हैं।

चण्डकापुर—हुमणाबाद (गुलबर्गा)के समीप चण्डकापुर गाँवमें, जहाँ बस खड़ी होती है, हनुमानजीकी एक खुली मूर्ति है। यह मूर्ति इतनी विशाल एवं आकर्षक है कि एक मीलकी दूरीसे ही दीख पड़ती है। मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है।

बारामती, मल्हद और गुणवडी—इन तीन गाँवोंकी सीमापर श्रीमारुतिका स्थान होनेसे यहाँके श्रीहनुमानजी 'सिवानेके मारुति' या 'मल्हद मारुति'के नामसे पुकारे जाते हैं। यहाँ पूनासे आनेमें सुविधा है। श्रीहनुमानकी यह मूर्ति लगभग दो फुट ऊँची एवं पूर्वाभिमुखी है। इनके एक हाथमें गदा है और दूसरा हाथ ऊपर उठा हुआ है। मूर्ति छोटी होनेपर भी आकर्षक है। यह मारुति-मन्दिर अत्यन्त प्राचीन जान पड़ता है। मन्दिरमें पीपल-वृक्षके नीचे एक गुफा है, जिसमें एक नाग रहता है। यात्रियोंका कथन है कि महाराज ही नागरूपमें प्रकट होते हैं। इसके पीछे कन्हा नदी दक्षिण-वाहिनी होकर आगे जाती है।

सिवानेवर (सिवेदर)के इन मारुतिकी स्थापना श्रीसमर्थ रामदास स्वामीके पट्टशिष्य श्रीकल्याण स्वामीने की थी। श्रीकल्याण स्वामीके पट्टशिष्य श्रीरामानन्द स्वामीने इस देवस्थानका निर्माण कराया था। इन स्वामीजीकी समाधि गाँवके श्रीराम-मन्दिरमें है। 'मल्हद मारुति'के मन्दिरमें एक सुरंग होनेके कारण ... सीधे श्रीराम-मन्दिरमें निकलते थे, ऐसा कहा जाता है। यह स्थान प्रभावशाली है। दुष्काल...

राय दी कि यदि श्रीहनुमानजीकी मन्दिरपर छत बनानेकी इच्छा न हो तो रहने दो। पर यन्त्र हठ कर गया। उसने वन्नेवाले हनुमानजीके शिरपर कील ठोंक दी। तबसे श्रीहनुमानजीका ऊँचा बढ़ना रुक गया। इससे उद्देश्य तो सफल हो गया और मन्दिर भी पूर्ण हो गया परन्तु उसके बाद उस यन्त्रके घर तरह-तरहके उपद्रव होने लगे और अन्तमें उसका वंश ही समाप्त हो गया।

पुरुसा—अमरावती जिलेके मोर्शी तालुकामें यह एक गाँव है, जो बेल नदीके किनारे बसा है। यहाँ बेलनदीके तटपर ही श्रीहनुमानकी विशिष्ट मूर्ति है। मूर्ति लगभग पाँच फुट ऊँची, गदाधारी और भव्य है। यह मूर्ति सन् १९०८ ई० में बेल नदीसे प्राप्त हुई थी। मूर्तिको नदीके किनारेसे गाँवमें लानेके लिये गाँववालोंने बहुत प्रयत्न किया, पर उन्हें सफलता न मिली। कितना भी प्रयत्न करनेपर मूर्ति अपनी जगहसे न हिली। उसे रखनेके लिये १०-१२ फुट ऊँचा एक चबूतरा बनवाया गया था। अन्तमें सायंकाल हो जानेपर मूर्तिको छोड़कर वे लोग वापस चले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल गाँववालोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि अनेक आदमियोंके सम्मिलित प्रयत्नसे भी जो मूर्ति अपनी जगहसे टस-से-मस नहीं हो रही थी, वह आज चबूतरेपर विराजमान है। यह चमत्कार देखकर गाँववाले आनन्दित हो उठे तथा विधिपूर्वक मूर्तिकी पूजा अर्चा की। तत्पश्चात् एक और चमत्कार गाँववालोंके देखनेमें आया। श्रीमारुतिकी भव्य मूर्तिकी कमरसे ऊपरका भाग प्रत्येक ३३ मिनटपर हिलता हुआ दीखने लगा। केवल कमरसे नीचेका भाग स्थिर था। इस चमत्कारका रहस्य खुल न सका, परंतु इस समाचारसे श्रद्धालुओंकी श्रद्धा और संख्या—दोनों बढ़ गयीं।

भाणगाँव—इस स्थानको श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती तथा श्रीटेंबे स्वामीके जन्मस्थान तथा निर्वाणभूमि होनेका गौरव प्राप्त है। यहीं टेंबे स्वामीका बनवाया हुआ दत्त-मन्दिर है। इसीके अहातेमें मन्दिरके सामने ही पीपल-वृक्षके नीचे श्रीआजरेकर बुवाद्वारा स्थापित श्रीहनुमानजीकी मूर्ति विराजित है। पहले वह मूर्ति छोटी होनेके कारण दबी हुई थी परंतु पीछे श्रीटेंबे स्वामीने पर्दा खड़ा कर दिया। श्रीआजरेकर बुवाको श्रीहनुमानजीका अवतार माना जाता है। वे भावावेशमें एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर कूद जाते थे और सिन्दूर प्राशन करते थे। श्रीटेंबे स्वामीके ऊपर उनका बड़ा प्रेम था। उन्हींके लिये उन्होंने श्रीमारुति-मन्दिरकी स्थापना की और सकल निर्माणका भार भी उन्हींको सौंप दिया।

रामवायली—भण्डारा जिलेमें तुमसर-बाराशिवनी मार्गपर चनई नदीके किनारे यह एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँवमें नदीके किनारे भगवान् श्रीरामका पुराना मन्दिर है, उसके निकट हनुमानजीका अति प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि इसी भूभागमें श्रीरामचन्द्रजीने शबरीको दर्शन दिया था। भगवान् श्रीरामके पाद-स्पर्शसे पुनीत होनेके कारण यह गाँव पहले 'राम-पायावली' नामसे प्रसिद्ध था। यहाँकी हनुमान-मूर्ति अत्यन्त प्रभावशाली है। इसकी विशेषता यह है कि मूर्तिका एक पैर लँगड़ा है और दूसरा पैर भूमिमें गहराईतक धँसा हुआ है। इसका पता लगानेके लिये लोगोंने उसके पासकी भूमि खोदी थी, परंतु कुछ पता न लग सका। इसी कारण यहाँके मारुतिको लोग 'लँगड़ा मारुति'के नामसे पुकारने लगे।

माल्शिरस—यह स्थान सोलापुर जिलेमें है। यहाँ श्रीमारुतिका भव्य और प्रख्यात मंदिर है। इसमें स्थापित श्रीहनुमानजीकी मूर्ति लगभग साढ़े चार फुट ऊँची है। मन्दिरके पास ही कुआँ है। इस गाँवके पाटील हनुमानजीके परम भक्त थे। कहा जाता है कि तत्कालीन किसी वरिष्ठ सरकारी अधिकारीने अधिक रात्रि व्यतीत हो जानेपर पाटीलसे एक लोटा दूधकी माँग की। उस समय दूधका मिलना सम्भव न था। अन्तमें पाटीलने श्रीमारुतिके बलपर कुएँसे एक लोटा पानी निकालकर अधिकारीके पास भेज दिया। आश्चर्यकी बात है कि वह पानी दूध हो गया। इससे प्रभावित होकर उस अधिकारीने मन्दिरपर स्वर्ण-कलश लगवा दिया और पूजा-अर्चाके निमित्त कुछ वृत्ति भी नियत कर दी। यहाँ हनुमज्जयन्तीका उत्सव बड़े समारोहसे मनाया जाता है।

निंबरगी—पंढरपुर रेलवे-स्टेशनसे लगभग चालीस मीलकी दूरीपर यह स्थान है। पंढरपुरसे यहाँतक बस जाती है। गाँवके पास नदीके किनारे एक परकोटा है। उसके भीतर मन्दिर है। मंदिरमें भगवान् श्रीरामकी मूर्ति है। उसके समीप ही शिवलिङ्ग स्थापित है। लोगोंकी धारणा है कि यह स्वयम्भू-लिङ्ग है। कहा जाता है कि श्रीरामकी मूर्ति और

है। मूर्ति विलक्षण चमत्कारपूर्ण है। हिंदुओंके अतिरिक्त पारसी, मुसलमान, सिख और ईसाई भी इनकी आराधना करते हैं। चैत्र पूर्णिमा, रामनवमी और दीपावलीको यहाँ विशेष उत्सव मनाया जाता है।

हनुमान टेकरी—शान्ताराम तालावके सामने (वेस्टर्न एक्सप्रेस हाई वे-मलाड बम्बई (ईस्ट ६४) यह स्थान 'संकट मोचन विजय हनुमान टेकरी'के नामसे विख्यात है। इस मन्दिरकी स्थापना १९४२ ई०के लगभग हुई थी। यहाँका वातावरण शान्त है। १०४० साधु-संत प्राय यहाँ सदा रहते हैं। मासमें एक-दो बार सौ-डेढ सौ व्यक्तियोंको भोजन भी कराया जाता है। बम्बईमें पञ्चमुखी हनुमान, चिंचोली हनुमान आदि कई अन्य प्रसिद्ध मन्दिर भी हैं। —भँवरलाल लोहिया

समर्थ श्रीरामदासद्वारा स्थापित एकादश श्रीहनुमान-मन्दिर

(लेखक—श्री म० स० मोकम)

समर्थ श्रीरामदास स्वामीने सम्पूर्ण भारतवर्षकी पद-यात्रा की थी। अपने इस बारह वर्षकी पद-यात्रामें उन्होंने स्थान-स्थानपर श्रीरामजी तथा श्रीहनुमानजीके मन्दिरोंकी स्थापना करते हुए विधर्मी शासनके दमनसे हतप्रभ तथा निराश हिंदू जनताको श्रीहनुमानजीकी उपासनामें लगाकर उसमें शौर्य-सम्पादनकी भूमिका प्रशस्त कर दी तथा स्वधर्म, स्वराष्ट्र, स्वतन्त्रताका साक्षात्कार कराया। स्थान स्थानपर श्रीहनुमान मन्दिरों एवं मठोंकी स्थापना करनेका अभियान महाराष्ट्र मात्रके लिये ही सीमित नहीं था, अपितु आसेतु हिमाचल व्यापी था। अपने परिभ्रमणमें समर्थ श्रीरामदासजीने यद्यपि अयोध्यासे लेकर रामेश्वरम् तक अनेक श्रीहनुमान-मन्दिरोंकी स्थापना की है, तथापि महाराष्ट्रके अन्तर्गत उनके द्वारा स्थापित मन्दिरोंकी संख्या बहुत अधिक है। उनमेंसे निम्नलिखित एकादश श्रीहनुमान मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं—१—श्रीमारुति—शहापुर, २—श्रीमारुति—मसूर, ३—श्रीप्रतापमारुति—चाफल, ४—श्रीदास-मारुति—चाफल, ५—श्रीमारुति—उम्ब्रज, ६—श्रीमारुति—शिराले, ७—श्रीमारुति—मनपाडले, ८—श्रीमारुति—पारगाँव, ९—श्रीमारुति—माजगाँव, १०—श्रीमारुति—शिंगडवाडी, ११—श्रीमारुति—बहे-बोरगाँव। ये सभी श्रीहनुमान-मन्दिर महाराष्ट्रके सतारा जिलेमें हैं। इन मन्दिरोंकी स्थापना शक १५६७से लेकर १५७१ तककी कालावधिमें ही हुई है।

श्रीसमर्थद्वारा स्थापित एकादश श्रीहनुमान-मन्दिरोंमें टाकली, सज्जनगढ़, मिरज, महाबलेश्वर, वाई, सजावर, टेम्भू, शिरगाँव, इन्दौर आदि स्थानोंके श्रीहनुमान-मन्दिरोंकी गणना नहीं है, फिर भी इनका अपना निजी महत्त्व है।

१—चुनयाके श्रीहनुमान—शहापुर—बाजीपंत कुल्कर्णीकी पत्नी सईबाईकी निष्ठाको देखते हुए १५६७ शक-संवत्में श्रीसमर्थने शहापुरके अन्तर्गत चुनयाके श्रीहनुमानकी स्थापना की। इसके पीछे एक संक्षिप्त इतिहास भी है। समर्थ श्रीरामदास शहापुर स्थानपर ठहरे हुए थे। एक दिन उन्होंने बाजीपंत कुल्कर्णीके द्वारपर जाकर 'जै जै रघुवीर समर्थ'का उद्घोष करते हुए भिक्षा माँगी। इसके प्रत्युत्तरमें सईबाईने कहा—'भरे-पूरे घरके सम्मुख आप इस आशयके अनिष्ट उद्गार व्यक्त न करें।' यह क्रम सतत कई दिनोंतक चलता रहा। एक दिन उस घरके अंदर चिन्ताजनक वातावरण देखकर श्रीसमर्थने पूछ-ताछ की। तब उन्हें पता चला कि लगानके हिसाबके प्रश्नको लेकर यवन शासक बाजीपंतको पकड़कर बीजापुर ले गया है, इसके कारण परिवारमें घबराहट परिव्याप्त है। श्रीसमर्थने सईबाईसे इस आशयका आश्वासन माँगा कि यदि बाजीपंत छूटकर आ गये तो वह श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना करेगी। सईबाईके वचन देनेपर उन्होंने पाँच दिनके भीतर पतिके कारागारसे मुक्त हो जानेका उसे आश्वासन दिया। उसीके अनुसार बाजीपंतका छुटकारा भी मिल गया। घर लौटनेपर बाजीपंत को सब वृत्तान्त ज्ञात हुआ। यह सुनकर बाजीपंतने अपनी पत्नीसे कहा कि जबतक हम समर्थ श्रीरामदासके दर्शन नहीं कर लेंगे, तबतक अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। इस प्रकार उनके तीन दिन निराहार ही बीत गये। चौथे दिन श्रीसमर्थने भिक्षाके निमित्त उनके द्वारपर स्वयं पहुँचकर बाजीपंतकी इच्छा पूर्ण की। सभीने उनके चरण पकड़ लिये। उसी अवसरपर श्रीसमर्थने उन्हें चुनयाके इन श्रीहनुमानको प्रसादरूपमें प्रदान किया। इन श्रीहनुमानके वामकोणपर स्थित एक गुफामें श्रीसमर्थ अनेक बार जप-अनुष्ठानके लिये बैठा करते थे।

२—श्रीहनुमान—मसूर—समर्थ श्रीरामदास घूमते हुए लोक-समूह एवं शिष्य-सम्प्रदायका देखकर उन्हें

रावणका वध करनेके पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मणने सीताजीके साथ कृष्णा-नदीके तटपर स्थित इसी बाहे ग्राममें निवास किया था। माता सीता निकटस्थ शिंद नामक ग्राममें थीं। कृष्णानदीके किनारेपर श्रीरामचन्द्रजी ध्यानस्थ बैठे थे कि एकाएक नदीमें भयंकर बाढ़ आयी, जिसके कारण उनके ध्यानमें विघ्न उपस्थित होते देखकर भीम हनुमान प्रकट हुए और अपनी पवित्र भुजाओंको फैलाकर श्रीरामजीकी ओर आनेवाले कृष्णा-नदीके प्रवाहको रोक रखनेके लिये खड़े हो गये, इससे कृष्णा-नदीका जल दो भागोंमें विभक्त होकर आगे बढ़ गया एवं कुछ दूर जाकर पुनः एक धारा होकर बहने लगा। इससे श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमें उपस्थित विघ्न टल गया एवं उनके चरण-प्रान्तमें एक छोटा-सा टापू तैयार हो गया।

ऐसे स्थानपर श्रीहनुमानजी अवश्य उपस्थित होंगे ही—इस विश्वासके साथ बाहे ग्राममें दर्शनके लिये जानेपर श्रीसमर्थको यहाँ हनुमानजी दिखायी नहीं दिये। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ, इसलिये उन्होंने हनुमानजीका आवाहन करना आरम्भ किया। उसी समय उन्हें अपनी पीठके पीछे स्थित प्रचण्ड डोहेमेंसे आवाज सुनायी दी। हनुमानजी वहींपर थे। समर्थ श्रीरामदासने उस डोहेमें डुबकी लगायी और उसमेंसे हनुमानजीको बाहर निकालकर उसी टापूपर उनकी स्थापना कर दी। उन्होंने इस सारे प्रसङ्गका वर्णन अपने अष्टकमें किया है।

प्रायः उपर्युक्त सभी स्थानोंपर आजकल वाहन जा सकनेकी सुविधा है। यहाँकी यात्रा प्रायः चाफळसे श्रीराम-दर्शन करके क्रमानुसार दास-मारुति, प्रताप-मारुति, शिंगणवाडी, माजगाँव, उंब्रज, मसूर एवं शहापुरके हनुमानके दर्शन करनेके बाद बहे-बोरगाँव, शिराळा, पारगाँव तथा मनपाडलेमें हनुमान दर्शनके अनन्तर सम्पन्न होती है।

मध्यप्रदेशके प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

उज्जैन—(क) रणजीत और गिरनारीके हनुमान—ये दोनों स्थान उज्जैनमें शिप्रा नदीके पूर्वी और पश्चिमी तटपर स्थित हैं। पौष कृष्णा अष्टमीको यहाँ हनुमानजीकी सवारी बड़ी धूमधामसे निकाली जाती है। रणजीतमें प्रतिवर्ष इस दिन सैकड़ों ब्राह्मणों और भक्तोंका भोजन कराया जाता है।

(ख) समर्थ श्रीरामदासके हनुमान—कार्तिक चौकमें स्थित यह मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस मन्दिरमें प्रतिष्ठित श्रीहनुमद्विग्रहकी स्थापना श्रीसमर्थ रामदासजीने उज्जैनकी यात्राके समय की थी।

(ग) पञ्चमुखी हनुमानजी—बड़े गणेशके समीप ही पञ्चमुखी हनुमानका मन्दिर है। यह पञ्चमुखी मूर्ति ढाई-तीन फुट ऊँची है। इसके पाँच मुख हनुमत्कल्पके वर्णनानुसार ही हैं। मूर्तिकी बायीं ओरका मुख कपिका है, दक्षिण ओरका मुँह नरसिंहका है, पश्चिमका मुख गरुड़का और उत्तरका मुँह वराहका है। ऊपरकी ओर हयवदन है। यहींपर श्रीहनुमानजीकी सप्तधातुमयी मूर्ति भी है।

(घ) नीलगङ्गाके हनुमान—यह स्थान उज्जैन रेलवे स्टेशनके दक्षिणमें है। यहाँ एक तलैया है। स्कन्दपुराणके अवन्तीखण्डके अनुसार माता अञ्जनीके साथ श्रीहनुमानजीने यहाँ तप किया था। भागीरथी गङ्गा जब भक्तोंके पातकोंका प्रक्षालन करते-करते नीलवर्णकी हो गयीं, तब ब्रह्मदेवकी आज्ञासे वे शिप्रामें आकर गुप्तरूपसे मिलीं और इस स्थानपर प्रकट हुई थीं, तभीसे इसको 'नीलगङ्गा' कहा जाता है। यहाँके मुख्य तीर्थाधिपति श्रीहनुमानजी ही हैं।

—श्रीनारायणरावजी शुक्ल

धार—विद्यानुरागी सम्राट् भोजकी धारा नगरीको आजकल धार कहा जाता है। इंदौरसे ९३ मीलपर महू रेलवे स्टेशन है। वहाँसे ३० मीलपर धार नगर है। धारमें कुम्हार बावड़ीके सिद्धेश्वर हनुमानका मन्दिर विख्यात है। यहाँ हनुमानजी उत्तराभिमुख हैं, जो प्रभु श्रीरामका कार्य सम्पन्न करके सहर्ष लौट रहे हैं। यह स्थान एक सिद्धपीठ है। भक्तोंका विश्वास है कि यहाँ मनःकामना सहज ही पूर्ण होती

है। श्रावण मासमें चन्दनस्वरूप हनुमानके फूलोंसे शृङ्गार एवं दर्शन होते हैं।

—श्रीभगवत्स्वरूपजी जोशी

खण्डवा ओंकारेश्वर—यह खण्डवा–इंदौरके बीचका स्टेशन है। यहाँ ज्योतिर्लिङ्ग है। पर्वतके शिखरपर विशाल लिङ्ग-मूर्तिका मन्दिर है। इस मन्दिरके सामने हनुमानजीकी लेटी हुई विशाल मूर्ति है। श्रीहनुमानजीकी ऐसी मूर्ति मालवामें अन्य स्थानपर नहीं है।

—श्रीबापूलाल भँवरलाल

टीकमगढ़—टीकमगढ मध्यप्रदेशका प्रसिद्ध स्थान है। नयी कलक्टरी कचहरीके पास 'हनुमान-चालीसा'के नामसे मीनारके आकारका एक मन्दिर स्थित है। इसे टीकमगढ़ नरेश महाराज श्रीवीरसिंहजीने बनवाया था। यह चालीस फुट ऊँचा है। इसके अंदर करीब ढाई सौ चक्करदार सीढ़ियाँ हैं। ऊपर अञ्जनीकुमारकी सुन्दर प्रतिमा है। मन्दिरकी कला आश्चर्यजनक है।

बड़ागाँव—टीकमगढ़से १ मील पूर्व बड़ागाँव नामक स्थानपर स्वतः प्रकट मारुति प्रतिमा स्थित है। यह प्रतिमा एक विशाल पीपल-वृक्षके नीचे है। इनका एक चरण ऊपर है एवं दूसरा चरण नीचे पृथ्वीमें धँसा हुआ। जो चरण पृथ्वीमें धँसा है, उसका आजतक पता नहीं चल पाया कि वह कितनी गहराईमें है। कुछ मनचले युवकोंने इस गहराईका पता लगानेके निमित्त चरणके आस-पास खुदाई करनी प्रारम्भ की। ४०-४५ फुटकी गहराईतक खोद भी डाला, किंतु उसका पता न लग सका।

—श्रीकृष्णलाल भारती रामटोरिया

दतिया—झाँसीसे १६ मीलपर दतिया स्टेशन है। पास ही उदनू टौरिया नामक एक ऊँचा स्थान है। उस श्रीहनुमान-मन्दिर है। टौरियाको हनुमानकिला भी कहते हैं। मन्दिरमें जानेके लिये लगभग १६० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। श्रावणीसे लेकर तीजतक यहाँ बड़ी भीड़ होती है। स्वयं दतिया गाँवमें भी हनुमानजीका एक सुन्दर मन्दिर है।

घाटकोटरा—यह झाँसी जिलेका एक गाँव है। यहाँ बाहुबीर बजरंगका भव्य मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी पाँच फुट ऊँची भव्य मूर्ति है। कहा जाता है कि इस मूर्तिका एक हाथ मस्तकसे चिपका हुआ था, किंतु सन् १९५२ ई०के लगभग यह अपने आप विलग हो गया और अबतक उसी अवस्थामें है। इस चमत्कारके घटित होनेपर प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला पूर्णिमाको यहाँ बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाया जाने लगा और यात्रियोंकी बड़ी भीड़ होने लगी।

गताके बजरंग—यह स्थान घाटकोटरा, जिला झाँसीसे एक मील पूर्व घसान नदीके निकट है। यहाँ हनुमानजीकी मूर्ति पहले पृथ्वीमें दबी हुई थी। दो सौ वर्ष पहले इन्होंने एक पण्डितजीको, जो बादल-वंशके थे, स्वप्नादेश दिया कि तुम हमारे लिये मन्दिर बनवा दो। उसी दिन हल जोतते समय हलकी नोक लग जानेसे उस स्थानसे रुधिरकी धारा फूट निकली। यह देखकर गाँववाले एकत्र हुए, पण्डितजीकी आज्ञासे वह स्थान खोदा गया। उसमेंसे हनुमानजीकी एक मूर्ति निकली। तभीसे महावीरजीके ऊपर औषधरूपमें चीका फाहा चढ़ने लगा, जो कई वर्षोंतक चढ़ता रहा। आज उस स्थानका ऐसा प्रभाव है कि दो फर्लांगके घेरेमें कोई कैसा भी निर्भीक शिकारी क्यों न हो, उसके द्वारा जीवघात नहीं होने पाता।

ग्वालियर—इस शाखाका अन्तिम स्टेशन शिवपुरी है। यह प्रख्यात नगर है। इस नगरके अनेक प्रतिष्ठित मन्दिरोंमें नगरसे छः मीलपर बाँकड़े श्रीहनुमानजीका मन्दिर प्रसिद्ध है।

—श्रीबाबूलालजी मोयल

विलासपुर—(क) इस जिलेके प्रसिद्ध शहर शवरी नारायणसे कुछ दूरपर श्रीहनुमानजीका भव्य मन्दिर है। इस स्थानको जनकपुर नामसे पुकारते हैं।

(ख) इसी जिलेमें रतनपुर है, जिसे छोटी काशी कहते हैं। यहाँ बादा पहाड़ीपर स्थित विशाल श्रीराम-मन्दिरके पास एक भव्य हनुमान-मन्दिर है। यहाँ माघ-पूर्णिमाको मेला लगता है।

गुजरातके प्रमुख श्रीहनुमान-मन्दिर

सारंगपुर—अहमदाबाद भावनगर रेल्वे लाइनपर स्थित बोटाद जंक्शनसे सारंगपुर लगभग १२ मील दूर है। यहाँ एक प्रसिद्ध मारुति प्रतिमा है। महायोगिराज गोपालानन्द स्वामीने इस शिला-मूर्तिकी प्रतिष्ठा विक्रम-संवत् १९०५ आश्विन कृष्णा पञ्चमीके दिन की थी। प्रतिष्ठाके समय मूर्तिमें श्रीहनुमानका आवेश हुआ और यह हिलने लगी। तभीसे इन कष्टभञ्जन श्रीहनुमानजीकी गम्भीर मान्यता हो गयी तथा अब भी सहस्रों हिंदू-मुसल्मान इस सिद्ध विग्रहके चमत्कारोंसे चकित होते रहते हैं। —श्रीरमणलालजी

अहमदाबाद—अहमदाबाद कैंट विभागमें साभ्रमती (साभ्रमती)के तटपर स्थित हनुमान-मन्दिर है। यह लगभग दो सौ वर्ष पुराना है। इसमें मूर्ति भव्य एवं आकर्षक है। प्रत्येक शनिवार एवं मङ्गलवारके सायंकाल यहाँ अच्छा मेला-सा लग जाता है। आजसे प्रायः २२ वर्ष पूर्व रातके बारह बजे इस मन्दिरमें एक चमत्कार हुआ। आस-पासके लोग सो रहे थे। आश्विन कृष्ण-चतुर्दशी, मङ्गलवारकी रातके बारह बजे एक भयंकर आवाज हुई, मानो तोपसे गोला छूट रहा हो! लोग एकत्र हो गये, किंतु कुछ भी दिखायी न पड़ा। प्रातः छः बजे पुजारीजीने जब मन्दिर खोला तो वे देखते क्या हैं कि हनुमानजीके अङ्गपरसे प्रायः ८ १० इंचकी चौड़ी आँगी (आवरण) छिन्न भिन्न होकर नीचे गिर पड़ी है और भव्य एवं सुन्दर साकार मूर्ति प्रत्यक्ष हो गयी है। आवरणको दूर करके देखनेसे पता चला कि यह आवरण वर्षोंनुवर्ष चढ़ते हुए तैल और सिन्दूरकी जमती हुई परत था। लोग दर्शनार्थ उमड़ पड़े। यह प्राचीन मूर्ति बड़ी भव्य है। उसके बाद जनताकी ओरसे यहाँ विशाल श्रीरामयज्ञ किया गया।

सूरत—यहाँके श्रीखाण्डनिया हनुमान प्रसिद्ध हैं। वि० सं० १९३०में तापी नदीमें बड़ी भयंकर बाढ़ आयी। सारा सूरत शहर बाढ़ग्रस्त हो गया। निराधार लोग मकानोंकी छतपर अथवा पहाड़के ऊपर आश्रय लेने लगे। कुछ लोगोंने शहरके बीचमें स्थित एक टीलेके ऊपर भी आश्रय लिया। तीसरे दिन प्रातःकाल लोगोंको हनुमानजीकी एक विशाल शिलामयी मूर्ति दिखायी दी, जो बाढ़के जलसे बहकर वहाँ आ गयी थी। आश्चर्य तो यह था कि मूर्तिके एक भागमें श्रृङ्खल बँधा था। उन्होंने उसे उठाकर एक पुरानी झोपड़ीमें प्रतिष्ठित किया। उसके बाद वि० सं० १९५० में सूरतमें भयंकर अग्निकाण्ड हुआ। आस-पासके सभी मकान भस्मसात् हो गये, किंतु बाँससे बने हुए इस मन्दिरको तनिक भी आँच न आयी। उस समयके अंग्रेज जिलाधीशने हनुमानजीको मस्तक झुकाकर उसी स्थानपर मन्दिर बनवानेकी अनुज्ञा दे दी। मन्दिर तैयार होनेपर मूर्तिको मन्दिरमें पधरानेके लिये दस-बीस आदमी इकट्ठे होकर उठाने लगे, किंतु मूर्ति उठ न सकी। उसी समय मन्दिरके पुजारी श्रीनरोत्तमजीने आकर 'जय बजरंग' के घोषके साथ अकेले ही उसे उठाकर मन्दिरमें प्रतिष्ठित कर दिया। सूरतके भक्तलोग इस श्रीविग्रहका अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दर्शन-पूजन करते हैं।

हनुमानधारा—सौराष्ट्रके जूनागढके समीप गिरनार पर्वतके ऊपर वायव्य कोणमें १५०० सीढ़ियाँ चढ़नेपर नीचेके भागमें यह ऐतिहासिक प्राचीन स्थान है। यह प्रदेश जंगलमें होनेसे अत्यन्त रमणीय और बड़ा आकर्षक लगता है। अब रास्ता सरल बन जानेके कारण गिरनारके बहुत-से यात्री इस स्थानका दर्शन करने आते रहते हैं। यहाँ एक विशाल कुण्ड भी है। इस कुण्डका सम्पूर्ण जल किनारेपर स्थित श्रीहनुमानजीके मुखसे ही निकलता है। इसी कारण इस स्थानका नाम 'हनुमान धारा' पड़ा है। आजसे लगभग ४२५ वर्ष पूर्व इस स्थानपर एक गोवर्धनदासजी नामक खाकी संत निवास करते थे। कहते हैं कि बाबाजी प्रायः ३ ४ मन लोहेके आभूषण धारण करके एक हाथमें ७ फुटका लोहेका चिमटा लिये हुए सायं प्रातः आरती करते थे। आज भी बाबाजीके वे आभूषण (कटिप्रदेशमें धारण करनेकी एक मनकी लोहेकी जंजीर, हाथ-पैरके कड़े और चिमटा) यहाँ यथावत् मौजूद हैं।

पोरबंदर—सौराष्ट्र प्रदेशान्तर्गत सुदामापुरी (पोरबंदर)के श्रीसुदामा-मन्दिरसे पश्चिमकी ओर अति प्राचीन एकादशमुखी श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। मूर्तिके दो चरण, बाइस हाथ एवं ग्यारह मुख हैं। सारे गुजरातमें ऐसा यह एक ही मन्दिर है। पौराणिक प्रसङ्गानुसार अहिरावण वधके समय देवी-मन्दिरमें श्रीहनुमानजीने ग्यारह मुख प्रकट किये थे। उसके बाद अहिरावणका वध होनेपर श्रीहनुमानजीने पातालनगरीका राज्य अपने औरस पुत्र मकरध्वजको प्रदान किया था। आज भी यहाँके महाराणा लोग अपनेको मकरध्वजका वंशज मानते हैं।

जामनगर—जूनागढ़के प्रसिद्ध पर्वत गिरनारकी पञ्च-स्थली हनुमानधाराके हनुमानजीकी कृपासे ही जामनगर राज्यके संस्थापक श्रीजामरावलजीको जामनगरका राज्य प्राप्त हुआ था। श्रीहनुमानधाराके मारुतिदेवके प्रत्यक्ष दर्शनके बाद श्रीजामरावलजीने श्रीहनुमानजीसे जामनगर पधारनेकी प्रार्थना की। वे ही श्रीहनुमानजी जामनगर पधारे और उसके चारों दिशाओंमें क्रमशः प्रतिष्ठित हुए। जहाँ जहाँ उन्होंने विश्राम किया, वहाँ-वहाँ लोगोंने श्रीहनुमानजीके विभिन्न मन्दिरोंका निर्माण कराकर उनमें विभिन्न नामोंसे उनकी प्रतिष्ठा की। इस प्रकार श्रीहनुमानजी दाण्डिया हनुमान, फुल्या हनुमान, भीड़ भञ्जन हनुमान आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुए। इनमें दाण्डिया हनुमानका मन्दिर भव्य एवं चमत्कारिक माना जाता है। —पं० श्रीमगनजी वल्लभजी शास्त्री

बेट द्वारका—यहाँसे चार मीलकी दूरीपर मकरध्वजके साथमें हनुमानजीकी मूर्ति स्थापित है। कहते हैं कि पहले मकरध्वजकी मूर्ति छोटी थी, परंतु अब दोनों मूर्तियाँ एक सी ऊँची हो गयी हैं। अहिरावणने भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणको इसी जगहपर छिपा रखा था। जब हनुमानजी श्रीराम-लक्ष्मणको लेनेके लिये आये, तब उनका मकरध्वजके साथ घोर युद्ध हुआ। अन्तमें हनुमानजीने उसे पराजित कर उसीकी पूँछसे उसे बाँध दिया। जब मकरध्वजने अपनी पहचान बतायी, तब उन्होंने उसे मुक्त कर दिया। उनकी स्मृतिमें यह मूर्ति स्थापित है।

यहाँ हनुमान टेकरी और हनुमान अन्तरीपमें भी श्रीहनुमानजीके प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

—काव्यशास्त्री श्रीकिशनलाल भास्कर शास्त्री

भूरखिया—सौराष्ट्रके लाठी शहरसे ६ मीलपर प्रसिद्ध भूरखिया हनुमानजीका मन्दिर है। इसी नामपर यहाँ गाँव बस गया है। प्राचीन कालमें रामानन्द-सम्प्रदायके प्रभावशाली महंत श्रीरघुवीरदासजीके शिष्य दामोदरदासजीको स्वप्नमें श्रीहनुमानजीने आदेश दिया कि चैत्र शुक्लापूर्णिमाको आधी रातके समय मैं समाड़ तथा लाठी शहरके बीच निर्जन वनमें प्रकट होऊँगा। महात्मा दामोदरदासजी अपने पूज्य गुरुदेवसे आज्ञा लेकर पूजन-सामग्रीसहित कुछ लोगोंके साथ पैदल चल पड़े। वि० सं० १६४२ मंगलवार चैत्र शुक्लापूर्णिमाकी आधी रातके समय उस जनशून्य वनमें बड़े जोरसे धमाकेके साथ एक टीलेसे धूल उड़ी। कुछ क्षणोंके बाद उपस्थित जनोंको वहाँ श्रीहनुमानजीकी मूर्ति दिखायी पड़ी। सभीने जय-जयकारके साथ उनका पूजन अर्चन किया। तभीसे इनका नाम 'भूरखिया' पड़ गया, जिसका अर्थ है—भूमिकी रक्षा करनेवाला। सभी प्रकारकी मन कामनाएँ पूर्ण करनेवाले होनेके कारण इस क्षेत्रमें भूरखिया हनुमानजीकी बड़ी प्रसिद्धि है।

—गोस्वामी श्रीभोजगिरि बल्लभगिरिजी

लधे हनुमान—जूनागढ गिरनारका दरवाजा कहा जाता है। गिरनार पर्वत अत्यन्त पवित्र है। इसकी तलहटीमें भवनाथसे आगे लधे हनुमानजीका मन्दिर है। मन्दिरमें यात्रियोंके ठहरनेकी भी व्यवस्था है। यहाँ हनुमानजीके महोत्सव होते ही रहते हैं। योगियोंकी यह अत्यन्त सम्मान्य तपोभूमि है। योगी राजा मुचुकुन्द-महादेवकी परिक्रमामें पञ्चमुखी श्रीहनुमानका मन्दिर है तथा सातपुड़ा कुण्डसे आगे भी श्रीहनुमानजीका एक स्थान है।

'कोई ग्राम है नहीं, जहाँ न हनुमान हो'

(रचयिता—कविभूषण श्रीजगदीशजी साहित्यरत्न)

शीश पै अहीश ने तो 'जगदीश' धारी धर
कर पै भूधर धर उड़े आसमान हो।
सेवक-संदेशक हो राम के महान, किंतु
कष्ट धक्क भक्त का भी करते कल्यान हो॥
अर्चना-आराधना के अनोखे हो देव तुम,
सब जानि मानती है, वैसे दयावान हो।
घर घर पूजते हैं चित्र भी पवित्र मान,
कोई ग्राम है नहीं, जहाँ न हनुमान हो॥

राजस्थानके प्रसिद्ध श्रीहनुमान-मन्दिर

सवाई माधोपुर—आजसे लगभग ढाई सौ वर्ष पहले एक कुएँका निर्माण करते समय तीस फुटकी गहराईपर महावीर हनुमानजीकी एक अत्यन्त दिव्य प्रतिमा मिली। भद्रालु भक्तोंने कुएँके पास ही चबूतरा बनवाकर उसीपर प्रतिमाको प्रतिष्ठित कर दिया। विधर्मियोंने इस विग्रहको तथा इस चबूतरेको भी हटानेके लिये कई बार प्रयत्न किये, परंतु भक्तोंकी देवनिष्ठासे यह स्थान सुरक्षित ही रहा। सन् १९५०ई०में तो यहाँ एक भव्य मन्दिर बन गया।

—श्रीरघुनाथप्रसादजी शाण्डिल्य

भावी—जैसलपुरसे जयपुर जानेवाली सड़कपर यह ग्राम बिलाड़ा तहसीलमें है। इस ग्रामके पूर्वकी ओर 'दुवानाडा' है, उसके तटपर बने हुए स्थानके हनुमानजी बड़े चमत्कारी एवं प्रसिद्ध देवता हैं। आजसे लगभग दो सौ वर्ष पूर्व इस *ग्रामके श्रीसीरवी दुवाजी आककेनाके कोई सन्तान नहीं थी।* किन्हीं महात्माके कहनेपर उन्होंने इन स्थानीय हनुमानजीकी कई दिनोंतक बड़ी श्रद्धापूर्वक आराधना की। अन्तमें कई वर्ष बीत जानेके बाद उन्हें पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई। उसके उपलक्ष्यमें दुवाजीने हनुमानजीका देवालय बनवाया और पास ही नाडा खुदवा दिया। इस नाडेको लोग 'दुवानाडा'के नामसे पुकारने लगे।

—श्रीशिवसिंह चोयल

मेहंदीपुर—यह स्थान जयपुर-बान्दीकुई-बसमार्गपर जयपुरसे लगभग पैंसठ किलोमीटर दूर है। दो पहाड़ियोंके बीचकी घाटीमें स्थित होनेके कारण इसे 'घाटा मेहंदीपुर' भी कहते हैं। मेहंदीपुरके श्रीबालाजी मनौतीको पूर्ण करनेवाले हैं। मुख्यतः भूत-प्रेत, पिशाच, बन्ध्यत्व, लकवा आदि बाधाओंसे तो ये मुक्त कर ही देते हैं—लोगोंकी ऐसी दृढ़ श्रद्धा होनेके कारण यहाँ पूरे वर्ष भक्तों, पीड़ितों तथा यात्रियोंका आना-जाना लगा रहता है। यहाँके प्रमुख देवता तो श्रीबालाजी ही हैं, परंतु साथ ही प्रेतराज श्रीभैरवनाथजी *भी वैसे ही महत्त्वपूर्ण हैं।*

जनश्रुतिके अनुसार यह देवस्थान लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। बहुत पहले यहाँ कोई मन्दिर न था, एक बार मन्दिरके महंतोंमेंसे किसी पूर्वज महंतको श्रीबालाजीने स्वप्नमें दर्शन देकर यहाँ मन्दिर स्थापित करके उपासना करनेका आदेश दिया। तदनुसार उन महंतने यहाँ मन्दिर बनवाया। कहा जाता है कि मुगल साम्राज्यमें इस मन्दिरको तोड़नेके अनेक प्रयास हुए, परंतु सफलता न मिली। वर्तमान नया मन्दिर सौ वर्षोंसे अधिक पुराना प्रतीत नहीं होता। राजस्थानमें यह मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है।

—श्रीवासुदेव भास्कर थाणेकर

कोटा—हनुमानजीके पूजन तथा चिन्तनसे कैसे विस्मय जनक चमत्कार होते हैं तथा कैसी भी पुरानी भूत-प्रेत-बाधा दूर हो जाती है—यह प्रत्यक्षरूपसे कोटाके गोदावरीधाम, अमरनिवास स्थित हनुमानजीके मन्दिरमें देखा जा सकता है। श्रीहनुमानजीकी यह प्राचीन मूर्ति चम्बल नदीकी सतहमें, जहाँ आज सैकड़ों फुट जल लहरा रहा है, स्थित थी। चम्बल-बाँध बननेके उपरान्त नयी परिस्थितियोंमें इसे कोटा नगरके अमरनिवास नामक स्थानपर वेद-मन्त्रोंद्वारा पुनः प्रतिष्ठापित किया गया है। यहाँ प्रति मङ्गलवार तथा शनिवारको दूर-दूरसे अनेक भक्त, मानसिक रोगी, मन्दबुद्धि, निराश एवं जिज्ञासु दर्शनार्थी आते हैं, *जिनकी संख्या सैकड़ोंमें नहीं, अब हजारोंमें है।*

कई मानसिक रोगी जो पूर्णरूपसे ठीक हो गये हैं, उन्होंने अपना अनुभव सुनाते हुए बतलाया है कि हनुमानजी अपनी गदा लिये उतरे और हमारे ऊपर चढ़े हुए भूत-प्रेतोंको मार *मार कर भगा दिया। इस प्रकार हमारी भूत-बाधा सदा* सर्वदाके लिये जाती रही। प्रायः देखा जाता है कि आरती होनेतक भूत-बाधावाले रोगी विभिन्न शारीरिक क्रियाएँ करते-करते शान्त और संतुलित हो जाते हैं तथा उनके मनमें आत्मबल जाग्रत् हो जाता है।

—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र

नाथद्वारा—वैसे तो नाथद्वारा वल्लभ-सम्प्रदायका प्रधान पीठ और भारतप्रसिद्ध भगवान् श्रीनाथजीका परम पवित्र पुष्टिमार्गीय वैष्णव धाम है। फिर भी श्रीनाथजीके *यहाँ विराजमान होनेके साथ ही स्थानीय* तिलकायत-नरेशोंने नगरके चारों ओर श्रीहनुमानजीकी स्थापना की। आज भी पूर्वमें सिंहाड़के हनुमानजी, पश्चिममें बड़ी बाखरके हनुमानजी, उत्तरमें छावनी दरवाजाके हनुमानजी और दक्षिणमें चौबेजीकी बगीचीके *व्यङ्कट* हनुमानजी विराजमान हैं। श्रीकृष्णोपासनाके साथ-साथ श्रीरामोपासनाके समन्वयका

यह एक सुन्दर प्रमाण है। भारतवर्षमें यही एक ऐसा नगर है, जिसमें शीतला-सप्तमीपर अथवा विवाहादि उत्सवोंमें शीतलामाताकी पूजाके साथ-साथ श्रीहनुमानजीकी पूजा करना अनिवार्य होता है। —श्रीप्रभुदासजी वैरागी

पुरानवाँ—सीकरसे छ मील दक्षिण यह एक छोटा-सा गाँव है, इसके पास ही एक छोटी-सी पहाड़ी है, जिसके उत्तरमें श्रीहनुमानजीका मन्दिर है। हनुमानजीकी यह मूर्ति पहाड़ीसे निकली हुई है। मूर्तिके नीचेका पत्थर पहाड़ीसे जुड़ा हुआ है। प्रति मङ्गलवारको दर्शनार्थियोंकी भीड़ प्रातःसे लेकर सायंतक लगी ही रहती है। प्रत्येक पूर्णिमाको गाँवकी भजनमण्डली रात्रि-जागरण करती है। मन्दिरके बाहर एक छोटा-सा चबूतरा है। उसपर उत्कीर्ण अक्षरोंसे पता चलता है कि संवत् १६४३ वि०में यहाँपर एक ही मन्दिर था। आसपासके गाँवोंमें इस मूर्तिकी विशेष मान्यता है। —श्रीछैगारामजी शर्मा

विराटनगर—यह नगर जयपुर-अलवर-मार्गपर स्थित है। यह वही विराटनगर है, जहाँ पाण्डवोंने अपने वनवासका तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवासके रूपमें बिताया था और जहाँ सैरन्ध्रीरूपा द्रौपदीका छेड़नेका प्रयत्न करनेपर पराक्रमी भीमद्वारा कीचकका वध किया गया था। कीचककी वधस्थलीके पासकी गुफा आज भी भीमसेनकी गुफाके नामसे पुकारी जाती है। इसी भीम-गुफाके पासकी पाँच विशाल पत्थरोंशिलाओंकी सन्धिस्थलीपर ही श्रीरामचन्द्रजी वीर महाराजने श्रीवज्राङ्ग प्रभुका विशाल मन्दिर बनवाया, जो भूमितलसे १००० फुटसे भी अधिक ऊँचा है। इसमें भगवान् वज्राङ्गदेवका श्रीविग्रह है, जो ७॥ फुट ऊँचा एवं श्वेत संगमरमरका बना हुआ है तथा चित्ताकर्षक भावभङ्गिमामुद्रासे युक्त है। महाराज वीरने इस दिव्य एवं भव्य विग्रहके निर्माणकालमें मूर्तिकारोंको समय-समयपर महत्त्वपूर्ण निर्देश दिये थे। माघ शुक्ल त्रयोदशीको प्राणप्रतिष्ठा-पर्वके रूपमें प्रतिवर्ष यहाँ विशाल मेला लगता है। इसमें दंगल भी होते हैं।

—श्रीजमनाप्रसादजी गुप्त एम्० ए०, सा० र०, बी० एड्०

श्रीपालाजी (बड़ागाँव)—यहाँका यह सुविख्यात ऐतिहासिक श्रीहनुमान-मन्दिर नागौर जिलेमें नागौर बीकानेर रेलवे-लाइनपर स्थित श्रीपालाजी रेलवे-स्टेशनसे तीन फर्लांग पश्चिमकी ओर एक पहाड़ीपर स्थित है। यह मन्दिर ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष प्राचीन माना जाता है। आजसे लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व एक महान् तपस्वी संत श्री १०८ श्रीशुकदेवपुरीजी महाराज हुए थे। वे उच्चकोटिके भक्त थे। उन्हें साधनाद्वारा अनेकानेक सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं। आपने अपने जीवनके पूर्वार्धमें सर्वप्रथम चूरू जिलेके गोपालपुरा ग्रामकी पहाड़ीपर रहकर बारह वर्ष अनवरत घोर तप किया था। उसी डूँगरीमें एक अति प्राचीन श्रीहनुमानजीकी मूर्ति है, वह आज भी ज्यों-की-त्यों विद्यमान है। उस स्थानपर पूज्य स्वामीजी महाराजको श्रीहनुमानजीके दिव्य दर्शन हुए।

कुछ समय बाद वहाँसे पूज्य श्रीस्वामीजी महाराज श्रीपालाजीमें आये और उन्होंने इस पहाड़ीको अपनी साधनाके लिये चुना तथा यहीं रहते हुए अपने जीवनके बहुमूल्य क्षण बिताये। आपने भावविभोर हो दीर्घकालतक श्रीहनुमानजीकी भक्ति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने स्वामीजीको अपना दिव्य दर्शन दिया और कहा—'वर माँगो।' तब स्वामीजीने प्रार्थना की—'देव! यदि आपकी मुझपर पूर्ण अनुकम्पा है तो आप गोपालपुराके अपने दिव्य विग्रहको यहाँ अवस्थापित कर दें, जिससे मुझे अब योगशक्तिद्वारा अलक्षित होकर वहाँ न जाना पड़े।' यह सुनकर भक्तवत्सल श्रीहनुमानजीने यहीं प्रकट होनेका वर दिया। इसके पश्चात् स्वामीजी महाराजने इस क्षेत्रके आस-पासकी जनताको बुलाकर कहा कि इस पहाड़ीपर भगवान् अञ्जनीनन्दन श्रीहनुमानजी चैत्र शुक्ला पूर्णमासीको प्रकट होंगे।

स्वामीजीद्वारा ऐसी सूचना पाकर हजारों नर-नारी श्रीहनुमानजीके दर्शनार्थ उक्त स्थानपर एकत्र हो गये। चैत्र शुक्ला पूर्णिमाके दिन मध्याह्नमें किञ्चिन्मात्र भूकम्प-सा हुआ, जिससे पहाड़ीमें दरार पड़ गयी और उसमेंसे श्रीहनुमानजी पाषाण-स्तम्भके रूपमें प्रकट हुए। तदनन्तर पूज्य स्वामीजीने उस पहाड़ीके उपयुक्त स्थानपर उस मूर्तिका प्रतिष्ठापित कर दिया। वह शिलामयी मूर्ति आज भी भक्त-जनोंके चित्तको हठात् अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। —पं० श्रीमुरारीलालजी शर्मा

रैनवाल—जयपुरसे अठारह मीलपर किशोर-रैनवालके श्रीहनुमानजीका प्रसिद्ध चमत्कारी हनुमान मूर्तिमें

एक विशिष्ट स्थान है। मन्दिरके पास एक सरोवर है। यहाँ वैसे तो सदा ही भीड़ लगी रहती है, परंतु वैशाख शुक्ला पञ्चमीको विशाल मेला लगता है, जिसमें दूर-दूरके यात्री आते हैं।

—श्री सेवमल भँवरीलाल कसेरा

पेड़—(धीरपुर) यह स्थान जिला बाड़मेर-बालोतरासे पाँच मील पश्चिम लूणी नदीके तटपर है। यहाँके अनेकों मन्दिरोंमें श्रीहनुमानजीका मन्दिर प्रमुख एवं प्रसिद्ध है। मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी विशाल एवं भव्य मूर्ति है। प्रत्येक पूर्णिमाको यहाँ मेला लगता है। माघ मासमें 'चवारी' जातिके लोग (जिनका देवासी भी कहते हैं) यहाँ अपने बालकोंका मुण्डन-संस्कार कराने आते हैं। ये लोग श्रीहनुमानजीको 'धाड़िया बावा' कहकर पुकारते हैं।

—श्रीरामकरणजी गुप्त बी० काम, रत्नाकेट

पूनरासर—दिल्ली-बीकानेर-रेलवेलाइनपर स्थित दुलसर स्टेशनसे दस मील पूर्व श्रीहनुमानजीका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँके हनुमानजीकी मान्यता इस प्रदेशमें अधिक है। इन हनुमानजीकी उपासना जैन-समाजमें विशेष मान्य है। यहाँ वर्षमें एक बार विशाल मेला लगता है। वैसे साधारण भीड़ तो सदैव होती रहती है।

—श्रीबारामजी सोनी

घड़—जिला नागौरके डेगाना तहसीलमें यह प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ हनुमानजीका विशाल मन्दिर है, जिसमें श्रीहनुमानजीकी तीन मूर्तियाँ हैं—१-दास हनुमान, २-वीर हनुमान और ३-भक्त हनुमान। कहते हैं, यहाँ जो मनौती मानी जाती है, वह अवश्य सिद्ध होती है। वर्षमें एक बार विशाल मेला भी लगता है।

बीकानेर—श्रीरतनबिहारीजीके प्रसिद्ध मन्दिरके पास श्रीहनुमानजीकी एक विशाल प्रतिमा है। प्रतिदिन सैकड़ों भावुक भक्त इस विग्रहके दर्शन करते हैं। यहाँ घटित हुए कई चमत्कार भी सुने जाते हैं। यहाँ प्रति मङ्गलवारको दर्शनार्थियोंका मेला-सा लग जाता है।

सालासर—श्रीरामपायक हनुमानजीका यह मन्दिर राजस्थानके चूरू जिलेमें है। गाँवका नाम सालासर है, इसलिये 'सालासरवाले बालाजी'के नामसे इनकी लोक-प्रसिद्धि है। बालाजीकी यह प्रतिमा बड़ी प्रभावशाली और दाढ़ी-मूँछसे सुशोभित है। मन्दिर पर्याप्त बड़ा है। चारों ओर यात्रियोंके ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ भी बनी हुई हैं, जिनमें हजारों यात्री एक साथ ठहर सकते हैं। दूर दूरसे भी यात्री अपनी मन कामनाएँ लेकर यहाँ आते हैं और इच्छित वर पाते हैं। यहाँ सेवा-पूजा तथा आय-व्यय सम्बन्धी सभी अधिकार स्थानीय दायमा ब्राह्मणोंको ही है, जो श्रीमोहनदासजीके भानजे उदयरामजीके वंशज हैं।

श्रीमोहनदासजी ही इस मन्दिरके संस्थापक थे। ये बड़े वचनसिद्ध महात्मा थे। जयपुरमें श्रीमोहनदासजी रुल्याणी ग्रामके, जो सालासरसे लगभग सोलह मील दूर है, निवासी थे। इनके पिताश्रीका नाम लच्छीरामजी था। लच्छीरामजीके छः पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रीका नाम कानीबाई था, मोहनदासजी सबसे छोटे थे। कानी बाईका विवाह सालासर ग्रामके निवासी श्रीसुखरामजीके साथ हुआ था, पर विवाहके पाँच साल बाद ही (उदयराम नामक पुत्र प्राप्तिके बाद) सुखरामजीका देहान्त हो गया। तब कानीबाई अपने पुत्र उदयरामजीसहित अपने पीहर रुल्याणी चली गयी, किंतु कुछ पारिवारिक परिस्थितियोंके कारण अधिक समयतक वहाँ न रह सकी और सालासर वापस आ गयी। यह सोचकर कि 'विधवा बहन कैसे अकेली जीवन निर्वाह करेगी', मोहनदासजी भी उसके साथ सालासर चले आये। इस प्रकार कानीबाई, मोहनदासजी और उदयरामजी साथ-साथ रहने लगे।

श्रीमोहनदासजी आरम्भसे ही विरक्त वृत्तिवाले व्यक्ति थे और श्रीहनुमानजी महाराजको अपना इष्टदेव मानकर उनकी पूजा करते थे। यही कारण था कि यदि ये किसीको कोई बात कह देते तो वह अवश्य सत्य हो जाती। इस कारण उन्हें सभी लोग जानने लगे थे। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। एक दिन मोहनदासजी और उदयरामजी—दोनों अपने खेतमें काम कर रहे थे कि मोहनदासजी बोले, 'उदयराम! मेरे पीछे तो कोई देव पड़ा है, जो मेरा गँड़ासा छीनकर फेंक देता है।' उदयरामजीने भी देखा कि बार-बार मोहनदासजीके हाथसे गँड़ासा दूर जा पड़ता है। उदयरामजीने पूछा—'मामाजी! कौन देव हैं?' मोहनदासजी बोले—'बालाजी प्रतीत होते हैं।' यह बात ठीकसे उदयरामजीकी समझमें न आयी। घर लौटनेपर उदयरामजीने कानीबाईसे कहा—'माँ! मामाजी के भरोसे तो खेतमें धनाज नहीं हो सकता।' यह कहकर खेतवाली सारी बात भी कह सुनायी। उसे सुनकर

सोचा—'कहीं भाई मोहनदासजी संन्यास न ले लें।' अन्तमें उसने एक स्थानपर मोहनदासजीके लिये लड़की तय करके सम्बन्ध पक्का करनेके लिये नाईको कुछ कपड़े एवं जेवर देकर लड़कीवालेके यहाँ भेजा। पीछे थोड़ी देर बाद ही जब मोहनदासजी घर आये तो कानीबाईने विवाहकी सारी बात उनसे कही। तब वे हँसकर बोले, 'पर बाई! वह लड़की तो मर गयी।' कानीबाई सहम गयी, क्योंकि वह जानती थी कि मोहनदासजी वचनसिद्ध हैं। दूसरे दिन नाई लौटा तो उसने भी बताया कि वह लड़की तो मर गयी। इस तरह मोहनदासजीने विवाह नहीं किया और वे पूर्ण रूपसे श्रीबालाजी बजरंगबलीकी भक्तिमें प्रवृत्त हो गये।

एक दिन मोहनदासजी, उदयरामजी और कानीबाई—तीनों अपने घरमें बैठे थे कि दरवाजेपर किसी साधुने आवाज दी। कानीबाई जब आटा लेकर द्वारपर गयी तो वहाँ कोई दृष्टिगोचर न हुआ, तब इधर-उधर देखकर वह वापस आ गयी और बोली, 'भाई मोहनदास! दरवाजेपर तो कोई नहीं था।' तब मोहनदासजी बोले—'बाई! वे स्वयं बालाजी थे, पर तू देखने गयी।' तब कानीबाई बोली—'भाई! मुझे भी बालाजीके दर्शन करवाइये।' मोहनदासजीने हामी भर ली। दो महीनेके बाद ही उसी तरह द्वारपर फिर वही आवाज सुनायी दी। इस बार मोहनदासजी स्वयं द्वारपर गये और देखा कि बालाजी स्वयं हैं और वापस जा रहे हैं। मोहनदासजी भी उनके पीछे हो लिये। अन्ततोगत्वा बहुत निवेदन करनेपर बालाजी वापस आये। तो यह भी इस शर्तपर कि 'खीर-खाँड़के भोजन कराओ और सोनेके लिये काममें न ली हुई खाट दो तो मैं रुकूँ।' मोहनदासजीने स्वीकार कर लिया। बालाजी महाराज घर पधारे। दोनों बहन-भाईने उनकी बहुत सेवा की। कुछ दिन पूर्व ही ठाकुर सालमसिंहजीके लड़केका विवाह हुआ था। उनके दहेजमें आयी हुई खाट बिल्कुल नयी थी। वही बालाजीको सोनेके लिये दी गयी।

एक दिन मोहनदासजीके मनमें आया कि यहाँ श्रीबालाजीका एक मन्दिर बनवाना चाहिये। यह बात ठाकुर सालमसिंहजीतक पहुँची। बात विचाराधीन ही चल रही थी कि उसी समय एक दिन गाँवपर किसीकी फौज चढ़ आयी। अचानक ऐसी स्थिति देखकर सालमसिंहजी व्याकुल हो गये। तब मोहनदासजी बोले—'डरनेकी कोई बात नहीं है। एक तीरपर नीली झंडी लगाकर फौजकी ओर छोड़ दो, बजरंगबली ठीक करेंगे।' यही किया गया और वह आपत्ति टल गयी। इस घटनासे मोहनदासजीकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। सालमसिंहजीने भी श्रीबालाजीकी प्रतिमा स्थापित करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। अब समस्या यह आयी कि मूर्ति कहाँसे मँगवायी जाय। तब मोहनदासजीने कहा—'आसोटा* से मँगवा लो।' आसोटाके सरदारके यहाँ सालमसिंहजीका पुत्र ब्याहा गया था। तुरंत ही वहाँ समाचार दिया गया कि आप श्रीबालाजीकी एक प्रतिमा भिजवाएँ।

उधर आसोटामें उसी दिन एक किसान जब खेतमें हल चला रहा था तो अचानक हल किसी चीजसे उलझ गया। जब किसानने खोदकर देखा तो वह बालाजीकी मनोमोहक प्रतिमा थी। वह तुरंत उसे लेकर ठाकुरके पास गया और मूर्ति देकर बोला, 'महाराज! मेरे खेतमें यह मूर्ति निकली है।' ठाकुर साहबने वह मूर्ति महलमें रखवा ली। उसे देखकर वे भी विस्मित थे। उन्होंने मूर्तिकी यह विशेषता देखी कि उसपर हाथ फेरनेसे वह सपाट पत्थर मालूम पड़ती है और देखनेपर मूर्ति है। यह घटना सं० १८११ वि० श्रावण शुक्ल ९ शनिवारकी है। अचानक आसोटाके ठाकुरको उस प्रतिमामेंसे आवाज सुनायी दी कि 'मुझे सालासर पहुँचाओ।' यह आवाज दो बार आयी, अबतक तो ठाकुर साहबने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था, पर तीसरी बार बहुत तेज आवाज आयी कि 'मुझे सालासर पहुँचाओ।' उसी समय सालमसिंहजीद्वारा भेजा हुआ आदमी वहाँ पहुँच गया। इस तरह थोड़ी ही देरमें मूर्ति बैलगाड़ीपर रखवा दी गयी और गाड़ी सालासरके लिये रवाना हो गयी।

इधर दूसरे दिन सालासरमें जब मूर्ति पहुँचनेवाली ही थी कि मोहनदासजी, सालमसिंहजी तथा सारे गाँवके लोग हरिकीर्तन करते हुए स्वागतके लिये पहुँचे। चारों ओर अत्यन्त उत्साह और उल्लास उमड़ रहा था। अब समस्या यह खड़ी हुई कि प्रतिमा कहाँ प्रतिष्ठित की जाय। अन्तमें मोहनदासजीने कहा कि 'इस गाड़ीके बैलोंको छोड़ दो, वे जिस स्थानपर अपने आप रुक जायँ, वहीं प्रतिमाको स्थापित कर दो।' ऐसा ही किया गया। बैल अपने-आप चल पड़े और एक तिकोने टीलेपर जाकर रुक गये। इस तरह

* आसोटा गाँव मारवाड़में लाडनूँ और सुजानगढ़के बीच है। इसे आसोटा धनपुर भी कहते हैं।

इसी टीलेपर श्रीबालाजीकी मूर्ति स्थापित की गयी। यह स्थापना वि० सं० १८११ श्रावण शुक्ल १० रविवारको हुई। मूर्तिकी स्थापनाके बाद यह गाँव यहीं बस गया। इससे पूर्व यह गाँव वर्तमान नये सालासरसे उतना ही पश्चिममें था, जितना अब पूर्वमें है। चूँकि सालमसिंहजीने इस नये गाँवको बसाया, अतः इसका (सालमसरसे अपभ्रंश होकर) सालासर नाम पड़ा। इससे पहलेवाले गाँवका नाम क्या था, यह पता नहीं चल सका। कुछ लोगोंका विचार है कि यह नाम पुराने गाँवका ही है, पर इस विषयमें कोई तर्कसम्मत प्रमाण नहीं है।

प्रतिमाकी स्थापनाके बाद तुरत ही तो मन्दिरका निर्माण सम्भव न था, अतः ठाकुर सालमसिंहजीके आदेशपर सारे गाँववालोंने मिलकर एक झोंपड़ी बना दी। जब उसे बनाया जा रहा था तो पासके रास्तेसे ही जुलियासरके ठाकुर जोरावर सिंहजी जा रहे थे। उन्होंने जब यह नयी बात देखी तो पास ही खड़े व्यक्तियोंसे पूछा, 'यह क्या हो रहा है?' उन लोगोंने उत्तर दिया, 'बावलिया स्वामीने* बालाजीकी स्थापना की है, उसीपर झोंपड़ी बनवा रहे हैं।' जोरावरसिंहजी बोले—'मेरी पीठमें अदीठ (एक प्रकारका फोड़ा) हो रहा है, उसे यदि बालाजी मिटा दें तो मन्दिरके लिये मैं पाँच रुपये नज़र करूँ।' यह कहकर वे आगे बढ़ गये। अगले स्थानपर पहुँचकर जब उन्होंने स्नानके लिये कपड़े उतारे तो देखा कि पीठमें अदीठ नहीं है। उसी समय वापस आकर उन्होंने गठजोड़ेकी (पत्नीसहित) जात दी और पाँच रुपये भेंट किये। यह पहला परचा—चमत्कार था।

अब मन्दिरका काम चलानेके लिये मोहनदासजी और उदयरामजी प्रयत्न करने लगे और अन्तमें एक छोटा-सा मन्दिर बन गया। इसके अनन्तर समय-समय पर विभिन्न श्रद्धालु भक्तोंके सहयोगसे मन्दिरका वर्तमान विशाल रूप हो गया। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें श्रीबालाजी एवं मोहनदासजीकी ख्याति दूर-दूर फैल गयी। सुनते हैं, श्रीबालाजी एवं मोहनदासजी आपसमें बातें भी किया करते थे। मोहनदासजी तो सदा भक्तिभावमें ही डूबे रहते थे, अतः सेवा-पूजाका कार्य उदयरामजी करते थे। उदयरामजीको मोहनदासजीने एक चोगा दिया था, पर उसे पहननेसे मनाकर पैरोंके नीचे रख लेनेको कहा। तभीसे पूजामें यह पैरोंके नीचे रखा जाता है। मन्दिरमें अखण्ड ज्योति (दीप) है, जो उसी समयसे जल रही है। मन्दिर के बाहर धूणाँ है। मन्दिरमें मोहनदासजीके पहननेके कड़े भी रखे हुए हैं। मन्दिरके सामनेके दरवाजेसे थोड़ी दूरपर ही मोहनदासजीकी समाधि है, जहाँ कानीबाईकी मृत्युके बाद उन्होंने जीवित-समाधि ले ली थी। पास ही कानीबाईकी भी समाधि है।

ऐसा बताते हैं कि यहाँ मोहनदासजीके रखे हुए दो कोठले थे, जिनमें कभी समाप्त न होनेवाला अनाज भरा रहता था, पर मोहनदासजीकी आज्ञा थी कि इनको खोलकर कोई न देखे। बादमें किसीने इस आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया, जिससे कोठलोंकी वह चमत्कारिक स्थिति समाप्त हो गयी।

इस प्रकार यह श्रीसालासर बालाजीका मन्दिर लोक विख्यात है, जिसमें श्रीबालाजीकी भव्य प्रतिमा सोनेके सिंहासनपर विराजमान है। सिंहासनके ऊपरी भागमें श्रीराम-दरबार है तथा निचले भागमें श्रीरामचरणोंमें हनुमानजी विराजमान हैं। मन्दिरके चौकमें एक जालका वृक्ष है, जिसमें लोग अपनी मनोवाञ्छा-पूर्तिहेतु नारियल बाँध देते हैं। भाद्रपद, आश्विन, चैत्र एवं वैशाखकी पूर्णिमाओंको यहाँ मेले लगते हैं। सालासरके प्रसिद्ध संत मोहनदासजीकी एक रचना है, जिसे 'मोहनदास-वाणी' कहते हैं। उसीका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

> हणमत थारे हरख पधे आयो मंगलवार।
> ऊँचा म्हानें राखज्यो अँजनी राजकुँवार॥
> माया मोहनदास नैं दई धकबैं बीर।
> मगल जीमो मेदनी दही चूरमा खीर॥
> मोहन माया मोहनी थानैं देसी दुःख।
> साँचे दिल साहिब रटो सिमर्यां होसी सुख॥
> माया मधम बताय दी तो हाथ न भेर्यां म्हे।
> अंजनी-सुत की आण लड़ाख्या म्हानें लेसी के॥
> मोहन हल कर सांतरो बैल भलेरा जोय।
> मदर में दीपक जगै मत रही जो सोय॥
> धान ओबरै घालज्यो गाडो दबो निपाय।
> ज्यूं खावै ज्यूं काढज्या थारै करे निमठ नाय॥

* आसपासके लोग मोहनदासजीको ही 'बावलिया स्वामी' कहा करते थे।

हरियाणा एवं पंजाबके कुछ हनुमान-मन्दिर

कैथल—करनालके पास स्थित कैथलका पुराणोंमें 'कपिस्थल'के नामसे वर्णन प्राप्त होता है—कपिस्थल अर्थात् बंदरोंका स्थान। यह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परम भक्त श्रीमहावीर हनुमानजीकी भूमि है। यहाँ कई मारुति-मन्दिर हैं। महाभारत-ग्रन्थमें भी इस स्थानका वर्णन मिलता है। महाराज युधिष्ठिरने युद्धको रोकने तथा शान्ति-स्थापनकी इच्छासे समझौता करते हुए दुर्योधनसे जो पाँच गाँव माँगे थे, उनमें यह कपिस्थल भी था।

सिरसा—यह दिल्ली-रेवाड़ी-भटिण्डा लाइनपर उत्तरी रेलवेका स्टेशन है। यहाँके श्रीआगीमुखी हनुमानजी बड़े विख्यात हैं। सिरसानिवासी श्रीशान्तिस्वरूपजीको एक बार बहुत कष्टका सामना करना पड़ा। उस समय एक संतने उन्हें श्रीहनुमानजीकी मूर्तिकी स्थापना और उसकी अर्चना करनेका आदेश दिया था। प्रभु-कृपासे जयपुरमें सुन्दर मूर्तिका निर्माण हो गया तथा सं० २०६ वि० कार्तिक शु० ११ को समारोहके साथ श्रीहनुमानजीके श्रीविग्रहकी प्राण-प्रतिष्ठा हो गयी। इस नामने विग्रहने न केवल श्रीशान्तिस्वरूपजीको कष्टविमुक्त किया, अपितु इनके द्वारा अनेक शरणागत आर्त भी त्राण पा चुके हैं।

—पं० श्रीरमेशचन्द्र शास्त्री 'शान्तिहास' शास्त्री, प्रभाकर

पटियाला—इस नगरमें सरहिंदी दरवाजेसे बाहर श्रीमहावीरजीका एक प्राचीन मन्दिर है। पंजाबमें श्रीहनुमानजीके भक्तोंका एक वर्ग है, जो 'महावीर-दल'के नामसे अभिहित है। दीपावलीसे एक दिन पहले (कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन) आज भी पटियालाके महावीर-दलकी ओरसे हनुमान-जयन्ती-उत्सव बड़े ठाट बाटके साथ मनाया जाता है।

—डा० श्रीनवरत्न कपूर एम्० ए०, पी-एच्० डी०

फिरोजपुर—यहाँ स्टेशनके समीप ही एक मारुति मन्दिर है, जो 'श्रीदेवीसहाय हनुमान-मन्दिर'के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ प्रत्येक मंगलवारको सामूहिक सुन्दरकाण्डका पाठ होता है। बाहरसे आनेवाले यात्रियोंके लिये भी मन्दिरकी ओरसे पूरी व्यवस्था है। प्रायः सत्सङ्ग यहाँ नियमसे हुआ करता है। कार्तिकमें हनुमज्जयन्ती उत्सव विशेष समारोहसे मनाया जाता है। कहते हैं, इस मन्दिरको बने लगभग डेढ़ सौ वर्ष हो गये।

—स्वामी शिवानन्द विश्वानन्दजी

'शौर्य-पुंज हैं श्रीहनुमान'

देश-प्रेमके ज्योतिष्मान
शौर्य-पुंज हैं श्रीहनुमान।
अपना परम सेवाका धर्म,
करते रहे सुमंगल कर्म,
क्योंकि उन्होंने निश्चय ही
समझा देश-भक्तिका मर्म।
बने स्वयं कर्तव्य-निधान,
शौर्य-पुंज हैं श्रीहनुमान।
बढ़े देशपर जब प्रत्यूह,
तने समस्याओंके व्यूह
किये पवन-सुतने दुःख दूर,
पनपाये सुविचार-समूह।
दुःखहर्ता, प्रबुद्ध, बलवान,
शौर्य-पुंज हैं श्रीहनुमान।
सदाचार-सम्पन्न, ललाम,
नायक थे जिनके श्रीराम,
होता रहा धन्य जीवन,
उनके इंगितपर अविराम।
सत्य-निष्ठ, मर्यादावान,
शौर्य-पुंज हैं श्रीहनुमान।
भारतीय संस्कृतिके दूत,
भारतके दृढ़व्रती सपूत,
देते रहे देशको नित
भावात्मक एकता प्रभूत
नव साहसके रम्य विहान
शौर्य-पुंज हैं श्रीहनुमान।
मानवताके शुचि अध्याय,
श्रम-रविके शाश्वत पर्याय,
राजनीतिमें पारगत,
वाक्-निपुण, रण-कुशल, सुकाम
स्नेह-सिन्धु, आदर्श, महान,
शौर्य-पुंज हैं श्रीहनुमान।

—श्रीजगदीशचन्द्रजी शर्मा, एम्० ए०, बी० एड्०

राजस्थानी लोक-साहित्यमें महावीर श्रीहनुमान

(लेखक—डा० श्रीमनोहरजी शर्मा एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

राजस्थान धर्मप्राण प्रदेश है, परंतु साथ ही यह वीरपूजक भी है। ऐसी स्थितिमें यहाँकी जनताके हृदयमें महावीर श्रीहनुमानके प्रति विशेष भक्ति-भावनाका होना सर्वथा स्वाभाविक ही है।

राजस्थानके गाँव-गाँवमें महावीर श्रीहनुमानके थुगले (छोटे आकारके देवालय) दीख पड़ते हैं। कुएँके पास तो महावीरजीका 'थान' (देवस्थान) अनिवार्यरूपसे होता ही है। पेड़के ऊपर लाल ध्वजा फहराती रहती है और उसके नीचे छोटा-सा मन्दिर अथवा मिट्टीका चबूतरा होता है, जिसपर त्रिशूलिकाके रूपमें बजरंगबली विराजमान रहते हैं। कुएँसे पानी निकालते समय सामान्यतया यह पद भक्तिपूर्वक गाया जाता है—

> जय हणमान बलकारी बाल-बच्याल्या पाणी।
> पाणी द्या पतालका जीवै तेरा बालका॥

'हे बलकारी हनुमान! मेरी डोरी बालके समान कमजोर है, परंतु तुम इसीके सहारे पातालका पानी ऊपर ला दो, जिससे तुम्हारे बालक अर्थात् हमलोग जीवित रह सकें।'

राजस्थानमें श्रीहनुमानजीकी मनौती मानी जाती है, उनकी 'जात' दी जाती है और उनके नामपर 'रातिजगा' किया जाता है। उनके 'थान'पर शिशु-बालकके 'जडूले' (मुण्डन)भी उतारे जाते हैं। 'चूरमा' श्रीहनुमानजीका विशेष 'भोग' (प्रसाद) है। चैत्र मासकी पूर्णिमाको बालाजीके मेले जगह-जगह लगते हैं और उनमें दूर-दूरसे यात्री आकर सम्मिलित होते हैं। कई स्थानोंके मेलोंने अत्यधिक ख्याति प्राप्त कर रखी है, जिनमें 'सालासर' गाँवके हनुमानजीकी विशेष मान्यता है। मंगलवार और शनिवार—ये दोनों 'बालाजीके वार' कहे जाते हैं। इन दोनों दिनोंमें भक्तलोग हनुमानजीके 'थान'पर नारियल अथवा 'प्रसाद' चढ़ाकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

इस सम्बन्धमें राजस्थानी महिला-समाजमें गाया जानेवाला एक लोक-गीत देखिये—

> हणमत, काठै तो बाजा बालाजी थारै बाजिया,
> हणमत, कोठै तो घोरया छै नीसाण
> बाबै बजरंगबी रो थुगलो हद बण्यो॥
> हणमत, सालासर बाजा बालाजी थारै बाजिया,
> हणमत, बिसाऊ में घोरया छै नीसाण॥
> थारै हणमत बाग विधूस्यो जी लंका दहमली,
> हणमत, सारया राम रामचंदरका काज,
> बाबै बजरंगबी रो थुगलो हद बण्यो॥

इस लोक-गीतमें महावीर श्रीहनुमानके मन्दिर और वहाँ मनौती पूरी करनेके लिये आनेवाले यात्रियोंकी चर्चा है। अन्तकी दो पङ्क्तियोंमें बजरंगबलीके पराक्रमका संकेत किया गया है। इसी क्रममें महिला-समाजका एक अन्य लोक-गीत भी द्रष्टव्य है, जिसमें देवस्थानकी यात्राका बड़ा ही भावनापूर्ण चित्रण है—

> सुसराजी म्हारा थे छो धरम का बापजी
> थारा हथलेवा सिणगारो म्हे बालाजी नैं धोकस्यां।
> काई तो खातर बहवड़ चाली छ जात जी,
> थे थो काई रै खातर बालाजी नैं धोकस्यो?
> कँवरा र खातर म्हे तो बोली छै जात जी,
> म्हारै चुड़लै रै खातर बालाजी नैं धोकस्यां।
> साहब म्हारा सेजां रा सिणगार जी,
> थारी बैलड़ियाँ जुपावो म्हे बालाजी नैं धोकस्यां।
> पड़तां तो सुणता मारूजी बैलड़ियाँ जुपाड़ जी,
> म्हारै हुकमां रै माहे जात पधारिया।
> रलपया पना मारू बलती सी रात जी,
> कोई दीप उगायो सालासर रै गोरवै।
> दीनी पना मारू गढजोड़े की जात जी
> कोई रोक रुपैयो बालाजी की भेंट में।
> तूठ्यो हणमत सरब सुहागजी,
> कोई गोद जडूलै दीन्यो गीगलो।
> करस्यां बालाजी हरिये मूगां री दालजी,
> कोई दूध को तो करस्यां बजरंग चूरमो।

इस गीतमें 'जात देने' (देवस्थानकी यात्रा करने)-का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। राजस्थानी महिला-समाजको ऐसे गीत अत्यन्त प्रिय हैं। इनसे महावीर श्रीहनुमानजीके प्रति उनकी तीव्र भक्तिभावना प्रकट होती है।

राजस्थानी भक्त-मण्डलियोंमें श्रीहनुमानजीसे सम्बन्धित भजन भी बड़े प्रेमसे गाये जाते हैं।

रखना चाहिये कि महिला-वर्गके गीतों और पुरुष समाजके भजनोंमें विशेष अन्तर है। यद्यपि ये भजन महिला-वर्गमें भी बड़े प्रेमसे गाये जाते हैं, परंतु महिला-वर्गके गीत पुरुष समाजमें नहीं गाये जाते। इन भजनोंमें महावीर श्रीहनुमान्‌की जीवन-गाथाके विशिष्ट प्रसङ्ग पाये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप 'अशोकवाटिकामें हनुमान' तथा 'लक्ष्मण-मूर्च्छाके समय हनुमान'का वर्णन देखिये—

जाय मिल्या सीता माता सूँ, अजनीका पुत्र बलाकारी जी॥टेक॥
पणघट घाटो बैठ्या है बांदर मनमें सा धीरज धारी जी॥
पाणी की पणिहारी उठ चाली, रावण ल्याया हर नारी जी॥
बाग नौलख हींडा भी घाल्यो, हींड रही आमा की डाली जी॥
छोटी सी देह बणी बांदर की, जाय बैठ्यो आमा की डाली जी॥
चित्त उदास देख माता को, ऊपर सूं मुदड़ी डाली जी॥
देख मूदड़ी कलपण लागी, या मुदड़ी किण तो डारी जी॥
के काई ल्यायो उडण पंखेरू, के कोई राक्षस है भारी जी॥
या मुदड़ी राजा रामचंदर की, या मुदड़ी किण तो डारी जी॥
ना कोई ल्यायो उडण पखेरू, ना कोई राक्षस है भारी जी॥
अजनी को पुत्र राम को पायक, सुध लेवण आयो थारी जी॥
जाय कहूँ राजा रामचंदर नैं, मेरे सा बिपदा थारी जी॥
हुकम होय तो बनफल खावूं, मा तन भूख लगी भारी जी॥
पक्या-पक्या फल चुग ल्या बांदर रावण का डर है भारी जी॥
मौ रावणजी सन चढी बांदर पर, फिर भाई डाली डाली जी॥
तुलसीदास भजो भगवाना, ऊपर पेड़ लम्बे डाली जी॥

उपर्युक्त भजनमें हनुमान-चरित्र गाया गया है परंतु इसमें किसी प्रकारका काव्य-कौशल नहीं है, अपितु लोकहृदयकी सरलता व्याप्त है। भजन श्रीरामकथाका अङ्ग है, अतः जनताने इनके अन्तमें अन्य अनेक भजनोंकी तरह 'तुलसीदास भजो भगवाना'का प्रयोग करके संतोष मान रखा है क्योंकि महाकवि तुलसीदासजी श्रीरामकथाके अनन्य गायक हैं। जन-साधारणको साहित्यिक प्रामाणिकतासे कोई मतलब नहीं, वहाँ तो केवल भगवान्‌की भक्तिसे ही प्रयोजन रहता है। साथ ही ऐसे अवसरपर जनसाधारणको काव्यरस नहीं परंतु भक्तिरस चाहिये, जो इन भजनोंमें भरपूर है।

लोक-साहित्यका दूसरा विशिष्ट अङ्ग लोक-कथा है। राजस्थानी लोक-कथाओंमें भी महावीर श्रीहनुमान्‌की महिमा व्याप्त है। व्रतोत्सवोंसे सम्बन्धित कथाओंके वर्गमें 'बालाजी' का प्रभाव वर्णित है। ये कथाएँ भी श्रीगणेशजीकी कथाओंसे लगभग मिलती-सी ही हैं। इन सबमें महावीरजीकी सामर्थ्य और उनकी भक्त-वत्सलताका वर्णन देखते ही बनता है। उदाहरण-स्वरूप एक लघु कथा देखिये—

किसी गाँवमें एक स्त्री नियमसे चूरमेका लड्डू और दहीका कटोरा लेकर बालाजीके स्थानपर जाती और उन्हें भोग चढ़ाकर कहती—'मैं देवूं तरणापै में तूं देई बुढ़ापै में।' अर्थात् मैं तुझे जवानीमें भोग चढ़ाती हूँ तो तू मुझे बुढ़ापेमें भोजन देना।

इसी प्रकार अधिक समय व्यतीत हो गया और वह स्त्री बूढ़ी हो गयी। अब वह बालाजीके स्थानपर जानेमें भी असमर्थ थी। उसके बहू-बेटोंने उससे भोजन करनेके लिये कहा तो वह यह कहकर नट गयी कि उसके इष्टदेवता बालाजीको भोग चढ़ाये बिना वह भोजन नहीं कर सकती। इस प्रकार बुढ़िया भूखी ही लेटी रही, तब श्रीमहावीरजी वहाँ स्वयं प्रकट हुए और बुढ़ियाको चूरमेका लड्डू तथा दही भरा कटोरा देते हुए कहा—'तू दियो तरणापै में मैं देवूं बुढ़ापै में।' तब बुढ़ियाने बालाजीका दिया हुआ 'प्रसाद' ग्रहण किया।

इस प्रकार 'बालाजी' प्रतिदिन बुढ़ियाके सामने प्रकट होकर उसे 'प्रसाद' देने लगे। पड़ोसिनने यह देखकर बुढ़ियाके बेटे-बहुओंसे शिकायत की, तब बालाजीने प्रकट होना बंद कर दिया। बुढ़ियाने फिर अनशन धारण किया, जिससे बालाजी पुनः प्रकट हुए। इस बार उन्होंने बुढ़ियाका घर सब प्रकारसे सम्पन्न कर दिया। उसमें धन-धान्यकी कोई कमी नहीं रह गयी।

ऐसी कहानियोंका प्रचार महिला-समाजमें अधिक है। बहुत-सी महिलाएँ तो इन कथाओंको नियमपूर्वक प्रतिदिन स्वयं ही कहकर पुण्य-लाभ करती हैं। अपने समयको भक्तिमय बनानेकी यह एक सरल शैली है कि स्वयं ही कथा कह लें और स्वयं ही उसे सुन लें। कहना न होगा कि ये कथाएँ पुराणादि प्राचीन ग्रन्थोंमें तो नहीं मिलतीं किंतु जनश्रुतिपर ही अवलम्बित रहकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही हैं। ऐसी स्थितिमें यह अनुमान लगाना कठिन है कि ये कितने प्राचीन कालसे प्रचलित हैं और इनकी रचना किस प्रकार हुई थी।

लोकगीतों और लोककथाओंके अतिरिक्त लोक-प्रचलित

दोहेमें भी अनेकश श्रीहनुमानजीका स्मरण किया गया है। ये 'आराध्य देव'के रूपमें लोकपूजित हैं। राजस्थानमें श्रीगणेशके समान ही श्रीबजरंगबलीकी भी मान्यता है। ये हर समय अपने भक्तोंकी सहायता करनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं और भक्तजन उनको स्मरण करके शक्ति प्राप्त करते हैं। यथार्थ ही कहा गया है—

लाल लंगोटो हद धर्यो, तिलक धर्यो असमान।
सारां पहली सुमरिये, अजनी को हणमान॥

हनुमान पञ्चक

(रचयिता—महाकवि श्रीचतुरसिंहजी*)

(दोहा)

सचक सुख कचक कवच पचक पूरन यग्न।
रचक रचक कष्ट ना हनमत पचक जान॥

(मत्तगयद छन्द)

माहि मसाहिं पठाहि दई
　　दिगदेव महाहि सराहि सिधारी।
धीर समीरज श्रीरघुवीरन
　　धीर हि पीर गभीर विदारी॥
कद अनद सु अजनि नद
　　सदा खल खंदन मदन हारी।
भूधर को धर के कर ऊपर
　　निजर के शुद की जर झारी॥ १॥

बालि सहोदर पालि लयो
　　हरि कालि पतालिहु टालि दई है।
भालि मरालिसि सीय करालि
　　बिडालि निशालि बिहालि भई है॥
टालि दरालि महालिय राय
　　गजालिन घालि चपेट लई है।
ल्यालिहिं घालि दई गध कालि
　　कपालि उतालि बहालि गई है॥ २॥

आसु विभावसु पासु गये
　　अरु तासु सुहासु गरासु धर्यो है।
अच्छ सु वच्छन तच्छन तोरि
　　स रच्छन पच्छन पच्छ कर्यो है॥
भार अपार कु झार पछार
　　समीर कुमार सुमार भर्यो है।
को हनुमान समान जहान
　　पखानत आज अमान भर्यो है॥ ३॥

अजनि को सुत भजन भीरन
　　सजन रजन पज रहा है।
रुद्र समुद्रहि छुद्र कियो
　　पुनि क्रुद्ध रसाधर ऊद्ध लहा है॥
मोहि न ओप कहा पतऊ
　　सुव जोप दया कर तोप कहा है।
गाथ्य अकथ्य अनन्त कहा
　　हनुमन्त सु हथ्य समथ्य सहा है॥ ४॥

भान प्रभानन कै अनुमान
　　गये असमान विहान निहारी।
खान लगे मघवानहु को
　　सु कियो अपमान गुमानहिं गारी॥
मान परान लगे लछमान सु
　　आनन गानपती गिरधारी।
धान निवाय सुजान महान सु
　　है हनुमान करान हमारी॥ ५॥

(दोहा)

वसु दिशि औं पौराण दग इक इक आधे आन।
सित नवमी इष इन्दु दिन पचक जन्म जहान॥

—प्रेषिका—श्रीमती कमला अग्रवाल बी० ए०, बी० एड०, आर० ई० एस्०

---

* महाकवि महाराज चतुरसिंहजी संस्कृत हिंदी राजस्थानी आदि अनेक भाषाओंके मुज्ञाता और मर्मज्ञ तथा मेवाड़ी बोलीके कवि थे। मेवाड़ीमें रचित इनकी रचनाओंका मेवाड़के घर-घरमें प्रचार है। मीरांके बाद मेवाड़में यही इतने लोकप्रिय कवि हुए हैं। इन्होंने मेवाड़ीमें अधिक रचना की है और इन्हें मेवाड़ी बोलीका महाकवि भी कहते हैं। इनके लगभग डेढ़ दर्जन ग्रन्थ प्रकाशित एवं पाण्डुलिपियोंके रूपमें उपलब्ध हैं।—प्रेषिका

मालवी लोक-साहित्यमें श्रीहनुमान

(लेखक—पं० श्रीरामप्रतापजी व्यास, एम्० ए०, एम्० एड्०, साहित्यरत्न)

लोक-साहित्य लोक-जीवनका दर्पण है। इसमें हमें लोक-संस्कृति एवं सभ्यताके दर्शन होते हैं। भारतीय लोक-साहित्यमें हमें जन-जीवनकी झाँकी देखनेको मिलती है। मालवी लोक-साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय लोक-गीतोंमें बहुदेववादकी अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रामें दीख पड़ती है। लोक-मानसकी प्रकृति प्रायः नैतिक मान्यताओंके कारण देवी-देवताओंके सम्बन्धमें अभिप्रायोंकी सूचक है। गीतोंमें वर्णित लोक-देवियों और लोक-देवोंके चरित्रका सम्बन्ध कल्याणकारी उद्देश्यसे युक्त है।*

मालवी लोक-गीतोंमें भी अनेक देवी-देवताओंका उल्लेख किया गया है। मालवाकी धरतीने जहाँ एक ओर अपने आराध्य देव लोकनायक भगवान् श्रीराम गुणोंका बखान किया है, वहीं श्रीरामभक्त हनुमानकी दास्य-भक्ति, शौर्यशील कार्यों आदिका भी गान किया है।

मालवाकी गहन गम्भीर धरती हजारों वर्षोंसे भक्त श्रीहनुमानको श्रीरामके एक सच्चे सेवकके रूपमें मानती आयी है तथा उनके साहसिक कार्योंका उल्लेख अपनी लोक-कथाओं, लोक-वार्ताओं एवं लोक-गीतोंमें करती आ रही है। यहाँ एक लोकगीत देखिये, जिसमें श्रीहनुमानकी अनोखी झाँकी दिखायी गयी है—

> ज श्रीबालाजी माराज अनोखी थाँकी झाँकी।
> थारे माथे मुकुट विराजे, कान काँनामें कुण्डल।
> हाँ बाबा गले बनमाल ल अनोखी थाँकी झाँकी॥
> थारे केसर तिलक विराजे, नैनामें सुरमो छाज।
> बाबा मुखमें नागर पान अनोखी थाँकी झाँकी॥
> थारे अगर चोलो सोवे, थारा प ढालम विराजे।
> बाबा रोम रोममें राम, अनोखी थाँकी झाँकी॥
> थारे पहर्यो वागु रूप मोह रूपामें घटिदा।
> बाबा घोटा की बलिहारी, अनोखी थाँकी झाँकी॥
> थारे पाँव पाँजणियाँ साजे, हाथोंमें गदुया सोव।
> बाबा सम्पत की बलिहारी अनोखी थाँकी झाँकी॥
> लछमण ने मूरछा आई संजीवन बूँटी लाया।
> बाबा लायो पहाड़ उठाय, अनोखी थाँकी झाँकी॥
> रावण ने मार गिरायो विभिषण ने राज दिलायो।
> बाबा लायो सीता माय अनोखी थाँकी झाँकी॥
> थारे दूर दूर का जातरी आवे, चरणामें सीस नमावे।
> बाबा सबकी सुनो पुकार, अनोखी थाँकी झाँकी॥
> तुलसीदास जस गावे, जनम, मरण छुट जावे।
> बाबा नैया कर दो पार, अनोखी थाँकी झाँकी॥

मालवाकी ग्राम-नारीद्वारा गाये हुए इस लोक-गीतमें जहाँ वीर हनुमानकी छविका वर्णन किया गया है, वहीं उनके साहसपूर्ण कार्योंका भी उल्लेख हुआ है। बीच-बीचमें उनको 'बाबा,' 'बाबा,' 'बालाजी माराज' आदि नामोंसे सम्बोधित किया गया है। गीतके अन्तमें तुलसीदासके नामकी छाप लगी हुई है, जिसमें उनके द्वारा इस संसार सागरको पार करानेकी बात कही गयी है।

हनुमानजीने श्रीरामचन्द्रजीकी समय-समयपर जो सहायता की, वह किसीसे छिपी नहीं है। विशेषकर लंका-युद्धके समय उन्होंने जिस रण-कौशल, बुद्धि-चातुर्य एवं दूरदर्शिताका परिचय दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। लक्ष्मणके शक्ति-बाण लगा हुआ है। श्रीराम घबराये-से हैं। सभी वानर आतुर-आतुर हैं। श्रीरामचन्द्रजी सभाके बीच बीड़ा फेंकते हैं—संजीवनी-बूटी आनयनार्थ। यह दुष्कर कार्य कौन करे? किसमें इतनी सामर्थ्य है? अन्तमें हनुमानजीने बीड़ा उठाया—हिमालय पर्वत जाकर संजीवनी-आनयनका। वे अनेक कठिनाइयोंको पार करते हुए संजीवनी-बूटी लानेमें सफल हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजी बूटी पीसते हैं और घूँट पिलाते हैं—हनुमान। श्रीलक्ष्मण होशमें आ जाते हैं। श्रीराम-दलमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ जाती है। निम्नाङ्कित लोक-गीतमें इन्हीं भावोंको दर्शाया गया है—

> पाँच पानका बिड़लो, ओ बजरंग बाला वीर।
> हनुमत बाला वीर, पड़ा सभाके बीच।
> बाला ओ काइ बिड़लो उठाय, सिय बजरंग बाला।
> वीर लछमनके लागी शक्ति बाण, बाला वीर।
> हनुमत बिड़लो उठाय सी।
> आ हनुमत बाला, लछमणने दवा बूटी लाय।

* मालवी लोक-साहित्य— एक अध्ययन —ले० डॉ० श्याम परमार—पृष्ठ १७१

बालाजी बिदलो उठाय गुरज धर्यो,
राम राम कर चल दिया हनुमत बाला बीर।
पोंहच्या बालागढ़, पहाड़ा की परिकरमा देय चलीया।
कन्यन बूटी लादी ओ बालाजी।
पहाड़ उठाय चल दिया आ बालाजी।
पोंहच्या अयोध्या आय बालाजी।
बाण ताक भरत मार्यो बालाजी।
लाग्यो पाँवा आगे आ बालाजी।
ऐसो बाण लाग्यो आ बालाजी—
पड़ा धरण माय आ बालाजी।
भरत मनमें कल्पाय ओ कोई भगत सताय बालाजी।
बैठो मारा बाण पर ओ बालाजी देऊ पहुँचाय—
लकागढ़ बालाजी।
नहीं ओ बैठूँ थारा बाण पर, ओ भरत, मारा—
बीर हनुमत पैदल जाय
राम राम कर चल पड़ा ओ बालाजी, पोंहच्या—
लकागढ़ आ बालाजी।
रामचन्द्र बूटी घसे ओ हनुमत घूट पिलाय
उठो मा लक्षमण बालाजी।
नगरीमें हो रह्यो कोकाट बालाजी उठ्या छे—
लछमण लाड़ला ओ बालाजी।
नगरीमें आनद मचाय हो, नगरीमें हो रही—
ज ज कार ओ बालाजी॥

रावणसे युद्ध करनेके पूर्व भगवान् श्रीराम हनुमानजीको लकामें सीताजीकी खोजके निमित्त भेजते हैं। श्रीहनुमान लकामें जाकर माता सीतासे मिलते हैं और अशोक-वाटिकाको उजाड़कर, लकाको जलाकर एव सीताजीकी खबर लेकर लौटते हैं तो उनसे माता अजनी पूछती हैं—'बेटा! तूने मेरा दूध क्यों लजाया? तुझे तो सीताजीको लेकर ही लौटना था, तू लकासे अकेला ही क्यों आया?' प्रत्युत्तरमें हनुमानजी हाथ जोड़कर कहते हैं—'हे माता! मुझे सीताजीको लानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं मिली थी।' इस प्रकारका प्रसङ्ग कथोपकथनशैलीमें मालवीके इस गीतमें अवतरित किया गया है—

बजरग बाला थे मारो दूध लजायो।
लका में जाता सुन बजरग लका जलाय घर आता॥
माता जानकी ने सिर धर लाता
तो अजनीका पुतर केवाता।
बजरग बोला लका में जाता— सुन मेरी माता
रामचद्र का हुकुम नहीं था,
सो सीता का सिर पर धर कसे लाता॥
माताजी कोप हुआ पुत्तर पर, दूधा से पवत ढायो।
या आरे दूधा का पियारे बाला थ चल काँसे गमायो॥
जल थल देख डरो मत पुत्तर, जल थल भरत उपायो।
थारे घड़ी थे जनम लियो,
थारा पिताजी रा नाम छिपायो।
राम, लछमन, भरत शत्रुघन,
चारों मिल अयोध्या बुलाया।
मात कौसल्या और अजना मुखड़ा से भारत गायो॥
बजरग बाला थे मारा दूध लजायो॥

लोक-संस्कृति एव लोक-सस्कारोंको जीवित रखनेमें जितना अधिक हाथ नारियोंका रहा है, उतना पुरुषोंका नहीं। तीज-त्यौहार मनाना, व्रत उपवास करना एव विधिपूर्वक देवी देवताओंकी पूजा करना आदि कार्योंमें मालवी रमणियाँ सबसे आगे रही हैं। एक स्त्री भलीभाँति सजधजकर श्रीहनुमान बाबाकी पूजा करने जा रही है। वह किन किन वस्तुओंसे हनुमानकी पूजा अर्चना करती है, यह निम्नलिखित गीतमें द्रष्टव्य है। श्रीराम और हनुमान, स्वामी और सेवककी पूजामें किस प्रकारकी विभिन्नता रखी जा सकती है—यह भी इस गीतका विषय है—

छमाछम पूजन चली हनुमान को,
ताता पानी स मारा राम ने निलाऊ॥
तेल उबटन हनुमान को॥छमाछम०॥
केसरीया पागा मारा राम ने पेनावु
पन्नी सिंदूर हनुमान को॥छमाछम॥
छप्पन भोग मारा राम ने जिमावु,
और जाडा सा रोट हनुमान का॥छमाछम०॥
सीता तो नारी मारा राम ने परनाऊ,
बाल ब्रह्मचारी हनुमान है॥छमाछम०॥

मालवाके गाँव-गाँवमें पीपलके वृक्षके नीचे चबूतरेपर प्रस्तर-खण्डोंकी बनी श्रीहनुमानकी मूर्तियाँ बनी एव सिन्दूरसे चमकता हुई दूरसे ही दिखायी देती हैं। इन मूर्तियोंकी प्रमुख विशेषता यह है कि हनुमानजीके एक हाथमें पर्वत तथा दूसरेमें गदा है। वे वीर-वेषमें हैं तथा सजीवनी-पर्वत लेकर लका पहुँचनेके लिये आतुर-से दीख रहे हैं। ये मूर्तियाँ या तो खुले चबूतरेपर होती हैं, या यह अ रा छोटे मन्दिरमें।

हनुमान या तुमई निमन्ते हो !
सरग-नसेनी पार की धारी जे घर नयता दय
तुम मेरे नेवते पवनसुत, तुम भर आइयो हो
साज सजूते आइयो कारज सवाँरन आइयो
कहुँ गूका पर कहुँ धूमा परे तो बिसरिया हो ॥

इतनेपर भी जब विवाहमें आँधी-तूफानका प्रकोप हो दिखायी देता है तो पूस सकटको बिना मारुति भगवान्के कौन टाल सकता है !—इस प्रकारकी पुकार मचाती हुई य बुन्देलखण्डकी नारियाँ धन्य हैं ! मारुतिभगवान्के प्रति यह उनकी निष्ठाका द्योतक है । जो भी इन गीतोंको सुनता है, उसका हृदय भाव विभोर हो जाता है और स्वयं आँखें बरस पड़ती हैं । अवश्य यही हालत है उन स्त्रियोंकी—

पौन के हनुमत हैं रखवारे
हमारे पवनसुत पेमें राजत है जैसें इन्द्र अमार ॥
किसें करे निहारे रखैया गाँव के
घटियो विन्ती कान, कै बेग या के ॥
बिगरे ना काज हमारे
पौन के हनुमत हैं रखवारे ॥

फाल्गुनमें गाये जानेवाले गीतोंमें अशोक-वाटिकाके प्रसङ्गका मोहक चित्र देखते ही बनता है—

जितने हते बाग रखवारे, इक बदरा न मारे ।
जो फल पाय भाय सो खाये कतर कतर क डारे ॥
बाराबाद् बाग कर डारा बिरधा बिरछ उखारे ।
'ईसुर' हुकुम दियो दसकंधर अच्छैकुमार सिधारे ॥

अगले गीतमें भगवान् राघवेन्द्र लक्ष्मण शक्तिके अवसर पर अपनी दुःखभरी कहानी हनुमानजीको सुना रहे हैं—भैया ! यदि रात्रि बीत गयी तो मुझे लोग न जाने क्या-क्या कहेंगे, अयोध्यापर विपत्ति आ पड़ेगी, सीता मुझे त्याग देगी । तुम अपनी वीरताका पुन परिचय दो, अभी रात्रि अवशेष है ।'

का कऊँ बीत जामनी जैहै, का मोमें काऊ कै है
मरे धरे लक्षमन हम देखें, जियत रामका रै है
सुनतन बिपत अवध पै पर है जनकसुता तज दै है
'ईसुर' हनुमान वे हूँ कैं, थारी रात अबै है ॥

हनुमानजीकी वीरताकी छाप शत्रुपक्षपर भी पड़ गयी है । मन्दोदरी भी रावणको समझाती है—

मारे राज न ठानों रार, राम रघुराई सों
जिनके नेंक नेंकसे बदरा, तुमें रये ललकार
छै छै महनों लों सोचे निशाचर, कैसें पर है पार
फरट केचुरियाँ फराव न मोरी, सारो जा सुहागन हार ।
सिय सुकमारि राम डिग भेजो, 'घनश्याम' है जइ में सार ॥

हनुमानजीकी वीरता लोक-विख्यात मनी ही थी, परंतु सीताजीको ले आने जैसे छोटे कामके लिये श्रीरामचन्द्रजी को लङ्कामें भटकानेके कारण वीरमाता अञ्जना उन्हें कैसे फटकार रही हैं, इसका भी दर्शन कीजिये—

तैंने मेरी दूध लजाये पवन सुत
काहे मर्जा तैंने रीछ बदरिया काहे पे कटक सजाओ
सात समुन्दर तैंने नाके काहे सेत बदाओ
लङ्का घात तनक सी कैयें रामचन्द्र भटकाओ
मोकल न मारो मात अजना सैंट सिधन नइ पाओ
'जानकीमरन' आस रघुवर की हरि चरनन चित लाओ ॥

इन गीतोंके अतिरिक्त बुन्देलखण्डमें लगुरियाँ गीत हनुमत्-उपासनाके लिये सर्वाधिक प्रचलित हैं । लंगुरा हनुमानजीका ही नाम है । इन गीतोंके माध्यमसे माता दुर्गा और महावीर हनुमानकी संयुक्त मनौती की जाती है, जो शास्त्रसम्मत भी है । ऐसी प्रतिमाओंका पूजन स्त्रियाँ भी करती हैं । एक लंगुरा गीत द्रष्टव्य है—

बनरित के बरम गय मेव हम तुम भीजें गेका में
कौनों की भीजे रंग चूनरी, कौना की भीजे पाग
दुरगा की भीजे रंग चूनरी, लाँगुर की पचरंग पाग
यारी बेस बाबा भये हम हँस पूछें बारन माय
कौन गुरु के चेला भये कानों फूके कान
राम जू के चेला भये सिव शंकर ने फूँके कान
पे चरन छोड़ को जाय बारे लँगुरिया ॥

धन्य है बुन्देल-धराकी नारियाँ, जो मातृभावसे भगवान् मारुतिकी मनौती करती हैं और अपने लाल्ले हनुमंत लाल्ला । लगुरियारूपमें लोरी सुनाया करती हैं । दोनों ही अवस्थियाँ निष्ठाकी द्योतक हैं । इसके अतिरिक्त प्रत्येक माल्ल्वार और शनिवारको सिन्दूर-तेल आदिसे प्रपूजित भगवान् मारुतिजीकी प्रतिमाएँ देखनेको मिलती हैं—जैसे ध्यानस्थ हनुमान, पातालविजयी हनुमान, सखीके हनुमान, माथा हनुमान आदि । इस प्रकार स्पष्ट है कि बुन्देलखण्डकी जनताके रोम-रोममें मारुतिके प्रति अपार श्रद्धा है ।

मान कवि हनुमानजीके वज्रमयी रूपका वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे शूरवीरोंमें अग्रणी हैं, दयानिधि श्रीरामके दूत हैं और अपने आराध्यकी सहायता करते हुए असुरगणके विरुद्ध उन्होंने अपनी प्रौढ़ सपूतीका परिचय दिया। डाकिनी और शाकिनीके प्रबल शत्रु ये हनुमानजी काकिनीके पवतपर अचलरूपमें आसीन हैं।

वज्र की शिलन भानु मण्डली गिलन,
रघुराज कपिराज को मिलन मजबूत को।
सिन्धु मग धारवो उजारवो विपिन लंक
धारवो उबारवो विभीषण के सूत को ॥
भनै कवि 'मान' महा-शक्ति ग्रसन जान,
राम भ्रात प्राण दान द्रोणगिरि ले अकूत को।
रंजन धनंजय, सोक गंजन सिया को लख्यो,
भाल खल भंजन, प्रभंजन के पूत को ॥

मान कवि कहते हैं कि मारुतनन्दन इन्द्रके वज्र प्रहारको सहनेवाले, सूर्यमण्डलको निगलनेवाले, श्रीराम-सुग्रीवको मैत्री-सूत्रमें बाँधनेवाले, सिन्धु-मार्गको निष्कण्टक बनानेवाले, लंका एवं अशोकवाटिकाको उजाड़नेवाले, विभीषण एवं इन्द्रके सारथिके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले, ब्रह्मशक्तिको आत्मसात् करनेवाले, विशाल द्रोणाचलको धारण करते हुए लक्ष्मणजीको प्राणदान देनेवाले तथा अर्जुन और सीताको आनन्ददायी परंतु दुष्टोंका मान-मर्दन करनेवाले हैं।

रौद्र रस रेल रन खेल सुख मेले भार,
असुर उसले जो उधीले सुर गाढ़ तें।
चपल निसाचर चमून चक चूरे महि
पूरे लंक भाजन अरी जाद पाढ़ तें ॥
जानत को दाढ़ैं सोक सागर तें काढ़ै सान
साढ़ै गुन मा खल बाढ़ तें।
परे प्रान पाप दुष्ट दुवन का ढाढ़े धन्य,
पौन पुत्र दाढ़े जे उराढ़ यम दाढ़ तें ॥

कविने एक-एक कवित्तमें हनुमानजीकी दृष्टि, नासिका, कपोल, अधर आदिका वर्णन करते हुए उनके हुंकारका विशद वर्णन किया है। उपर्युक्त कवित्तमें हनुमानजी की दाढ़ोंको कविने रणभूमिमें रौद्र-रसका संचार करनेवाली बताया है। उनकी दाढ़ोंके प्रबल प्रतापसे राक्षस भली प्रकार परिचित हैं। उनकी चपेटमें आने वालोंके प्राणोंके लाले पड़ जाते हैं। दुष्टोंको उनके कर्मोंका दण्ड देनेवाली पवनपुत्रकी दाढ़ें यमराजकी दाढ़ों के मस्तकको उखाड़ फेंकनेवाली हैं।

अरुण ज्यों भौम सोम दग लौं असीम लोम,
कोमल ज्यों छेम करे कर सिय कंत के।
महा प्रलयोंमें मुनि लोमस के लोमन लौं,
वैरिन बिलोम अनलोम सुर संत के ॥
वज्र मुद मोम रवि मान मत सोम ज
अम्भोम ग्रह सोम कर अरिन के अंत के।
महन के खाम जोम होत है अजोम जोम
ज्वालिन के तोम यदीं रोम हनुमत के ॥

हनुमानजीकी रोम राशिकी वन्दना करते हुए कवि कहता है कि वह मंगल ग्रहकी लालिमासे अनुरञ्जित है, चन्द्रमाके समान कोमल है तथा श्रीरामके कर-कमलों के समान संतापहारी है। लोमश मुनिकी भाँति वह महा प्रलयमें भी नष्ट नहीं होती। शत्रुओंके लिये प्रतिकूल तथा देवों एवं संतोंके अनुकूल यह रोमावली दुष्टोंके उत्साहको तिरोहित कर देनेवाली अग्नि है। जिसके समक्ष वज्र और मुद्गर भी मोम-तुल्य प्रतीत होते हैं।

और अन्तमें उनके सम्पूर्ण शरीरका वर्णन करनेवाला कवित्त देखिये—

ज्वाल सौं जलै न जलजोर सौं जलै मा अख,
अरि को चलै न जा चलै ना जिमी जग की।
काल दृढ ओट सत कोट की न लागे चोट,
सात कोटि महामंत्र मंत्रित अभंग की ॥
कहै कवि 'मान' मघवान मिलि गीरवान,
दीनो बरदान मान पानके प्रसंग की।
जीत माइ माया मार कीन्हा छार छाया राम
आया कर दाया धन्य काया बजरंग की ॥

सूर्यको एक फल समझकर निगलनेवाले हनुमानजीकी ठोढ़ीपर इन्द्रने वज्र प्रहार किया था। पवनदेवने क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण प्राणियोंका श्वासोच्छ्वास अवरुद्ध कर दिया। तब अग्नि, वरुण, विश्वकर्मा, यम, इन्द्र, शिव आदि देवताओंने हनुमानजीको वरदान दिया कि उनका कभी भी कोई अनिष्ट न होगा।

कवि मानका कथन है कि जिन हनुमानजीने माइ-माया एवं मार (कामदेव) को निर्जीव कर दिया है और जो श्रीरामजी के कर-कमलोंसे पोषित हैं, उनकी दिव्य

सम्भव है। धन्य हैं वे बन्दराली हनुमान, जिनपर उनके स्वामी सदैव सानुकूल हैं।

इस प्रकार हनुमानजीकी भक्तिसे सम्बन्धित साहित्यमें 'हनुमत्-पताका'का अनूठा महत्त्व है। कविकी अनन्य भक्ति-भावनासे निःसृत व प्राञ्जल कवित्व काव्य-कौशल, आत्मविश्वास एवं निष्कामताये परिपूर्ण है। साधारण पाठकोंके लिये हिंदी-भाषामें यह काव्य विलास बनता है—साहित्य कोउ तन्मयतापूर्ण शिक्षा।

आदिवासी लोक-जीवनमें श्रीहनुमानजी

(लेखक—श्रीगुरुबरणकुमारजी)

शक्ति और पराक्रमके देवता श्रीहनुमानजीकी उपासना अनादि कालसे होती आयी है। इनकी पूजा आदिवासी लोक-जीवनमें प्रारम्भ-कालसे ही होती रही आ रही है। प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल नवमी तिथिको मारुतनन्दन महावीरकी जयन्ती मनायी जाती है। इस अवसरपर छोटानागपुर-अञ्चलके आदिवासी भी पीछे नहीं रहते। आदिवासियोंके इष्टदेवता भी हनुमानजी ही हैं। बहुत-सी आदिवासी जातियोंका विश्वास है कि हनुमानजीका जन्म राँची जिलेके गुमला प्रखण्डके निकट आजन ग्राममें ही हुआ था। उनकी माता अञ्जनी यहीं निवास करती थीं। माता अञ्जनीके नामपर ही उस गाँवका नाम बादमें आजन पड़ा। आजन ग्राममें खुदाई करनेपर पुरानी ईंटें भी प्राप्त हुई हैं।

श्रीराम-जन्मोत्सवके दिन श्रीरामके अनन्य भक्त एवं सेवक श्रीहनुमानजीकी भी विशेष पूजा अर्चना की जाती है और पूर्ण उत्साह एवं गौरवपूर्वक श्रीरामनवमी-का जुलूस निकाला जाता है। यह जुलूस तो लगभग पचास वर्ष पूर्वसे ही निकाला जाना प्रारम्भ किया गया है, परंतु श्रीहनुमानके प्रति श्रद्धा-भक्ति तो बहुत पूर्वसे ही अर्पित की जाती है। श्रीहनुमानजी मन-कामना पूर्ण करनेवाले देवता हैं। आदिवासी समाजकी प्रायः सभी जातियोंके लोग हनुमदुपासनाको अपना गौरव समझते हैं। 'उरॉव' जातिमें एक उपाधि है—'प्यारः'। प्यारः एक देवताको कहा जाता है। इस सम्बन्धमें जानकारी देते हुए प्रो० धनराम पाण्डेयजीने बताया कि वास्तवमें एक रूपमें प्यारः देवता श्रीहनुमान ही हैं।

श्रीहनुमान-जयन्ती राँची जिलेमें बड़ी धूमधामसे मनायी जाती है। चैत्र शुक्ला अष्टमीकी रात्रिमें विशेष झाँकी प्रतियोगिता श्रीरामनवमी-श्रृंगार-समितिके तत्त्वावधानमें आयोजित की जाती है। प्रधानतया धार्मिक कथाओंपर आधारित झाँकियाँ नगरकी विभिन्न मण्डलियोंद्वारा निकाली जाती हैं। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार उसी रात्रिमें ही प्रदान किये जाते हैं। इसके लिये पुरस्कार-निर्णायक-समिति गठित की जाती है और प्रायः जिलाधिकारी पुरस्कार वितरण करते हैं। प्रोत्साहन पुरस्कार देनेकी भी व्यवस्था रहती है। अष्टमीकी रातमें सारी रात जागरण होता है। महावीर-मण्डलके सदस्य इस रात्रिको विभिन्न खेल दिखाते हैं। तलवारबाजी, लाठी, गदका-बनैठी आदिके खेल भी लोगोंको खूब दिखाते हैं। प्रातः चार बजे पुरस्कार वितरण होता है। उस समय ध्वजरंगबलीकी जय, 'लाल-लँगोटवालेकी जय', 'महावीर स्वामीकी जय'के घोषसे वातावरण गुञ्जित हो उठता है। चैत्र मासके प्रारम्भसे ही प्रति मंगलवारको अपर-बाजार चौक, चर्च-रोड-चौकस्थित महावीर मन्दिरोंमें प्रसाद चढ़ानेके लिये हनुमान भक्तोंकी बड़ी भीड़ होती है। अब तो राँचीकी प्रधान सड़कपर भी दो नये भव्य महावीर मन्दिरोंकी स्थापना हो गयी है, जहाँ संध्याके समय दर्शनार्थियोंकी भीड़ लग जाती है। इस छोटानागपुर प्रमण्डलमें पुराने महावीर-मन्दिर भी बहुत हैं। चैत्र मासमें श्रीराम-भक्ति और श्रीहनुमान-भक्ति तो देखते ही बनती है। यहाँकी आदिवासी विभिन्न जातियाँ भी अपनी भक्ति दिखानेमें किसीसे कम नहीं। रामनवमीके दिन महावीर झंडा जुलूसमें भाग लेने आदिवासी आबालवृद्ध नर-नारी अत्यन्त उत्साहसे दूर-दूरके गाँवोंसे आते हैं। वे अपनी मण्डलीमें मानरीवी पताका भी जुलूसमें लाते हैं। चैत्र नवमीके दिन अपर-बाजार-चौकसे जुलूस प्रारम्भ होता है और दोपहरको मिलन-स्थानमें जाकर वह मेलेके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। इस बीच दूर-दूर मुहल्लेके झंडे भी बाजा-गाजा, खेल-तमाशेके साथ मिलते जाते हैं और तपोवन पहुँचते-पहुँचते। करीब ५०० से ७०० बड़ी-बड़ी महावीरी पताकाओंका मेला-सा लग जाता है। भजन-कीर्तनमण्डली, मेले-ठेलेके मध्य बजरंगबलीका स्वाँग बनाकर पुराने नवकोंकी मण्डली और

दर्शकोंकी भीड़—सभी एक अनोखा परिवेश उपस्थित करते हैं। एक दिनका यह आयोजन अपने ढंगका अनूठा होता है। एक-एक पताका १०० से १००० रुपये तककी होती है। यहाँ विभिन्न मुहल्लोंमें महावीर मण्डलकी स्थापना की गयी है।

छोटानागपुरमें महावीरी झण्डे उत्सवकी विशेष प्रतिष्ठा है। यहाँके लोक-कवियों एवं लोक-गायकोंने श्रीराम तथा श्रीहनुमानकी भक्तिपर आधारित बहुत-से गीतों और भजनोंकी रचना की है। जनजातियोंकी विभिन्न जातियोंमें श्रीराम-भक्ति एवं हनुमान भक्तिके गीत रचे गये हैं। 'बिरहोड़' नामक आदिवासी जाति अपनी ही 'बिरहोड़ रामायण'का पाठ करती है। उस रामायणके अनुसार हनुमान महान् पराक्रमी थे। उन्होंने समुद्रको उछलकर पार किया, समुद्रके किनारे पहुँचकर वातका रूप बनाया और सीताजीके स्नान हेतु पानी लानेवाली एक पनिहारिनके घड़ेमें अँगूठी डाल दी और स्वयं उस ओर उड़ चले। यहाँ माता सीताको अशोक-वाटिकामें अपना स्वरूप दिखाया और सारी बातें बतायीं। उन्होंने लङ्का-दहन किया और वहाँसे पुनः समुद्रमें गोता मारकर अपनी पूँछकी आग बुझायी—हाथसे रगड़कर। उन्होंने उसी हाथसे अपना मुँह भी पोंछ लिया, जिससे उनका मुँह काला पड़ गया। अन्यथा पहले उनका मुख काला नहीं था। इसी तरहकी अनेकों विभिन्न बातें 'बिरहोड़ रामायण'में उल्लिखित हैं।

सादरी और मुण्डारी बोलीमें भी अनेक गीत भजन बनाये गये हैं। भक्त जब उन्हें गाने लगते हैं तो वे तन्मय होकर अपना सुधि भूल जाते हैं। मुण्डारी बोलीके यशस्वी कवि बुदूबाबूने रामायणका आधार बनाकर छोटे-छोटे गीतोंकी रचना की है, जो मुण्डा आदिवासी क्षेत्रमें अधिक लोकप्रिय हैं। इन्होंने श्रीराम, लखन, सीता, अङ्गद, हनुमान, जामवंत और नल-नीलकी वीरता, सेवा-भक्ति और श्रद्धाके भावपूर्ण गीतोंकी रचना की है। सादरीमें 'हनुमान शतक'की भी रचना की गयी है। फुटकर रूपसे तो बहुसंख्यक गीत लिखे गये हैं। मुण्डा लोक-कथाके आधारपर 'छाउ-नृत्यकी' उत्पत्तिका कारण श्रीहनुमान ही बताये गये हैं। श्रीहनुमानने बचपनमें सूर्यको खिलौना समझकर उसे प्राप्त करनेके निमित्त धरतीपरसे छलाँग लगायी (उन्हें वरदान प्राप्त था कि वे चाहे जितनी ऊँचाईतक उछलकर जा सकेंगे)। देवताओंने देखा कि सूर्यके पास पहुँचते ही हनुमान तो भस्म हो जायगा, अतः इसकी रक्षा करनी ही चाहिये। तत्काल उन्होंने रंगारंग परिधान पहन, मुँहपर मुखौटा लगाकर धरतीपर ऊँचे स्वरके बाजेके साथ नृत्य प्रारम्भ कर दिया। हनुमानजीने वह आवाज सुनी तो वे नीचेकी ओर आकृष्ट हुए और तड़ककर धरतीपर आ गये तथा नृत्यमें सम्मिलित हो गये। धरतीके लोगोंने जब उस नृत्यको देखा, तभीसे वे भी उसी तरह नृत्य करने लगे।

श्रीहनुमानके प्रति आदिवासियोंकी श्रद्धा भक्ति देखते बनती है। श्रीराम-भक्तिका ही प्रभाव है कि आज सदानी (नागपुरी) बोलीमें रामायणकी कथा लिखी गयी है और हनुमान चरित गीतोंमें आबद्ध किया गया है। पापामणि नामक एक आदिवासी वृद्धाने तो बालकाण्डका सादरी बोलीमें पद्यानुवाद भी मौखिक ही किया था और हनुमान चरित भी वह गाकर सुनाया करती थी।

श्रीहनुमानकी पूजा केवल नगरोंमें ही नहीं, ग्रामीणोंके बीच भी प्रख्यात है। गाँवोंमें भी महावीर-मण्डलकी स्थापना की गयी है।

इन लोक-गीतों और लोक-कथाओंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि आदिवासी-क्षेत्रमें श्रीहनुमान कितने लोकप्रिय एवं पराक्रमी देवता हैं। मुण्डारीके लोककवि बुदूके कुछ गीतोंका हिंदी-भावार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'प्रभु राम लखनकी आज्ञासे
कोई-कोई वीर
चलो-चलो कहकर उछल रहा है
सरपर ढोकर
पहाड़-पत्थर लानेके लिये
उत्तर दिशाकी ओर चलें।
प्रभु राम-लखनकी आज्ञासे
वीर हनुमान राम-राम नाम लेते हुए
उत्तर दिशासे पहाड़ लानेको उठे।
इसीलिये बुदूबाबू गीत रचा रहे हैं
प्रभु, राम लखनकी आज्ञासे—'

हनुवीर आयुम केन, सोड़ोको दोरे तैयार अना
होयो होन एन रे तिगुन जान खीमते सिरमारे चकी केन—
चकी अनते कोटन बुर बेतन बुर धेर ताम
सोबेन गुड़ा गिड़ी जान।
हुकार शब्दों केन अयोम तेको सोब्बो अना
बोंगा बिड़ जोको राकड़ातान
चमत्कार सुइन सादी जान
छुटुर थाली गिड़ी जान
जतय जेतय काजी ताम
बुरु बोंगा होड़ा जान

है। ऐसे पवनकुमार हनुमानजीका भजन करना चाहिये। यह भावार्थ इस श्लोकका है—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्।
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत्॥

परम तेजस्वी, काल-प्रहारकारी प्रभतासम्पन्न वीरवर हनुमान की आराधना अति फलदायक होती है। श्रीरामकी आराधनाके साथ श्रीहनुमानकी आराधना भी अवश्य की जाती है क्योंकि धारणा है कि श्रीहनुमानकी आराधनासे श्रीराम प्रसन्न होते हैं और मोक्षकी प्राप्ति होती है। श्रीरामभक्त हनुमानकी उपासना सकल कष्ट निवारण के लिये अचूक सिद्ध मन्त्र बतायी गयी है। लोकधारणामें भी गीतोंके माध्यमसे यह बात व्यक्त की गयी है।

श्रीहनुमान श्रीरामभक्त हैं अतएव छोटानागपुरका आदिवासी-समाज भी श्रीहनुमानकी सात्त्विक पूजा करता है। वे बजरंगबलीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आराधना करते हैं और चैत्र मासकी शुक्ल नवमी तिथिको महावीरी झंडेके जुलूसमें भाग लेते हैं। कुछ लोग इसे बाह्य प्रभाव भी कहते हैं, किंतु यदि वैसा हो भी तो भी हनुमानकी उपासनाका सम्बन्ध इनके समाजमें अति प्राचीनकालसे चला आ रहा है। इस आधारपर यह कहा जा सकता है कि श्रीहनुमान भी आदिवासियोंके इष्टदेव हैं।

नागपुरी भाषामें श्रीहनुमान-सम्बन्धी लोक-गीत

(रचयिता—कविवर पौराणिक श्रीगौरीशंकरजी शर्मा)

नागपुरी भाषामें भी श्रीहनुमानजीकी स्तुति आदिसे सम्बन्धित रचनाएँ लोकगीतोंके रूपमें प्राप्य हैं, जिनमें इन्हें बुद्धि विद्याके आगार एवं दातार, रोग-शोक-नाशक, भव हरण महावीर आदि शब्दोंसे सम्बोधित किया गया है। झूमर और फगुआमें भी इनके गीत मिले हैं, जो शब्द-सौन्दर्य एवं भाव-लालित्यसे परिप्लुत हैं। यहाँ कुछ नमूने प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

झूमर—

जय जय हनुमान, अतुलित बलवान जयति अंजनि-लाल।
जय महावीरे गे साजन भजु सदा मगने अमरे॥ ध्रु०॥
जय पवननन्दन श्रीराम-शत्रु-शमन कवन वरन देव गुन के।
सागरे गे साजन भजु सदा मगने अमरे॥ १॥
केस कुंचित, भाल तिलक सोहे विसाल कुंडल कान जनेव—
माला कण्ठ धरे गे साजन, भजु सदा मगने अमरे॥ २॥
जय गदा धजा धार विद्या-बुद्धिके आगार जय केसरी—
कुमार, मंगल मन्दिर रे गे साजन भजु सदा मगने अमरे॥३॥
भागत प्रेत-भूत, सुमिरने रामदूत दुःख-दद रोग शोक नासे।
कपिवरे गे साजन भजु सदा मगने अमरे॥ ४॥
गौरी शंकर दास राम प्रेमे हरखात उरे सिया रघुबीर—
धारे निरन्तर गे साजन भजु सदा मगने अमरे॥ ५॥

जोड़ा—

बुधि विद्या के दातार बल गुनक आगार, भव सरज हर।
नीलकण्ठ के सुवने गे साजन भजु मन अंजनी-नन्दने॥ध्रु०॥
भये सुकण्ठ सहाय, श्रीजानकी सुधि लाय हरिप्रेम सरसाय।
अंगद जीवने गे साजन भजु मन अंजनी-नन्दने॥ १॥
रिद्धि-सिधि दाता सियावर दये सत हिया-भगति भरल।
भल नेहाल मगने गे साजन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ २॥
द्रोण पर्वत लाय सजीवन हित जाय लखन लेल जियाय।
केसरी क धन गे साजन भजु मन अंजनी-नन्दने॥ ३॥
दशमुख नागपास अहिरावन कुहास, एहि ते उबारे बीर।
राम लछुमनन गे साजन, भजु मन अंजनी-नन्दने॥ ४॥
हिय बसु रघुनाथ, सदा सिय-बन्धु साथ, हर दास दुःख।
आसरे गौरी नन्दने गे साजन भजु मन अंजनी-नन्दने॥५॥

फगुआ—

नौमि सदा पद अंजनी-लालक नौमि सदा पद अंजनि-लाल॥ध्रु०॥
जे गुन आगार, ग्यान के सागर,
राम सियाधर जे हिया अन्तर
जे बलधाम अमंगल कालक नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥१॥
दुःख के नासत, सुख सरसावत
भाग जे प्रेत-पिशाच भगावत
निधि सिद्धि दायक, सतन पालके नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥२
केसरी नन्दन शंकर के धन,
राम सिया प्रिय से चिर जीवन
अमित पराक्रम तेज दयालके नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥३॥
पाप निवारि के ताप नसावत
दारिद भंजि के संकट टारत
छेदहु साथ गौरी भय जाल के, नौमि सदा पद अंजनी-लाल॥४॥

प्रेषक—श्रीराधाबिहारीजी

आधुनिक काव्यमें हनुमानजीका स्वरूप

(लेखक—डा० श्रीरमेशचन्द्रजी गुप्त एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आधुनिक युग विज्ञानका युग है। इसमें अप्राकृत और अस्वाभाविक बातोंपर विश्वास नहीं किया जाता। साथ ही प्रत्येक वस्तुको तार्किक दृष्टिसे परखा जाता है। इसलिये आधुनिक श्रीराम-काव्यमें चरित्रकी अप्राकृतताको दूर किया गया है और पात्रोंको स्वाभाविक मानवीय रूपमें रखा गया है। वानरोंमें हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद आदिके चरित्रमें देवताओंका अवतार अथवा बंदरकी आकृतिको स्वाभाविक नहीं माना गया। उनका मानवरूपमें ही स्वीकार किया गया, भले ही प्रवृत्तियोंमें वे बंदर हों। (साकेत, पृष्ठ ४८७) हनुमानजीके अलौकिक कृत्योंमें अध्यात्म-शक्ति और योगका आधार रखा गया। (रामराज्य, पृष्ठ ७०) हनुमानजीके चारित्रिक निर्माणमें कवियोंके मानवतावादी जीवन-दर्शनने भी पर्याप्त प्रभाव डाला है। श्रीराम पीड़ित मानवताका उद्धार करनेवाले नेता हैं। हनुमानजी श्रीरामको मानवीय कल्याणके कार्यमें अपना सहयोग देते हैं।

हनुमानजीके चरित्रमें दो प्रमुख गुण हैं— १-श्रीराम भक्ति और २-वीरता। हनुमानजीकी वीरता उनके द्वारा समुद्र-लङ्घन, लङ्कामें अनेक वीरोंका नाश और लङ्का-दहन, सीता-खोज, श्रीराम-रावण-युद्ध, लक्ष्मण-शक्ति आदि प्रसङ्गोंमें स्पष्ट हुई है। यह वीरता विवेकसम्मत भी है। लंकामें प्रविष्ट होकर सीताका पता लगाना बिना विवेकके सम्भव नहीं था। यह सत्य है कि हनुमानजीकी सहायताको पाकर भी सुग्रीव असहाय थे, क्योंकि हनुमानजीको स्वयं अपनी शक्तियोंका ज्ञान नहीं रहता था। वे बुद्धि-विद्या-शील-सम्पन्न होनेपर भी अपनेको नगण्य समझनेवाले, स्वार्थ-निरपेक्ष और अध्यात्म-साधक थे। श्रीराम कहते हैं—

सब कुछ होकर कुछ न समझते अपने को, तुम इतने सादे,
योगक्षेम यदि मिले तुम्हारा, स्वर्ग राज्य यह भूपर छा दे।
तुम्हें प्रकट मेरी निष्ठा से, मुझे शान्ति मिले ज्यों तुम्हारी,
तो फिर किसकी सुखी न होगी उत्तर दक्षिण भूमि हमारी॥
(रामराज्य डा० बलदेवप्रसाद मिश्र पृष्ठ ८८)

वाल्मीकिरामायणमें कपिराज सुग्रीव हनुमानजीके गुणोंका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित॥
(४।४४।७)

'हनुमान्! तुम नीतिशास्त्रके पण्डित हो। एकमात्र तुम्हीं में बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण तथा नीतिपूर्ण बर्ताव एक साथ देखे जाते हैं।'

श्रीराम हनुमानजीकी शक्तियोंको संचित करके विश्वकल्याणके लिये नियोजित करते हैं। अध्यात्म (हनुमान) और भौतिकता (रावण)—इन दो शक्तियोंमें संघर्ष होता है। दोनों एक-दूसरेसे कम नहीं—

दोनों विकट महा मानव थे, दोनोंमें थी शक्ति अपार।
किंतु एक यदि मूर्त पुण्य तो अपर मूर्तिधारी था पाप॥
(रामराज्य पृष्ठ १०४)

अन्तमें हनुमानजीकी सहायतासे श्रीरामकी विजय होती है।

इस प्रकार आधुनिक श्रीराम-काव्योंमें हनुमानजीको भक्ति-काव्योंकी भाँति देवताका अवतार, पवनपुत्र अथवा अन्य कोई अलौकिक पुरुष न मानकर उन्हें अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा आदि शक्तियोंसे युक्त एक मानव ही चित्रित किया गया है, जो अपनी अध्यात्म-साधनाके कारण साधारण मानवोंसे कहीं ऊपर उठ चुके थे। वे महामानव थे और उनमें अपार शक्ति थी। यह शक्ति अध्यात्मकी शक्ति थी, जो श्रीराम-भक्तिका बीज पड़नेसे प्रस्फुटित हुई। आधुनिक श्रीराम-काव्यमें हनुमानजीकी श्रीराम-भक्ति भी विवेकसम्मत और सच्ची है। यह एक तरहसे आध्यात्मिक उत्थान और विश्व-कल्याणका पर्याय है। अतः श्रीराम-भक्ति और वीरता—दोनों गुण अन्योन्याश्रित बन गये हैं।

आधुनिक कवियोंने हनुमानजीका जो स्वरूप दिखाया है, वह अत्यन्त दिव्य है, मानवीय गुणोंसे युक्त होकर भी वन्दनीय है और आधुनिक मूल्यादर्शोंकी उपेक्षा रामसे अधिक राम-काव्यके नामको सार्थक करता है।

उपासना-अनुष्ठानके सम्बन्धमें निवेदन

(नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्राकृत जगत् अनित्य, अपूर्ण और विनाशी है, अतएव दुःखालय है। अतः प्राकृतिक वस्तुओं और स्थितियोंमें सुखकी खोज करना वास्तवमें मूर्खता ही है। यहाँ मनुष्य जो कुछ भी प्राप्त करता है, वह स्थायी नहीं होता, अधूरा ही होता है और उसका वियोग अवश्यम्भावी है। यहाँ वास्तविक सुख उसीको मिलता है, जो सारे जगत्को भगवान्में और भगवान्को जगत्में भरा देखता है। वही नित्य और पूर्ण परमानन्दस्वरूप भगवान्को देखता हुआ आनन्दमय बना रहता है।

भगवान्के श्रीमुखके वचन हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
(गीता ६। ३०)

'जो सर्वत्र मुझको देखता है और सबको मुझमें देखता है, मैं उससे कभी अलग नहीं होता और वह मुझसे कभी अलग नहीं होता।'

फिर यहाँ जो कुछ भी हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि भोगरूपमें प्राप्त होते हैं, वे सब प्रारब्धके ही फल हैं।

परंतु कुछ ऐसे 'प्रबल कर्म' भी होते हैं—जैसे सकाम भगवदाराधन या देवाराधन, किसी कारणवश शाप या वरदान—जो तत्काल 'प्रारब्ध' बनकर फलदानोन्मुख प्रारब्धके फलको रोककर बीचमें अपना फल भुगता देते हैं। जैसे किसीके प्रारब्धमें पुत्र-प्राप्तिका योग नहीं है, पर विधिपूर्वक 'पुत्रेष्टि-यज्ञ'का अनुष्ठान करनेपर नवीन प्रारब्ध-निर्माणके द्वारा वह पुत्र प्राप्त कर सकता है। ऐसे बहुत-से उदाहरण प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलते हैं। 'मृत्युंजय' आदिका सविधि अनुष्ठान करनेपर अल्पायु मनुष्य भी 'दीर्घ-जीवन' लाभ कर सकते हैं। मार्कण्डेयजीका भगवान् शंकरकी उपासनाके फलस्वरूप अमरत्व प्राप्त करना प्रसिद्ध ही है। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें 'सकाम उपासना'का विस्तृत उल्लेख है।

यद्यपि सकाम उपासना बुद्धिमानीका काम नहीं है, क्योंकि उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला फल अनित्य, अपूर्ण और दुःखप्रद ही होता है, तथापि सात्त्विक सकाम उपासनासे भी उसके स्वरूपानुसार न्यूनाधिक रूपमें अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, जिसका फल अन्तमें निष्कामताकी प्राप्ति होता है।

यह भी सत्य है कि भगवान् अपनी मङ्गलमयी सर्वज्ञता और इच्छासे हमारे लिये जो कुछ भी फल विधान करते हैं, चाहे वह हमारी सीमित एवं अदूरदर्शिनी बुद्धिके कारण हमें अशुभ या दुःखप्रद ही जान पड़े, परंतु वास्तवमें वह परम शुभ और मङ्गलकारी ही होता है। इसलिये भगवान्पर और उनकी मङ्गलमयतापर विश्वास करनेवाले भक्त यही चाहते हैं कि उनकी 'मङ्गलमयी इच्छा' ही सदा सर्वत्र अपना काम करती रहे। हमारी कोई भी इच्छा उस मङ्गलमयी इच्छामें कभी बाधक हो ही नहीं। तथापि जो लोग भोग-कामना और भोग-वासनाको छोड़ नहीं सकते और कामना एवं आसक्तिसे अभिभूत होकर 'अन्याय और असत् मार्ग' का अवलम्बन करके भोग-सुखकी आशा रखते हैं, उनके लिये तो भगवदाराधन और देवाराधन अवश्य ही सेवन करनेयोग्य है। इसमें लाभ-ही-लाभ है। यदि श्रद्धा और विधिका निर्वाह पूर्णरूपसे हो जाय तो 'नवीन प्रारब्ध'का निर्माण होकर मनोरथकी पूर्ति हो जाती है। कदाचित् प्रतिबन्धकरूप प्रारब्धके अत्यन्त प्रबल होनेके कारण मनोरथ-पूर्ति न भी हो तो पुण्यकर्मका अनुष्ठान तो बनता ही है। इसके विपरीत सांसारिक साधन चाहे जितने भी किये जायँ, उनके द्वारा प्रारब्धका फल बदल नहीं सकता। अतएव वे वैध होनेपर भी व्यर्थ हो जाते हैं। आजकल तो सारा जगत् ही विवेकभ्रष्ट होकर भोग-सुखकी आशा-आकाङ्क्षामें उन्मत्त हो रहा है, वह किसी भी पापसे बचना नहीं चाहता। 'अर्थ' और 'अधिकार'की अदम्य लालसासे उन्मत्त होकर वह अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, पापाचार, व्यभिचार, अत्याचार और असदाचार आदिके द्वारा सफलता प्राप्त करनेकी भ्रान्त चेष्टा कर रहा है। इसका फल तो निश्चय ही सब प्रकारसे 'अधःपात' और 'दुःख' ही होगा। आजका मनुष्य दूसरे जीवोंके दुःख-सुखको भूल गया है, वह केवल अपने ही सुखकी लालसामें उन्मत्त है। इसीलिये जगत्में नये-नये 'भोगवाद' उत्पन्न होकर नये-नये द्वेष-कलहकी अवाञ्छनीय सृष्टि कर रहे हैं और इसीलिये मनुष्य नये-नये पापोंका आयोजन करनेमें 'प्रगति' मान रहे हैं। भारतवर्ष भी इस 'पापकी आँधी'में

श्रीहनुमानजीकी उपासना कब करनी चाहिये ?

(लेखक—स्व० प० श्रीअवधरामदासजी दीन रामायणी)

शङ्का—जनसाधारण और अधिकतर महात्माओंके मुखारविन्दसे सुननेमें आता है कि सवा पहर दिन चढ़ जानेके पहले श्रीहनुमानजीका नाम-जप तथा हनुमानचालीसाका पाठ नहीं करना चाहिये।' क्या यह बात यथार्थ है ?

समाधान—आजतक इस दासको न तो किसी ग्रन्थमें इसका कहीं प्रमाण ही मिला है, न अभीतक किसी महात्माके ही मुखारविन्दसे सुननेको मिला है कि उपासकको किसी उपास्यदेवके स्तोत्रोंका पाठ या उसके नामका जप आदि प्रातःकाल सवा पहरतक न करके उसके बाद करना चाहिये। अपितु प्रत्येक स्थलपर इसी बातका प्रमाण मिलता है कि सदा और निरन्तर तैलधारावत् अजस्र, अखण्ड भजन स्मरण करना चाहिये। यथा—

'रसना निसि बासर राम रटौ।' (कवितारामायण)
'सदा राम जपु राम जपु।'
जपहि नाम रघुनाथको चरचा दूसरी न चालु।
तुलसी तू मेरे कहे रट राम नाम दिन राति।'
(विनय पत्रिका)

इसी प्रकार श्रीहनुमानजीके सम्बन्धमें भी सदा सर्वदा भजन करनेका ही प्रमाण मिलता है। यथा—

मर्कटाधीस मृगराज विक्रम महादेव मुद मंगलालय कपाली।
× × ×
सिद्ध सुरबृंद जोगींद्र सेवित सदा, दास तुलसी प्रनत भय तमारी।
(विनय प० २६)

पुनः—

मंगलागार संसारभारापहर बानराकारविग्रह पुरारी।
× × ×
राम सम्राज सोभा सहित सर्वदा तुलसि मानस रामपुर बिहारी।
(विनय प० २७)

कदाचित् किसीका श्रीहनुमानजीके इस वचनका ध्यान आ गया हो—

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

—परंतु इसका भावार्थ लेना चाहिये। यहाँ 'हमारा' शब्दका सम्बन्ध ऊपरकी चौपाईके 'कपिकुल' अर्थात् वानर-योनिसे है, न कि अपने शरीर (श्रीहनुमान विग्रह)से। यहाँ आप कहते हैं—

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥

अर्थात् 'विभीषणजी! आप अपनेको राक्षसकुलका मानकर भय मत करें। बताइये, मैं ही कौन-से बड़े श्रेष्ठ कुलका हूँ। वानर-योनि तो चञ्चल और पशु होनेसे सभी प्रकारसे हीन है। हमारे कुल (वानर)का अगर कोई प्रातःकाल नाम ले ले तो उस दिन उसे आहारका ही योग नहीं लगता—

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

—ऐसे अधम कुलका मैं हूँ, किंतु सखा! सुनिये, मुझपर भी श्रीरामजीने कृपा की है।' इस विरदको स्मरण कर कहते-कहते श्रीहनुमानजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। अतः 'हमारा' शब्दका भाव यह है कि कुल तो हमारा ऐसा नीच है कि 'वानर' शब्दका ही सबेरे मुँहसे निकलना अच्छा नहीं माना जाता, परंतु उसी योनिमें उत्पन्न मैं जब प्रभुका कृपापात्र बना लिया गया, तब तो—

राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें॥

मेरे हनुमान, महावीर, बजरंगी, पवनकुमार आदि नाम प्रातःस्मरणीय हो गये। इसका प्रमाण इस प्रकार है—

असुभ होइ जिन्हके सुमिरन तें बानर रीछ बिकारी।
बेद बिदित पावन किए ते सब महिमा नाथ तिहारी॥
(विनय० प० १६६)

अतएव श्रीरामायणजीके उपर्युक्त पदोंसे श्रीहनुमानजीका नाम प्रातःकाल जपनेका निषेध कदापि सिद्ध नहीं होता, उसका तात्पर्य 'वानर' शब्दसे ही है, जो कुलकी न्यूनताका द्योतक है, स्वयं श्रीहनुमानजीकी न्यूनताका नहीं। कहीं-कहीं लोग ऐसा तर्क करते हैं कि श्रीहनुमानजी रातमें जगनेके कारण सबेरे सोते रहते हैं अथवा सबेरे श्रीरामजीकी मुख्य सेवामें रहते हैं, इसलिये सवा पहर वर्जित है, सो न तो इसका कोई प्रमाण अभीतक इस दीनको मिला है और न यह बात उचित ही मालूम होती कि योगिराज, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य श्रीहनुमानजी पहरभर दिन चढ़नेतक सोते रहते हैं, अथवा

रोम रहा है। इसीसे आज देशमें अनेक प्रकारके चोर, दगाबाजियाँ, परस्पर एक-दूसरेको मिटाने और दुःख पहुँचानेकी चेष्टा, जीव हिंसाके नये-नये कारखाने और वैज्ञानिक हत्यास्त्र आदिके निर्माणके प्रयत्न बढ़ते जा रहे हैं। खाद्य पदार्थोंके लिये भी मांसाहारी देशोंका दृष्टान्त देकर मांस निर्मित पदार्थोंका प्रचार प्रसार किया जा रहा है। सत्य, ईमानदारी, चारित्रिक पवित्रता आदि तो आज मानो कल्पनाकी वस्तु बनते जा रहे हैं। दम्भ, दर्प और अभिमान बेहद बढ़ते चले जा रहे हैं। यही स्थिति चलती रही तो पता नहीं हमारा पतन कहाँ जाकर रुकेगा। इस अवस्थामें भोग-सुखके साधनके रूपमें ही यदि हम अन्याय एवं असत्-मार्गका सर्वथा परित्याग करके भगवदाराधन और देवाराधनमें प्रवृत्त हों तो पतनसे बचनेकी और जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी निश्चित आशा की जा सकती है।

* * *

किसी दूसरेके अनिष्टकी इच्छासे कोई भी अनुष्ठान कभी नहीं करना-कराना चाहिये, इससे परिणाममें बहुत बड़ी हानि होती है। अमुक कार्य सफल हो जानेपर अमुक देवताके लिये अमुक कार्य किया जायगा, या उसको अमुक वस्तु भेंट चढ़ायी जायगी, अथवा अमुक देवस्थानकी यात्रा की जायगी—इस प्रकार मनौती मानना अत्यन्त निम्न श्रेणीकी आराधना है। उचित तो यह है कि पहले सेवा करके तब फल माँगना या स्वीकार करना चाहिये। देवता

हमारा असुर ...
करेंगे—यह ...
विश्वासका अभा...
अतः देवता ...
तथापि मैं तो ...
यह है कि ...
चाहिये। सका ...
अपितु ...
प्रह्लादने भगवा...
बदलेमें कुछ ...
करनेवाला ...
(श्रीमद्भा ७। ...
है, न तो ...
स्वार्थी ही ...

अन्तर्में ...
'भगवत्प्राप्ति' ...
वस्तुएँ या ...
है। अतएव ...
सत्यविचार, ...
साधनोंमें ही ...
पर जो सका...
विविध कामना...
विधान है। ...
सेवन करके ...

श्रीहनुमानजीसे भक्ति-भावकी

(रचयिता—श्रीजेठमलजी व्यास ...)

(१)

दीनोंके सँगाती सदा, वीर हनुमान अति भक्तोंकी पु...
भयो ना हतास बजरंगकी सरण पाय, अभय ...
मरकटाधीस राम-नाम बसे रग-रग राममें सना...
केसरीके नन्द वात्सल्यको निधान जान, काटे फन्द ...

(२)

कृपाके निधान हनुमान! सुनो महरबान, कहूँ मैं सुजान
दीनोंके जीवन प्रान दूसरो न देख्यो आन संकट म...
भगतोंकी राखो शान, हृदय प्रकाशो ज्ञान गाऊँ गुण...
मय विराजमान सकल गुणोंकी खान, 'जेठ' कहे ...

१०—स्नानमें कूपादिका शुद्ध, ताजा और गन्धादि युक्त जल लिया जाय पर्वोत्सवादिमें दूध, दही, घी, मधु और चीनीके पञ्चामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्धोदकसे स्नान कराया जाय। 'उद्वर्तन'की जगह तिलके तेलमें मिले हुए सिन्दूरका सर्वाङ्गमें लेपन किया जाय। इससे हनुमानजी प्रसन्न होते हैं। कारण यह है कि लङ्का विजयके बाद जब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवादिको पारितोषिक दिया था, उस समय सीताजीने हनुमानजीको एक बहुमूल्य मणियोंकी माला दी थी, किंतु उसमें श्रीराम-नाम न होनेसे वे उदासीन ही रहे। तब सीताजीने उन्हें अपने सीमन्तका 'सिन्दूर' देकर कहा कि 'यह मेरा मुख्य सौभाग्यचिह्न है, इसको मैं धन धाम और रत्नादिसे भी अधिक प्रिय मानती हूँ अतः तुम इसको सहर्ष स्वीकार करो।' तब हनुमानजीने सिन्दूरको अङ्गीकार कर लिया। इसी हेतुसे उपासकलोग हनुमानजीके अङ्गमें तैल-मिश्रित सिन्दूरका लेप करते हैं और मन्त्र-शास्त्रोंके मतसे यह आवश्यक भी है।

११—गन्धमें शुद्ध केसरके साथ घिसा हुआ मलया रेचन्दनका उपयोग करे या लालचन्दनका। पुष्पोंमें पत्तोंवाली नामवाले लाल-पीले, गम्भीर और दीर्घकाय पुष्प (यथा—कमल, केवड़ा, हजारा और सूर्याभिमुख—सूर्यमुखी आदि) अर्पण करे। यह विशेष है कि 'देवशयनी' आषाढ शुक्लैकादशी)से 'देवप्रबोधिनी' (कार्तिक शुक्लैकादशी) तक (१२१ दिनोंमें) प्रतिदिन १०८ तुलसी पत्रोंपर चन्दनकी कलम और अष्टगन्ध (चन्दन, अगर, कपूर, तमाल, नेत्रवाला, केसर, रक्तचन्दन और कूट)से राम नाम लिखकर उन्हें गन्धादिसे पूजितकर ॐ हनुमते न—इस मन्त्रोच्चारणके साथ एक एक पत्र हनुमानजीके मस्तकपर चढ़ाये। इस प्रयोगसे अनेक अनिष्ट दूर होते हैं।

१२—नैवेद्य—प्रातःपूजनमें गुड़, नारियलका गोला और मोदक, मध्याह्नमें गुड़, घी और गेहूँकी रोटीका चूरमा या स्निग्ध रोट और रात्रिमें आम, अमरूद या केला आदि अर्पण करना चाहिये। चूरमा प्रतिदिन न हो सके तो मङ्गलवारको अवश्य बनाये और उसी प्रसादका भोजन करके एक भुक्त 'भौमव्रत' करे। यदि मौन रहकर याम करके भोजन किया जाय तो यह व्रत ऋणमोचनमें अधिक उपयोगी होता है।

१३—नीराजन—घीमें भीगी हुई एक या पाँच बत्तियोंसे करना चाहिये और पर्वोत्सव या महापूजामें ५, ११, ५० या १०८ बत्तियोंसे करना चाहिये। उस अवसरपर शङ्ख, रणसिंगा, विजयघण्ट और नगारा आदिकी ध्वनि हो तो और भी अच्छा है। प्रायः सभी देव-मन्दिरोंमें 'चरणामृत' वितरण किया जाता है। सम्भवतः रुद्रावतार होनेसे हनुमानजीके चरणामृतका प्रचार कम है परंतु उपासक के लिये उपास्यका चरणोदक त्याज्य नहीं माना जाता।

१४—पूजनके पश्चात् उपास्यदेवका जप किया जाता है। उसके तीन प्रकार हैं—वाचिक, उपांशु और मानसिक। इनमें जिसका उच्चारण दूसरेको सुनायी दे, वह 'वाचिक', जिसमें जीभ और होंठ हिलते रहें, किंतु उच्चारण सुनायी न दे, वह 'उपांशु' और होंठ बंद रहें, जीभ चिपकी रहे और जप मनमें होता रहे, वह 'मानस' है। इनमें मानस जपके साथ आराध्यदेवके स्वरूपका ध्यान करना आवश्यक है।

१५—त्रिकालदर्शी तत्त्वज्ञ महर्षियोंने आराध्यदेवोंके विज्ञानमय ध्यान नियत किये हैं। उनके स्वरूपको हृदयंगम करना चाहिये। हनुमानजीके अनेक ध्यान हैं। कारण यह है कि ये अजर-अमर हैं, ब्रह्मस्वरूप माने गये हैं, रुद्रावतार हैं, इन्होंने अनेकों बड़े-बड़े काम किये हैं, समय-समयपर इनके अनेक स्वरूप हुए हैं। परंतु सकाम उपासनामें कामनाके अनुकूल स्वरूपका तथा निष्काम उपासनामें व्यापक स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

१६—उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं
मौञ्जीयज्ञोपवीताभरणरुचिरशिखाशोभितं कुण्डलाङ्कम्।
भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं
ध्यायेद्देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्धिम्॥

उदय होते हुए करोड़ों सूर्य-जैसे तेजस्वी, मनोरम वीरासनसे स्थित, मूँजकी मेखला तथा यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, लालवर्णकी सुन्दर शिखावाले, कुण्डलोंसे शोभित, भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले, मुनियोंद्वारा वन्दित, वेदनादसे प्रहर्षित, वानरकुलके स्वामी और समुद्रको गोपदके समान लाँघ जानेवाले देवतारूप श्रीहनुमानजीका ध्यान सर्वानुकूल प्रतीत होता है।

१७—दूसरा प्रकार यह है कि जहाँ-कहीं, जिस मूर्तिके दर्शनसे चित्त आकर्षित हो, उसे अनेक बार देखकर ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये कि नेत्र बंद करनेपर भी वह स्वरूप यथावत् दीखता रहे। इस प्रकार बाह्य मूर्तियोंको हृदयंगम करके जप करते समय अन्तर्दर्शन करते रहना चाहिये और जपकी संख्या मणियोंकी माला या

अँगुलियोंकी करमालाके बदले वर्णमालात्मक मानसिक मालाका करनी चाहिये। इस क्रियासे हाथसे फिरनेवाली माला, मुँहसे होनेवाले जप और अन्तस्तलमें रहनेवाला मन—सभी इधर उधर भटकनेके बदले संयमित रहेंगे।

१८—इस प्रकार जप, ध्यान और सत्या—इस ध्यानरूपी त्रिवेणीमें उपस्थित होकर साधन करनेसे तामस, राजस और सात्त्विक–सभी साधनाएँ शीघ्र सफल होती हैं और यदि इस प्रकारका जप निष्काम किया जाय तो फिर अकेले हनुमानजी ही नहीं, अपितु वे और उनके स्वामी–दोनों प्रत्यक्ष होकर उपासकके समीप बैठे रहें और उससे बात करनेकी बाट देखते रहें।

१९—मनको एकाग्र करना मनुष्यके लिये असाध्य नहीं है। अभ्याससे दूसरे काम करते हुए भी मनको हम अपने लक्ष्यपर आरूढ़ रख सकते हैं। जैसे–१–अधिकांश अश्वारोही सेनासमूहके एकाधिक आक्रमणोंसे आक्रान्त होकर भी वृक्षशाखामें अटके हुए साथीको हठात् निकाल ले जाते हैं। २–पचास फुट ऊँचे बाँसके सिरेपर निराधार सीधे सोये हुए नटबालक अपने सिरपर रखे हुए पाँच बरतनोंको गिरने नहीं देते। ३–अनुभवी न्यायाधीश कई अभियोगोंकी अलग-अलग अपील एक बारमें सुनते हुए भी अपना आज्ञापत्र निर्दोष लिख देते हैं। ४–भारतमार्तण्ड पण्डित गट्टूलालजी विभिन्न भाषाओंमें पूछे हुए अनेक प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर एक ही बारमें दे देते थे और ५—सिरपर तीने ऊपर रखे हुए जलपूर्ण दो घड़े तथा बगलमें भी एक घड़ा और डोरी लिये मुँहसे वार्तालाप तो अनेक ग्रामीण स्त्रियाँतक करती हैं। अतएव अभ्यास द्वारा जिस प्रकार ये सब काम होते हैं, उसी प्रकार उपासकोंका मन भी एकाग्र हो सकता है।

२०—इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये तदनुकूल आचरणोंकी भी आवश्यकता होती है। हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंसे प्रसन्न होते हैं। अतएव वाल्मीकि-रामायण, तुलसीकृत रामायण, मूलरामायण और सुन्दरकाण्ड आदिके पाठ, गाय या सम्पुटसहित पाठ करने चाहिये। इनके अतिरिक्त कथा-वार्ता, पुराण-पाठ या श्रीरामलीलाका अभिनय आदि जो भी अनुकूल हों, करने चाहिये।

२१—प्रयोगादिके प्रारम्भमें 'प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य'के अनुसार पूर्वाभिमुख होनेमें कई जगह स्थानविशेषके कारण असुविधा हो जाती है। ऐसी स्थितिमें 'पूज्यपूजकयोर्मध्ये पूर्वां तां चिन्तयेत् सुधीः।' (पूजकको ऐसी भावना कर लेनी चाहिये कि उसके आराध्यदेव पूर्व दिशामें ही स्थित हैं) के अनुसार पूज्य (गौ-गुरु द्विज-देवादि) के सम्मुख बैठना चाहिये और 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'—देवके समान होकर देवताका यजन करना चाहिये। अर्थात् त्रिनयन, चतुर्भुज, षण्मुखादिके अर्चनमें अपनेमें तत्तुल्य विधान (न्यास, मुद्रा और उपचारादि) करने चाहिये। साथ ही 'यथा देहे तथा देवे'—जिस प्रकार पूजा आदिमें अपने शरीरमें गन्धादि लेपन या अङ्गन्यासादि करते हैं, उसी प्रकार देवताके भी होने चाहिये। 'वित्तशाठ्यं न कारयेत्'—धर्माचरणादिमें वित्त (या सामर्थ्य) की शठता नहीं करनी चाहिये। अर्थात् धन, मन और समय जितना लगाया जा सके, उसमें संकोच नहीं होना चाहिये।

अन्तमें सम्पुटित पाठके कुछ मन्त्र सूचित कर देना प्रसङ्गके अनुकूल प्रतीत होता है—

(१) उपर्युक्त रामायणादिमें किसी भी श्लोकके 'रां रामाय नमः' का सम्पुट लगानेसे हनुमानजी प्रसन्न होते हैं।

(२) 'ॐ हनुमते नमः' से कार्य-सिद्धि होती है।

(३) अञ्जनागर्भसम्भूत कपीन्द्रसचिवोत्तम।
रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनुमन् रक्ष सर्वदा॥

'हे अञ्जनाके गर्भसे उत्पन्न हुए, सुग्रीवके श्रेष्ठ मन्त्री, श्रीरामके प्यारे हनुमान्! आपको प्रणाम है। आप मेरी सदा रक्षा करें।'

—से रक्षा और अभीष्टलाभ होता है।

(४) मर्कटेश महोत्साह सर्वशोकविनाशन।
शत्रून् संहर मां रक्ष श्रियं दापय मे प्रभो॥

'हे वानराधीश, महान् उत्साही, सब प्रकारके शोकका नाश करनेवाले प्रभो! मेरे शत्रुओंका नाश कर दो, मेरी रक्षा करो और अपनी लक्ष्मी मुझे प्रदान करो।'

—से शत्रुनिवारण, आत्मसंरक्षण और सम्पत्प्राप्ति होती है।

(५) जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
(वा० रा० ५। ४२। ३३-३५)

'अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी जय हो । श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीवकी भी जय हो । मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले कोसलनरेश श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । मैं वायुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका संहार करनेवाला हूँ । जब मैं हजारों वृक्ष और पत्थरोंसे प्रहार करने लगूँगा, उस समय सहस्रों रावण मिलकर भी युद्धमें मेरे बलकी समानता अथवा मेरा सामना नहीं कर सकते ।'

—से राष्ट्रविप्लव, महामारी-भय, महाशत्रुके आक्रमण, अनेक प्रकारकी अगम्य आपत्तियों और देशोपद्रवादि शान्त होते हैं ।

(६)

स देवि नित्यं परितप्यमान-
स्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
दृढव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥
(वा० रा० ५ । ३६ । ४६)

"देवि ! राजकुमार महात्मा श्रीराम आपके लिये सदा दुःखी रहते हैं, 'सीता-सीता' कहकर आपकी ही रट लगाते हैं तथा उत्तम व्रतका पालन करते हुए वे आपकी ही प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए हैं ।"

—से उद्वाह या स्त्री प्राप्ति होती है ।

उक्त मन्त्र, विशेषकर वाल्मीकि-रामायण 'सुन्दरकाण्ड' और 'मूलरामायण'के पाठमें सम्पुटरूपमें लगानेके लिये उपयोगी है । सम्पुटित पाठमें पहले मन्त्र, पीछे मूल, फिर मन्त्र, फिर मन्त्र, पीछे मूल और फिर मन्त्र—इस क्रमसे पाठ किया जाय । पाठारम्भके पहले हनुमानजीका पूजन, प्रार्थना और ध्यानादि किये जायँ । इस प्रकार प्रीति, उदारता और शान्तिके साथ पाठ करनेसे सब प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होते हैं ।

विविध मन्त्रोंद्वारा श्रीहनुमानजीकी उपासना

(तन्त्रोंमें 'हनुमदुपासना'पर शोधकर्ता जिज्ञासुको एक विचित्र स्थितिका भान होगा। 'कुलार्णव', 'शारदातिलक' आदि तन्त्रोंकी मूल प्रतियोंमें इस विषयपर विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है— *'शारदातिलक'की 'अर्थद्योतनिका' व्याख्यामें कुछ ही* पङ्क्तियाँ मिलती हैं । 'प्रपञ्चसार'में भी अत्यल्प ही सामग्री है । १५वीं शतीके प्रसिद्ध तान्त्रिक आगमवागीश श्रीकृष्णानन्दजीके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तन्त्रसार'के तृतीय परिच्छेदमें केवल सुदर्शनसंहितोक्त 'हनुमत्कल्प' मात्र ही प्राप्त है । हाँ, नारदपुराणके 'भागवततन्त्र'में इस विषयपर विपुल सामग्री उपलब्ध होती है । इसके पूर्वखण्डके ७४, ७५, ७८ तथा ७९ अध्यायोंमें, प्रायः एक हजार श्लोकोंमें श्रीनारद-सनत्कुमार-संवादके रूपमें हनुमानजीके विषयमें बड़ी रम्य सामग्री सँजोयी हुई है । इसी प्रकार आनन्द-रामायण, सुदर्शनसंहिता एवं रुद्रयामलमें भी पर्याप्त सामग्री मिलती है, किंतु पिछली दो पुस्तकें अप्राप्य हैं । केवल किन्हीं किन्हीं पुस्तकालयोंमें हस्तलिखित अवस्था में ही खण्डितरूपमें उपलब्ध हैं । अतः नारदपुराणकी सामग्री ही सर्वोत्तम प्रतीत होती है । उसीसे साधकोंके कामकी कुछ अत्यन्त आवश्यक सामग्री लेकर यहाँ दी जा रही है । —सम्पादक)

सनत्कुमारजी कहते हैं—विप्रवर ! अब हनुमानजी के मन्त्रोंका वर्णन किया जाता है, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले हैं और जिनकी आराधना करके मनुष्य हनुमानजीके ही समान आचरणवाले हो जाते हैं । मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार)से युक्त गगन (ह्) अर्थात् 'हौं'—यह प्रथम बीज है । ह् स् फ् र् और अनुस्वार—ये भग (ए)से युक्त हों, अर्थात् 'ह्स्फ्रें' यह दूसरा बीज है । ख् फ् र्—ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार)से युक्त हों अर्थात् 'ख्फ्रें' यह तीसरा बीज कहा गया है । वियत् (ह्), भृगु (स्), अग्नि (र्), मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार)— इन सबका संयुक्त रूप 'ह्स्रौं' यह चौथा बीज है । भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार)से युक्त वियत् (ह्) भृगु (स्), ख् फ् तथा अग्नि (र्) हों अर्थात् 'ह्स्ख्फ्रें' यह पाँचवाँ बीज है । मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त ह् स् अर्थात् 'ह्सौं' यह छठा बीज है । तदनन्तर चतुर्थी-विभक्त्यन्त हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्तमें हृदय (नमः)—यह 'हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः' बारह अक्षरोंवाला महामन्त्रराज कहा गया है । इस मन्त्रके

ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है । इसके देवता हनुमानजी हैं । 'हसौं' बीज है और 'हस्फ्रें' शक्ति । उपर्युक्त छः बीजोंसे षडङ्गन्यास करना चाहिये । मस्तक, ललाट, दोनों नेत्र, मुख, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, दोनों जानु, दोनों चरण—इनमें क्रमशः मन्त्रके बारह अक्षरोंका न्यास करे। छः बीज और दो पद—इन आठोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, ऊरु, जङ्घा और चरणोंमें न्यास करे। तदनन्तर अञ्जनीनन्दन कपीश्वर हनुमानजीका इस प्रकार ध्यान करे—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम् ।
श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम् ॥
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत् ।
(८४ । १२०)

'उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हनुमानजी सम्पूर्ण जगत्को क्षोभमें डालनेकी शक्ति रखते हैं, सुग्रीव आदि प्रमुख वानर वीर उनका समादर करते हैं। वे राघवेन्द्र श्रीरामके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें निरन्तर संलग्न हैं और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण राक्षसोंको भयभीत कर रहे हैं । ऐसे पवनकुमार हनुमानजीका भजन—ध्यान करना चाहिये ।'

इस प्रकार ध्यान करके जितेन्द्रिय पुरुष बारह हजार मन्त्र-जप करे । फिर दही, दूध और घी मिलाये हुए धानकी दशांश आहुति दे । पूर्वोक्त वैष्णव-पीठपर मूल-मन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें हनुमानजीका आवाहन स्थापनपूर्वक पाद्यादि उपचारोंसे पूजन करे । केसरोंमें हृदयादि अङ्गोंकी पूजा करके अष्टदल कमलके आठ दलोंमें हनुमानजीके निम्नाङ्कित आठ नामोंकी पूजा करे—श्रीरामभक्त, महातेजा, कपिराज, महाबल, द्रोणाद्रिहारक, मेरुपीठार्चनकारक, दक्षिणाशाभास्कर तथा सर्वविघ्नविनाशक। (श्रीरामभक्ताय नमः, महातेजसे नमः, कपिराजाय नमः, महाबलाय नमः, द्रोणाद्रिहारकाय नमः, मेरुपीठार्चनकारकाय नमः, दक्षिणाशाभास्कराय नमः, सर्वविघ्नविनाशकाय नमः)—इस प्रकार नामोंकी पूजा करके दलोंके अग्रभागमें क्रमशः सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, सुषेण, द्विविद तथा मैन्दकी पूजा करे । तत्पश्चात् लोकपालों तथा उनके वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है । जो मानव लगातार दस दिनोंतक रातमें नौ सौ मन्त्र-जप करता है, उसके राजभय और शत्रुभय नष्ट हो जाते हैं । एक सौ आठ बार मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया हुआ जल विषका नाश करनेवाला होता है । भूत, अपस्मार (मिरगी) और कृत्या (मारण आदिके प्रयोग)से उत्पन्न ज्वर हो तो उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म अथवा जलसे क्रोधपूर्वक ज्वरग्रस्त पुरुषपर प्रहार करे । ऐसा करनेपर वह मनुष्य तीन दिनमें ज्वरसे छूट जाता और सुख पाता है। हनुमानजीके उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित औषध या जल खा पीकर मनुष्य सब रोगोंको मार भगाता और तत्क्षण सुखी हो जाता है । उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मको अपने अङ्गोंमें लगाकर अथवा उससे अभिमन्त्रित जलको पीकर जो मन्त्रोपासक युद्धके लिये जाता है, वह शस्त्रोंके समुदायसे पीड़ित नहीं होता । किसी शस्त्रसे कटकर घाव हुआ हो या फोड़ा फूटकर बहता हो, लूता (मकरी) रोग फूटा हो, तो भी तीन बार मन्त्र जपकर अभिमन्त्रित किये हुए भस्मसे उनपर स्पर्श कराते ही वे सभी घाव सूख जाते हैं, इसमें संशय नहीं है । ईशान कोणमें स्थित करज नामक वृक्षकी जड़को ले आकर उसके द्वारा हनुमानजीकी अँगूठे-बराबर प्रतिमा बनाये, फिर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करके सिन्दूर आदिसे उसकी पूजा करे । तत्पश्चात् उस प्रतिमाका मुख घरकी ओर करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे दरवाजेपर गाड़ दे । उससे ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर तथा राजा आदिके उपद्रव कभी उस घरमें नहीं आते और वह घर दीर्घकालतक प्रतिदिन धन-पुत्र आदिसे अभ्युदयको प्राप्त होता रहता है ।

विशुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष अष्टमी या चतुर्दशीको मंगलवार या रविवारके दिन किसी वस्त्रपर तैलयुक्त उड़दके बेसनसे हनुमानजीकी सुन्दर तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित एक प्रतिमा बनाये । वाम भागमें तेलका और दाहिने भागमें घीका दीपक जलाकर रखे। फिर मन्त्रज्ञ पुरुष मूलमन्त्रसे उक्त प्रतिमामें हनुमानजीका आवाहन करे । आवाहनके पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा करके उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि अर्पण करे । लाल चन्दन, लाल फूल तथा सिन्दूर आदिसे उनकी पूजा करे । फिर धूप और दीप देकर नैवेद्य निवेदन करे । मन्त्र

वेत्ता उपासक मूलमन्त्रसे पूआ, भात, साग, मिठाई, बड़े, पकौड़ी आदि भोज्य पदार्थोंको घृतसहित समर्पित करके फिर सत्ताईस पानके पत्तोंको तीन-तीन आवृत्ति मोड़कर उनके भीतर सुपारी आदि रखकर मुखशुद्धि के लिये मूलमन्त्रसे ही अर्पण करे । मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार भलीभाँति पूजा करके एक हजार मन्त्रका जप करे । तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष कपूरकी आरती करके नाना प्रकारसे हनुमानजीकी स्तुति करे और अपना अभीष्ट मनोरथ उनसे निवेदन करके विधिपूर्वक उनका विसर्जन करे । इसके बाद नैवेद्य लगाये हुए अन्नद्वारा सात ब्राह्मणोंको भोजन कराय और लगाये हुए पानके पत्ते उन्हींको बाँटकर दे दे । विद्वान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देकर विदा करे । तत्पश्चात् इष्ट-बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । उस दिन पृथ्वीपर शयन और ब्रह्मचर्यका पालन करे । जो मानव इस प्रकार आराधना करता है, वह कपीश्वर हनुमानजीके कृपाप्रसादसे शीघ्र ही सम्पूर्ण कामनाओंको अवश्य प्राप्त कर लेता है ।

भूमिपर हनुमानजीका चित्र अङ्कित करे और उनके अग्रभागमें मन्त्रका उल्लेख करे । साथ ही साध्य वस्तु या व्यक्तिका द्वितीयान्त नाम लिखकर उसके आगे 'विमोचय विमोचय' लिखे, उसे बायें हाथसे मिटा दे, उसके बाद फिर लिखे । इस प्रकार एक सौ आठ बार लिख-लिखकर उसे पुनः मिटाये । ऐसा करनेपर महान् कारागारसे वह शीघ्र ही मुक्त हो जाता है । ज्वरमें दूर्वा, गुरुचि, दही, दूध अथवा घृतसे होम करे । शूल रोग होनेपर करज या वातारि (एरंड)की समिधाओंको तेलमें डुबोकर उनके द्वारा होम करे अथवा शेफालिका (सिंदुवार)की तैलसिक्त समिधाओं से प्रयत्नपूर्वक होम करना चाहिये । सौभाग्यसिद्धिके लिये चन्दन, कपूर, रोचना, इलायची और लौंगकी आहुति दे । वस्त्रकी प्राप्तिके लिये सुगन्धित पुष्पोंसे हवन करे । विभिन्न धान्योंकी प्राप्तिके लिये उन्हीं धान्योंसे होम करना चाहिये । धान्यके होमसे धान्य प्राप्त होता है और अन्नके होमसे अन्नकी वृद्धि होती है । तिल, घी, दूध और मधुकी आहुति देनेसे गाय-भैंसकी वृद्धि होती है । अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है ? विष और व्याधिके निवारणमें, शान्तिकर्ममें, भूतजनित भय और संकटमें, युद्धमें, दैवी क्षति प्राप्त होनेपर, बन्धनसे छूटनेमें और महान् वनमें पड़ जाने आदि सभी अवस्थाओंमें यह सिद्ध किया हुआ मन्त्र मनुष्योंको निश्चय ही कल्याण प्रदान करता है ।

द्वादशाक्षर मन्त्रमें जो अन्तिम छः अक्षर (हनुमते नमः) हैं, उनको और आदि बीज (हौं)को छोड़कर शेष बचे हुए पाँच बीजोंका जो पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंका देनेवाला है । इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, गायत्री छन्द और हनुमान देवता कहे गये हैं । सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है । इसके पाँच बीजों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे । रामदूत, लक्ष्मणप्राणदाता, अञ्जनीसुत, सीताशोक-निनाशन तथा लंकाप्रासादभञ्जन—ये पाँच नाम हैं, इनके पहले 'हनुमत्' यह नाम और है । हनुमत् आदि पाँच नामोंके आदि में पाँच बीज और अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगायी जाती है । अन्तिम नामके साथ उक्त पाँचों बीज जुड़ते हैं, ये ही षडङ्ग-न्यासके छः मन्त्र हैं* । इसके ध्यान पूजन आदि कार्य पूर्वोक्त द्वादशाक्षर मन्त्रके समान ही हैं ।

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं), पद्मा (श्रीं), तीन दीर्घ स्वरोंसे युक्त मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं) तथा पाँच कूट (ह्स्फ्रें, ख्फ्रें, ह्स्रौं, ह्स्ख्फ्रें ह्सौं)—यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है । इसके भी ध्यान पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् होते हैं । इस मन्त्रकी आराधना की जाय तो यह समस्त अभीष्ट मनोरथोंको देनेवाला है । 'नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा' ।' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है । इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पवनकुमार हनुमान देवता, ह्रुं बीज और स्वाहा शक्ति है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है । 'आञ्जनेयाय नमः'का

* यथा ह्स्फ्रें हनुमते नमः, हृदयाय नमः । ख्फ्रें रामदूताय नमः शिरसे स्वाहा । ह्स्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः शिखायै वषट् । ह्स्ख्फ्रें अञ्जनीसुताय नमः कवचाय हुम् । ह्सौं सीताशोकविनाशनाय नमः, नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं लङ्काप्रासादभञ्जनाय नमः, अस्त्राय फट् ।

हृदयमें, 'रुद्रमूर्तये नमः' का शिरमें, 'वायुपुत्राय नमः' का शिखामें, 'अग्निगर्भाय नमः' का कवचमें, 'रामदूताय नमः' का नेत्रोंमें तथा 'ब्रह्मास्त्राय नमः' का अस्त्रस्थानमें न्यास करे। इस प्रकार न्यास विधि कही गयी है।

ध्यान

तप्तचामीकरनिभं भीघ्नं संविहिताञ्जलिम्।
चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥

'जिनकी दिव्य कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, जो भयका नाश करनेवाले हैं, जिन्होंने अपने प्रभु (श्रीराम)का चिन्तन करके उनके लिये अञ्जलि बाँध रखी है, जिनका सुन्दर मुख हिलते हुए कुण्डलोंसे उद्भासित हो रहा है तथा जिनके नेत्र कमलके समान शोभायमान हैं, उन पवनकुमार हनुमानजीका ध्यान करे।'

इस प्रकार ध्यान करके दस हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् घृतमिश्रित तिलसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त रीतिसे वैष्णवपीठपर पूजन करे। प्रतिदिन केवल रातमें भोजनका नियम लेकर जितेन्द्रियभावसे एक सौ आठ बार जप करे तो मनुष्य छोटे-मोटे रोगोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है। असाध्य रोगोंसे मुक्त होनेके लिये तो प्रतिदिन एक हजार जप करना चाहिये। सुग्रीवके साथ श्रीरामकी मित्रता कराते हुए हनुमानजीका ध्यान करके जो दस हजार मन्त्र जप करता है, वह परस्पर द्वेष रखनेवाले दो विरोधियोंमें संधि करा सकता है। जो यात्राके समय हनुमानजीका स्मरण करते हुए मन्त्र-जप करता है, उसके बाद यात्रा करता है, वह शीघ्र ही अपना अभीष्ट साधन करके घर लौट आता है। जो अपने घरमें मन्त्र जप करते हुए सदा हनुमानजीकी आराधना करता है, वह आरोग्य, लक्ष्मी तथा कान्ति पाता है और किसी प्रकारके उपद्रवमें नहीं पड़ता। वनमें यदि इस मन्त्रका स्मरण किया जाय तो वह व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं तथा चोर-डाकुओंसे रक्षा करता है। सोते समय शय्यापर एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे दुःस्वप्न और चोर आदिका भय कभी नहीं होता।

वियत् (ह) इन्दु (अनुस्वार)से युक्त हो, उसके बाद 'हनुमते रुद्रात्मकाय'—ये दो पद हों, फिर वर्म (हुं) और अस्त्र (फट्) हो तो (हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्) यह बारह अक्षरोंका मन्त्रराज होता है, जो अणिमा आदि आठ सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, जगती छन्द, श्रीहनुमानजी देवता, ह बीज और हुं शक्ति कही गयी है। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीज (हां हीं हूं हैं हौं हः)के द्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति॥
लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।
ज्वलदग्निसमं जैत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥
अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट सृजन्तं घोरनिःस्वनम्॥
शैवरूपिणमभ्यर्च्य ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम्॥
(७४। १२२-१२५)

"हनुमानजी एक बहुत बड़ा पर्वत उखाड़कर रावणकी ओर दौड़ रहे हैं। वे लाक्षा (महावर)के रंगके समान अरुणवर्ण हैं तथा काल, अन्तक एवं यमके समान भयंकर जान पड़ते हैं। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान है। वे विजयशील तथा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। अङ्गद आदि महावीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। वे साक्षात् रुद्रस्वरूप हैं। भयंकर सिंहनाद करते हुए वे रावणसे कहते हैं—'अरे ओ दुष्ट! युद्धमें खड़ा रह, खड़ा तो रह!' इस प्रकार शिवस्वरूप भगवान् हनुमानजीका ध्यान और पूजन करके एक लाख मन्त्रका जप करे।"

तदनन्तर दूध, दही, घी मिलाये चावलसे दशांश होम करे। विमलादि शक्तियोंसे युक्त पूर्वोक्त वैष्णव पीठपर मूल-मन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके हनुमानजीकी पूजा करनी चाहिये। एकमात्र ध्यान करनेसे भी मनुष्योंको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं है। अब मैं लोकहितकी इच्छासे इस मन्त्रका साधन बतलाता हूँ। हनुमानजीका साधन पुण्यमय है, यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह लोकमें अत्यन्त गुप्ततम रहस्य है और शीघ्र उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसके

प्रसादसे मन्त्र-साधक पुरुष तीनों लोकोंमें विजयी होता है। प्रातःकाल स्नान करके नदीके तटपर कुशासनपर बैठे और मूल-मन्त्रसे प्राणायाम तथा षडङ्ग-न्यास आदि कार्य करे। फिर सीतासहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करके उन्हें आठ बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तत्पश्चात् घिसे हुए लाल चन्दनसे उसीकी शलाकाद्वारा ताम्र-पात्रमें अष्टदल कमल लिखे। कमलकी कर्णिकामें मन्त्र लिखे। उसमें कपीश्वर हनुमानजीका आवाहन करे। मूल-मन्त्रसे मूर्ति निर्माण करके ध्यान तथा आवाहनपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पण करे। गन्ध, पुष्प आदि सब सामग्री मूल-मन्त्रसे ही निवेदन करके कमल-के केसरोंमें छः अङ्गों (हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र)का पूजन करके आठ दलोंमें सुग्रीव आदिका पूजन करे। सुग्रीव, लक्ष्मण, अङ्गद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केसरीका एक-एक दलमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों तथा वज्र आदि आयुधोंका पूजन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाओं को सिद्ध कर सकता है। (इसकी पूरी विधि इस प्रकार है—)

नदीके तटपर, किसी वनमें, पर्वतपर अथवा कहीं भी एकान्त प्रदेशमें श्रेष्ठ साधक भूमि-ग्रहणपूर्वक साधन प्रारम्भ करे। आहार, श्वास, वाणी और इन्द्रियोंपर संयम रखे। दिग्बन्ध आदि करके न्यास और ध्यान आदिका सम्यक् सम्पादन करनेके पश्चात् पूर्ववत् पूजन करके उक्त मन्त्रराजका एक लाख जप करे। एक लाख जप पूर्ण हो जानेपर दूसरे दिन सबेरे साधक महान् पूजन करे। उस दिन एकाग्रचित्तसे पवननन्दन हनुमानजीका सम्यक् ध्यान करके दिन-रात जपमें लगा रहे। तबतक जप करता रहे, जबतक उनका दर्शन न हो जाय। साधकको सुदृढ़ जानकर आधी रातके समय पवननन्दन हनुमानजी अत्यन्त प्रसन्न हो उसके सामने जाते हैं। कपीश्वर हनुमानजी उस साधकको इच्छानुसार वर देते हैं, वर पाकर वह श्रेष्ठ साधक अपनी मौजसे इधर-उधर विचरता रहता है। यह पुण्यमय साधन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है क्योंकि अत्यन्त गूढ़ रहस्यरूप है। मैंने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे इसे यहाँ प्रकाशित किया है।

इसी प्रकार साधक अपने लिये हितकर अन्यान्य प्रयोगों का भी अनुष्ठान करे। इन्दु (अनुस्वार)युक्त वियत् (ह्) अर्थात् 'हं'के पश्चात् ङेविभक्त्यन्त पवननन्दन शब्द हो और अन्तमें वह्निप्रिया (स्वाहा) हो तो (हं पवननन्दनाय स्वाहा) यह दस अक्षरका मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। इसके ऋषि आदि भी पहले बताये अनुसार हैं। षडङ्ग-न्यास भी पूर्ववत् करने चाहिये।

ध्यान

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य ग्रहीतुं गुरुपर्वतम्॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥
(७४। १४५-१४७)

'लंकाकी रणभूमिमें महावीर लक्ष्मणको गिरा देख हनुमानजी तुरंत उठ खड़े हुए हैं, वे हृदयमें महान् क्रोध भरकर एक विशाल एवं भारी पर्वतको उठाने तथा रावणको मार गिरानेके लिये वगसे दौड़ पड़े हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंकी प्रभाको लज्जित कर रहा है। वे ब्रह्माण्ड व्यापी भयंकर एवं विराट् शरीर धारण करके दर्पपूर्ण हुंकारसे तीनों लोकोंको कम्पित कर रहे हैं। इस प्रकार युद्धभूमिमें हनुमानजीका चिन्तन करना चाहिये।'

ध्यानके पश्चात् विद्वान् साधक एक लाख जप और पूर्ववत् दशांश हवन करे। इस मन्त्रका भी विधिवत् पूजन पहले-जैसा ही बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक अपना हित-साधन कर सकता है। इस श्रेष्ठ मन्त्रका साधन भी गोपनीय रहस्य ही है। सब तन्त्रोंमें इसे अत्यन्त गोप्य बताया गया है। इसका उपदेश हर एकको नहीं करना चाहिये। ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर शौचादि नित्यकर्म करके पवित्र हो नदीके तटपर जाकर तीर्थके आवाहनपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय आठ बार मूलमन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् बारह बार मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर जल छिड़के। इस प्रकार स्नान, संध्या, तर्पण आदि करके गङ्गाजीके तट पर, पर्वतपर अथवा वनमें भूमिग्रहणपूर्वक

स्वरवर्णोंका उच्चारण करके पूरक, 'क' से लेकर 'म' तकके पाँच वर्गके अक्षरोंसे कुम्भक तथा 'य' से लेकर अवशेष वर्णोंका उच्चारण करके रेचक करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम करके भूत-शुद्धिसे लेकर पीठन्यास-तकके सब कार्य करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे कपीश्वर हनुमानजीका ध्यान और पूजन करके उनके आगे बैठकर साधक प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार मन्त्र-जप करे। सातवें दिन विशेषरूपसे पूजन करे। उस दिन मन्त्र साधक एकाग्रचित्तसे दिन-रात जप करे। रातके तीन पहर बीत जानेपर चौथे पहरमें महान् भय दिखाकर कपीश्वर पवनानन्दन हनुमानजी साधकके सम्मुख अवश्य पधारते हैं और उसे अभीष्ट वर देते हैं। साधक अपनी रुचिके अनुसार विद्या, धन, राज्य अथवा विजय तत्काल प्राप्त कर लेता है। यह सर्वथा सत्य है, इसमें संशयका लेश भी नहीं है। वह इहलोकमें सम्पूर्ण कामनाओंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। सद्योजात (ओ) सहित दो वायु (यू यू—यो यो) 'हनुमन्त'का उच्चारण करे। फिर 'फल'के अन्तमें 'फ' तथा नेत्र (इ) युक्त क्रिया (ल) एवं कामिका (त) का उच्चारण करे। तत्पश्चात् 'धग्ग गिति' बोलकर 'आयुराप' पदका उच्चारण करे, तदनन्तर लोहित (प) तथा 'रुडाह' का उच्चारण करना चाहिये। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ यो यो हनुमन्त फलफलित धग्धगिति आयुराप परुडाह') यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इसके भी ऋषि आदि पूर्वोक्त ही हैं। प्लीहा-रोग दूर करनेवाले वानरराज हनुमानजी इसके देवता कहे गये हैं। प्लीहा-रोगसे युक्त पेटपर पानका पत्ता रखे, उसके ऊपर आठ पर्त ... हुआ वस्त्र रखकर उसे ढक दे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक हनुमानजीका स्मरण करके उस वस्त्रके ऊपर एक बाँसका टुकड़ा डाल दे। इसके बाद बेरके वृक्षकी लकड़ीसे बनी हुई छड़ी लेकर उसे जंगली पत्थरसे प्रकट हुए आगमें उक्त मन्त्रसे सात बार तपाये, फिर उस छड़ीसे पेटपर रखे हुए बाँसके टुकड़ेपर सात बार प्रहार करे। इससे मनुष्योंका प्लीहा रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय अमुकस्य शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय बन्धमोक्षं कुरु कुरु स्वाहा॥

यह एक अन्य मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, शृङ्खलामोचक पवनपुत्र श्रीमान् हनुमान देवता, ह बीज और स्वाहा शक्ति है। बन्धनसे छूटनेके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घ स्वर तथा रेफयुक्त बीजमन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे (यथा—'ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा' इत्यादि)।

ध्यान

वामे शैलं वैरिभिदं विशुद्धं टङ्कमन्यतः।
दधानं स्वर्णवर्णं च ध्यायेत् कुण्डलिनं हरिम्॥
(७४। १६९-१७०)

'बायें हाथमें वैरियोंको विदीर्ण करनेवाला पर्वत तथा दायें हाथमें विशुद्ध टङ्क (पत्थर तोड़नेकी टाँकी) धारण करनेवाले, सुवर्णके समान कान्तिमान्, कुण्डल-मण्डित वानरराज हनुमानजीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख मन्त्रका जप तथा आम्र-पल्लवसे दशांश हवन करे। विद्वानोंने इसके पूजन आदिकी विधि पूर्ववत् बतायी है। महान् कारागारमें पड़ा हुआ मनुष्य भी यदि इसका दस हजार जप करे तो उससे मुक्त हो अवश्य सुखका भागी होता है।

अब मैं बन्धनसे छुड़ानेवाले शुभ हनुमत्-मन्त्रका वर्णन करता हूँ। साधक अष्टदल कमलके भीतर षट्कोण बनाये। उसकी कर्णिकामें साध्य पुरुषका नाम लिखे। छः कोणोंमें 'ॐ आञ्जनेयाय'का उल्लेख करे। आठों दलोंमें 'ॐ वातु वातु' लिखे। गोरोचन और कुङ्कुमसे यह उत्तम मन्त्र लिखकर मस्तकपर धारण करके बन्धनसे छूटनेके लिये उक्त मन्त्रका दस हजार जप करे। इस मन्त्रको प्रतिदिन मिट्टीपर लिखकर मन्त्रज्ञ पुरुष अपने दाहिने हाथसे मिटाये। ग्यारह बार लिखने और मिटानेसे मन्त्राराधक महान् कारागारसे छुटकारा पा जाता है। गगन (ह) नेत्र (इ) युक्त ज्वलन (र्) अर्थात् 'हरि' पदके पश्चात् दो बार 'मर्कट' शब्द बोलकर शेष (आ) सहित वाम (व) अर्थात् 'वा'का उच्चारण करके 'मकरे' पद बोले। फिर 'परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्' का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'हरि मर्कट मर्कट वामकरे परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्।') यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। विद्वान् पुरुष इस मन्त्रको दायें हाथपर बायें हाथसे लिखकर मिटा

दे और एक सौ आठ बार इसका जप करे। ऐसा करनेपर मदीगृहमें पड़ा हुआ मनुष्य तीन सप्ताहमें छूट जाता है। इसमें संशय नहीं है। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् हैं। पूजन आदि कार्य भी पूर्ववत् करे। इसका एक लाख जप और शुभ द्रव्योंसे दशांश हवन करना चाहिये। जो मन्त्रसाधक पुरुष इस प्रकार वायुपुत्र हनुमानजीकी आराधना करता है, वह उन सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। अञ्जनीनन्दन हनुमानजीकी उपासना की जाय तो वे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल सौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवादमें विजय प्रदान करते हैं एवं सिद्धि तथा विजय भी देते हैं।

अब मैं तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाले दूसरे मन्त्रका वर्णन करूँगा। साधक 'तार (ॐ) नमो हनुमते' इतना कहकर तीन बार जाठर (म)का उच्चारण करे। फिर 'दनक्षोभम्' कहकर दो बार 'संहर' यह क्रियापद बोले। उसके बाद 'आत्मतत्त्वम्' बोलकर दो बार 'प्रकाशय'का उच्चारण करे। उसके बाद वर्म (हु), अस्त्र (फट्) और वह्निजाया (स्वाहा) का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र यों है—ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हु फट् स्वाहा') यह साढ़े छत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और हनुमानजी देवता हैं। सात-सात, छः, चार, आठ तथा चार मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करके कपीश्वर हनुमानजीका इस प्रकार ध्यान करे—

जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि।
अध्यात्मचित्तमासीनं कदलीवनमध्यगम्॥
बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम्।
(७५। ९५-९६)

'हनुमानजीका बायाँ हाथ घुटनेपर रखा हुआ है और दाहिना ज्ञानमुद्रामें स्थित हो हृदयसे लगा है। वे अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करते हुए कदलीवनमें बैठे हुए हैं। उनकी कान्ति उदयकालके कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। ऐसे ज्ञानदाता श्रीहनुमानजीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और घृतसहित तिलकी दशांश आहुति दे, फिर पूर्वोक्त पीठ पर पूर्ववत् प्रभु श्रीहनुमानजीका पूजन करे। यह मन्त्र जप किये जानेपर निश्चय ही कामविकारका नाश करता है और साधक कपीश्वर हनुमानजीके प्रसादसे तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अब मैं भूत भगानेवाले दूसरे उत्कृष्ट मन्त्रका वर्णन करता हूँ। 'ॐ श्रीं महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्रीहनुमते फट्।' यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, हनुमान देवता, श्रीं बीज और फट् शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करना चाहिये।

ध्यान

आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
पारिजातद्रुमूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥
(७५। १२)

'जिनका मुख लाल और शरीर सुवर्णगिरिके सदृश कान्तिमान् है, जो पारिजात (कल्पवृक्ष)के नीचे उसके मूलभागमें बैठे हुए हैं, उन अञ्जनीनन्दन हनुमानजीका श्रेष्ठ साधक चिन्तन करे।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और मधु, घी एवं शकर मिलाये हुए तिलसे दशांश होम करे। विद्वान् पुरुष पूर्वोक्त पीठपर पूर्वोक्त रीतिसे पूजन करे। मन्त्रोपासक इस मन्त्रद्वारा यदि ग्रहग्रस्त पुरुषको झाड़ दे तो वह ग्रह चीखता चिल्लाता हुआ उस पुरुष को छोड़कर भाग जाता है। इन मन्त्रोंको सदा गुप्त रखना चाहिये। जहाँ-तहाँ सबके सामने इन्हें प्रकाशमें नहीं लाना चाहिये। खूब जाँचे-बूझे हुए शिष्यको अथवा अपने पुत्रको ही इनका उपदेश करना चाहिये।

(ना० पूर्व ० ७४-७५)

'हियँ हनुमानहि आनु'

सकल काज सुभ समउ भल सगुन सुमगल जानु।
कीरति विजय बिभूति भलि हियँ हनुमानहि आनु॥ (दोहावली, २३२)

श्रीहनुमानजीका हृदयमें ध्यान करो और यह निश्चय समझ लो कि तुम्हारे सभी कार्य शुभ होंगे, दिन अच्छे आयेंगे तथा सभी सद्गुण, सुमङ्गल, कीर्ति, विजय और विमल विभूतिकी प्राप्ति होगी।

हनुमानजीके लिये 'दीपदान-विधि'

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं हनुमानजीके लिये रहस्यसहित दीपदान-विधिका वर्णन करता हूँ, जिसको जान लेनेमात्रसे साधक सिद्ध हो जाता है। दीपपात्रका प्रमाण, तेलका मान, द्रव्य-प्रमाण तथा तन्तु (बत्ती)का मान—इन सबका क्रमशः वर्णन किया जायगा। स्थानभेदसे, पृथक्-पृथक् दीपदान-मन्त्र आदिका भी वर्णन होगा। पुष्पसे वासित तेलके द्वारा दिया हुआ दीपक सम्पूर्ण कामनाओंका देनेवाला माना गया है। किसी पथिकके आने पर उसकी सेवाके लिये तिलका तेल अर्पण किया जाय तो वह लक्ष्मी-प्राप्तिका कारण होता है। सरसोंका तेल रोग नाश करनेवाला है, ऐसा कर्मकुशल विद्वानोंका कथन है। गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग और चावल—ये पाँच धान्य कहे गये हैं। हनुमानजीके लिये सदा इनके दीप देने चाहिये। पञ्चधान्यका आटा बहुत सुन्दर होता है। यह दीपदानमें सदा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है।

सन्धिमें तीन प्रकारके आटेका दीप देना उचित है, लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये कस्तूरीका दीप विहित है, कन्या-प्राप्तिके लिये इलायची, लौंग, कपूर और कस्तूरीका दीपक बताया गया है। सख्य-सम्पादन करनेके लिये भी इन्हीं वस्तुओंका दीप देना चाहिये। इन सब वस्तुओंके न मिलनेपर पञ्चधान्य श्रेष्ठ माना गया है। आठ मुट्ठीका एक किंचित् होता है, आठ किंचित्का एक पुष्कल होता है, चार पुष्कलका एक आढक बताया गया है, चार आढकका एक द्रोण और चार द्रोणकी एक खारी होती है। चार खारीको प्रस्थ कहते हैं अथवा यहाँ दूसरे प्रकारसे मान बताया जाता है। दो पलका एक प्रसृत होता है, दो प्रसृतका कुडव माना गया है, चार कुडवका एक प्रस्थ और चार प्रस्थका आढक होता है। चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है। इस क्रमसे दीपकके उपयोगी पात्रमें ये मान समझने चाहिये। पाँच, सात तथा नौ—ये क्रमशः दीपकके प्रमाण हैं, सुगन्धित तेलसे जलने वाले दीपकका कोई मान नहीं है। उसका मान अपनी रुचिके अनुसार ही माना गया है। तेलोंके नियमनमें केवल बत्तीका विशेष नियम होता है। सोमवारको धान्य लेकर उसे जलमें भिगोकर रखे। फिर प्रमाणके अनुसार कुमारी कन्याके हाथसे उसको पिसाना चाहिये। पीसे हुए धान्यको शुद्ध पात्रमें रखकर नदीके जलसे उसकी पिण्डी बनानी चाहिये। उसीसे शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर दीपपात्र बनाये। जिस समय दीपक जलाया जाता हो, हनुमत्कवचका पाठ करे। नमस्कारको शुद्ध भूमिपर रखकर दीपदान करे। मूल बीज ग्यारह बताये गये हैं, अतः उतने ही तन्तु ग्राह्य हैं। पात्रके लिये कोई नियम नहीं है। मार्गमें जो दीपक जलाये जाते हैं, उनकी बत्तीमें इक्कीस तन्तु होने चाहिये। हनुमानजीके दीपदानमें लाल सूत ग्राह्य बताया गया है। कुलकी जितनी संख्या हो उतना ही पल तेल दीपकमें डालना चाहिये। गुरुकार्यमें ग्यारह पलसे लाभ होता है। नित्यकर्ममें पाँच पल तेल आवश्यक बताया गया है। अथवा अपने मनकी जैसी रुचि हो उतना ही तेलका मान रखे। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके अवसरपर हनुमानजीकी प्रतिमाके समीप अथवा शिव-मन्दिरमें दीपदान करना चाहिये।

हनुमानजीके दीपदानमें जो विशेष बात है, उसे मैं यहाँ बता रहा हूँ। देवप्रतिमाके आगे, प्रमोदके अवसर पर, ग्रहोंके निमित्त, भूतोंके निमित्त, घरोंमें और चौराहों पर—इन छः स्थलोंमें दीप दिलाना चाहिये। स्फटिकमय शिवलिङ्गके समीप, शालग्राम शिलाके निकट हनुमानजीके लिये किया हुआ दीपदान नाना प्रकारके भोग और लक्ष्मीकी प्राप्तिका हेतु कहा गया है। विघ्न तथा महान् संकटोंका नाश करनेके लिये गणेशजीके निकट हनुमानजीके उद्देश्यसे दीपदान करे। भयंकर विष तथा व्याधिका भय उपस्थित होनेपर हनुमद्विग्रहके समीप दीपदानका विधान है। व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर दीप देना चाहिये। बन्धनसे छूटनेके लिये राजद्वारपर अथवा कारागारके समीप दीप देना उचित है। सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये पीपल और बरगदके मूलभागमें दीप देना चाहिये। भय-निवारण और विवाद-शान्तिके लिये, ग्रहसंकट और युद्धसंकटकी निवृत्तिके लिये और विष, व्याधि तथा ज्वरका उतारके लिये, भूतग्रहका निवारण करने, कृत्यासे छुटकारा पाने तथा कटे हुए घावको जोड़नेके लिये, दुर्गम एवं भारी वनमें व्याघ्र, हाथी तथा सम्पूर्ण जीवोंके आक्रमणसे बचनेके लिये, राजाके द्वारा बन्धनसे छूटनेके लिये, पथिकके आगमनमें, आने जानेके मार्गमें

तथा राजद्वारपर हनुमानजीके लिये दीपदान आवश्यक बताया गया है। ग्यारह, इक्कीस और पिण्ड—तीन प्रकारका मण्डलमान होता है। पाँच, सात अथवा नौ—इन्हें लघुमान कहा गया है। दीप-दानके समय दूध, दही, मक्खन अथवा गोबरसे हनुमानजीकी प्रतिमा बनानेका विधान किया गया है। सिंहके समान पराक्रमी वीरवर हनुमानजीको दक्षिणाभिमुख करके उनके पैरको पीठपर रखा हुआ दिखाये। उनका मस्तक किरीटसे सुशोभित होना चाहिये। सुन्दर स्तम्भ, पीठ अथवा दीवारपर हनुमानजीकी प्रतिमा अङ्कित करनी चाहिये। वृक्षादिमें तथा नित्य दीपमें द्वादशाक्षरमन्त्रका प्रयोग करना चाहिये।

गोबरसे लिपी हुई भूमिपर एकाग्रचित्त हो षट्कोण अङ्कित करे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल बनाये तथा उसके भी बाह्यभागमें भूपुर रेखा खींचे। उस कमलमें दीपक रखे। तीन अथवा वैष्णव पीठपर अञ्जनीनन्दन हनुमानजीकी पूजा करे। छः कोणोंके अन्तरालमें 'ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं'—इन छः कूटोंका उल्लेख करे। छहों कोणोंमें बीजसहित छः अङ्गोंको लिखे। मध्यमें सौम्य का उल्लेख करे और उसीमें पवननन्दन हनुमानजीकी पूजा करके छः कोणोंमें छः अङ्गों तथा छः नामोंकी पहले बताये अनुसार पूजा करे। कमलके अष्टदलोंमें क्रमशः इन वानरों की पूजा करनी चाहिये—सुग्रीवाय नमः, अङ्गदाय नमः, सुषेणाय नमः, नलाय नमः, नीलाय नमः, जाम्बवते नमः, प्रहस्ताय नमः, सुवेषाय नमः। तत्पश्चात् पत्रदलमें देवताओंका पूजन करे—अञ्जनापुत्राय नमः, रुद्रमूर्तये नमः, वायुसुताय नमः, जानकीजीवनाय नमः, रामदूताय नमः, ब्रह्मास्त्रनिवारणाय नमः। फिर पञ्चोपचार (गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य)से इन सबका पूजन करके कुश और जल हाथमें लेकर देश-कालके उच्चारणपूर्वक दीपदानका सङ्कल्प करे। उसके बाद दीप-मन्त्र बोले। श्रेष्ठ साधक उत्तराभिमुख हो उस मन्त्रका कूट-संख्याके बराबर (छः बार) जपकर हाथमें लिये हुए जलको भूमिपर गिरा दे। तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर यथाशक्ति मन्त्र-जप करे। फिर इस प्रकार कहे—'हनुमानजी! उत्तराभिमुख अर्पित किये हुए इस श्रेष्ठ दीपकसे प्रसन्न होकर आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो जायँ।'

इस प्रकार तेरह द्रव्य उपयुक्त होते हैं—गोबर, मिट्टी, मषी, आलता, सिन्दूर, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, मधु, कस्तूरी, दही, दूध, मक्खन और घी। गोबर दो प्रकारके बताये गये हैं—गायका और भैंसका। खोये हुए द्रव्यकी पुनः प्राप्तिके लिये दीपदान करना हो तो उसमें भैंसके गोबरका उपयोग आवश्यक माना गया है। मुने! दूर देशमें गये हुए पथिकके आगमन, महादुर्गकी रक्षा, बालक आदिकी रक्षा, चोर आदिके भयका नाश आदि कार्योंमें गायका गोबर उत्तम कहा गया है। वह भी भूमिपर पड़ा हो तो नहीं लेना चाहिये। जब गाय गोबर कर रही हो तो किसी पात्रमें ऊपर-ही-ऊपर उसे रोप लेना चाहिये।

मिट्टी चार प्रकारकी कही गयी है—सफेद, पीली, लाल और काली। उनमें गोपी-चन्दन, हरिताल, गेरू आदि ग्राह्य हैं, अन्य सब द्रव्य प्रसिद्ध एवं सबके लिये सुपरिचित हैं। विद्वान् पुरुष गोपीचन्दनसे चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें भैंसके गोबरसे हनुमानजीकी मूर्ति बनाये। मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो बीज और क्रोध (हुं)से उनकी पूँछ अङ्कित करे। फिर ऐसी मूर्तिको नहलाये और गुड़से तिलक करे तथा कमलके समान रंगवाला धूप, जो शालवृक्षकी गोंदसे बना हो, निवेदन करे। पाँच बत्तियोंके साथ तेलका दीपक जगाकर अर्पण करे। इसके बाद (हाथ धोकर) श्रेष्ठ साधक दही भातका नैवेद्य निवेदन करे। उस समय वह तीन बार शाब (आ)सहित विष (म्)का उच्चारण करे।* ऐसा करनेपर खोयी हुई भैंसों, गौओं तथा दास-दासियोंकी भी प्राप्ति हो जाती है। चोर एवं सर्प आदि दुष्ट जीवोंका भय प्राप्त होनेपर 'हरताल'से चार दरवाजेका सुन्दर गृह बनाये। पूर्वके द्वारपर हाथीकी मूर्ति बिठाये और दक्षिण द्वारपर भैंसेकी, पश्चिम द्वारपर सर्प और उत्तर द्वारपर व्याघ्र स्थापित करे। इसी प्रकार क्रमसे पूर्वादि द्वारोंपर खड्ग, छुरी, दण्ड और मुद्गर अङ्कित करके मध्य भागमें भैंसके गोबरसे मूर्ति बनाये। उसके हाथमें डमरू धारण कराये और यत्नपूर्वक यह चेष्टा करे कि मूर्तिसे ऐसा भाव प्रकट हो मानो वह चकित नेत्रोंसे देख रही है। उसे दूधसे नहलाकर उसके ऊपर लाल चन्दन लगाये। चमेलीके फूलोंसे उसकी पूजा करके शुद्ध धूपकी

* 'मा मा मा' इस प्रकार उच्चारण करना चाहिये।

गन्ध दे। घीका दीपक जलाकर खीरका नैवेद्य अर्पण करे। गगन (ह), भौतिका (उ) और इन्दु (अनुस्वार) अर्थात् 'हुं' और शस्त्र (फट्)—यह आराध्यदेवताका नाम जपे। इस प्रकार सात दिन करके मनुष्य भारी भयसे मुक्त हो जाता है। उक्त दोनों प्रयोगोंका प्रारम्भ मंगलवारको आदरपूर्वक करना चाहिये। मधु सेनासे मंत्र प्राप्त होनेपर गन्धसे मण्डल बनाकर उसके भीतर ताड़का झुका हुआ ताड़का वृक्ष अङ्कित करे। उसपरसे लटकती हुई हनुमानजीकी प्रतिमा गोबरसे बनाये। उनके बायें हाथमें ताड़का अग्रभाग और दाहिनेमें ज्ञानमुद्रा हो। ताड़की जड़से एक हाथ दूर अपनी दिशामें एक चौकोर मण्डल बनाये। उसके मध्यभागमें मूर्ति अङ्कित करे। उसका मुख दक्षिणकी ओर हो, वह हनुमन्मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हो, हृदयपर अञ्जलि बाँधे बैठी हो। उसे जलसे स्नान कराकर यथासम्भव गन्ध आदि उपचार अर्पण करे। फिर घृतमिश्रित सिंघाड़ोंका नैवेद्य निवेदन करे और उसके आगे 'किलि-किलि'का जप करे। प्रतिदिन ऐसा करनेपर पथिकोंका समागम अवश्य होता है।

जो प्रतिदिन विधिपूर्वक हनुमानजीको दीप देता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है। जिसके हृदयमें दुष्टता भरी हो, जिसकी बुद्धि दुष्टताका ही चिन्तन करती हो, जो शिष्य होकर भी विनयशून्य और चुगलखोर हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। कृतघ्नको कदापि इस रहस्यका उपदेश न दे। जिसके शील-स्वभावकी भलीभाँति परीक्षा कर ली गयी हो, उस साधु पुरुषको ही इसका उपदेश करना चाहिये। (नारदपुराणसे)

— ❧ —

हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान पद्धति

(लेखक—पं० श्रीकिशनलाल जी शर्मा गौड़)

सन् १९ ई०में मैं श्रीबदरीनाथ धाम (उत्तराखण्ड) गया था। बदरीनाथ धामसे १९ या २० मील पूर्व आद्य शंकराचार्यद्वारा संस्थापित ज्योतिर्मठ (ज्योतिर्मठ) है। मैंने एक दिन उस ज्योतिर्मठमें विश्राम किया। संयोगवश उस समय ज्योतिर्मठके तत्कालीन शंकराचार्य श्री१००८ स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराज वहाँ उपस्थित थे, जो कुछ कालके लिये विश्रामार्थ आये हुए थे। रात्रिमें मैं उनके दर्शनार्थ जब सेवामें उपस्थित हुआ तो वे मुझे देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। कुशल-मङ्गलके पश्चात् उन्होंने मुझसे कहा—'तुम प्रतिष्ठित ब्रह्म-परिवारके ब्राह्मण विद्वान् हो, अतः हम तुम्हें आशीर्वादरूपमें अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' नामक यह पुस्तिका दे रहे हैं, तुम इसे स्वीकार करो।' मैंने उनसे पुस्तिका प्राप्तकर अपना परम सौभाग्य समझा। तत्पश्चात् श्रीशंकराचार्यजीने बतलाया कि 'इसमें जो पुस्तिका तुम्हें दी है, यह अत्यन्त चमत्कारपूर्ण और सिद्धिप्रदा है। इसमें मन्त्र हैं। प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार बार ब्रह्मचर्यकी मर्यादापर हनुमानजीके किसी भी प्राचीन मन्दिरमें श्रद्धापूर्वक जप करनेसे सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। मन्त्रोंको सिद्ध कर लेनेके पश्चात् उनका प्रयोग करनेपर कठिन-से-कठिन कार्य सुसाध्य हो जाते हैं।'

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'के मन्त्रोंकी अनुष्ठान विधि इस प्रकार है—शुभ मुहूर्तमें उक्त पद्धतिके प्रत्येक मन्त्रका अलग-अलग ग्यारह-ग्यारह हजार बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् आवश्यकता पड़नेपर मनुष्यको स्वयं अपने अथवा दूसरेके कार्यके लिये 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान-पद्धति'के प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार जप करके पीछे प्रत्येक मन्त्रका दशांश ग्यारह सौ (११००) हवन करना चाहिये।

श्रीशंकराचार्यजीद्वारा प्रदत्त 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठान पद्धति'का मैंने स्वयं कई बार अनुष्ठान करके चमत्कारपूर्ण लाभ उठाया है और अपने तीन-चार विद्वान् परिचितोंसे भी उक्त पद्धतिका अनुष्ठान करवाया है, जिससे उन्हें भी अद्भुत लाभ हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति और विश्वासके साथ विधि-विधानसे 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'के मन्त्रोंका सविधि अनुष्ठान करेगा, वह अवश्य सफलीभूत होगा।*

* अनुष्ठानकर्ताको चाहिये कि वह जिस कार्यके लिये जप और हवन करे उस कार्यका नामोच्चारण संकल्पमें अवश्य करे।

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' के ये मन्त्र इस प्रकार हैं—

१—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय वायुसुताय अञ्जनीगर्भसम्भूताय अखण्डब्रह्मचर्यव्रतपालनतत्पराय धवलीकृतजगत्त्रिताय ज्वलदग्निसूर्यकोटिसमप्रभाय प्रकटपराक्रमाय आक्रान्तदिङ्मण्डलाय यशोवितानाय यशोऽलङ्कृताय शोभिताननाय महासामर्थ्याय महातेज:पुञ्जविराजमानाय श्रीरामभक्तितत्पराय श्रीरामलक्ष्मणानन्दकारणाय कपिसैन्यप्राकाराय सुग्रीवसख्यकारणाय सुग्रीवसाहाय्यकारणाय ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्तिग्रसनाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय शल्यविशल्यौषधिसमानयनाय बालोदितभानुमण्डलग्रसनाय अक्षकुमारच्छेदनाय वनरक्षाकरसमूहविभञ्जनाय द्रोणपर्वतोत्पाटनाय स्वामिवचनसम्पादितार्जुनसंयुगसंग्रामाय गम्भीरशब्दोदयाय दक्षिणाशामार्तण्डाय मेरुपर्वतपीठिकार्चनाय दावानलकालाग्निरुद्राय समुद्रलङ्घनाय सीताऽऽश्वासनाय सीतारक्षकाय राक्षसीसङ्घविदारणाय अशोकवनविदारणाय लङ्कापुरीदहनाय दशग्रीवशिर:कृन्तकाय कुम्भकर्णादिवधकारणाय बालिनिबर्हणकारणाय मेघनादहोमविध्वंसनाय इन्द्रजिद्वधकारणाय सर्वशास्त्रपारङ्गताय सर्वग्रहविनाशकाय सर्वज्वरहराय सर्वभयनिवारणाय सर्वकष्टनिवारणाय सर्वापत्तिनिवारणाय सर्वदुष्टादिनिबर्हणाय सर्वशत्रुच्छेदनाय भूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीध्वंसकाय सर्वकार्यसाधकाय प्राणिमात्ररक्षकाय रामदूताय स्वाहा ।

२—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय विश्वरूपाय अमितविक्रमाय प्रकटपराक्रमाय महाबलाय सूर्यकोटिसमप्रभाय रामदूताय स्वाहा ।

३—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय रामसेवकाय रामभक्तितत्पराय रामहृदयाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय लक्ष्मणरक्षकाय दुष्टनिबर्हणाय रामदूताय स्वाहा ।

४—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्वशत्रुसंहरणाय सर्वरोगहराय सर्ववशीकरणाय रामदूताय स्वाहा ।

५—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापत्रयनिवारणाय रामदूताय स्वाहा ।

६—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देवदानवर्षिमुनिवरदाय रामदूताय स्वाहा ।

७—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भक्तजनमन:कल्पनाकल्पद्रुमाय दुष्टमनोरथस्तम्भनाय प्रभञ्जनप्राणप्रियाय महाबलपराक्रमाय महाविपत्तिनिवारणाय पुत्रपौत्रधनधान्यादिविविधसम्पत्प्रदाय रामदूताय स्वाहा ।

८—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय वज्रदेहाय वज्रनखाय वज्रमुखाय वज्ररोम्णे वज्रनेत्राय वज्रदन्ताय वज्रकराय वज्रभक्ताय रामदूताय स्वाहा ।

९—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परयन्त्रमन्त्रतन्त्रत्राटकनाशकाय सर्वज्वरच्छेदकाय सर्वव्याधिनिकृन्तकाय सर्वभयप्रशमनाय सर्वदुष्टमुखस्तम्भनाय सर्वकार्यसिद्धिप्रदाय रामदूताय स्वाहा ।

१०—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देवदानवयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीदुष्टग्रहबन्धनाय रामदूताय स्वाहा ।

११—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय पूर्वमुखे सकलशत्रुसंहारकाय रामदूताय स्वाहा ।

१२—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय दक्षिणमुखे करालवदनाय नारसिंहाय सकलभूतप्रेतदमनाय रामदूताय स्वाहा ।

१३—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय पश्चिममुखे गरुडाय सकलविघ्ननिवारणाय रामदूताय स्वाहा ।

१४—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पञ्चवदनाय उत्तरमुखे आदिवराहाय सकलसम्पत्कराय रामदूताय स्वाहा ।

१५—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय ऊर्ध्वमुखे हयग्रीवाय सकलजनवशीकरणाय रामदूताय स्वाहा ।

१६—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलानि क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय स्वाहा ।

१७—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परकृतयन्त्रमन्त्रपराहङ्कारभूतप्रेतपिशाचपरदृष्टिसर्वविघ्नतर्जनचेटकविद्यासर्वग्रहभयं निवारय निवारय स्वाहा ।

१८—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय डाकिनीशाकिनीब्रह्मराक्षसकुलपिशाचोरुभय निवारय निवारय स्वाहा ।

१९—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भूतज्वरप्रेतज्वरचातुर्थिकज्वरविष्णुज्वरमहेशज्वर निवारय निवारय स्वाहा ।

२०—ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय अक्षिशूलपक्षशूलशिरोऽभ्यन्तरशूलपित्तशूलब्रह्मराक्षसशूलपिशाचकुलच्छेदन निवारय निवारय स्वाहा ।

(२)

कुछ अन्य अनुभूत मन्त्र

श्रीइष्टदेवकी कृपासे कुछ अनुभूत मन्त्र नीचे दिये जा रहे हैं । अनुसुक्त लोग इनसे लाभ उठायें—

(१) प्रेत-बाधा-निवारणके लिये—

ॐ दक्षिणमुखाय पञ्चमुखहनुमते करालवदनाय नारसिंहाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सकलभूतप्रेतदमनाय स्वाहा ।　　(पञ्चमुखहनुमत्कवचम् २८)

यह मन्त्र कम-से-कम दस हजार जप करनेपर सिद्ध हो जाता है । मन्त्र जपके बाद आम्रकाष्ठसे हवन करना चाहिये ।

(२) विष उतारनेके लिये—

ॐ पश्चिममुखाय गरुडाननाय पञ्चमुखहनुमते मं मं मं मं मं सकलविषहराय स्वाहा ।

(पञ्चमुखहनुमत्कवचम् २)

यह मन्त्र दीपावलीके दिन अर्धरात्रिमें घीका दीपक जलाकर हनुमानजीको साक्षी करके दस हजार जप करनेसे सिद्ध हो जाता है । पुनः बिच्छू, बर्रे आदि विषधारी जीवोंद्वारा दंश होनेपर इस मन्त्रको उच्च स्वरसे उच्चारण करते हुए उस अङ्गका स्पर्श करे । कई बार ऐसा करनेपर विष उतर जाता है ।

(३) शत्रु-सङ्कट-निवारणके लिये—

ॐ पूर्वकपिमुखाय पञ्चमुखहनुमते टं टं टं टं टं सकलशत्रुसंहरणाय स्वाहा ।　　(पञ्चमुखहनुमत्कवचम् १०)

इस मन्त्रके सिद्ध कर लेनेपर शत्रु-भय दूर हो जाता है । यह केवल १०००० मन्त्र-जपसे सिद्ध हो जाता है । आवश्यकता है—विश्वास और श्रद्धाकी ।

(४) महामारी, अमङ्गल, ग्रह-दोष एवं भूत-प्रेतादि-नाशके लिये—

ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ नमो भगवते महाबलपराक्रमाय भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीयक्षिणीपूतनामारीमहामारीराक्षसभैरववेतालग्रहराक्षसादिकान् क्षणेन हन हन भञ्जय भञ्जय मारय मारय शिक्षय शिक्षय महामाहेश्वररुद्रावतार ॐ हुं फट् स्वाहा । ॐ नमो भगवते हनुमदाख्याय रुद्राय सर्वदुष्टजनमुखस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ठं ठं ठं फट् स्वाहा ।

यह मन्त्र मङ्गलवारको दिनभर व्रत रखनेके बाद अर्धरात्रिमें हनुमानजीके मन्दिरमें सात हजार जप करनेसे सिद्ध हो जाता है । सिद्धिके बाद हनुमानजीके समक्ष दशांश हवन करना चाहिये ।

विशेष—हनुमानजीके उपासकोंको चाहिये कि उपर्युक्त मन्त्रोंमेंसे जिस मन्त्रकी सिद्धि करनी हो, उसे तत्काल भोजपत्रपर लाल चन्दन या स्याहीसे लिख लें, पुनः उसे अभिमन्त्रित करके तावीजमें भरकर धारण कर लें । यदि यह काम विश्वास और श्रद्धासे किया गया तो अवश्य ही कामना सिद्ध होगी ।

१ विद्यार्थियोंके लिये हनुमानजीकी सिद्धि विशेष सहज है क्योंकि उनपर मारुति शीघ्र कृपा करते हैं । उनमें पवित्रता तथा श्रद्धाकी अपेक्षा की जाती है ।

२ शनिवारके दिन हनुमानजीको तेल चढ़ानेसे शनैश्चरका प्रकोप शान्त हो जाता है । शनिकी कुदृष्टिसे सम्पन्न महानुभाव अवश्य इसका सेवन करें ।

उपर्युक्त सभी सिद्धियाँ स्वतः अनुभवकी हैं । इनसे मुझे जो शान्ति प्राप्त हुई है, वह असीम है ।

—पं० श्रीसभापतिजी मिश्र साहित्यरत्न

(३)

वाराणसीके श्रीरामनारायणजी महात्मा मुझे श्रीहनुमानके कुछ जप-पाठ तथा मन्त्रसिद्धि कराते एवं मन्त्र बतलाते थे, वे 'कल्याण'के पाठकोंकी सेवामें अर्पित किये जा रहे हैं । विश्वास है, पाठक इनसे लाभ उठायेंगे ।

न्यास

ॐ ह्रां अञ्जनीसुताय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं रुद्रमूर्तये तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रूं रामदूताय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रैं वायुपुत्राय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रौं अग्निगर्भाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रः ब्रह्मास्त्रनिवारणाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । ॐ अञ्जनीसुताय हृदयाय नमः । ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा । ॐ रामदूताय शिखायै वषट् । ॐ वायुपुत्राय कवचाय हुम् । ॐ अग्निगर्भाय नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ब्रह्मास्त्रनिवारणाय अस्त्राय फट् ॥

ध्यान

ध्यायेद् बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखं प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालङ्कृतम् ॥
(आनन्दरामा० मनोहर १३)

प्रातःकालीन सूर्यके सदृश जिनकी शरीर-कान्ति है, जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेवाले, देवताओंमें एक प्रमुख देवता, लोक-विख्यात यशस्वी और अपनी असाधारण शोभासे देदीप्यमान हो रहे हैं, सुग्रीव आदि सभी वानर जिनके साथ हैं, जो सुव्यक्त तत्त्वके प्रेमी हैं, जिनकी आँखें अतिशय लाल-लाल हैं और जो पीले वस्त्रोंसे अलङ्कृत हैं, उन पवनपुत्र श्रीहनुमानजीका ध्यान करना चाहिये।'

नीचे जो मन्त्र दिये जा रहे हैं, सबका या तो एक बार पाठ कर ले या उनमेंसे एक मन्त्र चुनकर अपने कार्यके अनुसार पाठ करके शेष मन्त्रोंको पढ़कर हवन करे।

कार्यसिद्धिके लिये—

ॐ नमो हनुमते सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् दूरस्थसमीपस्थान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि सर्वकाल-दुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलान् क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय। ॐ नमो हनुमते ॐ ह्रां ह्रीं हूं फट्। देहि ॐ शिव सिद्धिं ॐ ह्रां ॐ ह्रीं ॐ हूं ॐ ह्रैं ॐ ह्रौं ॐ ह्रः स्वाहा।

सर्वविघ्ननिवारणके लिये—

ॐ नमो हनुमते परकृतयन्त्रमन्त्रपराहङ्कारभूतप्रेत पिशाचपरदृष्टिसर्वविघ्नतर्जनचेटकविद्यासर्वग्रहभयान् निवारय निवारय वध वध लुण्ठ लुण्ठ पच पच विलुञ्च विलुञ्च किलि किलि किलि सर्वकुयन्त्राणि दुष्टवाचं ॐ ह्रां ह्रीं हूं फट् स्वाहा।

सर्वदुष्टग्रहनिवारणके लिये—

ॐ नमो हनुमते पाहि पाहि एहि एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनीडाकिनीनां विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मृत्यु मारय मारय भय शोषय शोषय प्रज्वल प्रज्वल भूतमण्डलपिशाचमण्डलनिरसनाय भूतज्वर प्रेतज्वरचातुर्थिकज्वरविष्णुज्वरमाहेश्वरज्वरान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि अक्षिशूलपक्षशूलशिरोऽभ्यन्तरशूलगुल्मशूल पित्तवातशूलब्रह्मराक्षसकुलपिशाचकुलप्रबलनागकुलच्छेदनविष निर्विषं कुरु कुरु झटिति झटिति ॐ ह्रः सर्वदुष्टग्रहान्नि वारणाय स्वाहा।

ॐ नमो हनुमते पवनपुत्राय वैश्वानरमुखाय पापदृष्टिचोरदृष्टिपापण्डदृष्टि हनुमदाज्ञा स्फुर ॐ स्वाहा ॥

इस प्रकार मन्त्र-जप पूर्ण होनेपर दशांश जप या हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये।

—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा

श्रीहनुमानका अतुल प्रभाव

सुमिरन करे तें तेरे विगत कलेश होत,
'हनू'के कहत भूत-व्याधियाँ नसावहीं।
पूजन करे तें तेरे मनकाम सिद्ध होत,
भवसागर पार बिन बोहितके जावहीं ॥
जन तेरो होय जोइ अटल विश्वास धरे,
बिनहि प्रयास नर सुरपुर पावहीं।
अतुल प्रभाव जग तेरो कह 'बेनीराम'
कालकी कराल गति छिनमें नसावहीं ॥

—पं० श्रीबेनीप्रसादजी तिवारी

आयुर्वेद-शास्त्र और श्रीहनुमान-सम्बन्धी कुछ मन्त्र

(लेखक—पं० श्रीनन्दकिशोरजी पाठक एम्० ए०, आयुर्वेदरत्न)

आयुर्वेद शास्त्रकी गणना उपवेदोंमें है। महर्षि शौनकरचित 'चरणव्यूह'-ग्रन्थमें इसे ऋग्वेदका तथा 'सुश्रुत' (सू० ४)में अथर्ववेदका उपवेद बतलाया गया है। इसमें आयुके संरक्षण एवं उसकी वृद्धिके विविध उपाय वर्णित हैं। श्रीरामदूत श्रीहनुमानजी शास्त्रोंमें अमर माने गये हैं। शास्त्रोंमें आठ चिरजीवियोंका वर्णन मिलता है, जिनमें श्रीहनुमानजीका एक प्रमुख स्थान है। हनुमानजीके अमर होनेमें एक कारण श्रीसीताजीके द्वारा उन्हें दिया हुआ वरदान भी है। मानसमें ऐसा उल्लेख है—'अजर अमर गुननिधि सुत होहू।' दूसरा कारण उनका ब्रह्मचर्यव्रत-पालन है, जिसके सम्बन्धमें शास्त्रोंका मत है—'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्'।

इसके अतिरिक्त ज्ञानियोंमें अग्रगण्य श्रीहनुमानजी आयुर्वेदके भी उत्तम ज्ञाता हैं, अतः उसका भी उपयोग कर उन्होंने अपनेको चिरजीवी बना लिया है। रामचरितमानसमें आया है कि जब लक्ष्मणजीको ब्रह्मशक्ति लग जाती है, तब भगवान् श्रीराम हनुमानजीको ही 'सुषेण' वैद्यको बुलानेके लिये भेजते हैं, क्योंकि वे इस बातसे भलीभाँति परिचित हैं कि हनुमानजी महान् ज्ञानी और आयुर्वेदके ज्ञाता हैं, अतः वे ही इस कार्यके योग्य हैं। तत्पश्चात् वैद्यराज सुषेण एवं भगवान् श्रीराम 'संजीवनी-बूटी'के आनयनार्थ भी हनुमानजीको ही भेजते हैं। इन दो उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि हनुमानजीका औषधि-विज्ञानसे विशेष सम्बन्ध है।

पुराणानुसार हनुमानजी ग्यारहवें रुद्रके अवतार हैं तथा पवन-पुत्र होनेके कारण उनका वायुसे भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। एकादश रुद्रोंके सम्बन्धमें शास्त्रोंका एक मत यह भी है कि आत्मा सहित दसों वायु—(१) प्राण, (२) अपान, (३) व्यान, (४) समान, (५) उदान, (६) देवदत्त, (७) कूर्म, (८) कृकल, (९) धनंजय और (१०) नाग—ही ग्यारह रुद्र हैं।

इन वायुओंपर जो विजय प्राप्त कर लेता है, वह योगी प्राणवायुको ब्रह्मरन्ध्रमें स्थिर कर लेनेमें समर्थ हो जाता है। इसी उसे अष्टसिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। हनुमानजी अष्टसिद्धियोंके दाता हैं। उनके द्वारा समय-समयपर प्रदर्शित किये गये अष्टसिद्धियोंके उदाहरण भी गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने रामचरितमानसमें विभिन्न स्थलोंपर दिये हैं।

आयुर्वेदके आचार्य—चरक, वाग्भट, सुश्रुत आदि महर्षियोंने इस शास्त्रको मुख्यतः तीन तत्त्वों या दोषोंपर अवलम्बित बताया है—(१) वात, (२) पित्त और (३) कफ। ये तीनों दोष आयुर्वेदके मुख्य स्तम्भ हैं। इनकी विषमता ही रोगोत्पत्तिका कारण है। इन तीनोंमें भी वात ही प्रधान है। शरीरके सारे कार्य वायुद्वारा ही होते हैं। जीवधारियोंके शरीरका सम्पूर्ण पोषण-क्रम वायुद्वारा ही होता है। मनुष्यके शरीरमें उचितरूपमें वात-तत्त्वके होने अर्थात् वायुकी स्थिति आयुर्वेदानुसार पर्याप्त मात्रामें होनेपर ही उसे स्वस्थ कहा जा सकेगा। शरीरमें दसों वायुओंके कार्य भिन्न-भिन्न हैं। श्रीहनुमानजी पवन-पुत्र हैं, अतः वे वायुस्वरूप और प्रधान वायुके अधिष्ठाता हैं।

वातके अधिष्ठाता होनेके कारण हनुमानजीकी आराधनासे सम्पूर्ण वात-व्याधियोंका नाश होता है। श्रीरामभक्त श्रीहनुमानजी सभी रोगोंको नष्ट करनेवाले हैं क्योंकि प्रत्येक रोगका दोष वायुके माध्यमसे ही उत्पन्न होता है। यदि वात शुद्धरूपमें स्थित है तो मनुष्य प्रायः नीरोग रह सकेगा। आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे सम्पूर्ण रोगोंके मूल कारण प्राणीके पूर्व या इसी जन्मके पाप ही होते हैं, अतः आयुर्वेदके ज्ञाता महर्षियोंने अपनी संहिताओंमें स्पष्ट किया है कि देवार्चनपूर्वक औषधि-सेवनसे ही मानसिक और शारीरिक व्याधियाँ दूर होती हैं—

> जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
> तच्छान्तिरौषधप्राशैर्जपहोमसुरार्चनैः॥

जप, हवन, देवार्चन—ये भी रोगोंकी औषधियाँ हैं ऐसी भी आयुर्वेदकी मान्यता है।

जो असाध्य रोगी हों और जीवनसे हताश हो गये हों, उन्हें हनुमानजीकी आराधना अवश्य करनी चाहिये। वात-व्याधिके लिये श्रीपवनकुमारकी उपासना एवं उनके मन्त्रोंका जप विशेषरूपसे लाभप्रद होता है। श्रीतुलसीदासजीकी भुजाओंमें वायु-प्रकोपसे भयानक पीड़ा हो गयी थी। उस समय उन्होंने 'हनुमानबाहुक'की रचना करके उसका चमत्कारी प्रभाव

अनुभव किया। यह हनुमानजीकी कृपाका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अब यहाँ पाठकोंके लाभार्थ श्रीहनुमानजीसे सम्बन्धित कुछ प्रयोग जो रोग-क्लेश-व्याधि निवारक तथा आशु फलप्रद हैं, दिये जा रहे हैं। इन प्रयोगोंका दृढ़ विश्वासके साथ करनेपर निश्चय ही कष्ट और वात-व्याधिसे छुटकारा मिल जाता है—

सर्वप्रथम श्रीहनुमानजीका चित्रपट सामने रखकर पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख आसनपर बैठ जाय और पञ्चोपचार (चन्दन, अक्षत, पूल, धूप, दीप)से हनुमानजीका पूजन करे। इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रका यथाशक्ति जप करे, किंतु यह जप कम-से-कम ५ माला प्रतिदिन होना आवश्यक है। सम्भव हो तो ईशानकोणमें गोघृत घीका एक दीपक भी जलाकर रख दे—

हनुमन्नञ्जनीसूनो वायुपुत्र महाबल।
अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोऽस्तु ते॥

इस मन्त्रका जप अनुष्ठान विधिसे भी कर सकते हैं। उसके लिये ११ दिनोंतक नित्य ३ हजार मालाका जप होना आवश्यक है। बादमें दशांश जप या हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इससे व्याधि शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। परंतु इस अनुष्ठान विधिके साधन कुछ कठोर हैं। इसमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, सत्यभाषण और सात्त्विक आहार या फलाहार आवश्यक है। इस विधिसे जप करनेपर सफलता निश्चित है। इस मन्त्रके जपकी एक दूसरी विधि और भी है, जो सभी अवस्थाओंके नर नारियोंके लिये सुलभ है। इसमें साधनकी आवश्यकता नहीं है, *अपितु दिन-रातमें जब भी अधिक-से अधिक अवसर प्राप्त* हो सके, इस मन्त्रका मानसिक जप करना चाहिये। यह जप जबतक रोग शान्त न हो जाय, तबतक दृढ विश्वास और श्रद्धाके साथ नियमितरूपसे करता रहे। इस प्रकार चलते फिरते और काम करते हुए भी यह जप किया जा सकता है।

१-नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥

यह चार वात-व्याधिका शामक है। इसका जप यथाशक्ति अधिक-से-अधिक करनेका प्रयत्न करे तो कष्ट शीघ्र ही दूर हो जाता है।

२-बुद्धि हीन तनु जानि के सुमिरौं पवनकुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहि हरहु कलेस बिकार॥

इस दोहेका जप कलह, क्लेश, रोग एवं शारीरिक दुर्बलता दूर करनेमें विशेष लाभप्रद है।

इस प्रकार ये तीनों मन्त्र शारीरिक एवं मानसिक व्याधिके विनाशक हैं। जबतक रोग नष्ट न हो जाय, तबतक इनका जप करते रहना चाहिये।

इस प्रकार आयुर्वेद शास्त्रमें रोगनिवारणार्थ श्रीहनुमानजीकी आराधनाका महत्त्वपूर्ण एवं चमत्कारी वर्णन है। एक विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्रीहनुमानजीके उपासकको चरित्रवान् होना परम आवश्यक है। सदाचारसे श्रीहनुमानजी विशेष प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ही मनःकामनाको पूर्ण कर देते हैं।

(२)

प्लीहा (तिल्ली)-रोगनिवारक मन्त्र

प्लीहा—एक प्रकारकी उदरग्रन्थि, जो पेटके वाम भागमें होती है, अत्यन्त छोटी उत्पन्न होकर रोगके कारण यथाक्रम बहुत बड़ी हो जाती है। आयुर्वेदके अनुसार बहुत दाह करनेवाले तथा उदरगत रक्त छिद्रको रोकनेवाले अन्नादि पदार्थोंके निरन्तर खाते रहनेसे प्लीहा (तिल्ली)-रोग होता है। शनैः शनैः यह ग्रन्थि बेर तुल्यसे बढ़कर तरबूजके तुल्य भी हो जाती है। इसका घटानेके लिये अति पवित्रताके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करके '**ॐ यो यो हनुमन्त फलफलित धगधगित आयुराष परुडाह**'—इस मन्त्रका दस हजार जप करे और फिर प्लीहा-रोगसे आक्रान्त मनुष्यको सीधा लिटाकर उसके उदरपर नागवल्लीदल (नागरबेलके पत्ते) रखे। पत्तोंके ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रखे और कपड़के ऊपर सूखे बाँसके पतले-पतले टुकड़े रख दे। इसके बाद बेरकी सूखी लकड़ी लेकर उसको जंगली पत्थरसे उत्पन्न की हुई आगसे जलाय और रोगीके पेटपर रखे हुए वंशशकल (बाँसके टुकड़ों)को उपर्युक्त हनुमन्मन्त्रके उच्चारणके साथ (उस जलती हुई लकड़ीसे) सात बार ताड़ित करे। इससे उदरगत प्लीहा शान्त होती है। इसे सात बार करना चाहिये। उपर्युक्त विधान नारद पुराणमें वर्णित है।

—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश'

अनुभव किया। यह हनुमानजीकी कृपाका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अब यहाँ पाठकोंके लाभार्थ श्रीहनुमानजीसे सम्बन्धित कुछ प्रयोग जो रोग-क्लेश-व्याधि निवारक तथा आयु फलप्रद हैं, दिये जा रहे हैं। इन प्रयोगोंका दृढ़ विश्वासके साथ करनेपर निश्चय ही कष्ट और वात-व्याधिसे छुटकारा मिल जाता है—

सर्वप्रथम श्रीहनुमानजीका चित्रपट सामने रखकर विधिपूर्वक पूर्वाभिमुख आसनपर बैठ जाय और उपचार (चन्दन, अक्षत, फूल, धूप, दीप)से भगवानका पूजन करे। इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रका यथाशक्ति जप करे, किंतु यह जप कम-से-कम ५ माला प्रतिदिन करना आवश्यक है। सम्भव हो तो ईशानकोणमें घीका एक दीपक भी जलाकर रख दे—

हनुमन्नञ्जनीसूनो वायुपुत्र महाबल।
अकस्मादागतोत्पातं नाशयाशु नमोऽस्तु ते॥

इस मन्त्रका जप अनुष्ठान विधिसे भी कर सकते हैं। इसके लिये ११ दिनोंतक नित्य ३ हजार मालाका जप करना आवश्यक है। बादमें दशांश जप या हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इससे व्याधि शीघ्र ही दूर हो जाती है। परंतु इस अनुष्ठान विधिके साधन कुछ कठोर हैं। इसमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, सत्यभाषण और सात्त्विक आहार या फलाहार आवश्यक है। इस विधिसे जप करनेपर सफलता निश्चित है। इस मन्त्रके जपकी एक तीसरी विधि और भी है, जो सभी अवस्थाओंके नर-नारियोंके लिये सुलभ है। इसमें साधनकी आवश्यकता नहीं है, अपितु दिन-रातमें जब भी अधिक-से-अधिक अवसर प्राप्त हो सके, इस मन्त्रका मानसिक जप करना चाहिये। यह जप तबतक रोग शान्त न हो जाय, तबतक दृढ़ विश्वास और उत्साहके साथ नियमितरूपसे करता रहे। इस प्रकार चलते-फिरते और काम करते हुए भी यह जप किया जा सकता है।

२—नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥

यह घोर वात-व्याधिका शामक है। इसका जप यथाशक्ति अधिक-से-अधिक करनेका प्रयत्न करे तो कष्ट शीघ्र ही दूर हो जाता है।

३—बुद्धि हीन तनु जानि कै सुमिरौं पवनकुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहि हरहु कलेस बिकार॥

इस दोहेका जप कलह, क्लेश, रोग एवं शारीरिक दुर्बलता दूर करनेमें विशेष लाभप्रद है।

इस प्रकार ये तीनों मन्त्र शारीरिक एवं मानसिक व्याधिके विनाशक हैं। जबतक रोग नष्ट न हो जाय, तबतक इनका जप करते रहना चाहिये।

इस प्रकार आयुर्वेद-शास्त्रमें रोगनिवारणार्थ श्रीहनुमानजीकी आराधनाका महत्त्वपूर्ण एवं चमत्कारी वर्णन है। एक विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्रीहनुमानजीके उपासकको चरित्रवान् होना परम आवश्यक है। सदाचारसे श्रीहनुमानजी विशेष प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ही मनःकामनाको पूर्ण कर देते हैं।

(२)

प्लीहा (तिल्ली)-रोगनिवारक मन्त्र

प्लीहा—एक प्रकारकी उदरग्रन्थि, जो पटके पार्श्व भागमें होती है, अत्यन्त छोटी उत्पन्न होकर रोगके कारण यथाक्रम बहुत बड़ी हो जाती है। आयुर्वेदके अनुसार बहुत दाह करनेवाले तथा उदरगत रक्तको दूषित करनेवाले अन्नादि पदार्थोंके निरन्तर खाते रहनेसे प्लीहा (तिल्ली)-रोग होता है। शनैः-शनैः यह ग्रन्थि बेर तुल्यसे बढ़कर तरबूजके तुल्य भी हो जाती है। इसको घटानेके लिये अति पवित्रताके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करके 'ॐ यो यो हनुमन्त फलफलित धगधगित आयुराष परुडाह'—इस मन्त्रका दस हजार जप करे और फिर प्लीहा-रोगसे आक्रान्त मनुष्यको सीधा लिटाकर उसके उदरपर नागवल्लीदल (नागरबेलके पत्ते) रखे। पत्तोंके ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रखे और कपड़ेके ऊपर सूखे बाँसके पतले-पतले टुकड़े रख दे। इसके बाद बेरकी सूखी लकड़ी लेकर उसको जंगली पत्थरसे उत्पन्न की हुई आगसे जलाये और रोगीके पेटपर रखे हुए यथाशकल (बाँसके टुकड़ों)का उपर्युक्त हनुमन्मन्त्रके उच्चारणके साथ (उस जलती हुई लकड़ीसे) सात बार ताड़ित करे। इससे उदरगत प्लीहा शान्त होती है। इसे सात बार करना चाहिये। उपर्युक्त विधान नारदपुराणमें वर्णित है।

—श्रीसत्यभदासजी बिसानी (अजेरा)

श्रीहनुमान-सम्बन्धी मानस-सिद्धमन्त्र

(प्रेषक—एक रामायणप्रेमी)

मानस सिद्ध-मन्त्रका विधान यह है कि पहले रातको दस बजेके बाद अष्टाङ्ग हवनके द्वारा मन्त्र सिद्ध करना चाहिये। फिर जिस जिस कार्यके लिये मन्त्र जपकी आवश्यकता हो, उसके लिये नित्य जप करना चाहिये। वाराणसीमें भगवान् शंकरने मानसकी चौपाइयोंको मन्त्र शक्ति प्रदान की है, इसलिये वाराणसीकी ओर मुख करके ही बैठना चाहिये। शंकरजीको साक्षी बनाकर श्रवण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

विविध कामना-सिद्धिके मन्त्र—

१—मस्तिष्ककी पीड़ा दूर करनेके लिये—

हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥

२—भूतको भगानेके लिये—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदयँ आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

३—युद्धमेंमें विजय प्राप्तिके लिये—

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥

४—श्रीहनुमानजीकी प्रसन्नता प्राप्तिके लिये—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपनें बस करि राखे रामू॥

अष्टाङ्ग-हवनकी सामग्री—

(१) चन्दनका बुरादा, (२) तिल, (३) शुद्ध घी, (४) शुद्ध शक्कर (५) अगर, (६) तगर, (७) कपूर, (८) शुद्ध केशर, (९) नागरमोथा, (१०) पञ्चमेवा, (११) जौ और (१२) चावल।

कुछ ज्ञातव्य बातें—

जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये जिस चौपाई या सोरठा का जप बतलाया गया है उसको सिद्ध करनेके लिये एक दिन अष्टाङ्ग-हवनकी सामग्रीसे उसी चौपाई या सोरठेके द्वारा १०८ बार हवन करना चाहिये। यह हवन केवल एक ही दिन करना चाहिये। इसके लिये कोई अलग कुण्ड बनानेकी आवश्यकता नहीं है। साधारण शुद्ध मिट्टीकी वेदी बनाकर उसपर अग्नि प्रज्वलित करके आहुति देनी चाहिये। प्रत्येक आहुतिमें चौपाई आदिके अन्तमें स्वाहाका उच्चारण करना चाहिये। यह हवन रातको १० बजेके बाद ही करना उपयुक्त होगा।

प्रत्येक आहुति लगभग पौन तोलेकी (सभी चीज मिलाकर) होनी चाहिये। इस प्रकार १०८ आहुतियोंके एक सेर (८० तोले) की सामग्री सम्मिश्रित बना लेनी चाहिये। कोई पदार्थ कम-ज्यादा हो तो कोई आपत्ति नहीं। पञ्चमेवामें पिस्ता, बादाम, किशमिश (द्राक्षा), अखरोट और काजू ले सकते हैं। इनमेंसे कोई मेवा न मिले तो उसके बदले नौजा या मिश्री मिला सकते हैं। शुद्ध केशर चार आने भर ही डालनेसे काम चल सकता है, अधिककी आवश्यकता नहीं है।

हवन करते समय माला रखनेकी आवश्यकता नहीं। सौ आठकी संख्या गिननेभरके लिये है। इसलिये दाहिने हाथसे आहुति देकर फिर दाहिने हाथसे ही मालाका एक मनका सरका देना चाहिये। फिर माला या तो बायें हाथमें ले ले या आसनपर रख दे। पुनः आहुति देनेके बाद उसे दाहिने हाथमें लेकर मनका सरका देना चाहिये। माला रखनेमें असुविधा प्रतीत हो तो गेहूँ, जौ या चावलके दाने १०८ दाने रखकर उनसे गिनती की जा सकती है। बैठनेके लिये आसन ऊन अथवा कुशका होना चाहिये। सूती कपड़ा हो तो वह धुला हुआ पवित्र होना चाहिये।

मन्त्र सिद्ध करनेके लिये यदि लंकाकाण्डकी चौपाई या दोहा हो तो उसे शनिवारको हवन करके करना चाहिये। दूसरे काण्डोंके चौपाई-दोहे किसी भी दिन हवन करके सिद्ध किये जा सकते हैं। सिद्ध की हुई रक्षा-रेखाकी चौपाई एक बार बोलकर जहाँ बैठे हों, वहाँ अपने आसनके चारों ओर चौकोर रेखा जल या कोयलेसे खींच लेनी चाहिये। फिर उस चौपाईको भी ऊपर लिखे अनुसार एक सौ आठ आहुतियाँ देकर सिद्ध कर लेना चाहिये। पर रक्षा-रेखा न भी खींची जाय तो भी आपत्ति नहीं है। दूसरे कामके लिये दूसरा मन्त्र सिद्ध करना हो तो उसके लिये अलग हवन करके पृथक् जाप करना होगा।

एक दिन हवन करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद जबतक कार्य सफल न हो, तबतक उस मन्त्र (चौपाई, दोहा आदि) का प्रतिदिन कम-से-कम एक सौ आठ बार प्रातःकाल या रात्रिको, जब सुविधा हो, जप करना चाहिये, अधिक कर सके तो और उत्तम है। [illegible]

तो नियमित जपके अतिरिक्त दिनभर चलते-फिरते भी उस चौपाई या दोहेका जप कर सकता है।

कोई दो-तीन कार्योंके लिये दो-तीन चौपाइयोंका अनुष्ठान एक साथ करना चाहे तो कर सकता है। पर उन चौपाइयोंको पहले अलग-अलग हवन करके सिद्ध कर लेना चाहिये।

स्त्रियाँ भी इस अनुष्ठानको कर सकती हैं, परंतु रजस्वला होनेकी स्थितिमें जप बंद रखना चाहिये। हवन भी उस समय नहीं करना चाहिये।

जप करते समय मनमें यह विश्वास अवश्य रखना चाहिये कि श्रीहनुमानजीकी अहैतुकी कृपासे मेरा कार्य अवश्य-अवश्य सफल होगा। विश्वासपूर्वक जप करनेपर सफल होनेकी पूरी आशा है।

अनुभवसिद्ध प्रयोग

(प्रेषक—एडवोकेट श्रीश्यामसुन्दरजी कसेरा कुलसेवक एम० ए०, बी० काम्०, एल-एल० बी०, साहित्यविशारद, अणुव्रत विशेषज्ञ)

हमारे कुलदेवता श्रीहनुमानजीकी उपासनासे सम्बन्धित एक अनुभवसिद्ध अचूक प्रयोग लेख रूपमें निबद्ध किया जा रहा है। आशा है, सहृदय आस्तिक पाठकगण श्रद्धा-विश्वासपूर्वक इससे अवश्य लाभ उठायेंगे। प्रस्तुत प्रयोग मेरी पूजनीया स्व० दादी श्रीजीको लगभग २५ वर्ष पूर्व मेरी जन्मभूमि रामगढ़ (शेखावाटी), राजस्थानमें एक सिद्ध महात्माजीसे आशीर्वादस्वरूप प्राप्त हुआ था, जिसका प्रत्यक्ष चमत्कार अचूक रामबाणकी तरह मैं आजतक देखता आ रहा हूँ। कई बार मेरे परिवारके तथा कई अन्य व्यक्तियोंने इससे लाभ उठाया है।

किसी भी परोपकार भावना या उचित एवं योग्य स्वकार्यकी सिद्धिके लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। किसी भी मासमें शुक्लपक्षके मंगलवारको इसका श्रीगणेश कर सकते हैं, परंतु उस दिन रिक्ता (४-९-१४) तिथि एवं प्रयोग-कर्ताकी राशिसे ४ थे, ८ वें या १२ वें चन्द्रमाका होना निषिद्ध है। जननाशौच या मरणाशौचमें भी इसका प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। यदि प्रयोग-कालमें ऐसा कोई संयोग आ ही जाय तो किसी कर्मनिष्ठ कुलीन ब्राह्मणके द्वारा इसे पूर्ण कराना चाहिये, बीचमें छोड़ना उचित नहीं है।

पुरुषोंके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियाँ भी इसका अनुष्ठान कर सकती हैं, जिनका प्रौढ़ावस्थाके बाद प्राकृतिक रूपसे मासिक धर्म सदाके लिये बंद हो चुका हो। प्रयोगके समय क्षौरादि कर्मका त्याग एवं सात्त्विक आहारके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करना अनिवार्य है। एक ही समय भोजन किया जाय तो अति उत्तम है, पर यह अनिवार्य नहीं है परंतु दो बारसे अधिक अन्न ग्रहण करना वर्जित है।

प्रयोग-कालके बीचमें ही यदि देव-कृपावश सकल्पित कार्यकी सिद्धि हो जाय तो भी प्रयोगको पूरा करना ही चाहिये, अन्यथा बने हुए कार्यके बिगड़नेकी सम्भावना रहती है।

प्रयोगविधि—

प्रयोग प्रारम्भके लिये शुक्लपक्षके जिस मंगलवारका निश्चय किया जाय, उसके पहले दिन सोमवारको सवा पाव अच्छा गुड़, एक छटाँक भूने हुए अच्छे चने और सवा पाव गायका शुद्ध घी संग्रह कर ले। गुड़के छोटे छोटे इक्कीस टुकड़े कर ले, शेष वैसे ही रहने दे। स्वच्छ रूईकी २२ फूल-बत्तियाँ बनाकर घीमें भिगो दे। तीनों वस्तुएँ अर्थात् गुड़, चने और बत्तीसहित घी अलग-अलग तीन स्वच्छ एवं शुद्ध पात्रोंमें रखकर घरके किसी एक स्वच्छ ऊँचे स्थान या आलमारीमें ढककर रख दे, जहाँ बच्चोंके हाथ न पहुँच सकें। उनके पास ही एक दियासलाई और एक अन्य छोटा पात्र—डब्बी आदि, जिसमें प्रतिदिन उपयुक्त वस्तुएँ ले जायी जा सकें, भी रख दे, जिससे प्रतिदिन इधर-उधर पात्रकी खोज न करनी पड़े। बस, सामग्री तैयार है। शेष रहा केवल एक स्वच्छ पवित्र श्रीहनुमानजीका मन्दिर, जो गाँव या शहरके कोलाहलसे दूर जितने भी निर्जन एवं एकान्त स्थानमें हो, उतना ही अच्छा है अन्यथा अपने निवास स्थानसे कम-से-कम सवा-डेढ़ फर्लांग दूर होना तो अनिवार्य ही है।

दिन मङ्गलवारसे प्रयोग आरम्भ करना हो, उस दिन हो सके तो ब्राह्ममुहूर्तमें अन्यथा सूर्योदयसे पहले अवश्य उठ जाना चाहिये। फिर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान कर ले, स्नान करके धुली धोती आदि पहनकर नया। पहले यहाँ जप करें ताँबे पात्रोंमें शुद्ध, जल और पावना रखी है। वहीं पहलेसे ही रखे हुए किसी पात्रमें एक गुड़की डली, ११ चने एक धूपबत्ती और दियासलाई लेकर पवित्र धुली हुई रूमाल आदि किसी स्वच्छ पवित्र वस्त्रसे उसे ढक ले। वहाँसे लेकर समय मन्दिरमें श्रीहनुमानजीकी मूर्तिके सम्मुख पहुँचनेतक न तो पीछे न दायें-बायें ही घूमकर देखे और न किसीसे उसकी बात करे, रास्तेमें या मन्दिरमें किसीसे एक शब्द भी बोले, चाहे कोई कितने भी आवश्यक कार्यके लिये आवाज क्यों न देता हो। इस प्रकार पूर्णरूपसे एकदम मौन रहे।

बिना पूजा-स्थल पर श्रीहनुमानजीके सम्मुख पहुँचकर बिना इधर उधर देखे मौन धारण किये हुए ही धूपकी बत्ती जलाये, फिर ११ चने और १ गुड़की डली श्रीहनुमानजीके सामने रखकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर हाथ जोड़ पूर्वकल्पित अपनी मन कामनाकी सिद्धिके लिये मन-ही-मन श्रद्धा, विश्वास, भक्ति एवं प्रेमपूर्वक उनसे प्रार्थना करे। फिर यदि कोई अन्य प्रार्थना, स्तुति, श्रीहनुमानचालीसा आदिका पाठ करना चाहे तो मौन ही रहकर करे। घरकी ओर आनेके लिये मूर्तिके सामनेसे हटनेके बाद जबतक अपने घर पहुँचकर यह सारी पाप निश्चित व्यापार न कर ले, तबतक पीछे या दायें-बायें घूमकर न तो देखे और न किसीसे एक शब्द भी बोले, मौनी ही बना रहे। फिर सभी रखकर 'राम राम' कहकर मौन भङ्ग करे। इसी क्रमसे २१ दिनों तक लगातार एक-सा प्रयोग करता रहे। रात्रिमें शयन समय श्रीहनुमानचालीसाका ११ पाठ करके अपनी मन कामना सिद्धिके लिये प्रार्थना करना अनिवार्य है।

बाइसवें दिन मंगलवारको नित्यकर्मसे निवृत्त हो सवा सेर आटेका एक रोट बनाकर गायके अग्निमें सेंककर पका ले, यदि असुविधा हो तो पाकशालाकी चौकी रोटी बनाकर उसमें आवश्यकतानुसार गायका शुद्ध घी और अच्छा गुड़ मिलाकर उसका चूरमा बना ले। २१ दिनोंके बाद जो गुड़ बचा हो, उसे चूरमेमें मिला दे। फिर चूरमेको थालीमें रखकर बचे हुए सारे चने तथा शेष बची २२वीं अन्तिम बत्ती लेकर प्रतिदिनकी तरह ही मौनपूर्वक बिना पीछे या दायें-बायें देखे मन्दिरमें जाय और बत्ती जलाकर श्रीहनुमानजीको चने एवं चूरमेका भोग लगाकर उसी प्रकार घरपर वापस आय और घरमें प्रवेश करनेके बाद ही मौन भङ्ग करे। प्रयोगकर्ता उस दिन दोनों समय केवल उसी चूरमेका भोजन करे। शेष चूरमेको प्रसादरूपमें बाँट दे।

ऐसा करनेसे श्रीहनुमानजीकी कृपासे मनोरथ अवश्य सिद्ध होता है। किसी कारणवश प्रयोगमें भूल भी हो जाय तो निराश न हो, उसे फिर करे। श्रीहनुमानजी श्रद्धालु, विश्वासी, आस्तिक, सच्चे साधककी मन कामना अवश्य पूर्ण करते हैं, यह परीक्षित अनुभवसिद्ध अचूक प्रयोग है।

तुलसीके प्रबोधक श्रीहनुमान

देवी देव दनुज मनुज मुनि सिद्ध नाग,
छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं।
पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम
रामदूतकी रजाइ माथे मानि लेत हैं॥
घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुरोग जोग
हनुमान आन सुनि छाड़त निकेत हैं।
क्रोध कीजे कर्मको प्रबोध कीजे 'तुलसी'को
सोध कीजे तिनको जो दोष दुख देत हैं॥

(हनुमानबाहुक)

भावविभोर श्रीहनुमान

तुलसीदासजी पर श्रीहनुमानजीकी कृपा ।

प्रेत-बाधा-निवारणके सम्बन्धमें अनुष्ठान

(परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा निर्दिष्ट)

(१) प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

प्रतिदिन ११ मालाके हिसाबसे ४० दिनोंतक इसका जप करना चाहिये।

(२) श्रीहनुमानजीकी मूर्ति या चित्रके सामने बैठकर पञ्चोपचारसे उनकी पूजा करके कम-से-कम सात शनिवारतक प्रत्येक शनिवारको हनुमानचालीसाके एक सौ पाठ करें।

(३) इस (६४) यन्त्रको भोजपत्रपर लाल चन्दनसे लिखकर, मँढ़वाकर सभी घरोंमें टाँग दें।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

(४) प्रेतकी सद्गतिके लिये भागवतका सप्ताह अनुष्ठानके रूपमें एक पाठ और श्रीविष्णुसहस्रनामके १०८ पाठ कराने चाहिये।

'कहाँ हनुमानु-से बीर बाँके'

(१)

मत्त भट मुकुट, दसकंठ-साहस-सइल-
सृंग बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठ,
सेषु संकुचित, संकित, पिनाकी॥
चलत महि मेरु, उच्छलत सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनिचर घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमानकी हाँक बाँकी॥

(२)

कौनकी हाँकपर चौंक चंडीसु बिधि
चंड-कर थकित फिरि तुरग हाँके।
कौनके तेज बलसीम भट भीम-से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥
दास-तुलसीसके बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन
कहाँ हनुमानु-से बीर बाँके॥

(कवितावली ६। ४४-४५)

शावर-मन्त्र एवं श्रीहनुमान

(लेखक—श्रीरामचैतन्यजी श्रीवास्तव एम०ए०, एम० आ० ए०, शास्त्री)

मन्त्र प्रायः चार प्रकारके माने गये हैं—वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक एवं शावर। चमत्कारफलप्रधान डामर-मन्त्र भी शावर-मन्त्रकी ही कोटिमें माने जाते हैं। कलियुगके जीवोंपर दया कर उन्होंने शावर-मन्त्रोंको कीलित नहीं किया, इसलिये ये मन्त्र अल्प साधना एवं प्रयाससे ही सिद्ध हो जाते हैं।

मन्त्र किसी भी प्रकारके क्यों न हों, उनकी सिद्धिके लिये सिद्ध गुरुसे दीक्षा एवं गुरुकी कृपा आवश्यक है। जिस पद्धतिकी साधना करनी हो, उसके सम्प्रदायगत आचार्योंका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

अभीष्ट शावर-मन्त्रकी दीक्षा उपयुक्त विधिसे लेकर दीपावली या होलीकी रात्रि अथवा ग्रहणकालमें उसका निर्दिष्ट संख्याके अनुसार जप करने तथा विधिपूर्वक होमादि करनेसे सिद्ध होता है। तत्पश्चात् उसका नित्य जप करना चाहिये। जहाँ मन्त्रकी जप-संख्या निर्दिष्ट न हो, वहाँ उसका १०८ या १००८ बार जप कर लेना चाहिये। शावर-मन्त्रोंकी प्रयोग-विधि यद्यपि ग्रन्थोंमें मिलती है, तथापि उनके सम्बन्धमें गुरु-मुखसे जानकारी प्राप्त कर लेना ही अधिक अच्छा है। मन्त्रशक्तिपर पूर्ण विश्वास साधना तथा प्रयोगका मूल आधार है, यह याद रखें।

शावर-मन्त्रोंका प्राचीन शास्त्रीय रूप क्या था, कहा नहीं जा सकता। सुप्रसिद्ध तन्त्रोंमें योगिनीजालशम्बरम् उल्लेख मिलता है। सम्भव है, यह बात शावर-मन्त्रोंसे सम्बन्धित रही हो। ऋग्वेदमें परम मायावी शम्बर नामक असुरका एवं उसकी शाम्बरी मायाका उल्लेख मिलता है, परंतु आजकल उपलब्ध मन्त्र प्रायः भाषा-मन्त्र हैं, अतः उनका मूल चाहे आसुरी माया विद्यामें हो, पर वे अति प्राचीन नहीं हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें कहा है कि कलियुगमें जीवोंके कष्टको देखकर उसे दूर करनेके लिये जगत्-हितकी करुणकामनासे प्रेरित होकर श्रीउमा-महेश्वरने इन शावर-मन्त्रोंकी सृष्टि की। यद्यपि इन मन्त्रोंके अक्षर भी अनमिल होते हैं तथा इनका कोई अर्थ भी नहीं होता, तथापि महेशके प्रतापसे ये मन्त्र तत्काल अपना चमत्कारिक फल प्रकट कर देते हैं—

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥

शावर-मन्त्र ध्वनिप्रधान होते हैं तथा इनमें निहित देवशक्ति, गुरुशक्ति एवं मन्त्रशक्ति ही उच्चारणमात्रसे अभिव्यक्त होकर अपना प्रभाव दिखलाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि शावर-मन्त्र नाथोंके बाद गुरु गोरखनाथके समयमें अभिव्यक्त हुए हैं तथा उसके बाद भी समय-समयपर अभिव्यक्त होते रहे हैं। इस तथ्यकी पुष्टि मन्त्रोंमें गुरु गोरखनाथ, राजा अजयपाल, लोनाचमारी, दासीदासी, चण्डी, इस्माइल जोगी आदिके उल्लेख एवं लोक-हिंदी भाषामें मन्त्रोंकी रचनासे होती है। देवोंमें महादेवका तथा देवियोंमें कामाख्यादेवीका स्मरण विशेषरूपसे किया गया है। श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण, हनुमान एवं सुग्रीवादिकी शक्तिका स्मरण करके भी शावर-मन्त्र रचे गये हैं।

शावर-मन्त्रोंमें रोग, पीड़ा आदिको सचेतन सूक्ष्म व्यक्तित्वसे युक्त मानकर उनसे पीड़ित व्यक्तिको छोड़कर चले जानेकी प्रार्थना की गयी है या देवता अथवा गुरुके आदेशसे उन्हें जानेको कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लौकिक जगत्के सभी क्रिया-कलाप सूक्ष्म प्राण-जगत्की विविध शक्तियोंद्वारा अधिष्ठित एवं नियन्त्रित हैं। शावर-मन्त्रोंकी साधनासे इन सूक्ष्मशक्तियों या देवशक्तियोंका अनुग्रह प्राप्तकर सभी लौकिक कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।

श्रीहनुमान चिरजीवी हैं तथा जबतक यह पृथ्वी है, तब तक श्रीरामराजके साधन एवं लोकहितकी सिद्धिके लिये इसपर निवास करेंगे। उनकी शक्ति पवन वायुप्रवाहके समान व्याप्त है। मेरुतन्त्रके अनुसार श्रीहनुमानजीके मन्त्र चारों युगोंमें शीघ्र फल देनेवाले हैं। अतः श्रीहनुमानजीके शावर-मन्त्रोंका संग्रह यहाँ लोककल्याणकी कामनासे किया जाता है—

इधर और पर माँ रह सूर गेल पर लौटि बाहर भूमि माह दाहाह हनुमान की आ अब खेत मह सूअर घर मह भूम जाइ ॥

प्रयोगविधि—संख्या ८में बतायी हुई विधिके अनुसार ।

१०—शरीर-रक्षा करनेके लिये—

ॐ नमः वज्रका कोठा जिसमें पिंड हमारा पैठा ईश्वर कुंजी ब्रह्मका ताला मेरे आठों यामका यती हनुमन्त रखवाला ॥

इस मन्त्रका एक हजार बार जप करनेसे सिद्धि होती है। इसके बाद इस मन्त्रके तीन बार उच्चारणमात्रसे कार्य सिद्धि होती है।

११—अर्शरोग-निवारणके लिये—

ॐ काकाकता क्रोरी कर्ता ॐ करता से होय यरसना दस हूंस प्रकटे ग्नूली बादी बवासीर न होय। मन्त्र जानके न बतावे द्वादश ब्रह्म हत्याका पाप होय। लाख जप करे तो उसके वंशमें न होय शब्द साँचा पिंड काचा तो हनुमानका मन्त्र साँचा फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा ॥

रात्रमें रखे हुए जलको इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके शौच-समय गुदाको प्रक्षालन करे तो बवासीर नष्ट हो जाती है। एक लाख जप करनेवालेको जीवनमें कभी बवासीर होती ही नहीं है।

१२—पीलियारोग-निवारणके लिये—

ॐ नमो वीर बैताल असराल नारसिंहदेव खादी तुषादी पीलिया कूं भिदाती कारै झारै पीलिया रहै न नेक निशान जो कहीं रह जाय तो हनुमत की आन मेरी भक्ति गुरुकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा ॥

१३—दाँतका कीड़ा झाड़नेके लिये—

ॐ नमो आदेश गुरुको बनमें ब्याई अञ्जनी जिन जाया हनुमत कीड़ा मकड़ा माकड़ा ए तीनों भसमन्त, गुरुकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा ॥

इस मन्त्रको एक लाख जपसे सिद्धि होती है। जपका आरम्भ दीपावलीकी रात्रिसे करना चाहिये। मन्त्र सिद्ध होनेपर नीमकी डालीसे झाड़नेपर उसी क्षण पीड़ा नष्ट हो जाती है। मन्त्रोच्चारणके साथ कागज या बाँसकी नालीसे कीड़ेवाले दाँतको कटेरीके बीजोंका धुआँ देनेसे कीड़े गिर जाते हैं।

१४—नेत्ररोग-शमन करनेके लिये—

ॐ झलमल जहर भरी तलाई अस्ताचल पर्वतसे आई जहाँ बैठा हनुमता जाइ फूटै न पाकै करै न पीड़ा जती हनुमत हरे पीड़ा मेरी भक्ति गुरुकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा सत्य नाम आदेश गुरुको ॥

इस मन्त्रको सिद्ध कर ११ बार उच्चारण करते हुए नीमकी डालीसे झाड़े। लगातार तीन दिन झाड़नेसे नेत्र रोग एवं पीड़ाका शमन हो जाता है।

१५—अग्नि-बन्ध करनेके लिये—

अज्ञान बाधा विज्ञान बाँधा बाँधा घाट आठ काटि बैसंदर बाँधो अग्न हमारा भाई आन हि देखें दाहरु नाहिं दखे बुझाइ हनुमन्त बाँधा पानी होइ जाय अग्नि भवैतके जसमती हाथी होइ बैसंदर बाँधा नारायण साखि मोरी गुरुकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा॥

साधक पाठक इनमेंसे एक या अनेक मन्त्रोंकी अपने प्रयोजनके अनुसार साधना कर श्रीहनुमानजीकी कृपासे अपनी कामना सिद्ध करें।

सहायक ग्रन्थ—

१—शाबरचिन्तामणि (मत्स्येन्द्रनाथकृत), प्रकाशक—योग प्रचारिणी, गोरखटिल्ला, काशी।

२—बृहच्छाबरतन्त्र, प्र० खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई।

३—शाबरी तन्त्र।

४—शाबरी तन्त्र-माया।

५—मन्त्र-महाविज्ञान, चतुर्थ खण्ड, संस्कृति, बरेली।

दिन पूर्व मेरी बुआजी मथुरासे पधारीं । उनसे इस विषयपर चर्चा की तो मैंने उन्हें भी इसका प्रेमी पाया ।

वे बोलीं, 'मैंने जबसे होश सँभाला है, तभीसे इस उपकारी मन्त्रसे मैं काम ले रही हूँ । मैंने तो दैनिक पूजामें ही 'बजरंग-बाण'को सम्मिलित कर लिया है । इसके कारण मेरा पूरा दिन बड़ी प्रसन्नता, साहस और आत्म-विश्वासपूर्वक व्यतीत होता है । जैसे किसी शक्तिवर्धिनी दवाके सेवनसे शरीरमें सारे दिन शक्ति बनी रहती है, वैसे ही बजरंग-बाणके पाठसे मेरा मन सारे दिन आध्यात्मिक शक्तिसे परिपूर्ण रहता है । यह मन्त्र मनके समस्त दुःखों और संकटोंको दूर करता है ।'

'ऐसा आखिर क्यों होता है ?' मैंने पूछा ।

वे बोलीं, 'हमारे धर्ममें बल और शक्तिके प्रतीक हैं बजरंगबली हनुमानजी । अर्जुनके विजयी झंडेपर हनुमानजी विराजते हैं । इस चिह्नसे अर्जुनको प्रत्येक स्थानपर विजय प्राप्त हुई थी । इसे देख देखकर वे हनुमानजीकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करते थे ।'

'महावीर हनुमानजीकी क्या विशेषताएँ आप मुख्य मानती हैं ?' मैंने प्रश्न किया ।

वे बोलीं, 'बजरंगबली हनुमानजीमें शक्तियाँ भरी पड़ी हैं । यही कारण है कि आज भी असंख्य मनुष्य उन्हें स्मरण करते हैं तथा उनका पूजन और प्रातःकाल ही दर्शन करते हैं । उनमें अपार शारीरिक बल है । उनकी विशाल देह है । वे सदा ब्रह्मचर्यसे दीप्तिमान् रहते हैं । वे दुष्टोंका दमन करनेवाले और ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं । इस प्रकार शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक गुणोंसे परिपूर्ण बजरंगबली आज भी नयी शक्ति देनेवाले हैं । हनुमानजी भगवान्‌के प्रिय भक्तोंमें प्रधान हैं । इस बजरंग-बाणकी सिद्धि-साधनासे मनुष्यमें उनके समस्त गुण प्रकट होने लगते हैं ।'

उनके इन तर्कोंसे मैं प्रभावित हुआ और हनुमानजीकी विशेषताओंपर बहुत दिनोंसे विचार करता रहा । वास्तवमें हनुमानजी हिंदूधर्मके एक महान् शक्तिकेन्द्र हैं । उनकी विभूतियाँ भी बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं ।

हनुमानजीकी विशेषताएँ

महावीर हनुमान शारीरिक शक्तिके प्रतीक हैं । वे अतुल बलवान् और पराक्रमी हैं । सोनेके पर्वत-जैसी उनकी सुदृढ़ देह है । वे असुरों अर्थात् समस्त दुष्ट शक्तियों, हर प्रकारके राक्षसत्व एवं पशुत्वको दूर करनेवाले हैं । इसी कारण इन्हें हिंदूधर्ममें 'महावीर' कहा गया है । दुर्जन उनकी शारीरिक शक्तियोंके सामने उसी प्रकार दब जाते हैं, जैसे पर्वतके नीचे क्षुद्र तिनका ।

हनुमानजी वायुपुत्र (पवन पूत)के नामसे प्रसिद्ध हैं । उनके चिह्नको अपनी ध्वजापर धारण कर अर्जुनने वायु अर्थात् प्राणोंपर विजय प्राप्त की थी । प्राण चञ्चल हुआ तो मन चञ्चल हो जाता है । प्राण स्थिर होनेसे मन स्थिर हो जाता है । हनुमानजीकी कृपा प्राप्त हो जानेपर मन और प्राण स्थिर होते हैं और शक्ति बढ़ जाती है ।

मनोविज्ञानका यह अटल सिद्धान्त है कि मनुष्य जिन विचारों या भावोंको पूरी निष्ठा और संकल्पसे बार-बार दोहराता है या जिस मानसिक स्थितिमें देरतक निवास करता है, वही मानसिक स्थिति सदाके लिये उसकी आदत और स्वभाव बन जाती है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक लेखक युंगके मतानुसार मनुष्यकी नैतिक भावनाओंकी जड़ उसके मनमें है । मनसे ही हमारी गुप्त शक्तियोंका विकास होता है ।

'बजरंग-बाण'में पूरी श्रद्धा रखने और निष्ठापूर्वक उसके बार-बार दुहरानेसे हमारे मनमें हनुमानजीकी शक्तियाँ जमने लगती हैं । शक्तिके विचारोंमें रमण करनेसे शरीरमें वही शक्तियाँ बढ़ती हैं । शुभ विचारोंका मनमें जमानेसे मनुष्यकी भलाईकी शक्तियोंमें वृद्धि होने लगती है, उसका सत्-चित्-आनन्द स्वरूप खिलता जाता है, मानूलाँ कष्टों और संकटोंके निरोधकी शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं तथा साहस और निर्भीकता आ जाती है । इस प्रकार बजरंग-बाणमें विश्वास रखने और उसे काममें लेनेसे कोई भी कायर मनुष्य निर्भय और शक्तिशाली बन सकता है ।

बजरंग-बाणके श्रद्धापूर्वक उच्चारण कर लेनेसे जो मनुष्य शक्तिके पुञ्ज महावीर हनुमानजीको स्थायीरूपसे अपने मनमें धारण कर लेता है, उसके सब संकट अल्प कालमें ही दूर हो जाते हैं ।

साधकको चाहिये कि वह अपने सामने हनुमानजीकी मूर्ति या उनका कोई चित्र रख ले और पूरे आत्मविश्वास तथा निष्ठाभावसे उनका मानसिक ध्यान करे। मनमें ऐसी धारणा करे कि हनुमानजीकी दिव्य शक्तियाँ धीरे-धीरे मेरे अंदर प्रवेश कर रही हैं। मेरे अन्तर तथा चारों ओरके वायुमण्डल (आकाश)में स्थित संकल्पके परमाणु उत्तेजित हो रहे हैं। ऐसे उत्साह वातावरणमें निवास करनेसे मेरी मन-शक्तिके बढ़नेमें सहायता मिलती है। जब यह मूर्ति मनमें स्थायीरूपसे उतरने लगे, अंदरसे शक्तिका स्रोत फूटने लगे, तभी बजरंग-बाणकी सिद्धि समझनी चाहिये। श्रद्धायुक्त अभ्यास ही पूजाकी सिद्धिमें सहायक होता है। पूजनमें हनुमानजीकी शक्तियोंपर एकाग्रताकी परम आवश्यकता है।

पूजा कैसे आरम्भ करें?

सबसे पहले अपने सामने हनुमानजीकी मूर्ति अथवा चित्र रखिये और चन्दन, पुष्प, धूप आदिसे पूजन कर ध्यानसे उन्हें देखिये तथा श्रद्धाके साथ प्रणाम कीजिये। फिर श्रद्धापूर्वक इस प्रकार स्तुति कीजिये—

अतुलितबलधाम हेमशैलाभदेह
दनुजवनकृशानु ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधान वानराणामधीश
रघुपतिप्रियभक्त वातजात नमामि॥

आप महावीर हैं। आपमें अतुलबल है। आपके बलको कौन तौल सकता है। आप शारीरिक, आध्यात्मिक, नैतिक और हर प्रकारके उच्चतम बलकी साक्षात् मूर्ति हैं। आपकी यह पुष्ट और सशक्त देह पर्वतके समान है। आपमें [illegible] तेज प्रदीप्यमान है। आपकी हर भावभंगी ऐसी [illegible] है, मानो सोनेका पर्वत चमक रहा हो। आप [illegible] राक्षसों (और समस्त आसुरी शक्तियों) के वनको नष्ट करनेके लिये भयंकर दावानलके समान, ज्ञानियोंमें अग्रणी, सकल शुभ देवी गुणोंसे परिपूर्ण, वानर सेनाके अधीश्वर, भगवान् श्रीरामके प्रिय भक्त और स्फूर्तिमें पवन-जैसे हैं, पवनपुत्र ही हैं। अतः मैं कार्य सिद्धिके लिये—आपकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये आपको नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार हनुमानजीका महत्[illegible] करके निम्नलिखित बजरंग-बाणका प्रेमपूर्वक [illegible] [illegible]।

बार-बार दोहरानेसे यह याद हो जाता है और इसका पाठ करनेमें समय भी अधिक नहीं लगता।

यह है यह चमत्कारी बजरंग-बाण। आप इसके शब्दों और अर्थोंपर ध्यान दीजिये और प्रेमसे पढ़िये। प्रतिदिन एक बार अवश्य दोहराइये।

बजरंग-बाण

निश्चय प्रेम प्रतीति ते, बिनय करैं सनमान।
तेहि के कारज सकल शुभ, सिद्ध करैं हनुमान॥

जय हनुमंत संत-हितकारी।
सुनि लीजै प्रभु बिनय हमारी॥
जन के काज बिलंब न कीजै।
आतुर दौरि महासुख दीजै॥
जैसे कूदि सिंधु के पारा।
सुरसा बदन पैठि बिस्तारा॥
आगे जाय लंकिनी रोका।
मारेहु लात गई सुरलोका॥
जाय बिभीषन को सुख दीन्हा।
सीता निरखि परम-पद लीन्हा॥
बाग उजारि सिंधु महँ बोरा।
अति आतुर जमकातर तोरा॥
अक्षय कुमार मारि संहारा।
लूम लपेटि लंक को जारा॥
लाह समान लंक जरि गई।
जय जय धुनि सुरपुर नभ भई॥
अब बिलंब केहि कारन स्वामी।
कृपा करहु उर अंतरजामी॥
जय जय लखन प्रान के दाता।
आतुर ह्वै दुख करहु निपाता॥
जय हनुमान जयति बल-सागर।
सुर-समूह-समरथ भट-नागर॥
ॐ हनु हनु हनु हनुमंत हठीले।
बैरिहि मारु बज्र की कीले॥
ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं हनुमंत कपीसा।
ॐ हुं हुं हुं हनु अरि उर-सीसा॥
[illegible] बलवंता।
संकरसुवन बीर हनुमंता॥
बदन [illegible]
[illegible]॥

भूत, प्रेत, पिसाच, निसाचर।
अगिन बेताल काल मारी मर॥
इन्हें मारु, तोहि सपथ राम की।
राखु नाथ मरजाद नाम की॥
सत्य होहु हरि सपथ पाइ कै।
रामदूत धरु मारु धाइ कै॥
जय जय जय हनुमंत अगाधा।
दुख पावत जन केहि अपराधा॥
पूजा जप तप नेम अचारा।
नहिं जानत कछु दास तुम्हारा॥
बन उपबन मग गिरि गृह माहीं।
तुम्हरे बल हौं डरपत नाहीं॥
जनकसुता-हरि-दास कहावौ।
ता की सपथ बिलंब न लावौ॥
जय-जय-जय धुनि होत अकासा।
सुमिरत होय दुसह दुख नासा॥
चरन पकरि कर जोरि मनावौं।
यहि औसर अब केहि गोहरावौं॥
उठु उठु, चलु, तोहि राम-दोहाई।
पायँ परौं, कर जोरि मनाई॥
ॐ चं चं चं चं चपल चलंता।
ॐ हनु हनु हनु हनु हनु-हनुमंता॥
ॐ हं हं हाँक देत कपि चंचल।
ॐ सं सं सहमि पराने खल-दल॥
अपने जन को तुरत उबारौ।
सुमिरत होय आनंद हमारौ॥
यह बजरंग-बाण जेहि मारै।
ताहि कहौ फिरि कवन उबारै॥
पाठ करै बजरंग-बाण की।
हनुमत रक्षा करैं प्रान की॥
यह बजरंग-बाण जो जापैं।
तासों भूत प्रेत सब काँपैं॥
धूप देय जो जपै हमेसा।
ता के तन नहिं रहै कलेसा॥
उर प्रतीति दृढ़, सरन है पाठ करै धरि ध्यान।
बाधा सब हर करैं सब काम सफल हनुमान॥

उपर्युक्त बजरंग-बाणको कण्ठस्थ कर लेना चाहिये और कुछ दिनोंतक भगवान् श्रीहनुमानके चित्रके सामने श्रद्धापूर्वक उच्चारण करना तथा उनके गुणोंपर मनको केन्द्रित करना चाहिये। धीरे धीरे ऐसा अनुभव होगा कि शरीरके अणु अणुमें नये प्राण और नवीन चेतना फैल रही है, नयी शक्ति आ रही है। मानो शरीरमें साक्षात् हनुमानजी ही विराज रहे हैं। यह अपनी शक्तियोंको विकसित करनेका आध्यात्मिक उपाय है।

कष्ट और संकटके समय, रात्रिमें शान्त निद्राके लिये, बच्चोंकी नजर उतारने, भूत-बाधा दूर करने, अकारण प्राप्त भयको नष्ट करने और निर्विघ्न दिन व्यतीत करनेके लिये इस चमत्कारी बजरंग-बाणका प्रयोग किया जा सकता है। किसी महत्त्वपूर्ण कार्यपर जानेसे पहले इसे स्मरण करना सिद्धिमें सहायक होता है।

शरणागत-रक्षक श्रीहनुमान

(१)

संकट मोचन नाम भयो जग, जाके न संकट दूर किये हैं।
शेष कपीश सुरेशहुँ आदि सहाय भये, तब जाइ जिये हैं॥
रामहु रावन जीतिवेको दल साजि जिन्हें निज संग लिये हैं।
'विष्णु' भये तिनके सरनागत, जाके बसे सियराम हिये हैं॥

(२)

जाहि भजे भय रोग नसावन, पावत हैं मनको फल चारी।
जा ढिग जात मिटैं भव-फंद औ होत सबै दिसि मंगलकारी॥
जाको सुनाम भयो जगतीतल भूत पिसाचनको भयहारी।
'विष्णु' भये सरनागत ताहिके, जे भय भूत भगावनहारी॥

—श्रीविष्णुदत्तजी गुप्त, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्यरत्न

श्रीहनुमान-साहित्यकी संक्षिप्त तालिका

भगवान श्रीसीतारामजीके पावन चरित्रसे परिपूर्ण निगमागमसम्मत अनेकानेक पुराणों, रामायणों, महाभारत, तन्त्र तथा भक्तिपरक ग्रन्थोंमें मङ्गल-मूर्ति मारुतनन्दन, आञ्जनेय श्रीहनुमानजीके लीला-चरित्र, स्वरूप, उपासना, अनुष्ठानादिका वर्णन भरा पड़ा है, जिससे हमारे प्रेमी कृपालु पाठक परिचित ही हैं। इस बातको ध्यानमें रखकर यथोपलब्ध श्रीहनुमत्साहित्यकी संक्षिप्त तालिका प्रकाशित की जा रही है। जिन महानुभावोंने अथक परिश्रम करके दुर्लभ (मुद्रित एवं हस्तलिखित) श्रीहनुमत्साहित्यकी न्यूनाधिक सूची भेजी है, उनमें प्रमुख हैं—(१) श्रीशिवनाथयशजी खन्ना, कलकत्ता, (२) श्रीअवधकिशोरदासजी, अयोध्या, (३) श्रीअमरचन्द्रजी गाडगिल, पूना और (४) डा० सुरेशव्रतरायजी, इलाहाबाद। इन सज्जनोंके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

तालिकामें उल्लिखित अधिकांश ग्रन्थोंसे विशेष परिचित न होनेके कारण ये सभी इस विशेषाङ्कके अनुरूप ही हैं—यह कहना कठिन है। तथापि हमारा विश्वास है कि कल्याणके प्रेमी पाठक तथा शुभेच्छु श्रीहनुमान-अङ्क प्रकाशनके मङ्गलमय अवसरपर इस संक्षिप्त तालिकासे लाभान्वित होंगे।

[तालिकामें प्रयुक्त सांकेतिक चिह्न ले०—लेखक, स०—सम्पादक, सङ्कलनकर्ता, प्र०—प्रकाशक, प्रा०—प्राप्तिस्थान एवं टी०—टीकाकार समझने चाहिये।]
—सम्पादक

संस्कृत भाषा

१-हनुमदुपासना-प्रा०—श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई
२-पैशाचभाष्यम्—(श्रीमद्भगवद्गीता) प्रा०—आनन्दाश्रमप्रेस, पूना
३-हनुमत्प्रबुद्धस्तोत्रम्-श्रीमदानन्दतीर्थ
४-श्रीहनुमत्कालाग्निस्तोत्रम्-
५-श्रीहनुमन्मालामन्त्रस्तोत्रम्-
६-श्रीहनुमल्लाङ्गूलदारुणस्तोत्रम्-
७-श्रीहनुमत्स्तोत्रम्-
८-श्रीहनुमद्वडवानलस्तोत्रम्-
९-श्रीहनुमत्पञ्जरस्तोत्रम्-
१०-श्रीहनुमदेकमुखिकवचस्तोत्रम्-
११-श्रीहनुमदापदुद्धारकस्तोत्रम्-
१२-श्रीहनुमदघोरस्तोत्रम्
१३-श्रीपञ्चमुखिहनुमत्स्तोत्रम्
१४-श्रीहनुमत्कवचम्
१५-श्रीहनुमत्सहस्रनामसर्वस्वस्तोत्रम्
१६-श्रीमहाशम्भु श्रीहनुमान (शुकसंहिता, चतुर्थपाद)
१७-श्रीहनुमदङ्गम् (अञ्जयदोत्कम्) सं० प्र०—पं० श्रीरघुदासजी वर्मा, मणिपर्वत, नयाघाट, अयोध्या
१८-श्रीपञ्चमुखिहनुमत्कवचम् (श्रीहनुमत्पद्धतिसहित)-प्र०—हिंदी-पुस्तकालय, मथुरा एवं मास्टर खेलाड़ीलाल, वाराणसी
१९-श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्-प्र०—(क) गीताप्रेस, गोरखपुर, (ख) रामनाथपुस्तक एण्ड संस, मद्रास
२०-श्रीहनुमत्पञ्चाङ्गम्-संशोधक—श्रीधरामजकिशन पाठकजी गुप्त तथा गजाननजी शर्मा, शास्त्री, 'भावुक', प्र०—ज्ञानसागर यन्त्रालय, बम्बई
२१-स्तोत्रकुसुमाञ्जलि -ले०—श्रीवैष्णवाचार्यजी, वेदान्त पीठाचार्य, प्र०—श्रीहरिशरणाय, श्रणदेवरी, रामजी मन्दिर, शारंगपुर दरवाजा बाहर, अहमदाबाद-२
२२-श्रीहनुमदष्टकम्-ले०—श्रीभरतदासाचार्यजी
२३-श्रीहनुमद्ध्यानपियाराम्-(क) टी०—श्रीयुगलविनोद बिहारीशरणजी, जनकीघाट, चित्रकूट, प्र०—श्रीसियाकल्याणशरणजी, ओंकारधाम, प्रयाग, (ख) प्र०—छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बुकसेलर, अयोध्या
२४-श्रीहनुमत्प्रत्यक्षवचनम् (श्रीमहाल्मीकीय संहिता)-प्र०—महंत श्रीरामगजी, मोरा रामजी-मन्दिर, पालनपुर (गुजरात)
२५-श्रीहनुमत्प्रतिष्ठाविधि प्रतिष्ठा महोदधि-ले०—श्रीयमुनन्दनजी मिश्र, प्र०—मास्टर खेलाड़ीलाल बुकसेलर, कचौड़ी गली, वाराणसी
२६-श्रीहनुमन्मन्त्रोद्धार—ले०—परमहंस मुकुन्दघन शिव धानन्दन, प्र०—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
२७-श्रीमारुतिविजय-ले०—नागपुर श्रीरामानन्दाचार्य

२८-श्रीहनुमत्पूजन विशेषता, श्रीरामार्चामाहात्म्य, श्रीसदाशिवसंहिता-प्र०—श्रीरामभक्त श्रीवल्लभदासजी, मु०-लोदरा, जि०—महेसाणा (गुजरात)

-श्रीहनुमज्जन्मोत्सवनिरूपणम्-प्रणेता—श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज

-श्रीहनुमज्जन्मस्तुति-ले०—श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, मानसतत्त्वान्वेषी, प्र०—मानससंघ, रामवन, सतना (म० प्र०)

-श्रीहनुमान-प्र०—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

-हनुमन्नाटक-प्रणेता-श्रीहनुमानजी (क) संस्कर्ता-श्रीदामोदर मिश्र, (ख) टीकाकार-पण्डितप्रवर श्रीमोहनदासजी, प्र०-खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई

-हनुमत्पूजाविधि-ले०—श्रीगोपालानन्दजी स्वामी

-हनुमन्तर्पण अष्टोत्तरशतनामावली-ले०—श्रीमुक्तानन्दजी स्वामी

-श्रीहनुमत्कवच-ले०—श्रीनित्यानन्दजी स्वामी

-श्रीमारुति-स्तोत्रम्-

-वडवानलस्तोत्रम्-ले०—श्रीनित्यानन्दजी स्वामी

-अञ्जनापवनाञ्जेयम्-सं०—एम० डी० पटवर्धन, प्रा०-भाण्डारकर ग्रन्थालय, पूना

-लाङ्गूलोपनिषद्-प्र०—श्रीमोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

४०-हनुमत्सूक्तम्-सं०-डा० ना० श्रीवाग्चे

४१-श्रीहनुमज्जयन्ती, श्रीहनुमत्पूजाविधि-ले०-प्र०-स्वामी श्रीरामाश्रयदासजी, श्रीतपस्वीजीकी छावनी, अयोध्या

४२-श्रीहनुमत्संहिता-(रहस्य-ग्रन्थ) ले०-पं० श्रीरामनारायणदासजी तथा पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज, प्र०—श्रीछोटेलाल लक्ष्मीचंद बुकसेलर, अयोध्या

४३-हनुमद्रहस्यम्-सं०-आचार्य पं० शिवदत्तजी मिश्र, प्रा०-ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स, काशी

४४-श्रीमद्रामपवनात्मजचतुर्दशरहस्यम्-सं०-पं० श्रीरामनारायणदासजी, अयोध्या, प्र०-महन्त सरयूदासजी, श्रीरघुनाथ-मन्दिर, अमृतसर, दुर्ग्याना

४५-श्रीहनुमत्प्रभुस्तव-ले०-जगद्गुरु श्रीहनुमदाचार्य, प्र०-रामानन्द संदेश-कार्यालय, काँकड़िया रोड, अहमदाबाद-२२

४६-श्रीहनुमत्स्तव-ले०-जगद्गुरु श्रीहनुमदाचार्य, प्र०-रामानन्द संदेश-कार्यालय, काँकड़िया रोड, अहमदाबाद-२२

हिंदी भाषा

१-हनुमन्नाटक-रचयिता-श्रीहृदयरामजी, प०—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

२-श्रीहनुमान-नाटक-ले०-कविकुमार श्रीरामस्वरूपजी शर्मा, प्र०—खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

३-हनुमन्नाटक भाषा अर्थात् श्रीनर विलास-ले०-श्रीरामजी चतुरदास, प्र०—मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

४-भाषा हनुमाननाटक-ले०-श्रीयुगलकिशोरजी, प्र०—पीताम्बर वालधिपु, मूलामार्गहठी, सदवाण, बाजार

५-हनुमान-बत्तीसी-ले०-श्रीभगवतीप्रसाद रसिकबिहारी, प्र०—(क) भारत जीवन प्रेस, काशी, (ख) [illegible], [illegible]

६-हनुमानबाहुक-रचयिता-गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी, प्र०—सीताराम प्रेस, बनारस

७-श्रीहनुमानबाहुक-(सिद्धान्त-तिलक) टीकाकार—श्रीकान्तशरणजी, प्र०—श्रीसद्गुरु-कुटीर, गोलाघाट, अयोध्या

८-हनुमानबाहुक-(पीयूषवर्षिणी) टीकाकार-अञ्जनीनन्दनशरणजी—श्रीरामोजनदास, अयोध्या

९-श्रीहनुमानबाहुक-रचयिता-गोस्वामी तुलसीदासजी, अनु०-महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य, गीताप्रेस, गोरखपुर

१०-बजरंग बाण-रचयिता-गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी, प्र०—[illegible], वाराणसी

११-हनुमानचालीसा तथा हनुमानाष्टक-रचयिता-गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी, प्र०—(क) मगनभाई मनसुखराम, अहमदाबाद, (ख) गीताप्रेस, गोरखपुर
१२-हनुमान पचीसा—रचयिता—सत्यनारायणजी पाण्डेय
१३-कल्याणकार हनुमान—ले०—श्रीरामचन्द्रजी मालवीय, प्र०—अञ्जना प्रकाशन, जगतगंज, वाराणसी
१४-श्रीमहावीर पुराण, भाषाग्रन्थ महावीर स्वाटिकसहित—ले०—श्रीनन्दकिशोरदासजी
१५-हनुमद्विलास—ले०—रामप्रेमदास, प्र०—मेडिकल हाल प्रेस, काशी
१६-हनुमान-उपासना—सं०—श्रीरामकृष्ण रसिक, प्र०—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ीबाजार, दिल्ली
१७-बजरंगविजयरामायण-(काव्य) ले०— रामप्यारे नन्दजी, (क) प्रा०—कन्हैयालाल त्रिवेदी, इलाहाबाद, (ख) प्र०—जबलपुर
१८-महावीर हनुमानजी—ले०—रूपनारायणजी पाण्डेय, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
१९-महावीर हनुमान—ले०—श्रीजगदीशजी झा 'विमल', प्र०—एम० आर० बेरी एण्ड कम्पनी, कलकत्ता
२०-महावीर हनुमान एवं हनुमानशतक—ले०—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, प्रा०—संकीर्तनभवन 'झूसी' इलाहाबाद
२१-हनुमच्छतक-(काव्य) ले०—श्रीलक्ष्मणप्रसाद रामायणी, प्र०—रघुनन्दन प्रेस, कानपुर
२२-हनुमन्त शतक—ले०—मनीराम कवि, प्र०—भारत-जीवन प्रेस, बनारस
२३-हनुमानजीकी जीवनी—ले०—मङ्गलदासजी, प्र०—हनुमन्निवासमण्डल, काशी
२४-भगवान् हनुमान्—ले०—श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी, प्र०—गीताप्रेस, गोरखपुर
२५-हनुमान—ले०—श्रीमन्नारायणजी, प्र०—किताब महल, इलाहाबाद
२६-श्रीहनुमच्चरित—ले०—[illegible], प्र०—[illegible], गोरखपुर
२७-हनुमानजीका जीवन-चरित—ले०—[illegible], प्र०—रामप्रसाद बुक एजेन्सी, इन्दौर
२८-हनुमानचरित्र—ले०—श्रीगणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र' प्र०—रामकार्यालय, बनारस
२९-हनुमान [ज्योतिष भाषाटीका]-प्र०—श्यामलाल हीरालाल, श्याम-काशी-प्रेस, मथुरा
३०-श्रीरामचरितमानसमें श्रीहनुमानजी—ले०—श्रीजानकीरायजी जनक, प्र०—मानस-संघ, रामवन, सतना
३१-श्रीहनुमच्चरित्रम्-(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डका ३६वाँ सर्ग, महर्षि अगस्त्यप्रोक्तम्) प्र०-श्रीरामप्रसादात्मज श्रीत्रिवेणीप्रसादजी शर्मा, ओरियन्टल प्रेस, फैजाबाद
३२-सर्वशोक निवारक श्रीहनुमत्प्रार्थना—ले०-प्र०—श्रीसियारामशरणजी
३३-श्रीहनुमद्विनोद—ले०—पं०श्री चन्द्रशेखरजी पाण्डेय, प्र०—भार्गव पुस्तकालय, वाराणसी
३४-मंगलकारणी गौरी, मंगलकारकी धून, श्रीहनुमान अष्टक-प्र०—सुन्दर पुस्तकालय, भाभोर, जि०—खेड़ा (गुजरात)
३५-श्रीहनुमज्जन्मोत्सव—ले०—श्रीगङ्गासहायजी 'प्रेमी', प्र०—प्रेमप्रकाश प्रेस, चौड़ी बाजार, जयपुर
३६-श्रीहनुमन्नाम-यथार्थ—ले०-प्र०—श्रीमैथिलीशरणजी, वेदान्ताचार्य, श्रीरङ्गमहल, अयोध्या
३७-श्रीहनुमद्यशतरङ्गिणी—ले०—श्रीरघुनाथगिरिजी, प्र०—श्रीछोटेलाल लक्ष्मीचन्द बुकसेलर, अयोध्या
३८-श्रीहनुमानजीके जंजीरा तथा यन्त्र मन्त्र- ले०—श्रीअवधकिशोरदासजी वैष्णव—अप्रकाशित
३९-क्या हनुमानजी वानर थे ?—ले०—जे० पी० चौधरी
४०-हनुमत्-सूत्र—ले०—श्रीनित्यानन्दजी शास्त्री
४१-हनुमानसाठिका—ले०—श्रीरूपदेवदासजी, प्रा०—श्रीरामतीर्थ-ग्रन्थालय, सदाशिव पेठ, पूना २
४२-मारुति-स्तोत्र—ले०—श्रीमुक्तानन्दजी स्वामी
४३-श्रीसङ्कटभञ्जन हनुमानजीका स्तोत्र (हिन्दी छन्द)- ले०—श्रीचिदानन्दजी स्वामी
४४-पवनञ्जय (नाटक)—ले०—श्रीओंकारनाथजी 'दिनकर', प्र०—एज्यूकेशनल पब्लिशर्स प्रा० लिमिटेड, ब्यावर (अजमेर)
४५-आञ्जनेय—ले०—ठाकुर सुदर्शनसिंहजी, प्र०—[illegible] पुस्तकालय, मेरठ
४६-जय हनुमान-प्रेषक-श्यामसुन्दरजी पाण्डेय
४७-वीरहनुमान-प्रेषक-श्रीवासुदेव नारायण मिश्र

मराठी-भाषा

१-मासा मारुति-ले०—दा० न० घिलरे, प्र०-टीचरस् आयडियल पब्लिशिंग हाउस, पुणे
२-मारुतीचा ओटा अथवा डाका उपासकाचे स्वगत उद्‌गार-ले०—बालकृष्ण भाऊ जोशी, प्र०-मा० भा० जोशी, यशवंत, पुणे
३-मारुतिभ्रमनिरसन-ले०—भास्कर विनायक कानिटकर, प्र०-तुकाराम जावजी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
४-मारुतीची कथा (मुलांसाठी मारुतीराया च चरित्र) ले०—मोरेश्वर, प्र०-श० न० जोशी, चित्रशाला प्रेस, पुणे
५-मारुतिस्तोत्र-ले०—रामदास, प्र०-पाण्डुरंग आवजी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
६-श्रीमारुती-उपासना-ले०—श्रीरामदास, प्र०-शब्द रंजन स्पर्धा, बम्बई
७-श्रीमारुती-उपासना-ले०-लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, प्र०-शारदाप्रेस, पुणे
८-श्रीमारुती-उपासना-ले०-प्र०-केशव भिकाजी ढवले, मुंबई वैभव, बम्बई
९-श्रीमारुतीचा मुमुक्षार-ले०—प्र०—वासुदेव पुरुषोत्तम साठे, मुंबई वैभव, बम्बई
१०-बजरंगबलीकी जय-ले०-प्र०—शंकर भोंडो, क्षीरसागर, नरसिंह, मसूर
११-सुन्दरकाण्डान्तर्गत श्रीमारुती माहात्म्य-ले०-श्रीधरजी स्वामी, प्र०—श्रीधर कुटी, सज्जनगढ
१२-अञ्जनीहनुमतांशी हितगुज अथवा देवता विज्ञानाचा बुद्धिवाद-ले०-सदाशिव कृष्ण फडके, प्र०—केशव भिकाजी ढवले, राष्ट्रवैभव न्यू टाइम्स, बम्बई
१३-श्रीहनुमच्चरित्र-ले०-कालचन्द्र जिनदत्त शास्त्री उपाध्याय, प्र०—वीर भारत, बेलगाँव
१४-मारुति-चरित्र-ले०-कृष्णाजी आवाजी गुरुजी, प्र०—बोधसुधाकर, सातारा
१५-श्रीहनुमन्तलीलामृत प्रथम कुसुम-ले०-कृष्णजी वामन तलवलकर, प्र०—अनन्त गणेश शेकदार विनय, बम्बई
१६-आञ्जनेय-ले०-स० कृ० देवधर (रामकोश०)
१७-पवन विजय-ले०-मल्हारदास
१८-(श्री) मारुतीचरित्र-रहस्य-ले०-पा० वि० दामले
१९-(हनुमत्) हनुमाननाटक-प्र०—इन्दुप्रकाश, बम्बई
२०-शतमुखरावणकथा—हनुमन्तनाटक-ले०-अनाम भूपतिनाथ, (रामकोश०)
२१-साँल्तविजय-प्र०—श्रीरामकोश ग्रन्थालय, श्री अमरेन्द्र गाडगिल, सदाशिवपेठ, पूना २

गुजराती भाषा

१-हनुमान चरित्र-(काव्य)—हस्तलिखित पोथी, ले०-काशीसुत सेठजी
२-श्रीहनुमान चरित्र-(जीवनी) ले०-बलदेवराम कृष्णरामजी भट्ट
३-भक्तवीर हनुमान-ले०-जगुभाई मोहनलाल रावल, प्र०—सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद
४-बजरंगी हनुमान-(नाटक) ले०-जेठालाल चौधरी
५-हनुमान-गरुड़-संवाद-(काव्य) ले०-दयाराम, प्र०—गुजराती प्रेस, बम्बई
६-मारुति भजनावली-(काव्य) ले०-धीरजलाल सेठ
७-जय बजरंग (बाल-कथा-साहित्य) ले०-नटवरलाल विमवाल, प्र०—राष्ट्रीय साहित्य मन्दिर, सूरत
८-हनुमान-विभीषण-ले०-नानाभाई भट्ट, प्र०—आर० आर० सेठ एण्ड कम्पनी, बम्बई
९-हनुमत्स्तव-(हनुमानजीकी स्तुति, काव्य, हस्तलिखित पोथी) ले०-मुक्तानन्दजी
१०-हनुमान-उपासना-ले०-रामशंकरजी जोशी, प्र०—माधव रामचन्द्र जगुस्ते, अहमदाबाद
११-हनुमानजी ना छन्द-(काव्य, हस्तलिखित पोथी) ले०-बीरदास (बखनजी)
१२-सीता-हनुमान प्रसङ्ग-(काव्य, हस्तलिखित पोथी)
१३-(हनुमत्) हनुमानमहानाटक-टीकाकार—छगनकिशोरजी
१४-हनुमानयश-गीता- प्र०—दरिद्र पुस्तकालय, सूरत
१५-हनुमद् वायु संवाद-(उपदेशात्मक शास्त्र) गुजराती भाषान्तर, प्र०—सस्ता साहित्य-मण्डल, अहमदाबाद
१६-श्रीहनुमानजीका कीर्तन-ले०-श्रीब्रह्मानन्दजी स्वामी
१७-वीर हनुमान-ले०-शिवराम जोशी, प्र०—जागमन कार्यालय, अहमदाबाद
१८-राम-हनुमान-युद्ध-(नाटक) ले०-नृसिंहप्रसाद नारायण भट्ट, प्रा०-नारायण ग्रन्थमाला, जामनगर (सौराष्ट्र)

बंगला भाषा

१–रामायणे हनुमान-चरित्र–ले०–श्रीरुद्रनाथ नन्दोपाध्याय, प्र०–योआसरंगि बुकडिपो, कलकत्ता
२–सयशान मजरी–ले०–नन्दकुमारदत्त
३–हनुमन् महानाटक –(क) टीका०–चन्द्रशेखर विद्यालंकार, सं० तथा बंगला काव्यानुवाद–चन्द्रकुमारजी भट्टाचार्य, प्र०–चन्द्रकुमार भट्टाचार्य, कलकत्ता (ख) बंगला काव्यानुवाद–काशीकृष्ण बहादुर, कलकत्ता (ग)–बंगला गद्यानुवाद–मधुसूदन मिश्र, कलकत्ता (घ)–बंगला काव्यानुवाद–रामगोपाल भट्टाचार्य, कलकत्ता (ङ)–टीकाकार–कालीपद तर्काचार्य, सं०–श्रीशानन्द विद्यासागर, प्र०–शरच्चन्द्र बुकडिपो, कलकत्ता
४–हनुमानेर स्वप्न इत्यादि गल्प–ले०–राजशेखर बसु, प्र०–एम० सी० सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता

उड़िया भाषा

१–हनु अर्जुन यति–ले०–श्रीकृष्णदासजी, प्र०–एम० एम० महापात्र, कलकत्ता
२–हनुमानचालीसा–ले०–श्रीरामचन्द्र, प्र०–एम० एम० महापात्र, कलकत्ता
३–महानाटक–ले०–श्रीमधुसूदनजी मिश्र, प्र०–अजयकुमार घोष, कटक
४–हनुमन्महानाटक (उड़िया काव्यानुवाद)–सं०–श्रीगोपीनाथ कर, प्र०–अरुणोदय प्रेस, कटक
५–मित्र महानाटक (उड़िया काव्यानुवाद) सं०–अजयकुमार घोष, प्र०–दाशरथी पुस्तकालय, कटक
६–हनुमान प्रदा–प्र०–उत्कलप्रेस, कलकत्ता

तमिल भाषा

१–हनुमनै यनुभवित्त आळ्वारकळ्म कम्पनाट्टाळ्वारम्–ले०–गोपालकृष्ण नायुडु, टी०–प्र०–सरकरी बुक कम्पनी, कोयम्बटूर
२–श्रीहनुमत्प्रभावम् (जीवनी)–ले०–बालसुब्रह्मण्य अय्यर टी० के०, प्र०–श्रीवाणीविलास प्रेस, श्रीरंगम्
३–लक्षियाचीरन हनुमान (काव्य)–ले०–नागना एन० एस०–प्र०–मूनीयप्पल पब्लिकेशन्स, मद्रास

तेलुगु भाषा

१–हनुमान–ले०–शिवशंकर वेंकट सुब्बाराव
२–हनुमत्कृति (हरिकथा)–ले०–प्र०–सुब्रह्मण्य भागवतार, परिमि
३–हनुमद्राम संग्राममु (नाटक)–ले०–वि० कोटेश्वर राव, प्र०–चन्द्रनारायण शेट्टि, बालात्रिपुर सुन्दरी मुद्राशाला, विजयवाड़ा (आ० प्रदेश)
४–हनुमद्विजयमु–ले०–आदि शर्मा, अनमनि
५–हनुमत्सतर्पणनीराजनशिपात्रस्तवमु–ले०–चिल्लानन्द शास्त्री, प्र०–परपाडु, एलूरु (पश्चिम गोदावरी) (आन्ध्र प्र०)
६–हनुमत्प्रसन्नमाला–ले०–नन्दगिरि लक्ष्मीगिरिराव पन्तुलु, प्र०–मैनेजर आन्ध्रवाणी, रत्नमाला, अगरू, कृष्णा
७–हनुमज्जीवितमु–ले०–प्र०–चिल्ला वेंकट सुब्रह्मण्य शास्त्री, कोचरेदा, गुंटूर
८–हनुमद्विजयमु–ले०–पी० वी० सुब्बाराव, प्र०–गुंटूर
९–हनुमदुत्तरमु–ले०–दशसूर्यप्रकाशजी कवि, प्र०–पु० सुब्बारायडु, अमलापुरम्, पूर्व गोदावरी
१०–हनुमत्सुप्रभातम् व नक्षत्रमाला–ले०–सुन्दूरि यज्ञनारायणजा शर्मा, प्र०–वरंगल
११–श्रीहनुमत्प्रउक्ति–ले०–धामीकृति पद्मराजु, लक्ष्मणाचार्य भागवतुल परिमि ।
१२–मारुतिशतकम्–ले०–सुब्रह्मण्यम् नायुडु मदनपल्ल, प्र०–चन्द्रिका प्रेस, मद्रास ।

कन्नड़ भाषा

१–हनुमद् विलासमु–ले०–विश्वनाथ, प्र०–विचारदर्पण प्रेस, बंगलोर ।
२–हनुमद्-विलासमु–ले०–वेंकटरामजी दीक्षित, प्र०–नेशनल प्रेस, बंगलोर ।

मलयालम् भाषा

१-कल्याण-सौगन्धिकम् तिरुवातिरप्पाट्टु-(काव्य)- प्र०-ए० आर० पी० प्रेस, कुन्नमकुलम्।

२-कल्याण-सौगन्धिकम्-म०-वैद्दूर एस० परमेश्वरय्यर, प्र०-गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम्।

३-कल्याण-सौगन्धिकम् पट्टुकिरतचम् (काव्य)- प्र०-माल्बार एण्ड ट्रावनकोर सेक्रेटेरर, कोझिकोडे।

४-कल्याण सौगन्धिकम्-लें०-कुञ्चन नाम्बियार, प्र०-एस० एच० प्रेस, चगनचरी।

५-हनुमानुम् विभीषणुम्-लें०-राममेनन पुतजन्, प्र०-कमलालय बुकडिपो, त्रिवेन्द्रम्।

पंजाबी भाषा

१-हनुमान नाटक (पौराणिक नाट्य-कथा)-लें०-प० श्रीशिवराधनी, प्र०-लालासिंह एण्ड सन्स, लाहौर।

२-(हनुमत्) हनुमन्नाटक-अनुवादक-हृदयराम भल्ला, प्र०-लाहौर।

३-हनुमान नाटक (पंजाबी टीका—अमृतधारा सुबोधिनी)-लें०-श्रीरामदास नाथरा, प्र०-लाहौर।

४-हनुमान ज्योतिष-लें०-प्र०-भाइ जोधसिंह, पटियाला।

उर्दू भाषा

१-श्रीमन् हनुमानजीका मुकम्मल जीवन-चरित्र-लें०-मुन्वरामदासजी चौहान ठाकुर, प्र०-रत्न ए नाम प्रेस, लाहौर।

अंग्रेजी भाषा

१-Hanuman and Jatayu-लें०-नीरु ड खोजा, प्र०-आई० बी० एच० पब्लिशन, बम्बई।

२-Anand worship of the Daring Hanumant in Orrisa-लें०-श्रीशरतचन्द्रजी मित्र, प्र०-एन्थ्रो पोलोजिकल सोसाइटी आफ बम्बई।

३-Hanumat Mahanatak a Dramatic History of King Ram-काव्यानुवादक कालीकृष्णजी बहादुर, प्र०-कोलम्बियन प्रेस, कलकत्ता।

४-The flight of Hanuman-लें०-सी० एन० मेहता, प्र०-श्रीरामकोश ग्रन्थालय, सदाशिवपेठ, पूना-२

श्रीहनुमानजीके अनन्य भक्त

(लेखक—महन्त श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराज)

लगभग दो सौ वर्ष पूर्व स्वामी श्रीमणिरामदासजी महाराज श्रीहनुमानजीके कृपाप्राप्त एक विशिष्ट संत हो गये हैं। उन्हींके नामपर श्रीअयोध्याजीमें 'श्रीमणिरामदासजीकी छावनी' नामक एक सुप्रसिद्ध अतिथि-अभ्यागत-संतसेवी स्थान है।

श्रीमणिरामदासजी चित्रकूटमें 'दास हनुमान' नामक स्थानपर तपस्या करते थे। उनका विशेषरूपसे अनुष्ठेय विषय था—श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणके पाठद्वारा श्रीहनुमानजीकी कृपा प्राप्ति। सतत श्रीरामनाम-स्मरण, श्रीकामदनाथजीकी परिक्रमा एवं अनुष्ठेय पाठका क्रम चलता रहता था। श्री महाराजजी कन्द-मूल-फलका ही आहार करते और सदा श्रीहनुमत्प्रेममें पगे रहते थे। यह क्रम कई वर्षोंतक चला।

अन्तमें श्रीहनुमानजी महाराजने उन्हें दर्शन देकर मणि दान करते हुए आदेश दिया कि 'श्रीअयोध्याजीमें श्रीसरयू तटपर रहकर संत सेवा करो।' श्रीमहाराजजीने कहा कि मुझे तो मणिस्वरूपा आपकी कृपादृष्टि चाहिये, मैं मणि लेकर क्या करूँगा।' कहते हैं, इसीलिये इनका श्रीमणिरामदास नाम पड़ा। आगे श्रीमहाराजजीने कहा—'मैं अकिंचन हूँ, संत-सेवा कैसे करूँगा?' इसपर श्रीहनुमानजीने कहा—'तुम चलो, हम आते हैं।' साथ ही यह भी कहा कि 'जबतक तुम्हारेद्वारा संत सेवा होती रहेगी, तबतक कोई कमी न पड़ेगी।'

श्रीहनुमानजीकी आज्ञा मानकर श्रीमहाराजजी अयोध्यामें आकर श्रीसरयू-तटके श्रीवासुदेवघाटपर झोंपड़ी बनाकर भजन करने लगे एवं समागत-सामग्रीद्वारा संत सेवा भी होने लगी।

कुछ समय बीतनेपर कोई सज्जन श्रीहनुमानजीकी प्रतिमा प्रतिष्ठा हेतु नौकाद्वारा ले जा रहे थे। श्रीमहाराजजीकी झोंपड़ी के समीप नाव रुक गयी, अधिक वेग करनेपर भी वह आगे बढ़ न सकी तब श्रीमहाराजजीने कहा—'श्रीहनुमानजी यहीं रहना चाहते हैं।' वे सज्जन भी मान गये और उस प्रतिमा को वहीं छोड़कर अपने गन्तव्य स्थानको चले गये।

अद्यावधि श्रीहनुमानजी महाराज छावनीमें विराजमान रहकर भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करते रहते हैं एवं छावनीकी सर्वतोभावेन उन्नतिमें निरत हैं। श्रीहनुमानजीकी प्रसन्नताके लिये यहाँ नित्य श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणका पाठ होता है।

उदीस सालके थे । माता-पिताकी श्राद्ध क्रिया भलीभाँति सम्पन्न करनेके बाद इन्होंने अवधके एक भजनानन्दी संतसे दीक्षा ले ली । तबसे इनका नाम त्यागी राम अवधदासजी हुआ ।

स्वामीजीमें उत्कट वैराग्य था । ये अपने पास कुछ भी संग्रह नहीं रखते थे । योगक्षेमका निर्वाह श्रीसीतारामजी अपने आप करते थे । इन्होंने न कोई कुटिया बनवायी, न चेला बनाया और न किसी अन्य आडम्बरमें रहे । दिन-रात कीर्तन करना और भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहना, यही इनका एकमात्र कार्य था ।

इन्हें जीवनमें बहुत बार श्रीहनुमानजीके प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे । भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी भी इनपर अपार कृपा थी । अन्तकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रकी गोदमें सिर रखकर इन्होंने शरीर छोड़ा । लोगोंका विश्वास है कि ये बहुत उच्च श्रेणीके भक्त थे और बहुत ही गुप्त रूपसे रहा करते थे ।

श्रीहनुमानजीके नैष्ठिक भक्त श्रीरामगुलामजी द्विवेदी

(साकेतवासी महात्मा श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजी महाराज)

पं० श्रीरामगुलामजी द्विवेदी मिर्जापुरके गणेशगंज मुहल्लेमें रहते थे । वे 'करुणासिंधु', पं० शिवलालजी पाठक तथा श्रीपजाबीजी आदि रामायणियोंके समकालीन ही प्रसिद्ध रामायणी थे । बाल्यकालसे ही उनपर संकट आते रहे, परंतु श्रीहनुमानजीकी कृपासे सब कष्ट दूर होते गये । श्रीद्विवेदीजीने स्वयं लिखा है—

> बारे ते बिदेस बस्यो देखि दुःख देस दस्यो
> पेट भरबेके काज कहीं जस रामको ।
> तऊ न 'गुलाम राम' सकल बिलोकि कलि
> हाथ हनुमान मोसों दूसरो निकाम को ॥
> (कवित्त प्रबन्ध)

यह तो समस्त मानसविज्ञोंमें सुप्रसिद्ध ही है कि श्रीद्विवेदीजीको श्रीहनुमानजीका इष्ट था, उनपर हनुमानजीकी बड़ी कृपा थी । आपकी रामचरितमानसकी कथा प्रसिद्ध थी और साथ-ही-साथ जनप्रियता भी ।

मिर्जापुर नगरसे बाहर नदीके उस पार हनुमानजीका एक मन्दिर था । वहाँ नित्य जानेका द्विवेदीजीका दृढ नियम था । एक बार दैवयोगसे वे दिनमें वहाँ जाना भूल गये, रात्रिमें स्मरण आते ही आप तुरंत उठकर चल दिये । घोर वर्षा हो रही थी, गङ्गाजी खूब बढ़ी हुई थीं । कोई पार उतारने वाला केवट वहाँ न था । वे तैरकर पार जानेके विचारसे साहस कर नदीमें कूद पड़े और पानीके प्रवाहमें बहने लगे । तब श्रीहनुमानजीने उनका हाथ पकड़कर डूबनेसे बचाया और दर्शन देकर उनको किनारे किया तथा यह आशीर्वाद भी दिया कि 'रामायणकी कथामें तुम्हारे नवीन-नवीन भाव निकलते रहेंगे' इत्यादि[1] ।

जिस चबूतरेपर वे कथा कहते थे, वह अभी भी विद्यमान है । सुना गया है कि उनके कोई शिष्य, वे जो कथा कहते उसे कैथी लिपिमें गुप्तरूपसे चुपचाप नित्य लिख लिया करते थे । बात मालूम हो जानेपर उन्होंने शाप दे दिया कि 'जो इसे पढ़ेगा, वह अंधा हो जायगा ।' वह शापित ग्रन्थ पूर्व चौका घाटपर था, अब वह कहीं काशीजीमें है । द्विवेदीजीके शिष्योंकी परम्परामें बड़े-बड़े रामायणी भी हुए हैं । इन्हींमेंसे छक्कनलालजी मानसके बड़े ही मर्मज्ञ और सुबोध ज्ञाता हुए ।

श्रीद्विवेदीजीने रसिक परमहंस श्रीरामप्रसादजीसे दीक्षा ग्रहण की थी । उन्होंने द्विवेदीजीको वाल्मीकि-रामायणका गम्भीर अध्ययन कराया था ।

जनश्रुति है कि श्रीहनुमानजीके परमप्रेमी भक्त श्रीरामगुलामजी द्विवेदीने उसी दिन अपने शरीरका त्याग किया, जिस दिन रसिकनाथ श्रीरामचरणदासजीने साकेतधामकी यात्रा की । उस दिन सं० १८८८ वि० माघ शुक्लकी नवमी तिथि थी ।

---

[1] यह भी प्रसिद्धि है कि नदीमें उतरनेपर एक आदमीने उन्हें रोका और कहा—'कहाँ जाते हो? आगे खतरा है।' द्विवेदीजीने कहा 'महावीरजीके दर्शन करना है।' तब उस व्यक्तिने अपनेको ही महावीर बताया और निकटस्थ एक मूर्तिके रूपमें उनको दर्शन दिया और विश्वास दिलाकर आज्ञा दी कि आजसे अब दर्शनको न आना, घरपर ही एक मूर्ति स्थापित कर लो। वह मूर्ति अबतक मौजूद है। उन हनुमानजीका नाम लोहदी महावीर है।'

श्रीहनुमानचालीसा

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ॥
बुद्धिहीन तनु जानिके सुमिरौं पवन-कुमार ।
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं हरहु कलेस बिकार ॥

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर । जय कपीस तिहुँ लोक उजागर ॥
राम दूत अतुलित बल धामा । अंजनि पुत्र पवनसुत नामा ॥
महाबीर बिक्रम बजरंगी । कुमति निवार सुमति के संगी ॥
कंचन बरन बिराज सुबेसा । कानन कुंडल कुंचित केसा ॥
हाथ बज्र औ ध्वजा बिराजै । काँधे मूँज जनेऊ साजै ॥
संकर सुवन केसरीनंदन । तेज प्रताप महा जग बंदन ॥
बिद्यावान गुनी अति चातुर । राम काज करिबे को आतुर ॥
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया । राम लखन सीता मन बसिया ॥
सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा । बिकट रूप धरि लंक जरावा ॥
भीम रूप धरि असुर सँहारे । रामचंद्र के काज सँवारे ॥
लाय सजीवन लखन जियाये । श्रीरघुबीर हरषि उर लाये ॥
रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई । तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई ॥
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं । अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं ॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा । नारद सारद सहित अहीसा ॥
जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते । कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते ॥
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा । राम मिलाय राज पद दीन्हा ॥
तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना । लंकेस्वर भए सब जग जाना ॥
जुग सहस्र जोजन पर भानू । लील्यो ताहि मधुर फल जानू ॥
प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं । जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं ॥
दुर्गम काज जगत के जेते । सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥
राम दुआरे तुम रखवारे । होत न आज्ञा बिनु पैसारे ॥
सब सुख लहै तुम्हारी सरना । तुम रच्छक काहू को डर ना ॥
आपन तेज सम्हारो आपै । तीनों लोक हाँक तें काँपै ॥
भूत पिसाच निकट नहिं आवै । महाबीर जब नाम सुनावै ॥
नासै रोग हरै सब पीरा । जपत निरंतर हनुमत बीरा ॥

संकट तें हनुमान छुड़ावै। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै ॥
सब पर राम तपस्वी राजा। तिन के काज सकल तुम साजा ॥
और मनोरथ जो कोइ लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै ॥
चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा ॥
साधु सन्त के तुम रखवारे। असुर निकन्दन राम दुलारे ॥
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता ॥
राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा ॥
तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै ॥
अंत काल रघुवर पुर जाई। जहाँ जन्म हरि भक्त कहाई ॥
और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई ॥
संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा ॥
जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं ॥
जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बंदि महा सुख होई ॥
जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा। होय सिद्धि, साखी गौरीसा ॥
तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा ॥

दोहा

पवनतनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप ॥

आरती

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ कला की ॥
जाके बल से गिरिवर काँपै। रोग दोष जाके निकट न झाँपै ॥
अंजनि पुत्र महा बलदाई। संतन के प्रभु सदा सहाई ॥
दे बीरा रघुनाथ पठाये। लंका जारि सीय सुधि लाये ॥
लंका सो कोट समुद्र-सी खाई। जात पवनसुत बार न लाई ॥
लंका जारि असुर संहारे। सियारामजी के काज सँवारे ॥
लक्ष्मण मूर्छित पड़े सकारे। आनि सजीवन प्रान उबारे ॥
पैठि पताल तोरि जम-कारे। अहिरावन की भुजा उखारे ॥
बायें भुजा असुर दल मारे। दहिने भुजा संतजन तारे ॥
सुर नर मुनि आरती उतारे। जै जै जै हनुमान उचारे ॥
कंचन थार कपूर लौ छाई। आरति करत अंजना माई ॥
जो हनुमान (जी) की आरति गावै। बसि बैकुंठ परमपद पावै ॥

जा रहे

प्रयोगोंका यथोचित स्वाध्याय ... शान्ति-वचन कर
जो श्रीहनुमानजीको ही अपना सर्वोपरि इष्ट या उप
मानते हैं, उन हनुमद्भक्तोंके लिये तो इसमें उपा
परम उपादेय सामग्री सन्निविष्ट है ही, जिसमें सकाम-अनु
अनेकानेक प्रयोग भी सङ्कलित हैं। इनकी विशेष जा
इस अङ्कके प्रारम्भमें दी गयी विषय-सूचीसे प्राप्त
सकती है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य
यदि उपासकका कोई प्रबल प्रारब्ध प्रतिबन्धक
और विधिपूर्वक अनुष्ठान किया गया हो तो उसे
श्रद्धा विश्वास और भाव भक्तिके अनुरूप इन अनु
द्वारा अभीष्ट सिद्धि-लाभ न्यूनाधिकरूपमें होता ही है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान्‌के वचन हैं—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्॥
(७। २

'जो-जो सकाम भक्त जिस जिस देवताके स्
श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस उस भक्तकी श्रद्
उसी देवताके प्रति स्थिर करता हूँ। वह पुरुष उस
युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और
देवतासे मेरेद्वारा ही विधान किये हुए उन
भोगोंको निस्सन्देह प्राप्त करता है।'

परंतु इस लोक या परलोकके स्त्री पुत्र, धन
वैभव विलास, ऐश आराम, सुख-सुविधा